सरस्वती
सचित्र मासिक पत्रिका ।
भाग ३
सन् १९०२ ई०
बाबू श्यामसुन्दर दास, बी. ए.
इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद ।

सूची

राजा रवि वर्म्मा ।

नव्वाब सर सालारजङ्ग बहादुर, जी. सी. एस्. आई.

मुन्शी गङ्गा प्रसाद वर्म्मा ।

लाला हंसराज, बी० ए०

बाबू माधवप्रसाद   पं० माधवराव सप्रे   पं० रामराव चिंचोलकर   पं० विश्वनाथ शर्मा

पण्डित श्रीधर पाठक ।

महाराज माधवराव सेंधिया, ग्वालियरनरेश ।
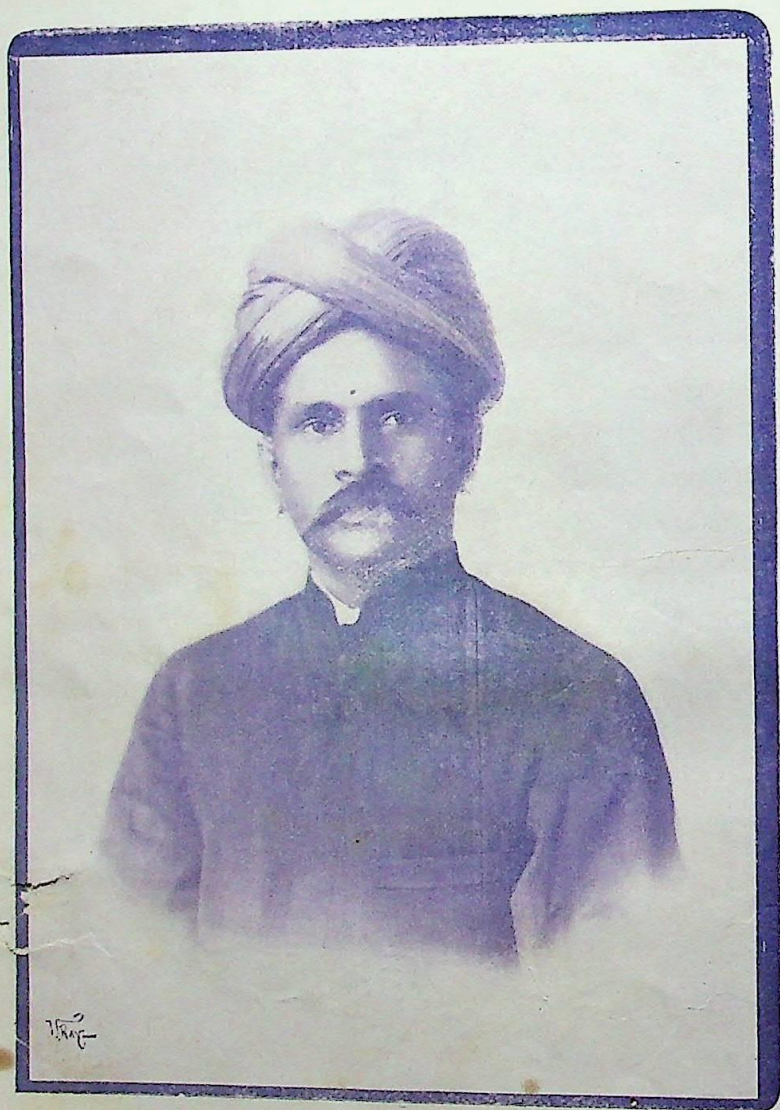
सी. राजा राज वर्म्मा ।

महाराजाधिराज विजयचन्द महताब बहादुर ।
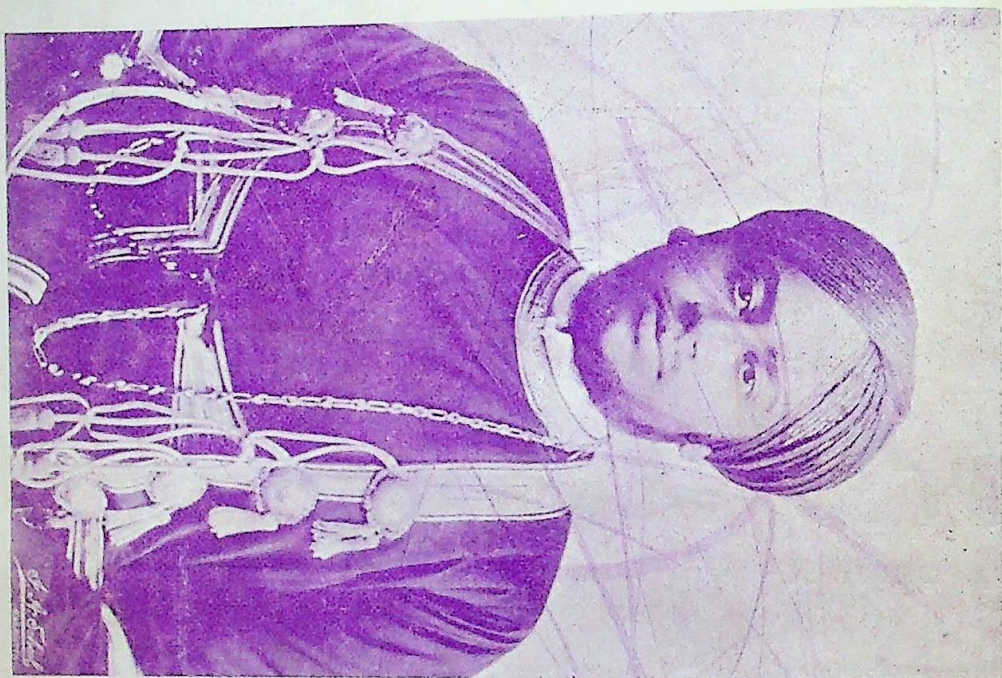
राजा बनबिहारी कपूर ।
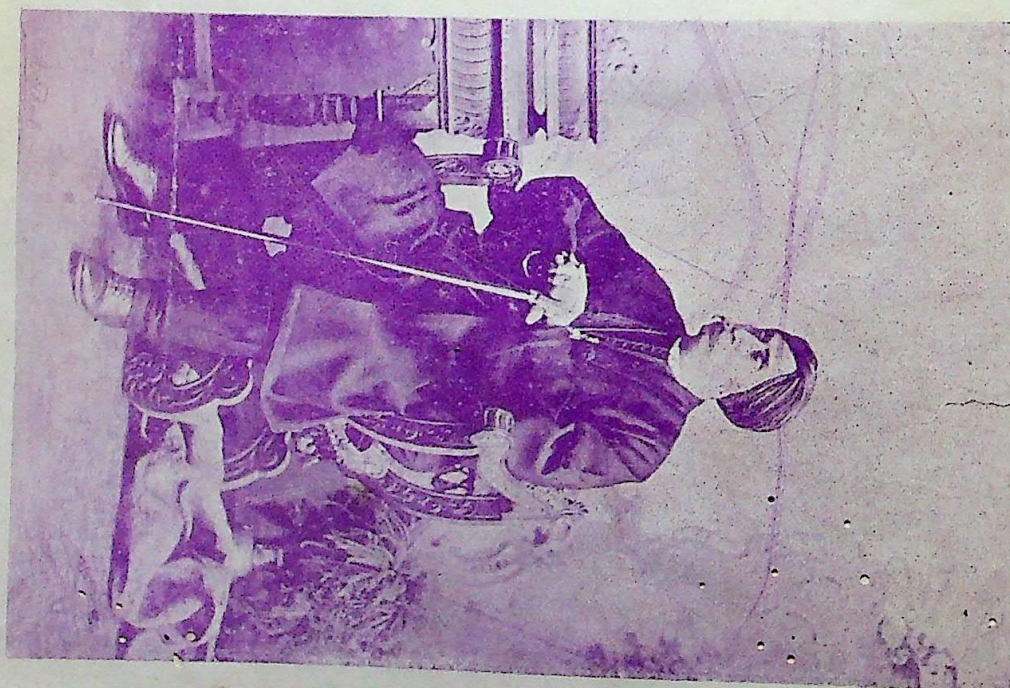
स्वर्गवासी लाला व्रजमोहन लाल जी।

पण्डित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ।
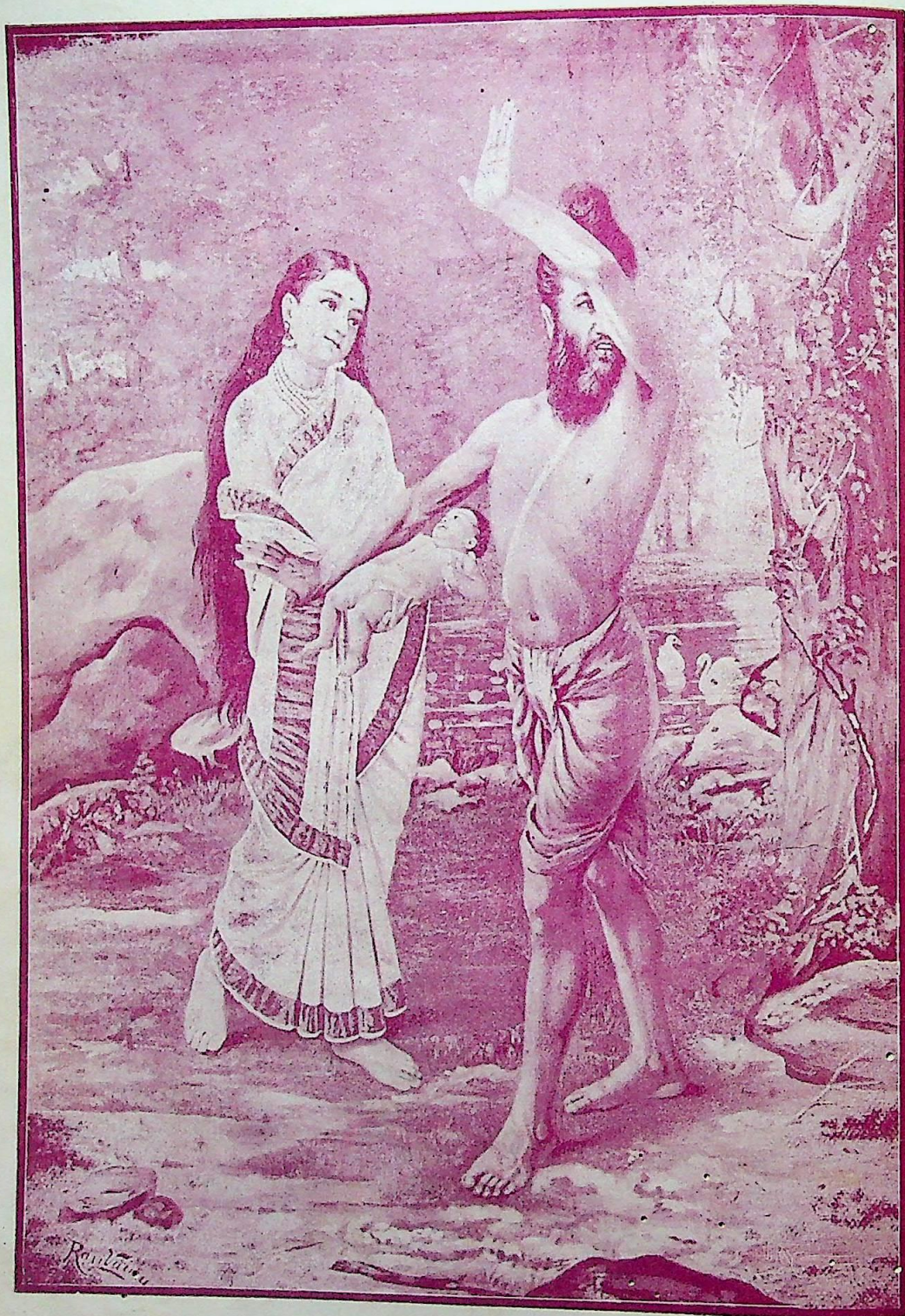
राजा-रविवर्म्मा कृत शकुन्तला-जन्म ।

राजा रविवर्म्मा कृत कृष्णविरहिणी राधिका

राजा रविवर्म्मा कृत पञ्चवटी में सीताजी और स्वर्णमृग
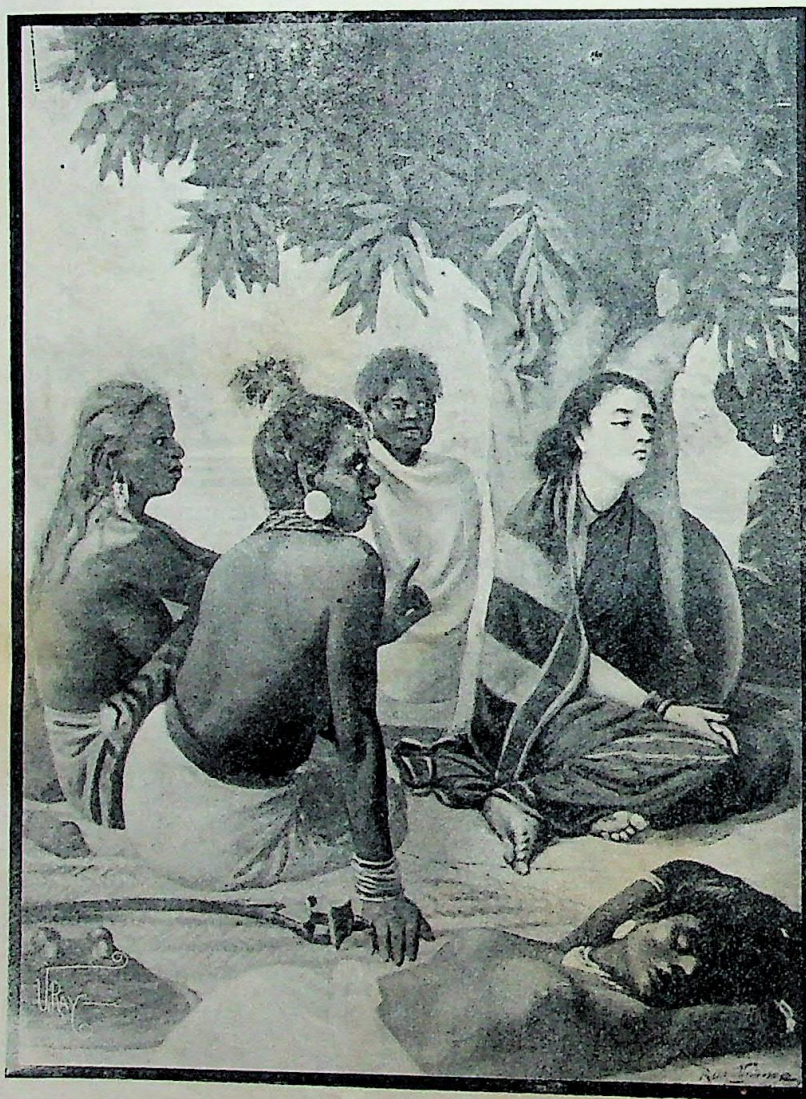
अशोकवन में राक्षसियों से रक्षित सीता जी।

दमयन्ती श्रौर हंस।

विराट राजसभा में द्रौपदी ।

रविवर्म्माकृत सीता जी की परीक्षा।

हे राम ! दृष्टि यह मोरि तुम्हैं बिहाई। जो और ओर नहिँ स्वप्नहुँ में सिधाई ॥

राजा रुक्माङ्गद और मोहिनी ।

रैफेलकृत सिष्टिन म्याडोना ।

मोहिनी।

राजा रविवर्म्मा कृत।
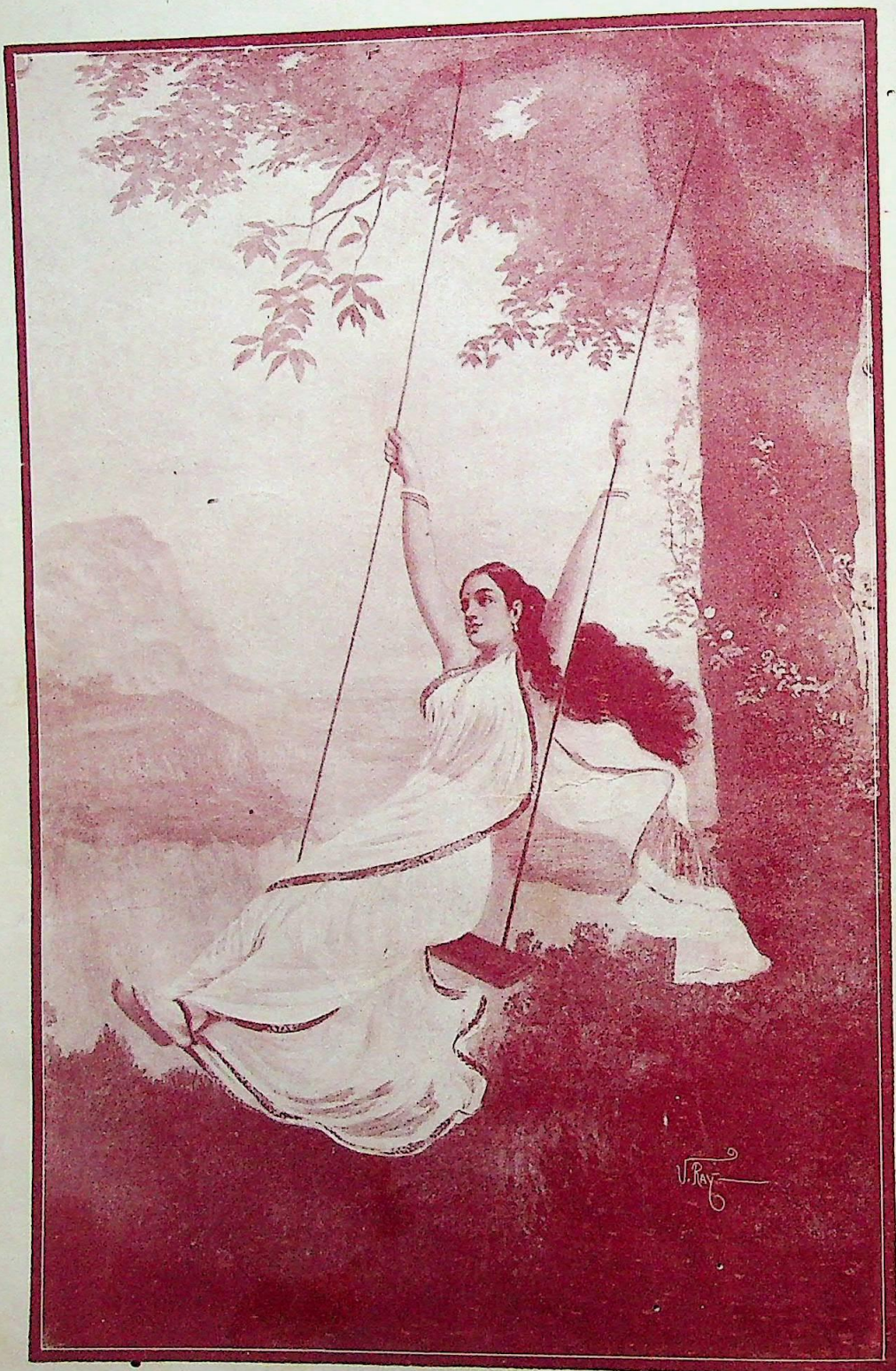
राजा रविवर्म्मा कृत गङ्गावतरण
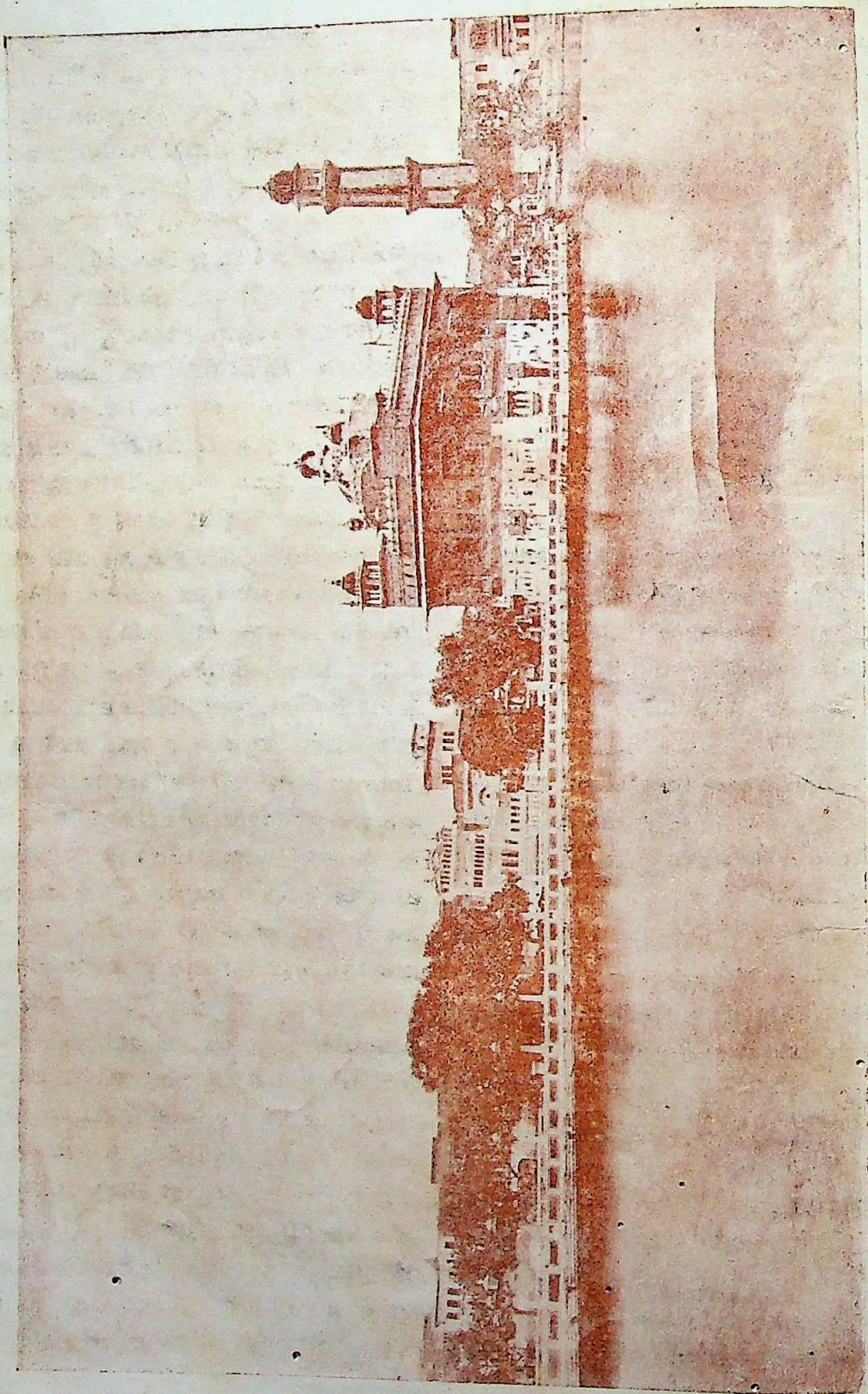
मन्दिर दरबार साहब—अमृतसर ।

मन्दिर दरबार साहब—अमृतसर।

साहित्य-समाचार।
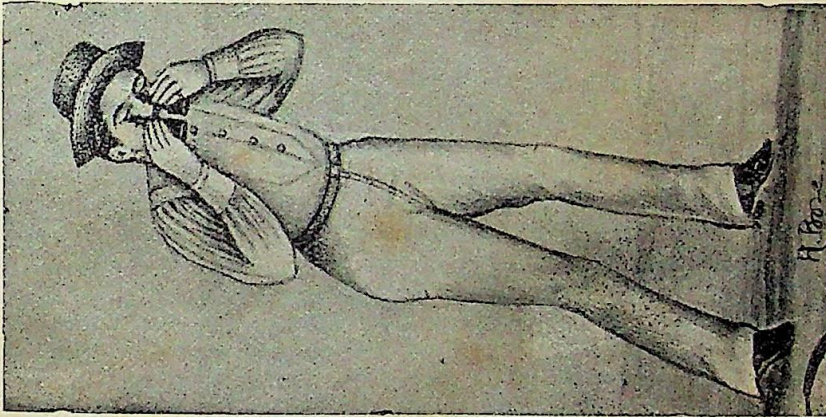
मराठी-साहित्य।

देखते ही देखते किसी ने पगड़ी उड़ादी ! विलक्षण जादू !! विलक्षण इन्द्रजाल !!!

अंगरेज़ी-साहित्य।

ओह, कोट न दारद ! पहने ही पहने !! ग़ज़ब !!!

बँगला-साहित्य।
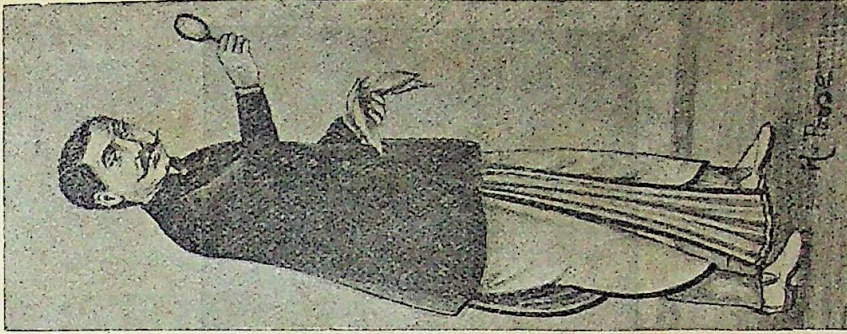
अरे यह क्या ! डुपट्टा गायब ! घड़ी भी गायब !!! और रूमाल भी !!! आश्चर्य्य ! आश्चर्य्य !! आश्चर्य्य !!! अद्भुत व्यापार !! अद्भुत माया !!!

हिन्दी—साहित्य ।

लोगों को अब समझ पडैगा कि मैं भी कोई चोज हूं! मुझे देख देख कर उन्हें हैरत होगी कि किस झपाटे से मैंने अपनी उन्नति कर डाली! कैसा हाथ मारा है! भई वाह!! पेरिस के महाविद्यालय मे मैंने इस विज्ञान की शिक्षा पाई है!!!

मजाल है किसीको जरा भी इसकी खबर लग जाय। और अगर लगै भी तो क्या? "टाइम्स" और "ग्लोब" की रक्षक, क्षमा की गोद मेरे लिये जिबराल्टर के किले का काम देहोगा!

—ले० महावीरप्रसाद द्विवेदी।

प्राचीन कविता।

साहित्य समाचार

प्राचीन कविता का अर्वाचीन अवतार।

[पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी द्वारा कल्पित]

साहित्य समाचार ।

"खड़ी बोली का पद्य"

१—मुन्शी स्टाइल ।

२—मौलवी स्टाइल ।

५—युरोपियन स्टाइल ।

४—युरेशियन स्टाइल ।
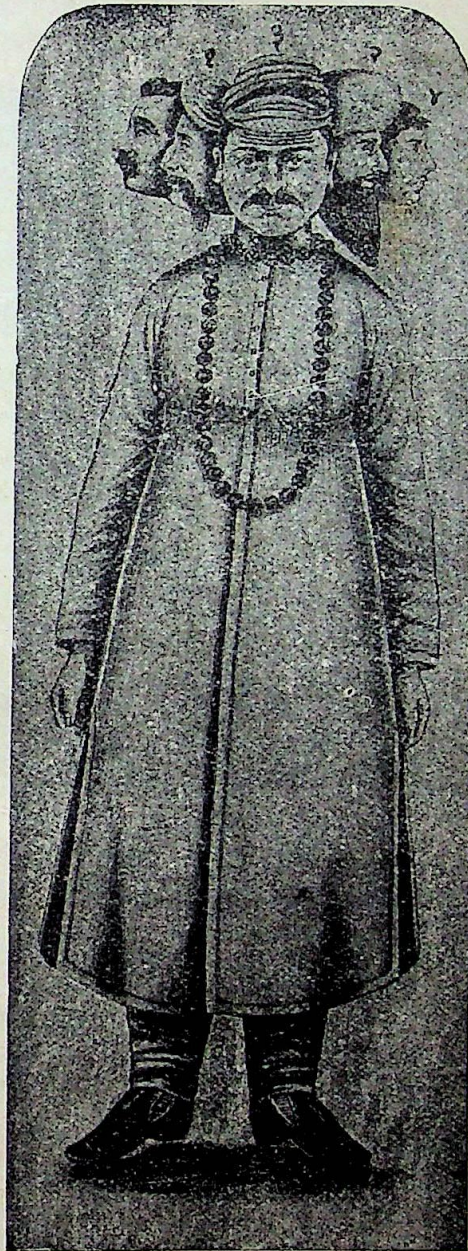
३—पण्डित स्टाइल ।

दो पैरों पर एक धड़, फिर सिर पाँच अनूप ।
मुझ पचरंगे पद्य का देखो सुघर स्वरूप ॥

[पं० महाबीरप्रसाद द्विवेदी कृत ।

हिन्दी-उर्दू ।

उर्दू—अरी क्योंरी चुड़ैल ! तू मर कर भी नहीं मरती ?

हिन्दी—बेटी ! तू जुग जुग जी, मुझे क्यों मारे डालै है ? मैंने तेरा क्या बिगाड़ा है ?

उर्दू—तेरे आछते मुझे राजगद्दी जो नहीं मिलती ।

हिन्दी—ठीक है बेटी ! कलजुग न है । तुझे इसी दिन के लिये बड़े साध से जन्माया था ! अच्छा तेरे जी में आवै सो कह; पर मेरी तो माता की आत्मा ठहरी; मैं तो आसीस ही दूंगी ।

श्रीराधाकृष्ण दास ।

भाग ३] जनवरी १९०२ ई० [संख्या १

विविध वार्ता

आज इस जनवरी मास की संख्या के साथ सरस्वती के जीवनकाल का तीसरा वर्ष प्रारम्भ होता है। हमारा विचार है कि गतवर्ष में जो जो त्रुटियां इसकी अब तक रह गई हैं वे जहांतक सम्भव हो दूर कर दी जांय और इसके लेख आदि और भी रोचक हो जांय। परन्तु इन सब बातों का होना हमारे प्रेमी पाठकों की कृपा पर निर्भर है। हिन्दी के प्रेमियों से हमारी सविनय प्रार्थना है कि यदि वे यह चाहते हों कि यह पत्रिका निरन्तर चल कर हिन्दी में एक अच्छी मासिक पत्रिका के अभाव की पूर्ति करे और यथासाध्य मातृभाषा के भण्डार को भर कर पाठकों का मनोरञ्जन करे, तो उन्हें उचित है कि इसकी सहायता करने में वे कोई बात उठा न रक्खें। हमें दृढ़ विश्वास है कि हिन्दी के प्रेमीगण हमारी प्रार्थना पर ध्यान देंगे।

हिन्दी के लेखकों से भी हमारी प्रार्थना है कि नए नए सुन्दर लेखों से वे इस पत्रिका की अंगपुष्टि सदा करते रहें। हमारी पत्रिका का रोचक और अलंकृत होना इन्हीं महानुभावों पर निर्भर है। यदि वे नए नए विषयों पर लेख लिखेंगे तो भाषा का उपकार, पाठकों का लाभ और पत्रिका का गौरव होगा। इसीलिये हम इन महाशयों से ऐसी प्रार्थना करते हैं।

* * *

सन् १९०१ ई० की जातीय महासभा के साथ

इस वर्ष एक शिल्पप्रदर्शनी भी कलकत्ते में हुई थी। इस प्रदर्शनी के जन्मदाता लाहोर के बैरिष्टर लाला हरकिशुनलाल हैं। उन्हींके उद्योग ग्रैार उत्साह से लाहोर की कांग्रेस में इस बात की चर्चा उठी थी ग्रैार इस वर्ष शिल्प सम्बन्धी प्रस्तावों के ग्रनुसार कार्य भी हुग्रा। प्रदर्शनी कलकत्ते के बिडन स्कायर में हुई थी। पिछली ग्रोर ते कांग्रेस का पँडाल था, ग्रैार ग्रगली ग्रोर दो वृत्त बड़े बड़े बने थे जिनमें दोनों पट्टियों पर दुकाने लगी थीं। प्रदर्शनी में जिन वस्तुग्रों की दुकानें थीं वे सब भारतवर्ष की बनी हुई थीं। समस्त प्रदर्शनी को देखकर मनुष्य ग्राश्चर्यित हो जाता था। वास्तव में नित्यप्रति की काम की कोई ऐसी वस्तु न थी जो वहां न देख पड़ती हो। रात्रि के समय जब बिजली की रोशनी हो जाती थी तो प्रदर्शनी की शोभा देखते ही बन ग्राती थी। हमको यह जानकर विशेष ग्रानन्द हुग्रा कि इस प्रदर्शनी की जो रिपोर्ट छापी जायगी उसमें यह भी दिया जायगा कि कौन कौन वस्तुएं कहां मिल सकती हैं। निस्सन्देह इस विवरण के छपजाने से बड़ा लाभ होगा ग्रैार देशहितैषी लोगों को देशी शिल्पकारी का वृत्तान्त जानने ग्रैार ग्रावश्यकतानुसार वस्तुग्रों के मंगवाने में बड़ा सुबीता हो जायगा। यदि ऐसी प्रदर्शनी प्रतिवर्ष कांग्रेस के साथ होती रही तो हमें ग्राशा है कि ग्रागे चलकर इससे बड़ा लाभ होगा। इस वर्ष की कांग्रेस में यह प्रार्थना की गई थी कि डेलीगेट लोग देशी कपड़े पहनकर कांग्रेस के ग्रधिवेशनों में ग्रावें। परन्तु पञ्जाब के कुछ लोगों को छोड़कर ग्रैार किसी ने भी इस प्रार्थना पर ध्यान नहीं दिया। इसका मुख्य कारण यही था कि लोगों का यह विश्वास था कि भारतवर्ष का बना हुग्रा ग्रच्छा बढ़िया कपड़ा नहीं मिल सकता। पर जिन लोगों ने प्रदर्शनी देखी होगी उनकी ग्राँखें ग्रवश्य खुलगई होंगी ग्रैार उन्हें यह ज्ञात हो गया होगा कि सब प्रकार का देशी कपड़ा बढ़िया से बढ़िया ग्रैार ग्रच्छे से ग्रच्छा मिल सकता है। यदि भविष्यत कांग्रेसों में यह दृढ़ नियम कर दिया जाय कि सब डेलीगेट देशी ही कपड़े पहिन कर ग्रावें तो हमें ग्राशा है कि देश का बहुत कुछ उपकार हो सकैगा।

* *
*

भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास का पता विशेष कर शिला लेखों, दानपत्रों, प्राचीन पुस्तकों ग्रैार यात्रियों के वर्णनों से लगता है। परन्तु यात्री ग्रपने भावों ग्रैार विचारों को छोड़कर किसी बात को नहीं कह सकते। वे किसी बात की प्रशंसा ग्रथवा निन्दा ग्रपने विचारों के ग्रनुसार करते हैं ग्रैार जो बातें उन्हें रुचिकर नहीं होतीं उनका वर्णन छोड़ देते हैं। इस ग्रवस्था में यात्रियों के वर्णनों से सच्चे इतिहास का मिलना बड़ा कठिन है। युरोपीय विद्वानों का मत है कि ग्रार्य लोगों के भारतवर्ष में ग्राने ग्रैार उनकी क्रमिक उन्नति का पूरा पूरा पता वेद ग्रथवा ग्रन्य धार्मिक ग्रन्थों से नहीं लग सकता। चीनी, ग्रर्बी ग्रैार युनानी यात्रियों ने भी जो कुछ भारतवर्ष के विषय में लिखा है वह बहुत थोड़ा ग्रैार ग्रपूर्ण है। ईसवी से ४५[illegible] वर्ष पहिले हिरोडोटस ने पहिले पहल भारतवर्ष का वर्णन किया। उसके पीछे स्ट्रेबो ग्रैार प्लीनी ग्रादि ने लिखा। इनके पीछे चीन के प्रसिद्ध यात्री हुवेनशांग ग्रैार फ़ाहान भारतवर्ष में ग्राए ग्रैार बौद्धकाल तथा प्राचीन नगरों का ग्रच्छा वर्णन छोड़ गए हैं। इनके पीछे ग्ररब के लोगों ने भारतवर्ष के सीमाप्रदेशों का कुछ वर्णन ग्रपने ग्रन्थों में लिखा है। ग्रङ्गरेज़ी काल में सर जेम्स प्रिंसप ने पहिले पहल पुरातत्व की ग्रोर विद्वानों का ध्यान दिलाया ग्रैार उसके ग्रनुसन्धान की ग्रोर लोगों [illegible] ध्यान लगाया। तबसे ग्रनेक ग्रंग्रेज़ों ने इस क्षेत्र [illegible] सफलता पूर्वक कार्य करके यश प्राप्त किया है परन्तु जितना होना चाहिए उसका ग्रंशमात्र [illegible] ग्रभी नहीं हुग्रा है। इसलिये लण्डन की राय[illegible] एशियाटिक सोसाइटी ने यह विचारा है कि [illegible]

उत्तर भारतवर्ष में प्राचीन नगरों और स्थानों का पूरा पूरा अनुसन्धान किया जाय तो इस देश का एक अच्छा और साथही सच्चा इतिहास बन सकता है। परन्तु यह कार्य केवल गवर्नमेण्ट के ऊपर छोड़ देना उचित नहीं है, क्योंकि वह जितना चाहिए उतना कर नहीं सकती है। इसलिये इङ्गलैण्ड में एक कमेटी बनाई जायगी जो इस कार्य को करेगी और जिसमें सब देश के लोग सम्मिलित होंगे। इस बड़ी कमेटी के आधीन भिन्न भिन्न देशों में अलग अलग कमेटियां होंगी जो निज निज सामर्थ्य के अनुसार पुरातत्व का कार्य करेंगी। हमको इस कमेटी के कार्यों में विशेष सफलता की आशा है। यह अवसर है जब भारतवर्ष के विद्वान अपने देश को बहुत लाभ पहुंचा सकते हैं। यदि हमारे यहां के संस्कृतज्ञ पण्डित लोग अङ्गरेज़ी पढ़े होते और इन पुरातत्वसम्बन्धी विषयों में अनुराग रखते तो न जाने इन प्रशंसनीय कार्यों में कितनी सहायता कर वे देश का भला कर सकते।

***

कलकत्ते के लोगों को मेटकाफ हाल लाइब्रेरी का वृतान्त अवश्य ज्ञात होगा। नाम को तो यह पबलिक लाइब्रेरी है, पर वहां जाकर पुस्तक देखने के लिये भी चार्ज देना पड़ता है। अब इस पुस्तकालय और भवन आदि को भारत गवर्नमेण्ट ने २० हज़ार रुपया नगद और ६ हज़ार वार्षिक पर मोल ले लियाहै। गवर्नमेण्ट का बिचार है कि जितनी पुस्तकें गवर्नमेण्ट के पुस्तकालय में हैं वे सब भी इसमें सम्मिलित कर दी जांय और यह पुस्तकालय इम्पीरियल लाइब्रेरी के नाम से स्थापित किया जाय, तथा इसका ऐसा प्रबन्ध हो कि जिसमें सर्व साधारण जाकर वहां पुस्तकों का अध्ययन कर सकें। हम लार्ड कर्ज़न को इस उपकार के लिये धन्यवाद देते हैं। अबतक गवर्नमेण्ट के पुस्तकालय की पुस्तकों के देखने का सौभाग्य केवल चुने हुए सर्कारी नौकरों को प्राप्त था, परन्तु इस नवीन प्रबन्ध से आशा है कि जो लोग चाहेंगे लाभ उठा सकेंगे

***

काश्मीराधिपति स्वर्गवासी महाराज रणवीर सिंह ने अपने जीवनकाल में काशी में एक संस्कृत पाठशाला स्थापित की थी और उसके लिये ३२०० वार्षिक का व्यय स्वीकार किया था। समय पाकर उस पाठशाला की अवस्था मन्द होगई और उसका प्रबन्ध बिगड़ गया। अब महाराज प्रतापसिंह ने उसका प्रबन्ध हिन्दु कालिज कमेटी को सौंप दिया है, जिससे हमको आशा है कि वह विद्यालय अच्छे ढंग पर चल निकले और संस्कृत विद्या का विशेष प्रचार कर सके। ऐसा सुनने में आया है कि कालिज कमेटी ने सब पण्डितों को सूचना दे दी है कि पहिले मार्च से वे अपने को निज निज पद से च्युत समझें और जिन्हें आगे काम करने की इच्छा हो, वे अपने आवेदन पत्र कमेटी के पास भेजें, उनपर वह विचार करेगी। हम इस बात को स्वीकार करते हैं कि उस पाठशाला के अध्यापकों में कई ऐसे थे जो उपयुक्त रीति पर काम नहीं कर सकते हैं; परन्तु इस प्रकार से कमेटी को काम करना उचित न था। इससे विशेष असन्तोष फैलने की सम्भावना है। यह भी सुनने में आया है कि कमेटी ने किसी बंगाली महाशय को, जो पहिले किसी कालिज में प्रोफ़ेसर थे, इस विद्यालय का प्रिन्सिपल नियत किया है। हम इन महाशय को नहीं जानते, अतएव हम इनकी विद्या आदि के विषय में कुछ नहीं कह सकते। परन्तु आश्चर्य हमको इस बात पर होता है कि काशी में जहां संस्कृत भाषा का पठन पाठन सब स्थानों से विशेष हो रहा है और जो समस्त संसार में संस्कृत विद्या के लिये प्रसिद्ध हो रही है, कमेटी को कोई ऐसा विद्वान न मिला जो रणवीर पाठशाला का प्रिन्सिपल हो सके। बंगालियों का उच्चारण सब लोगों पर प्रगट है—स और श, ण और न आदि का इनमें भेद ही नहीं माना जाता। हमको स्मरण है कि हिन्दू कालिज में संस्कृत

के अध्यापक को नियत करते समय बंगाली इसी लिये नहीं चुने गए थे कि उनका उच्चारण ठीक नहीं होता और वह पद महाराष्ट्र देशीय एक पण्डित को दिया गया था। हमारी समझ में नहीं आता कि कमेटी ने इस बेर इन बातों का विचार क्यों नहीं कर लिया और अपने स्थिर-सिद्धान्त का अनुकरण क्यों छोड़ दिया। यदि सब बातें निश्चित न हो गई हों तो हमें आशा है कि कमेटी इन बातों पर विचार करलेगी।

* * *

गत १९ अकतूबर को मि. स्यानरोस डूमों अपने बेलून पर चढ़कर ३० मिनिट में ५ मील का चक्कर लगा आए। उस समय हवा प्रति घण्टे बारह मील के हिसाब से चलती थी। परन्तु मि. डूमों ने बेलून को इस प्रकार अपने अधीन कर रक्खा था, कि जिधर चाहते थे उसे ले जाते थे। इससे अब आशा है कि इस विद्या में शीघ्र विशेष उन्नति हो जायगी और लोग बेलून की यात्रा विशेष कर किया करेंगे। इस कार्य को सफलता पूर्वक करने के लिये मि. डूश ने मि. डूमो को १५००० रु० पुरस्कार दिया जिसको उन्होंने उसी समय पुलिस के अध्यक्ष को इसलिये दे दिया कि वह गरीब दुखियों में उसे बांट दें। धन्य उत्साह और धन्य उदारता!

भवभूति

प्राचीन कवियों, पण्डितों और नाटककारों के विषय में 'हिन्दी प्रदीप' को छोड़ कर हिन्दी के अनुरागी प्रायः कभी कुछ लिखते ही नहीं। हिन्दी का साहित्य इस प्रकार के निबन्धों से शून्य सा हो रहा है। यदि कभी कोई कुछ लिखने का साहस भी करता है तो उसपर लोग बेहतरह बिगड़ उठते हैं और कहने लगते हैं कि इनकी समीक्षा उचित नहीं है। जैसे और और बातों में बँगला और मराठी भाषा का साहित्य हिन्दी के साहित्य से बढ़ा हुआ है, वैसे ही वह इस विषय में भी है। बाबू सतीशचन्द्र विद्याभूषण, पण्डित विष्णुकृष्ण शास्त्री चिपलूणकर और पण्डित माधवराव वेंकटेश लेले इत्यादि विद्वानों ने, अपनी अपनी देशभाषा में भवभूति के विषय में, बहुत कुछ लिखा है। प्रोफ़ेसर विलसन, सर मानियर विलियम्स, कोलब्रुक, भाण्डारकर और दत्त इत्यादि ने भी भवभूति और उसके नाटकों की प्रशंसा करने में अपनी लेखनी का सदुपयोग किया है। परन्तु, हिन्दी में, जहां तक हम जानते हैं, भवभूति के विषय में किसीने कुछ नहीं लिखा। हां, पण्डित गङ्गाप्रसाद अग्निहोत्री ने विष्णु शास्त्री के भवभूति विषयक मराठी निबन्ध का हिन्दी में अनुवाद अवश्य किया है।

२—विष्णु शास्त्री ने कालिदास, भवभूति, बाण सुबन्धु और दण्डी इन पांच प्राचीन कवियों पर मराठी में पांच निबन्ध लिखकर उन पांचों के समाहार का नाम 'संस्कृत कविपञ्चक' रक्खा है। शास्त्री महाशय ने भवभूति को छोड़ शेष चार कवियों के समय का निरूपण भी यथाशक्य किया है और जिसके विषय में जहां तक सम्भव था गवेषणा भी की है। परन्तु भवभूति के समय के विषय में उन्होंने बहुत ही स्वल्प कहा है। उनके कथन का अनुवाद यह है। वे कहते हैं, "केवल मृच्छकटिक, प्रबोधचन्द्रोदय, नागानन्द इत्यादि नाटकों में और दशकुमारचरित इत्यादि ग्रन्थों में उस समय के जनसमूह की स्थिति का कुछ परिचय मिलता है। इसलिये भवभूति को कालिदास का समसामयिक मानने की अपेक्षा जिस समय ये ग्रन्थ निर्म्मित हुए हैं उस समय के आस पास उसका अस्तित्व स्वीकार करना विशेष युक्तिसङ्गत है"।

विष्णु शास्त्री ने जिनका नाम दिया है वे प्रायः सातवीं शताब्दी के ग्रन्थ हैं। जैसे इन ग्रन्थों में दीर्घ-समासों की प्रचुरता है वैसे ही भवभूति के नाटकों में भी है। जैसे इनमें बौद्ध

धर्म्मावलम्बियों के चरित्र का कहीं कहीं चित्र खींचा गया है, वैसे ही भवभूति के मालतीमाधव में भी खींचा गया है। इसीलिये विष्णु शास्त्री ने शूद्रक, कृष्ण मिश्र, बाल और दण्डी के समय के सन्निकट भवभूति का होना अनुमान किया है। इतना ही लिख कर वे चुप हो गए हैं, भवभूति के समय का विशेष निरूपण उन्होंने नहीं किया।

३—राजतरङ्गिणी के चतुर्थ तरङ्ग में लिखा है—

कविवाक्पतिराजश्रीभवभूत्यादिसेवितः।
जितो ययौ यशोवर्म्मा तद्गुणस्तुतिवन्दिताम्॥

श्लोक १४५

अर्थात्, वाक्पतिराज और भवभूति आदि कवियों से सेवा किए गए यशोवर्म्मा ने (ललितादित्य से) पराजित होकर उस विजयी का गुण गाया। यशोवर्म्मा नाम का राजा सन् ६९३ से ७२९ तक कन्नौज के राज्यासन पर आसीन था। इस यशोवर्म्मा को काश्मीर के राजा ललितादित्य ने परास्त किया और भवभूति को अपने साथ वह काश्मीर ले गया। इससे यह सिद्ध है कि भवभूति अष्टम शताब्दी के आरम्भ में कान्यकुब्जाधिप यशोवर्म्मा की सभा में उसका आश्रित हो कर विद्यमान था। अतएव "यह कहना समुचित नहीं जान पड़ता कि भवभूति को राजाश्रय था; यदि उसे राजाश्रय होता तो उसके तीनों नाटकों का प्रयोग कालप्रियनाथ की यात्रा ही के समय क्यों होता"? विष्णु शास्त्री की यह उक्ति बिलकुल निराधार है। भवभूति को राजाश्रय अवश्य था। कालप्रियनाथ की यात्रा ही के समय उसके नाटकों का क्यों प्रयोग हुआ, इसका कोई कारण होगा। भवभूति ने यशोवर्म्मा की सभा में स्थान पाने के पहिले ही शायद अपने नाटक लिखे हों; अथवा यशोवर्म्मा के पराजय के अनन्तर काश्मीर जा कर और वहां से राजाश्रयहीन होकर स्वदेश को लौटने पर शायद उसने उन्हें बनाया हो; अथवा राजधानी की अपेक्षा यात्राओं में अधिक जनसमूह एकत्र होने के कारण उसी अवसर पर शायद उसने अपने नाटकों का प्रयोग किया जाना प्रशस्त माना हो।

४—(क) कुछ वर्ष हुए डाक्टर बूलर को एक 'गौडवहो' (गौडवध) नामक प्राकृत काव्य मिला इस काव्य को मिस्टर पाण्डुरङ्ग ने बम्बई में छपा कर प्रकाशित किया है। इसके कर्ता वही वाक्पतिराज हैं जो यशोवर्म्मा की सभा में विद्यमान थे। इन्होंने 'गौडवध' में यशोवर्म्मा का विस्तृत वृत्तान्त लिखा है और तद्द्वारा गौड़देश के राजा का पराजय वर्णन किया है। इस काव्य में वाक्पतिराज ने अपनी कविता के सम्बन्ध में यों लिखा है—

प्राकृत

भवभूइजलहिनिग्गयकव्वामयरसकणा इव स्फुरन्ति।
जस्स विसेसा अज्जवि बियडेसु कहापबन्धेसु॥

संस्कृत

भवभूतिजलधिनिर्गतकाव्यामृतरसकणा इव स्फुरन्ति।
यस्य विशेषा अद्यापि विकटेषु कथाप्रबन्धेषु॥

अर्थात् 'भवभूतिरूपी जलनिधि से निकले हुए काव्यरूपी अमृत के कणों के समान जिसके निबन्धों में अनेक विशेष विशेष गुण अद्यापि चमक रहे हैं'। इससे भी वाक्पतिराज के साथ भवभूति का यशोवर्म्मा के यहां अष्टम शताब्दी के प्रारम्भ में होना सूचित होता है।

(ख)—कई वर्ष हुए हमारे मित्र पण्डित माधवराव वेंकटेश लेले को मुम्बई में एक प्राचीन हस्तलिखित मालतीमाधव की पुस्तक मिली। इसमें 'भट्टकुमारिलशिष्यभट्टभवभूति' यों लिखा है। "गौड़बध" की भूमिका में भी लिखा है कि इन्दौर में मालतीमाधव की एक पुस्तक मिली है जिसमें भी 'इति कुमारिलशिष्यकृते' लिखा है। कुमारिल भट्ट सप्तमशताब्दी के अन्त में हुए हैं; अतएव भवभूति का अष्टम शताब्दी के आदि में होना सब प्रकार सुसङ्गत है।

(ग)—शङ्कर दिग्विजय में लिखा है, विद्धशालभञ्जिका और बालरामायण आदि के कर्ता राज-

शेखर के यहां शङ्कराचार्य्य गए थे और उनके बनाए नाटक आचार्य्य ने देखे थे। इससे राजशेखर और शङ्कर की समकालीनता प्रकट होती है। राजशेखर अपने बालरामायण में लिखते हैं—

> बभूव वल्मीकभुवः कविः पुरा
> ततः प्रपेदे भुवि भर्तमेदुताम्।
> स्थितः पुनर्यो भवभूतिरेखया
> स वर्तते सम्प्रति राजशेखरः॥

अर्थात्–पहिले वाल्मीकि कवि हुए; फिर भर्त्तृहरि ने जन्म लिया; तदनन्तर जो भवभूति नाम से प्रसिद्ध था वह अब राजशेखर के रूप में वर्तमान है। शङ्कराचार्य अष्टम शताब्दी के अन्त में हुए हैं; अतएव राजशेखर का अस्तित्व भी उसी समय में सिद्ध है। जब यह सिद्ध है तब ऊपर दिए गए श्लोक के अनुसार भवभूति का राजशेखर से कुछ ही काल पहिले अर्थात् अष्टम शताब्दी के आरम्भ में होना भी सिद्ध है।

(घ)–सप्तम शताब्दी के मध्य में होनेवाले बाण कवि ने अपने हर्षचरित में जिन कवियोंके नाम दिए हैं, उनमें भवभूति का नाम न दिया जाना भी बाण के अनन्तर भवभूति का होना सिद्ध करता है।

५–भवभूति ने महावीरचरित, मालतीमाधव और उत्तररामचरित—ये*तीन नाटक लिखे हैं। इनमें से अन्तिम में अल्प और पहिले के दोनों नाटकों में किञ्चित् विशेष रूप से उसने अपने जन्मस्थान आदि का वृत्तान्त लिखा है। महावीरचरित में अपने विषय में जो कुछ भवभूति ने लिखा है वह यह है—

"अस्ति दक्षिणापथे पद्मपुरं नाम नगरम्। तत्र केचित्तैत्तिरीयिणः काश्यपाश्चरणगुरवः पंक्तिपावनाः पञ्चाग्नयो धृतव्रताः सोमपीथिन उडुम्बरा ब्रह्मवादिनः प्रतिवसन्ति। तदामुष्यायणस्य तत्रभवतो वाजपेययाजिनो महाकवेः पञ्चमः सुगृहीतनाम्नो भट्टगोपालस्य पौत्रः पवित्रकीर्तेर्नीलकण्ठस्यात्मसम्भवः श्रीकण्ठपदलाञ्छनो भवभूतिर्नाम जातूकर्णी पुत्रः।

> श्रेष्ठः परमहंसानां महर्षीणामिवाङ्गिराः।
> यथार्थनामा भगवान् यस्य ज्ञाननिधिर्गुरुः॥"

अर्थात्—दक्षिण में पद्मपुर नाम नगर है, जहां यजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा का अध्ययन करनेवाले, व्रतधारी, सोमयज्ञकारी, पंक्तिपावन, पञ्चाग्निक, ब्रह्मवादी, काश्यप गोत्रीय उडुम्बर ब्राह्मण रहते हैं। उनके यहां वाजपेय-यज्ञ करनेवाले पुण्यशील भट्टगोपाल नामक महाकवि का प्रादुर्भाव हुआ। भट्टगोपाल के पौत्र, और पवित्रकीर्ति पिता नीलकण्ठ तथा माता जातूकर्णी के पुत्र, श्रीकण्ठ उपाधिभूषित भवभूति का वहीं जन्म हुआ। परमहंसों में श्रेष्ठ और महर्षियों में अङ्गिरा के समान जिस (भवभूति) के भगवान् ज्ञाननिधि* नामा गुरु यथार्थ में ज्ञाननिधि ही हैं।

इसीका सारांश विष्णु शास्त्री ने, अपने भवभूति नामक निबन्ध में, इस प्रकार लिखा है—

"दक्षिण देश के अन्तर्गत पद्मपुर नगर में उडुम्बर नामक तपोनिष्ठ ब्राह्मण रहते हैं। उन्हींके वंश में गोपालभट्ट का जन्म हुआ। गोपालभट्ट के नीलकण्ठ नामक पुत्र हुआ और नीलकण्ठ के भवभूति नामक। भवभूति की माता का नाम जातूकर्णी। पीछे से यह कवि भट्ट श्रीकण्ठ नाम से भी पुकारा जाने लगा।"

परन्तु इस विषय में उन्होंने और अधिक चर्चा नहीं की; इतनाही कह कर वे चुप हो गए हैं।

६—महावीरचरित से जो पंक्तियां हमने उद्धृत

---

* डाक्टर भाण्डारकर लिखते हैं कि शार्ङ्गधर पद्धति में—

> निरवद्यानि पद्यानि यदि नाट्यस्य का क्षतिः।
> भिक्षुकक्षविनिक्षिप्तः किमिक्षुर्नीरसो भवेत्॥

यह श्लोक भवभूति के नाम से अभिहित है, जिससे सूचित होता है कि इस कवि ने इन तीन नाटकों के अतिरिक्त और भी कोई ग्रन्थ लिखा है, क्योंकि यह श्लोक इन तीनों पुस्तकों में नहीं पाया जाता।

* कुमारिल भट्ट ही का दूसरा नाम ज्ञाननिधि तो नहीं?

की हैं वही पंक्तियां कुछ परिवर्तित रूप में, मालतीमाधव में भी हैं। वहां उनका आरम्भ इस प्रकार हुआ है–"अस्ति दक्षिणापथे विदर्भेषु पद्मनगरं नाम नगरम्"–जिससे यह सिद्ध होता है कि दक्षिणापथ के विदर्भ देश में पद्मपुर अथवा पद्मनगर था। विदर्भ का आधुनिक नाम बरार है; परन्तु बरार-प्रान्त में पद्मपुर का कहीं पता नहीं है। यह नगर इस समय अस्तित्वहीन हो गया जान पड़ता है। मालतीमाधव के टीकाकार जगद्धर ने पद्मपुर और पद्मावती में अभेद बतलाया है, यह ठीक नहीं। पद्मावती, मालतीमाधव में वर्णन किए गए मालती और माधव के विवाहादि का घटनास्थल है। डाक्टर भाण्डारकार का मत है कि भवभूति का जन्मस्थान बरार में कहीं चाँदा के पास रहा होगा। वहां कृष्णयजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा वाले अनेक महाराष्ट्र ब्राह्मण अब तक रहते हैं। उनकी देशस्थ संज्ञा है और उनका आपस्तम्ब सूत्र है। चाँदा के दक्षिण और दक्षिण-पूर्व उसी वेद और उसी सूत्रवाले अनेक तैलङ्ग ब्राह्मण भी रहते हैं। भवभूति ने अपने नाटकों में गोदावरी का जो वर्णन किया है, उससे भासित होता है कि वह उस नदी से विशेष परिचित था। पद्मपुर शायद गोदावरी के तटपर ही अथवा कहीं उसके पासही रहा होगा।

७—मालतीमाधव की घटनाएं पद्मावती नगरी में हुई हैं। कवि ने इस नगरी के चिन्हों का कुछ कुछ पता दिया है। चतुर्थ अङ्क के अन्त में माधव से उसका सखा मकरन्द कहता है—"तदुत्तिष्ठ पारासिन्धुसम्भेदमवगाह्य नगरीमेव प्रविशावः" जिससे विदित होता है कि पारा और सिन्धु नाम की दो नदियों के सङ्गम पर पद्मावती नगरी बसी थी। इस बात को कवि ने नवम अङ्क के आरम्भ में पुनर्वार पुष्ट किया है। वहां लिखा है—

'पद्मावतीविमलवारिविशालसिन्धु-
पारासरित्परिकरच्छलतो बिंभर्ति।
उत्तुङ्गसौधसुरमन्दिरगोपुराट्ट—
संघट्टपाटितविमुक्तमिवान्तरीक्षम् ॥

सैषा विभाति लवणा ललितोर्म्मिपंक्ति—
रभ्रागमे जनपदप्रमदाय यस्याः।
गोगर्भिणीप्रियनवोलपमालभारि—
सेव्योपकण्ठविपिनावलयो विभान्ति ॥

यहां एक लवणा नदी का भी नाम आया है जिससे सूचित होता है कि पद्मावती के पासही लवणा भी बहती थी। इसी अङ्क में कुछ दूर आगे है—

अयश्चमधुमतीसिन्धुसम्भेदपावनोभगवान् भवानीपतिरपौरुषेयप्रतिष्ठः सुवर्णबिन्दुरित्याख्यायते।

इससे यह भी जाना जाता है कि वहां मधुमती नामकी भी नदी थी और उसके तथा सिन्धु के सङ्गम पर सुवर्णबिन्दु नामक शङ्कर का मन्दिर था। जनरल कैनिंहम और पण्डित वामन शिवराम आपटे का मत है कि ग्वालियर राज्य के अन्तर्गत मालवा प्रान्त का नरवर नगर ही प्राचीन पद्मावती है। नरवर सिन्ध (प्राचीन सिन्धु) पर बसा है और उसके पासही पार्वती (प्राचीन पारा) लोन (प्राचीन लवणा) और मधुवर (प्राचीन मधुमती) नदियां बहती हैं। यह पहचान बहुत ठीक है; परन्तु पारा और सिन्धु के सङ्गम से नरवर कोई २५ मील है। इसी लिये डाक्टर भाण्डारकर कहते हैं कि नरवर से हट कर कहीं दूसरे स्थल पर पद्मावती रही होगी। विक्रमादित्य के समय से ही और प्रान्तों की अपेक्षा मालवा प्रान्त ने विद्यावृद्धि में विशेष ख्याति प्राप्त की थी। इसीसे राजमन्त्रियों तक के लड़के विदर्भ देश से पद्मावती में आन्वीक्षिकी विद्या (न्याय शास्त्र) पढ़ने आते थे। सम्भव है विदर्भ से कान्यकुब्ज जाते समय, अथवा काश्मीर से लौटते समय, भवभूति पद्मावती ही के मार्ग से गया हो और उस नगर की तथा उसके निकट बहनेवाली नदियों की शोभा प्रत्यक्ष देख कर मालतीमाधव में उनका वर्णन उसने किया हो। पद्मावती में विद्या की विशेष चर्चा थी, अतः भवभूति का वहाँ जाना कोई आश्चर्य्य की बात नहीं।

८–विष्णु शास्त्री चिपलूणकर ने अपने निबन्ध में यह बात सिद्ध की है कि जैसे एकही अर्थ के व्यञ्जक पृथक् पृथक् पद्य कालिदास ने अपने पृथक् पृथक् ग्रन्थों में लिखे हैं वैसे भवभूति ने नहीं लिखे। अर्थात् भवभूति ने एकही भाव का पिष्टपेषण करके उसे अनेक स्थलों में पद्यबद्ध नहीं किया। यह हम भी मानते हैं। परन्तु शास्त्री जी के इस कहने से कि–"विचारों के विषय में, हम, यहां पर, एक बात और कहना चाहते हैं। वह यह कि वे स्वयं कवि के हैं; और काव्यों का किञ्चिन्मात्र भी आधार उनको नहीं–" हम सहमत नहीं हैं। शास्त्री जी का आशय शायद यह है कि भवभूति के नाटकों में उसके पूर्ववर्ती कवियों की छाया तक नहीं पाई जाती। स्वयं शास्त्री जी को एक ऐसा उदाहरण मिला है जिसमें भवभूतिकृत मालतीमाधव के—

"वारं वारं तिरयति दृशोरुद्गमं बाष्पपूरः"

इस श्लोक का भाव और कालिदास कृत मेघदूत के–

"त्वामालिख्य प्रणयकुपितां धातुरागैः शिलायाम्*"

इस श्लोक का भाव एकही है। परन्तु यहां पर शास्त्री जी ने भवभूतिरूपी शिष्य को कालिदास रूपी गुरु से बढ़ गया बतलाकर अपने कथन को दृढ़ किया है और कहा है कि इस अर्थसाम्यता से उनके मत में बाधा नहीं आसकती। हम यह नहीं कहते कि भवभूति ने कालिदास अथवा अपने और किसी पूर्ववर्ती कवि के विचारों की चोरी की है; परन्तु, हां, हम यह अवश्य कहते हैं कि भवभूति, कालिदास और शूद्रक आदि की अनेक उक्तियों में परस्पर साम्यता है। बाबू सतीशचन्द्र विद्याभूषण, एम. ए., ने इस विषय के बहुत उदाहरण दिए हैं; परन्तु हम थोड़ेही उदाहरण देकर सन्तोष करेंगे। देखिए—

१। कालिदास–कुवलयितगवाक्षां लोचनैरङ्गनानाम्।
रघुवंश, स ११।

भवभूति–कटाक्षैर्नारीणां कुवलयितवातायनमिव।
मालतीमाधव, अं २।

२। कालि०—मोहादभूत्कष्टतरः प्रबोधः।
रघुवंश, स १४।

भव०–दुःखसंवेदनायैव रामे चैतन्यमाहितम्।
उत्तररामचरित, अं १।

३। कालि०—गुणैर्हि सर्वत्र पदं निधीयते।
रघुवंश, स ३।

भव०–गुणाः पूजास्थानं गुणिषु नच लिङ्गं नच वयः
उत्तररामचरित, अं ४।

४। कालि०—पर्यायपीतस्य सुरैर्हिमांशोः
कलाक्षयः श्लाघ्यतरो हि वृद्धेः।
रघुवंश, स ५।

भव०–कलाशेषा मूर्तिः शशिन इव नेत्रोत्सवकरी।
मालतीमाधव, अं २।

५। कालि०—तमवेक्ष्य रुरोद सा भृशं
स्तनसम्बाधमुरो जघान च।
स्वजनस्य हि दुःखमग्रतो
विवृतद्वारमिवोपजायते।
कुमारसम्भव, स ४।

भव०—सन्तान वाहीन्यपि मानुषाणां
दुःखानि सद्बन्धु वियोगजानि।
दृष्टे जने प्रेयसि दुःसहानि
स्रोतः सहस्रैरिव संप्लवन्ते।
उत्तररामचरित, अं ४।

६। शूद्रक–न ह्याकृतिः सुसदृशं विजहाति वृत्तम्।
मृच्छकटिक, अं १।

भव०–शरीर निर्म्माणसदृशो ननु अस्य अनुभावः
वीरचरित, अं १।

भिद्येत वा सद्वृत्तमीदृशस्य निर्माणस्य।
उत्तरचरित, अं ४।

७। क्षेमें०-सत्तासदसदोर्नास्ति रागःपश्यति रम्यताम्
स तस्य ललितो लोके यो यस्य दयितो जनः।
अवदानकल्पलता, १०।९९।

---

* शकुन्तला और विक्रमोर्वशी में भी कालिदास ने इसी प्रकार की उक्ति कही है।

भव०-अकिञ्चिदपि कुर्व्वाणः सौख्यैर्दुःखान्यपोहति।
तत्तस्य किमपि द्रव्यं यो हि यस्य प्रियो जनः।
उत्तररामचरित, अं ६।

कालिदास, शूद्रक और क्षेमेन्द्र ये तीनों कवि भवभूति से पहले हुए हैं। इनकी उक्तियों की छाया भवभूति के पद्यों में, अनेक स्थलों पर पाई जाती है। यह चाहे इन कवियों के काव्यों के पढ़ने से भवभूति के हृदय में उत्पन्न हुए संस्कार-विशेष का फल हो; चाहे यों हीं घुणाक्षरन्याय से पूर्व कवियों की उक्तियों का भाव उसकी उक्तियों में आ गया हो। कुछ ही क्यों न हो, कहीं कहीं साम्यता अवश्य है। [शेष आगे।

--ले० महावीरप्रसाद द्विवेदी।

राजा रविवर्म्मा

इस संख्या के आरम्भ में जिन सौम्यदर्शन पुरुष का चित्र दिया गया है, भारतवर्ष में ऐसे बहुत कम लोग होंगे जो उनका नाम न जानते हों, अथवा जिन्होंने उनके बनाए चित्रों को न देखा हो। 'प्रवासी' * नाम के बङ्गभाषा में प्रकाशित मासिक पत्र के योग्य सम्पादक बाबू रामानन्द चट्टोपाध्याय, एम. ए., को राजा रविवर्म्मा ने 'प्रवासी' तथा 'सरस्वती' में अपने चित्रों के प्रकाशित करने की आज्ञा दी है। आज 'सरस्वती' के तीसरे वर्ष के प्रारम्भोत्सव में राजा रविवर्म्मा कृत कई चित्रों का उपहार तथा उन्हीं महानुभाव का उपदेशपूर्ण जीवनचरित हम सरस्वती के पाठकों की भेंट करते हैं। आशा है कि चित्रों के दर्शन तथा चरित्र के अनुशीलन से हमारे पाठकों का केवल मनोरञ्जन ही नहीं होगा, वरन् वे इतना समझ जांयगे कि भारतवासी भी ललित कलाओं में दूसरे देशवासियों का सामना करने के योग्य हैं।

* 'प्रवासी' भी प्रयाग से प्रकाशित होता है और इण्डियन प्रेस ही में छपता है।

राजा रविवर्म्मा का जन्म त्रिवाङ्कोड़ के एक सम्भ्रान्त क्षत्रियकुल में हुआ था। उनका कुल वंशपरम्परा से त्रिवाङ्कोड़ के राजकुल से घनिष्ठ सम्बन्ध रखता आया है। राजा साहब ने सन् १८४८ के मई मास में त्रिवन्द्रम नगर के समीप किलिमानूर नाम के एक गांव में जन्म लिया था। उनके पूर्वपुरुषों ने विपत्ति के समय त्रिवाङ्कोड़ राज की युद्धक्षेत्र में सहायता की थी, इस कारण किलिमानूर की विशाल जागीर उन्हें पुरस्कार में मिली थी और वह तभी से रविवर्म्मा के परिवार के अधिकार में चली आती है।

इस निवन्ध में 'पूर्वपुरुष', 'परिवार' आदि वाक्यों से त्रिवाङ्कोड़ की भाषा में चलित अर्थ को लेना चाहिए। वहां बहिन का पुत्र (भांजा) अपने मामा की सम्पत्ति का उत्तराधिकारी होता है। पुत्र अपने पिता की सम्पत्ति को नहीं पाता। इस कारण 'पूर्वपुरुष' से मामा के मामा, उनके भी मामा, इत्यादि समझना चाहिए। परिवार के अर्थ में मातुल, उनकी भगिनी, भगिनी की सन्तति, आदि जानिए। परिवार अथवा गृह के स्वामी से मातुल का उल्लेख हो रहा है, ऐसा समझना चाहिए।

रविवर्म्मा के दो और भाई और एक बहिन हैं। रविवर्म्मा ही सबसे बड़े हैं। ये भ्राता भगिनी सभी स्वभावशिल्पी हैं। इनकी माता उमा अम्बा बाई सुशिक्षिता स्त्री थीं। कविता रचने में उन्होंने त्रिवाङ्कोड़ प्रान्त में कवियश प्राप्त किया था। रविवर्म्मा के बाल्यकाल में उतनी अङ्गरेज़ी शिक्षा की चाल नहीं थी। उस समय की रीति के अनुसार घरही पर उन्हें संस्कृत की शिक्षा मिली थी और अपने गुरूजी के पास उन्होंने रामायण महाभारत आदि श्रेष्ठ ग्रन्थों को पढ़ा था। परन्तु बाल्यावस्था में व्याकरण की अपेक्षा दिवाल और भूमि पर कोयले वा खड़िया से देवी देवताओं के चित्र खींचने ही में उन्हें अधिकतर रुचि थी। उनकी इस शिल्पकला की प्रतिभा के बाल्याभास से

घर के सब लोग उकता गए, केवल राजा साहब के मामा राजा राजवर्म्मा ही इस कार्य से विरक्त नहीं होते थे। राजा राजवर्म्मा बड़े प्रतिभाशाली पुरुष थे। उनके ग्रैार ग्रैार गुणों में चित्रविद्या भी एक था। वे अपने चित्तविनोदार्थ चित्र खींचा करते ग्रैार इसीसे रविवर्म्मा की रुचि उसी ग्रोर देखकर वे बहुत प्रसन्न होते थे। जब रविवर्म्मा को रेखाङ्कण में कुछ कुछ अभ्यास हो गया तो उनके मातुल ने उनको जल मिलाकर रङ्गों से चित्र खींचना सिखलाया। आजकल जैसे अङ्गरेज़ी रङ्ग के बक्स ग्रैार ब्रश सर्वत्र मिलते हैं, उस समय वैसा नहीं था। राजा राजवर्म्मा ग्रापही सब ग्रावश्यकीय सामग्री बना लेते थे। अपने जीवनकाल के शेषभाग तक उन्होंने कई प्रकार के रङ्गों का बनाना ग्राविष्कृत किया था, परन्तु ग्रब उस कार्य का करनेवाला कोई न रहने के कारण, ग्रैार विशेषकर विलायती सामग्रियां ग्रब बहुतायत से मिलने के कारण, राजवर्म्मा के परिश्रम का फल उनकी मृत्यु के साथ लुप्त होगया।

तेरह वर्ष की ग्रवस्था में रविवर्म्मा अपने मामा के साथ त्रिवाङ्कोड़ की राजधानी त्रिवन्द्रम् ग्राए। उनके बनाए हुए कई चित्र उनके मामा ने महाराज की भेंट किए। महाराज इस उपहार से बहुत प्रसन्न हुए। उस समय भद्रसमाज में लोग चित्रविद्या को अपमानसूचक समझते थे। परन्तु ज्ञानालोकप्राप्त महाराज का मत साधारण लोगों से नहीं मिलता था। बालक के कार्य में उज्वल भविष्यत का पूर्वाभास उनको लख पड़ा, ग्रैार वे तुरन्त रविवर्म्मा के सहायक ग्रैार उत्साहदाता हो गए।

सन् १८६६ में, जब रविवर्म्मा १६ वर्ष के हुए, तो त्रिवाङ्कोड़ की मृत बड़ी रानी की छोटी भगिनी से उनका बिवाह हुग्रा। हम पहिले कह चुके हैं कि त्रिवाङ्कोड़ का उत्तराधिकारीसूत्र मातुलकुलावलम्बी है। इस कारण बड़ी रानी के ग्रर्थ में महाराज की भगिनिग्रों में जो सबसे बड़ी होती हैं उन्हींका बोध होता है। महाराज की बहिनें ही बड़ी वा छोटी रानी कहलाती हैं ग्रैार उन्हींको रानी का सब सम्मान मिलता है। उन्हींके पुत्र सिंहासन के ग्रधिकारी होते हैं। महाराज की स्त्री ग्रथवा पुत्र किसी गिनती में नहीं ग्राते। वर्तमान महाराज को कोई सहोदरा भगिनी नहीं थीं, इससे राज्यपद के उत्तराधिकारी पाने के लिये उन्होंने दो दत्तक बहिनें ले ली थीं। वेही बड़ी ग्रैार छोटी रानियां कहलाती थीं। बड़ी रानी निस्सन्तान ही मर गईं। छोटी रानी भी ग्राठ वर्ष के लगभग पहिले परलोक को सिधार चुकी थीं। इनको दो पुत्र थे। त्रिवाङ्कोड़ के रीत्यनुसार पहिले पुत्र एलियाराजा वा युवराज ग्रैार दूसरे पुत्र प्रथम राजकुमार कहलाए। यदि इस समय जीवित रहते तो एलियाराजा ही ग्राधुनिक महाराज के ग्रवर्त्तमान में महाराज होते, परन्तु कुछ दिन हुए कि दोनो भाइग्रों का देहान्त हो गया है। ये दोनों कुमार रविवर्म्मा के एक मौसेरे भाई के पुत्र थे। वंशपरम्परा के क्रम से रविवर्म्मा के मामा, वा उनके परिवारस्थ लोग, त्रिवाङ्कोड़ के महाराजाग्रों के जन्मदाता पिता हुए हैं। ग्रस्तु वर्तमान महाराज के दोनो भांजों की मृत्यु होने के कारण त्रिवाङ्कोड़ का सिंहासन उत्तराधिकारी रहित हो गया। लार्ड कर्ज़न साहब की ग्रनुमति से थोड़े दिन हुए कि महाराज ने रविवर्म्मा की दो दैाहित्रियों को बड़ी रानी ग्रैार छोटी रानी के पद पर स्थित किया है। ये दोनों ग्रभी निरी बालिका हैं। बयस प्राप्त होकर ये जब पुत्रवती होंगीं, तो इन्हींके किसी एक पुत्र को वर्त्तमान महाराज की राजगद्दी मिलेगी।

सन् १८६८ में त्रिवाङ्कोड़ के महाराज ने थियोडोर जैनसेन नामी एक अङ्गरेज़ चित्रकार को अपने ग्रैार ग्रात्मीय कुटुम्बादिकों के चित्र खींचने के लिये बुलवाया। इन्हींके ग्रागमनकाल से रविवर्म्मा की प्रतिभा नए मार्ग पर धावित होने लगी। जैनसेन साहिब का स्वभाव कुछ

क्रोधी था, और जब वे चित्र खींचा करते उस समय किसीको वे अपने पास नहीं आने देते थे। परन्तु महाराज के कहने सुनने से साहिब ने रविवर्म्मा को अपने पास रहने की आज्ञा दे दी थी। तेल के रङ्ग की सहायता से कैसा सुन्दर फल मिल सकता है, यह देखकर रविवर्म्मा विस्मित हो गए और तब से तैल-चित्रकार होने की उन्होंने प्रतिज्ञा कर ली। तैल-चित्र खींचने की सब सामग्रियां उन्होंने मँगवालीं और जैनसेन साहिब के चित्रों को आदर्श मानकर रातदिन परिश्रम करने लगे। धीरे धीरे उन्होंने महाराज और महारानी के चित्र बनाए और अपनी कल्पना से भी विचार कर कई एक चित्र खींचे। सन् १८७३ में मन्द्राज के उस समय के गवर्नर लार्ड होबर्ट के उत्साह से मन्द्राज में एक ललित-कला-प्रदर्शनी (Fine Arts Exhibition) स्थापित हुई थी। त्रिवाङ्कोड़ के महाराजा बहादुर ने वहां के अङ्गरेज़ रेसिडेण्ट के कहने पर रविवर्म्मा के भी दो चित्र इस मेले में भेज दिए। शिल्पी स्वयं भी प्रदर्शनी देखने गए और वहां अपने एक चित्र के लिये उन्हें गवर्नर का दिया हुआ एक सोने का पदक (तमगा) मिला। इस चित्र में यह चित्रित हुआ था कि एक नेयर जाति की स्त्री चमेली की माला से अपने केशों को गूंथ रही है। लोगों ने इस चित्र का इतना आदर किया कि कुछ दिनों तक नगर भर में जहां तहां इसीकी चर्चा होने लग गई थी। लर्ड होबर्ट ने रविवर्म्मा को बुलवा भेजा और उनके चित्रों की विशेष प्रशंसा कर उन्हें अध्यवसाय द्वारा यशोलाभ करने के लिये उत्साहित किया। रविवर्म्मा के त्रिवन्द्रम् लौटने पर महाराजा साहब ने उनपर प्रसन्न होकर उन्हें बहुत से बहुमूल्य उपहारों से सम्मानित किया।

गर्वनर साहब ने जिस चित्र के लिये सोने का तमगा दिया था, वही चित्र फिर आस्ट्रिया देश की राजधानी वियेना नगर में International Exhibition में प्रदर्शित हुआ था। वहां से भी उन्हें तमगा और प्रशंसा पत्र मिले। दूसरे वर्ष, अर्थात् १८७४ में, मन्द्राज की शिल्पप्रदर्शनी में रविवर्म्मा ने फिर एक स्वर्णपदक प्राप्त किया। इस वार के चित्र का विषय यह था—एक तामील स्त्री सरवत् (एक प्रकार का बाजा) बजा रही है। भारत सम्राट श्रीमान सातवें एडवर्ड जब सन् ७५ में युवराज रूप में भारतवर्ष पधारे थे तो त्रिवाङ्कोड़ के महाराज ने तामील स्त्री-वाला चित्र और दो और भी चित्र उनकी भेट किए। उसपर युवराज ने तीनों चित्रों की प्रशंसा करके कहा था कि जिसने युरोप में शिक्षा नहीं पाई है ऐसे शिल्पी के लिये ये चित्र बहुत ही प्रशंसार्ह हैं। १८७६ की मन्द्राज प्रदर्शनी में रविवर्म्मा ने "शकुन्तला-पत्र-लेखन" भेजा। फिर भी पहिला पुरस्कार उन्हीं को मिला और उस समय के गवर्नर डियुक आफ़ वकिंगहम ने उसे तुरन्त मोल ले लिया। श्रीनगर, जिला पुर्निया के साहित्य-प्रेमी राजा कमलानन्द सिंह जी ने दिसम्बर १९०१ की सरस्वती में शकुन्तला की ओर से दुष्यन्त के नाम एक प्रेमपत्र रोलाछन्द में लिखा था। उस कविता के साथ राजा रविवर्म्माकृत "शकुन्तला-पत्र-लेखन" का फोटो-चित्र प्रकाशित हो चुका है। हमारे पुराने पाठक उसे पा चुके हैं। रविवर्म्मा के पहिले किसी भारतवासी शिल्पी ने प्राचीन संस्कृत साहित्य में वर्णित नायक नायिका वा प्रसिद्ध प्रसिद्ध घटनाओं का तैलचित्र नहीं बनाया था। अब रविवर्म्मा की संस्कृत शिक्षा काम में आई। वे संस्कृत साहित्य से अपनी रुचि के अनुसार चित्रनिर्वाचन करने लगे। सन् १८७८ में मन्द्राज के गवर्नमेंट हौस में रक्षित होने के लिये ड्यूक अफ़ बकिंगहम को देख कर उनका एक चित्र बनाने की आज्ञा रविवर्म्मा को मिली। ड्यूक का यह चित्र रविवर्म्मा के सर्वोत्कृष्ट चित्रों में गिना जाता है। मन्द्राज के गवर्नमेंट हौस में इसीके आसपास युरोपियन नामी चित्रकरों के किए हुए चित्र टंगे हुए हैं। परन्तु यह उनमें किसीसे भी निकृष्ट नहीं वरं बढ़ कर ही है। रविवर्म्मा ने

इतने अल्प समय में डयूक आफ़ बकिंगहम का चित्र बनाया था कि उन्होंने एक बार रविवर्म्मा से कहा कि युरोप के किसी विख्यात चित्रकार से अपना चित्र खिंचवाते समय उसके सम्मुख मुझे १८ बेर बैठना पड़ा था, तौभी आपके चित्र की तुलना में वह चित्र सत्यानुरूप आधा भी सफल नहीं हुआ था।

मन्द्राज से रविवर्म्मा के लैाटने के दो मास पीछे त्रिवाङ्कोड़ के महाराज का परलोकवास हो गया। उनके अन्तर उनके भाई महाराज हुए। उनके इच्छानुसार रविवर्म्मा ने "सीता की परीक्षा" नामक एक बड़ा चित्र बनाया। इस चित्र में, सीता के चरित्र में दोषारोपण होने के कारण माता पृथ्वी उन्हें लिए हुए अन्तर्हित हो रही हैं। उस समय बड़ौदा राज्य के प्रधान मंत्री सर तञ्जोर माधवराव त्रिवाङ्कोड़ आए हुए थे। वे इस चित्र को देख कर ऐसे प्रसन्न हुए कि महाराज गायकवाड़ के लिये उन्होंने उसे मोल ले लिया और अपने लिये भी एक सुन्दर चित्र लिया जिसमें एक नेयर कन्या सारंगी में सुर मिला रही है। शेषोक्त चित्र को माधवराव ने सन् १८८० में पूना की शिल्प प्रदर्शनी में दिखाया था। रविवर्म्मा को गायकवाड़-सुवर्ण-पदक इसके पुरस्कार में दिया गया। बम्बई के गवर्नर सर जेम्स् फ़र्गुसन साहिब इस चित्र को देख कर बड़े आनन्दित हुए, और वह सर टी. माधव राव की सम्पत्ति होने के कारण, उसकी एक प्रतिलिपि बनाने की उन्होंने आज्ञा दी। रविवर्म्मा ने बना कर गवर्नर को स्वयं उसे उपहार में दिया। सर जेम्स् ने उनकी निपुणाई की गुणग्राहिता के चिन्ह-स्वरूप उनको इंगलेण्ड के राजपरिवार के फोटो-ग्राफों का बहुमूल्य एलबम दिया था।

सन् १८८१ में राजा रविवर्म्मा अपने छोटे भाई सी. राजा राजवर्म्मा के सहित निमन्त्रित हो कर बड़ौदा गए थे और वहां गायकवाड़ राजपरिवार के लोगों तथा रेज़ीडंट मेलविल साहिब आदि के चित्र उन्होंने बनाए थे। वहां से महाराज भवनगर भी उन्हें कई चित्र बनाने के लिये बुला कर ले गए थे।

भवनगर से लैाटकर उन्हें दारुण शोक उठाना पड़ा। चित्रविद्या के बालशिक्षक भक्तिभाजन उनके मामा का देहान्त हो गया। ये महात्मा अपने जीवनकाल के शेषभाग में भगवद्भक्ति में ही अपना समय व्यतीत करते थे। यदि इनसे शिक्षा और उत्साह न मिलता तो रविवर्म्मा आज रविवर्म्मा कदापि नहीं हो सकते थे।

इसके अनन्तर रविवर्म्मा को मैसूर के भूतपूर्व नृपति सर चमराजेन्द्र ओदायर निमन्त्रित कर अपने यहां लिवा ले गए। ये संगीत और चित्रविद्या के बड़े अनुरागी थे। मैसूर में तीन मास रह कर रविवर्म्मा ने महाराज और उनकी सन्ततिओं के चित्र बनाए थे। महाराज ने और और उपहारों में रविवर्म्मा के सम्मानार्थ उन्हें एक हाथी भी दिया था। कलकत्ते और लण्डन की प्रदर्शनिओं में भी रविवर्म्मा का सम्मान हुआ था और उन्हें चांदी के तगमें और सार्टिफिकट मिले थे। इसी समय उनकी माता का भी स्वर्गबास हो गया। राजा साहब शोकाच्छन्न हृदय से व्रतावलम्बी हो कर अपने किलिमानूर के महल में एक वर्ष तक रहे। सन् १८८२ में महाराज गायकवाड़ नीलगिरि गए और वहां से रविवर्म्मा को अपने बड़ौदास्थ नए प्रासाद को भूषित करने के लिये उन्होंने निमन्त्रण दिया। इन चित्रों में रामायण और महाभारत के चुने चुने सुन्दर १४ दृश्य थे। इस कठिन काम को आरम्भ करने के पहिले रविवर्म्मा उत्तरीय भारतवर्ष में देशाटन करने गए। उद्देश्य यह था कि पुरानी पत्थर आदि की मूर्त्तिओं के दर्शन से प्राचीन काल के राजा रानिओं के वस्त्राभूषण का उन्हें ज्ञान लाभ हो। परन्तु इसमें उनका मनोरथ सफल नहीं हुआ था। कई सौ वर्ष तक उत्तरी भारत में मुसलमानों की प्रधानता के कारण राजा साहब के उद्देश्य के लिये हिन्दुओं के पुराने जो कुछ चिन्हादि थे सब लुप्त हो गए थे।

भारतवर्ष के नाना प्रान्तों में भांति भांति के लोग सदाकाल बसते आए हैं, और सबके वस्त्र आभूषण एक दूसरे से भिन्न प्रकार के थे और हैं। इस कारण रविवर्म्मा समझ गए कि सारे भारतवर्ष के लोगों को रुचिकर हो ऐसे वस्त्र अपने चित्रों में दिखाना बहुत ही कठिन है।

अस्तु, घर लौटकर महाराज गायकवाड़ के बताए हुए कार्य को उन्होंने आरम्भ कर दिया, और दो वर्षों में चौदहों चित्रों को समाप्त कर सन् १८९० में वे उन्हें बड़ौदा ले गए। कई दिन तक ये चित्र प्रकाश्य स्थान में दिखाए गए थे। उन्हें देखने के लिये बम्बई प्रान्त के अनेक मनुष्य गए थे और बड़ौदा में बड़ी धूम मच गई थी। कारण यह था कि इसके पहिले कैनबैस पर तेल के रंगों में किसीने ऐसे जीवितवत् हृदयग्राही चित्र भारतीय श्रेष्ठ महाकाव्यों से निर्वाचित कर नहीं अंकित किए थे। हिन्दुस्तान में इन्हीं चित्रों के सहस्रों फोटोग्राफ़ बिक गए है। सर्वसाधारण में इन चित्रों का इतना आदर देखकर रविवर्म्मा ने बम्बई में अपने व्यय से एक लिथो का छापाखाना स्थापित किया, और अपने चित्रों को छोटे आकार में नाना रंगों में छाप कर साधारण मनुष्यों के हाथ तक उन्हें पहुंचा दिया। इस रीति से वे अपने देशवासियों के अन्तःकरण में शिल्पानुराग उत्पन्न करने में समर्थ हुए। उनका मत है कि पौराणिक और धर्म्मसम्बन्धी चित्र लोगों के हृदय को जितना स्पर्श कर सकते हैं, दूसरे वैसा नहीं कर सकते। उनके इस उद्येम ने आशातीत फल उठाया है। आज दिन हिमालय से कुमारिका तक घर घर में उन के बनाए चित्र आदर सहित रक्खे जाते हैं और छोटे बड़े सब लोग उनसे परिचित हो गए हैं। इस प्रेस से रविवर्म्मा कृत लग भग सौ चित्र भांति भांति के रंगों में छप कर प्रकाशित हुए हैं। उनके बनाए अब भी बहुत से ऐसे चित्र हैं कि जिनका फोटो उतारना वा लिथो में छापना दुष्कर होने के कारण वे अब तक साधारण जनों तक नहीं पहुंच सके हैं। बाजारों में उनके जो चित्र बिकते हैं, वे सब उनके सर्वोत्कृष्ट चित्र नहीं हैं। उनके श्रेष्ठ चित्र प्रायः सभी बिक कर त्रिवाङ्कोड़ से बाहर चले गए हैं, और इसी कारण उनके फोटो भी अब नहीं मिल सकते। बहुत से उत्तमोत्तम चित्रों की नकल अब नहीं मिलती। रंगीन चित्रों के फोटो से मूल चित्र की सुन्दरता की छाया मात्र देख पड़ती है, उससे शिल्पी की प्रतिभा का पूरा परिचय नहीं मिल सकता। इस संख्या में रविवर्म्मा कृत कई चित्रों का हाफटोन चित्र बनवाकर हमलोग प्रकाशित करते हैं। विराट राजसभा में द्रौपदी महाराज गायकवाड़ की सम्पत्ति है। राजासाहब ने 'प्रवासी' पत्र के लिये उसका फोटोग्राफ लिवाकर भेज दिया है। इस चित्र में द्रौपदी, कीचक, भीमसेन, आदि सहज ही में पहिचान पड़ते हैं। "राजा रुक्माङ्गद और मोहिनी" नामक चित्र का संक्षेप वर्णन आवश्यक है। रुक्माङ्गद की दो रानियां थीं। छोटी रानी व्यभिचारिणी और क्रूर प्रकृति की थी। राजा किसी समय उससे बचन हार चुके थे कि तू जो कहेगी सो मैं करूंगा। दुष्टा रानी ने एक बार समय पा कर राजा को इस पण की सुध दिला कर कहा कि आप या तो बड़ी रानी के गर्भ से उत्पन्न अपने एकमात्र पुत्र का प्राण बध किजिए, नहीं तो आज एकादशी है, सम्मुख रखे हुए भोजन को पा कर व्रत भंग कीजिए। राजा सत्य-सङ्कल्पी थे और एकादशी का व्रत भङ्ग करना भी महा पाप समझते थे। उनका पुत्र उन्हें इस पाप का भागी होने से रोक कर अपना गला कटवा डालने पर उतारू हुआ। बड़ी रानी एक बुढ़िया दासी की गोद में मूर्च्छित पड़ी है। राजा दोनो ओर से महा सङ्कट में पड़ कर हाथ में खड्ग ले कर आकाश की ओर नेत्र उठाए हुए भगवान को पुकार रहे हैं। मोहिनी पाषाण की नाईं बड़ी निष्ठुरता से उन्हें अपना पण पूरा करने को कह रही है। राजप्रासाद के देवमन्दिर में इस मर्म्मभेदी दृश्य का अभिनय हो रहा है। "हंसदमयन्ती"

नामक चित्र में दमयन्ती हंस के मुख से राजानल की भेजी हुई प्रेमवार्त्ता तद्गतचित्त से सुन रही है। शकुन्तला-पत्र लेखन के विषय में हम ऊपर कह आए हैं। उसमें शकुन्तला कण्व मुनि के आश्रम में दुष्यन्त का पत्र लिख रही है। पास ही दोना सखी अनसूया ग्रैार प्रियम्वदा बैठी हैं। थोड़ी दूर पर एक मृगछैाना खड़ा है। भारतवासी मनुष्यों के जीवनव्यापार सम्बन्धी दस चित्र खींच कर रविवर्म्मा ने शिकागो की प्रदर्शनी में भेजे थे। वहां से उनके लिदे उन्हें दो तमगे ग्रैार प्रशंसापत्र मिले थे। ग्रमेरिका के कई प्रसिद्ध समाचारपत्रों में इन चित्रों की प्रशंसा छपी थी। ग्राज तक रविवर्म्मा को जितने तमगे ग्रैार प्रशंसापत्र मिले हैं, उनकी सूची बनानी सहज नहीं है, इतनाहीं कहना ग्रलम् होगा कि जहां जहां उनके चित्र प्रदर्शित हुए, वहीं उन्हें पुरस्कार ग्रैार सम्मान मिला।

बम्बई में जबसे उन्होंने छापाखाना खोला है, तब से वर्ष के भीतर वे कभी बम्बई ग्रैार कभी त्रिवाङ्कोड़ में रहते हैं। इस वर्ष के प्रारम्भ में वे उदयपुर के महाराणा साहब द्वारा निमन्त्रित हुए थे। महाराणा ने दरबार में रक्षित पुराने चित्रों में से ग्रपने चार नामी पूर्वपुरुषों के चित्र बनवाए हैं। इनमें से एक चित्र प्रातःस्मरणीय स्वदेशप्रेमी राजपुताना के गैारवसूर्य वीरकुलों के ग्राराध्य महाराणा प्रताप सिंह भी हैं। उदयपुर के मनोहर दृश्य को देखकर रविवर्म्मा मोहित हो गए। उनके सहोदर राजा राजवर्म्मा ने कई दृश्यों के सुन्दर चित्र उतारे हैं। रविवर्म्मा के इन छोटे सहोदर के विषय में यदि कुछ न कहा जाय तो शिल्पी महाशय का यह संक्षिप्त जीवनचरित ग्रसम्पूर्ण रह जायगा। ये ग्रपने ग्रग्रज के नित्य सहचर ग्रैार सहकारी हैं। ये भी ग्रग्रज की भांति बालककाल ही से संगीत ग्रैार चित्रविद्या में स्वाभाविक योग्यता रखते हैं ग्रैार बाल्यावस्था में ग्रंग्रेज़ी पढ़ने से जब ग्रवकाश मिलता तो ये संगीत ग्रैार चित्रविद्या ही में ग्रपना समय काटते। ग्रपने सहपाठियों में सदा प्रथम स्थान पाते थे। पूर्वकथित पलियाराजा ग्रैार प्रथम राजकुमार भी इन्हींके साथ पढ़ा करते थे। पाठ समाप्त होने के ग्रनन्तर इन्होंने भी ग्रपने बड़े भाई की वृत्ति को स्वीकार किया। रविवर्म्मा ने विचारा कि यदि दोनो भाइयों को किसी युरोपीय शिल्पी से रंग मिलाने ग्रादि की शिक्षा मिलती तो वे बहुत उपकार पाते, इसलिये ग्राज कल के ढंग की चित्र विद्या में निपुण फ्राङ्क ब्रुक्स नामी एक चित्रकार को उन्होंने ग्रपना शिक्षक नियुक्त किया ग्रैार उनसे बहुत सी शिक्षा पाई। रविवर्म्मा ग्रपने मन से गढ़ कर मानसी चित्रों के खींचने में सिद्धहस्त हैं ग्रैार ग्रपने युरोपीय शिक्षक से सीखे हुए उनके भाई राजवर्म्मा को प्राकृतिक दृश्य (Landscape) ग्रैार वास्तविक मनुष्यों के चित्र बनाने में ग्रसाधारण योग्यता है। इनको मन्द्राज ग्रैार बम्बई की प्रदर्शनियों में बहुत से पुरस्कार मिले हैं। दोनो भ्राता यह कह कर सदा दुःख प्रकाश करते हैं कि त्रिवाङ्कोड़ के कठिन सामाजिक नियम के कारण वे प्रधान प्रधान शिल्प सीखने के स्थानों को जाकर नहीं देख सकते ग्रैार न उनसे ग्रधिक शिक्षा लाभ कर सकते हैं। परन्तु जहां तक सम्भव हो सके, इस त्रुटि को दूर करने के लिये वे सब युरोपीय चित्रकरों के बनाए हुए बहुमुल्य चित्रों को कभी कभी मोल ले कर मंगवा लेते हैं ग्रैार ग्राज कल युरोप ग्रैार ग्रमेरिका में शिल्पसम्बन्धी क्या क्या उन्नतियां नित्य प्रति हो रही हैं, उनसे जानकारी रखने के लिये ग्रङ्गरेज़ी ग्रैार युरोपीय नाना भाषाग्रों में प्रकाशित शिल्पसम्बन्धी पत्रादि मंगवाया करते हैं।

भारतवासियों की सब प्रकार की शिक्षा ग्रैार मानसिक उन्नति के लिये जो जो महानुभाव मार्ग दिखाने वाले हैं उनमें राजा रविवर्म्मा को कैान सा स्थान देना चाहिए, इसका विचार करना भारतवर्ष के भविष्यत्काल में जन्म लेने वाली सन्तति पर निर्भर है। हम उस विषय में कुछ नहीं

कहना चाहते। भारतवर्ष में बड़े बड़े कवि, दार्शनिक, राजनीतिज्ञ, इमारत (स्थपति) और सङ्गीत-विद्याओं में निपुण लोग हो चुके हैं, परन्तु इस रत्नगर्भा भारत वसुन्धरा में योग्य चित्रकार अब तक नहीं जन्मा था। रविवर्म्मा ने इस अभाव को पूर्ण किया है वा नहीं, हम लोग नहीं कह सकते। सच तो यों है कि आज कल के दिनों में चित्र-विद्या रूप श्रेष्ठ कला को ऐसी अवनति और दुर्गति हो रही है, कि यदि रविवर्म्मा अपनी प्रतिभा से इसे फिर गौरवन दिलाते तो इसका पुनरुज्जीवन निस्सन्देह बहुत धीरे धीरे होता। यदि कभी भारतवर्षीय चित्रविद्या का इतिहास लिखा जाय, तो वे आधुनिक युग में इसके जन्मदाता कहला कर पूजित होंगे।

रविवर्म्मा की प्रकृति बड़ी धीर और नम्र है। वे दयालु और दानशील भी हैं। दरिद्रों के अभाव मोचन में उनके हाथ खुले हुए हैं। जब वे चित्राङ्कण नहीं करते, वा उसके विषय में चिन्ता नहीं करते हैं तो अंग्रेज़ी में अपनी ज्ञान वृद्धि के लिये अंग्रेज़ी पढ़ा करते हैं (क्योंकि अंग्रेज़ी उन्हों-ने बहुत अधिक अवस्था में सीखनी आरम्भ की थी), अथवा किसी प्रिय संस्कृत काव्य की आलोचना में अपना समय बिताते हैं। वे अपने यश से गर्वित नहीं होते, वरन् मुक्तकण्ठ से कहा करते हैं कि ज्यों ज्यों उनका ज्ञान बढ़ता जाता है, त्यों त्यों उन्हें जान पड़ता है कि मानुषी नेत्रों से छिपी हुई प्रकृति के महारहस्यों के समूह में से बहुत थोड़ा सा अंश उन्होंने जान पाया है।

इस संख्या में जो चित्र प्रकाशित होते हैं, उन्हें छोड़ और भी कई अच्छे अच्छे चित्रों के ब्लाक बन रहे हैं, और उन्हें अगली संख्याओं में पाठकों उपहार देने की हमारी इच्छा है।

—ले० पार्वतीनन्दन।

श्री गुरु अंगदजी

प्यारे पाठको! गत वर्ष की सरस्वती में आपलोगों ने दसों गुरु के चित्र और गुरु नानक जी के चरित्र को देखा ही होगा। उसी लेख में गुरु अङ्गद जी का भी कुछ उल्लेख हुआ है। आपलोगों को स्मरण होगा कि गुरु नानक जी जिस समय अपने जीवन के शेष दिवस ईरावती नदी के तीर कर्तारपुर में बिता रहे थे, उस समय लहना नामक एक वैष्णव खत्री से, जो वैष्णव देवी के दर्शन को जा रहा था, इनसे भेट हुई और जो इनके उपदेशों पर ऐसा मुग्ध हुआ कि इनका दीक्षित शिष्य हो गया, तथा गुरु नानक जी ने इसका नाम गुरु अङ्गद रख इसे गुरुओं की गद्दी दी।

आज इस लेख में उन्हीका चरित्र वर्णन किया जायगा। इनके पिता का नाम फेरुमल* था जो जाति के खत्री थे। जिस समय अङ्गद जी का जन्म हुआ उस समय भारत के शासन की लगाम सिकन्दर लोदी नाम के बादशाह के हाथ में थी। संवत् १५६१ (सन् १५०४ ई०) को वैशाख बदी ११ चार घड़ी रात रहे माता केसभराई के गर्भ से मत्ते की सरांय, ज़िला फिरोजपुर में हमारे चरित्रनायक ने जन्म लिया। पुत्र के उत्पन्न होने पर पिता ने यथा रीति वधाई वजवाई और पुत्र का नाम "लहना" रक्खा। लहना जी बाल्यावस्था ही में बड़े शान्त गम्भीर तथा सुशील थे। कहावत प्रसिद्ध ही है कि "पूत के लक्षण पालने में देख पड़ने लगते हैं"। यह प्रकृति का साधारण नियम है कि भावी महात्मा की प्रतिभा का आभास क्रमशः बाल्यावस्था ही में उदय होता है। हमारे भावी ज्ञानी गुरु अङ्गद जी बाल्यवस्था ही में उत्तम गुणों से सम्पन्न थे।

* फेरुमल जी कुछ पढ़े लिखे भी थे और उनकी आर्थिक अवस्था भी अच्छी थी। वे फीरोजपुर के हाकिम के यहां नौकरी करते थे॥

संवत् १५७६ में जब लहना जी की अवस्था केवल पन्द्रह वर्ष की थी, उनके पिता ने इनका विवाह खेवीजी से, जो इलाका मांझा, गांव खंडौरा में रहती थीं, कर दिया और वे स्त्री के साथ सुख से दिन बिताने लगे। कुछ काल के अनन्तर इनकी धर्म्मपत्नी के गर्भ से दो पुत्र तथा दो कन्याएं उत्पन्न हुईं जिससे ये अपने दिन लाड़ चाव से बिताने लगे।

संवत् १५८३ में लहना जी के पिता स्वर्ग को सिधारे। अतएव हिन्दूरीत्यनुसार सब गृहस्थी का भार इन्हींपर आ पड़ा। यह परिश्रम कर जो द्रव्योपार्जन करते, उसका अधिक भाग गरीबों तथा अतिथियों के भरण पोषण में खर्च कर डालते थे। इनके पिता पहिले मुअसर ही में वास करते थे, परन्तु संवत् १५७८ में बाबरी शाह ने इस ग्राम पर प्रबल वेग से आक्रमण किया, तथा उसके दुर्दान्त सैनिकों ने इस गांव में मन मानी लूट की*। अतएव फेरुमल अपने परिवार की इस विपत्ति से रक्षा करने के लिये लहना के ससुराल व्यास नदी के तीर खंडौरा ग्राम को भाग गए तथा वहीं उनकी मृत्यु भी हुई। इस गांव के निवासी सब देवी के उपासक थे, अतएव इस कहावत के अनुसार "तुख़्म तासीर सोहबत असर" फेरुमल जी भी देवी के उपासक हो गए।

पिता के देहान्त होने पर पुत्र ने भी उसी मत का अवलम्बन किया, तथा वे देवी जी का विशेष पूजन और आराधन करने लगे। उनका अधिकांश समय उपासनावृत्ति में बीतता था और प्रति वर्ष भक्तजनों के साथ वैष्णव देवी के दर्शनों को वे जाया करते थे।

एक समय का वृत्तान्त है कि लहना जी इसी प्रकार वैष्णव देवी के दर्शन को जा रहे थे कि मार्ग में गुरु नानक जी की प्रशंसा इन्होंने सुनी और इस पर इनको गुरु नानक जी के दर्शन की प्रबल इच्छा उत्पन्न हुई। अतएव वह वैष्णव देवी न जाकर कर्तारपुर की ओर गए। संयोगवश कहीं नानक जी भी उसी राह से कर्तारपुर को ओर जा रहे थे, मार्ग में ही दोनों महाशयों की आपस में भेंट हो गई। लहना जी ने गुरु नानक को कभी नहीं देखा था, इसलिये उन्होंने उन्हें नहीं पहचाना और मित्रभाव से, जैसा पथिकों में प्रायः ऐसी दशा में उत्पन्न हो जाता है, दोनों महाशय मार्ग में चलने लगे।

जब दोनों महाशय कर्तारपुर पहुंचे, तब लहना जी गुरु नानक का परिचय पाने पर अत्यन्त लज्जित हुए और उनके पैरों पर गिर अपने अपराध की क्षमा मांगने लगे। गुरु नानक जी ने विविध प्रकार से इनकी खातिरदारी की और यह मालूम होने पर कि वे वैष्णव देवी जा रहे थे, कहा कि केवल एक निराकार, परब्रह्म, परमेश्वर की ही उपासना करनी योग्य है, क्योंकि वही सब का कर्त्ता और विधाता है, उसे त्याग कर दूसरों की आराधना करनी सीधे राह को छोड़ पेंचीले राह में भटकना है। गुरु नानक जी के उपदेशों से लहना जी ऐसे मोहित हुए कि वैष्णव देवी न जाकर गुरु नानक जी की ही सेवा में रह गए और उनपर विशेष श्रद्धाभक्ति रखने लगे।

गुरु नानक जी ने अपनी मृत्यु के अनन्तर अपने सत्य सिद्धान्तों के प्रचार का भार अपने किसी ऐसे शिष्य को दे जाना चाहा कि जो उन्हीं की नाईं अविचलित रह कर तथा समस्त कठिनाइयों को सह कर अपने कर्तव्य साधन में यत्नवान् रहे और उन्होंने लहना जी की श्रद्धा भक्ति तथा धर्म्मनिष्ठा देखकर अत्यन्त प्रसन्न होकर इन्हींको अपने पीछे गुरु की गद्दी देनी स्थिर की परन्तु इस कठिन कार्य का भार देने के पूर्व लहना जी की सत्यनिष्ठा तथा सहनशीलता की परीक्षा लेनी चाही। अतएव उन्होंने अपने स

---

* बाबरशाह के सैन्यकों ने मुअसर ग्राम को लूट कर उजाड़ कर दिया था। वह उजाड़ ग्राम अब टीले के सदृश दिखाई देता है। संवत् १८६२ में दीवान मोहकम चन्द ने गुरु अङ्गद जी के नाम से एक गुरुद्वारा यहां बनवा दिया जो अब तक वर्तमान है।

शिष्यों की परीक्षा लेनी आरम्भ की। एक दिन का वृत्तान्त है कि नानक जी की शय्या पर एक मरा हुआ चूहा पड़ा था। अपने पुत्रों तथा शिष्यों को उसे उठा कर फेंकने को उन्होंने कहा। इस आज्ञापालन करने में पुत्र तथा शिष्यगण सबही हिचकिचाए, पर हमारे दृढ़भक्त लहना जी ने उसी क्षण अपने गुरु की आज्ञा पाते ही उस चूहे को उठा कर फेंक दिया। इसके अनन्तर एक दिन फिर जान बूझ कर नानक जी ने सुलेमानी पत्थर का प्याला नरदमें फेंक दिया और अपने पुत्र तथा शिष्यों को आज्ञा दी कि उसे निकाल लाओ। परन्तु इस कार्य को किसीने न किया। इस पर गुरु नानक ने कहा कि मजदूरा बुलवा कर उसे निकलवा लो। परन्तु यह लहना जी से न सुना गया। वह तुरन्त नरदमें में कूद पड़े और उन्होंने प्याला निकाल लाकर गुरु जी के सामने रखा। गुरु नानक जी इनकी सहनशीलता तथा गुरु के प्रति दृढ़ भक्ति देख अत्यन्त ही प्रसन्न हुए।

लहना जी सदा गुरु की आज्ञा पालने में तत्पर रहते थे और उसे पाते ही समस्त कार्य उनके आज्ञानुकूल किया करते थे। चाहे कैसाही कठिन और कष्टदायक वह कार्य क्यों न हो, परन्तु वह कभी भी नहीं हिचकते थे, यहां तक की एक दिन नदी के तीर एक सड़ा हुआ मुर्दा पड़ा था, गुरु नानक जी ने लहना जी को मुर्दे को तार से बांध कर खींचलाकर खाने की आज्ञा दी। हमारे दृढ़ महात्मा जो कि अपने गुरु के वाक्य को अपने लिये सर्वस्व समझते थे, आज्ञा पाते ही उस मुर्दे को तीर ले आए और भोजन करने के लिये तैयार हो गए। इन सब कार्य्यों से गुरु जी के हृदय में यह बात स्पष्टरुप से प्रकट हो गई कि लहना ही एक ऐसा शिष्य है जो कठिन से कठिन अवसर पर भी अपनी प्रतिज्ञा पर अटल रहेगा।

एक समय गुरु नानक जी जानकर पागल बने और समस्त शिष्यों को मारने पीटने लगे। गुरु की यह अवस्था देख सब शिष्यों ने अपने अपने घर की राह ली, पर हमारे दृढ़ गुरुभक्त लहना जी ऐसी शोचनीय दशा में गुरु को कब छोड़ने लगे थे वे तन, मन, धन से गुरु की सेवा और भी अधिक करने लगे और सब प्रकार के कष्ट सहन कर रोग के उपचार का यत्न करने लगे। इसपर गुरु नानक जी ऐसे लहना जी पर प्रसन्न हुए कि उन्हों ने उन्हींको अपना उत्तराधिकारी सर्व प्रकार से बनाना निश्चित कर लिया और विचारानुसार तत्क्षण लहना जी का नाम गुरु अङ्गद रख उन्हें गुरु की गद्दी पर बैठा दिया और उन्हें स्वकर्तव्य साधन का उचित उपदेश दे आप निश्चिन्त हो ईश्वर के भजन में दिन बिताने लगे।

गद्दी पर बैठने के अनन्तर गुरु के आज्ञानुसार अङ्गद जी अपने निवासस्थान खिण्डौरा गांव को चले गए, तथा वहां जाकर एक कच्चे तालाब* के तीर आसन जमा परमात्मा के ध्यान में ऐसे निमग्न हुए कि भोजन तथा सब पदार्थ का भोग विलासादि त्याग कर केवल थोड़ा सा दूध पीकर जीवन निर्वाह करने लगे।

गुरु अङ्गद जी भी गुरु नानक के सदृश समस्त उत्तम गुणों से सुसम्पन्न थे, तथा अत्यन्त सत्य तथा पवित्र भावों से पूर्ण होकर समय व्यतीत करने लगे। थोड़े ही दिनों में अङ्गद जी का यश चारों ओर फैल गया और दूर दूर के लोग इनका दर्शन करने के लिये आने लगे। जो व्यक्ति इनके दर्शनों को आता वह इनके मधुर सम्भाषण तथा पवित्र उपदेशों को सुन कर मुग्ध सा हो जाता था।

गुरु अङ्गद जी गरीब, अमीर, अज्ञानी, ज्ञानी, सब प्रकार के मनुष्य से एक ही भाव तथा बड़े चाव से मिला करते, तथा अपने पवित्र उपदेशों से सबको प्रसन्न करते।

* यह तालाब अब पक्का बनकर "पतयावा साहेब" के नाम से विख्यात है॥

गुरु अङ्गद जी ने यावनी भाषा का अधिक प्रचार देख कर यह विचारा कि जहां तक हो सके इसके प्रचार में बाधा देकर स्वदेशी भाषा का प्रचार करना चाहिए। यद्यपि यह कार्य अत्यन्त कठिन तथा परिश्रम का था, पर हमारे कार्याकुशल कठिन परिश्रमी महात्मा इससे कब हटने वाले थे, उन्होंने एक नूतन अक्षरों का जिसे गुरमुखी कहते हैं प्रचार किया, केवल इतनाही नहीं वरन संवत् १६०१ में नानक जी की समस्त यात्राओं का वृत्तान्त भाई बाला से (जो प्रत्येक यात्रा में गुरु नानक के साथ था) सुन कर "जन्म-साखी" नामक एक पुस्तक रची जिसकी आजलों सिक्ख लोग अपनी धर्म्म पुस्तकों में गणना करते हैं।

गुरु अङ्गद जी के उपदेशों में एक अपूर्व्व शक्ति थी। वह अपने ललित उपदेशों से लोगों को मोह लेते थे और इनके धर्म्मोपदेश सुनकर लोगों के अन्धकाररूपी हृदय में ज्ञानरूपी दीपक का प्रकाश तुरन्त हो जाता था। वे ईश्वर की महिमा सुनकर विस्मित और आनन्दित होते थे।

गुरु अङ्गद जी बड़े दानी थे। उनसे जो कोई व्यक्ति जिस वस्तु की इच्छा करता था वह अपने भरसक उद्योग करके उसे दिलाने की कोशिश किया करते थे। भिक्षुकों तथा अतिथियों को सदा भोजन मिलता था तथा जो कुछ चढ़त आती वह सब अपाहज और अनाथ पुरुषों तथा विधवाओं के भरण पोषण में लगा दी जाती थी। चढ़त की एक पाई भी वह अपने काम में नहीं लाते तथा अपने पुत्रों को सदा स्वपुरुषार्थ से द्रव्योपार्जन करने का अनुरोध देते रहे। और आप भी जौ को रोटी, जो उनकी माता सभराई मजदूरी करके लाती थी, खाते थे।

एक समय का वृत्तान्त है कि गुरु अङ्गद जी जिस गांव में रहते थे वहां बहुत समय तक वर्षा नहीं हुई। गांव के लोग अत्यन्त चिन्तित हुए और त्राहि त्राहि पुकारने लगे। उसी गांव में एक दुष्ट धूमण्ड सा रहता था। वह गुरु अङ्गद जी का चढ़ता प्रताप और यश देख कर ईर्षानल में दग्ध हुआ करता था। उसने लोगों को इकट्ठा करके कहा कि यदि तुमलोग गुरु अङ्गद जी को इस गांव से निकाल दो तो मैं पानी अभी बरसा दूं। गुरु अङ्गद जी ने जब यह बात सुनी तो वे बिना कुछ कहे सुने उस गांव को छोड़ चलते बने। यह बात उनके शिष्यों को बहुत बुरी लगी, परन्तु हमारे उदार-चेता महात्मा ने इसकी कुछ भी परवाह न की॥

इसी प्रकार सब लोगों को सन्तुष्ट रखते तथा गुरु नानक जी के सत्य सिद्धान्तों का भक्ति पूर्वक अनुमोदन करते हुए अङ्गद जी अपना समय बिताने लगे। ये बारह वर्ष छः महीने नौ दिन गुरु की गद्दी पर विराजमान रहे। इसके अनन्तर इन्हों-ने भी नानक जी की नाईं अपने पुत्र को गद्दी न देकर अमरदास जी को जो बड़े सच्चे गुरुभक्त थे, परीक्षा के अनन्तर गद्दी दी।

संवत् १६०२ चैत्र सुदी चतुर्थी बुधवार के दिन पहर दिन रहते सैंतालीस वर्ष ग्यारह महीने पन्द्रह दिन की आयु भोग कर गुरु अङ्गद जी ने परलोक की यात्रा की। इनकी समाधि खण्डौरा गांव के बाहर बनी हुई अभी तक वर्त-मान है, जिसको गुरु अङ्गद जी ने अपनी जीवन अवस्था में ही बनवा रक्खा था। इस स्थान पर प्रति वर्ष सावन में एक मेला लगता है, तथा सर-कार हिन्द की ओर से सदावर्त के लिये १४५८) रुपया वार्षिक की जागीर माफी मिली हुई है।

ले०—बेणीप्रसाद।

मदन दहन *

तारक सों अति पीड़ि सुरन जुरि मंत्र बिचारी।
जाय पितामह पास कही बिपदा निज भारी।

---

* यह पद्य कविकुलचूड़ामणि श्री कालिदास जी कृत कुमारसम्भवान्तर्गत मदनदहन का स्वच्छन्द अनुवाद है। कालिदास की कविता का अनुवाद होने के कारण इसमें अल्प शब्दों में विशेष अर्थ आ गया है, इससे यदि हमारे सहृदय पाठक इस-

सुरगुरु मुख सुनि दशा तीन बेधा दुख आनी।
निज बरदानिक असुर हनन अनुचित अनुमानी॥
भे कहत 'शैलजा शम्भु सुत प्रकटि होय सेनाधिपति
तो लहौ विजयत्रिभुवन दुखदसुरघालकअसुरेसहति'
भवहि डिगावन योग शक्र कामहि अनुमानी।
सुमिरयो कारज हेत ताहि तुरता अति आनी॥
तियभ्रू की धनुकोटि* लता सम सोहति जाकी।
सोइ रति-कंकन-खचित-कंठ धनुही धरि बाँकी॥
है जासु सुरभि-कर पै लसत अस्व-चौर-आयुध परम।
सोइ करन जोरि सुरनाथ पै गयो मार बूझन
मरम† ॥२॥

सहसनैन की दीठि सकल सुर यूथ बिहाई।
सहसहु नैनन परी मीनकेतुहि दिसि धाई॥
स्वामि समादर करत सेवकन कर तब नीको।
परत काज कछु आनि जवै दुखदायक जी को॥
तब सिंहासन ढिग जाय युतमान वरासन पाय कै।
भो कहत मार पुरहूत सों लहि इकंत हरषाय कै॥३॥
(१ और २)

सकल जनन के मनबिकार सब जाननहारे।
हे सुरनायक! कुलिशपानि सिर छत्र सँवारे॥
आयसु दीजै नाथ जौन चाहत जग कीन्हो।
करि सुमिरन अनुचरहि यथा आदर अति दीन्हो॥
यह भई अनुग्रह रावरी जौन प्रकट यहि काल मैं।
तेहि चहत विवर्धित होन, तब लहि निदेस सुर-
पाल! मैं ॥४॥ (३)

कौन साहसी पुरुष आजु तप तेज सम्हारयो?
तीनि लोक के राज लोभ ईर्षा तब धारयो॥
कियो जौन महिदेव दनुज सुरगन मद चूरन।
सुनत जासु टंकोर प्रकम्पित सिद्ध ऋषय गन।
जड़ चेतन थावर जंगमहु निमिष माहिँ जो बस करै।
सोइ सर-संयुत-कोदंड मम तासु गरब छिन मैं
हरै॥५॥ (४)

तब सम्मत बिनु कौन डरपि जग के जंजालन।
चाहत तिनसों छुटन; चतुरता के बर ख्यालन?
आरे चित भ्रुकुटीन युवतिगन के फँसवाई॥
राखहुँ ता कहँ बाँधि कटाच्छन के बस लाई॥
केहि नय शुक्रहु-सीच्छित रिपुहि अरथ धरम सों
करि विमुख।
सरि कुल ढहावति, हरहुँ तिमि, राग दूत बल तासु
सुख? ॥६॥ (५ और ६)

पातिब्रत से कठिन धरम की साधनहारी।
सहज सुघरता सों चित चंचल बांधनहारी॥
लखि गुलाब कलि काहु जासु कुच की छबि फारी।
हारि मानि मन, फारि फारि दृग रही निहारी॥
केहि प्रमदागन-भूषन तियहि लाज दाम सों मुकुत
करि
मद मत्त, अरुन चख, सिथिल तन, चहत करन प्रभु
भुजनि भरि? ॥७॥ (७)

गरबवती केहि सती तिरसकारयो प्रभु तोहीं?
सुरति-दान अभिलाष जानि करि दृग सतरोहीं॥
सापराध, लखि नमित तोहिँ, बिनती सुनि तोरी,
कियो महत अपमान कौन तरुनी मति भोरी?
तेहि पछितावहि के पातकी कोमल सेज बिछायकै।
छिन माहिँ नाथ सम्मुख करहुँ कुसुम बान धनु
लाय कै ॥८॥ (८)

धरहु धीर, तब कुलिस, नाथ! त्रिपुरारि! त्रिशूला,
काल दंड, हरि चक्र करैं जेहि रिपुहि न सूला।
ताहि कुसुम सर, कोपवती अवलन बल जीतौं॥
तेहि रुद्रहु इक मधु सहाय धीरज सों रीतौं॥
सुर असुर चराचर थरहरैं लखि पिनाक जाके करन।
को त्रिभुवन धनुधर आन, मम जो न होय संकित
सरन? ॥९॥ (९ व १०)

के प्रत्येक शब्द पर ध्यान दें और अनुवाद को मूल से मिलावें तो हमारा श्रम पूर्णरूप से सफल हो। विशेष सुबीते के लिये प्रत्येक छन्द की गणना के बाद हमने ब्रैकेट ( ) में उन श्लोकों का नम्बर भी दे दिया है जिनका अनुवाद उनमें हुआ है। जिन छन्दों के आगे ब्रैकेट में कुछ न दिया हो, वहाँ समझना चाहिए कि उतना अंश हमने मूल के बाहर अपनी ओर से बढ़ा दिया है। कुछ छन्दों में कुछ अंश मूल का है और शेष अपनी ओर से हमने बढ़ाया है।

* धनुष का दंड।

† यह प्रथम दो छन्द दूसरे सर्ग से अनुवादित हुए हैं।

पाद-पीठ-चल जंघ पर लखि प्रतिबिम्बित तत्र ।
ध्यान मगन-पुरहूत तब धरगोचरण अन्यत्र ॥१०॥ (११)

निज मन बांछित काज पर कामहि तत्पर जानि ।
शक्रि प्रकट तेहि करत लखि कह्यो शक्र सनमानि ॥११॥ (११)

मीत सकौ करि जो तुम भाषत या महँ नेक नहीं सक मोरे ॥
बज्रहु काम प्रसिद्ध पुरातन हैं जुग अस्त्र सदा ढिग मोरे ॥
कुंठित है मम बज्र सही तप तेज भरे विजयीन के धोरे ॥
पै सब ठौर विजै-कर तू थहरायन को सर जोरत तोरे ? ॥१२॥ (१२)

जानहुँ तो बल भाँति भली तुहि आपु समान बली निरधारी ।
चाहत सैांपन मीत तुम्हैं हित देवन के निज कारज भारी ।
श्री हरि श्रौ महि धारन से गुरु काज सरैं अहिराजहि पाहीं ।
त्यों यह काज बड़ो, जग मैं तजि तोहिँ सकै करि दूसर नाहीं ॥१३॥ (१३)

रुद्रहि धीरजहीन बनावन जैान कियो तुम है पन गाढ़ो ।
अंतरजामि भए, अरि-पीड़ित ते वन संकट सों तिमि काढ़ो ।
सेनप ते रिपु जीतन हेतु चहैं शिव-शुक्र-समुद्भव जोई ॥
धारि समाधि रहे शिव, ताहिं छुड़ाय सकै नहिं तो बिन कोई ॥१४॥ (१४ और १५)

जाय उपाय रचौ ज़ित-इन्द्रिय-शंकर छोड़ि समाधिहि जाते ।
चारु सतोगुन रूप भरी रुचि कै मन प्रेम करैं गिरिजाते ।
जो अबलागन की सिरताज, करै हिमि भूधर पूरित भाते ।
ताहि विरंचि कह्यो शिव शुक्रहिं धारन जोग भली बसुधातैं ॥१५॥ (१६)

"शैल सुता, पितु आयसु लै, नग पै तपसी-त्रिपुरारि अराधैं"।
नाक-नटीन कह्यो यह मो सन जे छिपि दूतपनो मन साधैं।
कारज देवन को सिधि, त्यों गिरिजा शिव व्याह, न तो बिन होई।
खेतन बीज कितेक, बिना जल अंकुर धारि सकै किमि कोई ? ॥१६॥ (१७-१८)

देवन के जय साधन मूल सदा शिव तेज अपार पसारे।
तो सर को गति है तिन मैं, तेहि ते तुम धन्य मनोज सुखारे।
कारज जो न प्रसिद्धि महीतल, श्रौ बहु लोग सकैं करि जाहीं
तैानहु कारन है जस को; यह तै अति दुस्तर जग माहीं ॥१७॥ (१९)

तीनहु लोकन को हित-कारज त्यों सुर जूथन जाच पायो
हे जग जाहिर सूर सिरोमनि! घातक काज न तोहि बतायो।
है ऋतुराज सहायक तो, बिन जाचेहु काज करै मन भायो।
पावक पैान प्रचंड करै जिमि, को तेहि को फरमान सुनायो ? ॥१८॥ (२० और २१)

स्वामी के ए बचन सुनि, "भलेहि नाथ" कहि मार
चल्यो, प्रसादित-माल-सम आयसु धारि लिलार ॥१९॥ (२२)

ऐरावत-उतसाह-हित-ताड़न सों दृढ़ जैान ।
ता कर सों परस्यो बपुष तासु मुदित सुर रैान ॥२०॥ (२३)

ले. श्यामविहारी मिश्र, एम. ए. (शिरमौर)
श्रौर
शुकदेवविहारी मिश्र बी. ए. (शशिभाल)

———

नसीरुद्दीन हैदर

भूमिका

मौलवी अहमद अली साहेब लिखते हैं कि "लखनऊ में मुसलमानों की बादशाहत मानो एक स्वप्न थी, जिसे पूरी तरह देखने भी न पाए और आंख खुल गई और फल (ताबीर) पूछते पूछते भूल भी गए"। बात तो वास्तव में ठीक है, पर हम इसके साथ इतना और बढ़ा देते हैं कि हज़रत यह सब पापड़ आपही के बेले हैं। जो अवध जैसे देश पर शासन करे, जिसके हाथ में ५० लाख प्रजा के भाग्य का वारा न्यारा हो, उसके गृहचरित्र इस प्रकार निन्दनीय हों! ईश्वर की महिमा है कि ऐसों की भी उन्नति हो! मैं कुछ विशेष न कह कर इतना ही कहना और आवश्यक समझता हूं कि हमारे सुहृदय पाठकवृन्द इसे "वीरेन्द्रवीर", "प्रतापसिंह" वा "गङ्गा गोविन्दसिंह" इत्यादि की वजन पर "नसीरुद्दीन हैदर" नामक कोई नवीन उपन्यास न समझलें। यह एक रोज़नामचे (डायरी) के आशय पर लिखा गया है और इसके लेखक भी वही हैं जिन्होंने रोजनामचा लिखा है। इसमें वास्तविक घटना के अतिरिक्त काल्पनिक रचना का छुआ छूत नहीं है। इसके लेखक एक अंगरेज़ महाशय हैं जो कि नसीरुद्दीन हैदर शाह अवध के मुसाहिब थे। साढ़े तीन वर्ष तक यह दरबार शाही में मुलाज़िम रहे। इसी साढ़े तीन वर्ष के ज़माने में इन्होंने दरबार में जो जो बातें देखी हैं उसे कहते हैं कि "मैं सचाई से अपनी डायरी में टाकता जाता था"। विलायत जाने पर इन्होंने इसे एकत्र करके प्रकाशित करा दिया। इसका प्रथम संस्करण सन् १८५५ में प्रकाशित हुआ। पुस्तक भर में कहीं इन्होंने अपना नाम धाम नहीं दिया है और न दरबार के दूसरे अंगरेज मुलाज़िमों का ही कुछ जिक्र किया है। इससे इन का नाम लिखने में मैं भी विवश हूं।

अनुवादक।

पहिला अध्याय।

बीस वर्ष से कुछ अधिक हुआ होगा कि निज के कुछ काम के लिये मैं पहिले पहल लखनऊ में आया। उस समय गाज़ीउद्दीन हैदर का पुत्र नसीरुद्दीन हैदर अवध की गद्दी पर बिराजमान था। जब मैं कलकत्ते में था तो मैं लखनऊ के अनोखे चाल चलन और बादशाह के दरबार के निराले ढंग की अनेक विचित्र कथाएं सुन चुका था—कि बादशाह ने एक बहुत बड़ा menagerie कायम कर रखा है और जो योरपनिवासी कम्पनी (ईस्ट इण्डिया कम्पनी से तात्पर्य्य है) के नौकर नहीं हैं उनका वह बड़ा आदर करता है और अवध के रहनेवाले बीररस के पक्के सराहनेवाले रसिक होते हैं और लखनऊ की गली कूचों में भयानक शक्ल के मुसटण्डे ढाल, तलवार बरछा और बन्दूक लिये इधर उधर फिरा करते हैं, इत्यादि कितनी बातें मैंने सुनली थीं; किन्तु इसके पहिले जब जब सुनी बातों का निज नेत्रों से देखने का मुझे अवसर मिला है तो मैं एक प्रकार से निराश होता आया हूं। परन्तु इस वेर ऐसा नहीं हुआ, क्योंकि यहां आने पर जो कुछ मैंने निज नेत्रों से देखा उसका मुझे स्वप्न में भी ख्याल न था। पहिले तो मैं बादशाह का राजभवन ही देखकर भौचक सा रह गया, क्योंकि यह अनेक महलों का एक ऐसा सिलसिला था जो गोमती के किनारे किनारे बहुत दूर मीलों तक लम्बा चला गया है। महलों के इस सिलसिले को देखकर मुझे कुसतुनतुनिया के रनिवास वा पेकिन के शाही महलों का ध्यान आया, क्योंकि ये सब भी हूबहू इसी नक्शे के थे। पूर्वदेश के रजवाड़ों में राजमहल केवल राजों के रहने का स्थान ही नहीं होता, वरन् राज्यसम्बन्धी हर एक बातों में वह राज्य का केन्द्रस्थल समझा जाता है। वह मानो एक छोटा सा शहर है और उसीमें महलों का सिलसिला होता है जिसमें रनिबास और किंकरों के रहने की जगह होती है। राज

दरबार, फुलबारी, तालाब और झरनों के सिवाय बड़े बड़े कर्मचारियों के निवासस्थान भी इसीमें बने रहते हैं। लखनऊ के महल की भी वजिन्स-हू यही हालत थी कि गोमती (इसका पाट बहुत ही कम है) के एक किनारे किनारे तो शाही महलों का सिलसिला था ग्रैार दूसरे किनारे पर एक बड़ा रमना था, जिसमें बादशाह के पलुए जीव जन्तुओं का संग्रहस्थान बना था। इस स्थान में इतने भिन्न प्रकार के जन्तु इकट्ठे किए गए थे कि उनसे अधिक का मेरे लिये अनुमान करना भी असम्भव है। सैकड़ों हाथी, बाघ, गेंडे, हिरन, चीते, तेन्दुए, फारस की बिल्लियां, चीन के कुत्ते, इत्यादि कुछ खुले कुछ कटघरों में बन्द इस रमने में इस तरह घूम रहे थे, या धूप सेकते या पड़े लेट लगाते देख पड़ते थे, जैसे इंगलिस्तान में किसी गोचर में गैा वा भेड़ देख पड़ते हों। बादशाह के "फ़रहबख़्श" नामक महल का बाहरी रूप रंग कुछ विशेष सुन्दर न था, परन्तु उसके पसार को देख कर मैं एक प्रकार हैरान हो गया।

लखनऊ की गलियों को भी देख कर मैं कुछ कम प्रसन्न न हुआ। महल के गिर्द की गलियों की बिशप हीबर साहब ने ड्रेसडेन की गलियों से उपमा दी है। ग्रैार बाजे इससे मास्को की गलियों की तुलना देते हैं। यद्यपि मैंने इनमें से कोई भी नगर नहीं देखा है, परन्तु मेरा ख्याल है कि ये दोनों मिसालें ठीक नहीं उतर सकतीं। एक बड़ा शहर जिसे मैंने देखा है ग्रैार जो लखनऊ के तले भाग की तङ्ग गलियों, लदे ऊटों ग्रैार इसके बाजारों से बहुत मिलता जुलता है, वह कायरो (Cairo) है जो मिश्र देश की राजधानी है। मास्को, ड्रेसडेन ग्रैार कायरो जिससे ग्राप चाहिए लखनऊ की उपमा दीजिए, परन्तु मेरी समझ में लखनऊ का ग्रनोखापन कहीं भी नहीं पाया जा सकता। पहिले तो लखनऊ के ऐसे हथियारबन्द मनुष्य इन दोनों नगरों में कहीं भी देख नहीं पड़ेंगे। मास्को निवासी चाहे छूरी बांधते हों ग्रैार कायरो के लोग भी हाथ में कुछ हथियार रखते हों, परन्तु लखनऊवाले सदा अस्त्र शस्त्र से लैस सिपाही बने देख पड़ते हैं। ढाल, तलवार, बन्दूक वा पिस्तौल तो इनके पास अवश्य मौजूद रहती है, यहां तक कि जिनका पेशा रोज खोदना ग्रैार रोज़ खाना है, वे भी कम से कम एक तलवार तो जरूर पास रखते हैं। हज़रत के तन पर चाहे मैला कुचैला वस्त्र क्यों न हो, पर मटरगश्त को चलेंगे तो तमञ्चा ग्रैार ढाल अवश्य चाहिए। ढाल भैंसे की खाल से मढ़ी हुई जिसमें पीतल के गुलमेखें जड़े रहते हैं, बांये ग्रैार कन्धे से लटकती रहती है। बड़ी बड़ी मूछोंवाले भयानक शकल के राजपूत ग्रैार काली डाढ़ीवाले मुसलमानों के बदन पर ढाल ग्रैार तलवार बड़ी शोभा देती है। फिर जब यह गली कूचों में ऐंठासिंह बने मटरगश्ती को निकलते हैं तो वास्तव में देखते जी नहीं भरता ग्रैार इनके निराले ग्रैार बहादुराना ढंग का भली भांति परिचय होता है। लखनऊवालों का यह सिपाहियाना ढंग देखकर कुछ आश्चर्य न करना चाहिये, इसलिये कि कम्पनी की सेना में प्रायः अवध के ही लोग अधिक भरती हैं ग्रैार बङ्गाल प्रान्त की सेना तो केवल अवधियों ही से भरी हुई है। लखनऊवालों में हथियारबन्दी का शौक बचपन ही से पैदा हो जाता है। भाला ग्रैार बाना तो बच्चों का नित्य का खिलैाना है। जैसे इङ्गलिस्तान में दाईयां बच्चों के हाथ में झुनझुने पकड़ा देती हैं, वैसे ही छोटे छोटे काठ के तमञ्चे ग्रैार तलवार यहां के बच्चों को खेलने के लिये दिए जाते हैं। इन्हीं कारणों से यहां के गली कूचों का रंग ढंग मुझे अनोखा दीख पड़ा। मालूम होता है कि मैं किसी ऐसे स्थान में पहुंच गया हूं जहां का वर्णन मैं बचपन में किस्से ग्रैार कहानियों के ग्रन्थों में पढ़ चुका हूं, अर्थात् जहां के सब रहनेवाले पहलवान ग्रैार वीर होते हैं ग्रैार जिनके बाहरी रंग ढंग ग्रैार पहिरावे से उनके आन्तरिक पराक्रम ग्रैार शूरता का परिचय मिलता है। मास्को या

कायरो में तुमने हाथी को लादी लादते कभी नहीं देखा होगा, फिर ऐसे भारी भरकम जानवर का ऐसी तङ्ग गलियों में बोझ लाद के चलना फिरना भी कैसा कुछ बेहङ्गम ग्रोर बेजोड़ दीख पड़ता है। जैसे कायरो में बोझ से लदा हुआ ऊंट अपने जङ्गाल से गली में रास्ता रोक लेता है, वैसेही ये हाथी लखनऊ की गलियों में थोड़ी देर के लिये राह बन्द कर देते हैं। इन गलियों में हाथी ग्रोर ऊंट दोनो ग्राम तैार पर देख पड़ते हैं। शहर के मैले भाग में जहां बाजार लगता है, वहां घोड़ा बिरले दिखाई पड़ता है। परन्तु हाथी ग्रोर ऊंट ग्राम तैार पर लादी लादे देख पड़ते हैं। एक मुद्दत तक मेरी यह बान थी कि इन तङ्ग गली कूचों में जब इन मोटे ताजे जानवरों को देखता तो बेतहाशा खिलखिलाकर मारने को जी चाहता ग्रोर खड़े देखते रहने की इच्छा होती, यद्यपि जानता था कि यहां देर तक खड़ा रहना मानों अपनेको जान जोखिम में डालना है।

यहां की हिन्दू मुसलमान प्रजा के रहन सहन में बड़ा भेद था। यदि समता थी तो केवल यह कि दोनों एक ही जैसे हथियार बांधते हैं। लखनऊ की बस्ती तीन लाख है, जिसमें दो भाग हिन्दू हैं। पर इनमें नीच श्रेणीवाले अधिक हैं। बाकी एक भाग मुसलमानों की बस्ती है, ग्रोर यही लोग धनिक ग्रोर प्रधान हैं क्योंकि राज मुसलमानों के ही हाथ में है। मेरे पाठकों में बहुतेरे ऐसे होंगे जो कि देश के इस प्रान्त के (जिसकी राजधानी लखनऊ है) विषय में कुछ भी नहीं जानते होंगे। इसलिये यहां पर कुछ संक्षेप में वर्णन करना मैं उचित समझता हूं।

लन्दन में एक प्रकार की चटनी "शाह अवध की चटनी" के नाम से प्रसिद्ध है ग्रोर "अवध का बादशाह बड़ा अहङ्कारी है" यह कहावत भी लन्दन के व्यापारियों की मण्डली में खूब प्रसिद्ध है, जिसे प्रायः सब जानते हैं। गत शताब्दी के अन्तिम भाग में जब लार्ड वेलेज़ली गवर्नरजनरल होकर भारतवर्ष ग्राए तो उस समय अवध विस्तार में इङ्गलिस्तान से बड़ा था ग्रोर मुगल राज्य का एक सूबा गिना जाता था ग्रोर यहां के हाकिम नवाब वज़ीर कहे जाते थे। जबसे वारेन हेसटिङ्ग्स ने नवाब वज़ीर के वंश की दो बेगमों को लूट कर उनके "रफ़ीक" ख्वाजासरा से बहुत सा धन बलात् छीन लिया, तभी से इन नवाब वज़ीर से इङ्गलिस्तान के अधिकांश लोग परिचित होगए हैं। क्योंकि सर एडमण्ड बर्क ने अपनी अद्वितीय जगत्प्रसिद्ध वक्तृता में हेसटिङ्ग्स की प्रतिष्ठा ग्रोर मान को भलीभांति चिथाड़ के रख दिया है ग्रोर तभी से अवध के नवाब वज़ीर योरप में एक "सितम रसीदा" ख्याल किए जाते हैं। पर वास्तव में ये नवाब साहेब अपने पूर्वाधिकारी की विधवा बहू बेगम के अपमान ग्रोर अनादर पर इसलिये बड़े प्रसन्न हुए कि वह उनकी सगी मा न थी ग्रोर वे उनके मुतबन्ना (पुण्यपुत्र) थे। मैं कह चुका हूं कि जब बेलेज़ली भारत में ग्राए तो उस समय अवध इङ्गलिस्तान से बड़ा था ग्रोर शुरू से अंगरेज़ों का मित्र समझा जाता था। लार्ड वेलज़ली ने भारत में पहुंच कर अवध की मित्रता की जाँच की ग्रोर उसका आधा राज्य बंगाल सूबे में सम्मिलित कर लिया, क्योंकि उनके ख्याल में मित्रता की जाँच इससे बढ़कर दूसरे तैार पर नहीं हो सकती थी। उनका यह भी ख्याल था कि जिस देश के बादशाह ने उनके साथ सच्चा हित प्रगट किया है उनकी प्रजा को अपनी प्रजा बना लेना ही उसकी मित्रता का प्रतिफल देना है।

मारकुइस-ग्राफ हेसटिङ्ग्स ने गाज़ीउद्दीन से दो कड़ोड़ रुपया उधार लिया। इसके बदले में नवाब को तराई की ऊसर भूमि प्रदान की जो कि हिमालय के नीचे के हिस्से में स्थित है, ग्रोर जिसे कम्पनी ने नैपाल से युद्ध में जीता था। इसीके साथ नवाब को बादशाह की उपाधि भी प्रदान की ग्रोर वे "हिज़ हाइनेस नवाब अवध" अथवा "हिज़ मेजेस्टी शाह अवध" कहे जाने लगे। बिचारे

गाज़ीउद्दीन शान्त हो बैठे वा यों कहिए कि प्रत्यक्ष में बन गए * ।

सन् १८१९ ई० में कम्पनी ने गाज़ीउद्दीन को बादशाह का तिलक दिया; और १८२७ में उसका बेटा नसीरुद्दीन गद्दी पर बैठा । जब मैं लउनऊ में आया तो यह नसीर तीस वर्ष का पट्ठा था ।

इस गई बीती अवस्था में भी अवध का देश त्रिभुज आकार में नैपाल और गङ्गा के बीच में स्थित है । उत्तर में इसकी सरहद्द नैपाल में जा मिली है, और दक्षिण में गङ्गा नदी इसकी सिवान है । इसका पश्चिमोत्तर भाग दक्षिण पूर्व की ओर ढालुआं है । अवध भर में उन्नत भूमि केवल वही है जो मारकुइस आफ हेसटिङ्गस् ने नैपाल युद्ध के बाद नवाब को प्रदान की थी । परन्तु इस तराई के प्रान्त में आदमियों की बहुत कम बस्ती है। जानवर बहुत हैं और यदि धन है तो वह जङ्गल ही का ।

यद्यपि हर एक गवर्नर जनरेल ने एक दूसरे के बाद अवध को लूट मार से खोखला बना दिया था,—किसीने उसकी उपजाऊ भूमि में से ही कुछ काट छांट कर ली और किसीने धन की ही नोच खसोट की है,—परन्तु फिर भी अवध का बचा हुआ भाग जर्मनी के किसी भाग से (प्रशीया और आस्ट्रिया छोड़ कर) बस्ती में कम नहीं है । यदि विस्तार का बिचार किया जाय तो वह हौलेण्ड, बेलजीयम, और डेन्मार्क तीनों के योग से बड़ा है, वा यों कहिए कि सुइजरलेण्ड, सैक्सनी और वेटमवर्ग यदि तीनों ही एक हो जावें तब भी अवध ही बीस रहेगा । यदि अवध योरप में होता तो हर एक सूबे से बढ़ा चढ़ा गिना जाता । गौरव में यह बैवेरिया अथवा नेपल्स की तुलना कर सकता है । परन्तु एशिया में इसकी गिनती भी नहीं है ।

मैं कह चुका हूं कि मैं किसी कार्य्यवश लखनऊ आया था । केवल देश की सैर करना मेरा अभिप्राय न था । इस समय आनरेबल कम्पनी उन लोगों को बड़ी तुच्छ दृष्टि से देखती थी जो बिना प्रयोजन देश की सैर किया करते थे । अवध के शाही दरबार में मेरे एक मित्र थे । मैंने इनके ही द्वारा दरबार तक पहुंचने की कोशिश की और भाग्यवश मुझे आज्ञा भी मिल गई । मैंने दरबार में जाने की इच्छा केवल इसी ख्याल से की थी कि देखूं हिन्दोस्तानी दरबारों का क्या रङ्ग रवैया होता है । इसके अलावे मेरा कोई और भाव न था । जब से दिल्ली के कारख़ाने छिन्न भिन्न हुए और उसकी पहली शान शौकत मिट्टी में मिली तब से हिन्दुस्तान में कोई दूसरी सलतनत ऐसी नहीं रही जो लखनऊ से बराबरी का दम भर सके । अवध के दरबार में अपने हानि लाभ की रखवारी के लिये कम्पनी ने एक अङ्गरेज़ अफ़सर नियत कर छोड़ा था । मेरा परिचय इन अफ़सर साहेब ने दरबार से नहीं कराया, इस कारण बादशाह सलामत ने मेरा बड़ा आदर किया । मुझे टोह लगी कि दरबार के खानगी अङ्गरेज नौकरों में एक जगह खाली है । यदि मैंने उचित भेट दी और वह भेंट स्वीकार कर ली गई तो मैं उस पद पर नियत हो सकता हूं* । परन्तु तब तक कोई युरोपियन अवध के बादशाही में नौकर नहीं हो सकता था जब तक कि रेज़ीडेंट साहेब की मंज़ूरी न होवे, यों कहिए कि जब तक रेज़िडेंट साहेब की आज्ञा पहिले से हासिल न कर लेवे । इसलिए मेरे लिये भी जरूरी हुआ कि मैं भी उनकी आज्ञा

* मैंने यह बात जो लिखी है वह बिलकुल ऐतिहासिक है । कलकत्ता रेव्यू (Vol 3. p. 376) में एक लेखक लिखता है कि 'मुझे विश्वास है कि वारेन हेसटिङ्गस्, लार्ड वेलजली लार्ड टेनमथ, लार्ड हेसटिङ्गस्, लार्ड ओकलेण्ड अपने निज व्यावहार में कभी विचारे अवध के साथ यह वर्ताव नहीं करते जो उन्होंने गवर्नर-जेनरल होकर किया है ॥

*अभी साहेब बहादुर ऊपर कह आए हैं कि मेरी तबियत देशी दरबार का रङ्ग रवैया देखने की थी, पर अब मालूम हुआ कि आप की मनसा (इच्छा) कुछ और रही थी । वह सब ढकोसला था ।

पहिले ले लूं। मैं अब "बड़े साहेब" के सामने पेश किया गया जो लन्दन में एक साधारण जीव समझे जाते हैं। उनके अधिकार यहां इस देश में एक बादशाह और उसकी पचास लाख प्रजा पर ऐसे अपार थे कि वे अधिकार योरप में किसी बादशाह को भी हासिल न होंगे। सारांश यह कि "बड़े साहेब" से मेरा परिचय कराया गया। मेरे उनके बीच कुछ चिट्ठी पत्री हुई और अन्त में इस शर्त पर उनकी मंजूरी मिल गई कि मैं अवध के किसी राजनैतिक मामले में किसी प्रकार दखल न दूंगा और न किसी ऐसी साज़िश में सम्मिलित होऊंगा जो दरबार में सम्मान और अधिकार पाने के लिये वज़ीरों के बीच हुआ करती है वा दो जमींदारों के बीच आपस की लड़ाई में मैं किसी का पक्ष न लूंगा। इन प्रतिज्ञाओं पर बादशाह की दास्यशृङ्खला में भरती होने की मुझे आज्ञा मिली और अब बादशाह की सेवा में हाजिर होना मेरे लिये ज़रूरी हुआ। पूर्व के देशों में यह चलन है कि बादशाह के सामने कोई पुरुष खाली हाथ नहीं जाता। ऐसी हालत में कुछ भेट करनी उसके लिये बहुत जरूरी है। दरबार के नियमानुसार मामूली दरबारों में भी बादशाह को कुछ भेट दिखानी पड़ती है, यद्यपि इसके बाद ही बादशाह की ओर से किसी दूसरे रूप में उसे अधिक मूल्य का इनाम अथवा खिल्लत मिलती है। पहिले मर्तबा मैंने बादशाह को भरे दरबार में एक सिंहासन पर बैठे देखा था। मैंने विचारा था कि वह गद्दी पर पलथी मारे बैठे होंगे। परन्तु वह भारी काम का वस्त्र पहिने सिर पर जड़ाऊ मुकुट (जिसपर हुमा के पर की कलगी लगी थी) धारण किए हुए एक सुन्दर सुनहरी जगमगाती कुर्सी पर बिराज रहे थे। मेरी आशा के विरुद्ध उनके पहिनावे और दरबार की सजावट से बहुत कुछ युरोपियन भाव की झलक आ रही थी। उस बेर जल्दी के कारण मैं किसी चीज़ को जी भर के नहीं देख सका था, यहां तक कि बादशाह का चेहरा भी भली भांति न देखने पाया था; परन्तु इस बेर जब मैं एकान्त में हाज़िर हुआ तो उस समय हजूर अपने कुछ युरोपियन खानगी नौकरों के साथ महल की फुलवारी में चहल कदमी कर रहे थे। मैं एक रविश के किनारे खड़ा हो बादशाह की बाट जोहने लगा। मेरे हाथ में एक रेशमी रुमाल था, जिसपर भेट के लिये मैंने पांच अशरफियां रख छोड़ी थीं, और इस रूमाल और इन अशरफियों को बांए हाथ से संभाले था। इस स्थिति में मैं बादशाह की राह देख रहा था। दरबार के नियमों के सीखने का मेरे लिये यह पहिला अवसर था। जब मैं अपने खड़े होने के इस ढंग को देखता तो आप अपने को मूर्ख बिचारने लगता था। मेरी टोपी अलग एक कुर्सी पर पड़ी थी और मैं नंगे सिर खड़ा था। जब तक बादशाह सलामत आवें आवें, तब तक धूप की गर्मी के मारे पसीने से मैं नहा गया। बारे, अब बादशाह अपने मित्रों सहित आन पहुंचे। इस समय वह एक अंगरेज़ी जेन्टलमैन की नाई सादा काला सूट पहिने हुए थे। सिर पर लन्दन की बनी एक टोपी थी। उनका चेहरा जो हलके सीप के रंग का था, इस समय विह्वल और सन्तुष्ट दीख पड़ता था। हलके सीप के रंग पर काली काली मोंछें और सिर के बाल अति शोभा दे रहे थे। नेत्र छोटे पर काले और चमकीले थे। छरहरा बदन और मियाना कद था। जब वह मेरे पास पहुंचे तो साथियों से अंगरेज़ी में बात चीत करते आते थे। मुझे याद नहीं कि वे सब आपस में उस समय क्या बातें करते थे। मैंने उनकी सब बातें सुनीं पर स्मरण नहीं है। कारण यह है कि मैं उस समय अपनी ही धुन में इतना मग्न था कि उधर ध्यान न दे सका।

बादशाह अब पास पहुंच गए। मुझे देख के मुसकराए और अपने बांए हाथ को मेरे हाथों के नीचे रख के दाहिने हाथ की उङ्गलियों से मेरी भेट को छू के कहने लगे—"हां—तो तुमने मेरे यहां नौकरी करना स्वीकार कर लिया—क्यों?"

"जी हजूर !" मेरा उत्तर था ।

"तो हममें खूब बनेगी, क्योंकि हम अंगरेज़ों को दिल से चाहते हैं"।

यह कह कर बादशाह ने पहिली बात चीत छेड़ दी और मैं चुपके से सेवकदल में हो लिया।

मेरे एक मित्र ने चेतावनी दी कि भेट की अशरफियां जेब में रखलो, नहीं तो कोई हिन्दुस्तानी (नैकर) छीन लेवेगा। मैंने तत्काल मोहरें जेब में धर लीं और अपनी टोपी उठा शाही दल के साथ महल की ओर चला। इस महल के कमरे बहुत बड़े थे और बड़े बड़े झाड़ फानूस लगे थे और जगमगाते चैाखटों में उमदः उमदः तस्वीरें लटक रही थीं। हर एक कमरे में इतनी चीज़ें भर दी गई थीं और ऐसी ऐसी विलक्षण चीज़ें थीं कि आदमी उन्हें देख के प्रसन्न होने के बदले भैाचक सा रह जाता था। जगमगाते झाड़ फानूस, चन्दन और हाथी दांत की अलमारियां, बहुमूल्य बस्त्र और कवच, हीरे और जवाहिरात जड़े हुए हथियार और ढालें, चारो ओर बड़ी खूबसूरती से सजे हुए थे। जिधर नज़र जाती उधर ही इन चीज़ों की भरमार थी। परन्तु बादशाह के भोजन का गृह, जिसमें वे बैठ के अपने चुने हुए मित्रों के साथ भोजन और पान किया करते थे, निहायत साफ और सुथरा था और बड़ी ही सादी चाल पर सजा हुआ था। सजावट और सादगी में यह कमरा ठीक अंगरेज़ी भोजनगृहों से बहुत कुछ मिलता था।

महीने में एक बेर बादशाह अपने अंगरेज़ी मुलाज़िमों को एक आम भोज देते थे, जिसमें सेना के अंगरेज़ी अफ़सर छावनी से आ कर शरीक होते थे। कभी कभी इस भोज में रेज़ीडेंट साहेब भी अपने मित्रवर्ग सहित बुलाए जाते थे। परन्तु ऐसी ज्योनार बादशाह के जी की जंजाल होजाती थी। क्योंकि इसके अन्त में मैंने बादशाह को प्रायः यह कहते सुना है कि "शुक्र है कि यह काम भी कुशल पूर्वक समाप्त हुआ और ये सब अपने अपने घर गए। अब आओ आराम से एक जाम शराब पीएं। बापरे बाप! यह सब भी कैसा झंझट है!" इसके साथ ही बादशाह अंगड़ाई लेते और लेट जाते और अपनी बहुमूल्य टोपी उतार कर कमरे के किसी ओर फैंक देते थे।

पहिले पहिल जिस रोज़ मेरा महल में प्रवेश हुआ, उसी दिन बादशाह ने एक प्राइवेट ज्योनार दी थी, जिसमें नियमानुसार पांच अंगरेज़ मुलाज़िम शरीक थे। इनमें बादशाह के एक अंगरेज़ मास्टर भी थे जो उन्हें अंगरेज़ी की शिक्षा दिया करते थे। बादशाह ने कई बेर प्रति दिन एक घंटा अंगरेज़ी पढ़ने की प्रतिज्ञा की, क्योंकि तेज़ी से अंगरेज़ी बोलने का उन्हें बहुत ही बड़ा शैाक था। परन्तु अंगरेजी बोलती बेर समय समय पर उन्हें प्रायः उर्दू के शब्द इस्तैमाल करके काम चलाना पड़ता था। मैंने कई बेर देखा है कि बादशाह अपने अंगरेज़ शिक्षक के सामने बैठे हैं और सामने टेबिल पर पुस्तकें चुनी हुई हैं। बादशाह को मैंने प्रायः कहते सुना कि "हां मास्टर साहेब! अब हमको पढ़ना चाहिए"। बादशाह अपने शिक्षक को सदा मास्टर साहेब ही कहा करते थे। पहिले मास्टर साहेब Spectator स्पेकटेटर (प्रसिद्ध गद्य ग्रन्थ ऐडिसन कृत) वा किसी नावेल का कुछ अंश पढ़ते थे। उसके बाद बादशाह को वही अंश स्वयं ही पढ़ना पड़ता था। मास्टर साहेब उसीको दुहराने लगते और बादशाह सलामत फरमाते कि "बाप रे बाप * ! क्या खुश्क और बेनिमक मज़मून है"। फिर जब बादशाह को पढ़ने की पारी आती तो वह मास्टर साहेब से कहते "आओ एक बेर शराब उड़ जावे"। शराब पीने के साथ ही बादशाह बातें में लग जाते। पुस्तकें फेंक दी जातीं और शिक्षा का यहीं से अन्त हो जाता। इस शिक्षणपद्धति में कभी दस मिनिट से अधिक न

* "बाप रे बाप" सुनने में बहुत बुरा लगता है। परन्तु शब्द खुद बादशाह सलामत के हैं। अंगरेज़ी ग्रन्थकार Boppery Bop करके इसे अंगरेज़ी बना दिया है।

लगता था। परन्तु इसीके लिये मास्टर साहेब के १५ सौ पाउन्ड (१५ हज़ार रुपया) वार्षिक वेतन मिलता था। यह मास्टर साहब बादशाह के मुसाहिबों में से थे। पुस्तकालय के अध्यक्ष एक जर्मन चित्रकार और गायक और उनके बाडीगार्ड के कप्तान थे। ये सब भी उनके मुसाहिब थे। परन्तु इन सब में उनका एक मुहलगा हजाम मुसाहिब अङ्गरेज़ था जिसको बादशाह सलामत ने बहुत ही सिर चढ़ा रक्खा था। मैं भी उनके मुसाहिबों में से एक था, परन्तु इन सब मुसाहिबों में से हजामदास की बड़ी बात थी। बादशाह के मिजाज़ में जितनी पहुंच इस शक्स की थी उतनी वज़ीर आज़म की भी न थी। बादशाह का ऐसा स्नेहपात्र होने से दरबार के बड़े बड़े अमीर भी उसकी दरबारदारी किया करते थे। यदि सचाई से उसका यहां का जीवनवृत्तान्त लिखा जावे ते बड़ाही रोचक और विचित्र होगा। इसलिये जो कुछ मुझे मालूम है मैं बिना कतरब्योंत किए यहां लिखता हूं। यह महाशय कलकत्ते में जब आए ते एक जहाज़ के मेट बन कर आए थे। लन्दन में पहिले यह हजामत और बाल काटते थे और इसीमें इनका हाथ भी खूब मजा हुआ था। इसीलिये ज्योंही कलकत्ते में पैर धरा वैसे ही मेटवृत्ति के लात मार फिर अपनी किसमत बगल में दबा उस्तुरे कैञ्ची के रोजगार में प्रवृत्त हुए। कहते हैं कि कुछ काल बीते वे अपने फ़न में शैतान से भी ज्यादः बढ़ कर प्रसिद्ध होगए। परन्तु शीघ्र ही अपने इस पेशे के फिर छोड़ना पड़ा और युरोपियन व्यापारियों के साथ माल बेचने के लिये वे किश्तियों में सफर करने लगे। इसी हीले से वे अब लखनऊ जा पहुंचे और वहां पहुंच कर रेज़िडेण्ट साहेब से मिले। (यह वह रेज़िडेण्ट साहेब नहीं है जो मेरे समय में थे)। रेज़िडेण्ट साहेब के इस समय अपने सर के बाल घुंघरीले बनवाने की बड़ी इच्छा थी। वह उसी फिक्र में इस समय व्यग्र हो रहे थे कि किसी प्रकार उनके बाल सिज़िल होजावें और नख सिख से दुरुस्त होकर वह फिर से नौजवान दीखने लगें। हमारे हजामदास जो अब व्यापारी बने थे, इस अवसर को क्यों हाथ से जाने देने लगे थे। टोह लगते ही व्यापार को लात मार उन्होंने अपना पुराना रोज़गार जारी कर दिया; और रेज़ीडेंट साहेब की मनोकामना पूर्ण करने के लिये उनके यहां जा पहुंचे। हाथ तो मजा हुआ ही था, फिर क्या? जी लगा के इन्होंने रेज़ीडेंट साहेब का बाल अब की इस सफाई से बनाया और दुरुस्त कर दिया कि उनके मुंह की तो काया पलट ही कर दी। बस, फिर क्या था, बड़े साहेब इनके चेले हो गए और ऐसे प्रसन्न हुए कि उन्होंने आप खुद ले जा के बादशाह से परिचय कराया। यह रेज़ीडेंट साहेब इस समय इङ्गलिस्तान में तशरीफ़ रखते हैं और इनके नाम के साथ इस वक्त एम. पी. (मेम्बर आफ पार्लियामेंट) का एक पुछिल्ला लगा हुआ है।

बादशाह के सिर के बाल भी सीधे साधे थे और जैसे कुत्ते की दुम सीधी नहीं होती, वैसेही इनके बाल टेढ़े नहीं होते थे। घूंघर तो दूर रहा, बाल जरा भी खमदार नहीं हो सकते थे। हमारे हजामदास ने फिर अपना करतब दिखाया और बादशाह के सिर के बालों में ऐसी लहर पैदा कर दी कि वह भी बिचारे इनपर रेशखतमी हो गए और इस काम के लिये इनका दम भरने लगे। बस, अब क्या था, हमारे हज़ामदास की खूब बन पड़ी। चारों तरफ़ से धन और सम्मान की इनपर बौछार होने लगी। जिधर सुनिए उधर इनकी ही चर्चा हो रही है, जिधर देखिए उधर ही हज़ामदास मियां मिठ्ठू बने फिर रहे हैं। बादशाह ने शीघ्र "सरफराज़ खां" की उपाधि से इन्हें विभूषित किया और अवध की अमीर ग़रीब प्रजा अब इनके आगे माथा झुकाने लगी। कलकत्ते के मिस्टर मेट का अब वह ज़माना न रहा, अब वह दरबार के एक बड़े आदमी माने जाने लगे और आसमान फाड़ के उन्हें धन की वर्षा होने लगी। देशी राजवाड़ों में जो आदमी राजा का मुंह

लगा या स्नेहपात्र होता है, उसके लिये धनिक बन जाना कुछ बड़ी बात नहीं है; बात की बात में वह धनसम्पन्न हो जाता है। रिशवत लेने के अतिरिक्त फायदे उठाने को ग्रैार भी कई एक प्रणालियां हजामदास के हाथ में थीं। शाही मेज़ पर जो शराब उड़ती थी वह सब इनके ही मार्फत से ग्राती थी। इनके ग्रलावे दरबार में ग्रैार जिन विलायती चीज़ों की मांग होती, वह भी इन्हींके द्वारा मंगाई जाती, सब चीज़ों में हाजमदास की दलाली ठहर ही जाती थी। सारांश यह कि उन्होंने इन प्रणालियों से हज़ारों रुपए बना लिए थे। नसीरुद्दीन ने इस हज़ाम को बड़े बड़े इज्ज़त ग्रैार खिल्लत दिए ग्रैार दरबार में वे सबसे ज्यादा उसीपर विश्वास करने लगे। नैाबत यहां तक पहुंची कि धीरे धीरे वह बादशाह के साथ बैठ के नित्य प्रति एक ही मेज़ पर खाना खाने लगा ग्रैार बादशाह के बगल में बैठने का ग्रधिकार मानों उसीको प्राप्त हो गया था ग्रैार बादशाह भी किसी दूसरे के हाथ की खोली हुई बोतल नहीं पीते थे। बादशाह के चित्त में यह समा गया था कि कहीं मेरे वंशवाले कदाचित मुझे विष न दे देवें। इसके बचाव के लिये हर एक बोतल पर पहिले हजाम दास की मोहर लगती थी ग्रैार फिर वह शाही मेज़ के लिये महल में ग्राती थी। हर एक बोतल को खोलने के पहिले वे पूरी जाँच कर लेते थे ग्रैार फिर खोलने पर थोड़ी पहिले ग्राप चख लेते थे, इस के पीछे बादशाह का गिलास भरा जाता था। जिस समय मैं मेज़ पर पहिले पहल पहुंचा उस समय ये सब बातें जारी थीं।

बादशाह ग्रवध का एक विश्वासपात्र हजाम ग्रंगरेज़ है, इस बात की शोहरत हिन्दोस्तान भर में फैल गई थी ग्रैार ख़ासकर बंगाल में यह बात हर एक लड़के के मुंह पर चढ़ी थी। (Calcutta Review) कलकत्ता रेव्यू ने ग्रपने एक लेख में इसे (low menial) हक़ीर नैाकर कहकर कटाक्ष किया है ग्रैार पूरे तैार से इसकी दुर्गति की ग्रैार धज्जियां उड़ाई हैं। परन्तु वह ग्रपने रुपए कमाने की धुन में ऐसा मस्त था कि उसको इन बातों पर कुछ ख्याल न था। वह इसीमें सन्तुष्ट था कि लोग उपहास करें तो करें, हम तो ग्रपने रुपए कमाने में मस्त हैं।

ग्रखबारों में सबसे बढ़कर उनकी निन्दा ग्रैार उपहास करनेवाला "ग्रागरा ग्रखबार" था जो ग्रब बन्द हो गया है। मेरे लखनऊ से विदा होने के कुछ पहिले हजामदास ने एक ग्रंगरेज़ को सैा रुपए महीने पर नैाकर रक्खा था, जिसका काम यह था कि वह ग्रागरा ग्रखबार के ऐसे लेखों का उत्तर प्रत्युत्तर दिया करे जिसमें हजामदास के ऊपर कुछ भी कटाक्ष होवे। यद्यपि इनका निज का कोई (Poet laureate) राजकवि न था पर (London Times) लन्दन टाईम्स की नाईं उनके यहां वैतनिक सम्वाददाता ग्रवश्य बहुत से नैाकर थे।

शाही खाने की मेज़ पर जब मैं पहिले पहल पेश किया गया हूं तो बादशाह ग्रैार उनके मुसाहिब मिस्टर बारबर (हजामदास) के देखने ग्रैार उनके मिलने की मुझे बहुत बड़ी इच्छा थी। परन्तु ग्रन्य विषयों के वर्णन करने में मैंने इतना समय ग्रैार स्थान ले लिया है कि इसका वर्णन मैं ग्राप को ग्रब दूसरे ग्रध्याय में सुनाऊंगा॥ [शेष ग्रागे

ले० केशवप्रसाद सिंह

महाराष्ट्रीय जातिका अभ्युदय

यादव वंश वाले जिस समय इस देश के शासक थे, ईसवी १३वीं सदी के ग्रन्त भाग में, मुसलमानों के साथ महाराष्ट्रों की पहिले पहल मुठ भेड़ हुई थी। ईस्वी १२९४ में ग्रलाउद्दीन खिलजी ने ग्राठ हजार घुड़चढ़ी सेना ले ग्राखेट के मिस से दक्षिण देशों पर चढ़ाई कर सहसा महाराष्ट्र देश की राजधानी देवगिरि को जा घेरा। जाती बेर उन्होंने लोगों से य

प्रसिद्ध किया था कि दिल्लीश्वर के बर्त्ताव से चिढ़ मैं राजमहेन्द्री के राजा के दरबार में अपनी जीविका की खोज के लिये चला हूं। इस झूठी बात को सचमान किसी हिन्दू नरपति ने उससे बाट में रोकटोक न की। कहते हैं, जिस समय अलाउद्दीन ने नगर घेर लिया था, उस समय महाराष्ट्रपति रामदेव राव सपरिवार कहीं देवदर्शन के लिये गए हुए थे। चुपचाप औचक अपनी नगरी के घिर जाने पर अनेक उपाय करने पर भी वह उसकी रक्षा न कर सके। अलाउद्दीन की कुटिल मति के आगे राजा की कुछ भी चतुराई काम न आई। निदान दिल्लीपति की आधीनी मान लेनी पड़ी।

उस समय हिन्दू राजाओं की ऐसी परिपाटी थी कि जब कोई किसी राजा पर चढ़ाई करता था, तब चढ़ाई करने से पूर्व्व ही शत्रु को सूचना दे देता था। बिना पूर्व्व सूचना दिए बैरी पर चढ़ाई करने को वे लोग निन्दित कर्म्म मानते थे और ऐसा करनेवाले को कायर पामर समझते थे। यही परिपाटी मरट्ठों की थी, ऐसा चीनदेश का यात्री (परिब्राजक) हुवेनथशाँग के भ्रमण-वृत्तान्त में लिखा है। यही नीति राजपूताने के राजाओं की भी थी। इसीलिये उस समय के रजवाड़े सदा काल युद्धसज्जा से सुसज्जित रहा करते थे। मुसलमानों की इस परिपाटी से उल्टी रीति थी, इसीसे हिन्दू रजवाड़े सहज ही में उनसे पराजित हो गए थे। सरल युद्धनीति की प्रथा से और परराष्ट्र के बलाबल और उपयुक्त युद्धचालक नीति (Guiding principal) के बिना हिन्दू राजे युद्ध में पराजित होते चले गए।

राजा के हार जाने पर भी मरट्ठों ने सहज ही में अपनी स्वाधीनता न छोड़ी। मुसलमानों की सौ वर्ष की चेष्टा और उन लोगों की कुटिल रीतिमूलक युद्धप्रणाली के गुण से ईसवी १५वीं सदी के प्रारम्भ में मरट्ठों की स्वाधीनता का लोप हुआ। इसके उपरान्त ढाई सौ वर्ष के बीच महाराष्ट्र देश की जैसी कुछ अवस्था हो गई थी, उसे छत्रपति शिवाजी से रामदास स्वामी ने यों कहा था—

"जितने तीर्थक्षेत्र थे वे सब नष्ट हो गए हैं, ब्राह्मणों के रहने के स्थान सब अपवित्र कर दिए गए हैं, सारी पृथिवी पर युद्ध होने के कारण धर्म्म का नाश हो गया है। ब्राह्मणलोग अपना अपना धर्म्म कर्म्म छोड़ मुसलमानों के रंग ढंग पर चल निकले हैं। धार्म्मिकों का उत्साह शिथिल हो रहा है। प्रजावर्ग के सुख सम्मान का लोप हो गया है। यवन उनसे खोटा बर्ताव कर रहे हैं और मनमानी यन्त्रणा दे रहे हैं।"

देश की इस दुर्दशा को मेटने के लिये महात्मा रामदास ने जो उपाय बताए थे, वे यह हैं—

"धर्म्म की रक्षा के लिये जीवन को न्योछावर कर देश से म्लेच्छाभाव हटाने के लिये देश भर के सब मरट्ठों को एक मत कर अपने धर्म्म को फैलाओ। देवद्रोहियों को कुत्ते सा दुर्दुरा के देश से निकालो। देवताओं को शीश पर धारण कर, परस्पर में एका बांध बैरियों को परास्त करने का दृढ़ संकल्प करो। दृढ़ता और अध्यवसाय के साथ बैरियों पर चारों ओर से आ टूटो। स्वदेशबैरियों का बिनाश कर अपने देश और धर्म्म की रक्षा करो। निज प्राण से प्यारे धर्म्म की विजय पताका उड़ाने के हेतु नए नए देशों पर चढ़ाई कर महाराष्ट्र धर्म्म और मरट्ठों का राज स्थापन करो।"

सत्रहवीं सदी में मरट्ठों के चित्त की कैसी अवस्था थी और उनमें चिन्ताशील लोगों के चित्त का क्या भाव था, उसका आभास रामदास स्वामी के इन ऊपर कहे हुए उपदेशों से ही पाठक समझ लें। एकनाथ और तुकाराम प्रभृति धर्म्मशिक्षकों ने निज निज उपदेशों से सोते हुए लोगों को जगा के दृढ़ कर दिया था। उस समय मरट्ठों के सिवाय और और स्थान के रहनेवालों के चित्त में भी धर्म्म के पक्ष पर उत्तेजना आ गई थी। उस समय अपने ऊपर अनेक कष्ट सहन करने पर भी वे निज धर्म्मपथ से विचलित नहीं होते थे।

परन्तु मरट्ठे अपने धर्म्म की ऐसी अवनति सहन न कर सके। तेजस्वी मरट्ठों के देश में रामदास स्वामी के उपदेशों को सुन वीरजाति शीघ्र ही चैतन्य हो उठी। इसी तौर पर रामदास स्वामी के कहे हुए "महाराष्ट्र-धर्म्म" और सहनशील हिन्दू-धर्म्म में भिन्नता आ गई थी।

स्वधर्म्म और स्वराज्य रक्षा तथा अपने धर्म्म के फैलाने की प्रबल लालसा मरट्ठों के चित्त में लगभग डेढ़ सौ वर्ष तक जागती रही। सन् १६४६ ईसवी में शिवाजी ने तोरनागढ़ स्थापन कर मानों मरट्ठों के राज्य की बुनियाद डाल दी थी। सन् १७९९ ईसवी के अन्त में पेशवा बाजीराव सिंहासन पर बैठ स्वराज्य के माने ध्वंससाधन में तत्पर हुए। इस डेढ़ सौ वर्ष में से बिना युद्ध के कोई वर्ष खाली न गया था। इस बात का अचरज है कि इतने दिनों में जितने प्रधान प्रधान संधिपत्रों पर उन लोगों ने स्वाक्षर किए थे, उनमें एक भी ऐसा न था कि जिसमें गोब्राह्मण की रक्षा के बारे में न लिखा हो, अर्थात् शत्रुओं से यह प्रतिज्ञा करवा लेते थे कि हम गोब्राह्मणों को रक्षा करते रहेंगे। माने सन्धिपत्रों पर यह लिखवा लेना उन की प्रधान प्रथा ही थी। यदि आँखों पर अंगरेज़ी चश्मा न लगा दिव्य चक्षु से देखिए तो स्पष्ट देख पड़ेगा कि, गोब्राह्मण की रक्षा और तीर्थस्थानादिकों के संस्कार के ही लिये ईश्वर ने भारत में मरट्ठों का राज्य संस्थापित किया था।

स्वधर्म्मरक्षा के लिये सन् १६४६ ईसवी से सन् १७०७ ईसवी तक अदमनीय पराक्रम के साथ मुसलमानों से युद्ध कर अपने राज्य की बुनियाद मरट्ठों ने सुदृढ़ कर ली थी। सन् १६८० तक महात्मा शिवाजी उन लोगों के मुखिया रहे। मरट्ठों के बैरी अपने लिखे इतिहासों में भले ही मन माना उनके बारे में लिख दें, पर स्वधर्म्म की रक्षा करना ही शिवाजी का मुख्य अभिप्राय था, इसमें कोई भी सन्देह नहीं है। धर्म्मसंस्थापन के लिये स्वामी रामदास जी ने शिवा जी को जो कुछ उपदेश वाक्य कहे थे उनमें से हम कुछ ऊपर लिख आए हैं। रामदास जी ने किसी अनुपयुक्त मनुष्य को उपदेश नहीं दिया था। चिन्ताशील जन मात्र शिवाजी को वीर, धर्म्मात्मा और ज्ञानानुरागी मानते थे।

पाश्चात्य महापुरुषों के साथ तो शिवाजी की तुलना ही नहीं हो सकती थी। क्योंकि सिकन्दर शाह के ऐसा उन्होंने कभी किसी स्वजन-बान्धवों की हत्या कर अपनेको कलुषित नहीं किया था, सीजर के ऐसा अपनी सहधर्म्मिणी के साथ दुर्व्यवहार नहीं किया था, नेपोलियन की ऐसी अधर्म्मजनक हत्याएं नहीं की थीं, क्रामवेल ने जैसा आयरलैण्ड वालों को विनाश करने का प्रयत्न किया था, शिवाजी ने कभी ऐसे निन्दनीय कर्म्म नहीं किए थे, न फ्रेडरिक से बैरी के वे वशीभूत हुए थे। पक्षान्तर में उनकी सदाचार परायणता, पराजित शत्रु और स्त्रियों के प्रति ... से यत्न, सज्जनों के सत्संग की लालसा, प्रसिद्ध है। जब किसी राज्य पर वे चढ़ाई करते तो उस समय अपराधी किसानों या परोपकारी जनों पर किसी प्रकार से अत्याचार न करते और मुसलमान पीर, फ़कीर, मसजिद, कुरान प्रभृति का अवमान न हो, सदाकाल इन बातों का ध्यान रख वे जगत् में अक्षय यश रख गए हैं। स्वयम् भवानी ने उन्हें स्वराज्य स्थापन की आज्ञा दी थी, शिवाजी को इस बात पर दृढ़ विश्वास था। जब कभी उनपर किसी प्रकार का संकट आ जाता था, तब व्रत कर के वह भवानी की उपासना में चित्त लगाते थे। बखर के लिखनेवालों ने लिखा है कि स्वयम् भवानी की छाया उन पर आ जाती थी और उनके हितकर उपदेश उन्हें दे जाती थीं। बम्बई हाइकोर्ट के विचारपति विज्ञवर श्रीयुत महादेव गोविन्द रानाडे महोदय कह गए हैं कि बखर लिखनेवाले जो कुछ लिख गए हैं यथार्थ ही लिखे गए हैं। उनका विश्वास है कि संकट के समय जैसा भवानी आज्ञा दे जाती थीं वैसा ही वह कार्य करते थे। शिवा जी की भवानी के चरणों पर

अकृत्रिम भक्ति थी और उनका यह दृढ़ विश्वास था कि धर्म्मरक्षा और स्वराज्यस्थापन कार्य्य में मुझे भवानी ने नियोजित किया है। ये बातें उनकी कार्य्य-कलाओं ही से स्पष्ट जान पड़ती हैं। उनकी अटल भक्ति भगवन्निष्ठा और भगवान की अलौकिक शक्ति के ऊपर विश्वास ही ने उन्हें और उनके साथी मरट्ठों को मुगलशाही, आदिलशाही और कुतुबशाही की छाती पर मरट्ठाशाही की बुनियाद बैठाने में समर्थ किया था। क्योंकि इस राष्ट्रीय धर्म्मविश्वास का प्रकृत-स्वरूप ज्ञान बिना हुए महाराष्ट्र जाति के इतिहास का विशेषत्व सम्यक प्रकार से हृदयङ्गम होना असम्भव है। ईसवी सत्रहवीं सदी में महाराष्ट्र साहित्य में इस राष्ट्रीय धर्म्म विश्वास का समुज्वल चित्र प्रतिफलित हो रहा है। खेद है, महाराष्ट्र लेखक ग्राण्ट गफ साहब ने उस ओर ध्यान ही न दिया।

धर्म्मरक्षा में शिवाजी कैसे कृतकार्य्य हुए थे, उसे वह कान्यकुब्जभूषण भूषण कवि ने एक कवित्त में कहा है, यथा—

वेद राख्यो विदित पुरान राख्यो सारसुत,
रामनाम राख्यो अति रसना सुधर में।
हिन्दुन की चोटी रोटी राखी हैं सिपाहिन की,
कांधे में जनेऊ राख्यो माला राखी गल में॥
मोड़ राखे मुगल मरोड़ राखे बादशाह,
बैरी पीस राखे बरदान राख्यो कर में।
राजन की हद्द राखी तेज बल शिवराज,
देव राख्यो देवल स्वधर्म्म राख्यो घर में॥
मार कर बादशाही खाकशाही कीन्ही जिन,
जेर कीन्हीं जोर सों लै हद्द सब मारे की।
खिस गई सेखी फिस गई सूरताई सब
हिस गई हिम्मत हजारों लोग प्यारे की॥
बाजत दमामें लाखों धौंसा आगे धुर जात
गरजत ज्यों बरात चढ़े भारे की।
दूलहा शिवराज भयो दच्छनी दलाले वाले,
दिल्ली दुलहिन भई शहर सितारे की॥

शिवा जी के इस स्वराज्य स्थापन और धर्म्मरक्षा के परिश्रम में जिन्हें लूट मार और युद्ध विजय लालसा ही सूझती है, कदाचित उन्होंने शिवाजी की प्रजापालिनी नीति नहीं पढ़ी है। नहीं तो कभी वे ऐसा न कहते। देखिए महामति जार्ज टामसन साहब ने क्या लिखा है—

"His regulations for the management of the Civil, Judicial and Revenue affairs of his territory, proved him to have been a man of profound wisdom; and it has been admitted by the greatest men who have ever come from this country to India, that in provinces in which the laws of Shivaji remained in force, there was nothing to improve, but much to imitate. In many of the events of history he may be termed not altogether inaptly, the Charlemagne of the East."

राज की भीतरी दशा, शासनप्रणाली, विचार की व्यवस्था और प्रजा से कर उगाही करने की रीति प्रभृति विषयों में शिवाजी जैसी व्यवस्था कर गए थे, महाराष्ट्र देश के अन्तिम राजा बाजीराव के राज समय तक वही रीति चली आई। इसीसे मरट्ठों के राज में प्रजा को किसी प्रकार का कष्ट न था।

एकनाथ और रामनाथ प्रभृति ब्राह्मणों के धर्म्मविषयक उत्तेजनापूर्ण उपदेशों से, राना जी चिटनीस और प्रतापराव प्रभृति क्षत्रिय वीरों के भुज बल से एवं वाला जी चिटनोस प्रभृति कायस्थों के जातिकौशल से, शिवाजी सरीखे प्रतिभाशाली धर्म्मपरायण नरपाल के मुखियापन में जो महाराष्ट्र राज्य की बुनियाद पड़ी थी, उसे उन्हींके पुत्र दुर्वृत्त सम्भाजी की करतूत ने रसातल पहुंचा दिया था। सम्भाजी की वीरता में कसर न थी। परन्तु वे शिवाजी के ऐसे धर्म्मरक्षक न थे। उनके द्वारा कोई राष्ट्रीय कार्य्य सुसिद्ध नहीं हुआ था। वरन् उन्हें हो मुगल सेनापति ने पकड़ के दिल्लीपति बादशाह की आज्ञा से बड़ी निठुराई से मारा।

शिवाजी के पुत्र के ऐसे शोचनीय परिणाम को देख मरट्ठे बड़ेही उत्तेजित हो उठे थे। शिवा जी की मृत्यु के उपरान्त औरङ्गज़ेब बारह लाख सेना ले के महाराष्ट्रों को दबाने के लिये चढ़ आया था। सम्भाजी का विनाश एवं विजापुर और गोलकुण्डा राज्य के ध्वंस होने पर बादशाह विजय प्राप्ति से अति उल्लासित हुए और हिन्दू धर्म्मावलम्बिओं पर घोर अत्याचार करने लगे। कहते हैं कि इस विजयोन्माद से वे अपने आधीन सैन्यवालों के धर्म्मनाश में प्रवृत्त होगए थे। परन्तु उससे उलटी बात होते देख उन्होंने अपनी इच्छा रोक ली। चाहे जो हो, मुगलों के द्वारा अपने धर्म्म की दुर्गति होते देख, तेजस्वी मरट्ठों की क्रोधाग्नि धधक उठी। उनके नरपति शिवाजी के छोटे लड़के राजाराम यवनों के डर से अपने देश से निकल मन्द्राज हाते के "जिञ्जी" गढ़ में जा बसे थे। रायगढ़ आदि प्रसिद्ध किलों पर मुसलमानों ने अपना अधिकार कर लिया था। उस समय रणपटु मरट्ठे भी थोड़ेही रह गए थे और देश के बैरी और विश्वासघाती भी कम न थे। इतने पर भी वीर मरट्ठों के जी से साहस नहीं हटा था, और अपने धर्म्म और राज रक्षा के लिये वे पीछे नहीं हटे थे, वरन् बैरिओं से पलटा लेने के लिये कमर बाँधे खड़े थे। धर्म्मोत्साह से उत्तेजित हो समुद्र सी मुगलों की सेना की प्रतिद्वन्दिता में कमर बाँध उठ खडे हुए। जिसे कहीं से एक भाला भी हाथ लग गया वह भी मुगलों से युद्ध करने को जा डटा। उनलोगों के साहस और वीरता को देख सुन बादशाह भी चकित और भीत होगए। अपने धर्म्म और अपने साथिओं की दुर्गति निहार धर्म्म के हेतु उन्होंने प्राण तक न्योछावर करने का चित्त से दृढ़ सङ्कल्प कर लिया था। इसीसे कई स्थानों में बादशाही सेनाओं को पीछे हटना और हार माननी पड़ी थी। थोड़ीसी सेना बारह लाख युद्धनिपुण वीर मुसलमानी सेना से लगातार सत्रह वर्ष लों लड़ के भी बादशाह थोड़ी सी मरट्ठी सेना को न जीत सका और न महाराष्ट्रों को हरा की उसे कुछ भी जी में आशा थी।

इसी बीच में सन् १७०२ ईसवी में राजारा की मृत्यु हुई। परन्तु तौ भी उसके साथिओं साहस न ठंढा पड़ा। सन् १६८० से ले १७० ईसवी तक २२ वर्ष में शिवाजी, सम्भाजी औ राजाराम का परलोकवास हुआ, तथापि मर के जी का उत्साह और साहस ठंढा न पड़ा।

"छिन्नोऽपि रोहति तरुश्चन्द्रः क्षीणोऽपि वर्द्धते।"

इसी ढंग से मरट्ठोंका अध्यवसाय और विक्र दिनोदिन बढ़ने लगा। उन लोगों का औचक शत्रु दल पर आ टूटना और फिर छिपजाना, अद्भु बल विक्रम, साहस, अदमनीय युद्ध लालसा, स्वधर्म्म पर अविचलित भक्ति, जाड़ा, गर्मी, व के दिनों में एक ही सा साहस उद्यम, भूख, प्यास परिश्रम पर नेक भी ध्यान न देना, पर शत्रुमु मर्दन के हेतु तिनके सा प्राण को वार डालन ऐसे प्रशंनीय गुण उन्हीं मरट्ठों ही में थे जि देख देख के मुसलमान चकित हो कहा करते, " इन्सान हैं या शैतान!" मरट्ठे सरदारों की मुगलि सवारों पर ऐसी धाक बैठ गई थी कि कहते हैं घोड़ा पानी पी रहा हो तो मरट्ठों की आवाज़ सु चौंक जाता था और पानी से मुंह हटा लेता था।

कालान्तक मरट्ठों को जब युद्ध में न हटा स तब बिवश मोगलिये उनसे युद्ध करना छोड़ बैठे पर महाराष्ट्रों के विक्रम के आगे उन्हें भागना भी कठिन हो गया। यह देख बूढ़े बादशाह ने ब दुख भरे स्वर से यह कहा कि 'व्यर्थ जन्म गमाया' और इसी दुख में उन्होंने प्राण त्याग दिया! त दक्षिणी देशों में हिन्दूधर्म्म प्रायः निष्कन्टक हो गया स्वधर्म्म और स्वदेश रक्षा के लिये प्रबल पराक्रम मुगल सम्राट के साथ इतने दिनों तक बैर भा किसी ने भी रखने का साहस न किया। स धर्म्मोत्साह और गहरी स्वदेशभक्ति के वि इतने दिनों तक देश भर और जाति के सब लो को मिलके अपने धर्म्म और देश को बैरी के हा

से बचा लेना बहुत ही कठिन है। सच तो यह है कि इस समय महाराष्ट्रों के चित्त में जैसी अपने देश और धर्म पर दृढ़ता और भक्ति हुई थी वैसी महाराज शिवाजी के समय में भी नहीं हुई थी। वास्तव में जातीय धर्म और स्वदेशानुराग का जो बीज महाराज शिवाजी बो गए थे, उसने फल फूल के अपनी शोभा बढ़ाई थी और अपनी वीरता के समुज्ज्वल प्रताप से दुर्धर्ष मुगलों की आंखों में चकाचौंध लगाई थी।

सम्भाजी की हत्या के उपरान्त उनकी पुत्र-बधू को मुसलमान कैद कर ले गए थे। उन्हे छुड़ाने के लिये १५ वर्ष तक उद्योग करने पर भी मरट्ठे उन्हे न मुक्त कर सके। औरङ्गज़ेब के मर जाने पर महाराष्ट्रों का बल, दर्प और साहस ऐसा बढ़ गया था, कि नवीन बादशाह को विवस हो सन १७०८ में सम्भाजी के पुत्र शाहूजी को छोड़ ही देते बना। बादशाह ने यह अनुमान किया था कि शाहूजी जब छूट जांयगे तब अपने राज्यके बटवारे के लिये राजाराम के पुत्र से अवश्य ही झगड़ा करेंगे, तो उसी कलह की आग में उनका नवप्रतिष्ठित राज्य भस्म हो जायगा, और तब फिर दक्षिण में मुगलों की अमलदारी जम जायगी। यही विश्वास औरङ्गज़ेब का भी था, क्योंकि नवीन सम्राट के ऐसा औरङ्गज़ेब ने भी महाराष्ट्रों के राज्य का भीतरी मतलब नहीं समझा था। महात्मा रामदास स्वामी ने महाराष्ट्रों के हृदयक्षेत्र में जो धर्म बीज बोया था, वह ऐसा नहीं बोया गया था जो सहज ही नष्ट हो जाता।

चार ही वर्ष के बीच मरट्ठों ने अपने घरेऊ झगड़ों का निवटेरा कर डाला। फिर दूसरे चार वर्षों में उन्होंने देश की भीतरी बिगड़ी हुई अवस्था को ठीक करके यथोपयुक्त बल भी संग्रह कर लिया। फिर तो सारे भारतवर्ष भर में उन्होंने हिन्दूधर्म की पताका उड़ानी विचारी और अपने प्राण न्योछावर करके भी अपनी इच्छा पूरी करनी विचार ली। सन् १७१८ ईसवी में दिल्लीश्वर को पेशवा बालाजी विश्वनाथ जी ने अपने हाथ में कर उन दक्षिण के देशमुखी और चौथ उगाही करने की सनद ले ली थी। यही सनद महाराष्ट्रों को स्वधर्म और स्वराज्य विस्तार करने का प्रधान उपाय हो गई। हिन्दूधर्म रक्षा के लिये "हिन्दूपत बादशाही" या स्वाधीन हिन्दू साम्राज्य स्थापन की आवश्यकता पहिले ही अनुभूत हो चुकी थी। हिन्दूधर्म का निग्रह कर मुसलमान स्वधर्मानुरागी मरट्ठों के जी बहुत ही दुखा चुके थे, इसीसे वे इनके पूरे बैरी भी हो गए थे और वे मुगलशाही को उड़ा उसके बदले हिन्दूपत बादशाही बनाने में दृढ़ इच्छा कर चुके थे।

महाराज शम्भु के आदेश से बालाजी विश्वनाथ के पुत्र बाजीराव, दिल्लीपति की सनद लेके काम करने लगे। उत्तर में अटक नद से ले दक्षिण में सेतुबन्धरामेश्वर तक के सम्पूर्ण देशों में, अर्थात् सारे भारतवर्ष भर में, हिन्दू राज्य फैलाने के लिये अपने देशवालों को उन्होंने उभाड़ा था। उस समय दक्षिण में निज़ाम-उल-मुल्क का बड़ा प्रताप चमका था। उसकी कुटिलता से फिर महाराष्ट्र समाज में घर की फूट फैल चली थी। परन्तु बाजीराव ने कई एक युद्धों में उसका दर्प चूर्णकर गुजरात और खानदेश प्रभृति देशों में चौथ उगाही करने की व्यवस्था करली थी। निज़ाम के सम्पूर्ण उद्योग व्यर्थ होगए थे।

इधर उत्तर भारत में महम्मद खां नाम के एक मुसलमान सर्दार ने अपनी प्रभुता फैलाने की लालसा से बुन्देलखण्ड राज्य पर चढ़ाई कर दी। इसके पहिले महाराज शिवाजी के आदेश से वीर छत्रसाल बुन्देले ने बुन्देलखण्ड में हिन्दू राज्य बना लिया था। बूढ़े राजा छत्रसाल बार बार महम्मद खां से लड़ कर भी आत्मरक्षा न कर सके। दिल्लीश्वर के हिन्दू सामन्तगण भी महम्मद खां के पक्ष पर होगए और बुन्देल वंश के बैरी हो उठे। तब विवस हो महाराज छत्रशाल ने मरट्ठों की शरण ली। उन्होंने बाजीराव को लिखा—

जो गति ग्राहगजेन्द्र की सो गति भइ है ग्राज।
बाजी जाति बुन्देल की राखी बाजीलाज॥

अर्थात् पुराने समय के पुरानों में लिखा है कि ग्राह ग्रोर गजेन्द्र कई सहस्र वर्ष लों जल में लड़ते लड़ते गजराज जब शिथिल होगया, तब उसने ग्रपनी लज्जा बेचाने के लिये कातर होके प्रभु को गुहार लगाई थी ग्रोर उन्होंने ग्राके उसे शत्रु के हाथ से बचाया था, वैसेही छत्रशाल ने ग्रपनी लज्जा बचाने के लिये बाजीराव को विन्ती पत्र लिखा है। इस पत्र को पढ़तेही बाजीराव का हृदय दुख से व्यथित होगया ग्रोर वे बुन्देलखण्ड की रक्षा के लिये ग्रपने दलबल सहित चढ़ दौड़े। ग्रोर शत्रु को हरा कर बुन्देलखण्ड को मुसलमानों से बचा उन्होंने उसे हिन्दुग्रों का राज्य बना रहने दिया। जब विजय प्राप्त कर परस्पर में बाजीराव छत्रशाल से मिले हैं, तब ग्रान्दाश्रु-विगलित नेत्रों से गले गले मिल सबके सम्मुख पुकार के छत्रशाल ने बाजीराव को ग्रपना तीसरा पुत्र स्वीकार किया। ग्रपने से हारे हुए बैरिग्रों के साथ मरट्ठों ने कोई बुरा बर्ताव नहीं किया था।

बाजीराव के समय एक प्रसिद्ध धर्म्मयुद्ध हुग्रा था। पश्चिम समुद्र के किनारे बसीन साष्टी प्रभृति स्थान पुर्त्तकेसों के ग्रधिकार में थे। वहां की हिन्दू प्रजा ने ग्रपने शासकों से दुखी होके छत्रपति महाराज शाहू की सेवा में एक ग्रावेदन पत्र इस मर्म्म का भेजा था,—

"ईसाइग्रों के ग्रत्याचार से हमलोगों को ग्रपने धर्म्म में रहना कठिन हो रहा है। ग्राप गोब्राह्मण प्रतिपालक हैं, इसलिये दयाकर हमलोगों की पुकार सुन इस देश के डूबते हुए धर्म्म को उबारिए।" उस समय बाजीराव निज़ाम के साथ युद्ध में उलझ रहे थे। इसलिये महाराज शाहू की ग्राज्ञा से बाजीराव के छोटे भाई चीमाजी ग्राप्पा ने बसीन ग्रोर साष्टी प्रदेश के हिन्दुग्रों के धर्म्म की रक्षा की। थोड़े ही दिनों में साष्टी पुर्त्तकेसों के हाथ से निकल के मरट्ठों के ग्रधिकार में ते ग्रागई, पर बहुत थोड़ेही दिनों तक रही। यूरोपिय की तोपों के गोलों की वर्षा से मरट्ठों के सवा बार बार तितर बितर हो हो होगए, यह देख एक दिन चीमाजी सब सर्दारों को समेट कर बो "जैसे हो वैसे ग्राज ग्रवश्य ही किले में घुसनाही चाहिए, ग्रोर जो यह ग्रापलोगों से न हो सके ते मुझे इस ढंग से तोप के मुह पर रख के ऐस पलीता दागो कि मेरा धड़ गढ़ के ग्रन्दर ज पड़े"। इस वाक्य को सुन मरट्ठों का साहस ब गया ग्रोर सब एक स्वर से हर हर हर महादे कहते हुए एक साथ किले पर जा टूटे ग्रोर किल फतह कर लिया। इस युद्ध के उपरान्त एक ग्रति ललाम ललना चीमा पर तन मन से ग्रास होगई, परन्तु लक्ष्मण जी सरीखे जितेन्द्रि चीमाजी ने ग्राप उसे ग्रहण न कर ग्रपने बड़े भा के पास भेज दिया। निदान बाजीराव ने उ ग्रबला को महलों में रख लिया। बुन्देलखण्ड ग्रो बसीन विजय के उपरान्त लोग महाराष्ट्रों के "शरणागत रक्षक" ग्रोर "दीनदयाल" कहने लगे।

बाजीराव की मृत्यु के पहिले उत्तर में यमु ग्रोर दक्षिण में तुङ्गभद्रा नदी के तट के नगरसमू मुसलमानों के ग्रधिकार से निकल गए थे। मुसल मानों का ग्रधिकार घटने से हिन्दुग्रों की हिन्दुग्रानी बढ़ी ग्रोर ये लोग ग्रानन्द से रह लगे। डूबती हुई वेदविद्या के पुनःप्रचार के लि बाजीराव ने ग्रनेक उद्योग ग्रोर प्रयत्न किए थे ब्रह्मेन्द्र स्वामी नाम के एक महात्मा बाजीराव उपदेशक थे। जैसे रामदास स्वामी राजनी ग्रोर धर्म्मनीति का उपदेश दे मरट्ठों को उ जित किया करते थे, वैसेही यह भी उपदेश कि करते। जैसे इस देश में राजनीति ग्रोर धर्म्मनी का सम्मिलन है, ऐसा ग्रोर कहीं भी नहीं है।

[क्रमशः

ले०—कार्त्तिक प्रसाद

———

भाग ३] फरवरी १९०२ ई० [संख्या २

विविध वार्ता

इस मास की पत्रिका के साथ एक चित्र नागरी अक्षरों की उत्पत्ति का दिया गया है। इसे उदयपुर ऐतिहासिक कार्य्यालय के अध्यक्ष पण्डित गौरीशङ्कर हरीचन्द ओझा ने बनाकर काशी नागरीप्रचारिणी सभा के अर्पण किया था। इस बात को आज कई बर्ष हुए। सभा की यह इच्छा थी कि उक्त पण्डित जी यदि कृपा कर इसका विवरण भी लिख देते तो दोनों साथ ही प्रकाशित कर दिए जाते। परन्तु न जाने क्यों आजतक पण्डित जी ने सभा की प्रार्थना पर ध्यान नहीं दिया। अस्तु, आज हम नागरी प्रचारिणी सभा की कृपा से उक्त चित्र को अपने पाठकों की भेट करने में समर्थ हुए हैं। उक्त चित्र के देखने से स्पष्ट जान पड़ेगा कि नागरी अक्षरों के रूप में किस प्रकार से क्रमशः परिवर्तन होते होते उनका आधुनिक रूप बन गया है। इन अक्षरों के जो रूप दिए गए हैं, वे कल्पित नहीं हैं, वरन् प्राचीन शिलालेखों और दानपत्रों से लिए गए हैं।

***

हमारे पाठकों में से अनेक महाशयों को यह न ज्ञात होगा कि भारत गवर्नमेण्ट के उच्च उच्च पदाधिकारी कितना कितना मासिक वेतन पाते हैं और इन बड़े बड़े अफसरों का मासिक वेतन सब मिला कर प्रति मास कितना होता है। आज हम

अ =
अ =
इ =
उ =
ए =
क =
ख =
ग =
घ =
ङ =
च =
छ =
ज =
झ =
झ =
ञ =
ट =
ठ =
ड =
ड =
ढ =
ण =
ण =
त =
थ =
द =
ध =
न =
प =
फ =
ब =
भ =
म =
य =
र =
ल =
व =
श =
ष =
स =
ह =
ळ =
क्ष =
ज्ञ =
का =
कि =
की =
कु =
कू =
के =

नागरी अक्षरों की उत्पत्ति का चित्र

कुछ चुने चुने अफसरों के मासिक वेतन की सूचना देते हैं।

वाइसराय	२५०००)
वाइसराय की फुटकर व्यय के लिये	३२४९३)
गवर्नर मद्रास	१००००)
फुटकर व्यय के लिये	८०००)
गवर्नर बम्बई	१००००)
फुटकर व्यय के लिये	८०००)
प्रेसिडेण्ट कौंसिल गवर्नर जेनरल	६४००)
लेफ्टनेण्ट गवर्नर बङ्गाल	८३३३)
फुटकर व्यय के लिये	२७२९)
लेफ्टनेण्ट गवर्नर पश्चिमोत्तर प्रदेश	८३३३)
फुटकर व्यय के लिये	८०००)
लेफ्टनेण्ट गवर्नर पञ्जाब	८३३३)
फुटकर व्यय के लिये	५१८८)
चीफ जसटिस बङ्गाल	६०००)
मेम्बर कौंसिल गवर्नर जेनरल	६४००)
चीफ जसटिस मदरास	५०००)
" बम्बई	५०००)
चीफ कमिश्नर आसाम	४१६६)
" मध्यप्रदेश	४१६६)
मेम्बर कौंसिल मद्रास	५११६)
" बम्बई	५१२०)
रेजिडेण्ट हैदराबाद	४८४०)
एजेण्ट गवर्नर जेनरल राजपुताना	४०००)
" मध्य भारत	४०००)
" बड़ौदा	२५००)
कमैण्डर इन चीफ	५८३४)

यह सब जोड़ने से दो लाख से ऊपर प्रतिमास पड़ता है। संसार में और जहां जहां उच्च पदाधिकारी हैं किसीको इतना वेतन नहीं मिलता।

* *
*

गत जनवरी मास के पहिले सप्ताह में इन प्रान्तों के लेफ्टनेण्ट गवर्नर सर जेम्स लैटूश जब काशी आए थे तो उस समय यहां की नागरी-प्रचारिणी सभा ने एक अभिनन्दनपत्र श्रीमान को दिया था, जिसमें सभा की अवस्था का वर्णन कर सभा ने श्रीमान से प्रार्थना की थी कि वे प्रारम्भिक शिक्षा और राज्यप्रबन्ध के सम्बन्ध में हिन्दी भाषा और नागरी अक्षरों के स्वत्वों पर विचार और उनका समर्थन करेंगे। श्रीमान ने इस अभिनन्दनपत्र के उत्तर में कहा कि मैं श्रीमान सर एण्टनी की आज्ञा का अनुकरण करुंगा, उसके आगे न बढ़ूंगा। श्रीमान का कहना बहुत उचित था। हिन्दी के प्रेमी भी यही चाहते हैं कि वे कृपाकर सर एण्टनी म्याकडनेल ने जो आज्ञा दी है उसके अनुसार कार्य होने की ओर ध्यान दें, और ऐसा ध्यान रक्खें कि जिसमें उस आज्ञा का पूरी तरह से पालन हो। श्रीमान सर लैटूश के बचनों का मन-माना अर्थ लगा कुछ मुसलमान भाई उत्साहित हो व्यर्थ को हिन्दी का विरोध ठान बैठे हैं। हमारी समझ में तो श्रीमान के वचनों में कोई बात ऐसी नहीं है जिससे मुसलमान उत्साहित और हिन्दू निरुत्साहित हों। सब लोगों को अपने अपने कामों और न्याय की ओर ध्यान देना चाहिए। वृथा आपस में द्वेष और लड़ाई झगड़ों के बढ़ाने से किसीको भी लाभ न होगा।

* *
*

कई मास हुए कि एक यहूदी महाशय ने तीस लाख रुपया हमारे सम्राट श्रीमान सप्तम एडवर्ड के पास गुपचुप भेज दिया और यह प्रार्थना की कि यह रुपया दमे के रोगियों के हित में व्यय किया जाय। बहुत काल तक इस गुप्त दानी के नाम धाम का पता किसीको न लगा। अनेक लोगों ने अनेक अनुमान किए, पर किसीका अनुमान ठीक न उतरा। अब इतने दिनों के पीछे इनके नाम का पता चला है। इन महाशय का नाम सर अर्नेष्ट कैसल है। वे आजकल भारतवर्ष में आए हुए हैं। इधर कई वर्षों में अग्रेंज जाति ने कई बड़े बड़े दान किए हैं, जिनमें से कई एक का उल्लेख हम नीचे करते हैं। मिस्टर कार्नेजी को हमारे पाठक भूले न होंगे, इन्होंने तीन करोड़ रुपया स्काटलैण्ड-

वासियों की शिक्षा के लिये दिया है। मिस्टर टामस हालोवे ने एक करोड़ ५ लाख रुपया हालोवे कालेज के लिये दिया था। लार्ड ईवीह ने तीन लाख ७५ हजार रुपया डबलिन में दीन दुखियों के निवासस्थानों के लिये दिया था। पचहत्तर लाख रुपया मिस्टर जार्ज पोवोडी ने गरीब लोगों की रक्षा के लिये दान किया था। उनतालीस लाख रुपया सर मेसन ने एक कालेज के स्थापित करने में व्यय किया था। पन्द्रह लाख सर टामस लिपटन ने इस लिये दिया था कि जिसमें गरीब लोगों को भोजन सस्ता मिल सकै। पन्द्रह लाख रुपया मिस्टर पास मोर ने फ़्री पुस्तकालयों के लिये दिया है और अट्ठारह लाख रुपया सर जान मैपल ने एक अस्पताल के लिये दिया है। इन सब दानों की चर्चा सुन के अंग्रेज जाति के प्रत्येक बालक तक का मस्तक ऊंचे उठ जाता होगा। पर हमें केवल आंखें नीची कर लेने के और चाराही क्या है। हमारे प्यारे मित्र चाहे मुट्ठी मुट्ठी अन्न और सत्रों में ही भारत के प्रसिद्ध दान को मान लें और लोगों को निरुद्यमी बनाने ही में अपना गौरव मान रक्खें, पर वास्तव में निर्बुद्धि अदुरदर्शी पढ़े लिखे लोगों को वृटिश दान की चर्चा सुन के अपना सिर नीचे झुका लेने को छोड़ और कोई उपाय नहीं सूझता। गत वर्ष के अकाल में ७५००० बालक और बालिकाएं अपने और साथही भारतमाता के फूटे भागों से माता पिता को खो बैठे, किसीने उनकी सुध भी न ली। विचारे मिशनरी लोगों ने उन्हें अपनाया और उससे अपने धर्म्म की उन्नति कर हम पर कृतज्ञता का बोझ रक्खा। ऐसी अवस्था में पञ्जाब के कुछ वीर पुरुषों ने कतिपय अनाथ बालक और बालिकाओं की रक्षा की। पर हमारी वृद्धा भारत माता इस हृदयविदारक और करुणोत्पादक अवस्था को देख सुन कर भी न टसकी, ज्यों की त्यों घोर निद्रा में पड़ी रही। उस घोर निद्रा का प्रभाव यहां तक बुरा पड़ा कि सहायता देना तो दूर रहा, अविद्या के अन्धकार से भारतवासी यहां तक आच्छादित रहे कि उन्होंने इन अनाथ मातृ-पितृ-विहीन बालकों की रक्षा करनेवालों को दो मीठे उत्साह देने वाली बातों की अपेक्षा उन्हें अपने प्रलाप वाक्यों से ही स्वागत किया। अस्तु, हम इन प्यारे मित्रों से आंख खोल कर और पक्षपात छोड़ कर विचार करने की प्रार्थना करते हैं। प्यारे भारतवासियो, प्यारे देशहितैषी लोगो, अपने देश के, अपने कुल के, अथवा अपने ही नाम पर मरने वालो जागो, स्वार्थ छोड़ो; अपने देश के नाम पर, अपने धर्म के नाम पर, अपने इष्ट देवों के नाम पर, अपने उस करुणावरुणालय जगदीश्वर के नाम पर जिसने तुम्हें उत्पन्न करके और दस लोगों की सहायता करने के योग्य बनाया है, अपने पुण्य के नाम पर कि जिससे तुम परलोक में सुख भोगा चाहते हो, इन अनाथ दीन हीन बालकों की रक्षा, उनका भरण पोषण, करने से मुंह न मोड़ो। देखो इस समय फिर अकाल पड़ा हुआ है, फिर अनाथ बालक मारे मारे फिर रहे हैं कुछ तो उनपर दया करो। पंजाब देश से फिर वीर लोग इनकी रक्षा को गए हुए हैं। उन्हें सहायता दो। हम अब विशेष न कहेंगे। इस समय फिर अकाल ने अपना जोर दिखाया है और पंजाब से पुनः उत्साही लोग अनाथ बालकों की रक्षा के लिये गए हुए हैं। देशहितैषी मात्र का कर्तव्य है कि उनकी सहायता करें।

* *
*

हमारे पाठकों को यह सुन कर विशेष आनन्द होगा कि काशी नागरीप्रचारिणी सभा के स्थायी कोश में अबतक दस हजार रुपया एकत्रित हुआ है और सभा एक डेपुटेशन स्थान स्थान से धन एकत्रित करने के लिये १५ फरवरी को बाहर गया है। हमें पूर्ण आशा है कि हिन्दी के प्रेमी इसकी पूर्ण सहायता करेंगे और यह अपने उद्देश्य में सफल होगा। सभा ने अपने भवन के लिये एक स्थान जो काशी म्युनिसिपल बाग के अन्दर है, ३५०० रुपये पर खरीद लिया है। यह १८७ फीट लम्बा और १३४ फीट चौड़ा है। इस स्थान पर एक अच्छा भवन

बन सकेगा। हिन्दी हितैषियों को उचित है कि इस समय सभा की पूरी पूरी सहायता करें जिसमें भवन शीघ्रही बन जाय और स्थायी कोश स्थापित हो कर सभा भी चिरस्थायी हो जाय।

भवभूति

[गत अंक के आगे]

९—अनेक विद्वानों का मत है कि भवभूति ने पहले महावीरचरित, फिर मालतीमाधव और फिर उत्तररामचरित लिखा है। इन ग्रन्थों की लेखप्रणाली, इनके अर्थगौरव और इनके रसाल भावों का विचार करने से यह सिद्धान्त युक्ति-सङ्गत जान पड़ता है। महावीरचरित में वीर, मालतीमाधव में शृङ्गार और उत्तररामचरित में करुण रस की प्रधानता है। इन नाटकों में क्या गुण हैं, और क्यों भवभूति की इतनी प्रशंसा होती है, इन सब बातों का विचार विष्णुशास्त्री ने बड़ी ही योग्यता से अपने निबन्ध* में किया है। अनेक उत्तमोत्तम पद्यों को उद्धृत कर के उन्होंने उनकी सयुक्तिक समीक्षा की है। भवभूति के नाटकों के कथानक की भी शास्त्री जी ने प्रशंसा की है। परन्तु मालतीमाधव के कथानक के सम्बन्ध में डाक्टर भाण्डारकर की सम्मति उनकी सम्मति से नहीं मिलती। डाक्टर साहब का कथन है कि इस नाटक में जो श्मशान-वर्णन है वह असम्बद्ध सा है; मूल कथानक में वह जोड़ सा दिया गया है। वे यह भी कहते हैं कि कपालकुण्डला के द्वारा मालती का हरण किया जाना कवि ने केवल इस लिये दरसाया है जिससे वियोगियों की दशा का वर्णन करने के लिये उसे अवसर मिले। डाक्टर भाण्डारकर ने और भी दो एक बातें शास्त्री जी के मत के प्रतिकूल कही हैं। डाक्टर साहब के बतलाए हुए दोष ऐसे हैं जो सामान्य जनों के ध्यान में नहीं आ सकते। नाट्यशास्त्र के आचार्यों की दृष्टि में ऊपर कही गई बातें चाहे भले ही सदोष हों, परन्तु हम, इस विषय में, यह अवश्य कहेंगे कि भवभूति का किया हुआ श्मशानवर्णन अद्वितीय है। बीभत्स रस का ऐसा अच्छा उदाहरण संस्कृत के और और नाटकों अथवा काव्यों में हमने नहीं देखा। भवभूति का विप्रलम्भवर्णन भी एक अद्भुत वस्तु है। अतएव भवभूति के ये दोष यदि दोष कहे जा सकते हैं तो क्षम्य हैं। यदि वह इन उपर्युक्त बातों को मालतीमाधव से निकाल डालता तो हम बीभत्स और वियोग शृङ्गार के अलौकिक रस से परिप्लुत उसकी अनूठी कविता से भी वञ्चित रहते। पण्डित माधवराव वेंकटेश लेले ने भवभूति के सब नाटकों की समालोचना मराठी में की है और अनेक दोष दिखलाए हैं, परन्तु इस छोटे से निबन्ध में हम उन सब दोषों का विचार नहीं कर सकते।

*पण्डित गङ्गाप्रसाद अग्निहोत्री का किया हुआ इसका हिन्दी अनुवाद अवलोकनीय पुस्तक है।

१०—(क) अपने नाटकों के बनाने का कारण भवभूति ने कहीं भी स्पष्ट नहीं लिखा; परन्तु उसके नाटकत्रय में वर्णित वस्तुजात और पात्रों के क्रियाकलाप आदि से उस बात का पता लगता है। जिस समय भवभूति का प्रादुर्भाव हुआ है उस समय, इस देश में, बौद्धधर्म्म का ह्रास हो रहा था। षष्ठ शताब्दी मे उद्योतकर, सप्तम शताब्दी में कुमारिल भट्ट और अष्टम शताब्दी में शङ्कराचार्य्य ने बौद्धधर्म्म को उच्छिन्न करने में कोई बात उठा नहीं रक्खी। वैदिक धर्म्म के प्रतिपादन और बौद्धधर्म्म के संहार करने के लिये इन महात्माओं ने जो कुछ किया है वही भवभूति ने भी किया है। इन्होंने स्पष्ट रीति से बौद्धधर्म्म का खण्डन किया है, परन्तु भवभूति ने स्पष्ट कुछ नहीं कहा। अनेक स्थलों पर अपने नाटकों में वैदिक धर्म्म की श्रेष्ठता और बौद्ध धर्म्म की हीनता के उदाहरण दिखलाते हुए, दोनों प्रकार के धर्म्मावलम्बियों की दिनचर्य्या का चित्र खींच कर भवभूति ने उसे अभिनय देखनेवालों के सम्मुख उपस्थित किया है, जिसका यही तात्पर्य है कि वैदिक धर्म्म ग्राह्य और बौद्ध धर्म्म त्याज्य है।

(ख) मालतीमाधव की प्रसिद्ध पात्र कामन्दकी बौद्ध सन्यासिनी थी। वह अपने आश्रम धर्म्म के विपरीत मालती और माधव को विवाह सूत्र से बांधने के बखेड़े में पड़ी थी। उसकी शिष्य सौदामिनी बौद्धसम्प्रदाय को त्याग कर अघोर-घण्ट और कपालकुण्डला के तान्त्रिक जाल में फँसी थी। ये तान्त्रिक ऐसे दुराचारी और नृशंस थे कि अपनी इष्ट देवी चामुण्डा के सम्मुख समय समय पर नरबलि दिया करते थे। मालती माधव में यह बौद्धधर्म्म के अधःपतन का चित्र है। वैदिक धर्म्म के अनुयायियों की श्रेष्ठता का चित्र वीरचरित और उत्तरचरित में है। इन दोनों नाटकों में रामचन्द्र, लक्ष्मण, लव, कुश, सौधातकि, जनक, वशिष्ठ, विश्वामित्र और जानकी आदि के चरित्र द्वारा भवभूति ने ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, राजा, प्रजा और तपस्विवर्ग के आचार और व्यवहार की अवस्था का ऐसा अच्छा आदर्श दिखलाया है कि जिसके देखने से वैदिक धर्म्म का स्वरूप नेत्रों के सम्मुख उपस्थित हो जाता है और उसमें आन्तरिक श्रद्धा उत्पन्न होती है। दोनों धर्म्मों के अनुयायियों के आचरणानुरूप दो प्रकार के उच्च और नीच चित्र चित्रित कर के कवि ने उनकी उच्चता और नीचता का भेद बड़े ही कौशल से दिखलाया है। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि कवि ने यह सब बौद्धधर्म्म की दुरवस्था सूचित करने और अभिनय देखने वालों के मन में उस ओर अनास्था उत्पन्न करने ही के लिये किया है। भवभूति के पूर्ववर्ती विद्वानों ने बौद्धधर्म्म को छिन्नमूल करने के लिये उसपर प्रत्यक्ष कुठार प्रयोग किया था; परन्तु भवभूति ने वही काम उस सम्प्रदायवालों को प्रकाशरूप से बिना किसी प्रकार का मानसिक क्लेश पहुँचाए, अपने नाटकों द्वारा कर दिखाया। भवभूति के नाटकों को विचारपूर्वक देखने से यही भावना मन से उत्पन्न होती है कि बौद्ध धर्म्म निस्सार और वैदिक धर्म्म परम सारवान् है।

११—(क) नाटक लिखने में भवभूति, का आसन कालिदास से कुछ ही नीचे है। कोई कोई तो उसे कालिदास का समकक्ष और कोई कोई उससे भी बढ़ गया बतलाते हैं। भवभूति ने मनुष्यों के आन्तरिक भावों का कहीं कहीं ऐसा उत्कृष्ट और ऐसा सजीव चित्र खींचा है कि उसे देख कर कालिदास का विस्मरण हो जाता है। खेद है उसकी इस अद्भुत शक्ति का विकाश देखने और तद्द्वारा एक अकथनीय आनन्द प्राप्त करने के लिये संस्कृत न जाननेवालों का मार्ग रूद्ध सा हो रहा है। हां, यह सत्य है कि, लाला सीताराम, बी० ए०, ने भवभूति के तीनों नाटकों के अनुवाद हिन्दी में किए हैं; परन्तु, जहां तक हम समझते हैं, उनके अनुवादों से भवभूति की अलौकिक कविता का अनुमान होना तो दूर रहा, उन्हें पढ़ कर पढ़नेवालों के मन में मूल कविता के विषय में घृणा उत्पन्न होने का भय है। कहां भवभूति की सरस, प्रासादिक और महा आल्हाददायिनी कविता और कहां अनुवादक जी की नीरस, अव्यवस्थित, काव्यलक्षणहीन, दोषदग्ध अनुवाद माला? परस्पर दोनों में सौरस्यविषयक कोई सादृश्य ही नहीं! कौड़ी मोहर, आकाश पाताल और ईख इन्द्रायण का अन्तर!! अपने कथन की सत्यता को सिद्ध करने के लिये हम, यहां पर मालतीमाधव से दो एक उदाहरण देना चाहते हैं जिनको देख पढ़नेवाले स्थालीपुलाकन्याय से मूल और अनुवाद का अन्तर समझ जावैंगे।

(ख) अपनी सखी लवङ्गिका के धोखे माधव को आलिङ्गन करके, अनन्तर उसे पहचान, जब उससे मालती हट गई, तब माधव कहता है—

एकीकृतस्त्वचि निषिक्त इवावपीड्य
निर्भुग्नपीनकुचकुड्मलयाऽनया मे।
कर्पूरहारहरिचन्दनचन्द्रकान्त-
निष्यन्दशैवलमृणालहिमादिवर्गः॥

भावार्थः—अछूते पीन-पयोधर रूपी मुकुलों को धारण करनेवाली इस मालती ने, कर्पूर-हार

हरिचन्दन, चन्द्रकान्त मणि, शैवल (सिवार), मृणाल और हिम आदि शीतल पदार्थों को द्रवीभूत करके, उन्हें एकत्र निचोड़, मेरी त्वचा पर उनके रस का लेप सा लगा दिया। इसका अनुवाद सुनिए—

जनु तुषार चन्दन रस बोरी
छिरकति अङ्ग मृनाल निचोरी।
उभरे उर (!) मो हिए छुवावति
जनु कपूर तन घोरि लगावति ॥

मूल के कर्पूर, हरिचन्दन, मृणाल और हिम को लेकर हार, चन्द्रकान्त और शैवल को छोड़ दिया! मूल में एक ही क्रिया है; वह भी भूतकालिक है। अनुवाद में छिरकति, छुवावति और लगावति तीन क्रियाएं हैं और तीनों वर्तमान कालिक! मानों उस समय मालती माधव का आलिङ्गन किए हुए थी। 'पीन कुच' का अर्थ उरोज नहीं किया गया; किया गया है उर! परन्तु मूल में उर और उरोज दोनों में से किसीके छुवाने की साफ साफ बात नहीं है। उरोज स्पर्श का अर्थ ध्वनि से ज्ञात है। ध्वनिही में रस है; ध्वनिही में आनन्द है। 'छुवावति' कहने की अवश्यकता नहीं। भवभूति ने दूसरा चरण बहुत समझ बूझ कर लिखा है और लिख कर अपनी अखण्ड सहृदयता का परिचय दिया है। मूल कवि की वह सहृदयता अनुवाद में ख़ाक में मिला दी गई। मूल में जितने पदार्थों के नाम आए हैं, उन सबके रसलेप के लगाने की उतप्रेक्षा है; परन्तु अनुवाद में केवल कपूर लगाने की है। सारांश यह कि मूल में जो भाव है और उस भाव में जो रस है, उसको दर्शित करने में असमर्थ होकर अनुवादक जी ने किसी प्रकार चौपाई के चार पैर मात्र खड़े कर दिए!

(ग) एक और उदाहरण लीजिए। मनहीं मन माधव कहता है—

पश्यामि तामित उतः पुरतश्च पश्चा-
दन्तर्बहिः परित एव विवर्त्तमानाम्।
उद्बुद्धमुग्धकनकाब्जनिभं वहन्ती-
मासक्ततिर्य्यगपवर्त्तित दृष्टिवक्त्रम् ॥

भावार्थः—मुझमें अनुरक्त होने के कारण तिरछा देखनेवाली और फूले हुए मनोहर सुवर्णसरोरुह के समान मुख को धारण करनेवाली उस मालती ही को मैं यहां वहां, आगे पीछे, भीतर बाहर, सब कहीं विद्यमान देख रहा हूं। इसका अनुवाद एक दोहे में समाप्त कर दिया गया है। देखिए—

चितवति बिकसे कमल सी खुले कछुक दृग कोर।
बाहर भीतर लखि परै घूमति सी चहुं ओर ॥

भवभूति की कविता की इस विडम्बना का कहीं ठिकाना है? इसी लिये कहते हैं कि संस्कृत न जाननेवालों को उसके नाटकों का पूरा पूरा आनन्द नहीं मिल सकता। भवभूति की मधुमयी कविता का स्वाद जिनको लेना हो वे यदि संस्कृत से अनभिज्ञ हों तो उनको वह भाषा सीखनी चाहिए, अथवा जब तक हिन्दी में और कोई अच्छा अनुवाद न निकलै तब तक पण्डित गङ्गाप्रसाद अग्निहोत्री कृत विष्णुशास्त्री चिपलूनकर के 'भवभूति' नामक मराठी निबन्ध का हिन्दी अनुवाद पढ़ कर सन्तोष करना चाहिए।

महावीरप्रसाद द्विवेदी।

महाराष्ट्रजाति का अभ्युदय

[२]

सन् १७४०-४१ ईसवी में बाजीराव के पुत्र बालाजी बाजीराव मरट्ठों के मुखिया बनाए गए। इनके समान दुरदर्शी और राज कार्य्य में धुरन्धर जन महात्मा शिवाजी के पीछे और दूसरा कोई नहीं हुआ। उनके असाधारण बुद्धिबल से महाराष्ट्रसमाज की छितरी हुई शक्तियां इकट्ठी होगई थीं। महात्मा रामदास और शिवाजी के जीवन के प्रधान व्रत का इन्होंने मानो उद्यापन किया था। बालाजी बाजीराव छितरे हुए मरट्ठों को बटोर सब ठौर महाराष्ट्र धर्म्म के प्रचार में समर्थ हुए थे। उनके समय में इस देश में

आर्य्यों की अनेक प्राचीन विद्याओं का विकाश हो आया था। वह प्रतिवर्ष वेद स्मृति, दर्शनशास्त्र, पुराण, ज्योतिष, वैद्यक प्रभृति विविध शास्त्र के सुपण्डितों की परीक्षा ले के उन्हें पुरस्कार दिया करते थे। इस कार्य्य में प्रतिवर्ष उन्हें १६ लाख के लग भग खर्चना पड़ता था। काशी, रामेश्वर, मिथिला आदि स्थानों से विद्यार्थी लोग अपनी अपनी विद्या को परीक्षा देने आया करते थे और पूना में परीक्षा की दक्षिणा ले अपनी अपनी नगरी को लैाट जाया करते थे। इस कार्य्य के लिये पूना में एक बड़ा मकान बना हुआ था। प्रतिवर्ष ३० ४० हज़ार ब्राह्मण सन्तान परीक्षा देने आया करते थे। इससे देश में अच्छी शास्त्रचर्चा फैल गई थी। केवल शास्त्रीय पण्डित जनों ही पर महाराज की दृष्टि न थी, वरन् कवि, शिल्पी, चित्रकार और गाने बजानेवालों का भी सत्कार होता था। देश की कृषि वाणिज्य पर भी उनका अच्छा ध्यान रहा करता था।

पहिले दस वर्ष के बीच महाराष्ट्र राज्य की भीतरी शासनशृङ्खला और महाराष्ट्र शक्ति की दृढ़ता करके बालाजी ने साम्राज्य स्थापन का सुमहान् संकल्प किया था। मरहठों ने लगातार राजनीतिकुशल शासनकर्त्ता और सुचतुर सेनानायकों को पाकर अपनी अलैाकिक वीरता से सारे जगत् को चकित कर दिया था। बालाजी के उपदेश के अनुसार ईसवी १७५२ से १७६१ तक लगातार भारत के भिन्न भिन्न स्थानो में लग भग ४२ ठैार बालाजी ने युद्ध किया था और उन सबमें बालाजी स्वयम् उपस्थित थे। अयोध्या, बिहार, बंगाले तक मुसलमानों की जड़ खोद, उत्तर में अटक से दक्षिण में रामेश्वर तक, अर्थात् हिमालय से समुद्र तक सब ठैारों में हिन्दू साम्राज्य स्थापन करने के लिये मरहठे बड़े ही व्यग्र हो रहे थे। इसीसे उन लोगों ने दक्षिण और उत्तर में हिन्दू रजवाड़ों से छेड़ छाड़ नहीं की थी, केवल उनसे छत्रपति की सार्व्वभैामत्व, स्वीकार करवा लिया था और उनसे कर लेने लगे थे। तीर्थक्षे[illegible] में अयोध्या, प्रयाग, काशी और जगन्नाथपुरी से मुसलमानों अधिकार छुड़ाने के लिये मरहटों बड़े परिश्रम किए थे। यहां तक उन लोगों किया था कि तीर्थस्थानों के बदले दूसरे स्थान के भी अपने पवित्र स्थानों को छुड़ा लिया था दैववश कुछ स्थानों को मुसलमानों के हाथ चाहे वे न भी छुड़ा सके, तौ भी हिन्दूमात्र को उनक[illegible] प्रशंसा करनी चाहिए। ऐसी प्रशंसनीय वीरत[illegible] तो कदाच सूर्यवंशावशतं राणाओं ने भी नहीं की

सन १७५० से १७६१ तक मरहठे जी जान[illegible] अपनी पूर्व्व प्रतिज्ञा का प्रतिपालन करते रहे और उन्होंने बहुत कुछ अपनी प्रतिज्ञा को पूर्ण भी क[illegible] दिखाया। उनके उस समय के कार्य्यों को स्मर[illegible] कर चित्त चकित होता है। बालाजी के चचेरे भ[illegible] श्रीमन्त भाउ साहेब ने भारत भूमि को छोड़ क[illegible] छुण्टीनोपल तक जा के अपनी विजयपताक[illegible] उड़ाई थी। अनेकों का तो यह विश्वास है [illegible] यदि पानीपत की समरभूमि में अहमद शा[illegible] अवदली के युद्ध में मरहठों का भाग्य पल्टा न खा[illegible] और जो दैवी विड़म्बना न होती, तो कदाच भा[illegible] साहेब की लालसा पूरी भी हो जाती तो को[illegible] अचम्भे की बात न थी।

भारत के प्रायः सब ठैार वाले बालाजी [illegible] चक्रवर्त्ती मानने लगे थे। पञ्जाब, मालवा, नागपु[illegible] विदर्भ, महाराष्ट्र, कर्नाटक और गुजरात प्रभृ[illegible] स्थानों में उन्होंने अपनी जड़ जमा ली थी। बङ्गाल[illegible] राजपूताना और और छोटी मोटी बहुत सी रिया[illegible] सतों से वेउजर वे लोग चैाथ उगाही [illegible] करते थे। मैसोर, हैदराबाद, माड़वाड़ [illegible] अयोध्या प्रभृति प्रदेशों के अधिपति उन्हें कर दे[illegible] थे। दिल्ली के सिंहासन पर अपने मन के बादशा[illegible] को बिठला के उसे मानो कठपुतली सा बना र[illegible] था। भारतवर्ष में उन्हें किसीका भी डर न [illegible] गया था। एक प्रकार से भारतवर्ष भर उन[illegible] मुट्ठी में होगया था। यदि कुछ दिनों तक यों [illegible]

रहता तो निश्चय देश के बाहर और भीतर के वाणिज्य व्यापार पर भी मरहठों का ध्यान पड़ता। पर ईश्वर की इच्छा से वैसा न रहने पाया।

जब भारतवर्ष भर में मुसलमानी अमलदारी निकल हिन्दुआनी फैल गई तो इसपर मुलसमानों को बड़ी विकलता हुई। जिस दिल्लीश्वर के प्रताप से एक दिन सारा भारतवर्ष कांपता था, जिसकी आज्ञा से महाराष्ट्रपति सम्भाजी मारे गए और उनके पुत्र शाहू सपरिवार कैद किए गए थे, समय के फेर से उन्हींके वंशधरों को मरहठों की मुट्ठी में होते देख मुसलमानों के जी में बड़ा ही दुःख हुआ। इसलिये उन्होंने आपस में एका करना उचित समझा। मुसलमान आपकी फूट कुछ दिनों के लिये भूल मरहठों के बिपक्षी होगए और गुपचुप अहमदशाह अबदाली के पास भारत आक्रमण के लिये निवेदनपत्र भेजा। फिर से महम्मदी झण्डा उड़ाने की लालसा मुसलमानो के जी में हो आई। थोड़े ही दिनों में कुरुक्षेत्र के बड़े मैदान में, अहमदशाह, नजीव-खां रोहिला, शुजाउद्दौला, कुतबशाह, अहमदखां, दूंदेखाँ, प्रभृति रोहिला, पठान और दुर्रानी सर्दार अपनी अपनी चतुरङ्गिनी सेना ले ले के युद्ध लिये आ जमे।

इधर मरहठे भी अपना दल बल ले युद्ध के लिये आ डटे। दोनों ओर प्रायः ढाई लाख बीर बांकुरे अपने अपने भाग्य की परीक्षा के लिये आ भिड़े। दुर्भाग्यवश राजपूतानावाले राजपूत, जो बहुत दिनों से दिल्लीवाले बादशाहों के आधीन रह आए थे और उनको उनपर एक प्रकार की भक्ति हो गई थी, भीतर ही भीतर गुपचुप मुसलमानों की सहायता करने लगे। शुजाउद्दौला से मित्रता के हेतु उसकी भेदनीति के गुण से जाट सर्दार सूरजमल युद्ध होने से कुछ ही पहिले मरहठों का साथ छोड़ मुसलमानों से जा मिले। इससे बिबस हो महाराष्ट्रों को अपने ही बल का भरोसा कर विदेशी और विधर्म्मी बैरियों का सामना करना पड़ा। अपने धर्म्म की रक्षा के लिये एक लाख सत्तर हज़ार मरहठे अपने प्राण न्योछावर करने को प्रस्तुत होगए। युद्ध के पूर्व्व उन लोगों का उत्साह, विधर्म्मियों के प्रति विद्वेष, हिन्दूधर्म्म रक्षा के लिये अपना प्राण वारने का आग्रह, युद्ध का शोचनीय परिणाम प्रभृति विषय मल्हारराव हुलकर के आदेश से जो लिखा गया था, वह बड़ा ही मर्म्मस्पर्शी है। युद्ध होते होते दोनों दलवालों के जी में जब द्विविधा उठी तो एक बेर आपस में सन्धि होने की भी चर्चा छिड़ी थी। पर बाहुबल पर भूले हुए मरहठों ने सन्धि की उन शर्त्तों को न माना जो मुसलमानों ने चाहा था। अनेक लोक विध्वंशकारी उस युद्ध में यदि आपद्-काल में मरहठे सेनानी मुसलमानों की शर्त्तों को मान लेते और मौका पाके फिर उस सन्धि को तोड़ देते—जैसा प्रथम मरहठा युद्ध में पराजित अङ्गरेजों ने यह कहके कि "इस सन्धि के कागज पर कलकत्ते के (महाराष्ट्रीय पक्ष के पूना के) सर्दारों की साक्षी और सम्मति नहीं थी", प्रभृति उजर-दारी करके सन्धिभङ्ग कर दी थी—वैसे ही जो ये लोग भी करते तो भारतबर्ष के इतिहास में इतने थोड़े दिनों में ऐसा उलट फेर न हो जाता। परन्तु पूर्वोक्त वृत्तान्त लिखनेवाले कह गए हैं कि, कुरु पाण्डुवों के युद्धक्षेत्र में प्राप्त होने के कारण मरहठों के हृदय में धर्म्मभाव की अधिक उत्तेजना हो उठी थी, इसीसे वे विधर्म्मी मुसलमानों की शर्त्तें न मान सके। जो हो, युद्ध अनिवार्य्य होगया। सन १७६१ ईसवी के प्रारम्भ में पानीपत की समरभूमि में महाराष्ट्रों के वैभव की पूर्णाहुति होगई! भारत में हिन्दू साम्राज्य स्थापन की उच्च आकांक्षा कुछ दिनों के लिये विलीन हुई!

युद्ध समाप्त होने पर मुसलमानों ने वीरता पर कुछ भी ध्यान न दे कैदी हिन्दू वीरों के शिर काट लिए। सिवाय इसके जो रसद ढोनेवाले दांतों मे तिनका ले के उनकी शरण में गए थे, उन दीन जनों से भी उन निठुर मुसलमानों ने दया के पलटे पूरी निठुराई का बर्त्ताव किया। निठुर अफगानी हिन्दु सच्चे वीर धर्म्मावलम्बिओं के मुण्डों का

ढेर लगा उसे देख देख के प्रसन्न हुए थे।

इस युद्ध में विजय प्राप्त होने पर भी अबदली ने बहुत कुछ हानि सही। उत्तर भारत ने मुसलमानों की जय के परिणाम से कोई लाभ न उठाया। दिल्ली के गौरव की बात तो एक ओर रही, वरन दिल्ली के बादशाही घराने की दिनोदिन अवनति होने लगी। भारत के पूर्व भाग में अङ्गरेज़, दक्षिण में हैदरअली और पञ्जाब में सिक्खों की बढ़ती हुई।

इस दुर्घटना से मरहठों को बड़ी हानि सहनी पड़ी थी। उनके मुखिया मुखिया सेनापति और लाखों वीर योद्धाओं ने वीरलोक में प्रयान किया। पानीपत की समरभूमि में मरहठों के मुखिया सेनापति और सामन्तों ने अपने देश और धर्म्म के लिये अपने प्राण न्योछावर कर दिए। एक भी ऐसा वंश या घर न बचा जिसमें विलाप और रोने की ध्वनि न हुई हो। बालाजी बाजीराव और उनके जेठे पुत्र विश्वासराव और उनके चचेरे भाई भाऊ साहेब भी इसी युद्ध में मारे गए। यह दुखदाई समाचार को सुन बालाजी का कलेजा टूट गया अपने चचेरे भाई के बिरह से व्याकुल अपने जातिवालों का रोना पीटना देख सुन वह ऐसे व्यथित हो गए कि थोड़े ही दिनों के उपरान्त इस असार संसार से विदा हो गए। ऐसे दूरदर्शी मुखिया की मृत्यु से महाराष्ट्र समाज की मानों कमर टूट गई।

इस युद्ध में महाराष्ट्रों की सब सम्पत्ति के नाश होने, अनगिनत वीरों के मरने और लड़ाई के सामानों के चले जाने पर अब तक उन बातों की याद से हृदय दहल जाता है। सन्देह नहीं है कि ऐसी हानि यदि और किसी जाति को होती तो वह समाज एक बारही मटियामेट हो जाता। पर उनके हृदय में हिन्दू जाति और धर्म्म का जो अंकुर फूट चुका था इसीसे वे जग में जीते रहे। पानीपत के संग्राम में उनके भाग्यभानु के अस्त हो जाने के कारण कुछ दिनों तक तो वे मरे से पड़े रहे। पर पानीपत के संग्राम के पांच ही महीने के उपरान्त असाधारण अध्यवसाय के प्रताप से दिल्ली के चहुं ओर फिर मरहठे अपनी अमलदारी जमाने में प्रवृत्त हो गए, जिसे देख सुन मुसलमान परम चकित हो गए।

बालाजी बाजीराव के मर जाने से महाराष्ट्र समाज में कोई मुखिया सिरधरू न रहा, इसीसे पूना में परस्पर अनबनत हो फूट की बेल फैल गई। बालाजी के दूसरे चचेरे भाई रघुनाथराव (दादा जी), दूसरा व्याह परम सुन्दरी आनन्दी बाई से कर, उसीके वशी भूत हो गए। स्त्री के कहने में आके उन्होंने राज्य का आधोआध बटवारा करना चाहा, इसीसे एक नई कलह उठ खड़ी हुई। बालाजी के पुत्र ने युवक होने पर भी चाचा के शरणागत हो घरेऊ धधकती हुई अग्नि को बुझा दिया। विवेकभ्रष्ट रघुनाथ अपने भतीजे को कैद कर आप ही मालिक बन बैठे।

पानीपत में मरहठों की हार सुन हैदराबाद के निज़ाम अपनी अमलदारी फैलाने में उठ पड़े। रघुनाथराव ने उनसे लड़ के हार खाई। पर पेशवा का हाथी युद्धक्षेत्र से भागना नहीं जानता था, इसीसे राघोवा के हजार उद्योग करने पर भी उसने पीठ न दिखाई। बस, इसीसे दादा साहब को शत्रुओं के हाथ में कैदी होना पड़ा, इसीसे युवक माधवराव रणक्षेत्र में चाचा के साथ कैदी बने। वह चाचा की यह अवस्था देख ऐसे दुखी हुए कि अपने रखवालों के साथ युद्धक्षेत्र में उतर पड़े। बुढ़े मल्हारराव होलकर ने उस समय निज़ाम पर चढ़ाई न कर पूना के सिंहासन पर अधिकार करने की माधवराव को सलाह दी, पर माधवराव ने कहा, "चाचा को शत्रुओं के हाथ पटक कि मुंह से मैं पूना लौटुंगा?" युवा के इन महत्वपूर्ण उत्तर वाक्यों को सुन बुढ़े मल्हारराव लज्जित हुए। माधवराव ने अपनी बहादुरी से थोड़े दिनों में निजाम को पराजित कर चाचा को छुड़ा लिया। इससे अपने भतीजे पर दादा साहब

का स्नेह बढ़ गया। उन्होंने अपनी राजी से माधवराव को सिंहासन दे दिया।

माधवराव तेजस्वी, क्रोधी और धर्म्मपरायण थे। वह किसीको अन्याय करते देख उसे क्षमा नहीं कर सकते थे। कहते हैं कि एक बेर उनके मामा ने किसी अनाथा युवती पर पापदृष्टि की। यह सुन उन्होंने उन्हें बेंत पिटवाया था। उनकी माता ने चाहा था कि अपने भाई को क्षमा करवा दे, पर उन्होंने सच्चे राजधर्म्म को न छोड़ा। बेगार पकड़ने को वह अन्याय मानते थे। एक बेर उनके सेनापति ने किसीको बेगारी पकड़ा था; इसलिये वे उसपर बड़े क्रोधित हुए। यहां तक उनकी इच्छा रहा करती थी कि किसी तरह उनकी किसी बात से किसी को कष्ट न हो। यह बात प्रसिद्ध है कि उन्होंने रामशास्त्री को, जो विलक्षण न्यायपरायण थे, अपने यहां का विचारकार्य्य सैांपा हुआ था। मल्हारराव होलकर की मृत्यु के उपरान्त उनकी पुत्रबधू प्रातःस्मरणीया अहिल्या बाई* को, अन्याय से उससे राज्य छीनने की लालसा से, लालची दादा साहब ने माधवराव को बहुत लुभाया था, पर माधवराव को यह स्वीकृत न होने के कारण उनका वह अन्याय उद्योग न होने पाया।

उसी समय में हैदराबाद के निज़ाम के दीवान रुक्नमत उद्दोला ने अपना मकान बनवाने के लिये एक ब्राह्मण की धर्त्ती अन्याय से छीन ली थी। बिचारे ब्राह्मण ने निज़ाम के दरबार में बहुत पुकार मचाई, पर किसीके कानों में जूं भी न रेंगी। तब बिबस हो वह पेशवा के दरबार में पहुंचा। इस के बारे में पूना दरबार से कई बेर निज़ाम को चिट्ठी भेजी गई। पर निज़ाम ने उस लिखा पढ़ी पर कुछ भी ध्यान न दिया। तब नवाब की आंखें खोलने को माधवराव ने अपनी फौज तैयार की। जब मरहठों की सेना राजधानी के पास पहुंची तब नवाब की आंखें खुलीं और उन्होंने माधवराव से सन्धि करनी चाही। इसपर माधवराव ने कहला भेजा "आप ब्राह्मण की धर्त्ती उसे लैाटा दीजिए, यही हम चाहते हैं और इस चढ़ाई का जो कुछ खर्च्चा नवाब देंगे मैं वही लेलूंगा, पर निज़ाम साहब को कुरान छू के शपथ पूर्वक यह लिख देना पड़ेगा कि ब्राह्मण की वंशपरम्परा उस धर्त्ती पर अपना अधिकार रक्खे"। नवाब ने इसे स्वीकार कर लिया और मरहठे अपनी सेना ले पूना को लैाट गए। (शेष आगे) ले० कार्त्तिकप्रसाद।

* मेरी लिखी अहिल्याबाई की जीवनी पढ़िए।

श्री गुरु अमरदास जी

प्यारे पाठको, बिगत संख्याओं में महात्मा श्री गुरु नानक जी और गुरु अंगद जी का चरित्र मैं आप लोगों की भेट कर चुका हूं। अतएव आज तीसरे गुरु अमरदास जी का जीवन-चरित्र लेकर आप लोगों की सेवा में उपस्थित होता हूं और आशा करता हूं कि मेरे इस थोड़े से परिश्रम से आप लोग अवश्य कुछ न कुछ लाभ उठावेंगे और शिक्षा प्राप्त करेंगे।

संवत १५३६ विक्रमी, वैशाख सुदी १४, बृहस्पतिवार के दिन, पहर रात बाकी रहे, ग्राम बासर, परगना अमृतसर में, माता सुलच्छनी जी के गर्भ से अमरदास जी ने जन्मग्रहण किया था। इनके पिता का नाम ताजभान था। यह जाति के भेल्ले खत्री थे।

इस बात को आप लोग अच्छी तरह जानते ही होंगे कि जो पुरुष भविष्यत में 'बड़े आदमी' होकर संसार भर को अपने गुणों से मोहित कर लेते हैं, उनकी भावी उन्नति का लक्षण बाल्यावस्था से ही कुछ न कुछ दीख पड़ने लगता है। तदनुसार हमारे चरित्रनायक भी बाल्यावस्था से ही साधु-संगत से अधिक प्रीति रखते थे। सदा सन्त महात्माओं के निकट बैठ कर ज्ञानकथा सुनना उन्हें अधिक भाता था। जब उनकी उमर कुछ बड़ी हुई, तो एक दिन वह गंगास्नान करने जा रहे थे, मार्ग में एक ब्रह्मचारी से उनसे भेट हुई।

बहुत सी बात चीत होते होते, कहीं उस ब्रह्मचारी की दृष्टि अमरदास जी के पैरों पर जा पड़ी। वह ब्रह्मचारी सामुद्रिक शास्त्र का अच्छा ज्ञाता था, अतएव अमरदास जी के पैरों पर पद्म का चिन्ह देख कर उसने कहा कि "बच्चा अमरदास, तैं अवश्य एक दिन राजगद्दी का स्वामी होगा"।

यद्यपि अमरदास जी को राजगद्दी नहीं, वरन् गुरु की गद्दी मिली थी, तथापि उस ब्रह्मचारी का वचन झूठ नहीं हुआ; क्योंकि उसी गद्दी के प्रताप से अकबर ऐसे शाहनशाह अमरदास जी का सम्मान करते और उनपर भक्ति रखते थे। संवत १५५६ में जब उनकी अवस्था प्रायः बीस वर्ष की थी, तब उनके पिता ने पुत्र के पांव में संसार की मायारूपी बेड़ी डालने की इच्छा से एक प्रतिष्ठित मनुष्य की रामकुंवर नामक कन्या से उनका विवाह कर दिया। इस विवाह के फल स्वरुप अमरदास जी को दो पुत्र और एक कन्या भी उत्पन्न हुई। परन्तु इस गृहस्थाश्रम में फँसे रह कर भी उनकी धुन नहीं टूटी थी, वरन् उस समय उनके चित्त में सच्चे धर्म की खोज की और भी अधिक लालसा पैदा हुई और अपना मतलब सिद्ध करने के लिये वह हर एक धर्म्म और सम्प्रदाय के पण्डित और साधू सन्यासिओं से मिला करते थे, तथा धर्मविषय पर उन लोगों से बात चीत किया करते थे। परन्तु उनके इस दौड़ धूप का कुछ भी फल न निकला, उनके चित्त की शान्ति कहीं भी न हुई। अन्त को एक दिन गुरु अङ्गद जी की लड़की को उन्होंने नानक जी की वाणी गाते सुना। उन वाणियों ने उनपर बड़ा असर किया। उनके मन ने कह दिया कि इतने दिनों तक तू जिस वस्तु की खोज में था वह यही है। उन पदों के सुनते ही उन्हें उसके बनानेवाले की खोज पड़ी, तथा गुरु अङ्गद जी की पुत्री बीबी अमरु जी के, जो इन पदों को गा रही थीं, निकट जाकर अमरदास जी ने इसके बनानेवाले का नाम पूछा, तथा इसका पूरा इतिहास विदित होने पर, वह ऐसे मुग्ध हुए कि उन्हें गुरु की गद्दी के दर्शन की बड़ी लालसा हुई। अपने मन का हाल उन्होंने बीबी अमरु जी से कहा। वह उन को अपने पिता गुरु अङ्गद जी के पास लिवा ले गईं। बस, फिर क्या था, अङ्गद जी से भेट होते ही उनकी शङ्का का पूरा पूरा समाधान हो गया और उनपर उन्हें ऐसी श्रद्धा और भक्ति उत्पन्न हुई कि घरबार सब छोड़ कर वह गुरु अङ्गद जी ही की सेवा में रहने लगे। संवत १५९७ विक्रमी में शिष्य होने के उपरान्त लगातार बारह वर्ष तक उन्होंने ऐसी श्रद्धा और भक्ति से गुरु की सेवा की कि अङ्गद जी उनपर बड़े प्रसन्न हुए और उनसे पुत्रवत् स्नेह करने लगे। उनकी गुरुभक्ति का हम आपको एक उदाहरण सुनाते हैं। ऊपर लिखा जा चुका है कि संवत १५९७ में उन्होंने गुरु की सेवा करनी प्रारम्भ की और बारह वर्ष तक वह निरन्तर अङ्गद जी की सेवा में लगे रहे। उनका जन्म संवत १५३६ में हुआ था। इस हिसाब से जिस समय वह अङ्गद जी के शिष्य हुए, तब उनकी आयु ६१ वर्ष की थी और ७३ वर्ष की अवस्था तक उन्होंने अङ्गद जी की सेवा की। अतएव यह कहना अनुचित न होगा कि वृद्धावस्था में वह अङ्गद जी के शिष्य हुए थे। आप लोग अच्छी तरह जानते होंगे कि यह अवस्था कैसी दुःखदायी होती है, और मनुष्य के सारे शारीरिक बल इत्यादि को कम कर देती है। परन्तु नहीं, हमारे चरित्रनायक ने उस अवस्था को प्राप्त होकर भी अपने कर्तव्य को नहीं छोड़ा। उनकी गुरुभक्ति ऐसी अटल थी कि उस अवस्था में भी गुरु के स्थान से तीन कोस की दूरी पर व्यास नदी से गुरु जी के स्नान के लिये जल लाने के निमित्त आधी रात को उठ कर वह नित्य जाया करते और सवेरा होते होते गुरु के स्थान पर लौट कर उसी जल से वह अङ्गद जी को स्नान कराया करते थे। उनका यह नियम कभी भी नहीं टूटा, यहां तक कि एक दिन शीत काल की ऋतु में हवा तेज बह रही

ऊपर से पानी बरस रहा था, परन्तु ऐसे आपद काल में आधीरात को उठ कर वह जल लाने गए। जब जल लेकर लौटे तो मार्ग में अधिक कीचड़ होने के कारण उनका पैर फिसल गया और वे धम्म से भूमि पर गिर पड़े; परन्तु गिरती वार भी उन्होंने जल की गगरी सम्हाल रक्खी और अन्त को गुरु के स्थान पर आकर प्रति दिन की भांति उन्हें स्नान करवाया। हम समझते हैं कि अब आप लोगों को यह समझाना बाकी न रह गया होगा कि अमरदास जी गुरु के कैसे आज्ञाकारी और भक्त थे। अन्त को अङ्गद जी ने उन्हें दृढ़ समझ कर, उन्हींको अपने बाद गुरु की गद्दी दी। संवत् १६०९ विक्रमी में अमरदास जी गुरु नानक जी की पवित्र गद्दी पर विराजमान हुए। गद्दी पाने के बाद अमरदास जी गोइन्दवाल में रहने लगे। उन्होंने आज कल के महन्तों की भांति गद्दी पर बैठ कर केवल अपनी ही पूजा नहीं करवाई थी, वरन् रात दिन वह नानक जी के सत्यसिद्धान्तों का प्रचार किया करते थे। आस पास के पहाड़ी राजाओं को सिक्ख धर्म का अनुयायी बना कर उन्होंने इस धर्म की बड़ी उन्नति की। इसके सिवाय वह ईश्वरोपासना में ऐसे दृढ़ थे कि अत्यन्त वृद्धावस्था प्राप्त होने पर भी दीवार की एक खूंटी के सहारे खड़े खड़े परमात्मा का ध्यान और भजन किया करते थे, एक घड़ी भर के लिये भी शय्या पर नहीं लेटते थे। गरीबों और दुःखियों को सदाव्रत और लंगर तो सदा बांटा ही करते थे।

संवत् १६०० में गुरु की गद्दी पाने के पूर्व अमरदास गुरु की आज्ञा लेकर एक बार कुरुक्षेत्र में गए थे। वहां अनेक सम्प्रदाय और भिन्न भिन्न मत के लोगों का समागम हुआ था। कई पण्डित और साधू इनसे मिलने आए और इनके अमृतरूपी उपदेश को सुनकर ऐसे मुग्ध होगए कि जो उनके पास आया उसने फिर उनका साथ छोड़ना न चाहा। इसी प्रकार इनके साथ एक भारी मण्डली होगई और जब वे कुरुक्षेत्र से ग्राम अमली को जाने लगे, तो वह मण्डली भी उनके साथ चली। मार्ग में ठीकेदार ने आदमी पीछे १।) महसूल मांगा, परन्तु अमरदास जी ने महसूल देना अस्वीकार किया और वहीं डेरा डाल दिया। अन्त को यह झगड़ा यहां तक बढ़ा कि ठीकेदार ने राजा टोडरमल से जा शिकायत की। टोडरमल ने यह सब हाल तथा गुरु अमरदास जी की महिमा अकबर को सुनाई। अकबर ने उसी समय यह आज्ञा देदी कि "सिक्खों से महसूल न लिया जावे"। बस, फिर क्या देर थी, इस हुकुमनामे के आते ही अमरदास जी के साथ की मण्डली भर के मनुष्यों ने सिक्ख धर्म ग्रहण कर लिया और सबके सब बिना महसूल दिए आगे बढ़े।

राजा टोडरमल की ज़बानी इनकी महिमा सुनकर अकबर को गुरु अमरदास जी के दर्शनों की बड़ी लालसा हुई, तथा संवत १६२२ में वह स्वयं इनके दर्शन को आया और बहुत सा धन रत्न उसने अमरदास जी को भेंट दिया, तथा उनके सुललित धर्मोपदेशों को सुन मोहित सा होगया। उसने अमरदास जी को एक बड़ी जागीर देनी चाही, परन्तु उन्होंने लेना अस्वीकार किया और धन रत्नादिक जो भेंट में आए थे, गरीब दुःखियों और कङ्गालों को बांट दिए। शाहनशाह अकबर इनका बड़ा भक्त था और गुरु की भांति उनका सम्मान किया करता था। परन्तु अमरदास जी को अपने इस सम्मान और सुख्याति का जरा भी गर्व न था। वह बड़े सादे भाव से अपना दिन बिताते थे। सबको भोजन कराने के उपरान्त वह थोड़ा सा दूध और चावल या दलिया खाते थे और भोजन के बाद कुछ देर तक गोपाल पण्डित से शास्त्र और स्मृति की कथा सुना करते थे। अकबर बादशाह के बाइस सूबों की भांति इन्होंने भी बाइस गद्दियां कायम की थीं।

अकबर बादशाह इनका ऐसा भक्त था कि एक समय अमरदास जी की आज्ञा से उसने उनके स्थान पर पक्की बावली बनवा दी थी।

इतिहासों में ऐसा लिखा है कि अमरदास जो एक समय कई आदमियों से कई प्रकार के प्रश्नोत्तर किया करते थे। सौ वर्ष के करीब आयुष होने पर भी वह ऊपर लिखे प्रकार से खड़े खड़े ईश्वर की उपासना किया करते थे, तथा गुरु नानक जी के सत्यसिद्धान्तों के प्रचार करने में भी इन्होंने यथासाध्य उद्योग किया था। इसी प्रकार से अपने कर्त्तव्य को पालन करते, तथा अत्यन्त वृद्धावस्था में भी ईश्वर के ध्यान और उपासना में आलस्य न कर दृढ़ता से स्थिर रहते हुए, इक्कीस वर्ष तक गुरु की गद्दी पर रह कर, संवत १६३१, भादों सुदी १४ (९५ वर्ष की अवस्था में) को दो घड़ी रात रहे गुरु अमरदास जी की पवित्र आत्मा इस जीर्ण देह को छोड़कर स्वर्गधाम को सिधारी।

वेणीप्रसाद।

बालक-विनोद

भारत की परमेश्वर से प्रार्थना

१

हे दीनपालक! दयामय! दुःखहारी!
हे हे महा-महिम! मङ्गल-मूल-कारी!
हे प्रेम-मूर्ति! परमेश्वर-नाम-धारी!
थोड़ी विनीत विनती सुनिए हमारी॥

२

आलस्य, मोह, मद, मत्सर में हमारे
जो ये मनुष्य सब डूब गए विचारे।
सो तो गए; न उनका अब आसरा है;
हे नाथ! हाल उनका अति ही बुरा है॥

३

जो ये, परन्तु, सब बालक हैं दिखाते;
माता, पिता, गुरू जिन्हें श्रम से सिखाते।
सन्मार्ग में तुम सदा उनको चलावो;
ए हो दयामय! दया इतनी दिखावो॥

४

हो सत्य बात इनको सब काल प्यारी;
हे दीनबन्धु! अभिलाष यही हमारी।
बोलें न झूठ; उससे अति दूर भागें;
राखें सु-सङ्ग; खल सङ्गति में न लागें॥

५

आलस्य, फूट, मदिरा, मद दोष सारे
छाये यहां सब कहीं टरते न टारे।
हे भक्त-वत्सल! इन्हें उनसे बचावो;
हस्तारविन्द इनके सिर पै लगावो॥

६

जो ये कुरीति-समुदाय नए, पुराने,
नाना प्रकार, बहुधा, सब में समाने।
हे सत्य-सिन्धु! उनसे इनको उबारो;
है हानि, हाय, कितनी! तुमही बिचारो॥

७

उद्योग और श्रम, शिल्प कला सिखावो;
व्यापार में मन सदा इनका लगावो।
विद्या, विवेक, धन, धान्य, सभी बढ़ावो;
आरोग्य और बलवान इन्हें बनावो॥

८

देखो, यहां सकल बालक ये खड़े हैं;
छोटे अनेक, दस पाँच कहीं बड़े हैं।
हे हे दयालु; इनका कर थाँभ लीजै;
कीजै कृपा; अब इन्हें मत छोड़ दीजै॥

९

है एक और विनती तुमसे हमारी;
सो भी करो सफल हे प्रभु पापहारी!
ये सातवें नृप नए यडवर्ड देव
रानी- समेत चिरजीव रहें सदैव॥

महावीरप्रसाद द्विवेदी

नसीरुद्दीन हैदर

दूसरा अध्याय

हम सब पीछे के कमरे में बैठे बादशाह की राह तक रहे थे कि एक बजे से कुछ पहिले वह अपने लाड़ले मुसाहिब (हजामदास) के कन्धे से ढासना लगाए आते दीख पड़े। इस जुगल जोड़ी में बादशाह लम्बान में कुछ निकलते थे और उनका मित्र दबता था, परन्तु हजाम का बदन खूब गठीला और हृष्ट पुष्ट था और देखने में भी वह बड़ा निरोगी जान पड़ता था। हजाम यद्यपि मध्यम उचान का था, किन्तु लम्बान की कसर उसने चौड़ान में निकाल ली थी। जहांपनाह उस दिन की नाई सादा काले रंग का सूट पहने थे, अन्तर केवल इतना ही था कि फ़ाक कोट (frock coat) के बदले आज ड्रेस कोट (dress coat) पहिने हुए थे। गले में काली नेकटाई लगाए और पैरों में काले बूट थे। बस, यही उनका वस्त्र था और यही उनके आभूषण थे। उनके चेहरे से भलमनसाहत के साथ साथ बादशाही प्रताप और विभव का भली भांति लक्ष हो रहा था। इसके विपरीत हजामदास की आकृति पर स्वाभाविक नीचता की मुहर लग रही थी और फिटकार बरस रही थी। इसका वस्त्र यद्यपि बादशाह के सदृश था, पर फिर भी जो अन्तर दीख पड़ता था वह इस बात का यथेष्ट परिचय दे रहा था कि मनुष्य के आन्तरिक भाव कभी छिपाए नहीं छिपते। नीच प्रकृति को हजार उत्तमोत्तम वस्त्राभूषण से ढंकिए, पर उसका प्रकाश हो ही जाता है। खाने के कमरे में मेज़ पर जब हम लोग बैठे तो बिचित्र समां देख पड़ा। पूर्वी चमक दमक के साथ पश्चिमी सादगी एक प्रकार की विचित्र शोभा दिखा रही थी। बादशाह एक सुनहरी कुर्सी पर बैठे थे जो भूमि से कुछ ऊंचे रक्खी थी। मेज के एक छोर पर बादशाह थे और हम सब दाहिने बांये इधर उधर बैठे हुए थे। मेज़ का दूसरा किनारा इसलिये खाली रक्खा गया था कि जिसमें नौकरों को रिकाबियां रखने उठाने में सुगमता हो। परन्तु असल गरज़ यह थी कि जिसमें बादशाह सलामत नाच रंग, खेल तमाशे, बिना रुकावट देख सकें।

हम लोग बैठे ही थे कि कमरे में एक ओर का पर्दा उठा और उसमें से आधो दर्जन सुन्दर, अल्प वयस्का टहलनियां उत्तमोत्तम वस्त्राभूषण पहिने अठिलाती हुई आती दीख पड़ीं। मुझे पहिले ही से चेतावनी दे दी गई थी कि इन टहलनियों पर आंखें गड़ा के वा टकटकी बांध के देर तक देखते रहना दरबार के नियम के प्रतिकूल है, क्योंकि उनकी गिनती भी हरम शाही में होती है और वे जनसाधारण की दृष्टि से पोशीदा रक्खी जाती हैं। परन्तु यह ख्याल ही ख्याल है। जब तक मैं मेज़ पर बैठा था, लोगों की नजर बचाकर खूब आंखें सेकता रहा और अपने हाव भाव से इस प्रकार बेपरवाही दिखाता था कि जिसमें लोग समझें कि मुझे इन सब बातों से शौक नहीं है। यह सब परम रूपवती और तरुण स्त्रियां थीं। इनका रंग श्यामवर्ण था। काले काले बालों की गुथी हुई चोटियां, जिनमें मोती टंके थे, कमर तक लटक रही थीं। इनके चेहरे के खुलते रंग पर ये काली चोटियां अपनी विचित्र छबि दिखा रही थीं। इनके गाल मारे जोश के तमतमा रहे थे। एक हलका बारीक दुपट्टा, जिस पर कारचोपी के काम बने हुए थे, सर से पैर तक लटक रहा था। इन बारीक दुपट्टों में से इनके मोढों का रंग छना पड़ता था। बादशाह को मुरछल करती बेर जब ये आगे बढ़तीं और फिर एक विचित्र अदा से पीछे हटती थीं, उस समय इनके विस्तृत सीनों का उभाड़ बड़ा भला दीख पड़ता था। इनके अंग का तरला भाग बड़े बड़े तुर्की पायजामों से ढंका हुआ था। ये पायजामे लाल या नीले साटन के बने हुए थे। कमर के पास चुस्त और फिर क्रमानुगत ऐसे ढीले होते गए थे कि घुटनों के पास समेटकर कमर में खोस लिए जाते थे और इनके ऊपर सोने की पेटी बांध ली जाती थी।

ये सब चुपचाप आके बादशाह की कुर्सी के पिछाड़ी खड़ी होगईं। न तो बादशाह ने इनसे कुछ कहा और न दरबारियों में से किसीने इनकी ओर देखा। खाने के समय का यह नियम मानो नित्यप्रति का था। इनकी बांहें कोनी तक नंगी थीं। जब ये पारीपारी से दो दो मिल के मधुरगति से मुरछल करती थीं और कभी बादशाह को कुर्सी के पास आजातीं और कभी फिर पीछे हट जातीं थीं, उस समय का इनका भाव और छवि वास्तव में देखने योग्य होती थी। यदि भारतवर्ष की ललनाएं अपने शारीरिक सौन्दर्य्य में अपने दूसरे देश की बहिनों से बढ़ गई हैं तो वह केवल अपने काट छांट और सुडौलपने के कारण। कामदेव को स्त्री रति (Venus) की प्रतिमा बनाती बेर चित्रकार ने अवश्य इन्हीं बांहों के ढांचे का आशय लिया होगा। इस प्रकार ये टहलनियां धीरे धीरे मुरछल डुलाया करतीं, अथवा बादशाह का हुक्का ताज़ा किया करतीं। बीच बीच में पारी पारी से विश्राम लेने को भी चली जातीं, यहां तक कि बादशाह के उठने का समय आन पहुंचता और वह उठके हरम में चलते नज़र आते। परन्तु वह शराब में प्रायः ऐसे मत्त हो जाते कि येही सब अपने सहारे से उन्हें अन्दर महल में पहुंचा आया करती थीं।

इन बातों के अतिरिक्त भोजन का ढंग बिलकुल युरोपियन था और कलकत्ते के किसी योरोपियन धनिक के यहां के भोज से बहुत कुछ मिलता जुलता था। हिन्दुस्तानी नौकर बड़ी सावधानी और शान्त भाव से आते जाते और अपने अपने काम करते थे। हम सब बादशाह से वार्तालाप किया करते। साधारणतः शुरवा, मछली, रान, दाल चावल, चपातियां और फल दस्तरखान पर चुना जाता। इन सबका पकानेवाला अपने फन का बड़ा निपुण था। शाही पाकशाला का प्रधान बावर्ची एक फरासीसी था। यह महाशय पहिले कुछ दिनों तक बङ्गाल क्लब (कलकत्ता) के प्रधान बावर्ची रह चुके थे। परन्तु इस फरासीसी बावर्ची अथवा अङ्गरेज़ कोचवान, किसीकी भी मा पद से बाहर पैर रखने की सामर्थ्य न थी। श हर एक बातों में किसीको चलती थी तो व हजामदास थे, जो केवल बादशाह के मुसाहि ही नहीं बने फिरते थे, वरञ्च राज्य भर में उनक तूती बोलती थी।

नसीरउद्दीन यद्यपि मुसलमान था, पर शराब से उसे कुछ भी अरुचि न थी। अवध के प्रा सभी अमीरों की यही दशा थी। मैंने हजरत क कई बेर कहते सुना है कि कुरान में शराब क निषेध नहीं है। हां उसके अति की अवश्य मनाह है। परन्तु मेरी समझ में उनका मत यह था, और वह इसीके अनुसार व्यवहार भी करते थे, कि जब जनसाधारण को संयम से पीना रवा है तो बादशाह को अति भी रवा हो सकती है। और इसीसे बिरले ही कभी ऐसा हुआ होगा कि हजरत मेज पर से अचेत न उठे हों। हम लो के सामने मेज पर प्रायः क्लारेट, मडियरा औ शैम्पेन (ये सब अङ्गरेज़ी शराबों के नाम हैं) रक्खा जाता था और जब गर्मी अधिक पड़ती तो इनको पहिले से बर्फ से बुझा देते थे, जिससे ये और अधिक स्वादिष्ट हो जाते।

भोजन इसी तरह जारी रहता और इस साथ साथ शराब का दौर भी चलने लगता। कु काल में बादशाह और उनके मुसाहिब अधि उन्मत्त हो जाते और तब जहांपनाह बड़े लल से फरमाते "हम हमेशा से युरोपियन लोगों प्यार करते आए हैं, और इसीसे यहांवाले मुझ बुरा मानते हैं। यदि हमारे वंशवालों का बस च तो दिन दुहाड़े हमें विष दे दें। परन्तु इन बिचा की कुछ चलती नहीं! वे मुझसे बड़े भयभीत र हैं। वल्लाह! मेरा भय इनके दिलों में कैसा समा हुआ है!"

इसपर उनके सिर चढ़े मुसाहब कहते "ह से वास्तव में ये सब बड़ा डरते हैं।"

बादशाह इसपर फरमाते "ताड़ना दे देकर मैंने उन्हें भलि भांति भयभीत कर रक्खा है।"

फिर बांये ओर फिर कर हम लोगों से फरमाते "क्यों जी! तुमने लखनऊवालें के तो आपस में बहुधा लड़ते झगड़ते देखा होगा?"

"जो हज़ूर! बहुधा।"

"क्या कभी एक दूसरे का बध भी कर डालते हैं?"

"जी हज़ूर! कभी कभी।"

"हां, हम भी जानते हैं। पर क्यों जी! तुम लोगों के साथ तो कभी छेड़ छाड़ नहीं करते?"

इसपर हम सब जवाब देते "नहीं हज़ूर, कभी नहीं।"

तब वह कहते "ये दुष्ट जानते हैं कि मैं अंगरेज़ों के बहुत प्यार करता हूं, एवं इनसे छेड़छाड़ करेंगे तो बादशाह हम सबका जड़ मूल से नाश कर देंगे।"

तत्पश्चात् नाना प्रकार के उमदा फल जो उष्णप्रधान देशों में पैदा होते, मेज पर ला के रक्खे जाते थे और इसकी समाप्ति के साथ मानो भोजन की भी समाप्ति होती और खेल तमाशों का आरम्भ होता। ये खेल तमाशे भांति भांति के होते थे। कभी नजरबन्द वालें का खेल शुरू होता और ये अपने करतब दिखा कर सबको कौतूहल से विस्मित कर देते। अपने बदन के इस प्रकार तोड़ते और मड़ोड़ते या रस्सी से ऐसे कस के बांधते और ऐसे ऐसे आश्चर्य्यजनक खेल करते कि मानो बदन में हड्डी का कहीं लेस ही नहीं है। उछल कूद में बन्दरों के प्रपितामह बन जाते। हाथों से माथे के बल बड़ी फुर्ती से चलते। इन खेलें में ऐसी फुर्ती दिखाते थे कि देखनेवाला चकित हो जाता था। दर्शकों में से यदि किसीने एक कहकहा लगा दिया तो बस मानों इन्हें मुह मांगा वर मिल जाता और वे बड़े प्रसन्न होते। कभी दरबार के मसख़रे (भांड़) आपस में बहस मुबाहसा करते और अपनी अपनी युक्ति लड़ाते, परन्तु इनके वार्तालाप में प्रायः निर्लज्ज शब्दों का अधिक प्रयोग होता था। कभी इन्द्रजाली और सपेहरे भयङ्कर सांप के अपने बश में कर के लोगों के प्रसन्न करते। कभी मेज पर हज़ूर के सामने मुर्गे, बटेर, वा तीतर की लड़ाई होती। कभी कठपुतलियों का खेल होता और मनुष्य की नाईं ये ताल सुरपर नाचतीं और मटकतीं। इन खेलें के साथ साथ कमरे में किसी ओर अपने साज़ समाज के साथ रण्डियां भी नाचती जाती थीं। जिस रोज मैं पहिले पहल भोज में शरीक हुआ हूं, उस दिन कठपुतलियों का खेल हो रहा था और रण्डियां नाच रहीं थीं। बादशाह सलामत कठपुतलियों के नाच के जी लगा के देख रहे थे और हँसते जाते थे। हजामदास जब देखते कि यह खेल बादशाह के खूब भाया तो तुक में तुक मिलाने के लिये आप भी हँस पड़ते या प्रशंसा करने लग जाते। नाचते समय रण्डियां विचित्र हाव भाव बतातीं। कभी एक हाथ माथे पर और दूसरा हाथ कमर पर धर के फिरकी के समान कमर हिलाती हुई बादशाह के निकट आ जातीं और फिर अठलाती हुई समाजियों के पास जा पहुंचतीं। इन रण्डियों का मुखड़ा वैसा सुन्दर न था जैसा कि बादशाह की टहलनियों का था। परन्तु इनके बदन की काट छांट खूब सुडैाल थी और सबसे बढ़के इनकी सजधज थी। ये अपने हर एक अङ्ग के इस प्रकार बनातीं और सवारती थीं और फिर अपने अङ्ग अङ्ग से ऐसी फुर्ती और लोच प्रगट करती थीं कि विचारा मनुष्य लट्टू ही हो जाता था। इनके समाजी अपने तबले और सारङ्गी पर अपना जैाहर दिखाते और उसके साथ साथ कभी आगे कभी पीछे हटते। पर ये हर हालत में अपने साज के रण्डियों के सुर से मिलाए रहते थे जिससे मालूम होता था कि साज मुख्य है और रण्डी उसका साथ दे रहीं हैं। इन रण्डियों के नाच वा उनके भाव बताने में बादशाह वा उनके मुसाहिबों

में से किसीको अधिक दिलचस्पी न थी, परन्तु मैं बड़े गैार से देखने और सुनने में मग्न था। बादशाह और उनकी वजह से सारा दर्बार कठपुतलियों के तमाशे देखने में लैालीन था और सब उसकी वाहवाही में लगे थे। इसी समय बादशाह ने हजामदास के कान में झुक के न जाने क्या कहा और वह तत्क्षण बाहर जाता दीख पड़ा और फिर शीघ्र ही लैाटा और बादशाह के हाथ में चुपके से न जाने क्या दिया। बादशाह ने अपनी कुर्सी पीछे खिसकाई और उठके मेज़ की दूसरी ओर घूम के जा रहे और पास पहुंच कर गैार से तमाशा देखने लगे। तमाशेवालें ने समझा कि अब भाग्य उदय हुआ, अब मुंह मांगा इनाम लेंगे। यह विचार कर जी लगा के तमाशा करने लगे। बादशाह भी थोड़ी देर तक ते चुप चाप गैार से देखते रहे और बाद के अपना हाथ फुर्ती से आगे बढ़ाया और फिर खींच लिया। हाथ का पीछे हटाना था कि एक कठपुतली धम से जमीन पर आगिरी। इससे स्पष्ट मालूम हो गया कि बादशाह के हाथ में कैंची थी जिससे उन्होंने तार काट दी होगी। इस बात से तमाशे करनेवाले भी अवश्य विज्ञ होंगे, पर वे इसे देख कर ऐसे अचम्भे में आ गए अथवा ऐसे बन गए कि मानों कोई बड़ी भारी दैवी घटना हो गई हो। हिन्दुस्तानी लोग बनावट में स्वाभाविक ऐसे निपुण होते हैं कि उन्हें इस विषय में शिक्षा देने की कोई आवश्यकता नहीं है। बादशाह अब हम लोगों की ओर मुखातिब हुए और इस दृष्टि से देखने लगे माना हम लोगों से यह कहलाया चाहते हैं कि "वाह! वास्तव में कैसी सफाई की है"। इस पर हजामदास ने कहकहा लगाया और फिर दूसरे मुसाहिबों ने भी उसका साथ दिया। परन्तु बादशाह के हाथ की सफाई का अभी अन्त नहीं हुआ। वह बेर बेर हाथ बढ़ाते और हटा लेते और हरएक बेर में एक पुतली बेजान होके भूमि पर धम से आ गिरती। हरएक पुतली के गिरने पर बादशाह सलामत हंस पड़ते और दरबारी उनका साथ देते और बिचारा तमाशे का मनेजर ठहरा के अचम्भे में आता। जब एक एक करके सब पुतलियां गिर गईं तब भी बादशाह के मसखरेपन का अन्त न हुआ और हजरत ने बत्ती लेकर तमाशे के घर में आग लगा दी। बारे, बड़ी कठिनाई से आग बुझाई गई। इसके बाद उस रात के आखिर तक नाचनेवालें पर रायज़नी होती रही। शराब के दैार खूब जारी रहे और बादशाह सलामत शराब में ऐसे चूर हुए कि जो वास्तव में सभ्यता के प्रतिकूल था।

यह न ख्याल करना चाहिए कि इस बीच में हमने उधर बिलकुल ही अपनी नज़र न डाली थी जिधर कोने में एक गाच का पर्दा लटक रहा था। मुझे पहले से खबर थी कि हरम की लाड़ली बेगमों को आज्ञा है कि उस पर्दे की ओट से खाने का तमाशा देखें। इसलिये उस ओर टकटकी बांध के देखना नियम के विरुद्ध है। परन्तु मैं लोगों की आंख बचा के कभी कभी उधर का नज़ारा ले लेता था। यह पर्दा इतना मोटा था कि उस पार की सूरत हम स्पष्ट नहीं देख सकते थे। केवल पर्दे के भीतर कुछ धुँधली परछांई सी सूरतें चलती फिरती दीख पड़ती थीं। इनमें एक सूरत कुछ स्पष्टता के साथ गद्दी पर बैठी दीख पड़ती थी। वह निस्सन्देह उस समय की बादशाह की प्रियतम होगी। रोशनी की आभा से उनके हाथ और गले के आभूषण चमकने लगते थे। जिस समय बादशाह ने कठपुतलियों के काट गिराया था, उस समय पर्दे के भीतर से स्त्रियों की मधुर और प्यारी हँसी सुन पड़ी थी। यद्यपि दूर होने से हम लोग पर्दे के भीतर की कोई वस्तु स्पष्ट रूप से नहीं देख सकते थे, परन्तु पर्देवालियां हम सबको अवश्य देखती होंगी। (इसका कारण फासला नहीं है जैसा साहब बहादुर लिखते हैं। पर्दे के भीतर अँधेरा होने से बाहरवाले जो चांदने में बैठे थे, भीतर अँधेरे में की चीज़ नहीं देख सकते थे)।

शराब ने अब अपना पूरा असर सब पर जमा लिया। नांच रङ्ग होता ही रहा, पर बादशाह सलामत उन्मत्त होते चले गए, यहां तक कि थोड़ी देर में उनके बचे बचाए होश हवास भी जाते रहे और अन्त में उन टहलिनियों और दो मज़बूत ख़ाजाओं ने सहारा देकर उन्हें पर्दे के भीतर पहुंचा दिया और वह महलसरा में पहुंच गए। यह बात कैसी आश्चर्य्यजनक देख पड़ती थी कि शराब के नशे में उन्मत्त होकर एक बादशाह भी साधारण पुरुष सा दीख पड़ता था। दूसरे दिन महल के उस भाग के देखने का मुझे अवसर मिला जिसे अबतक मैं न देख सका था। इसके भीतर का हरएक भाग वैसा ही सजा हुआ था जैसे महल के दूसरे भाग थे। शीशे और चमकीली चीज़ों को हर जगह बहुतायत थी। ऐसी चीज़ें बहुत थीं जिनमें चमक दमक बहुत हो, परन्तु उनमें वास्तविक सुन्दरता न थी। इसका एक भाग मुझे बहुत भाया जहां एक बनावटी झील थी, जिसने एक प्रकार से सारे बाग को घेर लिया था। इसके बीचो बीच में एक बारहदरी बनी हुई थी और वह टापू को नाईं जल के बीचोबीच में स्थिर थी। इसतक पहुंचने का कोई मार्ग न था। बाहर से बारहदरी उमदः उमदः रङ्गों से रङ्गी हुई थी और उसके ऊपर छोटे छोटे बुर्ज बने हुए थे। इस झील का जल उज्वल और निर्मल था। इसमें रङ्ग विरङ्ग की सुनहली रुपहली मछलियां इधर उधर तैर रही थीं। इनमें बहुधा एक या डेढ़ फुट की लम्बी मछलियां थीं। छोटी डेंगी पर चढ़ के इस बारहदरी तक जाना होता था और इसीलिये एक डेंगी सदा किनारे पर बँधी रहती थी। मेरे मित्र (जो बादशाह के मुसाहिब थे और मेरी अपेक्षा इन्हें बादशाह बहुत मानते थे) डेंगी में जाबैठे और मुझे भी बुलाया। हम लोगों के बैठते ही नौकाचालक आन पहुंचा और डेंगी को खेकर उसने हमें उस बारहदरी तक पहुंचा दिया। मुझे तो लखनऊ भर में यही एक घर सुन्दर देख पड़ा। इसमें दो कमरे मझोले नाप के बने हुए थे और खूब ही सजे थे। इस बारहदरी में दीवार के पास चारों ओर कोचें बिछी हुई थीं। बड़े कमरे के बीच में एक मेज थी जिसपर शाही महल का एक छोटा सा ढांचा रखा हुआ था। इस ढांचे में शिल्पकार ने महल के एक एक कोने कुतरे का बजिन्स नमूना बना के सामने खड़ा कर दिया था और रंग भरने में ऐसी बुद्धि खर्च की थी कि उसे देखते ही भारतवर्ष की शिल्पकारी की अन्तःकरण से प्रशंसा और मुक्तकंठ हो बड़ाई करने लगा। (हा! अब वह शिल्पविद्या और शिल्पकार कहां चले गए!) जिस बारहदरी में हम लोग खड़े थे, वह भी उस ढांचे में दिखाई गई थी जो परिमाण में बादाम से बड़ी न होगी। परन्तु शिल्पकार ने बड़ी सूक्ष्मता से बुर्जों की कलश, बाहर के रङ्ग की भरावट और भीतर के दोनों कमरों की नकल उतारी थी।

इस बारहदरी में खड़े होकर इधर उधर देखने से जान पड़ता था मानो हम किसी परिस्तान में खड़े हैं। उज्वल जल में रङ्ग बिरङ्गी मछलियों का इधर उधर तीर के समान तैरना, किनारे से एक सजी हुई डेंगी का बंधा रहना, झील के किनारे किनारे रङ्ग बिरंगे फूलों की झमाठ और उनके ऊपर बड़ी बड़ी झाड़ियां, जिन्होंने सारी दुनियां को मानो हमसे छिपा रक्खा था—यह सब समां मुझे ऐसा भला दीख पड़ा कि मैं अपनेको भूल-गया और सोचने लगा कि यदि मैं बादशाह होता तो कुल राज पाट महलादि छोड़कर इसी बारहदरी को निवासस्थान बनाता। परन्तु बादशाह सलामत अब इसमें कभी कभी बिरले ही आजाते हैं और इसीसे उनके बेतवज्जुही के चिन्ह चारों ओर दीख पड़ने लगे थे। किसी ज़माने में वह इस बारहदरी पर ऐसे लट्टू थे कि बेगमों के जमघटे में बैठ के इसीकी सैर किया करते थे और खाजा लोग डेंगी खेते थे। परन्तु कई वर्षों से इधर उन्होंने इसे चित्त से उतार दिया था, जिससे यह बारहदरी बेमरम्मत हो रही थी।

इस घटना से कुछ दिन बीते अकस्मात् भोजन के समय इन रंगीन मछलियों की बात छिड़ी और यह बहस पेश हुई कि रंगीन मछलियां क्या खाई भी जा सकती हैं, और यदि खाई जांय ते स्वाद में कैसी होंगी? इस पर बादशाह ने फर्माया कि "हां खाई जाती हैं" और आज्ञा दी कि कल थोड़ी सी पकवाई जावें। दूसरे दिन आज्ञानुसार ये मछलियां पक कर खाने की मेज पर रक्खी गईं। पर खानेमें कुछ स्वादिष्ट न थीं। और यदि स्वादिष्ट होतीं भी ते इनका खाना कठिन था, क्योंकि इनमें कांटे बहुत थे। इनसे ते हिलसा नामक मछली हज़ार दर्जे अच्छी होती हैं, जिसके विषय में हिन्दुस्तानी कहते हैं कि उसमें कांटा बहुत होता है।

अब शाही दर्बार का नित्य एक नया नियम सीखते सीखते मेरा जी ऊब गया था। एक दफे का योंही ज़िक्र है कि बादशाह ने रेजिडेण्ट के भोजन का नेवता दिया। जिसमें एडिकाङ्ग और छावनी के भी बहुत से अंगरेज़ आकर शरीक हुए। भोजन इत्यादि के अंत होने पर बादशाह एक सरजन की ओर मुखातिब हुए जो कम्पनी का मुलाजिम था और जिसे हम यहां जोन्स के नाम से पुकारेंगे।

बादशाह—"मिस्टर जोन्स! आइए, हम आप ड्राफ्ट की एक बाजी खेलें"। विदित हो कि जब यह जोन्स बादशाह के एडिकाङ्ग थे ते इन्हें बादशाह को ज़क देने की एक प्रकार से लत लग गई थी। इससे बादशाह इनसे भीतर से रुष्ट थे। जोन्स—"बड़ी खुशी से। हजूर के साथ खेलने में मेरी सरासर प्रतिष्ठा है"। बादशाह—"पर १०० मोहरें (१ मोहर = १६ रु०) की बाजी बदनी होगी"। जोन्स—"हजूर, मैं १०० मोहरों की बाज़ी ते नहीं बद सकता, मैं एक गरीब आदमी हूं"।

बस, बादशाह अब अपने मास्टर साहेब की ओर फिरे और कहने लगे "मास्टर जी! आप हमसे १०० मोहरों की बाजी बदते हैं"?

चूंकि मास्टर साहेब बादशाह के मिज़ाज से भली भांति परिचित थे, इस लिये उन्होंने उत्तर दिया कि "हज़ूर की यह कृपा है। मैं किस योग्य हूं, मैं ते इसमें अपना सरासर गौरव समझता हूं"।

बस, खेल की तखती मंगाई गई और गोटियां बिछ गईं और लगा खेल होने। मैं भी बादशाह के समीप बैठा हर एक चालों को देख रहा था। चूंकि मैं जानता था कि मास्टर साहब शतरंज के बहुत अच्छे खेलाड़ी हैं, इसलिये ड्राफ्ट भी अच्छा खेलेंगे, परन्तु मैंने देखा कि आज उनकी चालें बड़ी निकम्मी पड़ रही हैं। यद्यपि बादशाह खुब खेल रहे थे, पर यह उनसे भी गए बीते हो रहे हैं। इससे मुझे दरबार के नियमों की यह शिक्षा मिली कि अपने भर सक बादशाह को मात नहीं करना चाहिए। मास्टर साहेब यद्यपि बड़ी गुप्त चाल चल रहे थे, पर फिर भी प्रत्यक्ष में ऐसे बन गए थे मानों जितनी सोच समझ से वह खेल सकते हैं, खेल रहे हैं। पर मैं भांपता जाता था कि वह बड़ी कठिनाई से बादशाह को जीतने का अवकाश दे रहे हैं। इसके बादही सुनने में यह भी आया कि मुसाहिबों में से बाज़े प्रायः ऐसा भी करते हैं कि बादशाह के बिपक्षी को बातों में उलझा लेते हैं, और इस प्रकार बादशाह सलामत को मौका देते हैं कि वह आंख बचा के कुछ मोहरे इधर के उधर कर दें। खैर किसी तरह से बाजी समाप्त हुई और मास्टर साहब ने (अपने आप) शिकस्त खाई और बादशाह सलामत ने प्रसन्न होकर मास्टर साहब से फर्माया कि "अब आप के यहां मेरी १०० मोहरें हुईं"। मास्टर—"जी हजूर हुईं ते सही, आज संध्या को मैं लेता आऊंगा"। इसके उत्तर में महल में जाते जाते बादशाह ने फर्माया, "देखिए मास्टर जी, हमारी मोहरें जरूर लेते आना"।

जब शाम को खाने के समय हम पंच पवित्रात्मा एकत्र हुए तो मास्टर साहब को देखते ही सब से पहिला प्रश्न जो बादशाह का हुआ वह यह था कि "मास्टर जो, हमारी अशरफ़ियां लाए?"

मास्टर ने कहा "जी हजूर, लाया हूं। पर पालकी में रखी है। अभी जाकर लाया"। बादशाह ने कहा "अजी अहमक हुए हो ? रहने दो अपनी अशरफ़ियां; चौघड़े कर के घर भेज दो। क्या मैं सचमुच तुम्हारी अशरफ़ियां लेने लगा हूं। जोन्स ने जाना था कि शायद मैं सच उसकी लेलूं। तुमने देखा था, सुअर खाने पर कैसा टूटा पड़ता था? वल्लाह! मुझे तो उसके नाम से घृणा है"।

परन्तु मेरे सहृदय पाठकों के चित्त में यह प्रश्न उठेगा कि "क्या जोन्स को बादशाह की इस परिपाटी से विज्ञ करनेहारा कोई भी न था?" उन्हें मेरा उत्तर यह है कि जो कोई उसे सम्मति देता कि तू अबकी अवसर पर बादशाह से बाजी लगा बैठिओ, वह बिचारे जोन्स को १६००) रुपए अवश्यमेव डंड़वा देता। क्योंकि बादशाह का चित्त ऐसा अस्थिर था और वह ऐसे ओछे स्वभाव के मनुष्य थे कि उनकी बातों पर किसीको भी भरोसा नहीं था। उनके नौकर चाकर सभी जानते थे कि यदि बादशाह बाज़ी का रुपया ले लेंगे तो उसका दूना किसी दूसरे रूप में शीघ्र ही प्राप्त भी हो जायगा, अर्थात् बादशाह या वजीर इनाम के बहाने दे देंगे; परन्तु जिससे बादशाह का चित्त फिरा हुआ रहता है, उसके साथ न जाने कैसी हो। सच तो यह है कि बादशाह के साथ ड्राफ्ट या शतरंज खेलना एक टेढ़ी खीर थी, क्योंकि सब जानते थे कि वह खराब खेलते हैं, पर फिर भी अपने जीतने की कोशिश न करके अपनी बुरी से बुरी चालों द्वारा उन्हें जिताना पड़ता था। यदि इसके विरुद्ध कीजिए तो आपने दरबार के नियमों का उल्लंघन किया। वह मेरे साथ प्रायः खेला करते थे, परन्तु मैं सदा उस अनुभव को स्मरण रखता था जो बादशाह और मास्टर के बीच खेल को देखने से मुझे प्राप्त हुआ था। उसके साथ अंटा खेलना सबसे कठिन था। उस अवस्था में यह जरूरी आन पड़ता था कि किसी ऐसे मित्र (जो बेईमानी में निपुण हो) को पास खड़ा कर ले जो आंख बचा के उसके गेंद को छूता जाय जिसमें बादशाह का गेंद आगे निकल जाया करे, वा इसी प्रकार उन्हें जिताने का दूसरा यत्न करता रहे। यह सब करतब बड़ी सफ़ाई से करने पड़ते थे, जिसमें किसीकी नजर न पड़ जाय। फिर बादशाह उसी अवस्था में राजी रहते थे जब उनका बिपक्षी इन बातों से अपनेको ऐसा अचेत बनाए रहे और बादशाह की चालों पर उसे एक प्रकार का अचंभा जान पड़े। यदि ये सब बातें सफ़ाई से की गई तो बादशाह सलामत प्रसन्न और राजी दीख पड़ते थे और बात बात पर हँसते जाते थे। इसमें कुछ सन्देह नहीं कि ये सब बातें बादशाह के लिये बड़ी निन्दा की हैं। पर सभी देश और प्रायः उन बादशाहियों में भी जो लखनऊ से सभ्यता में कहीं श्रेष्ठ हैं ऐसी बातें नित्य ही हुआ करती हैं। यह कदापि न बिचारना चाहिए कि ऐसी बातें केवल लखनऊ दरबार में ही होती थीं। जैसे रशिया एक सभ्य देश है, पर वहां के महाराजाधिराज को भी अण्टे, ड्राफ्ट या शतरंजादि खेलों में हरा देना दरबार के नियम के प्रतिकूल है। यद्यपि वहां के महाराजाधिराज बच्चे वा नासमझ नहीं हैं, फिर भी कोई न कोई ऐसी युक्ति जरूर लगा दी जाती है कि बाज़ी वही मार ले जाते हैं। परन्तु यह तो मन की गढ़त थी।

अब हम युरोप से एक बादशाह के आखेट का सच्चा हाल लिखते हैं जिसके पढ़ने से आप पर प्रगट हो जायगा कि हिज़ स्वार्दी मैजिस्टी (His Swarthy Majesty) नसीरउद्दीन शाह के दर्बार में ऐसी बेवक़ूफ़ियां नहीं होती थीं। सेण्ट ह्यूबर्ट के दिन (St. Hubert day) ता० ३ नवम्बर को, दर्बार बर्लिन (Berlin) की ओर से

ग्रवाल्ड (Grunwald) की जंगल में सूग्रर का ग्राखेट होता है। यह मानों उनके वंश में परम्परा से एक प्रथा चली ग्राती है। इस शिकार में शाह प्रशिया काले मखमल का कोट ग्रैार सफ़ेद दूध का धोया पतलून धारण करके मैदान में ग्राते हैं ग्रैार दर्बारी लोग लाल कोट ग्रैार चमड़े का बूट इत्यादि पहने रहते हैं। एक तैयार किया हुग्रा बनैला सुग्रर (जिसके दांत कटे रहते हैं) मैदान में छोड़ा जाता है ग्रैार इसके पीछे बादशाह, उनके दरबारीगण ग्रैार शिकारी कुत्ते दैाड़ते हैं। एक हलकी दैाड़ान में बादशाह ग्रपने गिरोह सहित उस तक पहुंच जाते हैं ग्रैार कुत्ते उसे धर दबाते हैं। परन्तु शीघ्र ही एक शिकारी घोड़े से कूदता है ग्रैार कुत्तों के मार कर उनसे शिकार छीनता है, ग्रैार फिर उठाके बादशाह के सामने लाता है। उस समय बादशाह सलामत घोड़े से उतरते हैं ग्रैार सूग्रर के समीप ग्राते हैं। ग्रब उनके हाथ में एक जगमगाती तलवार थमा दी जाती है ग्रैार वह उससे उसकी गर्दन पर एक वार करते हैं। बस, इसीके लिये बादशाह की बीरता ग्रैार चतुरता की चारों ग्रोर से वाहवाही होने लगती है। हजरत सचमुच ग्रपनी शूरता पर फूले नहीं समाते ग्रैार प्रसन्न होकर महल में प्रवेश करते हैं। इस उपकथा से मानो सिद्ध हो गया कि लखनऊ के दरबार की जैसी हालत है, वैसी योरोप के भी बहुतेरे दर्बारों की परिपाटी हो रही है।

लखनऊ दर्बार में युरोपियन मुलाज़िमों का जो ग्रादर ग्रैार मान होता था, उसे हिन्दुस्तानी दर्बारी कभी पसन्द नहीं करते थे। वरन् ये ग्रंगरेज़ उनकी ग्रांखों में कांटे के समान चुभते थे, परन्तु यह स्वाभाविक है। जिस समय हजामदास बादशाह के समीप रहते, उस समय वज़ीर सेनापति ग्रैार जेनरल (ग्रर्थात् राजा बख्तावर सिंह, जिनका स्थानान्तर में वर्णन होगा) इत्यादि एक की भी पेश न जाती थी ग्रैार उसके ग्रागे किसीकी भी न चलती थी।

एक बेर यों ही बातों बात में नवाब बादशाह से कह बैठे "कि इन युरोपियन मुलाज़िमों को ग्रापके हज़ूर में जूते ग्रैार बूट पहिन के हाज़िर होना उचित ग्रैार योग्य नहीं है। हम लोग ये बात न खुद करें ग्रैार न दूसरों की पसन्द करें। हज़ूर की यह रिग्रायत एक प्रकार हद से टप गई है। ग्राप इसके निश्चय जानिए कि हज़ूर के पिता गाज़ीउद्दीन हैदर के कभी यह सह्य न होता"।

बादशाह ग्रपने नम्र ग्रैार ग्राज्ञाकारी वज़ीर से ये निर्भय शब्द सुन पहिले तो चुप हो रहे, पर रोशनउद्दौला ने यह बात कुछ ऐसे तपाक से कही थी कि बादशाह के उत्तर देना ही पड़ा।

बादशाह—"क्या मैं इङ्गलिस्तान के बादशाह से भी श्रेष्ठ हूं"?

"हिन्दुस्तान में तो हज़ूर सब बादशाहों में श्रेष्ठ हैं। बादशाह देहली से भी हज़ूर बढ़ गए हैं। खुदा हज़ूर को हज़ार वर्ष की ग्रायु दे" उस कपटी वज़ीर का यह उत्तर था।

बादशाह—"रोशनउद्दौला! मेरा प्रश्न यह है कि क्या मेरा पद इङ्गलिस्तान से भी बढ़ गया है"

वज़ीर—"हज़ूर के सेवक की तो यह सामर्थ्य नहीं कि किसी बादशाह को रुतबे में हज़ूर से बढ़ा देवे"।

बादशाह—"सुनो वज़ीर! ग्रैार जेनरल तुम भी सुनो! इङ्गलिस्तान का बादशाह हमारा मालिक है ग्रैार ये लोग ग्रपने जूते पहिने उसके हज़ूर में जा सकते हैं। तो फिर मेरे सामने जूते पहिनके ग्राने में क्या दोष है? देखो! ये लोग मेरे हज़ूर में टोपी देके कभी नहीं ग्राते। क्यों? इसका उत्तर दो"।

वज़ीर—"हज़ूर! दुरुस्त है। टोपी पहिने तो कभी नहीं ग्राते"।

बादशाह—"बस, तो इसीसे समझ लो कि वे ग्रपने बादशाह की इज्ज़त इसी तरह किया करते हैं। उनके यहां की चाल यही है कि

अपनी टोपी उतार लेते हैं और तुम अपना जूता उतार देते हो। परन्तु यदि चाहो तो तुम्हारे उनके बीच परिवर्तन हो जाय। मैं अभी उन लोगों को आज्ञा दे दूं कि आज से तुम लोग अपने जूते उतार के बाहर छोड़ आया करो, जैसा हिन्दुस्तानी दर्बारी करते हैं। परन्तु साथ ही तुम लोगों को भी अपनी पगड़ियां उतार के बाहर छोड़ आनी पड़ेगी। क्यों है मंज़ूर ?"

इसके बाद फिर नवाब ने कभी इस विषय में बात न छेड़ी। कारण यह कि मुसलमानों में पगड़ी का उतरना मानों इज्जत का उतरना है। जब कभी किसी काम को पूर्ण करने का वा किसी काम को पुनः न करने को वे दृढ़ प्रतिज्ञा करते हैं तो ये शपथ खाते हैं कि "यदि हम ऐसा न करें तो हमारे बाप की पगड़ी उतर जाय"। इस बात चोत से हमलोग बड़े प्रसन्न हुए। और बादशाह ने अपने मंत्री को आज्ञा दी कि इस बात को दिनचर्या में टांक लो, क्योंकि इस तरह की जो गुरुतर बातें होती थीं वे लिख ली जाती थीं, जिससे यह प्रगट हो कि जब बादशाह अपने होश में रहते हैं और जब अपनी बुद्धि और युक्ति से काम लेते हैं तो मूर्खता नहीं करते। हां जब नशे की तरंग या मूर्खता की सनक सर पर सवार होती है तो अवश्य कुछ लड़कपन कर बैठते थे।

मैंने बादशाह के चरित्र की भिन्न भिन्न स्थितियां पाठकों के सम्मुख पेश कर दी हैं और आशा है कि अभी उनके गुण औगुण का वर्णन स्थान स्थान पर और करूं। इस अध्याय को समाप्त करने के पूर्व बादशाह के दो प्रिय खेलों का कुछ ज़िकर कर देना ज़रूरी समझता हूं। इनमें से एक तो लीप फ्राग (Leap Frog) और दूसरा स्नो बालिङ्ग (Snow Balling) था। (ये दोनो खेल विदेशी हैं, भारतवर्ष में अङ्गरेज़ों के आगमन के साथ इनका प्रचार हुआ है)।

एक बेर योंही हमलोग चैानगंज के रमनेवाले महल में, जहां प्रायः जानवरों की लड़ाई हुआ करती थी, बादशाह के साथ ठहरे हुए थे। इस रमने के चारों ओर दीवार थी। इसका विस्तार तीन या चार एकर होगा। जब हमलोग बादशाह के साथ उस बाग में रहते तो वहां कोई हिन्दुस्तानी मुलाज़िम आने नहीं पाता। इस लीपफ्राग खेल के बारे में बादशाह ने किसीसे कुछ ज़िक्र सुन लिया था, कहीं इसका चित्र देख लिया था और तभीसे उनको इसकी धुन सवार होगई थी। इस बेर अवकाश पाकर हिन्दुस्तानियों को बाहर निकलवा दिया और बाग के फाटक बन्द करवा दिए और खेल आरम्भ हुआ। बाडी गार्ड के कप्तान और मास्टर साहेब की एक जोड़ी लगी और दूसरी जोड़ी लाइब्रेरियन और चित्रकार की थी। स्कूल के छात्रों की नाईं पहिले तो यह हलकी कूदान कूदते थे, पर कुछ देर बाद गहरी और ऊंची कुदान कूदने लगे। मास्टर जी, हजामदास, कप्तान, लाइब्रेरियन और चित्रकार इत्यादि स्कूल के छात्रों के नाईं खेल में लुण्ड मुण्ड होते रहे और हम सब पसीने पसीने होगए। बादशाह सलामत पहिले तो खड़े तमाशा देखा किए, पर उन्हें भी लालच ने धर दबाया और वे भी खेल में शरीक होने पर तत्पर हुए। बादशाह दुबले पतले थे और कुछ ऐसे बलिष्ठ भी न थे। संयोग से मैं कहीं उनके पास खड़ा था, इसलिये मेरी ओर दौड़े और लगा खेल होने। ड्राफ्ट और शतरंजादि की नाईं इस खेल में भी उनकी प्रसन्नता का ध्यान मुझे रखना पड़ा। एक बेर उन्हें पीठ पर लिए हुए मैं दौड़ा और उनके सहित भूमि पर लुण्ड मुण्ड हो गया और मैंने फूल की कियारियों में उन्हें लुढ़का दिया। बादशाह सलामत कुछ झुंझला से पड़े और उठके फर्माने लगे "बापरे बाप! तुम तो आदमी नहीं हाथी के समान एक लोथ हो"। यह सुनते ही मेरी तो होश जाती रही और मैं समझा कि यदि यह रुष्ट हो गए तो अब लेने के देने पड़े। पर नहीं, वह रुष्ट नहीं हुए थे। हजामदास ने उनके लिये पीठ की और वह हँसते

हुए एक तड़पान में उसके ऊपर जा रहे। और ये दोनों बहुत देर तक मिलके खेला किए, यहां तक कि बादशाह सलामत थक गए। उनके लिये बर्फ़ का पानी और क्लारेट मंगाया गया और उसे पीकर बादशाह तरो ताज़ा हुए।

अब पाठकवृन्द आप लोग स्नो बालिङ्ग (Snowballing) के विषय में कुछ सुनने के लिये उत्सुक हो रहे होंगे। इसलिये इसे छोड़ अब उसका वर्णन करता हूं। यह क्रूसस का समय था और हम लोग चैानगंज के बाग़ में बैठे बड़े दिन के विषय में बात चीत कर रहे थे। क्रूसस से होते होते बात इंगलिस्तान की शरद ऋतु पर आगई और शरद ऋतु से बर्फ़ पर चर्चा छिड़गई और अन्त में बातों का सिलसिला स्नो-बालिङ्ग तक पहुंच गया। स्नो बालिङ्ग का हम लोगों ने बादशाह से खूब सविस्तर वर्णन किया। पर जिसने इस खेल को कभी आंखों नहीं देखा उसके लिये केवल मौखिक वृत्तान्त क्या कर सकता है। चैानगंज के इस बाग़ में मेरीगोल्ड (गेंदा) नामक पीला पुष्प बहुत था। कलकत्ते में क्रूसस के दिनों में लोग अपने अपने घर इससे सजाते हैं। बादशाह ने जब हम लोगों से स्नो बालिङ्ग की खूब चर्चा सुनली तो चट इसके पांच छः पुष्प तोड़कर लाइब्रेरियन महाशय पर जो सबसे दूर खड़े थे फेंके। उनको देखादेखी सब के सब मुसाहिबों ने वैसा ही करना शुरू किया और कोई दाहिने और कोई बांए लगा फूल उछालने। इन पीले पुष्पों को स्नो बाल (बर्फ़ के गेंद) मान कर हम सब खुशी खुशी खेलने लगे। बादशाह बड़ी तेज़ी से फूल का गेंद उछाल रहे थे, जो इनपर एक फेंकता था, उसपर ये तीन निशाने लगाते थे और बराबर हंसते जाते थे। निदान खेल बन्द हुआ, पर इन पीले पुष्पों की पखंड़िया हम सबके वस्त्र और बालों में ऐसी चिमट गई थीं कि हम सब पीले पीले हो रहे थे। हम सब उसी दशा में घर चल दिए। बादशाह सलामत के दिल बहलाने के लिये यह एक नवीन खेल था और इसको वे प्रायः खेलते ही रहे। लें० केशवप्रसाद सिंह।

नव्वाब सर सालारजंग बहादुर, जी.सी.एस्.आई.

भारतवर्ष में समय समय पर कई राजकार्य धुरन्धर भाग्यशाली पुरुषरत्न हो गए हैं जिन्होंने अपने उत्तम कार्यों से अपने नाम इतिहास के पृष्ठों में अजरामर कर रखे हैं। गत शताब्दी में ऐसे ही एक पुरुष हो गए हैं जिन्होंने हैदराबाद जैसे विस्तीर्ण और अव्यवस्थित राज्य का भार अपने सिर पर लेकर, बालकपन में किसी प्रकार की राजकार्य की शिक्षा न पाने पर भी, अनेक आपत्तियां झेलीं, राजप्रबन्ध में कई नई बातें जारी कीं, न्याय करने की चतुरता और दूरदर्शिता से भिन्न भिन्न जाति की प्रजा में शांतता रखी और नूतन सुधारों के जारी करने में अपने जीवन को कई बार धोखे में डाल लिया। आज उन्हीं महानुभाव का संक्षिप्त जीवनवृत्तान्त देने का हमारा विचार है।

नव्वाब सर सालारजंग बहादुर का जन्म एक पुराने अरब कुल में हुआ था, जिसका निवास पहिले जेरूसलेम और डेमास्कस के मध्यदेश में था। इस कुल का सम्बन्ध तैंतीस पीढ़ियों तक शेख ओवेस करानी से सिद्ध होता है। यह शेख साहिब मदीने के निवासी और मुहम्मद के समकालीन तथा उनके मित्र और अनुयायी थे। अनुमान सौ वर्ष से अधिक हुए कि इनके पूर्वज, यह समझकर कि हिन्दुस्तान के दरबारों में उत्साही और ढाढ़सी पुरुषों को बड़ा लाभ होता है, हैदराबाद को चले आए थे। यहां आने पर शीघ्र ही उनको निज़ाम सरकार के दरबार में आश्रय मिला। इस कुल के कई पुरुषों ने दीवानी पद का उपभोग किया है। मीर आलम, जो निज़ाम सरकार के प्रतिष्ठित प्रतिनिधि थे और जिन्होंने अंगरेज़ सरकार को टीपू सुलतान की लड़ाइयों में बहुत कुछ सहायता दी थी, इन्हीं सालार जंग के परदादा थे; और मीर आलम की मृत्यु के अन्तर

मुनीरुल मुल्क, सहकारी चन्दूलाल के साथ, राज्य का कार्य सम्हालते थे, वह इनके दादा थे। चन्दूलाल के पदत्याग करने पर सिराजुल मुल्क प्रधान नियत हुए और कई वर्षों तक इन्होंने राज का काम सम्हाला। यह सिराजुल मुल्क हमारे चरित्रनायक के चचा थे। इसी सम्बन्ध के प्रभाव से सालारजंग को हैदराबाद के दीवान का पद प्राप्त हुआ।

सालारजंग का जन्म ता० २ जनवरी, सन् १८२९ ई० को हुआ। बालकपन में इन्हें इतनी ही शिक्षा मिली थी कि जितनी उस समय रईसों और सरदारों के लड़कों के लिये बस समझी जाती थी; अर्थात्, इन्होंने अरबी, फ़ारसी और कुछ अंगरेज़ी सीख ली थी और कुछ हिसाब वगैरः जान लिया था। राजनीति और राजव्यवहार की कोई विशेष शिक्षा इन्होंने नहीं पाई थी। बाल्यदशा में ही इनके पिता और दादा का देहान्त हो गया था और तबसे इनके पालन पोषण का भार इनकी दादी पर आया। जब ये सात बरस के हुए तब इनका बिसमिल्लाह कराया गया। उस समय के निज़ाम नसरुद्दौला भी उस अवसर पर उपस्थित थे। छुटपन में इनका स्वास्थ्य अच्छा न रहने के कारण यह अधिक परिश्रम नहीं कर सकते थे; और फिर तो इनकी रुचि विद्याभ्यास की ओर से दिन दिन हटती ही चली, यहां तक कि ये कभी कभी मदरसे से भाग जाते या घर में छिप रहते थे। एक समय की बात है कि सालारजंग मदरसे को न जाकर घर ही में कहीं छिप रहे थे; तब उनकी दादी ने क्रोध से कहा कि "यदि पढ़ने लिखने में तुम्हारा मन नहीं लगता तो तुम्हारा मर जाना ही अच्छा होगा।" इस ताड़ना का यह परिणाम हुआ कि सालारजंग पढ़ने लिखने में कुछ अधिक ध्यान देने लगे। आज कल जगह जगह जैसी पाठशालाएं बनी हैं, वैसी उस समय नहीं थीं। अतएव जो कुछ इन्होंने सीखा वह इतना अधिक न था कि जिसका विशेष वर्णन किया जाय। उनकी दादी जागीर के आय व्यय का हिसाब प्रथम अपने कारिन्दों से स्वयं समझकर सालारजंग को समझा देने को कहती थीं। बस, १९ वर्ष की अवस्था तक राजकाज के सम्बन्ध में इन्हें इतना ही ज्ञान प्राप्त हुआ था; पर यह देखकर बड़ा आश्चर्य होता है कि इतनी अल्प शिक्षा से ही इन्होंने बड़े बड़े कार्य कैसे किए!

जब इन्होंने राजसेवा स्वीकार की तब इनकी अवस्था लगभग २० वर्ष की थी। इस काल के पहिले निज़ाम के राज्य के कुछ भागों की देखभाल करने के लिये अंगरेज़ नियत किए गए थे; परन्तु सन् १८४८ ई० में भारतीय गवर्नमेण्ट ने यह आज्ञा दी कि इस काम पर कोई अंगरेज़ न रखे जांय। इसके अनुसार सालारजंग तालुक़दारी पर नियत किए गए और उन्होंने इस काम को आठ महीने तक अच्छी तरह चलाया। इससे इनको मालगुज़ारी का अच्छा अनुभव मिल गया। इन्होंने अपने स्वभाव की शांतता, आचरण की शुद्धता और कामों की सचौटी से अपना नाम अल्पकाल ही में सर्वत्र प्रसिद्ध कर लिया। जब इनके चचा सिराजुल-मुल्क की मृत्यु हुई, तब सालारजंग को हैदराबाद के दीवान का पद मिला और राजा नरेन्द्रप्रसाद इनके सहायक नियत किए गए। इस समय इन दोनों की अवस्था क्रम से २४ और २७ वर्ष की थी।

इस प्रकार हैदराबाद के प्राइम मिनिस्टर के पद पर स्थित होते ही सालारजङ्ग का ध्यान राज्य-व्यवस्था में सुधार करने की ओर झुका। उन्होंने अनेक प्रकार के विषयों से पूर्ण एक प्रस्ताव निज़ाम सरकार के पास भेजा और यह प्रार्थना की कि राजव्यवस्था में आवश्यक सुधार करने का अधिकार दिया जाय। परन्तु निज़ाम सरकार ने उसपर कुछ ध्यान नहीं दिया। तब सर सालार जंग बहादुर ने यह अभिप्राय प्रगट किया कि यदि निज़ाम सरकार से अनुकूल आज्ञा न मिलैगी तो मैं इस पद का त्याग कर दूंगा। इस

कारण से और कर्नल डेविड्सन के भी ज़ोर देने से निज़ाम सर्कार ने सर सालारजङ्ग के राज काज में सुधार करने के लिये पूर्ण अधिकार दिए।

ज्योंही इस प्रकार पूर्ण अधिकार प्राप्त हुए, त्योंही सालारजङ्ग ने मालगुज़ारी की व्यवस्था में सुधार करना आरम्भ किया। सबसे पहिले तो उन्होंने कई ताल्लुक़ेदारों को बेदख़ल कर दिया। इससे अरब लोगों में कुछ अप्रसन्नता फैलने लगी; क्योंकि उन्हें ये ताल्लुक़े रेहन में मिले थे और अब जब तक उनके पलटे उन्हें कुछ द्रव्य न दिया जाय तब तक वे खुशी से बेदखल कभी नहीं हो सकते थे। परन्तु सालारजङ्ग की सत्यप्रियता और शुद्ध व्यवहार का ऐसा कुछ प्रभाव लोगों पर हुआ था कि इन्हें कई लोगों ने द्रव्य की सहायता भी दी। तिसपर भी इस कार्य की सफलता होने में बड़ी कठिनाई हुई। यह बात तो प्रगट ही है कि जिस वस्तु से हमारी सब आवश्यकताएं पूर्ण होती हैं और जिससे हमारा निर्वाह होता है, उसको यदि कोई हमारे पास से अलग करना चाहे तो हम कदापि शान्त न रहेंगे। इसी सिद्धान्त के अनुसार अरब ताल्लुक़ेदार अत्यन्त अप्रसन्न हो गए। दुर्भाग्य से इस अप्रसन्नता को बढ़ाने के लिये हैदराबाद में दुष्ट जनों की कुछ कमी भी न थी। स्टेट का प्रवन्ध ऐसा बिगड़ा हुआ था कि धूर्त मनुष्यों को स्वार्थसाधन के निमित्त और परस्पर लड़ाई झगड़े पैदा करने के लिये नित्य अवसर मिल जाया करता था। ऐसे ही धूर्तों के उद्योग से हमारे चरित्रनायक के सत्कार्य बुरी दृष्टि से देखे जाने लगे। परन्तु सालारजङ्ग के धीर और गम्भीर स्वभाव के सामने ये धूर्त कबतक टिक सकते थे! पहिले पहल कुछ विरोध हुआ; परन्तु क्रम क्रम से इनके उपयुक्त कार्यों में सफलता दिखाई देने लगी। फिर इनका चित्त अन्य त्रुटियों के दूर करने में लगा। जहां कर्मचारियों से कुछ अन्याय का बर्ताव दिखाई देता था, वहां ये अत्यन्त उग्रता से सत्य राजनीति का प्रचार करते और जहां राज की अव्यवस्था से प्रजा को दुःख होता था वहां सुधार करने के लिये सदैव तैयार रहते थे।

सर सालारजङ्ग के पहिले जितने दीवान हो गए थे उन सभों का मन इन दो प्रश्नों से बड़ा व्यथित रहता था—प्रथम, वर्तमान सेना को घटाना; और द्वितीय, अरबों से रियासत के अनुकूल सम्बन्ध रखकर निज़ाम सरकार को लाभ पहुंचाना। इन्हीं विषयों की ओर हमारे चरित्रनायक का भी ध्यान आकर्षित हुआ। धैर्य का अवलम्बन कर उन्होंने धीरे धीरे अशिक्षित सेना की संख्या घटानी आरम्भ कर दी और अरबों को राजभक्त बनाने के लिये कई उपाय रचे। यहां इस बात का लिख देना अत्यन्त आवश्यक है कि अरबों ने हैदराबाद में अनीति से बहुत द्रव्य कमा लिया था और अपने दुष्ट व्यवहार से वे गरीबों को इतना दुःख दिया करते थे कि रियासत को भी उनसे डरना पड़ता था। इनका भयंकर स्वभाव इतना बढ़ गया था कि इनके अपराधी ठहराए जाने पर भी इन्हें दण्ड नहीं होता था। परन्तु धन्य है सालारजङ्ग की नीतिनिपुणता को कि जिन्होंने अल्पकाल के परिश्रम से ही अरब सर्दारों को अपने पक्ष में कर लिया और फिर उनकी सहायता से हैदराबाद के सब अरबों को निज़ाम सरकार के न्यायालयों के अधिकार के आधीन बना दिया। इससे राज्य में शांति हुई और प्रजा को सुख हुआ। कोई मनुष्य अपने धन के बल पर किसी प्रकार का अन्याय नहीं कर पाता था। सब लोगों का क्लेशनिवारण प्रतिदिन न्यायालयों में होने लगा और प्राचीन समय के सब अत्याचार नामशेष हो गए।

जब हैदराबाद में इस प्रकार के नए नए सुधार हो रहे थे, उस समय हिन्दुस्तान के अन्य अन्य भागों में अङ्गरेज़ी राज्य के विरुद्ध भयंकर कलहाग्नि प्रज्वलित हो रही थी कि जिससे सर सालारजङ्ग की उन्नति का मार्ग कुछ रुक गया। सचमुच सन् १८५७ ई० में जो बलवा हुआ, वह ऐसा समय

कि जब अङ्गरेज़ सरकार के प्रत्येक हितचिन्तक की परीक्षा हो चुकी। बड़े आनन्द की बात है कि सालारजङ्ग ने किसी सन्दिग्ध नीति का अवलम्ब न कर स्पष्ट रूप से अङ्गरेज़ों का पक्ष स्वीकृत कर लिया और अन्त तक वे बाग़ी लोगों से बचे रहे। शहर में जहां कहीं कुछ गड़बड़ हुई, वहां सालारजङ्ग ने अपने विश्वासपात्र अरब सरदारों की सहायता से ऐसा उत्तम प्रबन्ध रखा कि इस मुसलमानी रियासत में बलवे की हवा फैलने न पाई। उन्होंने शहर के सब मुख्य मुख्य स्थानों पर बड़े बड़े इश्तिहार देकर यह प्रगट किया कि उनका इस बलवे से कुछ सम्बन्ध नहीं है, और शहर के दरवाज़ों पर पहरा रखवा दिया जिससे कोई बाग़ी भीतर आने न पावै और भीतर के लोग बाहर जाने न पावैं। इसीके साथ साथ उन्होंने यह हुक्म जारी किया कि शहर में किसी एक स्थान पर २० आदमियों से ज्यादे इकट्ठे न हों। सारांश यह कि सर सालारजङ्ग बहादुर की मानसिक दृढ़ता और अरब सरदारों की सहायता से हैदराबाद बलवे से बचा रहा। इसका परिणाम यह हुआ कि शहर के दुष्ट और असन्तुष्ट लोग सालारजङ्ग को अपना बैरी समझने लगे और उन्हें मार डालने का उद्योग करने लगे। ता० १५ मई, सन् १८५७ ई०, के दिन, जिस समय सर सालारजङ्ग रेसिडेण्ट साहेब के हाथ में हाथ मिलाकर दरबार में चले जाते थे, उस समय एक दुष्ट घुड़सवार ने निशाना जमा कर ऐसी बंदूक चलाई कि सालारजङ्ग का काम ख़तम ही हो गया था; परन्तु भाग्यवश गोली इन्हें न लगी। अपने घातकी कार्य में निष्फलता देख वह दुष्ट हाथ में तलवार लेकर सालारजङ्ग की ओर दौड़ा, परन्तु हानि पहुंचाने के पूर्व ही पकड़ा गया और मारा गया।

सालारजङ्ग की राजकार्यकुशलता से अङ्गरेज़ बड़े प्रसन्न हुए और सन् १८६० में गवर्नमेण्ट ने निज़ाम सरकार को ज़प्त की हुई रियासतें वापस कर दीं और सालारजङ्ग को के.सी.एस.आई. तथा जी.सी.एस.आई. की पदवियां प्रदान कीं। निज़ाम सरकार भी अपने दीवान की अद्भुत बुद्धिमत्ता से अत्यन्त प्रसन्न हुए और उनपर अधिकाधिक विश्वास रखने लगे। इससे सालारजङ्ग को राज्य का सुप्रबन्ध और उन्नति करने का अच्छा मौका मिल गया। सन् १८६३ में फ़सल अच्छी न होने के कारण अकाल की सम्भावना थी। परन्तु यद्यपि उस समय आजकल की नाईं फ़ेमीन कोड तैयार नहीं था, तथापि उन्होंने ऐसा उत्तम प्रबन्ध किया कि प्राणहानि होने न पाई। इस काम से फ़ुरसत पाते ही उनका ध्यान सैनिक सुधार की ओर लगा। सेनाविभाग में कई लोगों को सैनिक सेवा के पलटे बड़ी बड़ी जागीरें दे दी गई थीं। इससे निज़ाम सरकार का अधिकार कुछ दुर्बल हो गया था। सर सालारजङ्ग ने अपनी अप्रतिम राजनीति से अरब सरदारों को प्रसन्नचित्त करके ये सब जागीरें ज़ब्त कर लीं। इसके बाद उन्होंने मालगुज़ारी वसूल करने का एक नया तरीका निकाला, जिससे प्रजा के कई क्लेश दूर हो गए और रियासत की आमदनी भी खूब बढ़ गई। परन्तु इन सब कामों से स्वार्थी सरदारों में असंतोष फैलने लगा और कई असंतोषी लोगों ने निज़ाम के पास शिकायतें कीं। यह बात तो प्रगट ही है कि हमारे राज्यासनाधीश प्रायः अव्यवस्थित चित्त होते हैं। वे एक क्षण में तुष्ट हैं तो दूसरे क्षण में रुष्ट! इसीसे देशी रजवाड़ों में बुद्धिमान और हितचिंतक दीवान को अपने कार्य को सुफलता में अनेक आपत्तियां उठानी पड़ती हैं। ठीक यही दशा इस समय सर सालारजङ्ग की हुई। उन्होंने जो अच्छे अच्छे कार्य किए थे उन सभों को एक क्षण में भूल कर निज़ाम सरकार केवल दुष्टजनों के कहने ही से अप्रसन्न हो गए। अपनी यह दशा देख सालारजङ्ग ने सन् १८६७ ई० में इस्तीफ़ा दे दिया; पर वह न तो मंजूर हुआ और न नामंजूर।

इस घटना का यह परिणाम हुआ कि रिआसत में चारों तरफ़ गड़बड़ होने लगी। चोर और डाकू, जो कि अब तक दबे हुए थे, फिर हमला करने लगे; और अमीर, उमराव तथा बड़े बड़े सरदार, जो सालारजङ्ग के न्याय के डर से चूं नहीं करते थे, अब दिन दोपहर को गरीब लोगों को सताने लगे। सच बात तो यह है कि यदि सालारजङ्ग अपने दीवान के पद से और कुछ दिनों तक अलग रहते तो राज का सब प्रबन्ध बिगड़ जाता और हैदराबाद में हलचल पच जाती। परन्तु जिस अङ्गरेज़सरकार ने उनको प्रथम सहायता दी थी उसीकी सहायता से उनका और निज़ाम का फिर भी मेल हो गया। उन्होंने अपना इस्तीफ़ा वापिस ले लिया और वे पूर्ववत् काम करने लगे। परन्तु इस समय एक ऐसी अपूर्व घटना हुई कि जिससे यह प्रतीत नहीं होता कि अब सालारजङ्ग के कोई दुश्मन नहीं थे। ता० २७ जनवरी सन् १८६८ ई० के दिन सर सालारजङ्ग "बोचा" में बैठकर ईद दरबार में जा रहे थे। ज्योंही "बोचा" महल के समीप आया, त्योंही किसी बदमाश ने उन पर दो गोलियां चलाईं। पहिली गोली तो एक नौकर को लगी और वह मरकर ज़मीन पर गिर पड़ा। दूसरी गोली सनसनाती हुई बोचे के ऊपर से सालारजङ्ग की पगड़ी को चाटती हुई और एक दूसरे नौकर को घायल करती हुई चली गई। यह दुष्ट घातक शीघ्र ही पकड़ा गया और उसे फांसी का हुक्म सुनाया गया। नव्वाब सर सालारजङ्ग का हृदय अत्यन्त कोमल था। उन्होंने अपनी स्वाभाविक दयार्द्रता के अनुसार निज़ाम से प्रार्थना की कि इस दुष्ट को फांसी के पलटे जेल की सज़ा दी जाय। परन्तु निज़ाम ने उनकी प्रार्थना पर कुछ ध्यान नहीं दिया।

सन् १८६९ ई० के फ़रवरी में निज़ाम अफ़ज़ुद्दौला के मरने पर उनके पुत्र वर्तमान निज़ाम गद्दी पर बैठाए गए। उस समय उनकी उमर अढ़ाई वर्ष की थी। इस लिये रिआसत के सब अमीरों और सरदारों की सलाह से रीजेन्सी कायम की गई और सर सालारजङ्ग उसके एक मुख्य मेम्बर बनाए गए। जब प्रिन्स आफ़ वेल्स (अब सम्राट् सप्तम एडवर्ड) बम्बई में आए थे, तब सालारजङ्ग उनसे मिलने को गए और वहां बड़े आदर सत्कार से उनकी मुलाक़ात हुई। इसके बाद सन् १८[illegible] में वे इंग्लैण्ड को गए और वहां स्वर्गीया महारानी विक्टोरिया से लेकर सब छोटे बड़ों [illegible] उनका बड़ा सम्मान किया। आक्सफ़ोर्ड [illegible] युनिवर्सिटी ने उन्हें डी. सी. एल. का बहुमान सूचक पद अर्पण किया। इस प्रकार विलायत यात्रा करके वे हैदराबाद को लौट आए और फिर राज काज में उपयुक्त सुधार करने [illegible] चेष्टा करने लगे। परन्तु अब समय और परिस्थिति की पूर्ण प्रतिकूलता होने के कारण बहुत कुछ [illegible] कर सके। तौभी उन्होंने अपने शासनकाल [illegible] प्रजा के जान और माल की उत्तम प्रकार से र[illegible] की; न्यायालय स्थापित किए; पुलीस, जेल और सेना का प्रबन्ध किया; स्कूल, कालेज और अस्पताल खोले; धर्मशाला, रेल, सड़क, न[illegible] और इमारतें बनवाईं; व्यापार के कई प्रतिबं[illegible] हटा दिए; बड़े बड़े अफ़सरों की तनख़ाह [illegible] कर दी और स्वयं अपनी तनख़ाह घटा ल[illegible] और इसी प्रकार के कई काम किए कि जिन[illegible] पूर्ण बिवेचन इस संक्षिप्त चरित्र में नहीं किया ज[illegible] सकता। सालारजङ्ग के उत्तम प्रबन्ध का सब[illegible] बड़ा भारी फल तो यही हुआ कि रिआसत [illegible] आमदनी चौगुनी बढ़ गई। सब लोगों की य[illegible] इच्छा थी कि परमेश्वर सर सालारजङ्ग जैसे रा[illegible] कार्य धुरन्धर प्रभावशाली पुरुष को, नव युव[illegible] निज़ाम के राज्यासन पर आरूढ़ होने तक, जीवि[illegible] रखै कि जिसमें हैदराबाद का राज्य भली भां[illegible] सुधर जाय और प्रजा के सब क्लेश दूर हो जा[illegible] परन्तु जैसा कि किसी कवि ने कहा है "मन[illegible] चिंतयेत् कार्यं दैवमन्यत्र चिंतयेत्," उसी[illegible]

अनुसार परमेश्वर को यह बात मान्य न थी कि हैदराबाद की प्रजा को सालारजङ्ग के सुशासन का और कुछ समय तक लाभ मिले। सन् १८८३ ई० के फ़रवरी को ८ वीं तारीख़ को हैज़े की बीमारी से एकाएक उनका देहान्त हो गया। हा! इस अभागे भारतवर्ष से एक प्रतिभाशाली पुरुष को कुटिल काल ने उठा लिया!!!

जिस समय सालारजंग की मृत्यु हुई उस समय उनकी अवस्था केवल ५३ वर्ष की थी। इनकी मृत्यु से केवल हैदराबाद के लोगों को नहीं किंतु सम्पूर्ण भारतवर्ष के लोगों को दुःख हुआ। इनके कई दुश्मनों ने भी दुःख प्रदर्शित किया कि हैदराबाद के राज्य में से एक अद्वितीय पुरुष जाता रहा! सरकार हिन्द ने भी दुःख प्रदर्शित करने के लिये ता० १० फ़रवरी सन १८८३ को सरकारी गज़ट की एक विशेष संख्या प्रकाशित की। उसमें लिखा है कि "गवर्नर जनरल साहिब बहादुर को यह प्रगट करते बड़ा खेद होता है कि तारीख ८ के शाम को हैदराबाद के रीजेंट और मिनिस्टर नवाब सर सालारजंग बहादुर, जी. सी. यस. आइ, को हैज़े से मृत्यु होगई। इस दुर्दैवी घटना से बृटिश गवर्नमेंन्ट का एक बुद्धिमान और अनुभवी मित्र, निज़ाम सरकार का ईमानदान और चतुर सेवक और हिन्दुस्तानी समाज का एक सुप्रसिद्ध पुरुष खो गया" हैदराबाद में नेटिव और यूरोपियन लोगों की एक बड़ी भारी सभा हुई, जिसमें ३०००० रुपए उनके स्मारक के लिये एकत्रित हुए। इङ्गलैंड से श्रीमती महाराणी, राजपुत्र तथा अन्यान्य बड़े महनुभावों ने तार भेज कर अपना दुःख प्रकाशित किया। मृत्यु के समय सर सालारजंग दो बेटे और चार बेटियां छोड़ गए। उनमें से मीर लायक अलीखां २१ बर्ष की अवस्था में दीवान नियत किए गए, जो इतिहास में दूसरे नव्वाब सर सालारजंग के नाम से प्रसिद्ध हुए।

सर सालारजंग का चेहरा बड़ा सच्छ और शोभायमान था। ऊंचाई साधारण ही थी, परन्तु शरीर की सुन्दरता और हृदय की दृढ़ता का तेज उनके मुख पर स्पष्ट रीति से झलकता था। उनका स्वभाव शान्त और मिलनसार था। पोशाक भी सादी थी। उन्हें जवाहिरात का शौक़ बहुत ही कम था, सिर्फ़ दरबार के समय बेशक़ीमती पोशाक और जवाहिरात पहिना करते थे। जब दरबार में जाते थे तो हज़ार से लेकर डेढ़ हज़ार तक सवार साथ में रहा करते थे, परन्तु और समय में सिर्फ़ २०-२५ ही सवार सङ्ग रहते थे। इनका शारीरिक स्वास्थ्य अच्छा था। ये छोटी बीमारी की तो कुछ परवाह ही न करते थे। राज काज में उनकी नियमितता बड़ी सराहनीय है। प्रत्येक दिन का कार्य और समय पहिले ही से नियत कर लिया जाता था—जैसे, सबेरे रेज़िडेंट के साथ पत्र व्यवहार करते, फिर दरबार आम में जाते, और वहां से सलामी लेकर लौट आते फिर खाना खाकर कुछ निज का काम करते थे। दोपहर को मुत्सद्दियों का पेश किया हुआ हिसाब जांचते और चार बजे शाम तक रियासत के राजकर्मचारियों से मिल कर राज्य का प्रबन्ध करते, और सन्ध्या समय व्यायाम करने के लिये घोड़े पर या पैदल बाहिर जाया करते थे। शाम की नमाज़ हो जाने पर रियासत के खज़ाने का हिसाब जांचते और अन्त में लोगों की दरख़्वास्तें लिया करते थे। इस प्रकार आधी रात तक काम करके निद्रा के लिये जाया करते थे।

जब हम इस बात पर ध्यान देते हैं कि सर सालारजङ्ग जैसे परिश्रमी पुरुष हमारे भारतवर्ष में अल्पायु ही होते हैं तो हमारा अन्तःकरण दुःख से भर जाता है। परमेश्वर से यह प्रार्थना करके कि इस प्रकार के देशहितचिन्तक और भी उत्पन्न हों, हम इस लेख को समाप्त करते हैं और आशा रखते हैं कि सहृदय पाठक इस संक्षिप्त चरित्रलेख से अवश्य लाभ उठावेंगे। माधवराव सप्रे।

मदन दहन

[गत अंक के आगे]

तासु मीत बसन्त, अरु रति, महा भय सों पागि।
करत मन सङ्कल्प बहु विधि चले ता सँग लागि॥

प्रानहू ते काज साधन परम प्रिय अनुमानि।
गयो सो हिमवान पै जहँ तपत शिव तपखानि ॥
॥२१॥ (२३)

समाधिस्थ मुनीन के तप तेज को रिपु घोर।
मार-मद तहँ धारि तनु भा प्रकट मधु बरजोर ॥
होत उत्तर ओर सूर प्रवृत्ति देखि अकाल।
तज्यो दच्छिन वायु मुखते मनहु श्वास बिहाल
॥२२॥ (२४ व २५)

भूषनन सों जटित, नखसिख भरी रूप ललाम,
मदन मद सों छकी, अनुपम चारुता की धाम। (२६)
बजत नूपुर मन्दगति-बस अँगुरिन यहि भाँति,
मनहु तन धरि सुरुचि, पगपरि, रूप बरनत जात;
॥२३॥

जटित जेहरि तड़ित सी युग गुलुफ पै छबि देत,
भानु अरु सितभानु को मनु करत मेल सहेत,
होन ताड़ित तौन सुन्दरि चरन सों बिसराय
पल्लवित ह्वै उठ्यो फूल असोक रीति विहाय
॥२४॥ (२६)

मञ्जरि चारु रसालन की ऋतु-
राज मनो बर बान बनायो।
भौंरन सों किसलै करि भूषित
मानहु नाम मनोज लिखायो ॥
बानन, पत्र समान, तिन्हैं लखि
कोकिल कूक पुकारि सुनायो।
"होहु सचेत, अहो बिरही जन!
चाहहु जो निज प्रान बचायो" ॥२५॥ (२७)

फूलि उठी सरसैां दुहु कूल
सोई बर बालक भीर लखानी।
नागर बाहु सोई जल पै
बिरवान की डार बढ़ीं सुखदानी ॥
बाजन कूजनि पच्छिन की गति
मन्द तरङ्ग बहै मद सानी।
तालन के प्रतिबिम्बन मैं
दरसात बरातन की अगवानी ॥ २६ ॥

रूप मनोहर भयहु सुगन्धित पुहुप न पाई।
कर्निकार* बस लाज रह्यो निज सीस नवाई ॥

चतुराननहू भए चूक बिधि की यह भारी।
सब गुन भूषित करत न जग एकहु तनुधारी ॥
निज मानहानि लखि शोक भरि
धारन तेहि कटुता कियो।
ह्वै गयो हलाहल मूल लौं
तदपि रह्यो धधकत हियो ॥ २७ ॥ (२८

बक्र बाल-बिधु सरिस पुहुप किंसुक बिनु फूले
अरुन बरन दरसात नखच्छत-नव समतूले ॥
दियो जौन ऋतुराज आज बनभूमि कुचन मैं।
निरखि जासु लावन्य चराचर छोभित मन मैं॥
सुभ सीतल मन्द सुगन्ध तिमि वायु बहै मन-
भावनी।
अरु कोकिल कीर कपोत गन कलरव करत सुहा-
बनी ॥२८॥ (२९

नव बसन्त श्री छपद, नैन कज्जल सम, धारो
चित्र बरण पुनि तिलक बरानन माहिँ सँवारो
सौरभ किसलय अधर चारु करि पूरित भाते
अरुन बरन किय तिन्हैं बाल रवि सम परभाते
करि यहि विधि नूतन साज सब मनमोहनि
अतिहि भई
को देव दनुज नर जासु तेहि देखि न मति गति
हरि गई ? ॥ २९ ॥ (३

तरु पियाल मञ्जरी सु रज कर साय ॐ चख परि
हे सहजहि मद मत्त, अन्धवत देति तिन्हैं करि
मारुत सम्मुख धाय तौन अति भरि चित्र चाव
मरमरात तरु पातन पै बिचरैं मन भावन ॥
भखि अम्ब बौर रव कोकिलन
अरुन कण्ठ ह्वै जो कढ्यो
सो काम बचन सम मान सब
मानवतिन कर अपहर्यो ॥३०॥ (३१ व ३

किन्नरीन के अधर सीत-गत सुन्दर सोहैं।
ह्वै कपोल पुनि पीत बरन चञ्चल-चित मोहैं ॥
होत प्रबाहित स्वेद चित्र रचना महँ गातन।
कामानल के समन हेत निसरत मनु जल कन
कै आगम ग्रीसम को समुझि दुसह दाह के तपनि
डरि

* कनेर का वृक्ष (अमरकोष, माहेश्वर टीका देखिए)।

जलदान जीव तन को करै रुदन चतुरता प्रकट करि ॥ ३१ ॥ (३३)

शङ्कर-बन-बासी सुमुनि लखि ऋतुराज अकाल ।
मन विकार कर दमन किय नीठि नीठि केहु चाल ॥ ३२ ॥ (३४)

जब सुमनचाप चढ़ाय, रति सह, मार बन रुचि सें भरयो ।
अति नेह रस सम्मिलित भावहि दम्पतिन चेष्ठित करयो ॥
वर कुसुम पात्रहि माहिँ षटपदु रति अलौकिक सें भयो ।
निज प्रिया पीछे चलत मधु रस पान करि आनन्द छयो ॥ ३३ ॥ (३५)

तिमि असित करसायलहु हरिनिहि चाव सें खजुवायऊ ।
तेहि परस सें चख मूँदि अनुपम भाव तहँ दरसायऊ ॥ (३६)
मुख हंसिनी के लै धरयो बहु भाँति सें मनुहारि कै ॥ ३४ ॥

कौल-पराग-सुगंधित बारि दियो
करिनी कर* सें निज स्वामिहि ।
खाय कछु† तिमि पंकज नाल
दियो चकवा चकई सहगामिहि ॥
किन्नर पूरित स्वेद महा मद
मत्त प्रिया मुख चुम्बन कीन्हों ।
पूरन चन्द विलोकि अकाल,
कला कछु राहु मनो गसि लीन्हों ॥ ३५ ॥ (३७-३८)

फूलन के वर गुच्छ सलैाननि ‡
ओंठ प्रबाल भरो रुचि सोहैं ।
कोमल शाख-भुजानि लता
लपटीं बिरवान महा मन मोहैं ॥
नाक नटीगन के सुनि गान
तबौ शिव साधि समाधि रहे यों !
इन्द्रिन जीति धरयो प्रभु ध्यान,
डिगाय सकैं बिघनादि कहौ क्यों? ॥ ३६ ॥ (३९-४०)

*सूंडा; सूंड। †कुछ अंश। ‡कुचनि कुचों से (सलैाना=कुच)।

जदपि भंग नहिं भई शम्भु की अचल समाधी ।
पै खरभर जग डारि मदन लज्जा गति बाधी ॥
थावर जंगम जीव सबै मद अंध बनायो !
असमय समय बिचार असमसर सकल छुड़ायो ॥
ह्वै अथरु बिथल नर नाग सुर नहिँ छाँड़त छिन तरुनि गन ।
तपसिहु जन सेलिन तजि बिकल लगे नवेलिन दिसि झुकन ॥ ३७ ॥

मुगुधा मध्या नारि कतहुँ नहिँ परहिँ लखाई ।
रतिप्रीता प्रौढ़ाहि मदन जग युवति बनाई ॥
तजि तजि गुन मरजाद लाज कुल बिभव बड़ाई ।
कुल पतनिहु मद-अंध फिरैं कुलटन की नाईं ॥
रतिनाथ कोपबश भुवन तिहु सिंधु सरिस सीमा तरयो ।
सो उबरि बच्यो ताहु समय ईश जासु रच्छा करयो ॥ ३८ ॥

त्रिभुवन मैं बिकराल भयो अनरथ यह जैसो ।
तैसोई हर गणन कुलाहल कियो अनैसो ॥
भूत प्रेत गन कूदि कूदि करि करि अठखेली ।
नाचत ह्वै उनमत्त बजावत मगन हथेली ॥
हर लता-भवन के द्वार तब कनक दंड कर मैं लिए ।
नन्दी तरजनि मुख धरि, सबन "सावधान!" इंगित किए ॥ ३९ ॥ (४१)*

कम्प विहीन भए तरु वृन्द मलिन्दन चंचलता बिसराई ।
बैन बिहंगन धारि लियो तिमि काल कुरंगन हाल भुलाई ॥
शासन सें हरबाहन के बन चित्र समान परै दरसाई ।
साँझहि कानन बीच सुथम्भित तालन के प्रतिबिम्ब कि नाईं ॥ ४० ॥ (४२)

हैं बरावत, शुक्र सम्मुख दीठि, यात्रन लोग;
त्यों बचाय पुरारि दीठि-प्रपात मार सयोग,

*इस छप्पय के केवल अंतिम दो चरणों में मूल के ४१ वें श्लोक का आशय है।

पारिजात सुशाख बहुतक रहीं मिलि जेहि ठाम।
ध्यान थल त्रिपुरारि को तहँ गयो संकित काम॥ ४१॥ (४३)

काल-बस-झखकेतु देख्यो ध्यान-थित-सुरराय।
लसत बेदी-कल्पतरु पर सिंह चर्म दसाय॥
झुके कोमल कन्ध, राजत बीर आसन मारि,
लसैं बिकसित कंज से जुग पानि गोद मंझारि॥ ४२॥ (४४-४५)

जटा जूट उठाय बाँधे नाग गन सों तान।
अच्छ*माला कान मैं आसक्त† सुखमा भौन॥
धरे ग्रंथित चारु श्याम-कुरंग चर्म ललाम।
भयो जो अति नील, कंठ-प्रभानि सों, तेहि याम॥ ४३॥ (४६)

उग्र चख पूतरि अचल, अति धरे स्वल्प प्रकास,
नैन पट तिमि भृकुटि थिर, अति सिथिल अच्छ‡ बिकास।
नमित मुख करि नासिका दिसि लखत प्रभु ईशान॥
योग आपुहि धारि तन मनु तपत तेज निधान॥ ४४॥ (४७)

प्राण के अवलम्ब श्वासन रोकि हर सावधान,
अचल, पावस-मेघ से, प्रभु लसत अगम अमान॥
किधौं रहित-तरंग-सरवर सरिस शिव भगवान,
किधौं मारुत-हीन-थल पै अचल-दीप समान॥
कढ़त बाहर तृतिय चख मग जौन तेज अपार,
सीस सों उतपन्न ह्वै, बन करत सुखमागार॥
बाल-बिधु श्री जो मृणालहु तार सों सुकुमारि,
करत ता कहँ मन्द सो, दिसि बिदिसि जोति पसारि॥ ४६॥ (४९)

इन्द्रियन अवरोधि, चित्त समाधि-बल बस लाय,
हृदय मैं तेहि थापि, देखत आत्मरूप अघाय।
इबिधि चित्तहु-दुराधर्ष महेश को लखि तीर,
* खसत शर धनु करहु सों जान्यो न मार अधीर॥ ४७॥ (५०-५१)

जीवदान तब देत, नष्टप्राय-बल-मार कहँ।
आई उमा सहेत, रूप शील गुण अवधि सी॥ ४८॥

श्यामविहारी मिश्र, एम. ए., (शिरमौर)
और
शुकदेवविहारी मिश्र, बी. ए., (शशिभाल)

* रुद्राक्ष † लटकती हुई ‡ अक्ष; नेत्र

* इस चरण में यतिभंग यों बचाया जा सकता है:—"खसत शर जान्यो करहु सों धनु शर न मार अधीर,"

☘☘☘

भाग ३] मार्च १९०२ ई० [संख्या ३

विविध वार्त्ता

देश के बड़े बड़े याेग्य पुरुष भारत की प्रचलित शिक्षाप्रणाली से असन्तुष्ट देख पड़ते हैं। सब लाेग अपनी अपनी बुद्धि के अनुसार वर्त्तमान दाेषों के दूर करने के उपाय साेच रहे हैं और इसी विचार की कसौटी पर परीक्षित सिद्धान्तों के अनुसार कार्य करने में लगे हुए हैं। इन्हीं देशहितैषी लाेगों में से कुछ लाेगों का यह सिद्धान्त है कि प्राचीन प्रणाली पर ब्रह्मचर्य के साथ यदि शिक्षा दी जाय ताे आधुनिक प्रणाली में जाे दाेष हैं वे दूर हाे जांयगे और भारतवर्ष के विद्यार्थी वास्तव में विद्या के सब गुणों से सम्पन्न हाे अपने नाम काे चरितार्थ कर सकेंगे। विदुरप्रजागर (३९ अध्याय) में लिखा है—

आलस्यं मदमाेहौ च चापल्यं गाेष्ठिरेव च
स्तब्धता चाभिमानित्वं तथात्यागित्वमेव च
एते वै सप्तदाेषाः स्युः सदा विद्यार्थिनां मताः
सुखार्थिनः कुताे विद्या विद्यार्थिनः कुताे सुखम्
सुखार्थी वा त्यजेद्विद्यां विद्यार्थी वा त्यजेत् सुखम्॥

अर्थात् आलस्य, मद, माेह, चापल्य, गाेष्ठि, स्तब्धता, अभिमान और अत्यागित्व ये सात दाेष विद्यार्थिओं के लिये अनिष्टकारी हाेते हैं, चाहे ताे सुख ले ले, चाहे विद्या प्राप्त कर ले, दाेनों का एक साथ हाेना असम्भव है। वास्तव में बात भी ऐसी ही है। इन दाेषों की निवृत्ति कैसे हाे यही विचारने याेग्य बात है। हमारे भारतवर्ष में प्राचीन प्रथा ऐसी थी कि बालक विद्याध्ययन करने के याेग्य हुआ कि वह गुरु के यहां भेज दिया जाता था। वहां ब्रह्मचर्य से रह कर गुरु की आँखों के नीचे वह आचार व्यवहार काे सीखता और विद्या अध्ययन करता था, इससे उसमें दाेष उत्पन्न नहीं हाेते थे। यही विचार कर आर्यप्रतिनिधि सभा पंजाब के एक दल ने हरिद्वार में "गुरुकुल" नाम की एक पाठशाला खाेलनी चाही है। इसमें विद्यार्थी २५ वर्ष की अवस्था तक रह सकेंगा

ग्रैार ग्रावश्यकता पड़ने पर उसके माता पिता उससे मिल सकेंगे। इस उद्योग के नायक लाला मुन्शीराम जी हैं। वे ता० २२ ग्रैार २३ मार्च के एक बड़ी भारी सभा करके हरिद्वार के निकट गुरुकुल-पाठशाला के खोलनेवाले हैं। ईश्वर से प्रार्थना है कि वह उनके उद्देश्यों के सफल करे।

* * *

ग्रार्यसमाज की ग्रोर यदि हरिद्वार में गुरुकुल खुल रहा है तो मथुरा में भारतधर्म्ममहामण्डल का एक विशेष ग्रधिवेशन २८, २९ ग्रैार ३० मार्च के होनेवाला है। इसमें उस सभा के नियम स्थिर करके उसकी रजिस्टरी कराई जायगी ग्रैार भविष्यत् में उसके क्या क्या काम करने चाहिएं, इसके विषय में निश्चय किया जायगा। भारतधर्म्ममहामण्डल के स्थापित हुए ग्राज कई वर्ष हुए, ग्रैार उसके लिये लाखों रुपये का चन्दा भी हुग्रा, पर ग्राज तक यह विदित न हुग्रा कि उस महामण्डल ने केवल कई बेर बड़ी बड़ी सभाएं करके कुछ रेजोल्यूशनों के स्वीकार करने के ग्रतिरिक्त ग्रैार क्या किया। ग्रस्तु "गतं न शोचामि" के ग्रनुसार ग्रब बीती बात के बिसार ही देना उचित है। हमारी प्रार्थना है कि इस मथुरावाले मण्डल में एकत्रित महाशयगण ऐसा प्रवन्ध करेंगे कि भविष्यत् में उसके कार्य्यों पर ग्राक्षेप करने ग्रैार दुःख प्रगट करने का ग्रवसर किसीके प्राप्त न हो। मण्डल का मुख्य कर्त्तव्य होना चाहिए कि संस्कृत के ग्रार्य ग्रन्थों के ग्रनुवादसहित प्रकाशित करें, बड़े बड़े ग्रन्थों का सारांश बनवावें, जिन ग्रन्थों की सत्यता ग्रैार प्राचीनता के विषय में विद्वानों का मतभेद है, ग्रैार जिनमें ऐसी बातें हैं कि जो इतिहासों के दृढ़ प्रमाणों से सिद्ध नहीं हो सकतीं, उनकी पूरी पूरी निष्पक्ष हो कर जांच करें ग्रैार देखें कि कहां तक क्षेपक कथाग्रों का ग्रंश उनमें मिल गया है। दूसरा उद्देश्य धर्म्ममण्डल का ग्रनाथ बालकों की रक्षा, धार्म्मिक शिक्षा ग्रैार देश भाषा का प्रचार होना चाहिए। इसके कार्यकर्त्ता ऐसे पुरुष होने चाहिएं जो दृढ़प्रतिज्ञ, सत्यप्रिय, निस्पृह, विद्वान, धार्म्मिक, सच्चरित्र ग्रैार उद्योगी हों। ग्राशा है कि मण्डल के सभासद्गण इन बातों पर पूरा पूरा विचार कर देश का हित करेंगे। हमारी समझ में इस समय जितनी सभा या समाज भारतवर्ष में वर्त्तमान हैं सबका उद्देश्य देश का हित करना है, ग्रैार इसके लिये उन्होंने भिन्न भिन्न पथों का ग्रवलम्बन किया है। मार्ग चाहे भिन्न हों, सामग्री चाहे दूसरी है, जाने में समय चाहे ग्रधिक या कम लगे, परन्तु पहुंचा सब एक ही स्थान पर चाहते हैं, ग्रन्तिम उद्देश्य सबके एक हैं। ग्रैार यही एक मुख्य कारण है कि इन पथिकों में परस्पर प्रीति हो, एक दूसरे का हित चाहें। द्वेष ग्रैार ईर्षा से एक दूसरे के विरोध ग्रैार नष्ट करने का उद्योग न करें। हां, यदि हम ईर्षा किया चाहें तो केवल इसी बात में कि देखें कौन ग्रधिक शीघ्रता से ग्रपने उद्देश्यों के पूर्ण कर ग्रागे बढ़ सकता है। हमें विश्वास है, भिन्न भिन्न विचारों के लोग लोग ग्रापस में फूट न फैलने देंगे; जहां तक हो सके वे ऐसा उद्योग करेंगे कि सब लोग मिलकर काम करें।

* * *

ग्रागामी जनवरी मास में दिल्ली में एक बड़ा भारी दर्बार होगा। इसकी धूमधाम ग्रभी मच रही है, तैय्यारियां हो रही हैं। दिल्ली भूमि भी विचित्र है। इसी भूमि पर महाराज युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ किया, यहीं महाभारत का घोर युद्ध हो देश के ग्रनुपमेय वीर ग्रैार विद्वानों का नाश हुग्रा, यहीं चौहानों के ग्रटल राज्य के निमित्त लोहखम्भ गाड़ा गया, यहीं पृथ्वीराज का ग्रभ्युदय, यहीं उसके युद्ध ग्रैार यहीं उसका ग्रन्त हुग्रा। इसी भूमि पर बाबर ने इब्राहिम लोदी के जीत भारत के भाग्य के पलटा, यहीं ग्रकबर ने हेमू के जीत ग्रपने रा

को दृढ़ किया, यहीं सन १७६१ में मरहट्ठों के भाग्य ने पलटा खाया और उसी दिन से भारतवर्ष में हिन्दूराजत्व की पूर्ण आहुति हुई। इसी स्थान के निकट से सन १८५७ की विद्रोहाग्नि भड़की, यहीं सन १८७५ का बड़ा दर्बार हुआ, और अब १ जनवरी, सन १९०३, को फिर यहां बड़ा भारी दर्बार राजराजेश्वर सप्तम एडवर्ड के राज्यतिलकोत्सव के उपलक्ष्य में होनेवाला है। इसीसे हम कहते हैं कि दिल्ली की भूमि विचित्र है। भूतकाल में तो यहां बड़ी बड़ी घटनाएं और बड़े बड़े उत्सव हो चुके हैं और भविष्यत् में अभी इस भूमि के भाग्य में क्या लिखा है इसे कौन कह सकता है। एक समय वह था कि यही दिल्ली विद्वानों और बीर लोगों का निवासस्थल हो रही थी और एक समय अब आ गया है कि न वहां विद्वान ही हैं और न बीर ही ;—अब तो वहां व्यापार की धुन है, इसीकी उन्नति है। न जाने क्या इसीमें देश का भला होने वाला है ?

* *
*

इसी सम्बन्ध में एक बात का विचार करना और भी आवश्यक है कि राजराजेश्वर सप्तम एडवर्ड का देशी नाम क्या होना चाहिए। हम भारतवर्ष के रहनेवाले उन्हें किस नाम से सम्बोधन किया करें ? कुछ लोगों का प्रस्ताव है कि वे "क़ैसर-हिन्द" कहलावें। परन्तु क़ैसर उपाधि जर्मन एम्परर की है और हिन्द से भारतवर्ष के उत्तरी भाग का बोध होता है। इस लिये हमारे राजराजेश्वर की यह उपाधि उपयुक्त न होगी। दूसरे कुछ लोगों का यह कहना है कि उनकी उपाधि शहनशाह हिन्द हो। इस फारसी शब्द से लोगों का ध्यान सहसा उस ओर चला जाता है जब कि भारतवर्ष में घोर मुसलमानी अत्याचार होता था और प्रजा को विशेष कष्ट उठाना पड़ता था। अतएव हमारी सम्मति में यह नाम भारतवासी मात्र को प्रिय न हो सकैगा। इस समय भारतवर्ष में सुख और शान्ति है। हमें विश्वास है कि ऐसे किसी नाम या उपाधि का ग्रहण न किया जायगा जिससे लोगों को सदा दुःखमय समयों का स्मरण बना रहे। हमारी सम्मति में सम्राट वा राजराजेश्वर से बढ़ कर और कोई उपयुक्त उपाधि नहीं हो सकती। इस शब्द का सम्बन्ध भारतवर्ष के चक्रवर्त्ती राजाओं से है,—जब यह देश उन्नति के शिखर पर था और प्रजा मात्र को सुख और शान्ति थी।

* *
*

हम सहर्ष "चीन में तेरह मास" की प्राप्ति स्वीकार करते हैं। हिन्दी में अब तक हमने ऐसी दूसरी पुस्तक नहीं देखी है। इस पुस्तक में "चीन में सन १९००—१ के महा संग्राम का आँखों देखा सम्पूर्ण वृत्तान्त, तथा चीन और जापान का संक्षिप्त इतिहास, रीति नीति, चीनियों के धर्म विश्वास, खान पान, व्यवहार बर्ताव, फौजी और देशी वृत्तान्त, नामी मन्दिरों, इमारतों आदि के सर्वाङ्ग वर्णन, बाक्सर विद्रोह, विदेशीय अधिकार," इत्यादि विषयों का वर्णन बड़ी सुन्दर और उपयुक्त रीति से दिया है। पुस्तक बड़े बड़े ३२० पृष्ठों की है और मूल्य केवल १॥) रु० ही है। यों तो हिन्दी में अनेक पुस्तकें छप गई हैं और नित्य छपती जाती हैं, परन्तु इस बात के कहने में हमें संकोच नहीं है कि ऐसी पुस्तक दूसरी अभी नहीं छपी है। भारतवासियों के लिये समयोपयुक्त शिक्षाओं का यह भंडार है। इस ग्रन्थ के रचयिता ठाकुर गदाधर सिंह (दिलकुशा, लखनऊ) हैं, जो युद्ध में स्वयं वर्तमान थे और जिन्होंने अपनी आँखों का देखा हुआ सब वृत्तान्त लिखा है। भिन्न भिन्न देशीय सिपाहियों का रहन सहन, उनका बर्ताव, उनकी बीरता, उनकी क्रूरता अथवा दयालुता, इन सब बातों का ज्ञान इस पुस्तक के पढ़ने से पूरा पूरा प्राप्त होता है। भारतवासी राजपूत सेना को खान पान के सम्बन्ध में कैसे कैसे कष्ट उठाने पड़े और फिर वे किस बीरता से लड़े, ये सब लोगों के जानने और ध्यान

देने योग्य बातें हैं। जापानी सिपाहियों की वीरता का वृत्तान्त पढ़ हमें तो भारतवर्ष के प्राचीन समय का पूरा पूरा स्मरण हो आया। सारांश यह कि यह पुस्तक ऐसी है कि जिसे प्रत्येक भारतहितैषी को खूब ध्यान से पढ़ना और विचार करना चाहिए। इसकी भाषा में यद्यपि दोष रह गए हैं, किन्तु और गुणों के आगे इनकी गिनती नहीं हो सकती, क्योंकि जहां गुणों का आधिक्य रहता है, वहां एक आधा दोष भी गुण ही की गिनती में हो जाता है। हिन्दीप्रेमी मात्र को उचित है कि इस पुस्तक को मंगवा लेखक का उत्साह बढ़ावें और आप उसे पढ़ लाभ उठावें। यह पुस्तक म्यानेजर फ़्रेण्ड ऐण्ड को० मथुरा के पास मिल सकती है।

वर्णसवैया छन्द

कई एक छन्दों में जो भाषा में सवैया के नाम से लिखे पढ़े जाते हैं, प्रायः देखा जाता है कि जिन जिन स्थानों में गुरु अर्थात् दीर्घ वर्णों के आने का नियम है, उन उन स्थानों में तो गुरु अवश्य आते हैं, परन्तु जिन जिन स्थानों में लघु अर्थात् ह्रस्व वर्णों के आने का नियम है, उन उन स्थानों पर भी बहुधा वर्ण गुरु स्वरूप में पाए जाते हैं। पर शब्दों के यथार्थ रीति पर प्रयुक्त होने के कारण इस रूपान्तर से उन छन्दों की गति नहीं बिगड़ती; जैसे कि इस सवैया में—

पायनि नूपुर मंजु बजै
 कटि किंकिनि की धुनि की मधुराई।
स्यामरे अंग लसै पट पीत
 हियें हुलसै बनमाल सुहाई॥
माथेँ किरीट बड़े दृग चंचल
 मंद हँसी मुख चंद जुन्हाई।
जै जगमन्दिर दीपक सुंदर
 श्रीब्रज दूलह देव कन्हाई॥

यह छंद सात भगण और दो गुरु का है। एक गुरु और दो लघु के समूह की संज्ञा भगण है। इसी प्रकार के सात समूह और उनके अनन्तर दो गुरु इस छन्द के प्रति पाद में पड़ने चाहिएं। इस नियमानुसार पहिला, चौथा, सातवाँ, दसवाँ, तेरहवाँ, सोलहवाँ, उन्नीसवाँ, बाइसवाँ, तथा तेइसवाँ वर्ण प्रति पाद का दीर्घ होना चाहिए। यह बात तो देखने से अवश्य पाई जाती है। इसी नियमानुसार दूसरा, तीसरा, पाँचवाँ, छठा, आठवाँ, नवाँ, ग्यारहवाँ, बारहवाँ, चौदहवाँ, पंद्रहवाँ, सत्रहवाँ, अट्ठारहवाँ, बीसवाँ, तथा इक्कीसवाँ वर्ण प्रति पाद में लघु होना चाहिए; पर इस बात का निर्वाह पूर्णतया नहीं होता। दूसरे चरण में तीसरा वर्ण 'रे,' तथा तीसरे चरण में दूसरा वर्ण 'थेँ' गुरु के रूप में हैं। सभी प्रकार के प्रायः सभी सवैयाओं पर ध्यान देने से यह बात दृष्टिगोचर होती है। पर प्रयुक्त शब्दों के यथार्थ व्यवहार के कारण इस बात से छन्दों की चाल बिगड़ने नहीं पाती, वरन् यदि विचारा जाय तो उनमें एक प्रकार की विशेष रोचकता आजाती है। इस विषय में पिंगलकारों को ऐसे वाक्य काम देते हैं—

"दीरघ कोँ लघु करि पढ़ेँ लघुही मान्यो जात।"

अब यह बात विचारने के योग्य है कि क्या चाहे किसी शैली से शब्द आए हों, पर गुरु वर्णों को छन्दों की आवश्यकतानुसार लघु करके पढ़ने से छन्द की गति यथेष्ट बनी रह सकती है, अथवा शब्दों में किसी विशेष प्रकार के क्रम तथा वर्णसंख्या के होने ही पर गुरुवर्ण लघु करके इस प्रकार से पढ़ा जा सकता है कि छन्दों की चाल ढाल न बिगड़े?

यदि पहिली बात स्वीकृत की जाय तो इस पाद को भी निर्दोष मानना पड़ेगा—

आकाश में उनये कारे बादर दादर मोर
 शोर मचावैँ।*

* यह चरण भी सात भगण और दो गुरु का है।

पर इस में दूसरे तथा आठवें वर्णों के लघु रूप से न पड़ने के कारण छन्द की गति बिगड़ जाती है। अब यदि यह माना जाय कि दूसरा तथा आठवाँ वर्ण गुरु के रुप से आही नहीं सकता, तो ऐसे उदाहरण बहुत पाए जाते हैं जिनमें दूसरे अथवा आठवें वर्ण के गुरु रूप में होने पर भी गति यथेष्ट बनी रहती है; जैसे—

दूसरा वर्ण गुरु के रूप में

'माथे किरीट बड़े दृग चंचल मंद हँसी मुख चंद जुन्हाई।'

आठवाँ वर्ण गुरु रूप में

'देव मैं सीस बसायो सनेह कै भाल मृगम्मद बंद के भाख्यो।'

इन उदाहरणों से यह सिद्ध होता है कि दूसरे तथा आठवें वर्णों के विषय में यह नियम नहीं किया जा सकता कि गुरुरूप से न पड़ें। इसी प्रकार यह भी दिखलाया जा सकता है कि किसी विशेष स्थान के लघु के विषय में गुरुरूप से न आने का नियम नहीं किया जा सकता।

अब यदि यह कहा जाय कि एक ही चरण में दूसरे तथा आठवें दोनों वर्णों के एक साथ ही गुरु रूप से आने के कारण गति बिगड़ती है, तो ऐसे उदाहरण भी अनेक प्राप्त होते हैं जिनमें इन दोनों वर्णों के गुरुरूप में होने पर भी छन्द सुढाल रहता है; जैसे—

"भादों की कारी अँध्यारी घटा
झुकि पावस मंद फुही बरसावै।"

इसमें दूसरा वर्ण 'दों' और आठवाँ वर्ण 'रीं' दोनों गुरु रूप से आए हैं। इसी उदाहरण से यह भी पाया जाता है कि एक ही चरण में कई एक लघु, गुरुरूप से आ सकते हैं। इस उदाहरण में चार स्थानों के लघु गुरुरूप में आए हैं। शब्दों की छाँट उत्तम होने से और भी अधिक स्थानों के लघु गुरुरूप से आ सकते हैं॥

ऊपर जो बातें लिखी गई हैं उनसे विदित होता है कि सवैया छन्दों में लघुओं के स्थानों पर वर्णों के गुरु रूप से आने न आने की योग्यता केवल शब्दों के क्रमविशेष और वर्णसंख्या पर निर्भर है; स्थान विशेष अथवा स्थानों की संख्या-विशेष से वह कोई सम्बन्ध सर्वथा नहीं रखती। एक अवस्था में तो लघु के स्थान पर वर्ण के गुरुरूप से आने के कारण गति बिगड़ जाती है और दूसरी अवस्था में नहीं बिगड़ती। उदाहरण के लिये जो सवैया और पाद ऊपर लिखे गए हैं वे एक ही प्रकार के हैं। इसी रीति पर और प्रकारों के सवैयाओं के विषय में भी समझ लेना चाहिए।

श्रीमान् राजा कमलानंद सिंह महोदय श्रीनगराधीश से कलकत्ते में एक दिन मुझसे इस विषय में बात चीत हुई थी। प्रायः लोग इस बात को बड़ी कठिनता से समझते, पर उक्त श्रीमान ने कहते ही इस विषय की कठिनाइयाँ भली भांति समझ लीं और सर्वसाधारण के लाभार्थ मुझसे आग्रह किया कि यह बात निश्चित होकर अवश्य प्रकाशित होनी चाहिए कि किस किस दशा में लघुओं के स्थानों पर वर्ण गुरु रूप से आ सकते हैं और किस किस दशा में नहीं आ सकते। उन्हीं के अनुरोध से यह लेख लिखा जाता है। यह विषय अद्यावधि किसी ग्रन्थ में लिखा नहीं गया है। पहिले पहल मैं ही इस पर हाथ डालता हूं। अतः सम्भावना है कि नियम सम्यक् रूप से स्थापित न हो सकें, क्योंकि किसी विषय पर प्रथम ही प्रथम जो कुछ लिखा जाता है उसमें त्रुटियों का विशेष होना आश्चर्य नहीं है। विद्वज्जनों से प्रार्थना है कि जो नियम इस लेख में स्थिर किए जाते हैं यदि उनमें कुछ त्रुटियां दृष्टिगोचर हों तो क्षमापूर्वक मुझ पर विदित करके अनुग्रहीत करें जिसमें यथासंभव सुधार की जाय।

इन नियमों के पूर्व यह लिखना उचित ज्ञात होता है कि वर्णसवैया कई प्रकार के प्रचलित हैं

और उनके नाम तथा लक्षण क्या क्या हैं। अतः पहिले यही विषय लिखा जाता है।

वर्णसवैया के भेद, नाम तथा लक्षण।

पद्यात्मक छन्द दो प्रकार के होते हैं; मात्रिक और वर्णिक। जिन छन्दों के चरणों में मात्रा संख्या नियत रहती है, पर वर्ण की संख्या नियत नहीं होती और न लघु गुरु का कोई विशेष क्रम नियत होता है, उनको मात्रिक छन्द कहते हैं। जिन छन्दों के चरणों में वर्णों की संख्या नियत रहती है उन्हें वर्णिक छन्द कहते हैं। वर्णसवैया के सब भेद वर्णिक छन्दों ही में हैं, क्योंकि इनमें वर्णों की संख्या नियत होती है।

वर्णिक छन्द फिर दो प्रकार के होते हैं, नियत-गुरु-लघु-पादात्मक और नियतानियत-लघु-गुरु-पादात्मक। जिन छन्दों के चरणों में गुरु लघु के किसी विशेष क्रम से पड़ने का नियम होता है, उन्हें नियत-लघु-गुरु-पादात्मक कहते हैं। जिन छन्दों के चरणों में एक अथवा अधिक लघु गुरु के तो स्थान विशेष पर रहने का नियम हो, पर शेष वर्णों के विषय में कोई नियम न हो, उनको नियतानियत-लघु-गुरु-पादात्मक कहते हैं। सवैया छन्दों के चरणों में वर्णों के लघु-गुरु का क्रम नियत है, अतएव ये वर्णिक छन्दों में नियत-लघु-गुरु-पादात्मक हैं।

फिर नियत-लघु-गुरु-पादात्मक छन्द, चरणों के समान होने न होने पर तीन प्रकार के हैं; समपाद, अर्द्धसमपाद और विषमपाद। जिन छन्दों के चारों चरण समान होते हैं उनको समपाद, जिनके दो दो चरण आपस में समान होते हैं उनको अर्द्धसमपाद और जिनके चारों चरण असमान होते हैं, उनको विषमपाद कहते हैं। सवैया छन्दों के चारों चरण समान होते हैं, अतएव ये समपाद हैं।

वर्णवृत्त छन्दों में एक वर्ण से लेकर २६ वर्ण पर्यन्त के छन्दों की संज्ञा गणप्रस्तारप्रकाश में पर्यातक और २६ वर्णों से अधिक के छन्दों की संज्ञा दण्डक लिखी है। सवैया छन्द पर्यातक हैं।

ऊपर लिखे हुए प्रभेदों से ज्ञात हुआ कि सवैया छन्द वर्णवृत्तों में नियत गुरुलघ्वात्मक समपाद पर्यातक हैं।

अब सवैया के भेद लिखे जाते हैं। देवकवि ने काव्यरसायन नामक ग्रन्थ में बाइस वर्णों से लेकर छब्बीस वर्णों तक के बारह प्रकार के सवैया छन्दों के नाम, लक्षण और उदाहरण लिखे हैं। दास कबि ने छन्दार्णवपिंगल में इन प्रकारों के अतिरिक्त तीन और छन्दों को भी सवैया ही के अन्तर्गत लिखा है। देवकवि तथा और कवियों के लिखे हुए सवैयाओं के किसी किसी नाम में अन्तर है।

हम इस लेख में देवकवि के दिए हुए नाम रख कर लक्षण तथा उदाहरण लिखते हैं। अन्य ग्रन्थकारों के दिए हुए नाम भी अन्तर होने पर विदित कर दिए जायंगे।

बाइस वर्णों का सवैया।

बाइस वर्णों का एक सवैया छन्द मदिरा नामक है। इसके प्रति पाद में सात भगण* और अंत में एक गुरु होता है।

(उदाहरण)

दीन अधीन ह्वै पाय परी हौं
अरी उपकार कौं धावहि तू।
मेरी दसा लखि होहि प्रसन्न
दया उर अंतर ल्यावहि तू॥
नैननि के उर की बिरहागिनि
एकहि बार बुझावहि तू।
श्रीमनमोहन रूपसुधा
मदिरा मद मोहिँ छकावहि तू॥

* भगण तीन वर्णों के ऐसे समूह को कहते हैं जिसके आदि में एक गुरु और उसके पश्चात दो लघु होते हैं॥

तेइस वर्णों के सवैया।

तेइस वर्णों के तीन सवैया प्रचलित हैं; मालती, चित्रपदा, मल्लिका।

मालती

मालती, जिसका नाम दास कबि ने मत्तगयंद, और बाबा रामदास पटियालेवाले ने इंदव लिखा है, सात भगण और दो गुरु का होता है;—अर्थात् इसके प्रति पाद में तेइस वर्ण इस क्रम से पड़ते हैं कि पहिले तो सात भगण होते हैं और अंत में दो गुरु।

(उदाहरण)

पौरि मैं खेलन आवति यै न तो
 आलिन के मत मैं परती क्यों।
देव गुपालहिँ देखति यै न तो
 या बिरहानल मैं बरती क्यों॥
बापुरी मंजु रसाल की बाल सु भाल
 सी ह्वै उर मैं अरती क्यों।
कोमल कूकि कै कैलिया कूर
 करेजन की किरचैं करती क्यों॥

चित्रपदा

चित्रपदा के प्रत्येक पाद में सात भगण और अंत में एक गुरु तथा एक लघु होते हैं। इसीका नाम दासादि कबियों ने चकोर लिखा है।

(उदाहरण)

औधि को आधिक द्योस रह्यो
 अरु आयो न री पिय प्रान अधार।
तौ लगि मोर पपीहन ह्वै मिलि
 कुंज परी पिक पुंज पुकार॥
आज अटा पर जो रहि है न
 घटा गरजी बरजी बहु बार।
नैसिक पावस बूंद लगी
 उमगी अँखियान अखंडित धार॥

मल्लिका

इस छन्द के प्रत्येक पाद के आदि में एक लघु, उसके पश्चात् सात भगण और अंत में एक गुरु इस क्रम से वर्ण आते हैं। इसीका नाम दास कवि ने मानिनी और भानु कवि ने सुमुखी लिखा है।

(उदाहरण)

सखीन सों देत उराहनो नित्त
 सुचित्त सकोच सुने लहियै।
उन्हैं अरु मोहिँ न जानि कछू
 पहिचानि नहीं जु मिलै रहियै॥
चवाव चल्यो चहुं ओर कहां
 लगि जीभ चवा इनकी गहियै।
अचानक वे जु कहीं मिलि जाहिँ
 हहा कहिये री कहा कहियै॥

चौबीस वर्णों के सवैया।

देव ने चौबीस वर्णों के पाँच सवैया लिखे हैं—माधवी, मंजरी, दुर्मिला, किरीट और अलसा।

माधवी

माधवी छन्द के आदि में एक लघु, फिर सात भगण और अंत में दो गुरु होते हैं। दास कबि ने इसका नाम मंजरी और भानु कवि ने बाम लिखा है।

(उदाहरण)

बसंत से आज बने ब्रज राज
 सपल्लव लाल छरी बर हाथे।
सुकुंडल के मुकता बिच हैं
 मकरंद की बुंदन की छबि नाथे॥
मलिंद बने कच घूंघरवारे
 प्रसून घने पहुंचोन में गाथे।
गरे जिमि किंशुक गुंज की माल
 रसाल की मंजुल मंजरी माथे॥

मंजरी

इस छन्द में एक लघु आरम्भ में, फिर सात भगण, और अंत में एक गुरु और एक लघु होते हैं। इसीका नाम दास कवि ने मुक्तहरा और रामदास ने माधव लिखा है।

(उदाहरण)

उठी अकुलाइ सुनी जब नेकु
कला परबीन लला ब्रजराज।
बिसारि दई कहि देव तुम्हैं
अवलोकत ही अब लोक की लाज॥
इते पर औार चवाव चल्यो
बरजै गरजै गुरुलोक की लाज।
कहाँ लगि लाल कछू कहियै
इतनी सहियै सब रावरे काज॥

दुर्मिला

दुर्मिलाछन्द के प्रति पाद में दो लघु फिर सात भगण और अन्त में एक गुरु होता है।

(उदाहरण)

सुनि के धुनि चातक मोरन की
चहुं ओरनि कोकिल कूकनि सों।
अनुराग भरे हरि बागन में
सखि रागत राग अचूकनि सों॥
कविदेव घटा उनई जु नई
बनभूमि भई दल दूकनि सों।
रँग राती हरी हहराती लता
झुकि जाती समीर के झूकनि सों॥

किरीट

किरीट नामक सवैया का प्रति पाद आठ भगण का होता है।

(उदाहरण)

मंजुल मंजरी पिंजरी सी ह्वै
मनोज के ओज सम्हारति चीरन।
भूषन प्यास न नींद परै
परी प्रेम अजीरन के जुर जीरन॥
देव घरी पल जाति घुरी
अंसुवान के नीर उसास समीरन।
आहन जाति अहीर अहै
तुम्हैं कान्ह कहा कहीं काहू की पीरन॥

अलसा

अलसा छन्द के प्रत्येक पाद में सात भगण और अंत में एक रगण* होता है। इसका नाम दास कवि ने अरसात लिखा है और रामदास ने मकरंद।

(उदाहरण)

लोग लोगाइनि होरी लगाइ
मिला मिलि चारु न भेटत ही बन्यो।
देवजू चंदन चूर कपूर
लिलारनि लै लै लपेटत ही बन्यो॥
वे इहि औसर आये इहाँ
समुदाय हियो न समेटत ही बन्यो।
कोनी अनाकनी यों मुख मोरि
पै जोरि भुजा भइ भेटत ही बन्यो॥

पच्चीस वर्णों के सवैया छन्द

पचीस वर्णों के दो सवैया प्रचलित हैं; कमला और सुधा।

कमला

कमला के प्रति पाद के आदि में दो लघु, फिर सात भगण और अंत में दो गुरु होते हैं। इसका नाम दास कवि ने माधव, रामदास ने सुखदा और भानु कवि ने सुंदरी लिखा है।

(उदाहरण)

रस सिंधु तरी रति की पुतरी
उतरी रंग भौन तें इंदु उदोती।
सरसार सरूप सुधारस ओज
सुमोह मनोज सरासन गोती॥
अंग अंग अनंग तरंगत रंग
उरोज रथंग बिहंगम जोती।
पलकैं अरुनै झलकैं अरु नैन
छुटी अलकैं झलकैं लर मोती॥

सुधा

इसके प्रत्येक चरण के आदि में दो लघु, फिर सात भगण, और अंत में एक गुरु और एक लघु

* रगण तीन वर्णों के ऐसे समूह को कहते हैं जिसके आदि और अंत में गुरु और मध्य में लघु हो॥

होते हैं। इसका नाम राम दास जी ने अरबिन्द लिखा है

(उदाहरण)

अधरात अंध्यार की मेड़ घटा
 घुमड़ी छुटी बिज्जु छटा चहुं ओर।
कुल दादुर झिल्ली पुकारैं करैं
 किलकारैं करैं पिक चातक मोर॥
कविदेव अमावस पावस रैनि
 अज्यो बिसरैन घनी घन घोर।
तजि मान तिया पिय कंठ लगी
 लुकि मैान धरे झुकि पैान झकोर॥

छब्बीस वर्णों का सवैया।

छब्बीस वर्णों का एक सवैया प्रचलित है; देवकवि ने इसका नाम ललिता, दासकवि ने मालती, रामदास जी ने सावन और भानकवि ने सुख लिखा है। इसके प्रति पाद में दो लघु और आठ भगण होते हैं।

(उदाहरण)

बिन गोकुलचन्द अमावस पावस
 भीषन भीषन सेज सरङ्गनि।
उर धीर जरै चक मेचक रुप
 चढ़ी जमुना जलधार तरङ्गनि॥
अरि सम्बर से उमड़े घन अम्बर
 अम्बर मैं बरु अम्बर रङ्गनि।
भय भार सम्हारन देति नहीं
 चपला चमकार अंध्यार अरङ्गनि॥

ये बारह प्रकार के सवैया सामान्यतः सभी कवियों ने लिखे हैं। दासकवि ने जो और तीन छन्द सवैया ही के अन्तर्गत लिखे हैं उनके लक्षण उदाहरण नीचे लिखे जाते हैं—

भुजंग छन्द।

इस छन्द को दासकवि ने आठ यगण* का लिखा है।

(उदाहरण)

तुम्हैं देखिबे की महा चाह बाढ़ी
 मिलापै बिचारै सराहै स्मरै जू।
रहै बैठि न्यारी घटा देखि कारी
 बिहारी बिहारी बिहारी ररै जू॥
भई काल बैारी सी दैारी फिरै आजु
 बैठी दशा ईश काधैां करै जू।
बिथा मैं गसी सी भुजंगै डसी सी
 छरी सी भरी सी घरी सी भरैजू॥

लक्षी छन्द।

इस छन्द को दासकवि ने आठ रगण का लिखा है।

(उदाहरण)

बादिही आइ कै बीर मो ऐन मैं
 बैन के घाव की वो करै थावरी।
आपनी तत्व ही एक ही वा कह्यो
 कौन की वो करै बात फैलावरी॥
दास होँ कान्ह दासी बिना दाम की
 छाड़ि दीन्यो सबै बंस बंसावरी।
ज्ञान सिक्षानि तासैाँ जुदी रक्षिये
 लक्षिये जाहि प्रत्यक्षही बावरी॥

आभार छन्द।

इस छन्द में दासकवि ने आठ तगण* लिखे हैं।

(उदाहरण)

ये गेह के लोग धैां कातिकी न्हान को
 ठानि हैं कालिह एकाकही गैान।
सम्बाद कै बादिही बावरी होइ को
 आजु आली रहैा ठाने ही मैान॥
हैाँ जानती हैाँ न धैाँ सीख कैाने
 दयो नन्द को लाल गोपाल धैां कौन।
आभार ह्याँ द्वार को ताहि को सैांपि कै
 मोहि औ तोहि ह्यां राखते भैान॥

* यगण तीन वर्णों के ऐसे समूह को कहते हैं जिसके आदि एक लघु और फिर दो गुरु हों।

* तगण तीन वर्णों के ऐसे समूह को कहते हैं जिसके आदि में दो गुरु और अंत में एक लघु हो॥

ऊपर जो बातें लिखी गई हैं उनसे सिद्ध होता है कि सवैया छन्दों में नियत लघु वर्णों के गुरु रूप से आने और उनके लघु करके पढ़े जाने के निमित्त किसी विशेष संख्यक स्थान का नियम नहीं है, अर्थात् प्रत्येक स्थान का नियत लघु गुरु के रूप से आकर लघु पढ़ा जा सकता है; और न यहाँ नियत है कि प्रति पाद में कै लघु से अधिक गुरु रूप में नहीं आ सकते। केवल कई एक विशेष दशाओं ही में लघु वर्ण गुरु रूप से आकर लघु पढ़े जाने में अड़चल करते हैं। अब आगे वह दशाएं नियत की जाती हैं जिनमें लघु वर्ण गुरुरूप से नहीं आ सकते।

(१) यदि किसी नियत गुरु स्थान का वर्ण और उसके पूर्व का वर्ण दोनों एक ही शब्द में पड़ें और उस नियत गुरु स्थान के पूर्व का वह वर्ण गुरुरूप से आवे तो छन्द की गति बिगड़ जायगी। जैसे—

मेघ आकाश में छाइ रहे हैं
जिन्हें लखि मोर हैं शोर मचावत।

इस में चौथा वर्ण नियत गुरु का और उसके पूर्व का वर्ण आ दोनों एक ही शब्द आकाश में पड़े हैं, अतएव आ के गुरुरूप से आने के कारण गति बिगड़ती है। यदि यह दोनों एक ही शब्द में न पड़ते तो तीसरा वर्ण गुरुरूप से आकर बिना गति बिगाड़े लघु पढ़ा जा सकता। जैसे—

मेघ हैं छाये सुअंबर माहिं
जिन्हें लखि मोर हैं शोर मचावत।

इसमें यद्यपि तीसरा वर्ण गुरुरूप से आया है, पर चौथे वर्ण से एक ही शब्द में नहीं मिला है; अतः छन्द की गति नहीं बिगड़ती।

(२) जो दो लघु एकत्रित आते हैं यदि वे दोनों एक ही शब्द के वर्ण हों और पहिला लघु गुरु रूप से आवे, तो गति को बिगाड़ देगा।

हैं कारे बादर अंबर छाये
जिन्हें लखि मोर हैं शोर मचावत।

इसमें दूसरा वर्ण का और तीसरा वर्ण दोनों नियत लघु स्थानों के वर्ण एकही शब्द का में आए हैं और दूसरा वर्ण गुरुरूप से है अतएव गति बिगड़ती है। यदि ये दोनों एक शब्द में न पड़ते, तो दूसरे वर्ण के गुरुरूप में होने पर भी गति बनी रहती। जैसे—

आली हैं बादर अंबर छाये
जिन्हें लखि मोर हैं शोर मचावत।

इसमें यद्यपि दूसरा वर्ण गुरुरूप से आया है पर तीसरे वर्ण से एकही शब्द में नहीं मिला है अतः छंद की गति नहीं बिगड़ती।

(३) जो लघु किसी किसी सवैया छन्द के अं में होते हैं वे गुरु रूप से न आने चाहिएं। जैसे-

उठी अकुलाइ सुनी जब नेकु
कला परबीन लला व्रजराज।

यह मंजरी छंद है, इसके अंत में लघु का नियम है। यदि राज को राजै करें तो छन्द बद कर माधवी हो जाता है।

यह जो तीन नियम ऊपर लिखे गए हैं, इन पहिला नियम तो पन्द्रहों सवैयाओं में चरिता होता है।

दूसरा नियम केवल पहिले के बारह सवै छन्दों में काम देता है, और तीसरा नियम केव लघ्वान्त सवैया छन्दों के निमित्त है॥

जगन्नाथदास, बी, ए, (रत्नाकर

मदन दहन

[गत अंक के आगे]

बन देवी बन देव सेवित हिमगिरि कन्यका
सोहति अनुपम भेव, शंकर पद अनुराग रत॥४
(५

पुहुप असोकनि पदुमराग मनिप्रभा लजा
कुसुम कनेरनि कनक कांति छबिहीन बना
सिन्धुवार के सुमन मुकुत माला सम धा
मधु फूलनहीं सकल मनोहर गात सँ

वच्छोज भार भावक झुकी बाल-सूर-सम अरुन पट धरि, कुसुमित गुच्छनि पात युत भई नमित लतिका निपट ॥ ५० ॥ (५३-५४)

सर-धनु-ज्या मनु दुतिय,* बकुल माला कटि धारे।
छुद्र घंटिका सरिस, चलत तेहि खसत सँम्हारे ॥
अधर बिम्ब ढिग स्वास-सुगन्धित हित ललचाई।
तृष्णा पूरित बार बार मधुकर मड़राई ॥
डरि तासों मृग छौना सरिस चञ्चल नैन नचावती।
निज क्रीड़ा-पङ्कज सों सकुंचि छिन छिन ताहि उड़ावती ॥ ५१ ॥ (५५-५६) ॥

निरखि जासु लावण्य रतिहु कर मद दुरि भाज्यो।
लाज सृष्टि कर हेतु जाहि सन दृढ़ता साज्यो ॥
तेहि गिरिजहि लखि मीनकेतु साहस पुनि धारयो
इन्द्रियजित शिव माहिँ काज की सिद्धि बिचारयो॥
निज होनहार पति द्वार जब भई प्राप्त सैलेसजा
लखि परम आतमा निज हृदय, तज्यो ध्यान त्रिभुवन पिता ॥ ५२ ॥ (५७-५८) ॥

आसन-महि बहु जतन जासु धारत सहसानन
मन्द मन्द हर मोचि श्वास छाँड़यो बीरासन ॥
तब नन्दी कर जोरि तुरत शिव सम्मुख जाई।
सेवा हित गिरिराज-सुता की कहयो अवाई ॥
सो भृकुटि-सहित-चख चालि प्रभु अङ्गीकृत संज्ञहि करयो।
तब सकुचि गौरि मुख मोरि कछु, लताभवन बिच पग धरयो ॥ ५३ ॥ (५९-६०) ॥

मधुपातन युत चुन्यो सखिन निज कर मधु फूलन,
तिन्हेँ सहित परनाम समरप्यो शिव-पद-मूलन ॥
करत दण्डवत प्रभुहि उमा के नील अलक सों।
नव कनेर खसि खसे श्रवन के पात झलक सों ॥
"नहिँ आन तरुनि मुख जेहि लख्यो, लहु सो पति" भव अस कह्यो ॥

सो औशि सत्य, बिपरीतता ईश बचन कबहूँ लह्यो ? ॥ ५४ ॥ (६१-६२-६३)

धावत यथा पतङ्ग अनल दिसि मीचु भुलाई।
तथा, सुऔसर जानि, असमसर सङ्ग बिहाई ॥
पारबतिहि शिव निकट देखि, साध्यो धनु शायक।
ताही छिन गिरिसुता कञ्ज सम कर सुखदायक
सों, रविकिरननि सूखे कमल गङ्गधारसन जे लियो।
तिन्ह बीज-माल तपसी हरहिँ प्रेम सहित अरपित कियो ॥ ५५ ॥ (६४-६५)

भक्ति प्रीतिबस लगे शम्भु तेहि ग्रहन करन ज्यों।
सम्मोहन शर दुसह मार धनु बीच धरयो त्यों ॥
चन्द्रोदय छिन सिन्धु-तरङ्गनि सरिस पुरारी।
चलित धीर कछु, रहे उमा मुख-चन्द निहारी ॥
करि दीप्तिमान कोमल-कदम-सम-अङ्गनि भावहि प्रकट।
मुख मोरि, तिरछे चखन सों, रही लाज बस ह्वै निपट ॥ ५६ ॥ (६६-६७-६८)

इन्द्रिय-जित-पन सों तदनु गो* बिकार पुनि रोधि।
जानन कारन तासु हर रहे सकल दिसि सोधि ॥ ५७ ॥ (६९)

चक्र सम धनु धरे, उद्यत करन वाण प्रहार।
सव्य चख ढिग मूठि कीन्हे लख्यो हर तहँ मार ॥
समाकुञ्चित किए दच्छिन पावँ, कन्ध झुकाय
बाम पद करि अग्र, बिलसत दुतिय नैन दबाय ॥ ५८ ॥ (७०)

निज तपस्या निरखि बाधित कोप करि त्रिपुरारि।
भए बिकट स्वरूप, जो नहिँ नेक जात निहारि ॥
भङ्ग करि भृकुटीन दीन्हो तृतिय नैन उघारि।
कढ़ी जा सों ज्वाल माल प्रचण्ड अति भयकारि ॥ ५९ ॥ (७१)

"छमहु हे प्रभु! छमहु कोप कराल, त्रिभुवन पाल!"।
होय व्योम प्रवृत्त जौ लगि देव-रोर बिहाल ॥

---

* धनुष की दुतिय ज्या (अर्थात् ताँत) उसके दण्ड में लपेटी रहती है कि यदि धनुष पर चढ़ी हुई ताँत, (जिससे काम लिया जाता है), किसी तरह टूट जाय तो उसी समय दण्ड से खोल कर चढ़ाकर काम किया जाय।

* इन्द्रियगण।

तासु प्रथमहि प्रलय करनि ललाट चख की ज्वाल।
कियो मारहि छारवत्, अति भरी तेज कराल ॥ ६० ॥ (७२)

अति अनादर-जनित गो-गति सकल रोधनहार।
कन्तनास भुलाय, रति कर मोह* किय उपकार ॥
तपी हर तेहि विघन-विटपहि तड़ित सम भरसाय।
गणन सह भे गुप्त तरुनी-गन-समीप बिहाय ॥६१॥ (७३-७४)

यह चरित्र लखि शैलजा ह्वै भयभीत महान।
गई पिता भवनहि सपदि, मन अति किए मलान ॥ ६२ ॥

स्वारथ रत बहु लोग नेह अविचल दरसाई।
अभिमानिन बहँकाय लेहिँ निज काज बनाई ॥
पै तिन पर जब परत आनि भावी कछु भारी।
तब शठ पूँछ दबाय जाहिँ कढ़ि बिरद बिसारी ॥
जिमि सहसनैन रतिनाथ कहँ दिय बधाय निज काज हित।
पुनि हरयो शम्बरासुर रतिहि, रह्यो निलज चुप साधि तित ॥ ६३ ॥

श्यामबिहारी मिश्र, एम, ए, (शिरमौर)
और
शुकदेवबिहारी मिश्र, बी, ए, (शशिभाल)

—

श्री गुरु रामदासजी

प्रिय पाठकगण! सिख-मतानुयायी तीन गुरुओं का जीवनचरित्र ते आप लोगों ने पढ़ा ही होगा, क्योंकि वह "सरस्वती" की गत संख्याओं में छप चुका है। यह बात तो आप लोगों से छिपी ही नहीं है कि गुरु नानकजी से लेकर गुरु गोविन्दसिंह जी तक दस महात्माओं ने गुरु की गद्दी को सुशोभित किया था। अतएव आज हम आप लोगों को उन्हीं महात्माओं में से चैाथे गुरु रामदासजी का चरित्र सुनावेंगे और यदि परमात्मा ने चाहा तो क्रमशः अवशेष गुरुओं का चरित्र भी हम आप लोगों के करकमलों में भेंट करेंगे।

संवत १५९१, कार्तिक बदी २, के दिन चार घड़ी दिन चढ़े माता दयाकुंवर के गर्भ से रामदास जी ने जन्मग्रहण किया था। इनके पिता हरिदास सोढी लाहोर, महल्ला चूनीमण्डी, में रहते थे। उस समय वीरवर शेरशाह भारतवर्ष का बादशाह था।

दुर्भाग्यवश बाल्यावस्था में ही इनके पिता परलोक सिधार गए। अतएव धीरे धीरे इनकी अवस्था बड़ी ही दरिद्र हो गई। बड़े कष्ट से इन की विधवा माता सूत कात कर अपना और अपने एकलैाते बालक पुत्र का भरण पोषण करती थी। इस कष्ट में केवल एक समय सूखी रोटी प्राप्त होती थी, जिसे खाकर बिचारे माता और पुत्र सन्तोष से अपनी जीविका निर्वाह करते थे। परन्तु इस अवस्था में भी रामदासजी के चेहरे पर वह कान्ति विराजमान थी जो प्रायः भावी महात्माओं की आकृति में झलका करती है।

जिस समय गुरु अमरदासजी गद्दी पर बैठे तो देश बिदेश से सिख लोग उनके दर्शनार्थ आने लगे। उस समय गुरु अमरदासजी गोइंदवाल में विराजमान थे। अतएव लाहोर से जो मण्डली उनके दर्शनार्थ रवाने हुई, कैातूहलवश रामदास जी भी उसके साथ हो लिए। जब सब कोई अमरदासजी के स्थान पर पहुंचे और उनका दर्शन कर लैाटने लगे तो रामदासजी वहीं रह गए और गुरु अमरदासजी के निकट जाकर दंड प्रणाम के बाद उन्होंने धर्म विषय पर अमरदासजी से बातचीत करनी आरम्भ की। बालक की धर्मनिष्ठा और सत्संगत की प्रीति देख कर अमरदासजी बड़े सन्तुष्ट हुए और प्रीतिपूर्वक उन्होंने रामदास जी को सदुपदेश दिया। गुरु अमरदास जी की सरल ज्ञानपूर्ण बातों ने रामदास

* मूर्च्छा ॥

जी के हृदय में जगह करली ग्रौर ईश्वर के गुणानुवाद सुन कर वह ऐसे तृप्त हुए कि उन्हें घर बार सब भूल गया ग्रौर तब से वह बराबर गुरु जी की सेवा में रहने लगे ग्रौर महात्मा ग्रमरदास जी के ग्रमृतरूपी ज्ञानवाक्यों से कानों को ग्रमृत रस चखाने लगे। बड़ी भक्ति ग्रौर ग्राग्रह से वे गुरु की सेवा करते थे, इस कारण ग्रमरदास जी उन्हें सबसे ग्रधिक चाहने लगे। एक समय का वृत्तान्त है कि गुरु ग्रमरदास जी ने ग्रपनी लड़की का विवाह करना विचार ब्राह्मण को बुला बर खोज लाने की ग्राज्ञा दी। ब्राम्हण ने पूछा कि "बर कितना बड़ा हो"। इस पर ग्रमरदास जी की धर्मपत्नी जो निकट ही बैठी हुई थी, सामने खड़े हुए रामदास की ग्रोर उङ्गली उठा कर बोली कि "बस इतनाही बड़ा बर हो"। इन बातों को श्रवण कर ग्रमरदास जी ने ग्रपनी धर्मपत्नी से कहा कि "बस काम हो गया, बर तो तुमने घर बैठे ही खोज लिया, ग्रब बिचारे ब्राह्मण को कष्ट देने की क्या ग्रावश्यकता है। जब एक बार तुमने इस लड़के को लक्ष कर बर खोज लाने के लिये कहा तो, बस, फिर यह हमारा दामाद हो चुका, हम निस्सन्देह इसीको ग्रपनी कन्या ब्याहेंगे।" उनकी धर्मपत्नी ने भी पति के कथन का ग्रनुमोदन किया ग्रौर कुछ दिनों के बाद संवत १६१२ में जब रामदासजी की ग्रवस्था लगभग इक्कीस वर्ष के थी, ग्रमरदासजी ने ग्रपनी गुणमयी कन्या भानीजी से रामदासजी का विवाह कर दिया ग्रौर ग्रत्यन्त स्नेह ग्रौर प्रीति से दोनों को निकट ही रक्खा। दोनों पर ग्रधिक स्नेह होने का कारण यह था कि रामदासजी ग्रौर विशेष कर उनकी नवपत्नी भानीजी ग्रमरदासजी की सेवा बड़े प्रेम से करती थीं। पाठको, इन ग्रार्यललनाग्रों की तनिक पितृभक्ति की ग्रोर ध्यान दीजिए। इस वृत्तान्त के पाठ करने से ग्राप लोगों को भानीजी की पितृसेवा का हाल ग्रच्छी तरह विदित हो जायगा।

पितृभक्त भानीजी नित्य चौकी पर बैठा कर ग्रपने पिता गुरु ग्रमरदासजी को ग्रपने हाथों स्नान करवाया करती थीं। एक दिन का वृत्तान्त है कि गुरु ग्रमरदासजी चौकी पर विराजमान थे ग्रौर उनकी गुणमयी पुत्री उन्हें स्नान करा रही थीं, ऐसे समय दैवसंयोग से कहीं चौकी का एक पावा टूट गया। यह देखते ही झट से भानीजी ने ग्रपने पैर का पञ्जा पावे के स्थान पर दे कर पिता को गिरने से बचाया। यह घटना इतनी शीघ्र हुई कि ग्रमरदासजी को इसका कुछ पता तक नहीं लगा, परन्तु टूटे हुए पावे की कील भानी जी के पैर में धस गई ग्रौर पैर से खून बह निकला। पर जब तक पिता स्नान से निश्चिन्त न हो लिए तब तक दृढ़चित्ता पितृभक्ता भानी जी ने वहां से ग्रपना पैर न हटाया। जब ग्रमरदास जी स्नान कर चौकी से भूमि पर उतरे तो वहां रक्त की धारा देख कर वह चौंक उठे ग्रौर जब उन्हें विदित हुग्रा कि मेरी स्नेहमयी पुत्री ने ग्रपने पैर कट जाने की उत्कट पीड़ा सहन कर पितृभक्ति का उच्चतम नमूना दिखाया है, तो वह ग्राल्हाद से गदगद हो गए ग्रौर कन्या को सामने बुला कर बोले "ग्राज मैं तुझपर बड़ा प्रसन्न हुग्रा हूं, तू क्या चाहती है मुझ से कह; मैं यथासाध्य तेरी इच्छापूर्ण करने की चेष्टा करूंगा। भानीजी ने मुख नीचे कर बड़े नम्रस्वर से केवल इतना ही कहा कि "पिता, गुरु की गद्दी मेरे ही बंश में रहै"। ग्रमर दास जी ने लाचार होकर पुत्री का बचन स्वीकार किया।

ग्रमरदास जी ने विचारा कि गद्दी देने के पूर्व एक बार रामदास की भी परीक्षा लेनी चाहिए। यह विचार कर उन्होंने ग्रपने सब शिष्योंको इकट्ठा कर कहा कि "तुम लोग बाहर मैदान में एक चबूतरा बनाग्रो, हम उसी पर बैठ कर तुम लोगों को उपदेश दिया करेंगे। गुरु की ग्राज्ञा के ग्रनुसार शिष्यों ने चबूतरा बना कर तैयार किया, परन्तु ग्रमरदास जी ने नापसन्द कर उसे गिरवा दिया। फिर ग्रधिक ध्यान के साथ शिष्यों ने बड़े परिश्रम

से चबूतरा बनाकर तैयार किया, अमरदास जी ने उसे भी नापसन्द कर गिरवा दिया। इसी प्रकार कई बार शिष्यों ने यथासाध्य परिश्रम कर चबूतरा बनाया और अमरदासजी ने गिरवा दिया। अन्त को गुरु को पागल समझ सब लोग चबूतरा बनाना छोड़ बैठे; परन्तु गुरुभक्त रामदास जी ने इस कार्य को नहीं छोड़ा, वड़े परिश्रम से वह विचारे अकेले ही इसमें लगे रहते। पर जब उनका चबूतरा बन कर तैयार होता, तो वह भी गुरु की आज्ञा से गिरवा दिया जाता। परन्तु बार बार उद्यम विफल होने पर भी रामदास जी निरास न हुए, वे और भी अधिक ध्यान और परिश्रम से चबूतरा बनाने लगे। अन्त को जब गुरु अमरदास जी ने देखा कि यह ऐसा दृढ़चित्त है कि धर्म्म के कठिन मार्ग से कभी विचलित न होगा, तब उससे चबूतरा बनवाना छोड़ दिया। एक तो कन्या की भक्ति ने उन्हें मुग्ध करही रक्खा था, दूसरे अब दामाद रामदास की गुरुभक्ति से भी वह ऐसे प्रसन्न हुए कि बिना कुछ आगा पीछा किए उन्होंने चट रामदास जी को गद्दी देदी।

संवत १६२९ में अमरदास जी ने गुरु रामदास जी के हाथ से अमृतसर नगर की नेव डलवाई और उन्हींके नाम पर उस स्थान का नाम रामदास-पुर रक्खा।

गुरु अमरदास जी के परलोक सिधारने पर रामदास जी तन मन से अपने कर्तव्य का पालन करने लगे। जो मनुष्य उनके दर्शनों को आता, वह उनके अमृतरूपी उपदेशों से तृप्त हो जाता था। इनके उपदेशों से बहुत से लोग गुरु नानक के अनुगामी हो गए और सिख धर्म्म की अच्छी उन्नति हुई। इनके समय तक गुरु नानक जी का चलाया हुआ फकीरी लिबास तथा गुरुआई का सब रंग ढंग जैसे का तैसा कायम था। यह कभी भी किसी से कुछ मांगते न थे और यदि कोई प्रसन्नता से कुछ दे जाता तो इँकार भी नहीं करते थे।

संवत १६३३ में लाहोर जाते समय शाहंशाह अकबर इनके दर्शनों को आया और उसने इन्हें कई ग्रामों का माफ़ी पट्टा लिख दिया। इन ग्रामों की अधिकांश आमदनी फकीरों और अतिथियों में खर्च होती थी।

संवत १६३४ में रामदास जी ने अपने शिष्यों को इकट्ठा कर अमृतसर तालाब खुदवाना आरम्भ किया, जो उक्त नगर में अब तक वर्तमान है; और इस तालाब के विषय में अनेक मनगढ़त कहानियां भी सुनाई देती हैं और किसी किसी का यह वर्णन है कि इसी स्थान पर अश्वमेध यज्ञ करते समय श्रीरामचन्द्र जी और उनके पुत्र लव कुश में युद्ध हुआ था और इसी युद्ध में रामचन्द्र जी हार कर मूर्छित हो समर भूमि में गिर पड़े*। भानीजी ऐसी धर्मपत्नी पाकर बड़े सुख से रामदास जी का दिन बीतता था। पतिपत्नी में अगाध प्रेम था। समय पाकर इस धर्मपत्नी के गर्भसे रामदास जी के तीन पुत्र भी हुए। इन तीनों का नाम पृथिवीचन्द, महादेव और अर्जुन था। इसी प्रकार से रामदास जी अपना कर्तव्य का उत्तमता पूर्वक साधना कर रहे थे कि एकाएकी उन्हें काल ने आघेरा। संवत १६३८ सावन बदी ३, को केवल ४९ वर्ष की आयु में हमारे चरित्रनायक अपने परिवार और शिष्यमण्डली को शोकसागर में डुबोकर स्वर्ग को सिधार गए।

वेणीप्रसाद

महाराष्ट्र जाति का अभ्युदय

माधवराव ने महाराष्ट्रों में फिर से नव जीवन का सञ्चार कर दिया था। पानीपत की लड़ाई में, यह समझ कि अब मरहठे हो जीते हैं, उन्होंने अपने भुजबल से थोड़े ही दिनों में उन्हें दबा दिया। नागपुर के भोंसलों में इसी बीच में एक भीतरी झगड़े का बीज बोना

* इस तालाब का विशेष वर्णन और चित्रादि आगे चलकर दिया जायगा। सम्पादक

चाहा था पर माधवराव की चतुराई से फिर से मरहटों में एका हो गया था। दक्षिणी देशों में दूरदर्शी हैदरअली, निजामअली, आरकट के नवाब और कुटिल नीतिकुशल अंगरेज़ों को महाराष्ट्रशक्ति के आगे गर्दन झुकानी पड़ी थी। मध्यभारत और राजपुताना के राजा महाराजागण भी महाराष्ट्र के विक्रम से पेशवाओं को कर देने लगे। जाटों ने भी पराभव स्वीकार कर लिया था। इतना ही नहीं, ई० १७७० में द्वार पर मरहटों के सिंहनाद का शब्द सुन पड़ने लगा। पानीपत की हार के बाद ही मरहट्ठे चर्म्मन्वती (चम्बल) नदी पार हो सकेंगे यह स्वप्न में भी रोहिलों को गुमान न था। शक्तिवान सिख अफगानों को दमन करने में प्रवृत्त होते देख रोहिले दिल्ली, आगरा, गंगा और यमुना के अन्तर्वेद में अपनी प्रभुताई जमाने की चेष्टा करने लगे। उन लोगों का जी यहां तक बढ़ गया था कि दिल्ली के बादशाह शाहआलम को वृत्ति रहित कर उनकी बेगमों को भी अवमानित करने लगे। इधर बादशाह अंगरेज़ों से युद्ध में परास्त हो दिल्ली छोड़ प्रयाग में रहने लगे। मरहठों ने रोहिलों को जीत मुग़ल वंश के शाहआलम को दिल्ली के तख़्त पर बैठा दिया। ई० १७७१ सन के २५ वीं दिसम्बर को बड़ी धूमधाम से मरहटों की सहायता से बादशाह का राज्याभिषेक हुआ। रोहिलों की उद्दण्डता से दिल्लीवालों के नाकों दम हो गया था। वे लोग अपने सच्चे बादशाह को राजगद्दी पर बैठे देख जी से प्रसन्न हुए। उत्तरभारत में महाराष्ट्रों की पहिला सा प्रताप बढ़ गया था।

इसके उपरान्त मरहटे मुसलमानों के हाथ से अयोध्या, काशी और प्रयाग के उद्धारसाधन में प्रवृत्त हुए। इसी बीच में दक्षिण से पेशवा माधवराव की बीमारी की खबर आई। मरहटों के दुर्भाग्य से २८ वर्ष की उमर में माधवराव को यक्ष्मारोग होगया। उनके प्रधान सेनापति उत्तरभारतवर्ष के देशों में अपनी प्रभुता जमा रहे थे। यह देखसुन हैदरअली उपद्रव करने लगा। इसलिये माधवराव को अपने सेनापतियों को राजधानी में लौटने के लिये लिखना पड़ा। वे राजधानी में लौट भी न आने पाए थे कि उधर माधवराव को यमदूतों ने ले जाने की जल्दी कर दी। उसीके साथ ही साथ मरहठों की सब लालसा जी ही में रह गई। एकछत्र हिन्दू साम्राज्य स्थापन का मौका सदा के लिये समाप्त हो गया। उधर अंगरेज़ मौका पाकर अपनी अमलदारी फैलाने लगे। जो अकाल में माधवराव न मर जाते तो कदाच मरहठों की शक्ति घटती या नहीं इसमें सन्देह है।

सन् १७७२ ई० में माधवराव के छोटे भाई नारायणराव १६ वर्ष की उमर में राजगद्दी पर बैठे। दादा साहब (रघुनाथ राव) उनके नाम पर राजकाज करने लगे। आनन्दी बाई की कुमन्त्रणा से उनकी बुद्धि भी बहक गई। उस पापिनी के बहकाने में पड़ सन् १७७३ ई० के भादों के महीने में नारायण राव बुरी तरह से मारे गए। फिर पूना में घरेऊ झगड़ा फैला। सुचतुर अङ्गरेज़ मौका पा पहिली लिखी हुई सन्धि की शर्तों को तोड़ अपना मतलब गांठने लगे। नारायणराव के उसी समय जन्मे हुए लड़के को छोड़ दुराचारी रघुनाथ राव को अंगरेजों ने सिंहासन पर बैठा दिया। जब नारायण राव के मरने पर पूना में बखेड़ा उठा उसी समय उन लोगों ने महाराष्ट्रों का एक बन्दरगाह अन्यायपूर्वक छीन लिया था। अब तक उनके साथ मरहठे अच्छा ही बर्ताव करते आए, परन्तु इस समय अङ्गरेज़ों के जी में राज्यलाभ की लालसा ऐसी बढ़ गई थी कि वे लोग स्वार्थसिद्धि के लिये पूना के दरबार में रिशवत देना, आपस में फूट फैलाना, लड़ाई लगाना, राजपुरुषों में परस्पर बैर बढ़ाना, इत्यादि खोटी बातों में प्रवृत्त हो गए। रघुनाथ के सिंहासन पर बैठने पर मरहठों के बीच भांति भांति के उपद्रव होने लगे, जिसे देख सुन उन्हें बड़ा हर्ष होने लगा। उनके भतीजे को मारनेवाले रघुनाथ की सहायता में प्रवृत्त होगए, इसीसे मरहठों से उनकी लड़ाई होने लगी। यह युद्ध छ वर्ष

तक बनारहा। इस बेर की भांति अन्याय युद्ध में अंगरेज़ कभी नहीं लिप्त हुए थे। एक यही क्या, सम्भव है कि कोई भी सभ्य जाति ऐसे अन्याय और अधर्म युद्ध में कभी लिप्त न हुई होगी।

उस समय पूना में मरहठों का कोई सिर धरू न था। मन्त्रियों के बीच फूट और स्वार्थ साधन की कुइच्छा बढ़ रही थी, राजभण्डार खाली पड़ा था और पूनाराज्य का बाल बाल ऋण में गुँथ गया था। उसी समय में एक और भी बखेड़ा उठ खड़ा हुआ। पानीपत की लड़ाई में भाऊ साहब के मरने पर भी उनकी लाश न मिली, इससे बहुतेरे लोगों ने समझा कि उन्होंने युद्ध के मैदान से छिप कर अपनी जान बचाई होगी। यह सुन बाजीगोबिन्द नाम का कोई मनुष्य एकाएक अपने को भाऊसाहब कह महाराष्ट्र सिंहासन पर आपही बैठने की इच्छा करने लगा। कहते हैं कि अङ्गरेज़ भी उसीकी सहायता पर खड़े हो गए, पर थोड़े ही दिनों के बाद वह धोखेबाज़ पकड़ा गया। उसके विचार के लिये पूना दरबार से एक पंचायत बैठी। पंचों ने बाजीगोबिन्द को प्रवञ्चक स्थिर किया। सब लोगों के सामने भाऊ साहब की स्त्री ने उसे प्रवञ्चक कहा। तब उसकी गर्दन मारी गई। इस घटना के समाप्त होते न होते कोल्हापुरपति पेशवा के राज्य में उपद्रव आरम्भ हुआ। जो हो, ऐसे खोटे दिनों में महाराष्ट्र राजमंत्री नाना फड़नबीस के सलाह की चतुराई से और महाराष्ट्रों के लगातार उद्योग करने पर कई बार अङ्गरेज़ हार गए। उन लोगों ने दो बार क्षमा मांगी। मरहठों ने दो बार सन्धि की। तौभी अङ्गरेज़ कम्पनी की उद्दण्डता न गई। उन्होंने विलायत और कलकत्ते के हाकिमों की आज्ञाधीनता के मिस उन सन्धियों को भी तोड़ दिया। इसीसे फिर लड़ाई प्रारम्भ हो गई। इधर हैदरअली और दूसरे रजवाड़े महाराष्ट्र देश में लूट-मार करने लगे। उस समय भाग्यवश बिद्रोही हो अङ्गरेज़ रक्षित रघुनाथ के पक्ष पर हो गए। औरंगज़ेब के मरने के उपरान्त मरहठों को ऐसी अवस्था कभी नहीं हुई थी। पर नाना फड़नबीस के नीतिकौशल से शीघ्र ही यह दुर्दिन मिट गया। अङ्गरेज़ों ने महाराष्ट्रों से लड़ बड़े ही जर्जरित होकर हार मानली। उन लोगों का दर्पचूर्ण हो गया। रघुनाथराव और आनन्दीबाई कैद होकर दिन बिताने लगे।

नारायणराव के अल्पवयस्क पुत्र सवाई माधवराव (माधवराव नारायण) को राजा बना नाना फड़नवीस ने महाराष्ट्रवासियों को सुशासन से सुखी किया था। निजाम और टीपू सुलतान ने भी मरहटों की प्रधानता स्वीकार करली थी। महाद जी सिन्धे ने उत्तरभारत में जाकर गुलाम कादिर के पैशाचिक अत्याचार से दिल्लीश्वर और उनके महलों की रक्षा कर उस देश के मुसलमानों को दबा बादशाह को आधीनी स्वीकार करवा दी। बादशाह ने उन्हें सन १७८९ ई० में "आलीजाह बहादुर" की पदवी दी और उनके राज भर में गो हत्या न होने की सनद दी। राजपूताने में भी मरहठों की अमलदारी हो गई थी। काशी, प्रयाग और अयोध्या के उद्धार की एक बेर चेष्टा हुई थी, पर वह सफल न हुई। जो हो, इसके पहिले मरहठों की ऐसी उन्नति कभी नहीं हुई थी। पेशवा माधवराव की अवस्था थोड़ी होने पर भी महाराष्ट्र मण्डली के जितने सरदार थे सब उनकी आज्ञा मानते थे। उत्तर में शतद्रु से दक्षिण में तुङ्गभद्रा तक इतना बड़ा राज्य शत्रु विहीन हो रहा था। प्रातःस्मरणीया महारानी अहिल्या बाई के सुशासन में मालवा की प्रजा जैसी सुखी थी, बरार, नागपुर, गुजरात, महाराष्ट्र, कङ्कन प्रभृति की प्रजासमूह उससे कम सुखी न थी।

दुर्भाग्यवश यह अवस्था बहुत दिनों तक न रही। दिनों के फेरफार के कारण भांति भांति की प्रतिकूल घटनाओं से महाराष्ट्रियों के भाग्यभानु धीरे धीरे अस्ताचल की ओर जाने लगे। सन १७९४ ई० से १८०० के बीच महादजी

सेंधिया आदि गिने गिने मुखिया और नानाफड़नवीस प्रभृति राजनीतिज्ञ जन एक एक कर संसार से उठ गए। पेशवा सवाई माधवराव की भी २१ वर्ष की उमर में (१७९५ ई०) मृत्यु हुई। योंही थोड़े ही दिनों के बीच राजनीतिधुरन्धर विचक्षण जन और रणबांकुरे सामन्तों के अभाव से महाराष्ट्रसमाज निर्बल हो गया। बहुतेरे स्थानों में "अबला यत्र प्रबला बालो राजा निरक्षरो मन्त्री" हो जाते हैं। बस सचतुर पतवारी के बिना मरहठों की राष्ट्र नौका कालसागर के अथाह जल में भरभरा कर बैठ गई।

ऐसे समय में अत्यन्त तरुण वय के बाजीराव महाराष्ट्र सिंहासन पर बैठे। यह रघुनाथराव और आनन्दीबाई के पुत्र थे। पिता माता के अवगुणों की मानो पोटलीरूप से यह जन्मे थे। इन्हींके प्रताप से राजसभा में कपटाचार दुर्बलता, वारुणी और बारविलासिनी का प्रवेश हुआ। सूरता, साधुता, स्वदेशप्रीति धीरे धीरे विलीन हो गई। सामरिक खर्च को घटा विलास का खर्च बढ़ाया गया। चुगलखोरों की बातों में आ राजनीतिकुशल लोगों को गर्दन ली गई और लम्पट तथा लोभियों की बातों में फंस प्रजा भी मनमानी लूटी गई। उनके ऐसा कादर, लम्पट और कुव्यसनी उस वंश में कोई नहीं जन्मा था। अङ्गरेज़ों की कुटिल नीति समझने की उन्हें बुद्धि न थी। बड़ों की दी हुई जागीरें सामन्तों से छीनने के लिये उन्होंने अङ्गरेज़ों की मदद ली। ऐसों के हाथ में राज्य रहना क्या कभी सम्भव है? जशवन्तराव हुलकर ने एक बेर अङ्गरेज़ों को परास्त कर मरहठों का बल विक्रम जग को दिखा दिया था। उनके मरने बाद उनका राज लड़कों का खिलवाड़ हो गया था। तरुण वयस के सेंधिया दिन रात महलों में बिताने लगे। नागपुर के भोंसले घरेऊ झगड़े में उलझ गए। जगत में जहां जहां राजकुल का ध्वंस हुआ है वह प्रायः इसी प्रकार से हुआ है।

१६४६ ईसवी में महात्मा शिवाजी ने जिस राज्य को स्थापन किया था, उसे १८१८ ईसवी में नराधम बाजीराव ने खो कर वह अङ्गरेज़ों से सालीना साठ लाख रुपए ले ब्रम्हावर्त में आ परमार्थसाधन करने लगा, पर उसका परमार्थ कहां तक सधा होगा यह तो ईश्वर ही जानता है।

परमार्थसाधन के सम्बन्ध में रामदास स्वामी के उपदेशों से विच्युत हो मरहठे मुह के बल गिरे। पवित्र महाराष्ट्र धर्म से बिमुख होना ही उनके राज्यनष्ट का मुख्य कारण हुआ। सदाचार, निस्पृहा, कर्तव्यनिष्ठा और परोपकार करने की इच्छा प्रभृति सात्विक नीति ही रामदासप्रणीत महाराष्ट्रधर्म्म की बुनियाद थी, यह बात राज्य बढ़ाने के साथ ही साथ मरहठों के जी से भूलने लगी। रामदास स्वामी राज बढ़ाने के पक्षपाती होने पर भी परमार्थ साधन से अलग न थे। इसीसे यह कार्य गीता में कहे हुए कर्म्मयोग की नाईं बहुत ही कष्टसाध्य था। किसी धर्म्म में भी इतने दिनों तक कठोर धर्म्म की पालना नहीं हुई थी। कुछ दिनों के उपरान्त मरहठे भी इस धर्म्म से दूर जा पड़े थे। निष्काम धर्म्मनिष्ठा की कमी होने पर "महाराष्ट्रीय धर्म्म" (महाराष्ट्र के उपयोगी सत्वगुणप्रधान हिन्दू धर्म्म और महाराष्ट्रों का पालनीय धर्म्म) यह गौरवकारी पवित्र नाम भी महाराष्ट्र साहित्य से लोप हो गया था और जिसमें अनेक कर्मकाण्ड हैं ऐसे हिन्दूधर्म्म ने उसके स्थान पर अधिकार कर लिया था। चित्तशुद्धि की अपेक्षा सोपचार पूजार्चना अधिक पुण्यजनक माना जाने लगा। ऐसी अवस्था में समाज में ईर्षा, विद्वेष, कपटता और स्वार्थ धन की इच्छा का होना ठीक ही है। निष्काम धर्म्म का बन्धन ढीला पड़ने पर महाराष्ट्र समाज में ये सब दोष जा घुसे थे। मल्हारराव हुलकर की अवैध स्वार्थपरता से पानीपत में मरहठों का भाग्य उलट पुलट हो गया था। रोहिलों के दमन करने में हुलकर ही मरहठों के बाधक हुए थे।

अङ्गरेज़ों से लड़ते समय भी उन्होंने ही स्वार्थ के अनुरोध से पापिष्ठ रघुनाथ की ओर अंगरेज़ कम्पनी की सहायता की थी। नागपुर के भोंसलों के खोटे बर्ताव से महाराष्ट्र समाज की बहुत कुछ हानि हुई थी। नारायणराव की हत्या के लिये आनन्दी बाई की अपेक्षा नागपुर के भोंसलों ने कुछ कम खोटाई नहीं की थी। उन लोगों की स्वार्थपरता और क्रूरता के लिये मरहठों को थोड़ी विपद नहीं झेलनी पड़ी थी। उन्हीं लोगों ने मरहठों को बङ्गाले में बदनाम किया था। पहिले महाराष्ट्रयुद्ध में यही लोग अंगरेज़ों से रिशवत लेकर अपने देश की बुराई करने में प्रवृत्त हुए थे। बहुत दिनों तक सेन्धियाओं ने विश्वास के साथ काम किया था। पीछे से उन्होंने भी कुछ स्वार्थी हो देश की अधिक खराबी की थी। स्वयम् पेशवा ही सब ठौर निष्काम कर्तव्यनिष्ठ नहीं हो सके। असल में सात्विक महाराष्ट्र धर्म्म को भूली हुई महाराष्ट्रसमाज अन्तःसार शून्य हो गई थी। तो भी हिन्दूराज्य स्थापन पूर्वक हिन्दूधर्म्म को निष्कण्टक करने की पवित्र वासना के कारण वह बहुत दिनों तक बढ़ी चढ़ी अवस्था में थी। भारत में किसीके हृदय में ऐसा भाव न होने के कारण और किसी जाति या समाज की इतनी बढ़ती नहीं हुई थी। ऐसी ऊंची आशा से हृदय को पूर्ण किए बिना बार बार ऐसे कड़े झपेटों को सहकर भी अनेक दिनों तक वे अपना प्रताप बनाए रहे थे।

महाराष्ट्रों के उदय और अस्त का यह संक्षिप्त इतिहास है। जिन्हें केवल दूसरों के दोष ही दिखाई देते हैं वे तो इसे अराजकता का इतिहास कहेंगे। उनके लिये हमलोग गुणग्राही सज्जन सलिवन का लिखा हुआ थोड़ा सा उदाहरण यहां उद्धृत किए देते हैं।

"Pray do not give the enemy an advantage by speaking in unqualified terms of the bad Government of our predecessors. Considering the incessant wars and revolutions in which they had been engaged for a full century after the Moghul Empire broke up, it is quite a wonder that there was an[y] Government at all. Yet in the midst of incessa[nt] fighting the civil institutions were undisturbed a[nd] almost everywhere the country was flourishin[g]. Since our last good piece of work when we put dow[n] the Pindari ravages in 1818, we have held India w[ith] such an iron grasp that hardly a shot has been fire[d] in our territory. But what have we made of th[e] interval? The Government is more in debt a[nd] I doubt if the people are so rich. Pray draw larg[e]ly on your biographical stores as you go on. Giv[e] us Nana Furnavis and such like. What poor pig[]mies we are as Indian administrators, when com[]pared with natives of that stamp!"

कलकत्ते के प्रसिद्ध महाराष्ट्र ऐतिहासिक श्रीयुत बाबू सखाराम गणेश देउस्कर महाशय ने कलकत्ते के प्रसिद्ध बङ्गला मासिकपत्र "साहित्य" में इस लेख को लिखा था। उन्हींकी कृपापूरि[त] आज्ञा से मैंने सरस्वती के पाठकों के लिये यह ले[ख] अनुवादित किया है। इस उदारता के लिये मैं हृद[य] से उक्त बाबू साहब को धन्यवाद देता हूं और आशा करता हूं कि वे महाराष्ट्रजाति के इति[]हास या साहित्य के विषय में उक्त मासिकप[त्र] में जो जो लेख लिखे हैं उनके उलथा के लिये [] आज्ञा देंगे।

कार्तिकप्रसाद।

—–

विद्यावल्लभ की विद्वत्ता

हमने अनेक कवि देखे हैं; अनेक उपन्यासका[र] देखे हैं; अनेक सम्पादक देखे हैं; पर[न्तु] विद्यावल्लभ चतुर्वेदी उन सबसे विलक्षण; उन[का] विद्या-विलास अति प्रकाण्ड; उनका लेखन-कौश[ल] महा-आश्चर्यमय! खेद इस बात का है कि वे[द] चार ही हैं; यदि आठ होते तो चतुर्वेदी के स्था[न] में अष्टवेदी की पदवी विद्यावल्लभ जी के समा[ग]म से कृतार्थ हो जाती! उनकी प्रियतमा का ना[म] पिता के घर चाहे जो रहा हो, जबसे उसके कमल[] विनिन्दित-कर को विद्यावल्लभ ने अपने करतल[]

सहारा दिया, तब से उसका नाम हुआ सरस्वती। यह नाम यथार्थ भी हुआ, क्योंकि एक प्रतिष्ठित पाठशाला में कई महीने शिक्षा और दीक्षा पाकर सरस्वती बहुत कुछ स-रस-वती हो चुकी थी। सरस्वती के संगम से विद्यावल्लभ की विद्या को और भी अधिक उत्तेजना मिली; अभ्यास करते करते और लेखनी से अनवरत काम लेते लेते उनकी दृष्टि क्षीण होगई; पीठ पुल हो गई; और कभी कभी उन्हें त्रिभुज होने की भी आवश्यकता होने लगी। विद्यावल्लभ के कण्ठ को, भीतर बाहर सब कहीं, सरस्वती ने घेर लिया; इसलिये उनकी विद्वत्ता के विषय में विशेष कहने की कोई आवश्तकता नहीं; परन्तु आवश्यकता इस बात के कहने की है कि विद्यावल्लभ जी बहुत नहीं, कुछ थोड़े, सलज्ज-सभाव के थे; सङ्कोच उनको सताता था। इसी कारण, वे बहुधा अपने गृह-दुर्ग से बाहर न निकलते थे; इसी कारण, लौकिक बातों का ज्ञान भी उनको किञ्चित कम था; और, इसी कारण, बहुधा कम बोलना ही उनको अच्छा लगता था।

लोगों के सौभाग्य से यदि विद्यावल्लभ जी कभी बाहर निकलते, अथवा किसी सभा में पदार्पण करते, तो सहसा सबकी आंखों को अपनी ओर आकर्षित कर लेते। सब कोई उनको एक अनोखा जीव समझते। परन्तु इसमें हम उन लोगों को दोष भी नहीं दे सकते! कल्पना कीजिए कि विद्यावल्लभ जी से मिल कर किसी प्रतिष्ठित पुरुष ने प्रेम-पूर्वक यह कहा कि, "हम आपसे मिल कर अत्यन्त आनन्दित हुए। आपके सदृश विद्वानों का दर्शन बड़े पुण्य से होता है"। विद्यावल्लभ जी यदि उस बात का उत्तर न देकर अधोमुख हुए चुप बैठे रहें, तो उनके इस व्यवहार से क्या ध्वनि निकलेगी? यही, कि, "हमसे मिल कर आपका अत्यन्त आनन्दित होना भी संभव है; और बिना पुण्य के हमारा दर्शन न मिलना भी संभव है; परन्तु सोच हम यह रहे हैं कि, किस प्रकार हम मिथ्या कहें कि हमको भी आपसे मिलकर सातिशय आनन्द हुआ और पूर्वजन्म के पुण्यप्रभाव ही से हमको आपका दर्शन मिला"। फिर कहिए विद्यावल्लभ जी में अनोखेपन का आरोप करनेवालों को कोई कैसे दोष दे सकता है! अच्छा एक और उदाहरण लीजिए। कल्पना कीजिए कि राजा कुमुदानन्द वर्म्म बहादुरने विद्यावल्लभ जी की नायिका-नवरत्न नामक नवीन पुस्तक पर लुब्ध होकर उनको पुरस्कार देने के लिये बुलाया और एक मत्त-गजेन्द्र के गले में मुक्तामाला पहना कर, पीठ पर दुशाले बिछा कर और ऊपर से सोने की सन्दूक़ में कई मन रत्न लाद कर उसे विद्यावल्लभ जी को दान किया और विदा होते समय कहा, "आपने अपनी पुस्तक में जो प्रचण्ड पाण्डित्य प्रकट किया है उसके उपलक्ष में जो कुछ मैंने दिया उसका स्मरण करते ही मुझे लज्जा आती है। कहां आपकी त्रैलोक्य-विदित विद्वत्ता और कहां मेरा तुच्छ दान! सच तो यह है कि भगवती वाग्देवी पद्मासन छोड़कर इस समय आपही के कण्ठदेश में विराज रही हैं! आप धन्य हैं!" यह सब सुनकर विद्यावल्लभ जी चुप! जैसे वर्म्म बहादुर की बात का उत्तर ही न हो सकता हो!! जैसे जो कुछ विद्यावल्लभ जी से कहा गया सब अक्षरशः सत्य हो!!! इसी से कहते हैं कि हमारे चतुर्वेदी जी को यदि कोई विलक्षण जीव मानै तो उसका दोष ही क्या?

विद्यावल्लभ जी अपने मौनावलम्बन का कारण अपनी गृहिणी से यह बतलाते थे। वे कहते थे कि अपनी निन्दा और औरों की प्रशंसा उनके सामने करके मनुष्य उस कथन का प्रतिवाद कराने की इच्छा रखते हैं। अर्थात् अपनी निन्दा के मिष वे औरों से अपनी प्रशंसा कराना चाहते हैं और दूसरों की प्रशंसा करके उनके मुख से उनकी निन्दा सुनना चाहते हैं। इस प्रतारणा का कहीं ठिकाना है? यह धोखेबाज़ी क्या ऐसी वैसी है? यही समझ कर विद्यावल्लभ जी मौनरूपी भूषण को बड़ी दृढ़ता से ग्रहण करके अपने को धूर्त्त

माननेवाले आत्मनिन्दक और पर-प्रशंसक लेगों का मनोरथ विफल कर देते थे।

विद्यावल्लभ जी बाहर ते बहुत कम बोलते; परन्तु घर में सरस्वती के साथ शास्त्रार्थ में, उस बिचारी के धुर्रे उड़ा देने में कोई कसर नहीं करते थे। बात बात में उपमा; बात बात में दृष्टान्त; बात बात में प्रमाण! यहां तक कि दे ही चार मिनट में उस बिचारी के कहना पड़ता, "अच्छा अच्छा, मैं हारी; मुझे और काम है; अब मैं जाती हूं।" कहिए ऐसे और कितने पति हैं जिन्हें वाग्युद्ध में अपनी पत्नी के परास्त करने और उसीके मुख से पराजय स्वीकार कराने का सौभाग्य प्राप्त होता है? कहिए, कहिए, और कितने पतियों के यह शक्ति ईश्वर ने दी है?

सरस्वती के यह दृढ़ विश्वास था कि विद्या, बुद्धि और वक्तृता में उसके पति की समता करने वाला कोई नहीं। विद्यावल्लभ के अगाध पाण्डित्य का मन ही मन चिन्तन करके वह पुलकित हुआ करती। कभी कभी वह अपना विचार अपने पति के सम्मुख मुसकुरा कर प्रकाशित करने में भी कुण्ठित न होती। सरस्वती की बात सुनकर विद्यावल्लभ जी हँसते हँसते कहते—"एक ही ते तुम्हारे पति हैं; फिर तुम उसकी समता और किससे कर सकती?" यह सुनकर भैाहैां के कमान बनाती हुई और कटाक्षवाणों से विद्यावल्लभ के वेधती हुई वह वहां से चल देती।

सरस्वती के जहां सब सुख थे, तहां एक दुःख भी था। वह यह कि, उसके स्वामी की विद्या का विकास बाहर न होता था। विद्यावल्लभ जो कुछ लिखते थे उसे वे छपाते न थे। सरस्वती के लिये क्या यह सामान्य दुःख था? वह सरस्वती है न! कभी कभी विद्यावल्लभ के लेख वह स्वयं पढ़ती; परन्तु बहुधा पति के घर ही पर रहने के कारण उसे अपने नेत्रों से विशेष काम लेने की आवश्यकता न पड़ती; विद्यावल्लभ ही अपने लेख उसे सुनाया करते। जितना ही अधिक वह उन लेखों के न समझती, उतना ही अधिक उसे आश्चर्य होता; उतना ही अधिक वह स्वामी के पाण्डित्य की प्रशंसा करती; और उतना ही अधिक उसे खेद भी होता। ऐसी विशाल विद्वत्ता से भरे हुए लेख बिना छपे पड़े रहें! सरस्वती सूर्य पुराण पढ़ी थी; रामयण पढ़ी थी और सुख सागर भी पढ़ी थी! परन्तु ये सब पुस्तकें बिना प्रयास सहज ही उसकी समझ में आजातीं; उसी को समझ में क्या, जिनको अक्षर का भी ज्ञान नहीं वे भी सुन कर समझ लेते; परन्तु अपनी पुस्तकें को आदि से लेकर अन्त तक महादुर्बोध और महा दुरूह बनाने की शक्ति स्वामी के छोड़ कर और किसी में सरस्वती ने न देखी! सरस्वती मन ही मन यह कहती, कि जिस समय ये सब पुस्तकें छपकर प्रकाशित होंगी और बड़े बड़े सम्पादक और ग्रन्थकारों के इनका एक अक्षर भी न समझ पड़ेगा, उस समय लोग विस्मित, चकित और अवाक् हे जावेंगे। इसी लिये स्वामी से वह सहस्र बार प्रार्थनापूर्वक कहती-"ये सब छपावो ये सब छपावो!" परन्तु स्वामी कोई साधारण व्यक्ति नहीं! गहन पण्डित!! वह कहते कि पुस्तकें के छपाकर प्रकाशित करने के विषय में भगवान मनु आज्ञा दे गए हैं—

'प्रवृत्तिरेषा भूतानां निवृत्तिस्तु महाफला'

अर्थात् पुस्तकें छपाना मनुष्यों का स्वभाव है; परन्तु न छपाने ही से महा फल होता है। बस यह सप्रमाण उत्तर देकर विद्यावल्लभ जी अपनी वल्लभा के निरुत्तर कर देते।

हमारे विद्यावल्लभ चतुर्वेदी के चार कन्याएं थीं। कन्यायें नहीं, उन के चारों वेदों की अधिष्ठात्री देवियां कहनी चाहिए। इन कन्याओं के देखकर सरस्वती का चित्त सविशेष सन्तप्त होता; वह मन ही मन कहती कि, "यह मेरा ही अपराध है। मैंने गर्भ धारण किया; अतएव, यह मेरी ही अक्षमता का चिन्ह है! ऐसे प्रतिभाशाली, ऐसे प्रकाण्ड पण्डित, ऐसे उद्दण्ड लेखक को ऐसी अयोग्य स्त्री! जो स्वामी

बात की बात मे ऐसे ऐसे दुरूह ग्रन्थों की रचना कर सकता है, उसकी गृहिणी के गर्भ में कन्या छोड़ दूसरी सन्तति नहीं ! स्त्री के पक्ष में इससे अधिक लज्जा की बात ग्रैार क्या हो सकती है ? इससे अधिक अपटुता का परिचय भी ग्रैार क्या हो सकता है ?"

विद्यावल्लभ बहुत दिन तक सुख से कालयापन करते रहे। उनको कन्याएं भी चन्द्रकला के समान बढ़ती रहीं; यहां तक कि दो चार वर्ष में ज्येष्ठ कन्या पिता के कन्धे तक पहुँच गई। इस समय विद्यावल्लभ की निश्चिन्तता शिथिल हुई। जब उन्होंने सोचा कि एक का नहीं किन्तु क्रम क्रम से चार कन्याओं का विवाह करना होगा ग्रैार प्रत्येक विवाह में कम से कम ५०० रुपए अवश्य ही लगेंगे, तब विद्यावल्लभ जी का कलेजा दहल उठा। स्वामी को इस प्रकार सचिन्त ग्रैार व्यग्र देख कर सरस्वती उस मानसिक व्यथा का कारण समझ गई। सरस्वती ही ठहरी ! उसने कहा "यदि तुम थोड़ा भी मन लगाओ तो सब कुछ हो जावै; किसी वस्तु की कमी न रहै।" विद्यावल्लभ कुछ व्यग्र हो कर बोले "सचमुच क्या सब कुछ हो सकता है ? अच्छा बतलाओ तो क्या करना चाहिए"? सरस्वती ने निरुद्विग्न ग्रैार निःसंशय भाव से उत्तर दिया "बतलाऊं क्या ? बनारस जाओ; अपनी पुस्तकें छपवावो; सब कहीं तुम्हारा नाम हो; फिर देखें, रुपया स्वयमेव चल कर आता है या नहीं"! सरस्वती के ऐसे आश्वासन वाक्य सुन कर विद्यावल्लभ को बहुत कुछ धैर्य हुआ ! उनको विश्वास हो गया कि सरस्वती का उपदेश स्वीकार करने से कन्यारूपी उग्र ऋण से वे सहज ही मुक्त हो सकेंगे।

विद्यावल्लभ कभी घर से बाहर नहीं हुए; इस लिये बनारस जाने का मुहूर्त जब निकट आया, तब बड़ा गड़बड़ उपस्थित हुआ। निरुपाय, निःसहाय ग्रैार सयत्न-पालित स्वामी को अकेला विदेश भेजने में सरस्वती समर्थ न हुई। यदि वह अकेला भेजती तो स्वामी को कैान खिलाता पिलाता ? कैान कपड़े लत्ते पहनाता ? ग्रैार कैान नित्य नैमित्तिक कर्त्तव्यों का स्मरण कराकर संसार के सैकड़ों उपद्रवों से उसकी रक्षा करता ? यदि वह स्वयं स्वामी के साथ जाना चाहती तो वह भी न हो सकता था। एक अपरिचित नगर में चार कन्याओं को लिए हुए स्त्री को साथ ले जाने में लोक-प्रवीण स्वामी को भय लगता था ! सरस्वती का भाई बंबई के एक प्रसिद्ध छापेखाने में प्रूफशोधक था; यदि स्वामी को वह वहां भेजती तो सब प्रकार की सुकरता थी; परन्तु वहां न भेजने का एक कारण था। सरस्वती ने अपने भाई से, ग्रैार जब वह पाठशाला में थी तब अपनी अध्यापिका से भी, सुन रक्खा था कि बनारस की पुस्तकों की लोगों को बड़ी चाह रहती है; चाहे वे कैाड़ी काम की न हों, परन्तु विज्ञापनों पर लुब्ध होकर मनुष्य उन्हें मँगाते अवश्य हैं। इसी लिये वहां के पुस्तक बेचनेवाले थोड़े ही काल में जगतसेठ हो जाते हैं ग्रैार उनके तोंद कोल्हू के नितम्ब की तुलना करने लगते हैं। इन्हीं कारणों से अनेक असुविधाएं होने पर भी सरस्वती ने स्वामी को बनरस ही भेजना निश्चय किया। स्वयं साथ न जासकने के कारण सरस्वती ने गाँव के देवदत्त नामक एक विशेष चतुर मनुष्य को अपने पद पर नियुक्त किया ग्रैार स्वामी के खाने पीने, पहनने ओढ़ने, लिखने पढ़ने, ग्रैार सोने जागने के विषय में सहस्र उपदेश देकर ग्रैार यह सिखलाकर कि कैान काम किस समय करना होगा, उसने उसे स्वामी के साथ बनारस भेज दिया। उधर स्वामी ने प्रस्थान किया; इधर सरस्वती पछाड़ खाकर पृथ्वी पर गिरी ग्रैार निरर्गल अश्रुधारा बहाने लगी।

विद्यावल्लभ जी बनारस पहुंचे ग्रैार बहुत ही सस्ता, बहुत ही उत्तम ग्रैार बहुत ही शीघ्र काम करनेवाले "हरिहरप्रसाद" छापेख़ाने के स्वामी से मिले। छापेख़ाने के ढूंढने ग्रैार उसके स्वामी

से मिलाप कराने में विद्यावल्लभ के चतुर साथी ने बड़ी सहायता की; यदि वह न होता तो ऐसा अच्छा छापाख़ाना ढूंढ निकालना विद्यावल्लभ के लिये नितान्त असम्भव था। थोड़े ही दिनों में विद्यावल्लभ जी ने "मीमांसा-सूक्ति-मुक्तावली" नामक ग्रन्थ प्रकाशित किया और "हरिहर प्रसाद" जी के प्रसाद के परिवर्तन में सरस्वती के वस्त्राभरण गिरवी रखकर जो द्रव्य मिला था वह प्रायः सभी चला गया। गया तो गया; परन्तु "मीमांसा-सूक्ति-मुक्तावली" छप तो गई! बेचने के लिये जितनी दुकानें थीं वहां, और समालोचना के लिये जितने छोटे बड़े समाचारपत्र इस देश में थे, उनके सम्पादकों के पास, "मीमांसा सूक्ति-मुक्तावली" भेजी गई। विद्यावल्लभ ने एक प्रति रजिस्टरी करके अपनी गृहिणी को भेज दी; डर था, कि कहीं डाकख़ानेवाले बीच ही में उसे न खा जावें; इस लिये रजिस्टरी की गई।

जिस समय "मीमांसा-सूक्ति-मुक्तावली" सरस्वती को मिली और उसके ऊपर उसने अपने स्वामी का नाम छपा हुआ देखा, उस समय उसे जो आनन्द हुआ वह वर्णनातीत है। उस दिन सरस्वती ने गांव की सारी स्त्रियों को मिष्टान्न खाने के लिये निमन्त्रण किया और जहां पर स्त्रियों के बैठने की योजना थी वहीं वह पुस्तक फेंक रक्खी। सब स्त्रियां आकर उच्चस्वर से कहने लगीं "अरे यह किताब यहां किसने डाल रक्खी है; इसे उठा कर ताक में रखदो"। यह सुन कर सरस्वती ने अपनी बड़ी बेटी माधवी से कहा "माधवी! बाबा की पुस्तक को इस प्रकार पड़ी देख क्यों नहीं उसे उठाती?" यह कह कर सरस्वती ने उसे उठा कर पास के ताक पर रख दिया; परन्तु थोड़ी देर में उस ताक से कुछ लेने के बहाने फिर उसने उसे नीचे गिरा दिया। ताक के नीचे ही माधवी बैठी थी; उसने पुस्तक उठा ली। इस पर फिर सरस्वती ने कहा "माधवी! लजाती क्यों है? पढ़ने को जी चाहता हो तो पढ़ती क्यों नहीं? तेरे बाबा ही की बनाई यह पुस्तक है न; फि[र] लाज किस बात की?" परन्तु माधवी की श्र[द्धा] उस पुस्तक पर किञ्चिन्मात्र भी न थी; इस लिये वह बड़ी निर्दयता से उसके पन्ने इधर उध[र] उलटने लगी। यह देख सरस्वती ने निर्भत्सना-पूर्वक उससे कहा "माधवी! बाबा की पुस्तक इस प्रकार नष्ट करने के लिये नहीं हैं; उठ, उसे सन्दूक में रख आ"। हम सत्य कहते हैं, यदि "मीमांसा-सूक्ति-मुक्तावली" में कुछ भी चेतन[ता] होती तो उस दिन की नोंच खसोट में अवश्यमे[व] उसका प्राणान्त परिच्छेद हो जाता।

एक एक समाचार पत्र में "मीमांसा-सूक्ति-मुक्तावली" की समालोचना निकलने लगी। सरस्वती ने जो कल्पना की थी वह प्रायः स[त्य] निकली। ग्रन्थ का एक अक्षर भी जिनकी सम[झ] में नहीं आया, ऐसे बृहस्पति के भी प्रतिद्वन्[द्वी] अनेक सम्पादक सहसा विह्वल हो उठे। एक ही स्वर से सब कहने लगे "ऐसा सारवान् ग्रन्थ आ[ज] तक नहीं प्रकाशित हुआ! ऐसे 'भारत मुखोज्ज्वलकारी' ग्रन्थकार को सहस्र सहस्र साधुवाद! ऐसा क्षमताशाली लेखक इस देश में दूसरा नहीं!!!

जो समालोचक कामतन्त्र और कोक[-] शास्त्र को छोड़ कर अन्य पुस्तकों को छूते सम[य] बिच्छू के डङ्क मारने की सी व्यथा अनुभव कर[ते] हैं, उन्होंने अत्यन्त उत्साह के साथ इस प्रकार आलोचना की, "करालिनी, कङ्कालिनी, मोहिनी मायाविनी और कुमुदकान्ता इत्यादि घृणि[त] उपन्यास और नाटकों के बदले बीच बीच में यदि इस ग्रन्थ के तुल्य दो एक ग्रन्थ निकलें तो हिन्[दी] साहित्य शीघ्रही उन्नति के ऊंचे आसन पर आसी[न] हो जावै"! जिस सम्पादक ने मीमांसा का क[भी] नाम तक नहीं सुना था, केवल उसीने यह लिख[ा] कि "विद्यावल्लभ जी से सब कहीं हम सहमत नहीं हैं, तथापि मुख्य मुख्य बातों में हमारा भी वही मत है जो उनका है"। जो पुस्तक खोलकर

भूमिका पढ़ना भी घोर पाप समझते हैं, उन्होंने इतना ही लिख दिया कि, "काग़ज़ और छपाई उत्तम है; मूल्य मालूम नहीं; 'स्थानाभाव' से अधिक नहीं लिख सकते; पूरी समालोचना 'धारान्तर' में करेंगे"। किसी किसी महा सम्पादक ने (परन्तु ऐसे एक ही दो होंगे) छपाई की प्रशंसा और मूल्य की अधिकता सूचित करके 'शेषं अग्रे' लिख विद्यावल्लभ के ऋण से अपनी मुक्तता की।

देश भर में, जहां जहां पुस्तकालय और सरस्वती-भवन थे, अथवा न थे, उनके देश-भक्त मंत्रियों ने रुपए के बदले रुपए के चिन्ह से चिन्हित पत्र भेज भेज कर विद्यावल्लभ से मीमांसा-सूक्ति-मुक्तावली की भिक्षा मांगी। उन्होंने लिखा आपके इस 'चिन्ताशील' ग्रन्थ ने हिन्दी साहित्य का एक बहुत बड़ा अभाव दूर कर दिया। विद्यावल्लभ 'चिन्ताशील' का अर्थ तो न समझे; परन्तु उन्होंने परम पुलकित होकर गांठ का पैसा डाक महसूल में खर्च करके, प्रत्येक पुस्तकालय को मीमांसा-सूक्ति-मुक्तावली भेज दी।

इस प्रकार स्तुति-वाक्यों की वर्षा होते होते जिस समय विद्यावल्लभ का सर्वाङ्ग उत्फुल्ल हो उठा, उसी समय उनको सरस्वती का पत्र मिला। गृहिणी ने उसमें लिखा था कि पञ्चम सन्तान की सम्भावना बहुत ही निकट आ पहुंची है। यह सम्वाद सुन कर विद्यावल्लभ को शीघ्र ही घर लौट जाना आवश्यक हुआ। इस लिये चतुर लेखक को साथ लेकर, धन संग्रह करने के अभिप्राय से, वे पुस्तक बेचनेवालों की दूकानों की ओर चले।

जिस दूकानवाले के पास विद्यावल्लभ गए, उसीने उन्हें सूखा उत्तर दिया। सबने एक वाक्य हो कर कहा कि उनकी एक भी पुस्तक नहीं बिकी। केवल एक ने कहा कि, बाहर से किसीने "मीमांसा-सूक्ति-मुक्तावली" की एक प्रति वैल्यू पेएबल द्वारा मङ्गाई थी और वह उसे भेजी भी गई थी; परन्तु मङ्गानेवाले ने पैकेट लिया ही नहीं; अतः वह लौट आया और डाकमहसूल तथा मनीआर्डर-कमीशन दूकानवाले को उलटा घर से देना पड़ा। इसलिये क्रोध में आकर, उस पुस्तक बेचनेवाले ने विद्यावल्लभ को सारी पुस्तकें लौटा दीं। उसकी देखा देखी और दूकानवालों ने भी उसीका अनुकरण किया। ग्रन्थकार ने निरुपाय होकर बाज़ार से लौट आने पर इस विषय में बहुत कुछ विचार किया; परन्तु कुछ भी उनकी समझ में न आया। जिस ग्रन्थ की प्रसंशा से आकाश और पाताल एक होगया, उस की यह दशा! अपने 'चिन्ताशील' और 'सारवान्' ग्रन्थ के विषय में जितनी ही उन्होंने चिन्ता की, उतनी ही अधिक उद्विग्नता उनको होने लगी। अन्त में जो दो तीन रुपए पास अवशिष्ट थे, उन्हींको लेकर सरस्वती के भोलानाथ स्वामी ने भोलानाथ की पुरी से गृहाभिमुख प्रस्थान किया।

घर आकर विद्यावल्लभ जी ने गृहिणी के सम्मुख बड़े आडम्बर के साथ अपना हर्ष प्रकाशित किया। सरस्वती सहास्यमुख होकर शुभ सम्वाद सुनने की प्रतीक्षा करने लगी। पत्नी को परम प्रसन्न देख विद्यावल्लभ ने "पश्चिमोत्तर-समाचार" की एक प्रति उसके गोद में फेंक दी। उसे पढ़कर मनही मन सरस्वती ने सम्पादक के अक्षय धन पुत्र की कामना की और उसकी लेखनी के मुख की मानसिक अक्षत, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्य द्वारा सप्रेम पूजा की। "पश्चिमोत्तर-समाचार" के सम्पादक की लेखनी की इस प्रकार मानसिक पूजा समाप्त करके सरस्वती ने फिर स्वामी के मुख की ओर सतृष्ण नेत्रों से देखा। तब स्वामी ने "संसार जीवन" लाकर सामने रख दिया। उसे पढ़कर आनन्द से विह्वल हुई सरस्वती ने आशा-पूर्ण नयनों से और भी स्वामी की ओर अवलोकन किया। तब विद्यावल्लभ ने 'जगन्मित्र' का एक अङ्क झोले से बाहर निकाला। उसके अनन्तर ? उसके अनन्तर "रुचिर-दर्शन"। उसके अनन्तर ? उसके अनन्तर "साहित्य-सेवक"। उसके अनन्तर "व्यास-प्रकाश"।

उसके अनन्तर "समालोचना-शिरोमणि"। उसके अनन्तर "ब्रह्म-विद्या-विलास"। उसके अनन्तर "तारक", "प्रचारक", "सुधारक", "पञ्चानन," "सिंहानन," "तरङ्ग-भङ्ग," "अनन्तरंग," "सहचरी," "पीयूष-मञ्जरी," "अमृतवती," "त्रिलोक-गज़ट," "पाताल-पताका" "नागरीसैाभाग्य-सैारभ", "भारत," "प्रवुद्ध-भारत," "सुप्त भारत," "विश्ववासी," "कविता-विलासी," "पुराणपंच," "विश्वेश्वर-समाचार"। हंसते हंसते गृहिणी के आनन्दाश्रुओं की झड़ी लग गई।

आंखों को अंचल से पोंछकर सरस्वती ने यशोराशि से उज्वल स्वामी के मुख की ओर और एक बार देखा। स्वामी ने कहा, "अभी मेरे पास और अनेक समाचारपत्र तथा पत्रिकाएं हैं!" सरस्वती ने कहा "उनको फिर देखूंगी; इस समय, यह बतलाओ कि और क्या समाचार है?" विद्यावल्लभ ने कहा "बनारस के कलेक्टर साहब ने "मीमांसा-सूक्ति-मुक्तावली" की एक प्रति कलकत्ते और एक विलायत भेजी है"। यह सुन सरस्वती बोली "यह नहीं; लाए क्या, सो तो बतलाओ"। विद्यावल्लभ ने उत्तर दिया "समालोचकों को कुछ चिट्ठियां हैं।" इस पर सरस्वती ने साफ साफ पूछा "रुपए कितने लाए?" विद्यावल्लभ ने कहा "जो कुछ तुमने दिया था उसमें से दो रुपए पैाने पांच आने बचा लाया हूं; सो देवदत्त के पास हैं"।

सरस्वती ने जिस समय सब वृत्तान्त विस्तार-पूर्वक सुना, उस समय संसार की विश्वासपात्रता और साधुतासम्बन्धी उसका सारा सद्भाव उलट गया। उसने निश्चय किया कि दूकानवालों ने उसके स्वामी को अवश्यमेव ठग लिया और पुस्तक मोल लेनेवाले हिन्दी के सारे रसिकों ने षड्यन्त्र करके दूकानवालों को ठग लिया। सरस्वती के मन में यह भी भावना हुई कि जिस देवदत्त को उसने अपना प्रतिनिधि बनाकर भेजा, उसने भी पुस्तक बेचनेवालों से मिलकर स्वामी की नुक़्सान की! इन बातों का विचार करते करते उसे असह्य मनोवेदना होने लगी; जिससे अकाल ही में उसे प्रसूति की पीड़ा उत्पन्न हुई और वह सूतिकागार ही में इस वञ्चक जगत् को अपने रहने के योग्य न समझ कर सर्वदा के लिये छोड़ गई*।

महावीरप्रसाद द्विवेदी

मुन्शी गंगाप्रसाद वर्म्मा

आज सरस्वती के अंक में आल्हाद से विराजते हुए गम्भीरभावपूरित जिस दिव्य चित्र का आप दर्शन कर रहे हैं वह वास्तव में ऐसे ही सच्चरित्रसम्पन्न महानुभाव का दिव्य चित्र है जो सुराऽसुरवन्दित वीणा-पुस्तक-धारिणी भगवती वेद तथा विद्यामाता,

मुक्ताहार विहार सार सुबुधा अबुधा बुधा गोपिनी
स्वेतं चीर शरीर नीर गहिरा गैारी गिरा जोगिनी
वीनापानि सुवानि जानि दधिजा हंसा रसा आसनी
लंबोजा चिहुरारि भार जघना विध्ना घना नाशनी

आदि स्तुतिओं से संयुक्त, सरस्वती के ही अंक का लालित पालित लाल है और सदैव मनसा वाचा कर्मणा से उसी माता का आज्ञानुवर्ती होने के कारण वागीश का वात्सल्यभाजन है; अतएव उसीके अंक में रहने के योग्य होने से अपने समुचित ठैार में स्थापित है। सभ्य समाज के सभासदों में कोई बिरलाही जन होगा जो इस परोपकार-रत देशहितैषी के नाम को न जानता हो। परन्तु हां, यह सम्भव है कि हमारे नवयुवक विद्यार्थी मित्रों में बहुतेरे अभी ऐसे होंगे कि जिन्हें इस महानुभाव के दर्शन का सुअवसर न प्राप्त हुआ हो। अस्तु उन्हींकी विज्ञप्ति के हेतु आज हम इस महानुभाव के जीवनचरित्र के लिखने में तत्पर होते हैं। राजर्षि भर्तृहरि का मत है कि

---

* बाबू रवीन्द्रनाथ ठाकुर लिखित गल्पगुच्छ की छाया।

परिवर्तनशील संसार में नित्य प्रति ही प्राणी जन्म लेते और मरते रहते हैं। परन्तु वास्तव में जन्म लेना उसीका सफल है जिसके द्वारा स्वदेश और स्वजाति का हित हो, अन्यथा विधाता की सृष्टि के कलंक स्वार्थी लोगों से तो सृष्टि भरी ही रहती है। जिन महानुभाव का यह चित्र है उनका जन्म लखनऊ नगर के नजीराबाद में खत्री जाति के टंडन कुल में तारीख १३ सितम्बर, सन् १८६३, ईसवी में हुआ। आपके पूज्य पिता का नाम श्रीयुत लाला नारायणदास जी था। वंशपरम्परानुसार नामकरण संस्कार होते समय आपका नाम बाबू गंगाप्रसाद वर्मा पड़ा। आपके सम्बन्ध में "यथा नामः तथा गुणः" की किम्वदन्ती पूर्ण रूप से चरितार्थ हुई, और होती क्यों न! पतितपावनी त्रैतापहारिणी श्री गङ्गा के प्रसाद में तद्वत ही विशुद्धि-गुण यह कैसे सम्भव है कि न होते। "होनहार विरवान के होत चीकने पात" के सिद्धान्तानुसार आगामी देशहितैषी के लक्षण बालकपन ही से देख पड़ने लगे। आपके पूज्य पिता जी सीतापुर प्रान्तान्तर्गत एक राज्य के प्रबन्धकर्ता थे। इस कारण आपकी शिक्षा सीतापुर के गवर्नमेण्ट हाइ स्कूल में प्रारम्भ हुई और वहां से जब आप लखनऊ लौट कर घर पर आए, तब आपने केनिङ्ग कालिज में शिक्षा पाना आरम्भ किया। किन्तु आप इस दशा में स्कूलशिक्षा की अपेक्षा समाचारपत्रों के अध्ययन में अधिक चित्त लगाते थे। "अवध अख़बार", "हिन्दू पेट्रियट", तथा "आर्य दर्पण" ही सदैव आप की आंखों के सम्मुख रहते थे। उदरभरने वाले स्वार्थी लोगों की भांति आप उदरपोषण की युक्ति सिखानेहारी पुस्तकों के कीड़े न थे, किन्तु साधारण चित्त से अपना स्कूल का काम करते और देशहितसम्बन्धी चर्चाओं में विशेष उत्साह दिखाते थे। बाल्यावस्था से ही आपको धर्म के भी तत्वान्वेषण की चिन्ता रहती थी। अस्तु जब सन् १८७५ में श्रीमान् परिव्राटबर भारतहितैषी वेदोद्धारक श्रीस्वामी दयानन्द सरस्वती जी का आगमन लखनऊ में हुआ और उनके व्याख्यानों की धूम नगर में फैली, तभी हमारे मान्यवर बाबू गङ्गाप्रसाद जी भी अपनी हार्दिक धर्म-जिज्ञासा-वश उस महात्मा के पावन उपदेश सुनने को जा पधारे और अपनी हंसप्रकृति से उस परमहंस के उपदेश से दुग्ध पान कर वितंडाबाद रूपी नीर को छोड़ देशहितैषिता और सत्यानुराग का चित्र अपने बालचित पर उस प्रवीण चितेरे से खचित कराकर लौट आए और अपने विचार के परिपक्क करने में तत्पर ही थे कि दैवदुर्विपाकवश केवल २४ वर्ष की अवस्था में आपको समस्त गृहस्थी का दुसह भार सहन करना पड़ा, क्योंकि आपके पूज्य पिता जी का इस समय अनायास स्वर्गबास होगया था। किसी कवि ने सत्य कहा है कि चिन्ता चिता से भी बढ़ कर मनुष्य को दहन करनेहारी है। परन्तु वीर पुरुष अपने व्रत के निबाहने में चिता तथा चिन्ता किसी का ध्यान नहीं करते और न चिन्ताग्रस्त होने से अपने व्रत को छोड़ते हैं। किन्तु महानुभावता से अपने व्रत का जैसे हो सके प्रतिपालन ही करते हैं और क्यों न करें। मृगराज केशरी जो मदमत्त गज का मस्तक विदारनेहारा है, वह व्यथित दशा में भी घास नहीं खाता, किन्तु और भी उद्दण्डता से गजराज का मस्तक विदारता है। साहसी, गम्भीरआशय पुरुषों की भी दशा कुछ ऐसी ही है। वे चिन्ता-ग्रस्त होने पर कष्ट के समय अपने मन्तव्य पर और भी उद्दण्डता के साथ आरूढ़ होते हैं। हमारे लेख के नायक ने ऐसे ही समय में एक पत्र "हिन्दोस्थानी" नामक, जो इस समय आगरा देश तथा अवध में उर्दू के समाचारपत्रों में सर्व-साधारण के मन्तव्य का एकमात्र प्रतिनिधि कहे जाने योग्य है, उर्दू में प्रकाशित करना प्रारम्भ कर दिया। इसी बीच में भारतवर्ष के सौभाग्य-वश एक जातीय महासभा "नेशनेल कांग्रेस" का आन्दोलन सन् १८८५ में प्रारम्भ हुआ। उस समय अवध की राजधानी से सबसे प्रथम इस

जातीय महासभा में जो स्वदेश और स्वजाति-भक्त व्यक्ति सम्मिलित होने गया था, वह वही महापुरुष है जिसका चित्र पाठक महानुभाव आप आंखों के सम्मुख आज देख रहे हैं। कविवर बिहारी लालजी ने सज्जनों के विषय बहुत ठीक लिखा है—

"चटक न छांड़त घटतऊ सज्जन नेह गँभीर।
फीको परै न वर घटै रंगो चोल रंग चीर॥"

सावन के मल्लों की भांति बहुतेरे नेशनेल कांग्रेश के भक्त आत्मश्लाघावश देख पड़े। परन्तु परीक्षा की कसौटी पर कसने पर कितने लोग जातिभक्त निकले, वह भारतहितैषियों से छिपा नहीं है। कांग्रेस रूपी बालक ने तीन ही वर्ष की अवस्था में बावनावतारवत् अपना रूप विस्तार दिया। बहुतेरे अदूरदर्शी, स्वार्थी, लोगों के मुख से इस राजभक्त सभा पर आक्षेप होने लगे। राजविद्रोह का कलङ्क उसके सिर थोपा गया। उस समय के इस देश के लफटेनण्ट गवर्नर सर आकलेण्ड कालविन महोदय ने कांग्रेस की ओर अपनी अरुचि और अकृपा दिखा कांग्रेस के सिद्धान्तों में शङ्का और विरोध का सिगनेल दिया। फिर क्या था, हां में हां मिलाकर अपने कार्य सम्पादन करनेवालों की बन आई। सर आकलेण्ड कालविन के गण, मुसलमानों के पक्ष-पाती, अलीगढ़ के बूढ़े सैय्यद, लखनऊ के मुन्शी नवलकिशोर, बनारसी राजा शिवप्रसाद, और भूपाली मुन्शी इम्तियाज अली अपने चेलों में कांग्रेस के विरोध की डौंडी पीटने लगे। अवध के ताल्लुकदारों ने भी बुद्धिमता का मुकुट पहिर लेना ही उचित जान चटपट कांग्रेस के विरुद्ध राजा भिनगा की हां में हां मिलाना प्रारम्भ कर दिया। नगर नगर कांग्रेस के विपक्ष सभाएं और उपदेश होने लगे। कांग्रेस के पक्ष करनेहारों पर घुड़की, धमकी, डांट, फटकार के जनरव गढ़े जाने लगे। ऐसी दशा में साधारण पुरुष की कौन कहे, बड़ों बड़ों के व्रत डिगने लगे। परन्तु इतने पर भी तरुण बाबू गङ्गाप्रसाद जी अपने व्रत से न डिगे और "सत्यश्रमाभ्यां सकलार्थसिद्धिः" के आदेशानुसार "ह्वै है वहि जो राम रचि राखा" कह कर अपने कार्य में प्रवृत्त रहे। एक ओर मुन्शी नवलकिशोर जी तथा मुन्शी इम्तयाज़ अली सरीखे बिभवसम्पन्न लोग, राजा शिवप्रसाद तथा सर सैय्यद अहमद के संयोग से प्रजा को कांग्रेस के बिपक्ष में घुमा रहे थे। दूसरी ओर निस्सहाय, नव युवक बाबू गङ्गाप्रसाद जी कांग्रेस के विरोधरूपी अग्नि को अपने बाहुबल से बुझाकर प्रजा को कांग्रेस का प्रतिपक्षी बनाने का उद्योग कर रहे थे। यह द्वन्द्व बहुत दिनों तक सन् १८८८ ई० में रहा। अन्त में हमारे ब्रतवीर नायक ने अपने मित्रों तथा स्व-बासी श्रीमान् पण्डित अयोध्यानाथ जीकी, जिन्हें मूर्तिमान कांग्रेस के पन्थ का आदि आचार्य व अवतार भी कहा जावे तो भी अनुचित न होगा, सहायता से अवध में कांग्रेस की विजयपताका बांध दी और उसी दिन से इस देश की प्रजा के विचारों को निष्पक्ष तथा सरल भाव से गवर्न-मेण्ट तक पहुंचानेहारे प्रतिनिधि "एडवोकेट" नामक समाचारपत्र का आपके द्वारा जन्म हुआ और आप अवधदेशस्थित कांग्रेस की स्टैंडिंग कमेटी के सेक्रेटरी नियत हुए, जिस पद का कार्य आज पर्यन्त आप बड़ी ही योग्यता तथा प्रतिष्ठापूर्वक कर रहे हैं। हमारी उदार वृटिश गवर्नमेण्ट एक अपूर्व गुणग्राहक गवर्नमेण्ट है। उसकी न्यायतुला में पंसगे का नाम ही नहीं है। वह सदैव योग्य पुरुष की योग्यतानुसार उसे समीचीन प्रतिष्ठा प्रदान करने में तत्पर रहती है। यद्यपि उदरम्भरि लोगों ने बाबू गङ्गाप्रसाद जी के बिरुद्ध बहुत लोगों को भड़काया और कांग्रेसी विशेषण का प्रयोग उनके नाम के साथ कर, अपनी बुद्धि के विपर्यय-बश यह सोचा कि कदाचित् ऐसा करने से ये राजकीय मान के भागी न होंगे। परन्तु अन्त में नीर क्षीर का भेद हुआ ही हुआ। जिस समय प्रजा ने आपको म्यूनिसिपेल इलेक्शन में अपना प्रतिनिधि

सभासद चुना, उस समय गवर्नमेण्ट ने सहर्ष आप को यह पद देही दिया और सदैव म्युनिसिपेलिटी के कामों में आपकी सम्मति को बहुमूल्य जान वह उस पर ध्यान देती रही। इसी बीच लखनऊ में पानी की कल का प्रस्ताव प्रारम्भ हुआ। म्यूनिसिपेल कमेटी में दो दल हो गए। एक पानी की कल बनाए जाने का पक्षपाती, दूसरा उसका विरोधी। यद्यपि पक्षपाती दल के सहायक सब राजकर्मचारी थे और बहुतेरे अवैतनिक स्वतंत्र सभासद भी उसी प्रस्ताव के समर्थक थे; परन्तु बाबू गङ्गाप्रसाद जी ने निश्शङ्क हो अपने छोटे से मित्रदल के साथ उस प्रस्ताव से विरोध किया और वे प्रजा के विचार तथा म्यूनिसिपेलिटी की वास्तविक दशा को स्वच्छन्दता से गवर्नमेण्ट के कर्मचारियों पर प्रगट कर प्रजा की प्रीति के भागी हुए। सन् १८९९ में नेशनेल कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन के लिये अवधप्रान्त निश्चय हुआ। मदरास, बम्बई, बङ्गाल, पञ्जाब, मध्यप्रदेश, बरार, पश्चिमोत्तर देश, सभी कांग्रेससम्बन्ध में अपना उत्साह दिखा अवधप्रान्तीय प्रतिनिधियों को स्वागत कर चुके थे और एक बार ही नहीं कई एक बार। अब अवध को सब बार का उत्साह एक ही बार में दिखाना था। परन्तु यहां उत्साह कैसा? यहां तो कांग्रेस के बिपक्षियों का दल था कोट था। ऐण्टी-कांग्रेस ने अपनी तरुणाई का बल यहां ही तो दिखाया था। तालुकेदारों का दल, कांग्रेस के नाम से कानों पर हाथ रक्खे हुए, खैरख्वाही का खिलअत पहिरनेहारे, अंगरेज़ी जानने पर भी ऐण्टी, ऐण्टी, ऐण्टी का लटका अपने चूरन की बहंगी के साथ बोलनेहारे,—इस पर भी दैव की मार कि अकाल का दुःख, अन्न की कमी, प्लेग के भय से स्थान नियत किए जाने में राजकर्मचारियों का असमंजस, पुराने मित्रों में से भरोसे के ही बहुतेरे लोगों की अकृपा,—संक्षेप यह कि "दुर्बलो दैवघातकः" की दशा हो रही थी। ईश्वर भला करे हमारी प्रजा के प्यारे सर एण्टनी मेकडानेल महोदय का, जो ऐसी दशा में केवल एक निर्बल को बलराम जान पड़ते थे। ऐसे पीन साधनों के रहते हुए भी इस प्रान्त की कांग्रेस की स्वागतकारिणी सभा ने प्रबन्ध का समस्त भार बाबू गङ्गाप्रसाद जी वर्मा पर डाल उन्हें सेक्रेटरी नियत किया। पाठको! विचारिए यह भार कैसा कठिन भार था। दो दो समाचार पत्रों का सम्पादन करना और अपने निज के महत कार्यभार के रहते हुए इस गुरुतर भार का सम्हालना बाबू गङ्गाप्रसाद जी ही का कार्य था और जिस उत्तमता से आपने इस कार्य को सम्पादन कर सर्वसाधारण की दृष्टि में प्रतिष्ठा प्राप्त की है, उसका उल्लेख करना केवल पृष्टपेषण मात्र है। एक बात यहां पर और कहने योग्य है कि जब आप कांग्रेस के इस महान कार्य को सन् १८९९ ई० में सम्पादन कर रहे थे, उसीके साथ ही साथ आप सर्वसाधारण के उपकारार्थ निज व्यय से एक रीडिंग लाइब्रेरी बनवा रहे थे और कांग्रेस के अधिवेशन के हो चुकने पर आपने पंद्रहवीं कांग्रेस के सुप्रसिद्ध जगद्विख्यात सभापति श्रीयुत बाबू रमेशचन्द्र दत्त के सुयशसम्पन्न करकमलों से उस लाइब्रेरी को खुलवाया था। लखनऊ के नगर में बहुधा लोगों को इस लाइब्रेरी द्वारा समाचारपत्रों के पढ़ने का बहुत ही सुबीता हो गया है। आपकी धर्मरुचि विशेषतः सन्तमत की ओर है और साधुसंगत आप विशेष कर रखते हैं। स्वदेशी वस्तुओं के प्रचार तथा व्यवहार में आप सदैव तत्पर रहते हैं और अहर्निशि उनके प्रचार की युक्ति सोचा करते हैं। वर्तमान समय में आपने विशेष उद्योग कर लखनऊ में बर्तन बनाने को एक कल का कारखाना मेटल वर्क्स नामक अपने मित्रों की सहायता से स्थापित किया है और ऐसी आशा की जाती है कि यह कारखाना बहुत ही शीघ्र उन्नति कर दूसरे लोगों के लिये उदाहरणस्वरूप होगा। हमारे पाठक महाशयों पर आपकी उदारता इसीसे प्रगट हो जावेगी कि

यद्यपि आपके दो समाचारपत्रों में से एक पत्र हिन्दोस्थानी नामक उर्दू का पत्र है और उर्दू पढ़नेहारी प्रजा में बहुत प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखा जाता है, तथापि जिस समय इस देश में अदालतों के अन्तर्गत नागरी अक्षरों के प्रवेश किए जाने का आन्दोलन प्रारम्भ हुआ, उस समय आपने निस्पक्षता पूर्वक उस आन्दोलन में अपनी सहानुभूति प्रगट की और जब श्रीमान् सर एण्टनी मेकडानल महोदय के प्रस्थान के समय में उन्हें धन्यवाद प्रदान करने के लिये श्रीमान द्विजराज महाराज आनरेबल सर प्रतापनारायण सिंह जू देव बहादुर, के० सी० आइ० ई०, अवधनरेश के सभापतित्व में एक डेप्युटेशन नागरीहितैषियों की ओर से गया था, उस डेप्युटेशन के आप एक प्रतिष्ठित सभ्य थे। सत्य तो यों है कि आपके चरित्र ऐसे उदाहरणीय हैं कि जो नवयुवक उनका अब अनुकरण करते हैं, वे लाभ के भागी अवश्यमेव होते हैं। आप व्यर्थ के कामों से सदैव पृथक रहते हैं और संक्षेप यह कि अपनी दृढ़ता, साहस, विशाल बुद्धि, गाम्भीर्य तथा सच्चरित्रों के कारण इस प्रान्त के छोटे और बड़े सब प्रकार के लोगों के विश्वासपात्र हो रहे हैं। विद्यार्थियों के एकमात्र हितैषी और सदुपदेष्टा, प्रजा के स्वतन्त्र विचारों के प्रगट करनेहारे प्रतिनिधि और राजनैतिक विषयों के पारदर्शी तथा आन्दोलन करनेहारों के अग्रणी एक मात्र आपही हैं। हम ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि वह इन परोपकारी महानुभाव को चिरायु करें।

एक मित्र

"रासो" शब्द

हिन्दी भाषा का सबसे प्राचीन ग्रन्थ "पृथ्वीराज रासो" है। कुछ पढ़े लिखे महानुभाव उसी "रासो" शब्द पर अनेक प्रकार की युक्तियां लगाते हैं और वास्तव में यह बात अब तक स्पष्ट न हुई कि यह शब्द "रासा", "रासो" अथवा "रासौ" इन तीनों में से क्या है, इसका शुद्धरूप क्या है और यह किस भाषा का शब्द है और किस अर्थ में प्रयुक्त होता है। इन बातों का जान लेना आवश्यक है। अतएव हम पहिले इस विषय पर पांच महाशयों की सम्मति यहां पर उद्धृत करके तब अपना मत लिखेंगे।

पण्डित मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या जी जिन्होंने पृथ्वीराज रासो के एक खंड को छपवाया है, और जो वास्तव में इसके पूर्ण ज्ञाता हैं, लिखते हैं–हिन्दी "रासौ" शब्द संस्कृत "रास" अथवा "रासक" से है और संस्कृत भाषा में "रास" "शब्द, ध्वनि, क्रीड़ा, शृङ्खला, विलास, गर्ज्जन, नृत्य और कोलाहल आदि" के अर्थ और "रासक" "काव्य अथवा दृश्यकाव्यादि" के अर्थ पर प्रसिद्ध हैं। मालूम होता है कि ग्रन्थकार ने संस्कृत "भारत" शब्द के सदृश "रासौ" शब्द को भावार्थ से महाकाव्य के अर्थ में ग्रहण कर प्रयोग किया है। यह "रासौ" शब्द आज कल की ब्रजभाषा में भी अप्रचलित नहीं है, किन्तु अन्वेषण करने से वह काव्य के अर्थ के अतिरिक्त अन्य अनेक अर्थों में भी प्रयोग होता हुआ विद्वानो को दृष्ट आवेगा जैसे–"हमने चौदै के गदर को एक रासौ जोड़ा है–कल बहादुरसिंघ जी की बैठक में बंदर ने गदर कौ रासौ गायो हौ–फिर मैंने भरतपुर के राजा सूरजमल को रासौ गायो सो सब देखते ही रह गये–अजी ये कहा रासौ है–मैं तो कल्ल एक रासे में फंस गयौ यासूं तुमारे बहां नांय आय सक्यो–अजी रामगोपाल बड़ो दिवारिया है, वाके रासे में पड़ के रुपैया मत बिगाड़ दीजो–हमनै आज बिना रासौ निपटाय दीनौ है। देखौ साब! रासे के रासै रासौ है, बुरौ मत मानो।

डाक्टर जी. ए. ग्रियर्सन महोदय लिखते हैं "The word about which you ask me be spelt either Rásá or Rásau, the form

is the ordinary Hindí form, the latter comes from Braj. Probably रासो would be the correct Márwári form. The word means 'Chronicle.' Thus Rás-málá means 'the Garland of Chronicles.' It is probably derived from the Sanskrit रासक or रास, but there are some doubts as the word means a kind of theatrical performance (See the Sahitya Darpana) and not a historical work. Moreover, in old Márwári, the word is sometimes spelt रायसो, the origin of which (if it is not a mistake) is obscure. It is just possible that it is derived from राजादेश, just as आयसु is derived from आदेश।"

उदयपुर के पण्डित गैारीशंकर हरीचन्द ओझाजी, जो मेवाड़ ऐतिहासिक विभाग के अध्यक्ष हैं, लिखते हैं—मैं 'रासा' शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के 'रास' शब्द से होना मानता हूं। 'रास' शब्द का अर्थ 'विलास' भी होता है (शब्दकल्पद्रुम, चतुर्थ काण्ड, पृ० १५९) ग्रैार 'विलास' शब्द चरित, इतिहास आदि के अर्थ में प्रचलित है। जयविलास भीमविलास आदि ऐतिहासिक ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। ग्रैार प्राचीन गुजराती भाषा में कई राजाओं के इतिवृत्ति 'रास' नामसे प्रसिद्ध हैं (कुमारपालरास, श्रीपालरास आदि) कर्नल टाड के पीछे फार्ब्स साहिब ने भी 'रासमाला' नामक गुजरात का इतिहास लिखा है, जिसमें भी 'रास' शब्द चरित, इतिहास, वृत्तान्त आदि का सूचक है। कोई कोई विद्वान 'रासा' शब्द की उत्पति 'रहस्य' से होना अनुमान करते हैं; परन्तु 'रहस्य' का 'रासा' रूप किसी प्राकृत ग्रन्थ या लेख में मेरे देखने में नहीं आया। 'रहस्य' का प्राकृतरुप 'रहस्स' तो जहां तहां मिलता है। बि० स० १०२९ के बने हुए 'पाइयलच्छी' नामक प्राकृतकोश में 'रहस्य' का प्राकृतरुप 'रहस्स' (गुह्य के अर्थ में) ग्रैार 'रास' का 'रासा' (नृत्य के अर्थ में) दिया है। संमद्धो संघट्टी रासा हल्लीस ओखमं उचियं। गुज्झिं रहस्स मासा मणोरहो कोसयं चसयं ॥ २७१ ॥ गटिङ्गन् का छपा हुआ, पृष्ठ ५०॥ ऐसे ही 'गडउबहो' नामक प्राकृत ऐतिहासिक काव्य में तंबु सिरीण रहस्सं ग्रैार णिच्चधणदार रहस्स रक्खणों। रंभामजरी नाटिका में कई सराणं करकवरहस्सं ण कोवि बुज्झेदिं; ग्रैार महावंसो, अभिधानदीपिका आदि अनेक पाली ग्रन्थों में भी रहस्य का प्राकृतरुप 'रहस्स' लिखा देखा है। परन्तु रहस्य के स्थान में 'रासो' मेरे देखने में नहीं आया। ऐसे ही 'रासक' शब्द से 'रासा' की उत्पत्ति मानने वालों से भी मैं सहमत नहीं हूं, क्योंकि रासक एक प्रकार के नाटक—दृश्यकाव्य—का नाम है। परन्तु चरित्र या साधारण काव्य के अर्थ में उसका प्रयोग होना पाया नहीं जाता। 'रासैा' शब्द मेरी समझ में अशुद्ध है, हिन्दी में उसका शुद्धरूप 'रासा' लिखना चाहिए। प्राकृत ग्रैार राजंपुताने की भाषा में 'रासो' बोला जाता है, परन्तु 'रासैा' का प्रयोग तो वहां भी अज्ञात है। प्राकृत में पुलिङ्ग शब्दों के लिये प्रथमा के एकवचन का प्रत्यय 'ओ' है। अद्-न्तात् पुंसि प्रथमैकवचनस्य सोः स्थाने ओ स्यात्—(हृषीकेश का प्राकृतव्याकरण)। अत ओत्सोः॥५।१॥ अकारान्ताच्छकारपरस्य सोः स्थाने ओत्वं भवति॥ बच्छो। वसहो पुरिसो। वृथाः। वृषभः। पुरुषः। (वररुचि का प्राकृतप्रकाश) ग्रैार इस नियम के अनुसार प्राकृत में अकारान्त पुलिङ्ग के नाम ओकारान्त होते हैं (अणिलो, गन्धवहो, मारुओ, समीरो, पहंजणो, पवणो। विणयसुओ, खय-रांओ, तक्खो, पन्नथरिऊ, गरुलो॥ राया सिमुक सातवाहनो सिरिमतो। रायो च सिरि सात कनिनो। कुमारो सातवाहनो (नायाधार की गुफा के लेखों में, आर्कियालाजिकल सर्वे आफ वेस्टर्न इण्डिया, इन्दैार केव टेम्पल्स, पृष्ठ ६४) प्राकृत से निकली हुई गुजराती ग्रैार राजस्थानी भाषाओं में अकारान्त ग्रैार आकारान्त शब्द बहुधा ओकारान्त

बोले और लिखे जाते हैं (घोड़ो आयो, लड़को आयो, काको अजमेर गयो, रामो घरे गयो, आदि राजस्थानी भाषा में और घोड़ो लान्यौ, छोकरो आन्यो, आदि गुजराती भाषा में)। इस लिये राजपूताने की भाषा में और प्राकृत में 'रासो' लिखा जाता है। परन्तु उक्त भाषाओं के ओकारान्त शब्दों को हिन्दी में वैसे के वैसे बिना किसी विशेष कारण के नहीं लिख सकते। अतएव हिन्दी में रासा ही लिखना मेरी राय में ठीक जचता है। परन्तु "रासौ" तो सर्वथा अशुद्ध है। "रासा" शब्द का कई अर्थ में प्रयोग किया जाता है, परन्तु पुस्तकों के नामान्त में जो 'रासा' शब्द आता है (पृथ्वीराजरासा, रायमलरासा, हम्मीररासा आदि) वहां तो उसका अर्थ चरित, इतिहास आदि ही मानना पड़ता है"।

इस विषय पर जोधपुर के मुन्शी देवीप्रसाद जी लिखते हैं—रासे के मायने कथा के हैं। यह रुढ़ी शब्द है। एक वचन रासो और बहुवचन रासा है। मेवाड़ ढूढाड़ और मारवाड़ में झगड़े को भी रासा कहते हैं जैसे यदि कई आदमी झगड़ रहे हों या वाद विवाद कर रहे हों, तो तीसरा आदमी आ कर पूछेगा 'काँई रासो है'। लंबी चौड़ी वार्ता को भी रासो और रामायण कहते हैं। बकवाद को भी रामायण और रासा ढूढाड़ में बोलते हैं। "काँई रामायण है" क्या बकवाद है। यह एक महावरा है। ऐसे ही रासा भी इस विषय में बोला जाता है जैसे 'काँई रासो है'।

उदयपुर से पण्डित रामनारायण दूगड़ जी लिखते हैं—रासा या रासो शब्द रहस या रहस्य का प्राकृत रुप मालूम देता है, जिसका अर्थ गुप्तबात या भेद का है। जैसे कि शिवरहस्य, देवीरहस्य आदि ग्रन्थों के नाम हैं, वैसे ही शुद्धनाम पृथ्वीराज रहस्य का प्राकृत में पृथ्वीराज रास, रासा या रासो हो गया। रहस्य के अतिरिक्त रास शब्द से भी रासा या रासो रुप होना सम्भव है, परन्तु ग्रन्थ-चरित्र या कथा के अर्थ से उसका कुछ सम्बन्ध नहीं पाया जाता। अतः रहस्य ही का रासा शब्द बना हो ऐसा मेरा ख्याल है। "रासो" यह रूप इस शब्द का कैसे हुआ सो कुछ ध्यान में नहीं आता, क्योंकि प्राकृत में औकारान्त शब्द देखे नहीं गए।

ऊपर जो जो सम्मतियां उद्धृत की गई हैं उनसे स्पष्ट है कि यह शब्द 'रासौ' नहीं है। इसका शुद्धरुप 'रासो' है, जिसका अबतक राजपुताने में प्रचार है। कुछ लोगों की यह सम्मति है कि हिन्दी में इसका रुप 'रासा' होना चाहिए। पर इसका कोई युक्तिसंगत कारण नहीं देख पड़ता, जिससे रासो शब्द का शुद्ध बदल कर एक नया रूप बना दिया जाय। मेरी सम्मति है कि यह शब्द 'रासो' है और इसको इसी प्रकार से लिखना उचित है। मुंशी देवीप्रसाद जी, इसका प्रयोग 'रासो' एक बचन में और 'रासा' बहुबचन में बताते हैं, यह स्पष्ट समझ में नहीं आता और न वे कोई उदाहरण दिखा कर इस भेद को स्पष्ट करते हैं। 'रासो' का अर्थ कुछ लोग झगड़ा लड़ाई बताते हैं, जैसे पृथ्वीराज रासो, हम्मीर रासो, खुमान रासो, इत्यादि। परन्तु अब तक ऐसे भी ग्रन्थ वर्तमान हैं जिनमें सन्त साधु महात्माओं के जीवनचरित दिए हैं और उनमें भी रासो शब्द प्रयुक्त है। जैसे शील रासो, अढ़ाई को रासो, इत्यादि। अतएव 'रासो' शब्द के अर्थ चरित वा वृत्तान्त के हैं और यह 'रास' शब्द से निकला है।

———

भाग ३] अप्रैल १९०२ ई० [संख्या ४

विविध वार्ता

हमारे पाठकों में से जो अंग्रेज़ी समाचारपत्र निरन्तर पढ़ते होंगे, उन्होंने युनिवर्सिटी कमिशन का वृत्तान्त और कार्यविवरण पढ़ा होगा। उन्हें इस बात का ज्ञान हुआ होगा कि भारतवर्ष की शिक्षाप्रणाली में कितना भारी परिवर्तन होने वाला है और इसी विषय के निर्णय पर भारतवर्ष की भविष्यत् उन्नति स्थिर है। परन्तु हमें दुःख है कि हिन्दी समाचारपत्रों ने इस विषय पर अपनी दृष्टि न दी और जैसा उचित था वैसा आन्दोलत नहीं मचाया। अस्तु हमें विश्वास है कि यदि वे अभी मौन साधन किए बैठे हैं तो जिस समय इस विषय का बिल कौंसिल में उपस्थित किया जायगा उस समय वे पूर्ण कटिबद्ध होकर इस बात का ध्यान रक्खेंगे कि कोई अनुचित बात न होने पावे। किसी देश की उन्नति वा अवनति उसके शिक्षित लोगों पर निर्भर रहती है। क्योंकि वेही लोग सब बातों को समझ कर अपने देशवासियों को सम्मति देते और उन्हें कार्य करने के लिये उद्यत करते हैं। यदि शिक्षा में ऐसा कुछ परिवर्तन हुआ कि जिससे उच्चशिक्षा के प्रचार में बाधा पड़े तो बस, यहीं से देश की उन्नति का इति है। इससे हम अपने सहयोगियों से प्रार्थना करते हैं कि वे इस विषय पर अपना पूरा ध्यान रक्खें और उपयुक्त अवसर को अपने हाथ से न जाने दें।

* * *

युनिवर्सिटी कमिशन में किन किन बातों पर विचार किया जायगा इस विषय की सूचना के लिये हम अन्यत्र उस सम्मति का अनुवाद पाठकों के अर्पण करते हैं जो काशी नागरीप्रचारिणी सभा के प्रतिनिधि तथा उपसभापति बाबू गोविन्ददास ने काशी में २ अप्रैल को कमिशन के सम्मुख सभा की ओर से उपस्थित की थी। हम सभा को धन्यवाद और बधाई देते हैं कि उसने उपयुक्त अवसर पर अपने कर्तव्य का पालन

किया और अपनी स्थिति को सफल किया। हम सभा की सम्मति से पूर्णतया सहमत हैं और हमें आनन्द है कि वह निष्पक्षभाव से अपनी उचित सम्मति को कमिशन के सम्मुख उपस्थित कर यश और धन्यवाद की पात्र बनी। हिन्दी के पाठकों को इस पर विचार करना चाहिए और जहां तक हो सके ऐसे कार्यों में सभा की सहायता करनी चाहिए।

* * *

हम गत कई संख्याओं में पृथ्वीराज रासो के विषय में लिख चुके हैं। आज हमें इस बात के प्रकाशित करते बड़ा आनन्द होता है कि अब इसके छपने का पूरा और उपयुक्त प्रवन्ध होगया है। हिन्दी के पाठकों को स्मरण होगा कि सन् १८८७ ई० में हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक पण्डित मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या जी ने इस ग्रन्थ का छपवाना आरम्भ किया था। परन्तु एक ही पर्व छपकर सहायता के अभाव से वह कार्य रुक गया था। अब पड्या जी ने प्रथम पर्व की कुछ प्रतियां काशी नागरीप्रचारिणी सभा को अर्पित की हैं और भविष्यत् में कतिपय सभासदों की सहायता से सम्पूर्ण ग्रन्थ के सम्पादित कर देने का भार अपने ऊपर लिया है। हमें इस बात से विशेष आनन्द हुआ कि सभा द्वारा इस ग्रन्थ का दूसरा पर्व भी शीघ्रही प्रकाशित किया जायगा और भविष्यत् में इसके सम्पादन और प्रकाशन का कार्य बराबर चला जायगा। यह ग्रन्थ हिन्दी का गौरव है और इसका अब तक अप्रकाशित पड़ा रहना हिन्दीहितैषियों के लिये बड़ी लज्जा की बात थी; परन्तु आशा है कि हमलोगों को लज्जित होने का अब समय न रहेगा। उक्त पंड्या जी की उदारता के लिये हम नितान्त अनुगृहीत हैं और साथही हम सभा को भी हृदय से प्रशंसा करते हैं कि उसने बड़े दत्तचित्त होकर इस कार्य का भार अपने हाथ में लिया है। हिन्दी के प्रेमियों और पाठकों को उचित है कि यदि ग्रन्थ की रुचि से नहीं तो अपने पुस्तकालय की शोभा और उसके गौरव के लिये इस ग्रन्थ को अवश्य खरीदें और सभा तथा सम्पादकों को उत्साहित कर समस्त ग्रन्थ के शीघ्र प्रकाशित कर देने के लिये अनुरोध करें।

* * *

हिन्दी के प्रचार की बहुत से लोग धूम मचा रहे हैं और वास्तव में इसीके पूर्ण प्रचार पर देश की उन्नति का बहुत कुछ भाग निर्भर है। परन्तु यह तभी हो सकता है जब देश भर की भाषा एक हो और यह बात सर्ववादिसम्मत है कि यदि वह भाषा कोई हो सकती है तो वह हिन्दी ही है। परन्तु देशभाषा एक करने के पहिले अक्षरों का एक हो जाना बहुत आवश्यक है। भारतवर्ष में इस समय जितने अक्षर प्रचलित हैं उन सभों में देवनागरी अक्षरों से बढ़ कर सर्वाङ्ग पूर्ण और सुन्दर दूसरे नहीं है, अतएव देशहितैषीमात्र का यह उद्योग होना चाहिए कि यदि भारतवर्ष की सब भाषाएं नहीं तो कम से कम प्रधान प्रधान आर्य भाषाएं तो नागरी अक्षरों में लिखी और पढ़ी जाने लग जांय। इन प्रधान आर्यभाषाओं में हम हिन्दी, मराठी, गुजराती, बङ्गला, उर्दू और कनाड़ी भाषाओं की गिनती करेंगे। हिन्दी नागरी अक्षरों में लिखी और पढ़ी जाती है; मराठी, और कनाड़ी देवनागरी अक्षरों में पढ़ी जाती है। गुजराती के अक्षर नागरी से कुछ भिन्न हैं और बंगला के अधिक भिन्न; तथा उर्दू के विषय में तो यह विचित्रता है कि वह आर्यभाषा होकर भी शेमि- टिक अक्षरों में लिखी जाती है। यद्यपि यह कार्य कठिन है, परन्तु उद्योग होने से सम्भव है कि काल पाकर इस उद्योग में कुछ सफलता प्राप्त हो सके। सबसे सुगम उपाय इस कार्य के करने का जैसा कि एक महाशय ने काशी की नागरीप्रचारिणी सभा को लिखा है यह है, कि एक मासिकपत्र ऐसा निकाला जाय जिसमें भारतवर्ष की भिन्न भिन्न आर्यभाषाओं के लेख नागरी अक्षरों

छापे जांय। इससे आशा है कि इस विषय का विचार पढ़े लिखे लोगों में धीरे धीरे फैलता जायगा और सम्भव है कि समय पाकर प्रान्तीय भाषाओं के लेखक इसकी आवश्यकता को मानने लग जांय। किसी जाति के जीवन में ५० वा १०० वर्ष कोई चीज नहीं है। इससे यदि १०—५ वर्ष में इस उद्योग के करने पर कोई विशेष फल न देख पड़े, तोभी इससे हताश होने की आवश्यकता नहीं है। सहयोगियों से प्रार्थना है कि इस प्रस्ताव पर वे अपनी सम्मति दें अपने अपने पत्र में इसका आन्दोलन प्रारम्भ करें।

* * *

गत वर्ष हम हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों की प्रथम वार्षिक रिपोर्ट के विषय में लिख चुके हैं। यद्यपि अभी तक गवर्मेण्ट ने उसे नहीं छपवाया है, पर दूसरे वर्ष (१९०१) की रिपोर्ट भी काशी नागरीप्रचारिणी सभा ने गवर्मेण्ट के पास भेज दी है। इस वर्ष में सब मिला कर २५० से अधिक पुस्तकों का पता लगा, जिनमें से १४६ की नोटिस रिपोर्ट में सम्मिलित की गई है। शेष इसलिये छोड़ दी गईं कि वे मारवाड़ी भाषा में लिखी गईं थीं, अथवा वे कोई ऐतिहासिक उपयोगी या उत्तम न थीं। इन १४८ ग्रन्थों में से १४१ ग्रन्थ ७३ ग्रन्थकारों के लिखे हुए हैं। इनमें से १ बारहवीं, १ चैादहवीं, १२ सोलहवीं, १२ सत्रहवीं, १९ अट्ठारहवीं और १५ उन्नीसवीं शताब्दी में वर्तमान थे। शेष १३ ग्रन्थकारों के समय का निर्णय नहीं हो सका। इन ग्रन्थों में से अधिकांश १९वीं शताब्दी के लिखे हुए हैं। इस रिपोर्ट में जिन जिन ग्रन्थों का वर्णन है उनमें से एक तो तुलसीदास जी की रामायण है कि जिसके विषय में हम सरस्वती, भाग २ के पृष्ठ १४६-४७ में लिख चुके हैं। इस वर्ष की खोज में सुन्दरी कुंअरी के कई ग्रन्थों का पता लगा है। ये सुन्दरी कुंअरी कृष्णगढ़ के महाराज राजसिंह की कन्या और प्रसिद्ध सावन्तसिंह उपनाम नागरीदास जी की बहिन थीं। इनके सब ग्रन्थ भक्तिविषय पर हैं और इनका जीवन समय अट्ठारहवीं शताब्दी का अन्तिम अर्द्ध भाग था। बिहारी सतसई की एक हस्तलिखित प्रति सन् १७१८ की लिखी हुई मिली है। इसीसे इसकी प्राचीनता का अनुमान हो सकता है। इससे प्राचीनतर प्रति और कोई अभीतक तो नहीं मिली। हमें यह देख कर सन्तोष हो रहा है कि इस अनुसन्धान से हिन्दी का विशेष लाभ होगा। सभा तथा प्रान्तिक गवर्मेण्ट दोनों इसके लिये धन्यवाद के पात्र हैं।

मोती

सर्वशक्तिमान जगदीश्वर की महिमा अपरम्पार है। अहा! इस सृष्टि में उसने ऐसे ऐसे अद्भुत पदार्थ रचे हैं कि जिन्हें देख कर मनुष्य चकित हो जाते हैं। इस संसार में असंख्य ऐसी वस्तुएं हैं कि जिन्हें ये अल्पबुद्धि के मनुष्य नहीं जानते और न कदापि जान सकेंगे। केवल इसी भूमि पर अनगिनत पदार्थ वर्तमान हैं कि जिन्हें हम लोग नहीं जानते। यह कोई अचम्भे की बात नहीं है, क्योंकि सर्वशक्तिमान परमेश्वर ने अपनी अनन्त शक्ति से जो असंख्य पदार्थों की रचना की है, भला उन्हें क्षुद्रबुद्धि और अल्प आयु के मनुष्य कैसे जान वा समझ सकते हैं। यदि एक ही विषय लिया जाय तौ भी पाठकगण देखेंगे कि उसका अन्त नहीं मिलता और न उनकी आयु इतनी है कि उसे पूर्ण रूप से वे जान सकें। जब एक ही विषय की यह अवस्था है — चाहे वह कोई विषय क्यों न हो — तो समस्त संसार की वस्तुओं का ज्ञान अवश्य असम्भव है। इसी कारण से हमारे त्रिकालज्ञ पूज्यवर ऋषियों और मुनियों ने इस खोज को अनन्त और अशान्तिकारक जान कर हेय ठहराया है और जिससे शान्तिलाभ हो उसे पुरुषार्थ माना है, तथा शान्तिपूर्वक मनुष्यजीवन निर्वाह के अर्थ जिन बातों की आवश्यकता है उसी-

को माना है। हम अपने उन भाइयों को, जो नई अङ्गरेजी शिक्षा प्राप्त करके यह समझते हैं कि हमारे पूर्वज लोग बहुत से सिद्धान्तों को जो कि इस काल में जाने गए हैं, नहीं जानते थे, विश्वास दिलाते हैं कि ऐसा नहीं है। वे लोग अवश्य इससे भी अधिक जानते थे। आज कल के नई शिक्षावालों का यह विश्वास केवल अपनी पुरातन विद्या के न जानने और न प्राप्त होने ही से है। यहां हमको इसके लिखने की आवश्यकता नहीं है कि इस बिचारे हिन्दुस्थान पर कितनी कितनी आपत्तियां आईं और यहां की कितनी विद्याएं लोप हो गईं, अर्थात् उस आपत्काल में उन सबकी रक्षा न हो सकी और शत्रुओं ने जान कर वा अनजाने उन सबको नष्ट कर दिया, जिनका परिचय अबलों कहीं कहीं मिलता है, और आधुनिक कल्पनाओं की छाया अब भी देखने में आजाती हैं। हां, उनके कार्यों का रूपान्तर हो गया हो, इससे उनकी अज्ञानता सिद्ध नहीं हो सकती और यह रूपान्तर तो सदा ही होता रहेगा; पर जिन कल्पनाओं और सिद्धान्तों पर वे निर्भर हैं उनमें दोष नहीं आ सकता। हमारे त्रिकालज्ञ मुनिगण इस युग की इस अवस्था का भी परिचय देगए हैं। उनकी इस भविष्यद्वाणी को कौन नहीं जानता। यह हम लोगों की भूल है कि हम इसकी खोज अपने भण्डार में नहीं करते और उन्हें अज्ञानी ठहरा कर दोष के भागी बनते हैं। यह हमारा दोष है न कि हमारे पूर्वजों का। यह कहा जा सकता है कि हमारे शास्त्र में बहुत सी बातें असम्भव और मिथ्या कही गई हैं, किन्तु पाठकगण ऐसा न समझिए; याद रखिए कि समय के हेर फेर से भाषा का क्रम और उसकी रीति बदला करती है, जिससे हमारी समझ में उनका तात्पर्य्य ठीक ठीक नहीं आता; पर उसकी जड़ में सत्यता अवश्य है।

इस विषय पर बहुत कुछ लिखा जा सकता है और सिद्ध कर दिया जा सकता है कि यदि हम लोग उन बातों पर ध्यान दें और सोचें तो उसकी सत्यता माननी होगी। हमको इस समय दूसरे विषय पर लिखना है, इस लिये इस विषय को फिर पाठकों के सम्मुख उपस्थित करेंगे। आज हम पाठकों के सूचनार्थ मोती के विषय पर लिखेंगे।

मोती "रत्नों" में गिना गया है। इस रत्न से लोग सुन्दर आभूषण बनवाते हैं। जगत में इसका बड़ा व्यापार होता है। इस जगत में बहुत कम लोग मिलेंगे जिन्होंने मोती न देखा हो।

इसका व्यापार अति प्रचीन काल से होता चला आया है और यह किस किस काम में आता है यह भी लोग जानते हैं। पर मोती कहां से और कैसे प्राप्त होता है यह बात बहुत लोग नहीं जानते हैं।

मोती एक प्रकार के 'सीप' से प्राप्त होता है जिसको भाषा में 'सीप', 'मोती का सीप', वा 'कस्तूरा' और अङ्गरेज़ी में मोलस्कस (Mollusca) कहते हैं। यह जन्तु समुद्र में और कहीं कहीं तालाबों में भी होता है। इस जन्तु के भीतर मोती की उत्पत्ति होती है। समुद्र में जो सीप होते हैं उन्हीं के मोती उत्तम होते हैं, पर वे सभी स्थानों पर नहीं मिलते। ये जन्तु मुख्य मुख्य स्थानों में पाए जाते हैं, मानो दो सीपों से मढ़े होते हैं जो एक ओर से खुलता और बन्द होता है। मोती की बनावट उन्हीं पदार्थों से है कि जिनसे सीप के भीतर का चमकदार भाग बना रहता है। यह जन्तु कई जाति के होते हैं, इसीसे कई प्रकार के मोती देखने में आते हैं,—कोई श्वेत, कोई पीला, कोई काला इत्यादि। चार वर्ष से कम के सीप में मोती नहीं मिलते, वा बहुत कम मिलते हैं और सात साल के सीप से बहुधा उत्तम मोती निकलते हैं। यदि सात साल के सीप से मोती न निकाला जाय, तो इस आयु के उपरान्त यह जन्तु मर जाता है और मोती नष्ट हो जाता है। इस लिये चार साल के सीप से सात साल के सीप में ही मोती मिलता है। कभी कभी ये जन्तु उन स्थानों को छोड़ कर बरसों तक कहीं चले जाते हैं, इस कारण प्रति वर्ष मोती नहीं निकाले जा सकते। इसका ठीक ठीक कारण

अभी तक वैज्ञानिकों को विदित नहीं हुआ है। सभी सीपों में मोती नहीं मिलता। किसी किसी में से अच्छे मोती प्राप्त होते हैं।

आबदार मोती

जौहरी लोग अति उत्तम मोती उसीको कहते हैं जिसका 'छिलका' (Skin) सम्पूर्ण रूप से निर्दोष हो और उसमें अच्छी उज्वलता और आभा (Orient) हो जिसे साधारण बोल चाल में 'आबोताब' कहते हैं; अर्थात् मोती की रङ्गत स्वच्छ, श्वेत और चमकदार होनी चाहिए, जिसमें किसी प्रकार का 'छींटा' वा 'दाग' न हो। मोती गोल अच्छा गिना जाता है। यदि गोल न हो तो सुडौल पछाहीं नाशपाती की भांति हो जिसे 'सुराहीदार' कहते हैं। इन दोनों डौल के मोतियों का आदर होता है। ऐसे सुडौल मोती के बड़े दाम होते हैं। ऐसे मोती राजों और धनाढ्यों ही के पास देखने में आते हैं।

मोती की परख

हमारे हिन्दुस्तान में अच्छे मोती वेही गिने जाते हैं जिनमें कोई दोष न हो और वह सुन्दर गोल चमक चिकनाई वाला हो। किसीने कहा है—

निर्मल, गोलु, जला, गरु होई,
चिक्कन चारु चिल्लकहि सोई।
कोमलता प्रतिबिम्ब दिखावे,
सो मुक्ता बहुमोलहि पावे॥

मोती में सात ऐब होते हैं जिनसे मोती का दाम घट जाता है। हिन्दुस्तान के जौहरी लोग मोती में सात त्रुटि दोष, दस अनिष्ट दोष और आठ गुण बताते हैं, जिनका वर्णन नीचे किया जाता है। जो इन दोषों से शुद्ध हो वह अमूल्य गिना जाता है।

मोती में जो ७ त्रुटि दोष ऊपर कहे गए हैं वे ये हैं—

(१) गर्ज = जो फूटा वा टूटा सा देख पड़े जिसे तड़का हुआ भी कहते हैं। (२) लहर = जिसमें अति सूक्ष्म रेखाएं हों। (३) गिडनी = जिसके बीच गिरदे में रेखा हो। (४) चोभा = जिसके भीतर मसूरी का सा दाग हो। (५) कागाबासी = श्याम रंग का मोती वा जो आधा काला और आधा श्वेत हो। (६) ताम्रेश्वर = ताम्र वर्ण की छाया जिसमें हो। (७) चिहा = जो ऊंचा नीचा हो, अर्थात् जिसका पृष्ठ खरबुदरा हो, चिकना न हो।

अब दस अनिष्ट दोष लिखे जाते हैं जिनका बड़ा विश्वास हम हिन्दुस्तानियों में होता है। इन दश पातक दोषों में प्रथम चार महाअनिष्ट दोष हैं, जिनका कुफल भी उनके साथ लिख दिया जाता है, और शेष छ दोष मध्यम गिने जाते हैं।

१० अनिष्ट दोष

(१) शुक्ति परस = सीप का टुकड़ा जिस मोती में लगा रहे। यह दुःखकारक है। (२) मीनाक्ष वा मत्सनेत्र = मछली की आंख सा। यह संततिहर होता है। (३) अतिरक्त = मूङ्गे की सी लाल आभा वाला। मृत्युकारक है। (४) जठर = बिना चमक-वाला, ठर्रा दाना। दारिद्र्य और रोगकारक। (५) त्रिवृत्त = जिसके चौगिर्द तीन रेखा हों। सुख सौभाग्य को हरे और भयदायक है। (६) चिपट = जो चिपटा हो अर्थात् गोल न हो। बदनामी का कारक है; अपवाद बढ़ावे। (७) त्रिसिर वा त्रिश्रृक = तीन कोने जिसमें हो। सम्पत्तिहर है। (८) कृश = लम्बा मोती। बुद्धिहीन करे। (९) कृशपार्श्व = टूटा मोती। मनवाञ्छित फल को दूर करे और उद्यमहीन बनावे। (१०) अशोभन = मैला वा दागवाला। रोगकारक होता है।

हम लोग इन दोषों का बड़ा विचार रखते हैं और जहां तक होता है ऐसे दूषित मोतियों को मोल नहीं लेते। जो लोग नहीं जानते, वा इसका विचार नहीं करते, उनकी बात जुदी है; पर जितने अच्छे हिन्दुस्तानी जौहरी हैं, वे सब इन पातकों को अशुभ मानते हैं।

अब उत्तम मोती के आठों गुण भी सुन लीजिए—

८ गुण

(१) सुतारत्व=जिस मोती में सितारेवत् चमक हो। (२) स्वच्छत्व=जो दोषरहित हो, अर्थात् जिसमें न कोई त्रुटि हो और न कोई उक्त दोष। (३) सुवृता=सुन्दर गोल मोती। (४) निर्मलत्व=जो मलरहित हो, अर्थात् जो साफ हो और जिसमें मैल वा किसी प्रकार का छींटा न हो। (५) घनत्व=जो भारी हो। (६) स्निग्धत्व =गम्भीर चमकवाला और चिकना हो। (७) सुछाया = जिसकी छाया मनोहर हो। (८) स्फुटित्व=जो साफ और सुन्दर हो, जिसके देखने से चित्त प्रसन्न हो।

रत्नों की पहिचान अभ्यास पर निर्भर है, यह साधारण बात नहीं है। कुछ काल अभ्यास करने पर इसकी 'परख' होती है, क्योंकि बहुधा रत्नों में ऐसे सूक्ष्म दोष रहते हैं कि साधारण मनुष्य उन्हें नहीं देख सकता। जिनको इसकी परख है वेही लोग चट उन्हें देख लेते हैं। तौभी ऊपर लिखी बातों का ध्यान रखने से पाठकगण बहुत कुछ लाभ उठा सकते हैं।

सब से बड़े मोती

इस काल में सब से बढ़कर उत्तम और निर्दोष मोती, जिसका जोड़ा नहीं है, मास्को (Moscow) के अजायबख़ाने में वर्तमान है। इसे ला पलेग्रिना (La Pallegrina) कहते हैं। यह हमारे हिन्दुस्तान ही का मोती है, जो बड़ा ही सुन्दर, आबदार, सुडौल और पूर्णरूप से गोल है। इस जगतविख्यात मोती की तौल २८ किरात अर्थात् ६० रत्ती से कम नहीं है।

एक दूसरा मोती जो बड़ा वज़नी है, साउथ केन्सिङ्गटन (South Kensington) के अजायबख़ाने में है। यह मोती बेडौल है, गोल नहीं है, पर इसकी तौल (3 oz.) लगभग डेढ़ छटांक के है, और इसका बड़ा वृत्त (गिर्दा) ४½ इञ्च का है।

मोती निकलने के स्थान

अब बहुत हैं। प्राचीन काल में हिन्दुस्तान और पारस की खाड़ी से मोती निकाले जाते थे, प[र] अब कई देशों में पाए जाते हैं।

आस्ट्रेलिया, मध्य अमेरिका, सूलो समुद्र और पासिफिक महासागर के दक्षिण भाग के टा[पू] इत्यादि इसके मुख्य स्थान हैं।

हिन्दुस्तान में भी कई स्थानों से मोती निकाले जाते हैं–जैसे सीलोन, मदरास, करांची, इत्यादि स्थानों में समुद्र से और मुरशीदाबाद, जहांगीरनगर, सिलहट इत्यादि स्तानों में तालाबों और झीलों से; और ताम्रपरणी नदी में भी मोती के सीप होते हैं। यह मोती के सीप गोता लगाकर जल की तह से निकाले जाते हैं। गोता लगाने की दो रीति हैं। एक तो पुरातन रीति से केवल डुबकी मार कर, जो अब लों हिन्दुस्तान आदि में प्रचलित है। दूसरी आधुनिक रीति से अर्थात् 'गोताखोर की-पोशाक' पहिन कर, जिसका व्यवहार आस्ट्रेलिया, अमेरिका आदि में है। इसका पूरा विवरण आगे किया जायगा।

ऊपर लिखा जा चुका है कि हिन्दुस्तान में कई स्थानों से मोती प्राप्त होते हैं। कराची बन्दर के पास और मदरास के तिन्नावली (Tinnavelly) स्थान में इसके छोटे कारख़ाने हैं, पर सबसे बड़ा कारखाना, जहां से अधिक और उत्तम मोती निकलते हैं, सरन्दीप (Ceylone) में है। सरन्दीप की मनार खाड़ी के किनारे अरिप्पू (Aripp[u]) मुख्य स्थान इसका है। मनार खाड़ी के पश्चिम किनारे से कुछ दक्षिण की ओर ६ मील से ८ मील के परे सीप समुद्र के अन्दर तलभाग में पाए जाते हैं।

मोती निकालने का काम सरकार ने अपने हाथ में रक्खा है। बिना सरकारी आज्ञा के कोई व्यक्ति सीप नहीं निकाल सकता। इस काम पर कई 'इन्स्पेक्टर' नियत हैं जो इसकी देख भाल कि[या]

करते हैं। ये लोग जब देखते हैं कि समय अनुकूल आ गया और सीप की भी अवस्था अच्छी है, तब सरकार में इसकी रिपोर्ट करते हैं। वहां की आज्ञा आने पर तदनुसार काम प्रारम्भ होता है। यदि उक्त इन्स्पेक्टरों की अनुमति में अधिक लाभ की सम्भावना है वा कोई विशेष कारण है, तो सरकार स्वयं अपनी ओर से मोती निकलवाती है। उस समय जो डोंगे किराए किए जाते हैं उसका किराया ५०० से ८०० पेगोडा तक बढ़ जाता है। साधारणतः तो सरकार इसका ठीका नीलाम कर देती है। जिसकी बोली अधिक होती है उसको उस साल का ठीका मिल जाता है। यह ठीका वहीं का कोई साहूकार ले लेता है। मोती निकालने का समय प्रायः मार्च्च महीने के दूसरे सप्ताह से प्रारम्भ होता है। मोती के सीप निकालने में अधिक व्यय के अतिरिक्त कठिनाइयां भी बहुत हैं। सीप निकालने और मोती प्राप्त करने की

विधि

इन लोगों की वही है जो प्राचीन समय में थी। चालीस वा पचास डोंगे इस काम के अर्थ जाते हैं और प्रति डोंगों पर दस दस गोतेखोर जाते हैं। आधी रात को ये डोंगे किनारे से रवाना हो जाते हैं और प्रातःकाल तक वहां पहुंच जाते हैं जहां सीप रहते हैं। वहाँ पहुंचने पर एक तोप का शब्द किया जाता है जो काम के प्रारम्भ कर देने का सङ्केत है। दो दो आदमी मिल कर काम करते हैं। एक गोता लगाता है और दूसरा डोंगे पर बैठा रस्सा अगोरता और उसकी सहायता करता है। गोतेखोर लोग प्रायः नङ्गे होकर गोता लगाते हैं; केवल एक फेटा कभी कभी रहता है जिसके सहारे टोकरी वा थैली, जिसमें सीप बटोरते हैं, रहती है।

तलभाग पर शीघ्र पहुंचजाने के अर्थ ये लोग एक बीस वा पचीस सेर का भारी पत्थर, जिसका एक सिरा रस्सी से बँधा रहता है, थाम कर डुबकी लगाते हैं। इस भारी पत्थर के सहारे वे चट पट तल पर पहुंच जाते हैं जो १० वा १५ फेदम (६० वा ९० फीट) गहिरा रहता है। वहां पहुंच कर सीप बटोर लाते हैं। इस बीच में डोंगे पर का मनुष्य सङ्केत पाने पर पत्थरवाला रस्सा ऊपर खींच लेता है, फिर टोकरी को और गोताखोर को बाहर खींच लेता है। इसी प्रकार एक वा दो मिनट बाहर दम लेकर गोताखोर फिर गोता लगाता है और सीप बटोर लाता है। ये सब सीप डोंगों पर इकट्ठे करके रक्खे जाते हैं। हर गोताखोर ४० वा ५० बार डुबकी लगाता है। प्रायः इनके कान नाक मुंह से पानी निकलता है। कभी कभी लोहू भी निकल आता है। तौभी बेचारे साहस बश काम बराबर करते ही रहते हैं। जब गोताखोर थक जाता है तो वह डोंगे पर आजाता है और उसका साथी जो अब तक बाहर था, गोता लगाता है, और इसके स्थान पर पहिला गोताखोर ऊपरी काम करता है। यह लोग साधारणतः ५० से ८० सेकेण्ड तक जल के भीतर रह कर काम करते हैं। कोई कोई इससे भी अधिक काल तक जल में रह सकते हैं। ऐसे लोग भी हैं जो ६ मिनट तक का दम साध सकते हैं और जल के अन्दर काम किया करते हैं, पर ऐसे गोतेखोर कम हैं। पाठकगण! यह कम समय नहीं है, बहुत है। अधिक गहराई में वायुमण्डल और जल के बोझ और दबाव के कारण १० मिनट से अधिक गोतेखोर की पोशाक में भी कोई नहीं रह सकता, जिसमें श्वास आदि लेने का भी सुभीता रहता है।

गोतेखोर की जान हर दम जोखिम में रहती है। समुद्र के विषैले जन्तुओं के अतिरिक्त बहुत से क्रूर हिंसक जन्तुओं से बड़ा डर रहता है, अतएव बहुत सावधान रहना पड़ता है।

सैंकड़ों प्रकार के भयङ्कर जलचर हैं, उनमें एक मकर (Shark) है जो बड़ी हिंसक और क्रूर मछली है मानो सामुद्रिक सिंह ही है। इसका बड़ा भय रहता है।

पाठकों को विदित रहे कि इन गोताखोरों के साथ ब्राह्मण अवश्य रहते हैं जो मंत्रद्वारा उनकी रक्षा करते हैं और उक्त मछली को कील देते हैं, जिससे वह अधिक हानि नहीं पहुंचा सकती। इन गोतेखोरों का मंत्र में बहुत विश्वास है, इस कारण इनकी ओर से बहुत से ब्राह्मण इनकी रक्षा के निमित्त किनारे पर मंत्र द्वारा जप करते रहते हैं। इनका इसपर इतना विश्वास है कि जब तक उनकी ओर से मंत्र पढ़नेवाला ब्राह्मण न हो, वे कदापि गोता नहीं लगाते। इन ब्राह्मणों को हिस्सा मिलता है। इसके अतिरिक्त दूसरे जन्तुओं से बचने के लिये गोतेखोर छोटी छोटी बर्छियां भी रखते हैं।
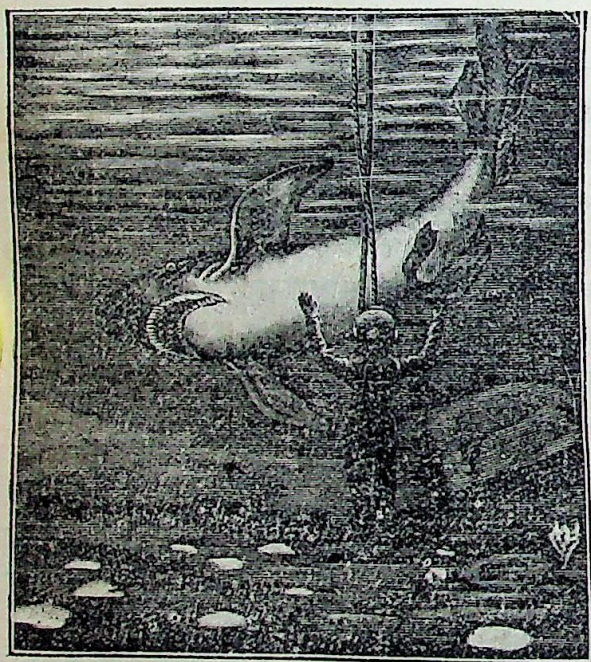
मकर वा शार्क

नाक कान में पानी न जाय इस हेतु से यह लोग अङ्ग में तेल चुपड़ लेते हैं। इतने कष्ट उठाने पर और जान जोखिम पर भी ये लोग बराबर काम करते ही रहते हैं। ये लोग शीघ्र रोगी हो जाते हैं और इनकी आयु प्रायः कम होती है। हा! पेट के लिये क्या क्या कष्ट उठाने पड़ते हैं!

दोपहर तक बराबर इसी प्रकार काम होता रहता है। इस समय फिर तोप छोड़ी जाती है और काम बन्द हो जाता है। डोंगे वापस लौटते हैं और सांझ तक किनारे पर आ जाते हैं।

किनारे पहुंच कर सञ्चित सीपों के चार चार ढेर करते हैं। उनमें से एक ढेर गोतेखोर का भाग है। दूसरे दिन एक एक हज़ार का ढेर नीलाम होता है, जिन्हें व्यापारी लोग मोल ले ले कर एक छप्पर में ले जाते हैं, जो इसी काम के निमित्त बनाया जाता है, और जिसकी भूमि पर साफ सुथरा करके चटाई बिछा देते हैं। इसी चटाई पर सीप रख कर सड़ाते हैं। भूमि पर सीप नहीं रखते। जब सीप के जन्तु मर जाते हैं तब उनमें से मोती निकालते हैं। जीते सीप से मोती निकालने में अति कठिनता पड़ती है और मोती के नष्ट भ्रष्ट हो जाने का डर रहता है, क्योंकि जब सीप अपना मुंह बन्द कर लेता है तो बड़ी कठिनाई से खुल सकता है। इस कारण जब सीप के जन्तु मर जाते हैं तब उन्हें उबालते हैं, क्योंकि कभी कभी सीप में मोती नहीं रहता, किन्तु जन्तु के अन्दर रहता है।

इसकी कोई पहचान नहीं है कि किस सीप में मोती है, और किसमें कैसा मोती है वा किसमें मोती नहीं है। अच्छे मोती का निकल आना भाग्य की बात है। किसीको उत्तम मोती मिल गए, किसीको छोटे ही मोती मिले, किसीको कुछ भी न मिला, केवल सीप ही हाथ लगे।

जब सीप उबाल कर सब मोती निकाल लेते हैं, तब छोटी छोटी पीतल की चलनी में उन्हें छानते हैं। यह चलनी कई प्रकार की होती है। किसीमें बहुत छोटे छिद्र होते हैं, दूसरे में उससे बड़े, तीसरे में इससे भी अधिक बड़े। इसी प्रकार की कई चलनियों में छानने से छोटे, मध्यम और बड़े मोती पृथक पृथक हो जाते हैं। इसीके अनुसार उनकी 'जाति' वा 'श्रेणी' होती है। बड़े दानों को 'फ... दाने कहते हैं और बहुत छोटे दानों को 'बुक... कहते हैं। ये मोती पहिले बिना छिद्र के होते हैं। इसमें छिद्र हीरे की कनी से करते हैं जिसे 'बेधना' कहते हैं। मोती जितना महीन बिधा होगा उतना

अच्छा है। यही मोती 'बिधे' और 'बिनबिधे' देश देशान्तर में बिकने जाते हैं।

बड़े मोतियों की माला, कण्ठे और कई प्रकार के सुन्दर आभूषण बनते हैं। और छोटे मोती गहने के वा ज़रदोज़ी के काम में लाए जाते हैं, वा औषधि में बरते जाते हैं, वा उनका चूना बना कर धनाढ्य लोग खाते हैं।

बम्बई का मोती

बम्बई में मोती नहीं निकलता। पारस की खाड़ी से जो मोती निकलते हैं वे यहां बम्बई में आकर बिकते हैं, उन्हों को 'बम्बई का मोती' कहते हैं। यहां इसका बहुत व्यापार होता है। हिन्दुस्तान के ऊपरी भाग में अधिकतर यहीं से बोहरे जाति के लोग मोती लाकर बेच जाते हैं। और जाति के लोग भी इसका व्यापार करते हैं और वे 'जौहरी' कहलाते हैं।

मोती की रंगत

सबसे उत्तम मोती स्वच्छ, श्वेत, चमकदार होता है। स्वर्ण रङ्ग का पीला मोती भी अच्छा गिना जाता है। मोती कई जाति और रङ्ग के होते हैं। कोई श्वेत, कोई जरदी मायल, कोई लाली लिए, कोई श्याम, कोई बेचमक का ठर्रा दाना इत्यादि होता है। कहा जाता है कि बसरे का मोती सफेद सुन्दर पर चमकहीन होता है। सीलोन का जर्दीमायल जिसे 'मगज' का कहते हैं और साफ श्वेत चमकदार भी होता है। मसकत का मोती स्याही मायल, इसे 'स्यानी' का कहते हैं। जद्दे का मोती लम्बा चमकहीन और रुखा होता है। इसे 'चावलिया' कहते हैं। द्वारिका का श्याम होता है। कराची का अति 'बूका' अर्थात् बहुतही छोटा होता है। काहल का मोती सुन्दर गोल चमकदार और चिकना होता है। दरभंगिया मोती डौल छोटे, जर्दी और सुर्खी मायल और मैले होते हैं।

मोती की आय

हम ऊपर लिख चुके हैं कि हर साल मोती नहीं निकाले जाते, क्योंकि मोती के सीप (जन्तु) कई वर्ष के लिये स्थान छोड़ कर कहीं चले जाते हैं, वा उनकी अवस्था अच्छी लाभदायक नहीं रहती। पर अब यह देखना है कि जब निकाले जाते हैं तो कितने के मोती प्राप्त होते हैं। सरकारी रिपोर्टों से जो प्रगट होता है उसका ब्योरा यह है—

सन् ई०	पौंड	वर्त्तमान मूल्य
१८६३	५६०००	८४०००० रु०
१८७४	१००००	१५०००० रु०
१८७७	१९०००	२८५००० रु०
१८७९-८०	२९०००	४३५००० रु०
१८८१	५९८००	८९७००० रु०
१८८७	३९०००	५८५००० रु०

इनके बीच में मोती निकाले नहीं गए, अथवा बहुत कम निकले। सर डब्लू हारटन साहब (Sir W. Horton) ने, जब वे सरन्दीप के गवर्नर थे, विलायत जाने के पहिले जहां तक हो सका समस्त सीप निकलवा लिए थे। इससे सरकारी आय तो अपने समय में बहुत कुछ बढ़ा कर दिखा दी थी, पर भविष्यत् के लिये वे अच्छे सीपों का नाश कर गए। इसका फल बड़ा हानिकारक हुआ। सर बेकर साहब (Sir S. W. Baker) लिखते हैं कि उनको सन्देह है कि यहां सीप की अवस्था फिर कभी पनपेगी वा नहीं।

फ़ारस की खाड़ी

उक्त खाड़ी के मध्य से बराबर अरब देश के किनारे किनारे दूर तक मोती के सीप मिलते हैं जो कतार (Katar) नामक स्थान से हलूल (Halool) टापू के बराबर २०० मील तक के घेरे में है। वहां वाले सीप को 'सदफ' कहते हैं।

वहां भी प्रायः वही बिधि मोती निकालने की है जो ऊपर लिखी जा चुकी है। यह पारस के सुलतान के आधीन है। वहां भी बादशाह की ओर

से कार्यकर्ता नियत हैं, जिनके सामने सब सीप निकाल कर लाए जाते हैं, और उनपर २०) रुपए सैकड़े कर लगता है। वहां कितने का मोती निकलता है इसका ब्योरा ठीक ठीक नहीं ज्ञात हो सकता, क्योंकि यह काम दूसरे राज्य का है; परन्तु सन् १८६३ ईसवी में मिस्टर पेली (Mr. Pelly) ने जो रिपोर्ट हमारी सरकार में भेजी थी, उसमें उन्होंने अनुमान किया था कि १५०० डोंगे केवल 'बहोरे' जाति के सीप निकाला करते हैं, और उनके अनुमान से ४००००० पौण्ड का मोती वहां से निकलता है।

यहां का मोती आबदार, स्वच्छ होता है। यहीं के मोती को 'बसरे का मोती' कहते हैं। यहां के व्यापारी अधिक श्वेत मोती को बगदाद भेज देते हैं, जहां से वे सीरिया, पारस इत्यादि देशों में और कुछ बम्बई में लाकर बेच जाते हैं।

कहा जाता है कि हम हिन्दुस्तानी लोग पीत वर्ण के सुनहरे रङ्गवाले मोती पसन्द करते हैं, पर हमारी समझ में यह बात ठीक नहीं है। हमलोग भी स्वच्छ श्वेत मोती का आदर करते हैं। यहां आभूषणों का बहुत प्रचार है। सभी धनाढ्य अथवा साधारण लोग स्त्रियों के लिये आभूषण बनवाते हैं। इस कारण अधिकतर पीत वर्ण के सस्ते मोतियों की यहां खपत अधिक है। अतएव ऐसा अनुमान होना आश्चर्यजनक नहीं है।

विदित रहे कि समुद्र के भीतर असंख्य अमूल्य वस्तुएं हैं। धन्य है जगदीश्वर की महिमा! मूंगा भी नवरत्न में से एक रत्न है जो इसी समुद्र के तल में उत्पन्न होता है। यह एक प्रकार का सामुद्रिक जीव है जो देखने में अति सुन्दर होता है। इसका रंग भी मनोहर होता है। इसे भी गोता लगा कर निकालते हैं।

अब मोती वा सीप निकालने की दूसरी आधुनिक रीति का कुछ वर्णन करते हैं, जो आस्ट्रेलिया, अमेरिका इत्यादि में प्रचलित है। उक्त देश कहां हैं यह भूगोल का विषय है, जिसे पाठकगण भूगोल वा नकशों में देख कर जा सकते हैं। यहां भी सीप गोता लगा कर निकाला जाता है, पर ये लोग एक प्रकार की पोशाक पहि कर जल के अन्दर जाते हैं। इस पोशाक 'गोताखोरों-की-पोशाक' कहते हैं। इस पोशा को एक प्रकार का यन्त्र ही समझना चाहिए। के पहिनने से गोताखोर बराबर श्वास लेता रह है, अतएव देर तक जल के भीतर रह सकता है।

उक्त पोशाक ऐसे वस्त्र की बनाई जाती है जिसमें तनिक भी पानी नहीं जा सकता। वस्त्र को अङ्गरेज़ी में वाटरप्रूफ (Water-proof) कहते हैं। यह पोशाक ऐसी होती है कि जिस कोट, पायजामा और जूता एक ही में बना रहता यह केवल गरदन और आस्तीन पर खुली रहती और जूते का तला सीसे का होता है जो तौल लगभग १६ सेर का होता है। गोताखोर प मोटे फलालैन की एक कमीज पहिन लेता है उसके पसीने को सोखती रहती है। फिर उस पोशाक को दूसरे मनुष्य की सहायता पहिन लेता है, इस तरह से कि पहिले गिरे के रास्ते से अपने दोनों पैरों को डाल कर और पायजामा पहिन लेता है और फिर दो आस्तीनों को उसमें हाथ डाल कर जो पहिले से साबुन लगाकर चिकना कर लेता है, पहि है। ये आस्तीनें आधी दूर तक आगे की मजबूत रबड़ की ऐसी तंग और चुस्त होती हैं कलाई पर खूब चिपक जाती हैं और उसमें फिर अन्दर पानी नहीं जा सकता है। इसी का से कलाई पर चिकनाई लगा लेते हैं कि आस्ती शीघ्र सरक कर चढ़ जांय। केवल हथेली उंगलियां नङ्गी रहती हैं जिनसे वह काम कर रहता है। इसके पश्चात् चौड़े गले को चुन गिरेबान के साथ पेच से कस देते हैं और दो कन्धों पर मन भर बोझ के दो पट लटका हैं, जिस बोझ से वह शीघ्र जल के तलभाग पहुंच जाता है। फिर उक्त गिरेबान में दो नलि

रबड़ को लगाते हैं, जिनके द्वारा स्वच्छ वायु श्वास लेने को पहुंचती रहती है और गोताखोर अच्छी प्रकार दम लेता रहता है।

अन्त में धातु का बना हुआ एक टोप पहिना दिया जाता है जिसे गिरेबान के साथ फिर पेच से ऐसा कस देते हैं कि अन्दर पानी न प्रवेश कर सके। इस टोप में आंखों के सामने मज़बूत शीशे मढ़े रहते हैं, जिनके द्वारा वह देख सकता है। पाठकगण! अब दूसरे पृष्ठ पर के चित्र को देखिए गोताखोर जल में जाने के लिये प्रस्तुत है।

यह गोताखोर रस्से के सहारे जल के भीतर जाता है और डोंगा चलता रहता है। जहां कहीं सीप दिखाई दी कि वह उन्हें बटोर कर थैले में रखता जाता है, जो इसी काम के लिये उक्त पोशाक में बना रहता है। जब थैला भर जाता है वा उसका दम घुटने लगता है तो वह रस्से के द्वारा सङ्केत करता है; तब डोंगे पर का मनुष्य उसे जल से बाहर खींच लेता है। जो व्यक्ति रस्से की रखवाली करता है उसे 'टेण्डर' (Tender)' कहते हैं। इसे बड़ा सावधान रहना पड़ता है।

सीप निकालने के अर्थ गोतेखोरों को ६० फीट से १०८ फीट तक गहराई में जाना पड़ता है। इतने नीचे जल में लोग १० मिनट से अधिक नहीं रह सकते, यद्यपि श्वास लेने का सुभीता रहता है। इसका कारण जल और वायुमण्डल का दबाव है।

इतना सुभीता होने पर भी अब लों २०० फीट से अधिक गहराई में ये गोतेखोर नहीं जा सके। कहा जाता है कि १३० फीट की गहराई के नीचे कष्ट होने लगता है और २०० फीट नीचे पहुंच कर गोताखोर मूर्छित हो जाता है।

यदि जल निर्मल हो तो ये लोग ४० वा ५० फीट दूर तक के पदार्थ देख सकते हैं, और यदि जल बहुत गदला हुआ तो घुटने के बल चल कर हाथों से टटोल टटोल कर सीप का संचय करते हैं।

ये लोग दिन भर चाय वा काफी के अतिरिक्त
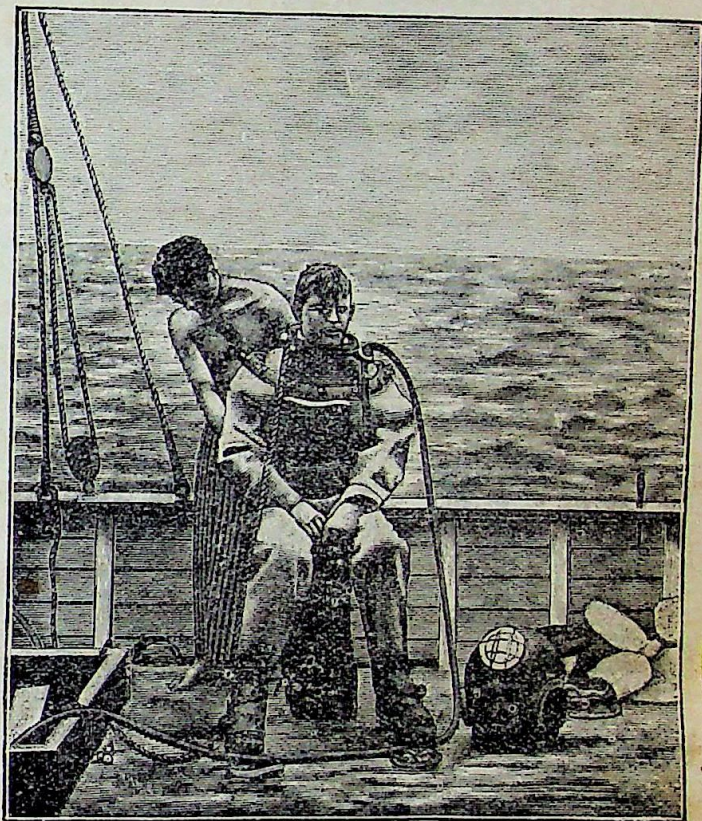
गोता लगाने के लिये पोशाक पहिनता है

कुछ नहीं खाते, क्योंकि भरे पेट जल के भीतर काम नहीं हो सकता। तीसरे पहर बाद ४ बजे काम बन्द किया जाता है और छुट्टी पाने पर ये लोग अपना अपना खाना पकाते हैं। इन लोगों को सीप की खोज में किनारे से २०० मील तक दूर जाना पड़ता है, जहां उन्हें रसद जहाजों से मिलती है, जो उधर से आते जाते रहते हैं, और यही जहाज संचित सीपों को किनारे तक ले जाते हैं। यहां सीप अधिक मिलता है, पर मोती कम। कोई तो मनों सीप बटोर लेता है, पर उनमें मोती नहीं निकलते, और कोई भाग्यवान ऐसा होता है कि थोड़े से ही सीप में अच्छे मोती पा जाता है; किसी को बहुत से

छोटे मोती मिल जाते हैं। यह केवल भाग्य की बात है। जिसका भाग्य अच्छा है उसे मोती मिले, नहीं तो सीप ही सही।
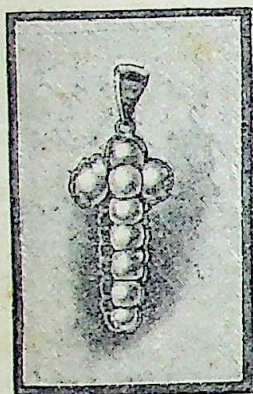
दक्षिणी त्रिशूल वा सदर्न क्रास

थोड़ा काल हुआ कि आस्ट्रेलिया में एक सुन्दर गुच्छा मोतियों का मिला था। इस गुच्छे की भी अद्भुत रचना है, जो देखने में अति सुन्दर मालूम देती है।

इस मोती के गुच्छे का नाम 'सदर्न क्रास' ('The southern cross') रक्खा गया है। यह विचित्र मोती का गुच्छा एक गरीब को, जो किनारे पर झाड़ू दिया करता था, जल के भीतर थोड़ा ही गहराई में मिला था। अन्त में यह मोती १०००० पाउण्ड अर्थात् १५०००० रुपए पर बिका।

पाठकगण 'गोतेखोरों की पोशाक' का वृत्तान्त पढ़ कर यह न समझ लें कि यह तो अच्छी और बेजोखिम रीति है, इसमें श्वास लेने का सुबीता है और इसमें कोई भय जान जोखिम का भी नहीं है और न कुछ कठिनाई है। किन्तु ऐसा नहीं। इन लोगों की भी जान हर दम जोखिम में रहती है। हां, इतना तो अवश्य है कि गोताखोर को अधिक कष्ट नहीं होता और वह कुछ अधिक देर तक जल में रह कर काम कर सकता है और सामुद्रिक तल की सैर भली भांति कर सकता है। परन्तु इसको भी कई प्रकार के डर रहते हैं जिससे चट जान से हाथ धो बैठना पड़ता है। कभी सांस लेने की नली फट जाती है और पानी भीतर घुस जाता है, अथवा समुद्र के नोकीले [illegible]
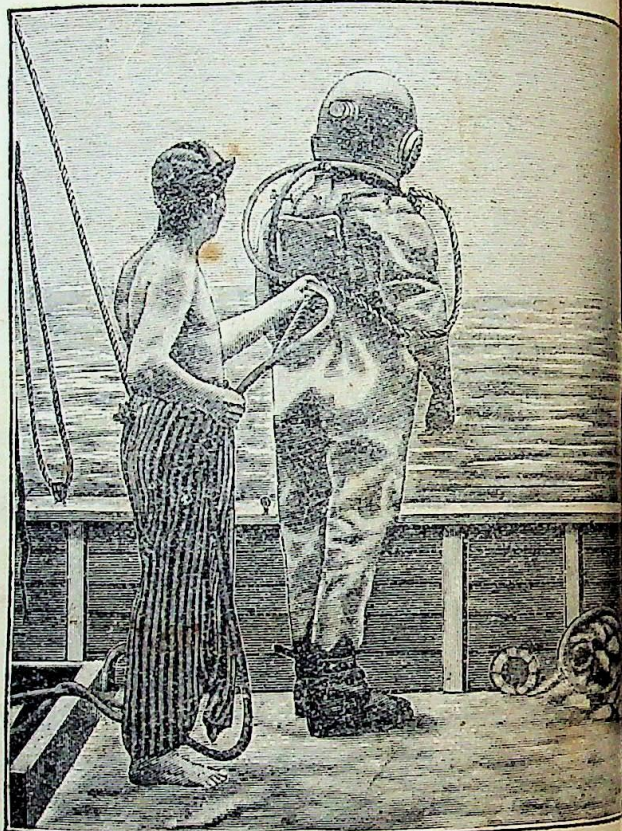
गोता लगाने के लिये प्रस्तुत।

से अटक कर पोशाक फट जाती है और एक दम जल भर आने से बिचारे गोताखोर का वहीं प्राणान्त हो जाता है। बोझ के कारण से ऊपर तो आ नहीं सकता। जब तक ऊपर खींचा जाय तब तक बहुतों का देहान्त हो जाता है। यदि भूल से कहीं कोई मक्खी वा कोई कीट पोशाक के भीतर रह जाय तो वह नाकों में दम कर देता है। इससे छुटकारा पाना भी कठिन है। कभी उसके हाथ विषैली मछलियां वा दूसरे जन्तु जो बहुधा सीप के नीचे रहते हैं, काट लेते हैं, जिनके काटने से बड़ी पीड़ा होती है। हां, शार्क मछली का डर [illegible] रहता है। परन्तु इसके बदले में 'आकटोपस (Octopus) नामक एक क्रूर भयङ्कर जन्तु उसे पकड़ [illegible]

है, जिसे हम हिन्दी में 'अष्टपद' कह सकते हैं। देखो वह कैसा विचित्र जलचर है, जिसका शरीर मनुष्य की खोपड़ी सा है और उसके आठ सूँड़ हैं जिनसे वह अपना शिकार पकड़ता है। देखिए! उसने गोताखोर को सूँडों से कैसा पकड़ लिया है!*
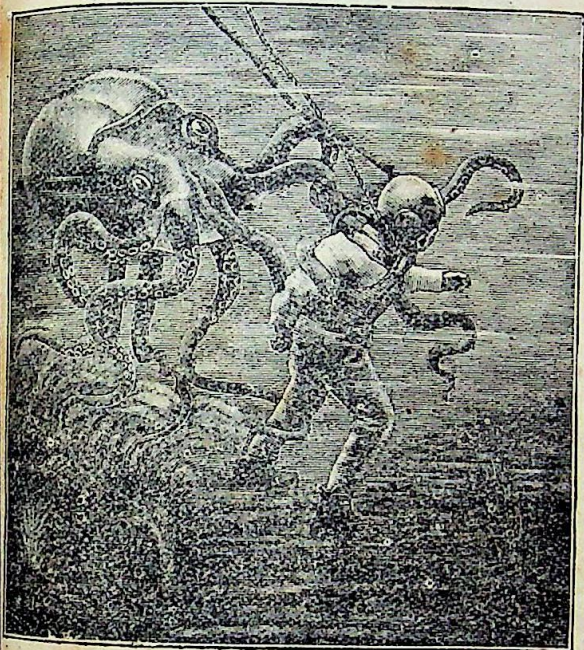
अष्टपद वा आक्टोपस का आक्रमण

हाय! यह पेट क्या क्या करवाता है! हा दैव! अमीरों की थोड़ी देर की शोभा के लिये कितने बिचारे गरीबों का बलिदान हो जाता है!!

हम अपने पाठकों के आगे इस हृदयविदारक अवस्था और वृत्तान्त का अधिक वर्णन करके उनका चित्त मलीन न करेंगे। अब हम कृपालु परमात्मा की अकथनीय और विचित्र रचनाओं में से एक दृश्य पाठकों को दिखाकर उनके चित्त को हर्षित करेंगे।

जल के भीतर भी ईश्वर ने मानो नई सृष्टि रची है। समुद्र के तल पर भी पहाड़, खाढ़ी, मैदान, नाले, वृक्ष, लता, जीव जन्तु हैं।

* कदाचित इस जल जन्तु को हमारे यहां पनडुब्बा कहा है। इसकी अनेक कथाएं प्रचलित हैं और इसे भूत प्रेतादि भी परन्तु विचार कर देखने से यह जलचर ही जान पड़ता है।

देखिए कैसे कैसे सुन्दर और मनोहारी वृक्ष लगे हैं, मानो विधना ने मनोहर और रमणीक वाटिका ही बनाई है। अहा हा! कितने प्रकार के वृक्ष हैं! केवल वृक्ष ही नहीं, किन्तु उनमें फूल फल भी लगे हैं। मूंगों के वृक्ष में फूलों के स्थान में मूंगे के कटोरेनुमा फूल कैसी शोभा देते हैं। कहीं स्पंज का वृक्ष है, कहीं 'अनीमोन' (Anemone) नामक लता है, कहीं सामुद्रिक पंखा लगा है।

समुद्रगर्भ का एक भीतरी दृश्य

क्या ये सब रङ्ग बिरङ्ग के वृक्ष वाटिका से कम शोभा देते हैं। और भी देखिए कि उनके मध्य में कई प्रकार की और कई रङ्ग की मछलियां और चित्रित सर्प और विचित्र विचित्र कछुए इत्यादि, और भी कई प्रकार के दूसरे जलचर, ऐसे दिखाई देते हैं मानो वाटिका में मोर और तितलियां और सुन्दर चिड़ियाएं कलोल कर रही हैं। कोई जन्तु पीला है, कोई लाल, कोई काला, कोई नीला, कोई हरा, कोई सुनहरा, कोई कई विचित्र रङ्गों

वाला है। कितने प्रकार के वृक्ष हैं, कितने प्रकार के जन्तु हैं, उन्हें देखते देखते आंखें तृप्त नहीं होतीं। देखिए, यह कैसा सुन्दर वृक्ष है! इसे "सामुद्रिक पंखा" (Sea Fan) कहते हैं और दूसरी वह लता कैसी सुहावनी है!
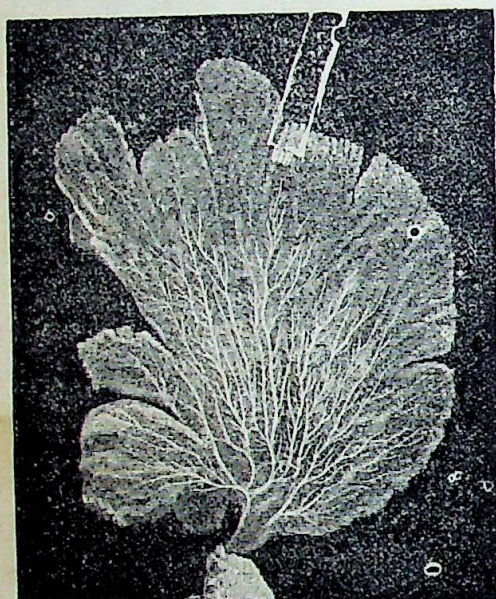
समुद्रगर्भ का पंखा

अहा! इन रमणीय सुन्दर वस्तुओं को देख कर वहां से बाहर आने को मन ही नहीं चाहता। इन मनोरञ्जक पदार्थों को देख कर आंखे चकित हो गई हैं मन वहीं रम रहा है। बस
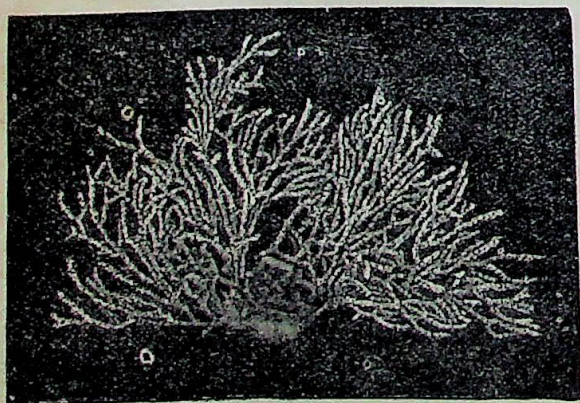
सामुद्रिक लता

विचित्रस्रष्टा जगदीश्वर का स्मरण हो आता है, और चित्त उसीके गुणानुवाद में निमग्न हो रहा है। धन्य है ईश्वर! तेरी महिमा तूही जाने!!

ठाकुरप्रसाद

प्रताप विसर्जन

[नन्ददास जी के भ्रमरगीत की चाल]

उन्नत सिर गिरिअवलि गगन सों उ... बतरावत
इत सरवर पाताल भेदि अति छवि छहरावत
मन्द पवन सीरी बहै होन लगे पतझार
पर्नकुटी नरसिंह लसत इक मानौ कोउ अवतार
हरन भुव भार को॥

मुखमण्डल अति शांत कान्तिमय चितवनि सोहैं
भरे अनेकन भाव व्यग्र चारहुं दिसि जोहैं
वीर मण्डली घेरि कै प्रभु की गति रहे जोहि
मनु भीषम सरसयन परे कौरव पाण्डव र... सोहि
हृदय उमग्यो परै॥

लखि निज प्रभु की अंत समय की वेद... भारी
व्याकुल सब सुखतकैं सकैं धीरज नहिं धारी
राव सलूमर रोकि निज हिय उदवेग महान
हाथ जोरि विनती कियो अति हरुए ल... प्रभु का...
बैन आरत सने॥

"अहो नाथ अहो वीरसिरोमनि भारतस्वामी
हिन्दू कीरति थापन मैं समर्थ सुभ नामी
कहां वृत्ति है आपकी, कौन सोच कहा ध्यान
देखि कष्ट हिय फटत है केहि सङ्कट में हैं प्रा...
कृपा करिकै कहौ।"

सुनत दुख भरे बैन नैन तिनके दिसि फेर्यो
भरि कै दीरघ सांस सबन तन व्याकुल हेर्यो
पुनि लखि सुत तन—फेरि मुख अति सं... अधीर
धरि धीरज अति छीन सुर बोले बचन गंभी...
परम आतङ्क सों॥

'हे हे वीरसिरोमनि सब सरदार हमारे।
हे बिपत्तिसहचर प्रताप के प्रानपियारे॥
तुव भुजबल लहि मैं भयो रच्छा करन समर्थ।
मातृभूमि स्वाधीनता कों प्रबल सत्रु करि व्यर्थ॥
अनेकन कष्ट सहि।

प्रानन हू तें प्रिय स्वतन्त्रता कबतें खोई॥
हाय आर्यगन भए दास निज गौरव धोई।
म्लेच्छ बिदेसी सत्रु के दास बनें करि गर्व॥
नस्वर तन सुख कारनैं आर्य कीर्ति करि खर्व।
भूलि निज रूप कों॥

या प्रताप नें उचित कहौ कै अनुचित भाखौ।
या स्वतन्त्रता हेतु जगतसुख तृन सम नाखौ॥
ढाइ महल खँडहर किए सुख सामान बिहाय।
छानि बनन कोधूरि कों गिरि गिरि मैं टकराय
जनम दुख झेलिकैं॥

स्वर्गहु तें बढ़ि जन्मभूमि करि रहित म्लेच्छ अरि।
सूखी रोटी अति पवित्र जल, छुधा तृप्त करि।
सो खोई बहु दिनन की सुख स्वतन्त्रता पाय॥
बन्धु बान्धव बीच मैं हम मरत आजु हरषाय।
क्लेस को लेस नहिं॥

पै जब आघत ध्यान लह्यो जो सहि दुख इतने।
सो अमूल्य निधि मम पाछें रहिहै दिन कितने॥
तुच्छ वासना मैं पग्यो दुःख सहन असमर्थ।
चञ्चल अमरहिं देखि कै होत आस सब व्यर्थ॥
सोचि भावी दसा।"

कहि दुखमय ये बचन अमर तन दुख सों देख्यो॥
मूंदि नैन जल भरे स्वांस लै सब छिसि पेख्यो।
सन्नाटा चहुं दिसि छयो सबके मुख गंभीर॥
पृथ्वी दिसि हेरैं सबै भरे महा हिय पीर।
बैन नहिं कछु कढ़ैं॥

करि साहस पुनि राव सलूमर सीस नवायो।
अभिवादन करि अति विनीत यैं बचन सुनायो॥

"पृथीनाथ यह सोच क्यों उपज्यो प्रभु हिय आज।
कुंअर बहादुर तैं परी कौन चूक केहि काज॥
निरासा जो भई॥

बदलि पास कछु संभरि बैन परताप कह्यो पुनि
अति गम्भीर सतेज मनहुं गुंजत केहरि धुनि॥
"सुनौ वीर मेवार के गौरव राखनहार।
मेरे हिय की बेदना—जो कियो आस सब छार॥
अमर के कर्म नै॥

एक दिवस एहि कुटी अमर मेरे ढिग बैठ्यौ।
इतनेहि मैं मृग एक आनि कै तहां जु पैठ्यौ॥
हरबराइ सन्धानि सर अमर चल्यो ता ओर।
कुटिया के या बांस मैं फंस्यो पाग को छोर॥
अमर तौहु न रुक्यो॥

बढ़न चहत आगे वह पगिया खैंचत पाछे।
पै नहिं जिय मैं धीर छुड़ावै ताको आछे॥
पागहु फटी सिकारहू लग्यो न याके हाथ।
पटकि पाग लखि झोंपड़िहि अतिहि क्रोध के साथ॥
बैन मुख तें कढ़े॥

'रहु रहु रे निर्बोध अमरगति रोकनहारे।
हम न लेहिंगे सांस बिना तोहि आजु उजारे
राजभवन निर्मान करि तेरो चिन्ह मिटाइ।
जो दुख पाए तोहि मैं सो दैहौं सबै भुलाइ॥
सुखद आवास रचि॥

तबही तें ये बैन सूल सम खटकत मम हिय।
यह परि सुख बासना अवसि दुख दिवस बिसारिय
अति अमोल स्वाधीनता तुच्छ बिषय के दाम
बेचि, सिसोदिय कीर्ति को यह करिहै अवसि निकाम
रुके हम सोच एहि॥"

हिन्दूपति के बैन सुनत छत्री कोपे सब।
अति पवित्र रजपूत रुधिर नस नस दौर्यो तब।

लैलै असि दृढ़ पन कियो, छ्वै छ्वै प्रभु के पाय।
"जौ लौं तन, स्वाधोनता तौ लौं रखौं बचाय॥
सङ्क करिए न कछु॥"

दृढ़प्रतिज्ञ छत्रिन पन सुनि राना मुख बिकस्यो॥
आस लता डहडही भई मुख तें यह निकस्यो॥
"धन्य बीर तुम जोग ही यह पन तुम्हहिं सुहाय।
अब हम सुख सों मरत हैं, हरि तुम्हरे सदासहाय
यहै आसीस मम॥"

देखत देखत शांतिसदन परताप सिधाए।
पराधीनता मेघ बहुरि भारत सिर छाए॥
सबही सुख परताप संग कियो बिसर्जन हाय।
दीन हीन भारत रह्यो सुख सम्पदा गंवाय॥
त्राहि प्रभु रच्छिए॥

राधाकृष्ण दास।

काकतालीय घटना

ताड़ का पेड़ पुराना हो जाने अथवा और किसी कारण से गिरने ही चाहता था कि उसपर एक कैाआ आ बैठा। ज्योंही उसने उसकी चोटी पर पैर रक्खा, त्योंही वह पेड़ टूट पड़ा। आपही आप होनेवाली बात में नाममात्र के लिये जब कोई अन्य निमित्त उपस्थित हो जाता है, तब वह घटना काकतालीयन्याय की उदाहरण रूप समझी जाती है। ऐसी घटना के दे। नमूने हम कथासरित्सागर से देते हैं।

जिस समय इस देश की राज्यलक्ष्मी इसी देश के नृपतिरत्नों में अनुरक्त थी, उस समय अयोध्या में प्रवरवर्म्मा नाम राजा राज्य करता था। उस राजा के भुवनमोहिनी नाम एक कन्या थी। यह कन्या सचमुच भुवनमोहिनी थी। यह सर्वाङ्गसुन्दरी जब उपवर हुई तब इसके पिता ने इसके लिये योग्य वर ढूंढ़ने में कोई बात उठा न रक्खी; परन्तु कन्या के अनुरूप उसे कोई राजकुमार न मिला। एक बार भुवनमोहिनी अपने महल के ऊपरी खण्ड पर खड़ी खड़ी सब ओर नयननिक्षेप कर रही थी, कि उसने मार्ग में जाते हुए एक बड़े ही रम्यरूप युवक का देखा। देखकर उसमें वह अनुरागवती हो गई और अपना अभिप्राय प्रकट करने के लिये उस युवक के पास उसने अपनी सखी भेजी। सखी ने उस युवक के पास आकर राजनन्दिनी की अभिलाषा कही; परन्तु युवक के मन में यह शंङ्का उत्पन्न हुई कि ऐसी प्रार्थना स्वीकार करने से कहीं मेरे ऊपर कोई आपत्ति न आवै; इस लिये उसने राजकन्या की सखी के कहे हुए सन्देश का अनुमोदन न किया। इसपर उस परिचारिका ने युवक के अनेक प्रकार से विश्वास दिलाया और कहा कि कन्या की मनोऽभिलाषा पूरी करने में उसे किसी प्रकार का भय नहीं है। उस दासी ने समझा बुझाकर निकटवर्ती देवालय में राजपुत्री को सायङ्काल दर्शन देने के निमित्त आने के लिये उस युवक से अतिशय निर्बन्ध किया। इस बात को उस पथिक ने किसी प्रकार स्वीकार तो कर लिया; परन्तु दासी के वहां से चले जाने पर समझ हो कर भी वह उस मन्दिर में नहीं आया; भयवश उसने नगर ही छोड़ दिया।

जिस समय की यह बात है उस समय प्रतापपुर के विशालबाहु नामक राजा के परलोकगामी होने पर उसका पुत्र आजानुबाहु सिंहासन पर आसीन था; परन्तु उसके कुटुम्बियों ने एका करके उससे सारा राज्य छीन लिया था।

आजानुबाहु ने, अपने शत्रुओं को परास्त करने का अन्य मार्ग न देखकर, महाराज प्रवरवर्म्मा की सहायता लेने के लिये, अयोध्या की ओर एकाकी प्रस्थान किया। सायङ्काल वह अयोध्या पहुंचा और रात व्यतीत करने के लिये उसी मन्दिर में आकर ठहरा जिसमें भुवनमोहिनी ने उस युवक पथिक के आने का सङ्केत किया था। राजकन्या भी यथा समय उस मन्दिर में आई, परन्तु अँधेरी रात होने के कारण आजानुबाहु को उसने वही पूर्वदृष्ट पथिक जाना; अतएव अपने साथ विवाह करने के लि

उससे प्रार्थना की। यह सुनकर आजानुबाहु बहुत विस्मित हुआ; परन्तु बिना किसी प्रतिवाद के आनन्दपूर्वक राज्यकन्या की प्रार्थना उसने स्वीकार की। इस प्रकार उस राजपुत्र को सत्यपाश से बद्ध कर और अपनेको कृतार्थ मान वह राजकन्या अपने निवासभवन को लौट आई। आजानुबाहु ने वह रात उसी मन्दिर में व्यतीत की। प्रातःकाल वह महाराज प्रवरवर्म्मा से मिला और अपना सारा वृत्तान्त उससे निवेदन किया। प्रवरवर्म्मा ने उसको अभयदान दिया और उसके शत्रुओं को परास्त करके उसका राज्य उसे वापस दिलाने का दृढ़ सङ्कल्प भी किया। इसके साथ ही आजानुबाहु के स्वरूप और गुणों पर मोहित हो कर उसे अपनी कन्या देने का भी प्रस्ताव प्रवरवर्म्मा ने किया। इस प्रस्ताव को सुनकर रातवाला सारा वृत्तान्त आजानबाहु ने प्रवरवर्म्मा से कहा और यह भी सूचित किया कि इस विषय में वह अपनी अनुमति पहले ही दे चुका है। भुवनमोहिनी ने भी इस बात को माता पिता से छिपाना अनुचित समझ कर सखी के मुख से रात की बात अपनी माता को सूचित की।

बहुत दिन तक कुमारिका रहने के अनन्तर अपना वर ढूंढ़ने की इच्छा से राजकन्या ने एक अपरिचित पथिक से मिलने का सङ्केत किया, परन्तु सङ्केतित स्थान में पथिक के स्थान में भाग्यवश उसे एक राजकुमार मिल गया। इस काकतालीय घटना को सुनकर राजा प्रवरवर्म्मा को बड़ा आश्चर्य्य हुआ। राजा को, इस प्रकार, आश्चर्य्य चकित देखकर सभास्थित सर्वज्ञशर्म्मा नाम पण्डित ने कहा—"महाराज! इसमें आश्चर्य्य की कौन बात है? भवितव्यता बड़ी प्रबल होती है। इस बात को प्रमाणित करने के लिये मैं एक छोटी सी आख्यायिका आपसे कहता हूं"।

सर्वज्ञशर्म्मा ने कहा, बात कहीं दूर की नहीं है; निकटवर्ती रत्नपुर ही की है। एक बार इस नगर में देवदत्त नामधारी एक ब्राह्मण देशाटन करते हुए कहीं से आया। वह महानिर्धन था। उसके साथ उसकी स्त्री भी थी और कई पुत्र भी थे। देवदत्त ने रत्नपुर में शीलशर्म्मा नामक गृहस्थ के यहां नौकरी कर ली। इस गृहस्थ ने देवदत्त की दीनता देख उसकी स्त्री को भी अपने यहां परिचारिका के कार्य्य पर रख लिया और उसके लड़कों को भी क्षेत्रनिरीक्षण पर नियोजित कर दिया।

कुछ काल के अनन्तर शीलशर्म्मा की कन्या के विवाह का शुभ मुहूर्त आया। इस मङ्गल कार्य्य में अनेक लोग भोजन के लिये निमन्त्रित किए गए। देवदत्त ने समझा जब इतने मनुष्य निमन्त्रित हुए हैं, तब मुझे भी निमन्त्रण आवैहीगा। अतएव परिवार सहित उसने एक दिन पहले ही से कुछ नहीं खाया; अनाहार बैठा रहा। यथाक्रम जितने लोग बुलाए गए थे, भोजन करके सब अपने अपने घर गए; परन्तु देवदत्त को कोई बुलाने नहीं आया। दो दिन निराहार रहने से देवदत्त की बुरी दशा हो गई। दूसरे दिन उसने रात के समय अपनी स्त्री से कहा—"देख, मुझे दरिद्री और मूर्ख जान इन लोगों ने मेरा निरादर किया और भोजन के लिये न बुलाया; अतएव मैं एक ऐसी युक्ति करना चाहता हूं जिसमें ये लोग मेरा गौरव करने लगें। मैंने यह निश्चय किया है कि शीलशर्म्मा के दामाद का घोड़ा चुपचाप खोलकर एक ऐसे स्थान में बांध आऊं जहां किसीको उसका पता न लगै"। इस प्रकार अपनी स्त्री से परामर्श करके रात को शीलशर्म्मा के दामाद का घोड़ा खोलकर वह एक ऐसे स्थान में बांध आया जहां किसीको उसका पता न लग सकै। प्रातःकाल घोड़े को न देखकर शीलशर्म्मा के आदमियों ने उसे सब कहीं ढूढ़ डाला, परन्तु कहीं भी उसका पता न मिला। ऐसे मङ्गलमय समय में अनायास घोड़े के चुराए जाने के कारण सबके मन में बड़ाही उद्वेग उत्पन्न हुआ। परन्तु करते क्या? किसीसे कुछ न हो सका।

इसी अवसर पर देवदत्त की स्त्री ने, जैसा कि उसके पति ने उसे सिखला रक्खा था, शीलशर्म्मा

से जाकर निवेदन किया कि, मेरा पति एक प्रसिद्ध ज्योतिषी है, अतः उससे आप घोड़े के विषय में क्यों नहीं प्रश्न करते? यह सुनकर शीलशर्म्मा ने देवदत्त को बुला भेजा। जब देवदत्त आया तब शीलशर्म्मा ने उससे मीठी मिठी बातें कह कर यह प्रकट किया कि, वह बिवाह के गड़बड़ में उसे निमन्त्रण देना भूल गया था; जब घोड़ा चोरी गया तब उसे उस बात का स्मरण आया। शीलशर्म्मा ने देवदत्त से कहा कि उसकी इस भूल पर आपको अपना मन मलीन न करना चाहिए। इस प्रकार चाटुकारिता करने के अनन्तर शीलशर्म्मा ने देवदत्त से घोड़े के विषय में विचार करने के लिये कहा। यह सुनकर देवदत्त ने झूठमूठ अनेक रेखाएं पृथ्वी पर खींच और अपनी उँगलियों पर कुछ उलटी सीधी गणना करके यह उत्तर दिया कि, खोया हुआ घोड़ा दक्षिण दिशा में अमुक स्थान पर मिलैगा। उसने यह भी कहा कि यदि उसे आप अभी तत्काल ही न ढूंढ़ मगावैंगे तो शायद चोर उसे स्थानान्तरित करदेंगे। देवदत्त के उत्तर को सुनकर शीलशर्म्मा ने अपने मनुष्यों को जो देवदत्त के कथित स्थान को भेजा तो घोड़ा वहां बँधा हुआ सुरक्षित मिला। घोड़े को पाकर शीलशर्म्मा ने देवदत्त का बड़ा आदर किया और उसे बहुत धन देकर सन्तुष्ट किया।

कुछ काल के अनन्तर उसी नगर के राजा के यहां चोरी हो गई। उसके अनेक बहुमूल्य आभूषण उठ गए। बहुत खोज करने पर भी जब चोरों का तथा आभूषणों का कुछ पता न मिला तब देवदत्त बुलाया गया। देवदत्त की गणना की ख्याति राजा के कानों तक पहुंच चुकी थी। देवदत्त ने राजा के प्रश्न का उत्तर देने में अपने को असमर्थ समझ यह विनय किया कि मैं चोरी का पता कल लगादूंगा; विचार करने के लिये मुझे एक दिन का अवकाश दिया जाय। इस बहाने देवदत्त ने वहां से भाग जाना चाहा; परन्तु राजा ने उसे एक मकान में रख दिया और उसके द्वार पर पहरा बिठला दिया, जिसमें वह कहीं चला न जावै।

उस घर के भीतर बन्द किए जाने से देवदत्त बहुत दुःखित हुआ। अपने अभाग्य पर वह बहुत रोया और इस विपत्ति से बचने का कोई उपाय न देख कर अपनी जिह्वा को बार बार धिक्कारने लगा। उसने कहा "हे जिह्वे! तूने जो यह दुष्कर्म्म किया है उसका फलभोग करना ही पड़ेगा। बचने का अब कोई उपाय नहीं।" उसकी जिह्वा ही ने शील-शर्म्मा से झूठ बोलकर देवदत्त को गणक सिद्ध किया था। इसी लिये देवदत्त ने अपनी इस विप[त्ति]... विपत्ति का कारण उसे ही ठहराया।

जिस राजा के यहां से आभूषणों की चोरी हुई थी उसके यहां जिह्वा नाम की एक दासी थी। इस दासी ने अपने भाई की सहायता से यह चोरी की थी। जब उसने सुना कि प्रसिद्ध ज्योतिषी देवदत्त चोरी का पता लगाने के लिये एक एकान्त घर में रक्खा गया है और राजा के प्रश्न का उत्तर उसने कल देने का वचन दिया है, तब वह बहुत घबड़ाई। उसको निश्चय हो गया कि देवदत्त उसका नाम अवश्य ही बतला देगा। उस समय उसके मन में यह आया कि छिपकर देखूं तो देवदत्त अ[केले] उस घर में क्या कर रहा है। यह निश्चय करके वह उस घर की ओर चली जिसमें देवदत्त [बन्द] था। रात के समय, वहां जाकर, पिछले द्वार [के] किवाड़े की दरज में कान लगा कर वह बातें सु[नने] लगी। कुछ देर वहां उस प्रकार खड़ी रहने [पर] वह वाक्य उसे सुन पड़ा जो ऊपर दिया जा चु[का] है और जिसे देवदत्त ने अपनी जिह्वा को सम्बो[धन] करके कहा था। चूंकि उसका भी नाम जिह्वा [था] अतः उस वाक्य को सुनकर उसके होश उड़ ग[ए।] उसे यह विश्वास हो गया कि देवदत्त ने जा[न] लिया कि उसीने चोरी की है।

जब जिह्वा को यह विश्वास होगया और उस[के] होश हवास ठिकाने हुए, तब उसने पहरेवाले [को] कुछ घूस देकर भीतर प्रवेश किया और देव[दत्त] को साष्टाङ्ग प्रणाम करके अपने अपराध को अ[पने] ही मुख से स्वीकार किया। उसने देवदत्त से अ[...]

प्राण रक्षण के लिये बहुत ही गिड़गिड़ा कर प्रार्थना की और अपने हाथ में पहने हुए कड़ों को उसके सम्मुख रख दिया। अनायास ही चोर का पता लग जाने से देवदत्त मन ही मन बहुत प्रसन्न हुआ और जिह्वा को इस प्रकार धमकाने लगा। उसने कहा "री पापिनी! तूने मुझ ऐसे सर्वज्ञ ज्योतिषी के रहते चौरकर्म्म करने का साहस किया। तू महा विश्वासघातिनी है! तूने अपने स्वामी ही से विश्वासघात किया!! यदि मैं चाहूं तो तुझे कड़ी फांसी दिला सकता हूं; परन्तु मैं ब्राह्मण हूं। ब्राह्मण इतने निर्दयी नहीं होते; इससे मैं तेरा प्राण नहीं लेना चाहता हूं। बता तूने सब आभूषण कहां रक्खे हैं?" इस प्रकार धमकाई जाने पर जिह्वा ने बतलाया कि वह सब माल मैंने राजप्रासाद के पीछे बाग़ में अमुक वृक्ष के नीचे गाड़ दिया है। यह सुनकर देवदत्त ने अनेक प्रकार वागदण्ड देकर और जिह्वा के दिए हुए आभूषण को आनन्द पूर्वक ग्रहण करके उसे जाने दिया।

प्रातःकाल होते ही देवदत्त राजा के सम्मुख लाया गया। वहां जाने पर उसने घण्टों पोथी पत्रे उलटकर जिह्वा के कहे हुए स्थान पर चोरी गए आभूषणों का होना बतलाया। इस बात को सुनकर राजा के अनुचरों ने तत्काल वहां जाकर खोदा तो सारा माल मिल गया। देवदत्त के लक्षण गणनाचातुर्य्य पर राजा बहुत ही प्रसन्न हुआ और यथोचित पुरस्कार देकर उसे उसने बिदा किया।

कहां देवदत्त का अपनी जिह्वा की गर्हणा करना और कहां जिह्वा नामधारिणी दासी का उसे अपनी ही गर्हणा समझना? काकतालीय घटनाएं ऐसी ही हुआ करती हैं॥

महावीरप्रसाद द्विवेदी।

युनिवर्सिटी कमिशन *

शिक्षक विश्वविद्यालय

विश्वविद्यालय के मुख्य उद्देश्य (१) विद्या की उन्नति करना और (२) उसका प्रचार करना है। इन दोनों उद्देश्यों को पूरा करने के लिये विश्वविद्यालयों को शिक्षक और परीक्षक दोनों ही होना चाहिए। जो विद्यार्थी भारतवर्ष के विश्वविद्यालयों की परीक्षा देना चाहते हैं, उन्हें किसी संयुक्त विद्यालय में पढ़ना पड़ता है। अतएव भारतवर्ष के विश्वविद्यालय एक प्रकार से शिक्षक भी हैं। जब लण्डन का विश्वविद्यालय केवल परीक्षा ही लेता था, तब वहां यह बात नहीं थी, अतएव आज कल भारतवर्षीय विश्वविद्यालयों में और लण्डन और ओक्सफ़ोर्ड के विश्वविद्यालयों में मुख्य भेद यही है कि यहां विद्यालय देश भर में सर्वत्र बने हुए हैं, परन्तु वहां उनके केन्द्र केवल मुख्य मुख्य नगरों में ही हैं। परन्तु भारतवर्षीय विश्वविद्यालयों को इस प्रकार के शिक्षक विश्वविद्यालय बनाने में अनेक अनिवार्य कठिनाइयां हैं। ऐसा करने के केवल दो ही उपाय हैं। या तो प्रत्येक कालिज विश्वविद्यालय बना दिया जाय और उनके सिनेट, सिण्डिकेट तथा फ़ेलो लोग जुदे जुदे हों; अथवा भारतवर्षभर में आज कल जितने कालिज हैं, वे सब उठा कर, उनके केन्द्र केवल विश्वविद्यालयों में ही स्थापित कर दिए जांय। इन दोनों में से कोई भी बात सम्भव नहीं देख पड़ती, क्योंकि शिक्षक विश्वविद्यालय का यह अर्थ है कि वह विद्यालय शिक्षक, परीक्षक और पदवी-दाता भी हो, तथा वहीं विद्यार्थियों के रहने का भी नियम हो जैसा कि यहां के मेडिकल कालिज और इञ्जीनियरिङ्ग कालिज हैं।

---

* बाबू गोविन्ददास ने जो गवाही दी थी और जिसका उल्लेख इस मास की विविध वार्ता में है, उसीका अनुवाद।

परन्तु इन सब कठिनाइयों के रहते भी कोई विश्वविद्यालय शिक्षक कहलाने योग्य नहीं है जब तक कि उसमें पूर्णतया ये सब बातें न हों। अतएव हमलोगों की यह सम्मति है कि विश्वविद्यालय बी० ए० तक केवल परीक्षक ही रहे। उसकी शिक्षा इन परीक्षाओं के पीछे अर्थात् एम० ए०, डी० एस० सी०, डी० लिटरेचर और एल० एल० डी० से आरम्भ हो। बी०ए० होने के पीछे की शिक्षा के लिये स्वीकृत प्रोफ़ेसरों का नियत करना उचित होगा।

ग्रेजुएट विद्यार्थियों के लिये विश्वविद्यालयों का विज्ञान और साहित्य की पढ़ाई के लिये कुछ छात्रवृत्ति (स्कालरशिप) भी नियत करने चाहिएं जैसा कि बङ्गाल गवर्न्मेण्ट कलकत्ता विश्वविद्यालय के लिये करती है। इन वृत्ति पानेवालों के लिये यह भी आवश्यक करना चाहिए कि वे कलकत्ते की भांति देशभाषाओं में वैज्ञानिक तथा साहित्य के विषयों पर सब लोगों के समझने योग्य व्याख्यान उसी रीति पर दें, जैसा कि इङ्गलैण्ड में विश्वविद्यालय के एक्स्टेन्शन सिस्टम में किया जाता है।

इसके अतिरिक्त, सभा की यह अनुमति है कि प्रत्येक साल युरप से अच्छे अच्छे विद्वान ६ महीने के लिये, लगभग १००० पाउण्ड देकर विश्वविद्यालय के केन्द्रों में ग्रेजुएट विद्यार्थियों को पढ़ाने के लिये बुलाए जांय। भारतवर्ष प्रोफ़ेसर रेमज़े तथा लार्ड केलविन ऐसे विद्वानों के यहां कुछ वर्ष तक ठहरने के लिये उचित पुरस्कार नहीं दे सकता, परन्तु इतना देना कोई कठिन बात नहीं होगी कि जिससे ये यहां कुछ महीनों के लिये आ सकें। प्रत्येक विश्वविद्यालय एक एक प्रोफ़ेसर बुलावे और ऐसा प्रबन्ध किया जाय कि प्रत्येक प्रोफ़ेसर एक एक महीने प्रत्येक विश्वविद्यालय के केन्द्रों में व्याख्यान दे। ऐसा प्रबन्ध करना कदाचित् कठिन नहीं होगी और यह आशा की जाती है कि इससे विद्यार्थियों के विचार उच्च होंगे, तथा शिक्षक-वर्गों की भी योग्यता बढ़ेगी। इसके अतिरिक्त यदि इन श्रेणी के विद्यार्थियों के लिये कोई यूरोपीय भाषा के, यथा फ़्रेञ्च वा जर्मन पढ़ाने, का नियम कर दिया जाय तो उत्तम होगा, क्योंकि ऐसे विषयों के कई मुख्य ग्रन्थ इन भाषाओं में है।

विश्वविद्यालय में रहने के लाभों को कुछ न कुछ प्राप्त करने के लिये वे सब विद्यार्थी जिनके कालिज के नगर में सम्बन्धी या माता पिता नहीं उस कालिज की धर्मशाला में रहने के लिये विवश किए जायं जिसमें कि वे पढ़ते हों।

डिग्री परीक्षा के सम्बन्ध में, हम लोगों का सविनय निवेदन है कि इन परीक्षाओं को और भी कठिन करने की कोई भी आवश्यकता नहीं है। जीवन के सब आवश्यक कार्यों के लिये यथेष्ट कठिन और उच्च हैं। साधारण सरकारी आफ़िसों के लिये सरकार को विशेष विद्वानों की आवश्यकता नहीं है। परीक्षा ऐसी होनी चाहिए कि अधिकांश विद्यार्थियों के लिये सहज हो और उन्हें परीक्षा देने तथा उसमें उत्तीर्ण होने में सुगमता हो। जिन लोगों को किसी विषय अथवा विषयों में विशेष ज्ञान प्राप्त करने के लिये समय, द्रव्य और मन हो उनके लिये उच्चतम परीक्षाएं, यथा डी० एस सी० डी० लिटरेचर, आदि होनी चाहिएं। परन्तु ऐसे लोग स्वभावतः थोड़े निकलेंगे। बङ्गाल में इस अभाव को प्रेमचन्द रायचन्द की स्कालरशिप कुछ अंश में दूर करती है। अतएव सभा की प्रार्थना है कि जिन युनिवर्सिटियों में ये उच्चतम परीक्षाएं न होती हों, उनमें ये परीक्षाएं तथा उनकी पढ़ाई जारी की जांय।

साधारण एफ़० ए० और बी० ए० की परीक्षा के लिये यह बात आवश्यक न की जाय कि जो लोग इन परीक्षाओं को देना चाहें उन्हें किसी संयुक्त कालिज में पढ़ कर अपनी उपस्थिति का प्रमाण-पत्र प्राप्त करना वाध्य हो; परन्तु इस सम्बन्ध में मद्रास युनिवर्सिटी का नियम (सन् १९०१-२ का केलेण्डर भाग १, पृष्ठ ४८ और ५४) ग्रहण किया जा सकता है।

मद्रास युनिवर्सिटी में हरेक विद्यार्थी को परीक्षा के लिये तीन विषय लेने पड़ते हैं ग्रैार साथ ही इसके वह किसी एक वर्ष में ग्रपनी रुचि के ग्रनुसार किसी एक विषय में, वा दो विषयों में, ग्रथवा तीनों विषयों में परीक्षा देसकता है। यदि वह इन विषयों में से किसी में उत्तीर्ण हो जाय, तो उसे ग्रागामी वर्षों में उस विषय में फिर परीक्षा नहीं देनी पड़ती।

इसके ग्रतिरिक्त परीक्षा की फ़ीस भी प्रत्येक विषय की ग्रलग ग्रलग लगती है, यथा ग्रंगरेज़ी की १२), दूसरी भाषा का ६), विज्ञान की १८) ग्रादि। ये बड़े ग्रच्छे नियम हैं ग्रैार इनका प्रचार सब युनिवर्सिटियों में होने के लिये सभा विशेष ज़ोर देती है। ऐसा होने से विद्यार्थियों को ग्रपनी परीक्षा के सब विषयों को पूर्ण रीति से ग्रध्ययन करने का ग्रवसर मिलेगा ग्रैार उपाधिप्राप्त लोग ग्राज कल की ग्रपेक्षा ग्रधिक योग्य होंगे। इस नियम के ग्रवलम्बन करने से, उपाधिप्राप्त लोग ग्राज कल की ग्रपेक्षा किसी प्रकार से न्यून नहीं होंगे; क्योंकि भिन्न भिन्न विषयों के ग्रध्ययन के लिये जो ग्रधिक समय दिया जाता है, इससे यदि कोई दोष भी होगा तो वह भी दूर हो जायगा। शिक्षा, द्रव्य सम्बन्धी सार को छोड़ कर, शिक्षा ही के हेतु, ग्रर्थात् ज्ञानोद्दीप्ति के हेतु दी जानी चाहिए ग्रैार उसकी उन्नति किसी ग्रवस्था में नहीं रोकी जानी चाहिए। ग्रतएव बी० ए० की परीक्षा ग्राज कल से ग्रधिक कठिन न की जानी चाहिए ग्रैार उसकी परीक्षा देनेवाले विद्यार्थियों के लिये हरेक प्रकार की सुगमता होनी चाहिए।

क़ानून

जब कि साहित्य ग्रैार विज्ञान की परीक्षाग्रों के केन्द्र बनाने का कोई यत्न नहीं किया जाता, तो केवल क़ानून के लिये केन्द्रस्थ कालिज का होना उचित नहीं जान पड़ता। प्रथम श्रेणी के कालिज, यदि वे क़ानून की पढ़ाई के लिये उपयुक्त प्रवन्ध कर सकें, तो उन्हें बी० एल० या एल० एल० बी० उपाधि के लिये सहायक बना लेना चाहिए, जैसा कि ग्राज कल कलकत्ता युनिवर्सिटी में किया जाता है।

हम लोगों की दूसरी प्रार्थना यह है कि जो लोग वकालत कर रहे हों, तथा ग्रैार सब प्रकार से योग्य हों, उनके लिये उपस्थिति के प्रमाण पत्र की ग्रावश्यकता न होनी चाहिए, क्योंकि वे लोग उससे कहीं बढ़ कर शिक्षा पाते हैं जो कि किसी कालिज में मिल सकती है।

इसके ग्रतिरिक्त हम लोग चाहते हैं कि क़ानून की उच्चतम पढ़ाई को उचित उत्साह दिया जाय। एल० एल० बी० लोगों की ग्रपेक्षा एल० एल० डी० लोगों को कचहरियों में वकालत करने में तथा उच्चतम दीवानी विभाग की नैाकरियों के पाने में कुछ ग्रधिक ग्रधिकार दिया जाय। जो लोग किसी युनिवर्सिटी को एल० एल० डी० परीक्षा में उत्तीर्ण हों, वे भिन्न भिन्न प्रान्तों के न्यायालयों में वकालत करने पावें ग्रैार यही ग्रधिकार एल० एल० बी० लोगों को भी दिया जाय यदि वे प्रान्तिक क़ानून की परीक्षा में, जो कि प्रत्येक प्रान्त में इसी हेतु हुग्रा करे, उत्तीर्ण हों। यह बात इलाहाबाद हाईकोर्ट के वकीलों ग्रैार एल० एल० बी० लोगों के लिये, जो कि ग्रवध में वकालत करना चाहते हैं, होती है। उन लोगों के लिये यह भी ग्रावश्यक किया जाय कि वे हिन्दू ग्रथवा मुसलमानी क़ानून को मूल संस्कृत वा ग्ररबी के ग्रन्थों से पढ़ें। न्यायालयों के सम्मुख हिन्दू वा मुसलमानी क़ानून के पेचीले मुक़द्दमे बहुधा उपस्थित होते हैं। ग्रतएव एल० एल० डी० विद्यार्थियों के लिये इन क़ानूनों का मूल ग्रन्थों से पढ़ना कुछ ग्रनुचित नहीं है।

इञ्जीनियरी

ऐसे कालिजों में यथा रुड़की कालिज में भरती करने ग्रैार स्कालरशिप तथा नैाकरियां देने में प्रान्त ग्रैार जाति का विचार करना ग्रन्याय है। ऐसी बाधाएं डालने से इन कालिजों के लाभ को बड़ी हानि पहुंचती है। ये युनिवर्सिटी के ग्राधीन होने चाहिएं ग्रैार

इनमें भरती होने के नियम ऐसे हो जो कि सबके लिये एक हों। हम लोगों के इसका कोई कारण नहीं दिखलाई देता कि इन कालिजों में भरती होने वालों के लिये जाति पांति और धर्म की बाधा क्यों डाली जाती है। रुड़की इञ्जीनियरिङ्ग कालिज इलाहाबाद युनिवर्सटी में सम्मिलित किया गया है और इस युनिवर्सिटी में एक फ़ेकलटी आफ़ इञ्जीनियरिङ्ग भी है; परन्तु हम लोगों की समझ में नहीं आता कि इस सम्मिलित करने तथा फ़ेकलट बनाने से क्या तात्पर्य है जब कि युनिवर्सिटी न तो परीक्षा के विषय नियत करती है, न परीक्षा ही लेती है और न उपाधि ही देती है।

इलाहाबाद युनिवर्सिटी केलेण्डर में रुड़की इञ्जीनियरिङ्ग कालिज की स्थिति विचित्र जान पड़ती है। यह कालिज स्वयम् ही एक जुदी युनिवर्सिटी है और फिर भी इलाहाबाद युनिवर्सिटी में सम्मिलित है, यद्यपि इस युनिवर्सिटी को उस कालिज सम्बन्धी किसी विषय में अधिकार नहीं है।

हम लोग इस बात पर विशेष ज़ोर देंगे कि रुड़की कालज को परीक्षा साहित्य और विज्ञान की परीक्षाओं की नाईं सीधे युनिवर्सिटी द्वारा हो, जैसा कि मद्रास, बम्बई और कलकत्ते की युनिवर्सिटियों में होता है, अर्थात् ये युनिवर्सिटिएं पाठ्य पुस्तकें नियत करती हैं और उपाधि भी देती हैं। आज कल भिन्न भिन्न युनिवर्सिटिएं इञ्जीनियरिङ्ग के लिये जो उपाधि देती हैं वे भिन्न भिन्न हैं। ऐसा न होना चाहिए; यथा बम्बई युनिवर्सिटी की एल० सी० ई० और एम० सी० ई०, पञ्जाब की सी० ई० (प्रथम परीक्षा), मद्रास की बी० ई० और कलकत्ते की बी० ई० और एम० ई०। इन सभों के स्थान पर केवल बी० ई० और एम० ई० की उपाधि दी जाय। इसके अतिरिक्त हम लोगों की अनुमति है कि शिक्षक लोगों को रायल इञ्जीनियरों में से नियुक्त करने की प्रथा उठा दी जाय और वे लोग भिन्न भिन्न विषयों के निपुण लोगों में से चुने जाया करें।

डाक्टरी

वैद्यक की परीक्षाओं के सम्बन्ध में हम लोग यह अनुमति देंगे कि संयुक्त प्रदेश में भी कई अन्य युनिवर्सिटियों की नाईं प्रान्तिक युनिवर्सिटी के आधीन एक मेडिकल कालिज स्थापित किया जाय जो कि एम० बी० और एम० डी० उपाधि दे। यह बात आगरा मेडिकल स्कूल के बढ़ा देने और उसे प्रान्तिक युनिवर्सिटी में सम्मिलित कर लेने से, सहज ही में हो सकती है। मेडिकल कालिजों के शिक्षकगण भी बहुधा इण्डियन मेडिकल सर्विस में से नियुक्त किए जाते हैं। अतः इञ्जीनियरिङ्ग की नाईं इसमें भी शिक्षक लोगों का चुनाव एक विशेष श्रेणी के लोगों में से नहीं होना चाहिए। यह रीति उस अवस्था में बहुत ही हानिकारक होती है जब कि प्रोफ़ेसर लोग एक विषय के पढ़ाते पढ़ाते दूसरे विषय पढ़ाने लगते हैं अथवा जब उन्हें प्रोफ़ेसरी छोड़ कर भिन्न भिन्न नगरों में डाक्टरी का सर्कारी काम करना पड़ता है।

सब मेडिकल कालिजों में आयुर्वेदी और यूनानी रीतियों के पढ़ाए जाने के लिये एक जुदा विभाग होना चाहिए। क्योंकि ये इस देश की विद्याएं होने के कारण सर्वसाधारण के स्वभाव तथा चित्त के अनुकूल हैं और अशिक्षित लोग अङ्गरेज़ी दवाइयों की अपेक्षा इसका अधिक प्रयोग करते हैं। इन रीतियों के प्रचलित करने और वैज्ञानिक अध्ययन से बहुत लाभ होगा और बहुत से हिन्दुस्तानी लोग उन टुटपुञ्जियों के हाथ से बचेंगे जो कि समाज के लिये एक भय और आपदा के कारण हैं और जिनकी संख्या दुर्भाग्यवश बढ़ रही है। हमलोगों की अनुमति है कि इनकी पढ़ाई देशभाषाओं में हो और इनमें अनाटमी, सर्जरी आदि विषय भी पढ़ाए जायं। ऐसा करने से आयुर्वेदी और यूनानी विद्यार्थी लोग योग्य वैद्य और हकीम हो जायंगे और इस प्रकार से एक बड़ा अभाव दूर हो जायगा, जिसके कारण हिन्दुस्तानी लोग बहुत हानि उठा

रहे हैं। इसके अतिरिक्त हमलेगों की यह भी अनुमति है कि युनिवर्सिटी इस विभाग के विद्यार्थियों को एक जुदी ही रीति से परीक्षा लेकर उन्हें उपाधि दे।

कृषि

भारतवर्ष के कृषिप्रधान देश होने के कारण, इस विभाग में रीत्यनुसार तथा वैज्ञानिक शिक्षा की बड़ी आवश्यकता है और बिना इस विषय के सम्मिलित किए, जैसा कि बम्बई युनिवर्सिटी में होता है, कोई युनिवर्सिटी शिक्षा पूरी नहीं कही जा सकती। इसका बीज कानपुर एग्रिकलचरल स्कूल में है। वह सहज ही में कालिज बनाया जाकर युनिवर्सिटी में मिलाया जा सकता है जैसा कि ऊपर मेडिकल और इञ्जीनियरिङ्ग कालिजों के सम्बन्ध में प्रस्ताव किया जा चुका है।

शिक्षकगण

विश्वविद्यालयों में शिक्षाप्रणाली में भी परीक्षाएं ली जानी चाहिएं। इलाहाबाद में एक ट्रेनिङ्ग कालिज है जोकि शिक्षक, परीक्षक तथा उपाधिदाता तीनों ही है और शिक्षा विभाग के अधीन भी है। हमलेग चाहते हैं कि उसकी परीक्षाएं भी विश्वविद्यालय द्वारा हों जैसा कि मद्रास में होता है और जैसा कलकत्ते में होने का प्रस्ताव किया गया है।

युनिवर्सिटियों की अधिकार-सीमा

हम लेगों को विश्वविद्यालयों के अधिकार को सीमाबद्ध करने की कोई आवश्यकता नहीं जान पड़ती, क्योंकि पहिले तो किसी किसी प्रान्त में विश्वविद्यालय ही नहीं हैं और दूसरे भिन्न भिन्न विद्यालयों की पुस्तकें तथा उनके उपाधियों के द्रव्यसम्बन्धी निरूपण भिन्न भिन्न हैं। परन्तु यदि ये समान भी कर दिए जायं, और ऐसा अनेक कारणों से होना आवश्यक है; तो भी यह बात उचित है कि भिन्न भिन्न विश्वविद्यालयों को किसी विशेष विषय की पढ़ाई में अधिक अनुराग दिखलाना चाहिए जैसा कि ओक्सफोर्ड और केम्ब्रिज के विश्वविद्यालयों में है। इन अवस्थाओं में प्रत्येक कालिज को अधिकार देना चाहिए कि वे जिस किसी एक वा एक से अधिक विश्वविद्यालयों में सम्मिलित होना चाहें उनमें हों, यदि वे उनके सम्मिलित करने के नियमों को पूरा पूरा पालन कर सकें।

सेनेट

यह बात सत्य है कि किसी किसी विश्वविद्यालय में सेनेट बहुत ही बड़ी हो गई है। परन्तु इलाहाबाद की सेनेट संख्या जैसी कि होना चाहिए वैसी ही है। इस बात में तनिक भी सन्देह नहीं है कि कुछ फ़ेलो के पद केवल प्रशंसोक्ति की भांति दिए गए हैं। प्रायः सभी विश्वविद्यालयों की सेनेट ने फ़ेलो चुनने में गवर्मेण्ट की अपेक्षा अधिक विवेक दिखाया है। गवर्मेण्ट के कुछ नियुक्त लोग तो केवल मूर्तिमात्र हैं, जोकि अंगरेज़ी का एक शब्द भी नहीं जानते और न शिक्षा सम्बन्धी बातों में कुछ भी ज्ञान रखते हैं। ऐसा नियोजन बन्द कर देना चाहिए।

हम लेगों की अनुमति है कि भिन्न भिन्न विश्वविद्यालयों के फ़ेलो लेगों की संख्या १२५ और १५० के भीतर होनी चाहिए।

फ़ेलो लेगों की योग्यता के सम्बन्ध में हम लेग यह अनुमति देंगे कि जो लेग शिक्षासम्बन्धी, विद्याविषयक और अन्वेषण के काम में लगे हैं और जो शिक्षासम्बन्धी बातों में उत्साह और अनुराग रखते हैं वे सब फ़ेलो के पद के लिये ग्रहणीय हों। यदि कोई फेलो निरन्तर ४ अधिवेशनों में अथवा दो वर्ष तक उपस्थित न हो तो उसका पद खाली समझा जाय। परन्तु वे लेग जो भारतवर्ष से सदैव के लिये वा दो वर्ष से अधिक के लिये चले जांय, वे भारतवर्ष से प्रस्थान करने की तिथि से फेलो न समझे जांय। फेलो के पद की अवधि के सम्बन्ध में हम लेग यह कहेंगे कि न तो बहुत ही अल्प समय और न स्थायी नियोजन ही विश्वविद्यालय के लिये हितकारी होगा। पहिली बात से उन लेगों को

घड़ी घड़ी चुनने का व्यर्थ कष्ट उठाना पड़ेगा, तथा उन लोगों के अपना कर्तव्य पूर्णतया जानने का भी समय नहीं मिलेगा; और दूसरी बात से यह होगा कि वृद्ध और क्षीणशक्ति के लोग मेम्बर रहेंगे और नवीन उमङ्ग के मनुष्य वञ्चित रक्खे जांयगे।

सभा की अनुमति में इसके लिये १० वर्ष ठीक और उचित समय होगा। इससे अवश्य ही वे लोग पुनः चुने जाने से नहीं रोके जाते। जो पद जिस वर्ग में खाली हो वह पद इसी वर्ग से पूर्ण किया जाय, अर्थात् गवर्मेण्ट से, सेनेट से वा ग्रेजुएटों से जैसी समय समय पर आवश्यकता हो।

हम लोगों की अनुमति है कि फ़ेलो के पद इस प्रकार विभाजित किए जांय—चान्सेलर, शिक्षा विभाग के डाइरेक्टर, स्कूलों के इन्स्पेक्टर और सब प्रथम और द्वितीय श्रेणी के कालिजों के प्रिन्सिपेल लोग फ़ेलो हों। बाकी के फ़ेलो के पद गवर्न्मेण्ट, सेनेट और पांच वर्ष पूर्व हुए ग्राजुएटों में बराबर बराबर बांट दिए जांय। परन्तु वे ग्राजुएट जिन्होंने उच्चतम उपाधि यथा एम० ए०, डी० लिट०, डी० एस सी० आदि प्राप्त की हो, उन्हे चुने जाने वा सम्मति देने का अधिकार प्राप्त करने के लिये ५ वर्ष तक ठहरने की आवश्यकता न रक्खी जाय।

सिण्डिकेट

सिण्डिकेट के सम्बन्ध में हम लोग उसके कानून से नियमित किए जाने में कोई दोष नहीं देखते। परन्तु सेनेट के उस पर सदैव पूर्ण अधिकार होना चाहिए और उसके नियमादि सेनेट ही द्वारा बनाए जाने चाहिए।

मद्रास विश्वविद्यालय की सिण्डिकेट, जिसमें केवल ९ सभ्य हैं, बहुत ही छोटी है। परन्तु इलाहाबाद की सिण्डिकेट, जिसमें १९ सभ्य हैं, लगभग ठीक है।

हम लोगों की अनुमति है कि पंजाब की नांई उसमें २१ सभ्य होने चाहिए। यदि केवल साधारण नित्य कर्म सब-कमेटियों के आधीन कर दिया जाय तो इससे कार्य में सुगमता हो जायगी। चुनाव इस प्रकार से हो—

वाइस चेन्सेलर
शिक्षा विभाग के डाइरेक्टर
कालेज के ५ प्रिन्सिपिल

फ़ेकल्टी आफ आर्टस् के	४	प्रतिनिधि
,, ,, सायंस	३	,,
,, ,, ला	३	,,
,, ,, मेडिसिन	२	,,
,, ,, इञ्जिनियरिङ्ग	२	,,

सिण्डिकेट का जो मेम्बर निरन्तर ती[न] अधिवेशनों में उपस्थित न हो, वह उस पद से च्युत कर दिया जाय और उसके स्थान पर दूसरा चुना जाय। सिण्डिकेट के मेम्बरों का चुनाव कलकत्ता और मद्रास की नांई किसी एक ही नगर में सीमाबद्ध न किया जाय और ये लोग दो वर्षों के लिये चुने जांय। आज कल इसकी री[ति] के विषय में बड़ा भेद है।

जो गवर्न्मेण्ट कालेज नहीं हैं वे सिण्डिकेट में उचित रीति से नहीं रक्खे जाते। परन्तु जिस री[ति] का हमलोग प्रस्ताव करते हैं उससे यह दोष जा[ता] रहेगा।

फ़ेकल्टी

हमलोगों की अनुमति में प्रत्येक फ़ेलो को प[्रत्येक] न एक फ़ेकेल्टी में होना चाहिए। यदि कोई फ़े[लो] इस योग्य न हो कि फ़ेकल्टी में रक्खा जाय तो व[ह] फ़ेलो चुने जाने योग्य नहीं है। यदि भिन्न भि[न्न] फ़ेकल्टी और बोर्ड आफ़ स्टडीज़ चुने हुए शिक्ष[कों] और ग्राजुएटों की पाठ्य पुस्तकों के चुनने में सम्म[ति] लें तो कोई हानि नहीं है। परन्तु यह आवश्यक न[हीं] है कि फ़ेकल्टीज फ़ेलो लोगों को चुने। गवर्न्मे[ण्ट] सेनेट और ग्राजुएटों को योग्य प्रार्थियों में [से] चुनाव करना चाहिए। फ़ेकल्टीज़ को यदि स[ाल] में दो बार नहीं तो एक बार अवश्य मिलना चाहि[ए]।

ग्रैजुएट

ग्रैजुएटों द्वारा फ़ेलो लोगों के चुने जाने के लिये और ऊपर लिखे अनुसार फ़ेकेल्टीज़ के उनसे अनुमति लेने के लिये ग्रैजुएटों को एक सभा बनाई जाय जैसा कि मद्रास में सन् १८८३ में डाकृर विलसन ने प्रस्ताव किया था। ऐसी सभा स्थापित करने के लिये मद्रास विश्वविद्यालय की सेनेट ने एक बिल बनाया था। इससे ग्रैजुएटों का सम्बन्ध विश्वविद्यालय की चर्या पूरी करने के पीछे भी उनसे रहेगा और इस प्रकार से उनका विद्याविषयक तथा शिक्षासम्बन्धी जीवन उत्तेजित होता रहेगा।

हमलोगों की यह दृढ़ अनुमति है कि प्रत्येक विश्वविद्यालय को अपने ग्रैजुएटों की नामधाम-सूचक पुस्तक अवश्य रखनी चाहिए।

हमलोग यह भी अनुमति देंगे कि विश्व-विद्यालय का केलेण्डर मद्रास की नांई इस भांति भागों में विभाजित किया जाय—

(१) प्रथम भाग में कानून, नियम, उपनियम स्कालरशिप और सम्मिलित कालेज आदि की नामावली हो।

(२) दूसरे भाग में परीक्षा के प्रश्न हों।

(३) तीसरे भाग में उत्तीर्ण विद्यार्थियों के और उन ग्रैजुएटों की नामावली हो जिनको विश्वविद्यालय सम्बन्धी बातों में सम्मति देने का अधिकार हो।

इसके अतिरिक्त केलेण्डर में विषयों, फेलो ग्रैजुएटों तथा पारितोषिक पाने वालों आदि लोगों की सूची और सेनेट तथा सिण्डिकेट के अधि-वेशन की तिथि भी होनी चाहिए।

विश्वविद्यालयों को यह अधिकार रहे कि वे सम्मिलित कालेजों के अध्यापकों की प्रार्थना पर केवल उन्हें वेही उपाधियां दें जिन्हें उन्होंने अन्यत्र भी पाया हो।

(शेष आगे)

लाला हंसराज जी, बी० ए०

पाठक! इस अङ्क में हम आपकी सेवा में एक सच्चे पुरुष का चित्र अर्पण करते हैं। लाला हंसराज जी उन पुरुषों में से हैं, जो आज कल के गए गुज़रे समय में भी हमारी जाति के भूषण हैं; जिनके सद्भाव से हमको आशा होती है, कि हिन्दु जाति अभी बिल्कुल मृत्यु को प्राप्त नहीं हुई। किसी जाति के जीवित जाग्रत रहने का बड़ा चिन्ह यह होता है, कि वह समय समय पर इस प्रकार के पुत्र उत्पन्न करे जो अपने आपको जाति की सेवा के अग्निकुण्ड में आहुति कर दें; जो अपना सर्वस्व ही अपनी जाति के ऊपर निछावर कर दें। इस समय भी हमारे देश में विद्वान, कवि, गणितविद्या के जाननेवाले, वैयाकरण और मीमांसक आदि बहुत हैं; धनाढ्य पुरुष भी बहुत हैं; राजे महाराजे भी अनेक हैं; सरकारी टाइटलवाले महाशय तो गली गली कूचे कूचे में हैं; प्रिन्सिपल और प्रोफ़ेसर भी अधिक हैं; प्रधान और मन्त्री भी बहुत हैं;—परन्तु ऐसे सज्जन बहुत कम हैं, जिनमें हमको जाति की प्रीति उस अंश तक दिखाई देवे जिससे हम उनको पूर्ण देशहितैषी कह सकें। इसमें सन्देह नहीं कि, इस समय देश में चारों ओर से देशहित का कोलाहल होरहा है और कुछ न कुछ देशहित प्रतीत भी होता है। पर तोभी सच्चे देशहितैषी बहुत कम हैं। जितने हैं उनमें से लाला हंसराज जी बड़े उच्चश्रेणी के हैं और उस श्रेणी में भी बड़े उच्चपद के योग्य हैं। सच तो यह है, कि हमको सारे देश में सिवाय दो तीन पुरुषों के कोई भी ऐसा भारतवासी नहीं जान पड़ता जिसके जाति-सेवा के भाव को हम लाला हंसराज के मनोभाव से तुलना दे सकें। शायद अभी योग्य समय नहीं आया, कि हम लालाजी का जीवन-चरित्र लिखने का उद्योग करें, तोभी आपको संक्षेप से उनका काम बतादेना लाभ से खाली न होगा।

सारे देश में शायद ही कोई पढ़ा लिखा पुरुष होगा, जो यह न जानता हो कि लाला हंसराज जी लाहौर के दयानन्द एंगलो वैदिक कालेज के आनरेरी प्रिन्सिपल हैं। सन् १८८६ ई० से लेकर इस समय तक वे इस पर नियत हैं और आज तक एक पैसा उन्होंने वेतन का नहीं लिया। इस गिरे हुए देश में और फिर इस अधोगति को प्राप्त हुई जाति में आज कल के समय में यह शायद पहिला ही उदाहरण है जिसमें एक ऐसे ऊंचे दर्जे की अंगरेज़ी शिक्षा और डिगरी पाए हुए युवक ने अपने जीवन को इस प्रकार विद्यावृद्धि और धर्मप्रचार के काम पर निछावर किया हो। लाला हंसराज जी ने सन् १८८५ ई० में पञ्जाब युनीवर्सिटी की बी० ए० परीक्षा पास की और सारे प्रान्त में दूसरे पद पर रहे। प्रथम पद पर उनके मित्र और पञ्जाब के भूषण स्वर्गवासी पं० गुरुदत्तजी थे। पं० गुरुदत्त और ला० हंसराज जी में विद्यार्थी अवस्था में अत्यन्त प्रेम था। पण्डित जी को लाला जी की गम्भीरता, उनके देशहितजनक विचार और उनकी विज्ञता पर बड़ा विश्वास था और धर्मप्रचार और देशहित के विचारों में वे दोनों प्रायः सहमत थे। मुझको भी इन दिनों में इन दोनों भद्र पुरुषों से प्रेम रखने का गौरव प्राप्त था, क्योंकि मैं भी उसी श्रेणी में पढ़ता था। लाल हंसराज जी के पिता उनकी बाल्यावस्था ही में परलोक सिधार गए थे और इसलिये कुटुम्ब का सारा भार उनके बड़े भ्राता लाला मुलकराज भल्ला की कमाई पर था जो अब तक चला आता है। ऐसा मालूम होता है कि इन दोनों भाइयों ने पहिले ही से यह निश्चय कर लिया था कि, एक भाई तो धन कमावे और दूसरा भाई देश की सेवा करे। यह विचार भी प्रगट करता है कि इन दोनों भाइयों के हृदयों में देशसेवा की अग्नि कैसी प्रज्वलित है। और यदि लाला मुलकराज जी अपने देश की सेवा के लिये और कुछ भी न करते, केवल इतना ही पर्य्याप्त समझते, तौभी उनकी देशहितैषिता उस उच्च कक्षा की होती कि दूसरों के लिये उदाहरण बनती। परन्तु लाला मुलकराज का जातिहित इससे भी बहुत अधिक विशाल है। वे सचमुच उन पुरुषों में से हैं जिनके हृदय में जातिसेवा की अग्नि प्रबल वेग से जल रही है और लोक की शेष सारी कामनाओं को फूंक कर राख बना रही है। उनके लेख इस बात की पूर्ण साक्षी देते हैं। पर सच तो यह है कि उनका जातिप्रेम लेख में भी नहीं आ सकता, उसको तो थोड़ा सा वही मनुष्य अनुभव कर सकता है जिसको कुछ समय उनके चरणों में व्यतीत करने का अवसर मिले। लाला मुलकराज जी भल्ला सरकारी नौकर हैं। रेलवे में अकौण्टेण्ट हैं। इस समय उनको दो सौ रुपए से अधिक वेतन मिलता है। पर जिस समय लाला हंसराज जी कालेज में पढ़ते थे उनकी आमदनी बहुत कम थी।

भारतवर्ष में अनेक धर्म्म माने जाते हैं। हिन्दू मुसलमान, जैन, आर्य्यसमाजी, ब्रह्मसमाजी इत्यादि इत्यादि कितने ही मत के प्रचण्ड विश्वासी भारतमाता की गोद में खेला करते हैं। परन्तु यह ऐसा समय है जब परस्पर एक दूसरे के मतान्तर के कारण विरोध न कर देशहितकर गुणों का आदर से ग्रहण कर सब भाई एकमत हो कार्यक्षेत्र में अवतीर्ण हों। लाला हंसराज जी एक सच्चे आर्य्यसमाजी हैं, परन्तु यदि हमारे पाठकों में से ऐसे लोग हों जो उनसे एक मतावलम्बी नहीं हैं, उनको उचित है कि लालाजी की उच्च हृदयता को आदर्शस्थल मान उनके सद्गुणों से लाभवान् हों। 'सरस्वती' पत्रिका में धर्म्मसम्बन्धी लेख छापने का नियम नहीं है। इससे लाला साहब के धर्म्मजीवन के व्यापारों को छोड़ हम लोग उनकी अन्यान्य घटनाओं ही की आलोचना इस लेख में करेंगे।

स्वामी दयानन्द सरस्वती सन् ८३ ई० में परलोक को सिधारे और उसी समय से उनके स्मरण में दयानन्द ऐंगलो-वैदिक कालेज स्थापन करने का काम आरम्भ हुआ। पर आर्य्यसमाज की अवस्था

उस समय निर्बल थी। न उसमें धनाढ्य पुरुष थे और न दूसरे प्रकार से बड़े दर्जे के आदमी थे। इस लिये अत्यन्त पुरुषार्थ करते हुए भी सन् ८६ के जून तक केवल ३६ हजार रुपया इकट्ठा हो सका। ला० हंसराज ने सन् ८५ ई० में बी० ए० परीक्षा पास की और उस साल नवम्बर में लाहौर आर्य्य-समाज के उत्सव पर यह इच्छा प्रकट की कि वे इस विद्यालय में बिना वेतन के अपना जीवन लगा दें। उनके इस उत्साह पर कालेज-कमेटी ने जून सन् ८६ ई० में स्कूल खोल दिया। ला० हंसराज ने अपनी विद्या, परिश्रम और दृढ़ प्रयत्न से बहुत शीघ्र पढ़ाने में सुख्याति प्राप्त करली और उनकी और उनके स्कूल की ख्याति सुनकर लोग दूर दूर से अपने बच्चों को भेजने लगे। स्कूल और बोर्डिंग सब भर गए और लोग हैरान थे कि इस स्कूल को इतनी सफलता हो रही है। सन् ८८ ई० में पहिली वार एफ़० ए० की श्रेणियां खोली गईं। पहिले पहल उनको भी अङ्गरेज़ी ला० हंसराज स्वयं ही पढ़ाते रहे। फिर सन् ९० ई० में कालेज में बी० ए० की श्रेणियां खोल दी गईं और इसके कुछ समय पीछे संस्कृत की एम० ए० क्लास भी खोल दी गई और कालेज सम्पूर्ण हो गया।

ला० हंसराज ने कालेज में एफ़० ए० की श्रेणी में संस्कृत अक्षर आरम्भ किए और एफ़० ए० की परीक्षा में संस्कृत ली और उसमें उत्तीर्ण हुए। उसके पीछे बी० ए० में भी संस्कृत ली और फिर स्कूल और कालेज का काम करते हुए संस्कृत विद्या में परिश्रम करते रहे। इन सब परिश्रमों का यह परिणाम हुआ कि वह शरीर जो बचपन में ही गम्भीर विचारों और विद्या में पुरुषार्थ करने के कारण अति दुर्बल था और भी दुर्बल हो गया और लाला हंसराज के मित्रों को उनकी जान का फ़िकर हो गया। डाक्टर लोग तपेदिक कहकर डराने लगे और कहने लगे कि लाला हंसराज को लाहौर से चला जाना चाहिए। बहुत दिन तक तो ला० हंसराज ने इसे स्वीकार न किया। उन्होंने सोचा कि ऐसा न हो कि लोग यह समझें कि अभी से थक गए और अब काम से जी चुराते हैं। फिर जब ला० साईंदास, ला० मुलकराज और दूसरे मित्रों ने बहुत जोर दिया तो उन्होंने कालेज से तीन मास की छुट्टी ली और लाहौर से बाहर अपने भाई के पास रहने लगे। परमात्मा की कृपा से उनके स्वास्थ्य में अच्छी उन्नति हुई और उन्होंने फिर छुट्टी से वापिस आकर अपना काम संभाल लिया जिसको वे इस समय तक कर रहे हैं। सन् ८९ ई० में ला० साईंदास के मरने पर लाहौर आर्य्यसमाज के सभासदों ने ला० हंसराज को अपना प्रधान बनाया और उस वर्ष आर्य्य प्रति-निधि सभा ने भी उनको अपना प्रधान चुन लिया। उसके कुछ समय पीछे आर्य्यसमाज में फूट पड़ी और दूसरी पार्टी के लोगों ने ला० हंसराज को बहुत बुरा भला कहना आरम्भ किया और अत्यन्त अपशब्दों से पुकारा। पर लाला जी कभी भी अपने पक्ष से झूठे होने का ख्याल अपने दिल में न लाए। हमारी समझ में तो इस निन्दा में जो गम्भीरता और दृढ़ता उन्होंने दिखलाई उससे उनका मान और भी बढ़ गया और लोगों को निश्चय होगया कि इस व्यक्ति में महान् पुरुष होने के सारे ही चिन्ह विद्यमान हैं।

ला० हंसराज जी कालेज में इतिहास और पोलीटीकल इकानोमी के प्रोफ़ेसर हैं और अपने विषय में सूबे भर में चुने हुए अध्यापक हैं। उनके विद्यार्थी सदा अच्छे दर्जे में पास होते रहे हैं। वे धर्मसम्बन्धी शिक्षा में भी हिस्सा लेते हैं और कालेज और बोर्डिङ्ग का सारा प्रबन्ध उनके अधि-कार में है। तिसपर भी सदा लाहौर समाज में और बाहिर के समाजों में धर्मप्रचार का काम करते हैं और समाज का प्रबन्ध करते हैं।

उनका निज का जीवन अत्यन्त पवित्र और सादा है। उनका धर्मभाव अत्यन्त दृढ़ है। ईश्वर-भक्ति और प्रेम की दृष्टि से वे भक्त कहलाने के अधिकारी हैं। संस्कृत भाषा के विद्वान् हैं। मनु-

स्मृति, उपनिषद्, सूत्र आदि में उन्हें अच्छा ज्ञान है। यजुर्वेद और ऋग्वेद को भी उन्होंने बहुत कुछ विचारा है। अनाथरक्षा में जो काम पञ्जाब के लोगों ने किया है उसमें उनके विचार, उनकी सम्मति और उनकी सहायता ने भी बहुत कुछ साहाय्य दिया है। उनके जीवन का निर्भर इस रीति पर है कि उनके बड़े भ्राता उनको खर्च के लिये पचास रुपया महीना देते हैं और उसमें ला० हंसराज जी अपना और अपने कुटुम्ब का निर्वाह करते हैं। उनके तीन चार सन्तान हैं और उनकी धर्मात्मा माता भी उनके साथ रहती है। लेने देने में इतने सख्त हैं कि किसी मित्र की दी हुई सम्पत्ति भी स्वीकार नहीं करते! तिसपर सामाजिक चन्दों में सदा यथाशक्ति चन्दा देते हैं। यह भी बता देना अनुचित न होगा कि ला० हंसराज उन आर्य्य समाजियों में से नहीं हैं जो अपने आपको हिन्दु जाति से पृथक समझते हैं। हिन्दुमात्र की सेवा करना, उनमें विद्या का प्रचार करना, हिन्दुजाति का उद्धार करना और उसमें वैदिकधर्म का प्रचार करना उनके जीवन का मुख्य उद्देश्य है और इसीसे वे महान पुरुष कहलाने के योग्य हैं।

गृहस्थ में रहते हुए यदि कोई पुरुष आज कल सन्यास को प्राप्त हुआ है, तो वे ला० हंसराज जी हैं। काम करते हुए अगर कोई पुरुष श्रीकृष्ण जी की शिक्षानुसार निष्काम अवस्था का पात्र बन रहा है तो वे ला० हंसराज हैं। देश में इस प्रकार के गृहस्थ वा संन्यासी यदि दस भी और हो जावें तो देश के सब दुख दरिद्र दूर हो जावें और शीघ्र ही भारतवासी उन्नत होकर जगत् की शिरोमणी जातियों में से बन जावें। परमात्मा इस जाति पर कृपा करें कि भारतमाताओं के उदर से इस प्रकार के पुत्र उत्पन्न हों।

लाजपति राय

अङ्गरेजी भाषा की उन्नति का संक्षिप्त इतिहास

उपोद्घात:—अङ्गरेज़ी शासन और विद्या की कृपा से अब बहुत से शिक्षित पुरुषों के चित्तों में देशानुराग उत्पन्न हो चला है। अब वे अपने समय का कुछ अंश देश की दीन दशा और उसके उद्धार के विचारों में भी व्यतीत करते हैं; कुछ महानुभाव तो ऐसे हैं जिन्होंने अपना जीवन ही इस महापुण्य के निमित्त समर्पण कर दिया है: और अपने समय का विशेषांश इन्हीं विचारों अथवा तत्सम्बन्धीय कार्यों में लगाते हैं। क्या हमारे देश के लिये यह एक ऐसी बात नहीं कि जिसके निमित्त अंग्रेज़ी राज्य को जितना धन्यवाद दें उतना ही थोड़ा है? किञ्चित् 'बादशाही' समय पर तो ध्यान दीजिए। उस समय की 'नई रोशनी' वाले, अर्थात् मुसलमानी शिक्षा पाए बहुतेरे धनी या उच्चपदाधिकारी महाशयों का समय विशेषत: बटेरों, वेश्याओं, भांड़ों, तमाशों में, अथवा खुशामद या किसी छलप्रपंच से धन प्राप्ति करने के विचारों में नष्ट होता था। आधुनिक राजाओं या इलाक़ेदारों के यहां चले जाइए और अब भी किसी किसी के यहां बादशाही का छोटा सा उदाहरण देख लीजिए। छल कपट से दूसरों का अधिकार छीनलेना और शत्रुओं के बालबच्चों तक को हताहत करने के प्रबन्ध सोचना, या प्रेम की भद्दी 'गज़लें' लिखना, उत्तमोत्तम कार्यों में गिने जाते थे। स्वदेश क्या है, उत्साह किसे कहते हैं और देशोन्नति किस चिड़िया का नाम है, ऐसे विचार उन्हें स्वप्न में भी न आते थे।

अस्तु, देशोन्नति तो इधर उधर दृष्टिगोचर होने लगी है; परन्तु इसके विचारों में बड़ा भेद है। किसीकी बुद्धि में देशोन्नति का एक मात्र उपाय अङ्गरेज़ी वस्त्र, अङ्गरेज़ी आचार व्यवहार, अङ्गरेज़ी धर्म और अङ्गरेज़ी भाषा का (देशीय भाषा की रीति पर) ग्रहण करना ही है। ये लोग 'हिन्दु

स्तान' को काला 'इङ्गलिस्तान' बनावेंगे; परन्तु यह नितान्त असम्भव है। इस पक्ष के सर्वथा विरोधी-विचार वाले वे लोग हैं जो समझते हैं कि अङ्गरेज़ी विद्या और शासन से इस देश को लाभ नहीं, किन्तु हानि ही पहुंची है। इनके मत के अनुसार हम लोगों का कल्याण संस्कृत पढ़ने, पूजा पाठ बढ़ाने, गौ ब्राह्मण के मानने, जाति भेद और अधिक दृढ़ करने इत्यादि सब पुराणोक्त रीतियों और आधारों के ग्रहण करने ही में है। अङ्गरेज़ी तो पढ़नी ही न चाहिए और यदि पढ़ें भी तो केवल उदरपालनार्थ और विशेष लाभ उससे कुछ न उठाया जाय। कहने की आवश्यकता नहीं कि इस पन्थवालों की बहुत अधिकता है। प्रायः सभी अशिक्षित पुरुष और स्त्री जन और इस देश के अभाग्य वश, बहुत से शिक्षित महाशय भी इस पन्थ के अनुगामी हैं। जिस पक्ष के सहायकों की सेना में सभी मूर्ख अपढ़ लोगों की गणना है वह कहां तक माननीय है, इसका निर्णय हमारे पाठकों को स्वयं करलेना चाहिए।

उपर्युक्त दो विपरीत मतों के मध्यस्थ एक मत और है, जिसके अनुसार देशोन्नति के लिये आवश्यक है कि हम लोग अपनी बुद्धि को भिन्न भिन्न विद्याओं से, देशाटन से, परस्पर विचार प्रकट करने से, तथा समाचार पत्रादि अवलोकन से तीव्र करें, और तब प्रत्येक विषयों के दोषों और गुणों पर यथाशक्ति विचार करके निश्चित सिद्धान्तों पर चलें। तात्पर्य्य यह कि बुद्धि से पूर्ण-तया काम लें। यही अपूर्व शक्ति मनुष्यत्व का मुख्य अवलम्बन है, इसके बिना हमलोगों में और पशुओं में रूप ही का अन्तर है।

हमलोगों का कर्तव्य न तो यही है कि बिना विचार किए अङ्गरेज़ों के गुण दोष सभी को आदर दें, और न यही कि जितनी बातें पुरानी हैं सभी माननीय हैं; तर्कना की कुछ आवश्यकता नहीं।

जहां तक मालूम है उच्चशिक्षा प्राप्त हुए विचारवान् महानुभावों में से विशेषतः इसी मध्यस्थ मार्ग को ठीक समझते हैं। इतिहासों के देखने से भी विदित होता है कि उन्नति सदा इसी मार्ग का आश्रय लेने से हुई है।

देशोन्नति के विषय में इतिहासों से बहुत कुछ लाभकारी शिक्षा मिल सकती है, तथा इस देश की प्रत्येक बातों के गुण दोषों पर बहुत कुछ लिखा जा सकता है। परन्तु इस लेख में संक्षेप रीति पर हम केवल यह दिखलाना चाहते हैं कि मातृभाषा की उन्नति और देशोन्नति में अति घना सम्बन्ध है। इस निमित्त हम इंग्लैंड को उदाहरण की रीति पर लेंगे। मातृभाषा और उन्नति का घनिष्ट होना इससे भली प्रकार स्पष्ट हो जायगा।

उन्नति किसे कहते हैं? इंग्लैण्ड के ऐतिहासिक विषयों का लोगों को केवल उसी समय से कुछ ज्ञान है जबसे रोम के प्रसिद्ध शासक जूलियस सीज़र ने उसपर चढ़ाई की। इस बात को दो हज़ार वर्ष के निकट हुए, क्योंकि यह चढ़ाई सन् ५५ पू० ई० में हुई थी। उस समय इंग्लैण्ड बृटेन और वहां के निवासी बृटन के नामों से प्रसिद्ध थे।

इन बृटनलोगों को कृषिविद्या का कुछ भी ज्ञान न था। फ्रांसदेश के सामने के समुद्रतट पर कुछ थोड़ी सी बहुत अस्तव्यस्त बुरी प्रकार जोती हुई ज़मीन के सिवाय प्रायः सभी देश बनों और दलदलों से भरा था। खेती, सभ्यता का पहिला चिन्ह है। उसकी जब यह दशा, तो सभ्यता की तथा और बातों की क्या आशा!! लोग खाल, बाल या वृक्षों की छाल से कुछ अपने अङ्ग ढक लेते थे और जो अङ्ग, हाथ पिण्डली इत्यादि, खुले रहते थे, उन पर नीला गोदना झलकता था। गोदने से देह को अशोभित करने की प्रथा असभ्यता का एक मुख्य लक्षण समझा जाता था। इनके धर्म की अधमता इसीसे प्रमाणित है कि अपने देवताओं को सन्तुष्ट रखने के लिये ये नरबलि दिया करते थे। बहुत कहने से क्या, इस समय ये सर्वथा असभ्य थे।

फ्रांस के निकटवर्त्ती स्थानों के निवासी बृटन लोगों की अपेक्षा विशेष सभ्य थे। ये लोग खेती

करना कुछ कुछ जानते थे, ऊन के वस्त्र पहिनते थे और सोने चांदी के आभूषणों का भी प्रयोग करते थे। यह दो हज़ार वर्ष पूर्व की दशा देखो और आज कल अंग्रेज़ों का प्रभाव, उनके गुण, खाना पीना, पहिनाव ओढ़ाव, रहन सहन, विद्यानुराग इत्यादि देखिए। इससे यह भली प्रकार विदित होजायगा कि 'उन्नति' किसे कहते हैं।

इंग्लैण्ड रोमियों के आधीन—सीज़र की चढ़ाई के बाद शनैः शनैः रोमियों ने अपना पूरा अधिकार बृटेन पर जमा लिया और ५०० वर्ष के निकट (५५ पू० ई० से ४१० स० ई० तक) उन्होंने यहां राज्य किया। ४१० स० ई० में जब रोमियों को बड़ी बड़ी आपत्तियों ने आ घेरा तब रोम के सम्राट ने अपनी सब रोमी सेना और शासकों को बृटेन से बुला लिया।

अपने शासनकाल में रोमियों ने सड़कों और सिक्कों द्वारा वाणिज्य का प्रचार किया और नगर बसाए, जिससे बहुत लोग परस्पर मिलने और एकत्रित होने लगे। इस प्रकार सभ्यता के फैलने में सुगमता हुई। इन्होंने बृटनों को कृषिविद्या और कई और भी गुण सिखाए। जिस समय इन्होंने बृटेन देश को छोड़ा, वहां से नाज, चूना, पनीर, मोती, टीन इत्यादि पदार्थ वाणिज्य के निमित्त अन्य देशों को जाते थे।

उपर्युक्त बातों से यह विदित है कि रोमियों ने कुछ देशोन्नति की। परन्तु वहां के असली निवासी बृटनों के लिये यह कुछ विशेष लाभदायक न हुई। एक अंग्रेज़ इतिहासलेखक लिखता है कि "सब नगर विदेशी विजयी जनों या उनकी सन्तति ही से बसे थे और समस्त देश में उन धनी रोमी बड़े बड़े भूस्वामियों की कोठियां छा रही थीं, जो या तो स्वयम् सपरिवार रोम से पधारे थे या जिनके पूर्वजों ने आकर यहां ही निवास करना पसन्द किया था। प्रायः सभी नीच काम देशवासियों से कराए जाते थे और सब अधिकार और धन विदेशियों के हाथ में थे"। किसी देशवासी ने यदा कदा अगर रोमी शिक्षा पाई तो वह बोली, रहन सहन, वस्त्र में उन्हींमें मिल जाता था।

क्या यही दशा हमारे देश की नहीं है। प्रत्येक नगर के निकट कितनी सुन्दर सुन्दर कोठियां पुष्पवाटिकाओं से सुशोभित, परदों से मढ़ी, पंखे चलती हुई झलकती हैं? वे विजयी अंग्रेज़ों की हैं। उदार अंग्रेज़ों ने हमको शिक्षा से वञ्चित नहीं रक्खा जैसा कि रोमियों ने बृटनों के साथ किया था, और न हम बृटनों की नाईं बुद्धहीन और असभ्य ही हैं। अंग्रेज़ों ने तो हमारे लिये स्कूल और कालिज बनाए हैं, और शिक्षितों को उनकी योग्यता के अनुसार वे अधिकार और सम्मान भी देते हैं। ऐसी दशा में हमारी यदि उन्नति न हो तो परमात्मा हमी को दोषी ठहरावेगा; अंग्रेज़ों को कदापि नहीं!

बृटन लोगों का सैक्सनों को बुलाना।—जब रोमियों ने चढ़ाई की थी, बृटन लोगों ने बड़ी वीरता और साहस से उनका मुकाबिला किया था। परन्तु ३, ४ सौ वर्ष की पराधीनता ने उनकी वीरता नष्ट कर दी। कारण यह हुआ कि रोमी लोगों के शासनकाल में आपस का लड़ाई दंगा बहुत कुछ बंद रहा और देश की शत्रुओं से रक्षा विशेष रोमी सिपाहियों द्वारा की जाती थी। जब युद्ध का काम न रहा तो वीरता क्यों न नष्ट हो जाती? बस, रोमियों के जाते ही उनकी असहाय और युद्ध शक्तिहीन प्रजा पर उत्तर और पश्चिम से आक्रमण आरम्भ हुए। यह हमला करनेवाले लोग इ बृटनों के भाईबन्द थे। नक़शे के देखने से मालू होगा कि इंग्लैंड के उत्तर में स्काट्लैंड और पश्चि में वेल्स दोनों पहाड़ी देश हैं। रोमियों की चढ़ाई के समय बहुत से बृटन लोग भाग कर इ पहाड़ी देशों में जा बसे थे; वहां रोमियों की कु चलाई न चलती थी। बहुधा ये लोग पहाड़ों से उतर कर रोमी प्रजा पर दौड़ पड़ते थे। इ रोकने के लिये रोमियों ने उत्तर में एक बड़ी भा

दीवार बनाई थी और सीमाओं पर, रक्षा के लिये, रोमी सेना भी रक्खी जाती थी। सीमारक्षक सेनाओं के हटते ही यह पहाड़ी बृटन अपने सभ्य भाई बन्दों को लूटने पाटने लगे। ये लोग बड़े ही निर्दयी थे; केवल माल ही लूटने से संतोष न करते थे, किन्तु बालकों और स्त्रियों तक को बड़ी निर्दयता से मार डालते थे। जो सम्पत्ति लेजा सकते थे वह लेजाते थे; शेष घरों समेत जलाकर नष्ट कर देते थे। सहस्रों गांव और नगर इसी प्रकार मिट्टी में मिल गए। रोमियों की सभी सभ्यतासूचक इमारतें जड़ से ग़ायब हो गईं। कुल देश राख और अधजली इमारतों से पूर्ण दीखने लगा। असमर्थ बृटनों को जब कोई उपाय न सूझ पड़ा, और रोम के महाराज इनकी पुकार पर कुछ सहायता न भेज सके, तब इन्होंने जर्मनीनिवासियों से सहायता मांगी।

सैक्सन लोग।—इस समय जर्मनी देश भी प्रायः जंगलों से भरा था और वहां के निवासी निपट असभ्य जंगली थे। परन्तु ये लोग समुद्र पर नाव और जहाज़ चलाना भली प्रकार जानते थे और इसी लिये 'समुद्र के राजा' कहे जाते थे। बृटनों की प्रार्थना पर इनमें से कुछ लोग अपने सर्दार हिञ्जिस्ट और हार्सा समेत इंग्लैंड में आए (४४९ सन ई०)। इन्होंने पहाड़ी बृटनों को तो भगा दिया, परन्तु इंग्लैंड उन्हें ऐसा सुहावना जान पड़ा, कि स्वयं लौट जाने की कौन कहे, देश की प्रशंसा करके इन्होंने अपने कुछ और भाइयों को जर्मनी से बुला भेजा। फिर क्या था कोई सवा सौ वर्ष तक टिड्डीदल के समान इन जर्मन लोगों के समूह के समूह इंग्लैंड में आकर बसते रहे। इससे और बृटन लोगों से घोर संग्राम हुए। परिणाम यह हुआ कि बिचारे बृटन लोग विशेषतः मारडाले गए, कुछ पहाड़ियों में अपने भाइयों से जा मिले, और शेष ने विजयी जर्मनों का दासत्व स्वीकार किया।

जर्मन लोगों के तीन मुख्य दल थे—ऐंगिल, सैक्सन और जूट। इन्होंने कुल इंग्लैंड में सात राज्यें स्थापित कीं। जब बृटनों को इन्होंने हर तरह मिटा दिया, तब इन राज्यों में परस्पर युद्ध आरम्भ हुआ और ढाई सौ वर्ष की लड़ाई के बाद कुल इंग्लैंड ८२७ सन ई० में राजा एग्बर्ट के अधिकार में हो गया। इसी समय से यह देश इंग्लैन्ड या ऐंगिल लोगों का देश कहलाया, क्योंकि अन्त में ऐंगिल दल की जय रही। इनकी भाषा ऐंग्लो-सैक्सन कहलाती है। इग्बर्ट का स्थापित किया हुआ राज्य १९० वर्ष रहा (८२७ से १०१७)। १०१७ में डेन लोगों ने अन्तिम सैक्सन राजा, एड्मन्ड को हरा कर देश को अपने अधिकार में किया। डेनों का हाल आगे दिया जायगा।

अब देखना चाहिए कि सैक्सन लोगों ने अपने ५०० वर्ष के राज्यत्वकाल में (४४९–१०१७) सभ्यता कहां तक बढ़ाई और कहां तक देशोन्नति की। एक बात ध्यान देने योग्य यह है कि इन लोगों ने बृटनों का तो इतना सर्वनाश किया कि यह कहना अयोग्य न होगा कि अब इंग्लैन्ड नए सिरे से बसा। इस ५०० वर्ष के ऐंग्लो-सैक्सनों के राज्यकाल का विशेषांश लड़ाई ही में व्यतीत हुआ और देश में शान्ति के बिना उन्नति होना अति कठिन होता है। इंग्लैन्ड के ये नए निवासी ऐंग्लो-सैक्सन जिस समय अपने देश जर्मनी से आए, निपट मूर्ख और असभ्य थे। उनके मकान लकड़ी के बनते थे, और कितने खराब थे, यह इस बात से जाना जा सकता है कि महाराज अलफ्रेड को, पढ़ते समय रोशनी को मकान की दरारों से आती हुई हवा से बचाने के लिये एक विशेष प्रकार का लैम्प ईजाद करना पड़ा। जहां के राज-भवन की यह दशा थी, वहां गरीबों की झोपड़ी के विषय में क्या कहा जाय। मकान बहुत नीचे, छोटे, सर्दी से सब अकड़ जाने के कारण ओर से बन्द होते थे। रोशनी और हवा के लिये केवल कुछ छिद्र बने रहते थे। इन घरों के अन्दर फ़र्नीचर (आराम और अलंकार के निमित्त सामान, जैसे कुर्सी, मेज़, चारपाई,

तस्वीर, अलमारी, इत्यादि) का तो नाम न था। सभी लोग विशेषतः पुवाल पर सोते थे और रात में लैम्प न होने के कारण दिन ही में भोजन कर लेते थे। गरीब आदमियें की झोपड़ियें में उनके जानवर, सूअर बकरी इत्यादि, भी जहां आदमी रहते थे वहीं रहते थे। ये लोग विशेष कर सूअर का मांस, मोटी रोटियां और मछली खाते थे; खाने के बाद मद्यपान खूब करते थे; और जहां खाते वहीं बेहोश होकर सो रहते थे। बहुत कहने से क्या, बड़े ही लीचड़ थे। उनकी दशा वर्णन करते घृणा होती है। यह उस समय की दशा हुई जब ये ऐंग्लो-सैक्सन पहिले पहल इंग्लैन्ड में पधारे थे। इसके पीछे उन्होंने कुछ उन्नति की। सभ्यता का सबसे मुख्य सहायक इस समय में ईसाई मत हुआ। रोमियों ने भी अपने राज्यकाल में इसका कुछ प्रचार किया था। परन्तु उनके देश छोड़ने पर परस्पर जो महाभारत हुआ, उसमें सब इसके चिन्ह मिट गए। ऐंग्लो-सैक्सन लोग ईसाई न थे। सन ई० ५९६ से फिर इस मत की चर्चा शुरू हुई और थोड़े ही दिनों में सैक्सन राजा लोग तक इसके अनुयायी होगए। सभ्यता को कई प्रकार इससे सहायता पहुंची।

इस मत के पुजारी बहुधा रोमी होते थे और उस समय रोमी सबसे अधिक सभ्य थे। इन पुजारियें ने आकर स्कूल खोले और ऐंग्लो-सैक्सन को रोमी अक्षरों में उनकी भाषा का लिखना बताया। बहुत सी धर्मसम्बन्धी पुस्तकों का भषानुवाद करके ऐंग्लो-सैक्सन ज़बान की उन्होंने जड़ डाली। जिन लफ़्ज़ों की कमी थी उनको सीधे लैटिन से लेकर भाषा में मिलाया और इस प्रकार उसका कोष बढ़ाया और उसकी पुष्टता की।

ईसाई पुजारियें ने कृषिकार्य्य को उत्तम रीति से करना सिखाया। वे स्वयं इस कार्य को करते थे और दूसरे को सिखाते भी थे। असभ्य ऐंग्लो-सैक्सनों के लिये ये पुजारी ही स्कूल मास्टर, डाक्टर, इन्जिनियर, पुस्तक लेखक और पीछे जज, राज्यमन्त्री इत्यादि सभी का काम करते थे।

यह सभी समझ सकते हैं कि विद्या और धर्म की उन्नति सर्वथा शांति पर निर्भर है। ईसाई मत युद्ध का विरोधी है। इसलिये इसके पुजारी अक्सर शांति रखने की चेष्टा करते रहे और इस प्रकार देश को बहुत लाभ हुआ। सैक्सन राज्यकाल के अन्तिम भाग में अमीरों के मकान ईंट मिट्टी के बनने लगे। खाने में रोटी का इस्तेमाल बढ़ा, कपड़ा कुछ महीन पहिना जाने लगा, अमीर लोगों के यहां लकड़ी के अस्त व्यस्त गढ़े हुए कुन्दे स्टूल बेंच और चारपाई का काम देने लगे और विद्या की कुछ चर्चा हुई। यहां पर इनकी विद्या सम्बन्धी दशा पर कुछ ज्यादा ध्यान देना चाहिए, क्योंकि विद्या ही उन्नति का आधार है। उच्चशिक्षा सब लेटिन ही में होती थी, जैसी कि अब तक इंग्लैन्ड में प्रगट है।

राजा अलफ़्रेड (८७१-९०१) सैक्सन राजाओं में बहुत ही प्रसिद्ध और प्रजाप्रिय हुए हैं। प्रजा के बड़े शुभचिन्तक और देश के सच्चे हिताभिलाषी थे। इन्होंने आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय को स्थापित किया जो इस समय तक केवल इंग्लैंड के— नहीं समस्त संसार के—प्रसिद्ध विद्यास्थानों में से एक है। डेनों को लड़ाई में परास्त करके राज्यगद्दी पर निश्चिन्त होकर बैठने के बाद इन्होंने बड़ी मेहनत से लैटिन भाषा पढ़ी और स्वयं बहुत सी पुस्तकों का मातृभाषा में अनुवाद किया। इस उदाहरण का बड़ा प्रभाव हुआ। राजा के देखा देखी ऐंग्लोसैक्सन में पुस्तकें लिखी जाने लगीं और लैटिन से उसमें तर्जुमा होने लगा। लैटिन की उच्चशिक्षा तो जिसे अवकाश और धन होता उसीको नसीब हो सकती थी। इस प्रकार मातृभाषा की उन्नति से मेहनत करनेवाले गरीब लोगों को (जिनकी संख्या हर देश और हर काल में अमीरों से कहीं ज्यादा रही है) भी शिक्षा देना मुमकिन होगया। [शेष आगे।

गिरिजादत्त बाजपेयी, एम० ए०

भाग ३] मई और जून १९०२ ई० [संख्या ५ और ६

विविध वार्ता

आज हमको इस बात के प्रकाशित करते विशेष आनन्द होता है कि ग्वालियर नरेश श्रीमान सेन्धिया ने अपने राज्य में आज्ञा दे दी है कि संवत् १९६० के प्रारम्भ से उनकी कचहरियों में नागरी अक्षरों ही में केवल काम हो। श्रीमान की आज्ञा को हम नीचे अविकल उद्धृत करते हैं।

साक्यूलर आम न० १८

मुवर्रखे २२ अप्रैल सन् १९०२ ई०

बज़रिये महकमे सेक्रेटरियट हुज़ूर दर्बार जुडिशियल डिपार्टमैंट दर्बारे इजराय कार्रवाई ब ख़त हिन्दी

जो कि शुरू संवत् १९६० से जमीय अदालत हाय जुडीशियल महकमेजात पुलिस व मुक़द्दमात माल में कार्रवाई ब ख़त हिन्दी (देवनागरी) बतरमीम दफ़ा २८९ क़ानून आम ज़ारी होगी।

लिहाज़ा हिदायत हस्ब ज़ैल जारी की जाती है—

(१) जमीय अहलकारान जुडीशियल व पुलिस व माल को मियाद सद्र तक ख़त हिन्दी लिखने का महावरा हासिल करना चाहिए।

(२) हिन्दी साफ़ व खुशख़त अलफाज़ अलहदा अलहदा लिखना चाहिए।

(३) आइन्दा जो अहलकार भरती किए जावें वह जहाँ तक मुमकिन हो हिन्दीदां भरती किए जांय।

(४) रजिस्टर व नक़शेजात वग़ैरा जो छपते हैं संवत् १९६० से हिन्दी में छपकर इस्तेमाल में आने का इन्तज़ाम हरसिह सीग़े जात मुन्दर्जे बाला को करना चाहिए।

(५) जो काग़ज़ात रज़ीडण्टी से ब ख़त फ़ार्सी आएं वह उसी रजिस्टर हिन्दी में दर्ज किए जांयगे।

दे० क० सर मैकिल फीलोग
चीफ़ सेक्रेटरी
हुज़ूर दर्बार

श्रीमान की इस उचित आज्ञा से हमारा विश्वास है कि प्रजा का उपकार और विद्या का प्रचार अवश्य होगा। यद्यपि यह कुछ काल से सुनने में आता था कि ग्वालियर में देशहितैषी लोगों की यह आन्तरिक इच्छा है कि नागरी अक्षरों का प्रचार हो और यद्यपि श्रीमान स्वयं ऐसा करने का विचार कर रहे थे, परन्तु हमें यह देख कर बड़ा सन्तोष और आनन्द हुआ कि काशी नागरीप्रचारिणी सभा का डेपुटेशन जो उन दिनों में ग्वालियर में था, इस शुभ सम्बाद को लाया। हमारा विश्वास है कि डेपुटेशन के ग्वालियर में जाने और वहां नागरी की चर्चा होने से श्रीमान सेन्धिया नरेश ने उत्साहित हो इस आज्ञा को प्रचारित किया। जो कुछ हो हम श्रीमान को हृदय से इस आज्ञा के लिये धन्यवाद देते हैं और साथही प्रजा के हितसाधन की ओर ध्यान देने के लिये बधाई देते हैं। हमारी प्रार्थना है कि जयपुर और बीकानेर नरेश भी इस कार्य की ओर अपनी कृपादृष्टि करें और अपने अपने राज्य में नागरी का प्रचार कर देश और प्रजावर्ग के धन्यवाद-भाजन बनें।

*
* *

हम गत किसी संख्या में काशी नागरीप्रचारिणी सभा के डिपुटेशन के विषय में लिख चुके हैं। इसमें चार महाशय सम्मिलित थे जिनके नाम ये हैं—(१) पण्डित माधवराव सप्रे, बी० ए०, ट्यूटर टू दी चीफ़ आफ़ पेंडरा, बिलासपुर, तथा सम्पादक, छत्तीसगढ़ मित्र; (२) पण्डित रामराव चिञ्चोलकर, बी० ए०, दीवान पिंडरिया स्टेट, बिलासपुर; (३) पण्डित विश्वनाथ शर्म्मा, मथुरा, और (४) बाबू माधवप्रसाद, सभा के सहायक मन्त्री। ये चारो महाशय १५ फरवरी को काशी से यात्रा के लिये गए और अप्रैल के अन्त में यात्रा कर लौट आए। इन महाशयों का विचार अभी और भी अधिक काल तक कार्य करने का था, पर ग्रीष्म की उष्णता के कारण इस वर्ष कार्य बन्द करना पड़ा।

हमारे पाठक यह बात जानकर आनन्दित होंगे कि अब तक सभा के स्थायी कोष में १४०००) के ऊपर चन्दा हो चुका है और डेपुटेशन में चन्दा एकत्रित करने के अतिरिक्त और जो कुछ कार्य किया, उसे कुछ तो विचारवान् पुरुष स्वयं जान सकते हैं और कुछ वे आगे चल कर जानेंगे, जब इन महाशयों के लगाए हुए वृक्ष में फल आरोपित होंगे और हिन्दी के प्रेमियों को उन्हें आनन्द से चखने का अवसर प्राप्त होगा। हमारे एतद्देशीय लोगों को लज्जित होना चाहिए कि उनकी मातृभाषा हिन्दी के लिये बिलासपुर ऐसे दूर स्थान से दो महाराष्ट्र विद्वान ब्राह्मणों ने कष्ट उठा कर इस प्रकार निस्वार्थ भाव से यात्रा की। आजकल भारतवर्ष में बातों का डंका पीटनेवाले और अपने स्वार्थ की लपेट देश हित की झूठी चिल्लाहट मचाने वाले बहुत दिखाई देते हैं। इन बिचारों की सारी कलई तो उस समय खुल जाती है जब उनके स्वार्थ में, उनके रोटी मां[illegible] अथवा मोहनभोग में, किसी प्रकार से बाधा पड़ने की आशंका दिखाई पड़ने लगती है। ऐसी शोचनीय अवस्था में यदि हमें निस्वार्थ लोग दत्तचित होकर देश की सेवा करते देख पड़ते हैं, तो हमारे आनन्द की सीमा नहीं रहती। डेपुटेशन के चारों सभ्यों ने जो यह नागरी की सेवा का दूसरों के लिये आदर्श खड़ा कर दिया उसके लिये हम उनके चिरकृतज्ञ रहेंगे। इन महानुभावों के सम्मानार्थ नागरीप्रचारिणी सभा के सभासदों का एक उत्सव ता० २ मई को काशी में किया था, जिसमें किंचित जलपान, परस्पर मिलन और वक्तृताएं हुई थीं; तथा आनन्द मनाया गया था। इस उत्सव में बाबू राधाकृष्ण दास ने निम्नलिखित छप्पय पढ़ा था, जिसे हम उस अवसर के स्मरणार्थ यहां प्रकाशित करते हैं।

श्री राम राव, माधव उभय
विश्वनाथ कीरति अयन
निज भाषाहित निरत होइ तजि गृहकारज छ[illegible]
देस देस पर्यटन कियो सहिकै कलेस अति

अति सुदच्छता सहित सभा-उद्देश्य प्रचारयो
पाल्यो निज कर्तव्य नागरी काज सुधारयो
अति हरखित चित हम सबन को
धन्यवाद कीजै ग्रहन ॥

हमें विश्वास है कि इन महानुभावों का दृष्टान्त आदर्श स्वरुप माना जायगा और आगामी वर्ष एतद्देशीय अनेक महाशय सभा का कार्य करने को उद्यत हो जांयगे। हम अपने पाठकों के विनोदार्थ इन महाशयों का एक चित्र प्रकाशित करते हैं। देखिए सम्मुख जो महाराष्ट्र मूर्ति खड़ी है, वह पण्डित रामराव जी चिंचोलकर हैं। उनके दहिने ओर पण्डित माधवराव जी सप्रे बैठे हैं, और उनके बाएं ओर पण्डित विश्वानाथ जी शर्म्मा हैं। पण्डित माधव राव जी के दहिने ओर उन्हींके नामरासी बाबू माधवप्रसाद जी हैं। ईश्वर से प्रार्थना है कि वह इन महाशयों को चिरजीवी करे और उनकी बुद्धि सदा देशहित के कार्य्यों की ओर लगाए रक्खे।

* * *

सन् १९०१ को मनुष्यगणना का परिणाम अब छपने लगा है। धर्म विभाग से भारतवासियों की संख्या इस प्रकार है—

हिन्दू २०७१४६४२२ पुरुष १०५१८८४४५
स्त्री १०१९५९९७७

हिन्दुओं में आर्यसमाजो, सनातन धर्मी और ब्राह्म इस प्रकार हैं—

सनातन धर्मी २०७०७५२७७ पुरुष १०५१४८८७३
स्त्री १०१९२६३८४

आर्यसमाजी ६७१०५ पुरुष ३७२०९
स्त्री २९८९६

ब्राह्म ४०४० ; पुरुष २३०३ ; स्त्री १६९७

सिक्ख २१९५२६८ पुरुष १२४३९८८
स्त्री ९५१२८०

जैनी १३३४१४८ पुरुष ६९१८६७
स्त्री ६४१२८१

बौद्ध ९४७६७५० पुरुष ४६८०३८८
स्त्री ४७९६२६२

ज़ोरास्ट्रियन (पारसी) ९४१९०
पुरुष ४८२०६
स्त्री ४५९८४

मुसलमान ६२४५८०६१ पुरुष ३२२५७११६
स्त्री ३०३००४६५

ईसाई २९२३२४१ पुरुष २५११७२७
स्त्री १४११५४४

यहूदी १८२२८ पुरुष ९२४७
स्त्री ८९८१

प्रेत पूजक ८५८४३४९ पुरुष ४२५८६०३
स्त्री ४३२५७४६

इनके अतिरिक्त जिनकी जाति ज्ञात नहीं हुई वे २६८६ हैं, जिनमें १५७७ पुरुष और ११०९ स्त्रियां हैं। ईसाइयों की संख्या बहुत बढ़ी देखकर मिस्टर रिज़ले इस बात का पता लगाया चाहते हैं कि किन किन कारणों से ऐसी अवस्था हुई है। मिस्टर रिज़ले को इसके लिये अधिक कष्ट उठाने की आवश्यकता नहीं है। यदि काल न पड़ता और हमारी ईसाई गवर्मेंट की सहायता न रहती तो हमारे ईसाई भाइयों को पेट के मारे मातृपितृविहीन बालकों को पा अपनी विजय का इतना अधिक आनन्द मनाने का अवसर न प्राप्त होता। पेट के लिये किसी कर्म का कर बैठना भौतिक विषयों से संबन्ध रखता है और किसी धर्म को छोड़ना वा दूसरे को स्वीकार करना आत्मिक विषय है। परन्तु हमारे कृस्तानी धर्मप्रचारक पादरियों ने अपने स्वार्थ में पड़कर दोनों को एक कर डाला है और इस प्रकार प्राकृतिक नियमों से अपना विरोध प्रगट किया है। परन्तु यह निश्चय है कि यह विरोध इतना प्रबल कभी नहीं हो सकता कि वह कृतकार्य होजाय। आत्मा में बल और ज्ञान के उत्पन्न होते ही पेट की ज्वाला उस प्रवाह को रोकने में असमर्थ होगी। परन्तु उस सिद्धान्त को कालदेवता ही सिद्ध कर सकते हैं। हमारे देशभाइयों में तो काल-देवता को सहायता देने का न तो उत्साह ही है और न सामर्थ्य।

बाबू गोपालचन्द्र

उपनाम

गिरिधर दास

परमेश्वर नास्तिकों का मुंह बन्द करने और अपना अस्तित्व प्रमाणित करने ही के लिये कभी कभी पृथ्वी पर ऐसे लोगों को जन्माता है जिनकी अद्भुत प्रतिभा देखकर लोग आश्चर्य में आजाते हैं। हमारे चरित्रनायक भी वैसेही एक पुरुषरत्न थे कि जिनके चरित्र में ईश्वर की ईश्वरता का साक्षात प्रमाण मिलता है। ऐसे लोगों के जीवनचरित्र के पढ़ने से लोग बहुत कुछ लाभ उठा सकते हैं, क्योंकि उनका चरित्र लोगों को एक अच्छा रास्ता दिखलाता और संसार में यश कमाने का अच्छा उपदेश देता है।

जगत्प्रसिद्ध कविश्रेष्ठ गिरिधर दास, प्रसिद्ध नाम बाबू गोपालचन्द्र, का जन्म काशी में मिती पौष कृष्ण १५ सं० १८९० को हुआ था और मृत्यु मिती वैशाख सु० ७ सं० १९१७ को। उन्होंने इस २६ वर्ष ४ महीने और ७ दिन की ऐसी छोटी अवस्था में कितने बड़े काम किए हैं यह देख कर आश्चर्य होता है। हिन्दुस्तान में जिस अवस्था में धनवानों के लड़कों को पूरी तरह पर बात करने का भी ज्ञान नहीं होता और जिस भयानक अवस्था के वर्णन में उचित रूप से कहा गाय है कि—

"यौवनं धन सम्पत्ति प्रभुत्वमविवेकता।
एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम्॥

उस अवस्था में इस प्रान्त के प्रसिद्ध सेठ हर्षचन्द्र के एकमात्र पुत्र गोपालचन्द्र ने बचपन में ही पितृहीन होकर भी विद्वत्ता और सच्चरित्रता का ऐसा उदाहरण छोड़ा है कि जिसे देखकर ईश्वर की महिमा स्मरण आती है। इसके पहिले कि हम इनका कुछ चरित्र लिखें, इनके सुप्रसिद्ध वंश का बहुत ही संक्षेप से वर्णन कर देना उचित समझते हैं, जिसमें हमारे पाठकों को इनका और इनके पुत्र हिन्दीप्रेमियों के एकमात्र प्रेमाराध्य भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का पूरा परिचय मिल जाय।

दिल्ली के "शाही" घराने से इनके 'प्रतिष्ठित' पूर्वजों का बहुत ही घनिष्ट सम्बन्ध था। जब शाहजहां का बेटा शाह शूजा सन् १६५० के लगभग 'विशाल' बङ्गाल का सूबेदार होकर आया, तो इनके पूर्वज भी उसके साथ दिल्ली छोड़ बङ्गाल में चले आए, और जैसे जैसे मुसलमानी राजधानी बङ्गाल में बदलती गई वैसे वैसे ये लोग भी अपना प्रवासस्थान परिवर्तन करते गए। राजमहल और मुर्शिदाबाद में अब तक इनके पूर्वजों के उच्च प्रासादों के अवशिष्ट चिन्ह पाए जाते हैं। इसी विशाल वंश के सेठ बालकृष्ण के पौत्र तथा सेठ गिरिधारी लाल के पुत्र सेठ अमीचन्द के समय में इस देश में अङ्गरेज़ों का राजत्वकाल प्रारम्भ हुआ। उस समय अङ्गरेज़ों के सहायकों में से ये भी एक प्रधान सहायक थे। उस समय इनका इतना मान था कि इनके नौ बेटों में से तीन को "राजा" और एक को "रायबहादुर" की पदवी प्राप्त थी। इन पुत्रों में से वंश केवल बाबू फ़तहचन्द्र का चला। सेठ अमीचन्द का वृत्तान्त इतिहासों में इस प्रकार से प्रसिद्ध है।

सेठ अमीचन्द का चार लाख रुपया कलकत्ते में लुट गया था, और भी बहुत कुछ हानि हो गई थीं; परन्तु नवाब की ओर से उसकी कुछ भी रक्षा न हुई। निदान योंही देश को दुखित देख जब लोगों ने अङ्गरेज़ों को शरण ली तो ये भी उनमें एक प्रधान पुरुष थे। इनसे अङ्गरेज़ों से यह दृढ़ प्रतिज्ञा हो गई थी कि सिराजुद्दौला के कोष से जो द्रव्य प्राप्त होगा उसमें से पांच रुपैया सैंकड़ा तुम्हें मिलेगा, और दो प्रतिज्ञापत्र लिखे गए। लाल काग़ज़ पर जो लिखा गया उस पर सेठ अमीचन्द को ५) रुपया सैकड़ा देने को लिखा गया था, परन्तु सफेद कागज पर जो लिखा गया उस पर इनका नाम तक न लिखा। जब हस्ताक्षर होने के हेतु कौंसिल में ये पत्र उपस्थित हुए तो 'एडमिरल' ने लाल काग़ज़ पर हस्ताक्षर करना सर्व

अस्वीकार किया पर कौंसिल वालों ने उनका हस्ताक्षर बना लिया। बङ्गाल विजय के पश्चात् जब ख़ज़ाना सहेजा गया तो डेढ़ करोड़ मुद्रा निकला। सेठ अमीचन्द ने तीस पैंतीस लाख मुद्रा मिलने का हिसाब जोड़ रक्खा था। जब प्रतिज्ञापत्र पढ़ा गया ग्रैार इनका नाम तक न निकला तो इन्होंने उस षटचक्र से घबड़ा कर कहा "साहब, वह लाल काग़ज़ पर था"। लार्ड क्लाइव ने उत्तर दिया "यह आपको सब्ज़ बाग़ दिखाने को था। असिल यही सफ़ेद है"। सेठ अमीचन्द इस वाक्य के आघात से मूर्छित होकर गिर पड़े। लोग उन्हें पालकी में डाल कर घर लाए। इसी प्रबल पीड़ा से डेढ़ वर्ष के पश्चात् वे परमधाम पधारे।

राजा शिवप्रसाद लिखते हैं कि "अफ़सोस है क्लाइव ऐसे आदमी से ऐसी बात ज़हूर में आवे; पर क्या करें, ईश्वर को मन्जूर है कि आदमी का कोई काम बेऐब न रहे। इस मुल्क में अंगरेज़ी अमल्दारी की सचाई में, जो मानो धोबी की धोई हुई सफ़ेद चादर रही है, केवल उसी 'अमीचन्द' ने उसमें एक छोटा सा धब्बा लगा दिया है *"।

* मीर जाफ़र, अमीचन्द (अमियचन्द्र) "A man of vast wealth") ग्रैार खोजा वज़ीद ये तीन जन थे कि जिनकी सहायता से पलासी युद्ध में अंगरेज़ विजयी हुए। मीरजाफ़र (सेनापति) को नव्वाब बनाने की लालच दी गई ग्रैार सेठ अमीचन्द को उनका बहुत रुपया, जिसे सिराजुद्दौला ने अन्याय से ले लिया था, युद्ध जीतने ग्रैार कोष पाने पर देने का वादा किया गया। पीछे रुपया देख क्लाइव लोभ में आगया। इसी लोभ ने हेष्टिङ्ग स् का नाम चिरस्मरणीय बनाया ग्रैार इसीने यह हत्या करा आत्मलय के लिये उनके ग्रैार शुभ्र अंगरेज़ी राज्य के नाम में कलङ्क लगा दिया। कितने अङ्गरेज़ इतिहासलेखकों ने यद्यपि एक स्वजाति की करनी को बड़ी बड़ी बातें बना गोपन रखना चाहा है, तथापि कितने न्यायशीलों ने क्लाइव को साफ़ दोषी ठहराया है। अधर्म सभी स्थल ग्रैार सभी समय अधर्म है। राज सेक्रेटरी T. Talboys Wheeler कहते हैं;—But the action of Clive, although it did not put a penny in his pocket, has been condemned to this day as a stain upon his character as an English gentleman." बाबू अक्षय कुमार मैत्रेय ने अपने ग्रन्थ "सिराजुद्दौला" में इसका वास्तविक ऐतिहासिक विवरण लिखा है जो लेखान्तर में लिखा जायगा।

सेठ अमीचन्द के पुत्र सुयोग्य सेठ फ़तहचन्द इस घटना से अत्यन्त उदास होकर काशी चले आए। इनका विवाह काशी के परम प्रसिद्ध नगर-सेठ गोकुलचन्द साहू की कन्या से हुआ। सेठ गोकुलचन्द के पूर्वजों ने काशी के वर्तमान राज्यवंश को काशी का माननीय राज्य, मीर रुस्तमअली को पदच्युत कराके, अवध के नव्वाब से प्राप्त कराने में बहुत कुछ उद्योग किया था ग्रैार तभी से वह उस राज्य के महाजन नियत हुए, तथा प्रतिष्ठापूर्वक "नौपति" की पदवी प्राप्त हुई।

जिन नौ महाजनों ने उस समय काशीराज के मूल पुरुष राजा मनसाराम को राज्य दिलाने में सर्व प्रकार सहायता दी थी, उन्हें नौपति की उपाधि दी गई थी। यह "नौपति" पदवी अब तक प्रसिद्ध है, परन्तु अब उन नवों वंशों में केवल इसी एक वंश का पता लगता है। ग्रैार उसी समय से इनके यहां विवाहादि शुभ कर्म्मों, तथा शोकसमय शोकसम्मिलन तथा पगड़ी बन्धवाने के हेतु, स्वयम् काशीराज उपस्थित होते हैं। यह मान इस वंश को अब तक प्रतिष्ठापूर्वक प्राप्त है। सेठ गोकुलचन्द के ग्रैार कोई सन्तान न होने के कारण बाबू फ़तहचन्द उनके भी उत्तराधिकारी हुए *।

बाबू फतह चन्द ने अङ्गरेज़ों को राज्यादि के प्रबन्ध करने में बहुत कुछ सहायता दी थी। सुप्रसिद्ध "दवामी बन्दोबस्त" के समय डङ्कन

* ये हनुमान जी के बड़े भक्त थे। प्रति मङ्गलवार को काशी भदैनी हनुमानघाट वाले बड़े हनुमान जी के दर्शन को जाया करते थे। काशी में बड़े हनुमान जी का मन्दिर परम प्राचीन ग्रैार प्रसिद्ध है। यहां केवल एक विशाल प्रस्तरमूर्त्ति हनुमान जी की है। एक दिन इन्हें जो प्रसाद में माला मिली वह पहिरे हुए घर चले आए। यहां आकर जो माला उतारी तो उसमें से एक हनुमान जी की स्वर्णप्रतिमा छोटी सी अंगुष्ठ प्रमाण गिर पड़ी। उसी समय से इस प्रतिमा की सेवा बड़ी भक्ति से होने लगी ग्रैार अब तक इस वंश में कुलदेव यही महावीर जी हैं। यह मूर्ति साधारण हनुमान जी की भांति नहीं है, वरञ्च बिलकुल वानराकृति है ग्रैार एक हाथ में लड्डू लिए हुए है।

साहब ने इनकी सहायता का पूर्ण धन्यवाद दिया है। इनके काशी आ बसने के कुछ काल उपरान्त उनके बड़े भाई राय रत्नचन्द्र बहादुर भी मुर्शिदाबाद से यहां ही चले आए। उनके साथ डङ्का, निशान, सन्तरी का पहरा, माही, मरातिब, नकीब आदि रियासत के पूरे ठाठ थे।

राय रत्नचन्द्र बहादुर ने रामकटोरेवाले बाग में आकर निवास किया। वहां इनके श्रीठाकुर जी, जिनका नाम श्रीलाल जी है, अब तक वर्तमान हैं। यही बाग़ काशी जी में इस वंश का पहिला स्थान समझा जाता है तथा अब तक प्रत्येक विवाह और पुत्रोत्सव के पीछे डीह डीहवार (गृह देवता) की पूजा यहीं होती है। प्रतीत होता है कि ये उस समय तक श्रीसम्प्रदाय के अनुयायी थे, क्योंकि ठाकुर जी की मूर्ति तथा सामने गरुड़स्तम्भ और मन्दिर के ऊपर चक्रस्थापन इसका प्रत्यक्ष प्रमाण प्रस्तुत है। इस वंश में 'नकीब' की प्रथा बाबू गोपालचन्द्र तक थी। बाबू फ़तह चन्द का व्यवहार देन लेन का था।

बाबू फ़तहचन्द के एक मात्र पुत्र बाबू हर्षचन्द्र हुए। ये काशी में काले हर्षचन्द के नाम से प्रसिद्ध हैं और इनके प्रशंसनीय गुणानुवाद अब तक साधारण जन तथा स्त्रिएं ग्राम्यगीतों में गाया करती हैं।

बाबू हर्षचन्द के बाल्यकाल ही में इनके पूजनीय पिता ने परलोक प्रवास प्राप्त किया। लोगों ने इनके उमङ्ग का अच्छा अवसर उपस्थित देख इन्हें राय रत्नचन्द्र बहादुर से लड़ा दिया। परन्तु ज्यों हीं इन्होंने धूर्त्तों की धूर्त्तता समझी, चट पितृव्य के पावों पर जा गिरे और उन्होंने अपराध क्षमा कराकर प्रेमपल्लव को प्रवर्धित किया। राय रत्नचन्द्र के बेटे बाबू रायचन्द्र निस्सन्तान मरे। इससे उनकी भी सम्पूर्ण सम्पत्ति के उत्तराधिकारी ये ही हुए।

इनका सम्मान काशी में कैसा था इसीसे समझ लीजिए कि, सन् १८४२ में गवर्न्मेंट ने आज्ञा दी कि काशी की प्राचीन तौल की पन्सेरियां उठा कर अंग्रेज़ी पन्सेरी जारी हो। काशी के लोग बिगड़ गए और हरताल कर दी; तीन दिन तक हरताल रही; अन्त में उस समय के प्रसिद्ध कमिश्नर गविन्स साहब ने बाबू हर्षचन्द्र (सरपञ्च), बाबू जानकीदास और बाबू हरिदास साहु को पञ्च माना। काशी के लोगों ने भी इसे स्वीकार किया। बाग़ सुन्दरदास में बड़ी भारी पञ्चायत हुई और अन्त में यही फ़ैसला हुआ कि तिलोचन आदि की पन्सेरियां ज्यों की त्यों ही जारी रहें। गविन्स साहब भी इससे सम्मत हुए और नगर में जय जयकार होगया। इस बात के देखनेवाले अब तक जीवित हैं कि जिस समय पुरानी पन्सेरियों के जारी रहने की आज्ञा लेकर उक्त तीनों महाशय हाथी पर सवार होकर चले, बीच में बाबू हर्षचन्द्र बैठे थे, मोरछल होता था, बाजे बजते थे, सारे शहर की खिलकत साथ थी और स्त्रियें खिड़कियों से पुष्पवर्षा करती थीं, तथा इस सवारी को लोगों ने इसी शोभा के साथ नगर में घुमाया था।

बुढ़वामंगल के प्रसिद्ध मेले को उन्नति देने वाले यही थे। पहिले लोग वर्ष के अन्तिम मंगल को जिसे बूढ़ा मंगल कहते थे, दुर्गाजी के दर्शनों को नाव पर सवार हो कर जाया करते थे। धीरे धीरे उन नावों पर नाच भी कराने लगे और अन्त में बाबू हर्षचन्द्र तथा काशीराज के परामर्शानुसार बुढ़वामंगल का वर्तमान रूप हुआ और मेला चार दिन तक रहने लगा। मैंने कई बेर काशीराज महाराज ईश्वरीप्रसाद नारायण सिंह बहादुर को भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र से कहते सुना है कि इस मेले का दूलह तो तुम्हारा ही वंश है। इनके यहां बुढ़वामङ्गल का कच्छा बड़ी ही तैयारी के साथ पटता था और बड़े ही मर्यादापूर्वक प्रबन्ध होता था। बिरादरी में नाई का नेवता फिरता था और सब लोग गुलाबी पगड़ी और दुपट्टे तथा लड़कों को गुलाबी टोपी दुपट्टे पहिना कर ले जाते थे। नौकर आदि भी गुलाबी ही पगड़ी दुपट्टे पहिरते थे। जिनके पास न होता उनको यहां

मिलती। गंगा जी के पार रेत में हलवाईख़ाना बैठ जाता और चारों दिन वहीं बिरादरी की जेवनार होती। काशीराज हर साल मोरपंखी पर सवार हो इनके कच्छे की शोभा देखने आते। यह प्रथा ठीक इसी रीति पर बाबू गोपालचन्द्र के समय तक जारी रही।

बुढ़वामंगल की भांति होली का उत्सव भी धूम धाम से होता और बिरादरी की जेवनार, महफ़िल होती। वर्ष में अपने तथा बाबू गोपाल चन्द्र के जन्मदिवस को ये महफ़िल जेवनार करते।

बिरादरी में इनका ऐसा मान्य था कि लोग बड़े बड़े प्रतिष्ठित और धनिकों के रहते भी इन्हें अपना चौधरी मानते थे और यह प्रतिष्ठा इस वंश को आज तक प्राप्त है।

चौखम्भास्थित अपने प्रसिद्ध भवन में इन्होंने ही सुन्दर दीवानख़ाना बनवाया था। सुनते हैं कुछ ऐसा बिवाद उस समय उपस्थित हो गया था कि जिसके कारण इस बड़े दीवानख़ाने की एक मंज़िल इन्होंने एक रात्रि में तैयार कराई थी।

उस समय इनकी सवारी प्रसिद्ध थी। जब ये घर के बाहर कहीं जाते, बिना जामा और पगड़ी पहिरे न जाते, ताम जाम पर सवार होकर जाते, नक़ीब बोलता जाता। आसा, बल्लम, छड़ी, तलवार, बन्दूक़ आदि बांधे पचास साठ सिपाही साथ में होते। यह प्रथा कुछ कुछ बाबू गोपाल-चन्द्र तक थी।

ये गोस्वामी श्री गिरिधर जी महाराज के शिष्य हुए। श्री गिरिधर जी महारज की विद्वत्ता तथा अलौकिक चमत्कार शक्ति लोकप्रसिद्ध है। यदि ईश्वरेच्छा होगी तो कभी उनका जीवनचरित्र भी लिखकर प्रकाशित करूंगा। श्री गिरिधर जी महाराज इन पर बहुत ही स्नेह रखते थे, यहां तक कि इनकी बेटी श्रीश्यामा बेटी जी इन्हें भाई के तुल्य मानतीं और भाईदूज को तिलक काढ़ती थीं। जिस समय श्री गिरिधर जी महाराज श्री जी द्वार से श्री मुकुन्दराय जी को पधराकर काशी लाए, सब प्रवन्ध इन्हींको सौंपा गया था। बड़ी धूम धाम से बारात सजा कर श्री मुकुन्दराय जी को नगर के बाहर से येही पधरा लाए थे। इसका सविस्तर वर्णन उक्त महाराज की लिखाई "श्री मुकुन्दराय जी की वार्ता" में है। जब कभी महाराज बाहर पधारते, मन्दिर इन्हींके सपुर्द कर जाते। उक्त महाराज तथा श्रीश्यामा बेटी जी के लिखे मुख़्तारनामा आम इनके तथा बाबू गोपाल चन्द्र जी के नाम के अब तक रक्षित हैं।

इन्होंने उक्त महाराज की आज्ञा से अपने घर में श्री वल्लभकुल के प्रथानुसार ठाकुर जी की सेवा पधराई और उनके भोग राग का प्रवन्ध राजसी ठाठ से किया। ठाकुरजी की परम मनोहर मूर्ति, युगल जोड़ी, धातुविग्रह है, तथा नाम "श्री मदनमोहन जी" है। वर्तमान शैली से सेवा होते हुए ८५ वर्ष से अधिक हुआ; परन्तु सुनते हैं कि ठाकुरजी और भी प्राचीन हैं। पहिले इनकी सेवा गोकुलचन्द्र साही के यहां होती थी। बाबू हरिश्चन्द्र और बाबू गोकुलचन्द्र में जिस समय हिस्सा हुआ, एक बाग़, बड़ा मकान, एक बड़ा ग्राम माफ़ी और पचास हज़ार रुपया ठाकुर जी के हिस्से में अलग कर दिया गया है, और ठाकुर जी का महाप्रसाद नित्य ब्राह्मण वैष्णव तथा सद्गृहस्थ लेते हैं।

इनके दो विवाह हुए थे। प्रथम चम्पतराय अमीन की बेटी से। इन चम्पतराय का उस समय बड़ा ज़माना था। सुनते हैं कि वह इतने बड़े आदमी थे कि सोने की थाल में भोजन करते थे। सुना है कि जिस समय चम्पतराय की बेटी व्याह कर आईं तो यहां उन्हें मामूली बर्तन बर्तने पड़े। इसपर उन्होंने कहा "हाय, अब हमको इन बर्तनों में खाना पड़ेगा"। अब एक चम्पतराय अमीन के बाग़ के अतिरिक्त और कोई चिन्ह इनका नहीं है। इनसे बाबू हर्षचन्द्र को कोई सन्तान नहीं हुई। दूसरा विवाह इनका बाबू वृन्दाबन दास की कन्या श्यामा बीबी से हुआ। इन्हींसे इनको पांच सन्तान हुईं, जिनमें से दो कन्या तो बचपन ही में

मर गईं, शेष तीन का वंश चला। यह बाबू बृन्दाबन दास भी उस समय के बड़े धनिकों में थे, परन्तु पीछे इनका भी वह समय न रहा। इनके दो बाग़ थे, एक मौज़ा कोल्हुआ पर और दूसरा महल्ला नाटी इमली पर। ये दोनों बाग़ बाबू हर्षचन्द्र को मिले। बाबू वृन्दाबन दास को हनुमान जी का बड़ा इष्ट था। इनके स्थापित हनुमान जी अब तक नाटी इमली के बाग़ में हैं।

एक समय श्री गिरिधर जी महाराज को चालिस सहस्र रुपए की आवश्यकता हुई। उन्होंने बाबू हर्षचन्द्र से कहा कि इसका प्रबन्ध करदो। इन्होंने कहा महाराज, इस समय इतना रुपया तो प्रस्तुत नहीं है। कोल्हुआ और नाटी इमली का बाग़ मैं भेंट कर देता हूं, इसे बेच कर काम चला लीजिए। श्री महाराज का ऐसा प्रताप था कि एक कोल्हुआ का बाग़ चालीस हज़ार में बिक गया और नाटी इमली का बाग़ बच गया। इस बाग़ का नाम महाराज ने मुकुन्दविलास रक्खा। यह अद्यावधि मन्दिर के अधिकार में है और काशी के प्रसिद्ध बाग़ों में एक है। इस वंश से इस बाग़ से अब तक सम्बन्ध इतना शेष है कि काशी के प्रसिद्ध भरतमिलाप के मेले में इसी बाग़ के एक कमरे में बैठ कर भगवान का दर्शन इस वंश के लोग करते हैं और इसमें भगवान का विमान ठहरता है, तथा इस वंशवाले जाकर पूजा, आरती करते, भोग लगाते और १) नक़द भेंट करते हैं।

यहां पर इस रामलीला का संक्षिप्त इतिहास लिखा देना भी हम उचित समझते हैं। जब काशी में जंगल बहुत था (बनकटी के समय), यहां एक मेघा भगत रहते थे। उन्हें श्रीभगवान के दर्शन की बड़ी लालसा हुई। उन्होंने अनशन व्रत लिया। एक दिन रामचन्द्रजी ने स्वप्न में आज्ञा दी कि इस कलियुग में इस चाक्षुष जगत में हमारा प्रत्यक्ष दर्शन नहीं हो सकता। तुम हमारी लीला का अनुकरण करो। उसमें दर्शन होगा; तथा एक धनुष बाण वहां प्रत्यक्ष छोड़ गए, जिसकी पूजा अब तक होती है। मेघा भगत ने लीला आरम्भ की और उनकी मनोवासना पूरी हुई। यह लीला चित्रकोट की लीला के नाम से प्रसिद्ध हुई। जिस दिन श्री रामचन्द्र की झलक मेघा भगत को झलकी थी वह भरतमिलाप का दिन था और तभी से यह दिन परम पुनीत समझा गया, तथा अब तक लोगों का विश्वास है कि उस दिन रामचन्द्रजी की झलक आजाती है। इस लीला के पीछे गोस्वामी तुलसीदास जी ने लीला आरम्भ की, जो अब तक अस्सी पर तुलसीदास जी के घाट पर होती है, और उसके पीछे लाट भैरव की लीला का आरम्भ हुआ। इस लाटभैरव की लीला में 'नककटैया' (शूर्पनखा की नाक काटने की लीला) मसजिद के भीतर होती है, जो प्रथा कि बहुत ही प्राचीन समय से मुसलमानों की अमलदारी से चली आती है, और प्रायः इसीके लिये काशी में हिन्दू मुसलमानों में झगड़ा हुआ किया है। निदान मेरी समझ में रामलीला की प्रथा सर्व प्रथम संसार में मेघा भगत ने आरम्भ की। इस लीला की यहां प्रतिष्ठा बहुत ही अधिक है। सब महाजन लोग इसमें चिट्ठा भरते हैं और प्रतिष्ठित लोग बिना कुछ लिए सब सेवा करते हैं। इस चिट्ठे का आरम्भ पहिले पहिले बाबू जानकीदास और उक्त बाबू हर्षचन्द्र के वंशवाले करते हैं और फिर नगर के सब महाजन यथाशक्ति लिखते हैं। पहिले विजया दशमी के दिन यहां के बड़े बड़े महाजन रात्रि को जब विमान उठता था, जामा, पगड़ी पहिन कर कन्धा लगाते थे। अब तक भी बहुत लोग कन्धा देते हैं। विजया दशमी और भरतमिलाप में अब तक प्राचीन मर्यादावाले लोग पगड़ी पहिर कर दर्शन को जाते हैं। भरतमिलाप यहां के प्रसिद्ध मेलों में है। सारा शहर सूना हो जाता है और भरतमिलाप के स्थान से लेकर 'अयोध्या' तक, जोकि लगभग आधी मील का अन्तर होगा, मनुष्य ही मनुष्य दिखाई देते हैं। भरतमिलाप ठीक गोधुली के समय होता है। इस दिन दर्शनों

लिये काशिराज भी सदा से आया करते थे। परन्तु एक बेर महाराज ईश्वरीप्रसाद नारायणसिंह के समय में उन्हें आने में देर हुई और इधर समय हो गया। लोगों ने महाराज की प्रतीक्षा न करके भरतमिलाप करा दिया। तब से उक्त महाराज नहीं आते थे, परन्तु वर्तमान काशिराज श्री महाराज प्रभुनारायण सिंह बहादुर फिर आने लगे हैं।

सुनते हैं एक समय किसी अंगरेज़ हाकिम ने कहा कि हनुमान जी तो समुद्र पार कूद गए थे; तब हम जानैं जब तुम्हारे हनुमान जी वरुणा नदी पार कूद जायँ। हनुमान जी चट कूद गए, परन्तु उस पार जाते ही उनका प्राणान्त हो गया। उस अंगरेज़ को सर्टिफिकेट अब तक महन्त के पास है।

बाबू हर्षचन्द्र का स्वभाव अत्यन्त उदार और उच्च था। गोस्वामी श्री बाबू हरिकृष्णदास टेकमाली ने अपने ग्रन्थ "गिरिधरचरितामृत" में उनका चरित्र वर्णन करते समय लिखा है कि ये कविता भी करते थे, परन्तु अब तक इनकी कोई कविता हम लोगों के देखने में नहीं आई है॥"

मन्दिर के दोनो नक्कारख़ाने इन्हीं के बनवाए हुए हैं। एक तो बाबू गोपालचन्द्र के जन्म पर बना था और दूसरा बाबू हरिश्चन्द्र के जन्म पर।

एक बेर यह श्री जगन्नाथराय जी के दर्शन को पुरी गए थे। तब तक रेल नहीं चली थी, अतएव खुशकी के रास्ते गए थे। बङ्गाल के प्रसिद्ध लाला बाबू* से इनके वंश से मुर्शिदाबाद ही से बहुत सम्बन्ध था। एक दिन ये उनके यहां मेहमान हुए। वहां इनके ठाकुर श्री कृष्णचन्द्र जी का बहुत भारी मन्दिर और वैभव है। सुना है कि इनके पहुंचते ही उनकी ओर से श्री ठाकुर जी का बालभोग महाप्रसाद आया जो कि सौ चांदी के थालों में था। सब प्रसाद फलहारी ही था और एक सौ ब्राह्मण लाए थे, जो सबके सब एक ही रङ्ग का पीताम्बर उपरना पहिरे हुए थे।

इनका नाम तैलंग देश में बहुत प्रसिद्ध है। जो बड़ा दीवानखाना इन्होंने बनवाया, उसके उपर एक छोटा मन्दिर भी श्री ठाकुर जी का है। उस पर स्वर्ण कलश लगा हुआ है। उसीसे सारे तैलङ्ग देश में इनका नाम नवकोटि नारायण† नाम से प्रसिद्ध हो गया है और यावत् तैलङ्गी लोग इस कलश के दर्शनार्थ आते और हाथ जोड़ जाते हैं। यह बात काशी के यावत यात्रावालों को विदित है; जहां उन्होंने नवकोटि नारायण का नाम लिया, वह यहां ले आए।

बाबू गोपालचन्द्र

बाबू हर्षचन्द्र की बड़ी अवस्था हो गई और कोई पुत्र सन्तान न हुई। एक दिन यह श्री गिरिधरजी महाराज के पास बैठे हुए थे। महाराज ने पूछा बाबू, आज तुम उदास क्यों हो? लोगों ने कहा कि

* इस वंश के अधिष्ठाता दीवान गङ्गा गोबिन्द सिंह थे, जो कि वारेन हेस्टिङ्ग्ज़ के बनिया थे, और बड़ी सम्पत्ति छोड़ मरे। बङ्गाल में ये पाइकपाड़ा के राजा के नाम से प्रसिद्ध हैं। परन्तु इनका मुख्य वासस्थान मौज़ा कांदी ज़िला मुर्शिदाबाद है। इन्होंने अपनी माता के श्राद्ध में २० लाख रुपया व्यय किया था और उसमें समग्र बङ्गाल के राजा महाराजा आए थे। ऐसा श्राद्ध कभी नहीं हुआ था। इनके वंश में राजा कृष्णचन्द्र सिंह प्रसिद्ध नाम लाला बाबू हुए। उन्होंने अपने राज्यैश्वर्य को छोड़ कर श्री वृन्दावन में वास किया। वहां वे मधुकरी मांग कर खाते थे। परम वैष्णव श्री ठाकुर जी का मन्दिर और वैभव कांदी और श्री वृन्दावन में बहुत बढ़ाया (See Growse's Mathura)। इनके विषय में भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र जी अपने उत्तरार्द्ध भक्तमाल में लिखते हैं—

लाला बाबु बङ्गाल के वृन्दाबन निवसत रहे।
छोड़ि सकल धन धाम वास ब्रज को जिन लीनी॥
मांगि मांगि मधुकरी उदर पूरन नित कीनो।
हरि मन्दिर अति रुचिर बहुत धन दै बनवायो॥
साधु संत के हेत अन्न को सत्र चलायो।
जिनकी मृत देहहु सब लखत ब्रज रज लोटन फल लहे॥

† तैलङ्ग देश में कोई नवकोटि नारायण बड़े धनिक हो गए हैं। इन्हें वहां के लोग एक अवतार मानते हैं और इनके विषय में नाना किम्बदन्ती उस देश में प्रसिद्ध है। इनका पूरा इतिहास Indian Antiquary में छपा है।

इनकी इतनी अवस्था हुई, परन्तु कोई सन्तान न हुई, वंश कैसे चलेगा; इसीकी चिन्ता इन्हें है। महाराज ने आज्ञा की कि तुम जी छोटा न करो। इसी वर्ष तुम्हें पुत्रसन्तान होगी। और ऐसा ही हुआ। मिती पौष कृष्ण १५, संवत १८९० को कविकुलचूड़ामणि बाबू गोपालचन्द्र का जन्म हुआ। केवल श्रीगिरिधर जी महाराज की कृपा से जन्म पाने और उनके चरणारविन्दों में अटल भक्ति होने के कारण ही इन्होंने कविता में अपना नाम गरिधरदास रक्खा था।

विवाह

बाबू हर्षचन्द्र को एक पुत्र के अतिरिक्त दो कन्या भी हुईं बड़ी का नाम यमुना बीबी (जन्म भादो ब० ८, सं० १८९२) और छोटी गंगा बीबी (जन्म भादों ब० ४, सं०१८९४)

बाबू हर्षचन्द्र ने अपनी तीन सन्तानों में से दो का विवाह अपने हाथों किया। पहिले यमुना बीबी का, पोछे बाबू गोपाल चन्द्र का। गंगाबीबी का विवाह बाबू गोपालचन्द्र के समय में हुआ।

यमुना बीबी का विवाह काशी के प्रसिद्ध रईस, राजा पट्टनीमल बहादुर के पौत्र राय नृसिंहदास से हुआ। राजा पट्टनीमल, पटने के महाराज ख्यालीराम, बहादुर के पौत्र थे। यह महाराज ख्यालीराम विहार के नायब सूबेदार थे। इनका सविस्तर वृत्तान्त बङ्गाल और विहार के इतिहासों में मिलता है। राजा पट्टनीमल ऐसे प्रतापी हुए कि ये छोटी ही अवस्था में पिता से कुछ अप्रसन्न होकर चले आए और फिर लखनऊ गए। वहां उस समय अंगरेज़ गवर्न्मेंण्ट से और नवाब लखनऊ से सुलह की शर्तें तै हो रही थीं। परन्तु नवाब के चालाक अनुचरवर्ग कभी कुछ कह देते, कभी कुछ; किसी तरह बात तै न होने पाती। निदान उन शर्तों को तै करने के लिये राजा पट्टनीमल नियत किए गए। इन्होंने पहिले ही यह नियम किया कि हम ज़ुबानी कोई बात न करेंगे, जो कुछ हो लिख कर तै हो। अब तो कोई कला उन लोगों की न चलने लगी। नवाब की ओर से राजा साहब के उस्ताद मौलवी साहब भेजे गए। राजा साहब ने उनका बड़ा आदर सत्कार किया और पूछा क्या आज्ञा है। मौलवी साहब ने एक लाख रुपए की अशर्फ़िएं राजा साहब के आगे रख दीं और कहा कि आप नवाब पर रहम करें। हिन्दू मुसलमान तो एक ही हैं, ये फ़रङ्गी परदेसी हमारे कौन होते हैं। सुलहनामे में नवाब के लाभ की ओर विशेष ध्यान रक्खें, अथवा आप इस काम से अलग ही हो जांय। राजा साहब ने बहुत ही अदब के साथ निवेदन किया कि आप उस्ताद हैं, आपको उचित है कि यदि मैं कोई अनुचित कार्य करूं तो मुझे ताड़ना दें, न कि आप स्वयं ऐसा उपदेश मुझे दें। यह सेवकधर्मविरुद्ध काम मुझसे कभी न होगा और देशी तथा विदेशी आ... हमारे लिये तो जब विदेशी की सेवा स्वीकार कर ली, तो फिर वह लाख देशियों से बढ़ कर है। निदान मौलवी साहब मुंह ऐसा मुंह लेकर चले आए। कहते हैं कि राजा साहब को आगरे के क़िले से बहुत धन मिला, जिसका ठीका उन्होंने राय ज्योतिप्रसाद ठीकेदार के साझे में लिया था। उन्होंने मथुरा वृन्दाबन में दीर्घविष्णु का मन्दिर, शिव तालाब, कुंज आदि (See Growse's Mathura), आगरे में शीशमहल, पीली कोठी आदि, दिल्ली में आलीशान मकानात, काशी में कीर्त्तिवासेश्वर का मन्दिर, हरतीर्थ, कर्मनाशा का पुल आदि सैकड़ों हो कीर्ति के अतिरिक्त एक करोड़ की सम्पत्ति छोड़ी; और इनका पुस्तकालय तथा औषधालय भी बहुत प्रसिद्ध था (भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र लिखित "पुरावृत्तसंग्रह" देखो)। हम राजा साहब के उदार हृदय का उदाहरण दिखाने के लिये केवल एक घटना का उल्लेख करके प्रकृत विषय का वर्णन करेंगे। राजा साहब के मुख्तार बाबू बेनी प्रसाद राजा साहब के किसी कार्य वश कलकत्ते गए थे। वहां लाख रुपए पर दस दस रुपए की

चिट्ठी पड़ती थी। एक चिट्ठी इन्होंने भी राजा साहब के नाम से डलवा दी और राजा साहब को लिख दिया। राजा साहब ने उत्तर में लिखा कि मैं जूआ नहीं खेलता, यह तुमने ठीक नहीं किया; ख़ैर अब तुम इस रुपए को ख़र्च में लिखदो। संयोगवश वह चिट्ठी राजा साहब के नाम ही निकल आई और लाख रुपया मिला। बाबू बेनी प्रसाद ने फिर राजा साहब को लिखा। राजा साहब ने उत्तर में लिखा कि हम पहिले ही लिख चुके हैं कि हम जूआ नहीं खेलते, अतएव हम जूए का रुपया न लेंगे, तुम्हारा जो जी चाहै करो। उसी रुपए के कारण उक्त बाबू बेनी प्रसाद के वंशधर काशी में बड़े गृह और ज़िमीदारी के स्वामी हैं। इस विवाह में राजा साहब जीवित थे। सुना है कि बड़ी धूम का विवाह हुआ था और बड़ी ही शोभा हुई थी।

यमुना बीबी को कई सन्तति हुई, परन्तु कोई भी न जीई। इससे अन्त में राय प्रह्लाददास और उनकी कनिष्ठ भगिनी सुभद्रा बीबी अपने ननिहाल में पले। राय प्रह्लाद दास इस समय काशी में आनरेरी मेजिस्ट्रेट हैं। ननिहाल के संसर्ग से इनकी रुचि संस्कृत की ओर अधिक हुई और ये अच्छी संस्कृत जानते हैं। सुभद्रा बीबी का विवाह काशी के सुप्रसिद्ध धनिक साहो गोपालदास के वंशज बाबू वैद्यनाथ प्रसाद के साथ हुआ था। परन्तु अब वे दोनो ही पति पत्नी जीवित नहीं हैं। केवल उनके पुत्र बाबू यदुनाथ प्रसाद उनके उत्तराधिकारी हैं।

गङ्गा बीबी का विवाह प्रबन्धलेखक के पिता बाबू कल्यानदास के साथ हुआ। इन्हें दो पुत्र और एक कन्या हुई। ज्येष्ठ पुत्र जीवनदास का बचपन ही में परलोकवास हुआ। कन्या लक्ष्मीदेवी का विवाह बाबू दामोदर दास बी ए. के साथ हुआ था जो कि निःसन्तान ही मर गई। तीसरा पुत्र इस प्रबन्ध का लेखक है।

बाबू गोपाल चन्द्र का विवाह दिल्ली के शाहजादों के दीवान राय खिरोधर लाल की कन्या पार्वती देवी से संवत १९०० में हुआ। राय खिरोधर लाल का वंश फारसी में विशेष विद्वान था और इन्हें वंश परम्परागत राय की पदवी दिल्ली दर्बार से प्राप्त थी। राय साहब को एक ही कन्या थी। इधर बाबू हर्षचन्द्र को एक ही पुत्र। विवाह बड़ी धूमधाम से हुआ। बाबू हर्ष चन्द के चौखम्भास्थित घर से राय खिरोधर लाल का शिवालास्थित भवन तीन मील से कम नहीं है, परन्तु बारात इतनी भारी निकली थी कि बर अपने घर ही था कि बारात का निशान समधी के घर पहुंचा, अर्थात् तीन मील लम्बी बारात थी। राय साहब ने भी ऐसी ख़ातिर की थी कि कूओं में चीनी के बोरें छुड़वा दिए थे। अस्तु यह विवाह काशी में अब तक प्रसिद्ध है।

यह पार्वती देवी अत्यन्त ही सुशीला थीं। प्राचीन स्त्रिएं इनके रूप और गुण की प्रशंसा करते नहीं अघातीं। इन्हें चार सन्तति हुईं। मुकुन्दी बीबी, बाबू हरिश्चन्द्र; बाबू गोकुल चन्द्र और गोविन्दी बीबी।

श्रीमती पार्वती देवी के मरने पर इनका दूसरा विवाह उसी वर्ष फाल्गुण संवत १९१४ में बाबू रामनारायण की कन्या मोहन बीबी से हुआ। मोहन बीबी से इन्हें दो सन्तान हुए। प्रथम पुत्र हुआ। नाम उसका श्याम चन्द्र रक्खा गया था, परन्तु तीन ही महीने का होकर मर गया। द्वितीय कन्या हुई जो कि प्रसूतिगृह में ही मर गई। मोहन बीबी को मृत्यु संवत १९३८ के माघ कृष्ण १० को हुई।

बाबू हर्षचन्द्र का परलोकवास ४२ बर्ष की अवस्था में संवत १९०१, मिती वैसाख बदी १३, को हुआ। बाबू गोपालचन्द की अवस्था उस समय केवल ११ बर्ष ही की थी। कविता की कमनीय कान्ति का अनुराग बाबू गोपालचन्द्र को बाल्यावस्था ही से था। इसीसे आप लोग समझ

लीजिए कि १३ ही वर्ष की अवस्था में संवत १९०३ में वृहत् बाल्मीकीय रामायण का भाषा छन्दोवद्ध अनुवाद इन्होंने किया, परन्तु दुर्भाग्यवश अब इस अनुवाद का पता कहीं नहीं लगता है। केवल अस्तित्व के प्रमाण के लिये ही माना "बालाबोधिनी" में इसका एक अंश छपा है। हिन्दी और संस्कृत की कविता इनकी प्रसिद्ध है। परन्तु कभी कभी उर्दू की भी कविता करते थे। उन्होंने एक "ग़ज़ल" में लिखा है।

"दास गिरिधर तुम फ़क़त हिन्दी पढ़े थे खूबसी,
किस लिये उर्दू के शायर में गिने जाने लगे।

शिक्षा और चरित्र

पाठक स्वयं विचार सकते हैं कि इतने बड़े धनिक के एक मात्र पुत्रसन्तान का लालन पालन कितने लाड़ चाव से हुआ होगा, और हमारे देश की स्थिति के अनुसार इनको सी अवस्था के बालक, जिनके पिता भी बचपन ही में परलोकगामी हुए हों, कैसे सुशिक्षित और सच्चरित्र हो सकते हैं। परन्तु आश्चर्य है कि इनके विषय में सब विपरित ही हुआ। इनका सा विद्वान और सच्चरित्र ढूंढ़ने से कम मिलैगा। इसका कारण चाहे भगवतकृपा समझिए, या ऋषितुल्य गुरु श्रीगोस्वामी गिरधर जी महाराज का आशीर्वाद, सहवास और शिक्षा। जो कुछ हो, इनकी प्रतिभा विलक्षण थी। नियम पूर्वक शिक्षा न होने पर भी संस्कृत और भाषा के ये ऐसे विद्वान थे कि पण्डितलोग इनका आदर करते थे। चरित्र इनका ऐसा निर्मल था कि काशी के लोग इन्हें बहुत ही भक्तिभाव से देखते थे, यहां तक कि प्रसिद्ध कमिश्नर मिस्टर गबिन्स ने अपनी रिपोर्ट में लिखा था कि "बाबू गोपालचन्द्र परकटा फरिश्ता है"। इनके विचार कैसे थे, यह पाठक पूज्य भारतेन्दुजी के निम्नलिखित वाक्यों से, जो उन्होंने 'नाटक' नामक ग्रन्थ में लिखे हैं, जान सकते हैं। "विशुद्ध नाटकरीति से पात्र-प्रवेशादि नियम रक्षण द्वारा भाषा का प्रथम नाटक मेरे पिता पूज्यचरण श्री कविवर गिरिधरदास (वास्तविक नाम बाबू गोपालचन्द्र जी) का है। मेरे पिता ने बिना अङ्गरेज़ी शिक्षा पाए इधर क्यों दृष्टि दी, यह बात आश्चर्य की नहीं है। उनके सब विचार परिष्कृत थे। बिना अंगरेज़ी की शिक्षा के भी उनको वर्तमान समय का स्वरुप भली भांति विदित था। पहिले तो धर्म ही के विषय में वे इतने परिष्कृत थे कि वैष्णव व्रत पूर्ण के हेतु अन्य देवता मात्र की पूजा और व्रत घर से उन्होंने उठा दिया था। टामसन साहब लेफ़टिनेंट गवर्नर के समय काशी में पहिला लड़कियों का स्कूल हुआ तो हमारी बड़ी बहिन को इन्होंने उस स्कूल में प्रकाश्य रीति से पढ़ने बैठा दिया। यह कार्य उस समय में बहुत कठिन था, क्योंकि इसमें बड़ी ही लोकनिन्दा थी। हम लोगों को अंगरेज़ी शिक्षा दी। सिद्धान्त यह कि उनकी सब बातें परिष्कृत थीं और उनको स्पष्ट बोध होता था कि आगे काल कैसा चला आता है। ......केवल २७ वर्ष की अवस्था में मेरे पिता ने देहत्याग किया, किन्तु इस अवसर में ४० ग्रन्थ बनाए।"

दिनचर्या

व्यसन इन्हें भगवत्सेवा या कविता के अतिरिक्त कोई भी न था। जाड़े के दिनों में सवेरे तीन ही बजे से उठते और मन्दिर के भृत्यों को बुलवाते और गर्मी के दिनों में पांच बजे शौचादि से निवृत्त होकर कुछ कविता लिखते। शौच जाते तो कलम दावात कागज़ बाहर रक्खा रहता। यदि कुछ ध्यान आजाता तो शौच से निकलते ही हाथ धोकर लिख लेते, तब दतुअन करते। कभी घर श्री ठाकुर जी की सेवा में स्नान करने के पहिले श्री मुकुन्दराय जी के दर्शन को तामजाम पर बैठ कर जाते और कभी अपने यहां शृङ्गार की सेवा पहुँच कर तब जाते। घर में भी ठाकुर जी की शृङ्गार को सेवा नित्य करते। सेवा से निकल कर कविता लिखते, लेखक चार पांच बैठे रहते उनसे लिखवाते, राजभोग आरती करके दस ग्यारह बजे श्री ठाकुर जी की महाप्रसादी रसोई खाते

भोजनोपरान्त कुछ देर दर्बार करते थे। घर के काम काज देखते। फिर दो पहर को कुछ देर सोते। तीसरे पहर को फिर दर्बार लगता। कवि-कोबिदों का सत्कार करते, कविता की चर्चा रहती, संध्या को हवा खाने जाते, गाड़ी तक तामझाम पर जाते। रामकटोरावाले बाग़ में जाकर भांग पीते। शौच होकर घर आते। हवा खाकर आने पर फिर दर्बार लगता। रात्रि को दस बजे तक भोजन करके सोते। सवेरे बिना कम से कम पांच पद बनाए भोजन न करते। संध्या को सुगन्धित पुष्प का गजरा वा गुच्छा पास में अवश्य रहता। रात्रि को पलंग के पास एक चौकी पर काग़ज़, कलम, दावात, रहती, शमेदान रहता, एक चौकी पर पानदान और इत्रदान रहता। रात्रि को कविता कुछ अवश्य लिखते। स्वभाव हंसोड़ बहुत था, इसलिये जब बैठते, हंसी दिल्लगी होती, परन्तु दर्बार के समय नहीं।

कवियों का आदर

इनके दर्बार में कवियों का बड़ा आदर होता था। इनके यहां से कोई कवि विमुख न फिरता। यद्यपि इनके दर्बारी कवियों का पूरा वृत्तान्त उपलब्ध नहीं है, तथापि दो तीन कवियों का जो पता लगा है, वह प्रकाशित किया जाता है।

एक कवि जी को (इनका नाम कदाचित ईश्वर कवि था) एक चश्मे की आवश्यकता थी। उन्होंने एक कविता बना कर दिया। उन्हें तुरन्त चश्मा मिला। उस कवित्त का अन्तिम चरण मुझे स्मरण है; वह यह है—

"खसमामुखो के मुख भसमा * लगाइवे को रहो धनाधीश हमें चाहत एक चसमा"।

एक कवि जी की यह कविता उपलब्ध हुई है—परझूलिया छन्द—"बैठे हैं विराजो राज मन्दिर मों कियो साज सर्म को साज आसय आजिम अचल है। दविता को रहे अरि सविता को सागर मों कविता कमलता के सचिता सबल है। कहै कविराज कर जोरे प्रभू गोपालचन्द ए बचन बिचारो मेरो विद्या को विमल है। बगर बड़ाई कोरु सर सोलताई को सुभाजन भलाई को सभाजन सकल है॥ १॥ दोहा॥ जहां अधिक उपमेव है छीन होत उपमान। अलंकार वितरेक को किज्जत तहां बिनान॥ जथा। वुध सों विरोधे सकल कलानिधि देखो दुःपश्य निर्मल सो न आदर सहै। गुरु से ईस मै गुरुज्ञान में विलोकियतु कबिता अनेक कविताई को सरस है॥ द्वार आगे हैं राजत गजराज फेरियत रीझि रीझि दीजियत पायन परसतु (स?) है। कहैं संभू महाराज गोपालचन्द जू धरमराज की सभा तें सभा रावरी सरस हैं।"
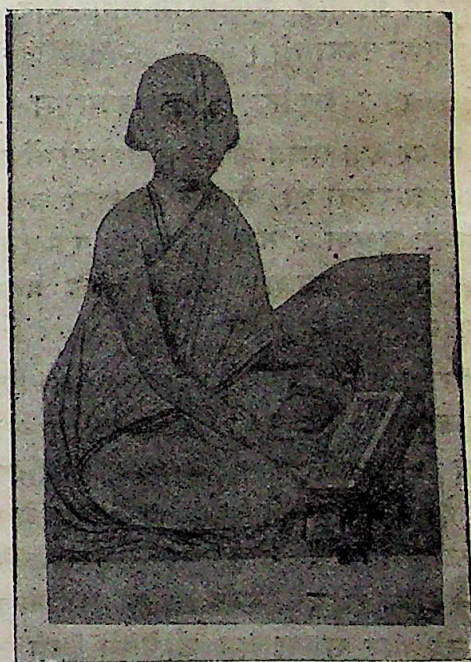
बाबू गोपालचन्द्र जी

सुप्रसिद्ध कवि सरदार ने इनके बलिराम कथामृत के आदि से "स्तुति प्रकाश" को लेकर उस पर टीका लिखी है। उसमें उक्त कवि ने इनके विषय में जो कुछ लिखा है उसे हम उद्धृत करते हैं।

* मुखरा सरस्वती के मुख में भस्म लगाने के लिये, अर्थात कविता लिखने के लिये।

छप्पै

विमल बुद्धि कुल वैस बनारस वास सुहावन ॥
फतेचन्द आनन्द कन्द जस चन्द बढ़ावन ॥
हरषचन्द ता नन्द मन्द बैरी मुख कीने ।
तासुत श्री गोपालचन्द कविता रस भीने ।
दश कथा अमृत बलराम मैं अस्तुति उह भूषन दियो ।
तेहिदेखिसुबुधसरदारकबिबुधिसमानटीकाकियो ।

दोहा

लोक विभू ग्रह* संभु सुत रह सुचि भादव मास ।
कृष्णजन्म तिथि दिन कियो पूरन तिलक विलास ।

पूज्य भारतेन्दु जी ने इनके मुख्य सभासदों के नाम एक याददाश्त में इस प्रकार लिखे हैं—

पंडित ईश्वरदत्त जी (ईश्वर कवि), सरदार कवि, गोस्वामी दीनदयाल गिरि, कन्हैयालाल लेखक, पंडित लक्ष्मीशंकर व्यास, बाबू कल्यानदास, माधोराम जी गौड़, गुलाबराम नागर और बालकृष्ण दास टकसाली ।

साधु महात्माओं का समागम

इनपर उस समय के साधु महात्माओं की भी बड़ी कृपा रहती थी और ये भी सदा उन लोगों की सेवा सुश्रुषा में तत्पर रहते थे। एक पुर्ज़ा उस समय का मुझे मिला है जो अविकल प्रकाशित किया जाता है—

"राम किंकर जी अयोध्या के महन्त जिनका नाम जाहिर है आपने बी सुना होगा, बड़े महात्मा हैं सो राधिका दास जी के स्थान पर तीन चार रोज से टिके हैं अभी उनके साथ सहर में गए हैं और चाहिए कि दो तीन घड़ी में आपकी भेट को आवैं क्योंकि राधिका दास जी की ज़ुबानी आपके गुन सुने और सहस्र नाम की पोथी देखी उत्कंठा मालूम होती है और हैं कैसे 'कौपीनवन्तः खलु भाग्यवन्तः' ।

राधिकादासजी, रामकिंकर जी, तुलाराम जी, भागवतदास जी आदि उस समय बड़े प्रसिद्ध महात्मा गिने जाते थे । इन लोगों से इनसे बहुत स्नेह था, वरञ्च इन लोगों से भगवत् सम्बन्धी चुहलबाज़ी भी होती थी। एक दिन इन्हीं में से किसी महात्मा से इन्होंने कहा कि 'भगवान श्री कृष्णचन्द्र में भगवान श्री रामचन्द्र से दो कला अधिक थीं, अर्थात् इनमें सोलहों कला थीं।" उक्त महानुभाव ने उत्तर दिया "जी हां चोरी और जारी" । कई महात्माओं की कथा भी धूमधाम से हुई थी।

बुढ़वामङ्गल

यह हम ऊपर लिख आए हैं कि बाबू हर्षचन्द के समय से बुढ़वामङ्गल का कच्छा इनके यहां बहुत तयारी के साथ पटता था और बिरादरी नेवता फिरता था, तथा गुलाबी पगड़ी दुपट्टा पहिर कर यावत् बिरादरी और नौकर आदि कच्छे पर आते थे । वैसी ही तयारी से यह मेला बाबू गोपालचन्द्र के समय में भी होता था। एक वर्ष कच्छे के साथ के कटर पर संध्या करने के लिये बाबू साहब आए थे और कटर के भीतर संध्या करते थे । छत पर और सब लोग बैठे थे। संध्या करके बाबू साहब ऊपर आए, सब लोग ताज़ीम के लिये खड़े हो गए । इस हल चल में नाव उलट गई और सब लोग अथाह जल में जा गए। उस समय उसी नाव पर एक नौकर की गोद में बड़ी कन्या मुकुन्दी बीबी भी थीं। यह दुर्घटना चौसट्ठी घाट पर हुई थी। इस घाट पर चतुष्षष्ठि देवी का मन्दिर है और होली के दूसरे दिन यहां धुरहड़ी को बहुत बड़ा मेला लगता है। इस घाट पर अथाह जल है और रामनगर के क़िले से टकरा कर पानी यहां आकर लगता है, इससे यहां पानी का बड़ा बेग रहता है; उस पर इनको तैरने भी नहीं आता था;—और भी आपत्ति यह कि लड़के साथ में । त्राहि भगवन, उस समय क्या बीती होगी! परन्तु रक्षा करनेवाले की बांह बड़ी लम्बी हैं । उसने सभों को ऐसा उबारा कि प्राणियों की कौन कहे, किसी पदार्थ को भी हानि

* संवत १९१४, भादों कृष्ण ८ को ग्रन्थ पूरा हुआ ।

न होने पाई। बाबू गोपालचन्द्र मेरे पिता बाबू कल्याणदास से लिपट गए। यह बड़े घबराए कि अब दोनों यहीं रहे। परन्तु साहस करके इन्होंने उनको अपने शरीर से छुड़ाकर ऊपर की ओर ढकाया। सैाभाग्यवश नैाकाएं वहां पहुंच गई थीं, लोगों ने हाथों हाथ उठा लिया। मुकुन्दी बीबी अपनी सोने की सिकरी को हाथ से पकड़े नैाकर के गले से चिपटी रही। निदान सब लोग निकल आए, यहां तक कि जितने पदार्थ डूबे थे वे सब भी निकल आए। एक सोने की घड़ी, चाँदी का चश्मे का खाना और बांह पर बांधने का एक चांदी का यन्त्र अब तक उस समय का जल में से निकला हुआ रक्खा है। कविवर गोपालचन्द्र की कवित्वशक्ति उस समय भी स्थगित न हुई और उन्होंने उसी अवस्था में एक पद बनाया जोकि मुझे पूरा स्मरण नहीं है, परन्तु अन्तिम पद उसका यह है—

"गिरिधर दास उबारि दिखायो
भवसागर को नमूना"

चार दिन बुढ़वामङ्गल के अतिरिक्त, होली और अपने तथा पुत्रों के जन्मोत्सव के दिन बड़ा जलसा और बिरादरी की जेवनार कराते थे, कि जिसकी शोभा देखनेवाले अब तक भी वर्तमान हैं, और कहते हैं वैसी शोभा अब अच्छे अच्छे विवाह की महफ़िलों में भी नहीं दिखाई देती।

एक बेर ये हाथी से भी गिरे थे और उसी दिन उस हाथी को काशिराज की भेंट कर दिया।

गयायात्रा

बचपन से श्रीठाकुर जी की सेवा और दर्शन का ऐसा अनुराग था कि उन्हें छोड़ कर कभी कहीं यात्रा का विचार नहीं करते। केवल पांच वर्ष की अवस्था में मुण्डन कराने के लिये पिता के साथ मथुरा जी गए थे, तथा श्रीदाऊ जी के मन्दिर में मुण्डन हुआ था और वहां से लैाट कर श्री वैद्यनाथ जी गए थे, वहां चोटी उतरी थी। स्वतन्त्र होने पर कभी कभी चरणाद्रि श्री महाप्रभु जी के दर्शन को जाते; परन्तु पहिले दिन जाते, दूसरे दिन लैाट आते। केवल बाबू हरिश्चन्द्र के जन्मोपरान्त संवत १९०७ में पितृऋण चुकाने के लिये गया गए थे। गया जाने के लिये बड़ी तयारियां हुईं। महीनों पहिले से सब पुराणों, धर्मशास्त्रों से छांट कर एक सङ्ग्रह बनाया गया। रेल थी नहीं, डांक का प्रबन्ध किया गया। सैकड़ों आदमियों का साथ था। पन्द्रह दिन की गया का विचार करके गए, परन्तु वहां जाने पर प्रभुवियोग ने विकल किया। दिन रात रोवैं, भोजन न करैं, सेवा का स्मरण अहर्निशि रहै। निदान किसी किसी तरह तीन दिन की गया करके भागे। रात दिन बराबर चले आए और आकर श्रीचरणदर्शन से अपने को तृप्त किया। इस यात्रा में मेरी माता साथ थीं।

ग्रन्थ

इनका सबसे पहिला ग्रन्थ वाल्मीकि रामायण है, जिसका वर्णन ऊपर हो चुका है। परन्तु खेद के साथ कहना पड़ता है कि इनके ग्रन्थ ऐसे अस्त व्यस्त हो गए हैं कि जिनका कुछ पता ही नहीं लगता। केवल पूज्य भारतेन्दु जी के इस दोहे से

"जिन श्रीगिरिधर दास कवि रचे ग्रन्थ चालीस
ता सुत श्रीहरिचन्द्र को को न नवावै सीस"।

इतना पता लगता है कि उन्होंने चालीस ग्रन्थ बनाए थे, परन्तु उनके नाम या अस्तित्व का पता नहीं लगता।

पूज्य भारतेन्दु जी ने अपनी याददाश्त में इन ग्रन्थों के नाम लिखे हैं—

१ वाल्मीकि रामायण (सातों कांड छन्द में अनुवाद)। २ गर्गसंहिता। ३ भाषा एकादशी की चैाबीसों कथा। ४ एकादशी की कथा। ५ छन्दार्णव। ६ मत्स्यकथामृत। ७ कच्छपकथामृत। ८ नृसिंहकथामृत। ९ बावनकथामृत। १० परशुरामकथामृत। ११ रामकथामृत। १२ बलरामकथामृत। १३ बुद्धकथामृत। १४ कल्किकथामृत। १५ भाषा व्याकरण। १६ नीति। १७ जरासन्धबधमहाकाव्य। १८ नहुषनाटक। १९ भारती-

भूषण। २० अद्‌भुत रामायण। २१ लक्ष्मी नख सिख। २२ रसरत्नाकर। २३ वार्ता संस्कृत। २४ ककारादि सहस्रनाम २५ गयायात्रा। २६ गयाष्टक। २७ द्वादश दलकमल। २८ कीर्तन की पुस्तक "स्तुति पञ्चाशिका" की कवि सरदार कृत टीका का वर्णन ऊपर हो चुका है। इसके अतिरिक्त निम्नलिखित संस्कृत स्तोत्रों पर संस्कृत टीका कवि लक्ष्मीराम कृत मुझे मिली है—

१ सङ्कर्षणाष्टक। २ दनुजारिस्तोत्र। ३ वाराहस्तोत्र। ४ शिवस्तोत्र। ५ श्री गोपालस्तोत्र। ६ भगवत्स्तोत्र। ७ श्री रामस्तोत्र। ८ श्री राधास्तोत्र। ९ रामाष्टक। १० कालियकालाष्टक। इनके ग्रन्थों के लुप्त होने का विशेष कारण यह जान पड़ता है कि इनके अक्षर अच्छे नहीं होते थे, इसलिये वे स्वयं पुर्ज़ों पर लिख कर या लेखकों से लिखवा कर फिर उनकी हज़ारों रुपए लगा कर सुन्दर अक्षरों में नकल लिखवाते और सुन्दर चित्र बनवाते थे। तब मूल कापी का कुछ भी यत्न न होता और ग्रन्थ का शत्रु वही उसका चित्र होता। मैंने बाल्मीकि-रामायण और गर्गसंहिता की सचित्र कापी बचपन में देखी थी, परन्तु उसे कोई महाशय पूज्य भारतेन्दु जी से ले गए और फिर उन्होंने इसे न लौटाया। कीर्तन की पुस्तक मुन्शी नवल किशोर के प्रेस से खो गई और "नहुषनाटक" का कुछ भाग "कविवचनसुधा" प्रथम भाग में छप कर लुप्त होगया। खेद है कि पूज्य भारतेन्दु जी की असावधानी ने इनको बहुत हानि पहुंचाई।

दशावतार कथामृत मानो उन्होंने भाषा में पुराण बनाया था। पुराण के सब लक्षण इसमें हैं। बलिरामकथामृत बहुत ही भारी ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ सं० १९०६ से १९०८ तक में पूरा हुआ है। भारतीभूषण अलङ्कार का अद्‌भुत ग्रन्थ है। अच्छे अच्छे कवि अपने विद्यार्थियों को यह ग्रन्थ पढ़ाते हैं। नहुषनाटक भाषा का पहिला नाटक है। भाषा व्याकरण-छन्दोबद्ध भाषा का व्याकरण अत्यन्त सुगम और सरल ग्रन्थ है। जरासन्धबध महाकाव्य और रसरत्नाकर अधूरे ही रह गए। इन दोनों को पूज्य भारतेन्दु जी पूरा करना चाहते थे, परन्तु खेद कि वैसा ही रह गया। जरासन्धबध महाकाव्य बहुत ही पाण्डित्यपूर्ण वीररसप्रधान ग्रन्थ है। भाषा में यह ग्रन्थ एम० ए० का कोर्स होने योग्य है। इसकी तुलना के भाषा में बिरले ही ग्रन्थ मिलेंगे। इस ढङ्ग का ग्रन्थ केवल कविवर केशवदास कृत रामचन्द्रिका ही है।

कविता

इनकी कविता पाण्डित्यपूर्ण होती थी। इन्हें अलङ्कारपूर्ण श्लेष, जमक इत्यादि कविता पर विशेष रुचि थी। परन्तु नीति, शृङ्गार और शान्त रस की कविता इनकी सरल और सरस अत्यन्त ही होती थी। हम उदाहरण के लिये कुछ कविताएं यहां उद्‌धृत करते हैं—

सवैया—सब केसब केसब केसब के हित गज सोहते सोभा अपार हैं। जब सैलन सैलन सैलन ही फिरै सैलन, सैलहिं सीस प्रहार हैं। गिरिधारन धारन सों पदके जलधारन लै बसुधारन फार हैं। अरि वारन बारन बारन पै सुह बारन बारन बारन बार हैं॥ १॥

मुकरी—अति सरसत परसत उरज उर लागि करत बिहार। चिन्ह सहित तन को करत सखि हरि नहिं हार॥ १॥

संख्यालंकार—गुरुन को शिष्यन पात्र भूमि देवन को मान देहु ज्ञान देहु दान देहु धन सों। सुत को सन्यासिन को वर जिजमानन कों सिच्छा देहु भिच्छा देहु दिच्छा देहु मन सों। सत्रुन मित्रन को पित्रन कों जग बीच तीर देहु छीर देहु नीर देहु पन सों। गिरिधर दास दासै स्वामी अघी को आसु रुख देहु सुख देहु दुख देहु तन सों॥

यथासंख्य—असतसङ्ग, सतसङ्ग, गुन, जङ्ग कहं देखि। भजहु, सहज्ज, सीखहु मज्जहु, लरहु, विसेखि॥

अविकृतशब्द श्लेष मूल वक्रोक्ति—मानिक ही रमनी सु लैहैं परसत तुव पाय। मानिक हार मनी सु लै देहु पतुरियै जाय ॥ १ ॥ मानत जोगहि सुमति बर पुनि पुनि होति न देह। जोगी मानहिं जोग के। नहिं हम करत सनेह ॥ १ ॥

स्वभावोक्ति-गैानो करि गैानो चहत पिय विदेस बस काजु। सासु पासु जोहत खरी आंखि आंसु उर लाजु ॥ १ ॥

समस्या पूर्ति—जीवन मैं सगरे जग के। हमतें सब पाप औ ताप की हानी। देवन कें। अरु पितृन कें। नरकें। जड़कें। हमहीं सुखदानी॥ जो हम ऐसो कियो तेहि नीच महा सठको मति लै अघसानी। हाय विधाता महा कपटी इहि कारन कूप मैं डोलत पानी ॥ १ ॥ बातन क्यों समुझावति है। मोहि मैं तुमरो गुन जानति राधे। प्रीति नई गिरिधारनसों भई कुंज मैं रीति के कारन साधे ॥ घूँघट नैन दुरावन चाहति दैारति सो दुरि ओट ह्वै आधे। नेह न गोयो रहै सखि लाज सों कैसे रहै जल जाल के बांधे ॥ १ ॥

जरासन्धबध महाकाव्य से—चले राम अभिराम राम इष धनु टंकारत। दीनबन्धु हरिबन्धु सिन्धु सम बल बिस्तारत॥ जाके दशसत सिरन मध्य इक सिर पर धरनी। लसति जथा गज सोस स्वल्प सरसप सित बरनी॥ विक्रम अनंत अंतक अधिक सुजस अनंत अनंत मति। परताप अनंत अनंत गुन लसे अनंत अनंत गति॥ १ ॥

पद-प्रभु तुम सकल गुन के खानि। है। पतित तुव सरन आयो पतित पावन जानि॥ कब कृपा करिहै। कृपानिधि पतितता पहिचानि। दास गिरिधर करत बिनती नाम निश्चै आनि ॥ १ ॥

खड़ी बोली का पद—जाग गया तब सोना क्या रे। जो नर तन देवन के। दुर्लभ सो पाया अब रोना क्या रे॥ ठाकुर से कर नेह अपाना इन्द्रिन के सुख होना क्या रे। जब बैराग ज्ञान उर आया तब चांदी औ सोना क्या रे॥ दारा सुअन सदन में पड़ के भार सबों का ढोना क्या रे। हीरा हाथ अमोलक पाया कांच भाव में खोना क्या रे॥ दाता जो मुख मांगा देवे तब कैाड़ी भर दोना क्या रे। गिरिधर दास उदर पूरे पर मीठा और सलोना क्या रे ॥ १ ॥

विदुर नीति से-पावक, बैरी, रोग, रिन सेसहु राखिय नाहिं। ए थोड़े हू बढ़हिं पुनि महाजतन सों जाहिं ॥ १ ॥

बाल्मीकिरामायण से-पति देवत कहि नारि कहं और आसरो नाहिं। सर्ग सिढ़ी जानहु यही वेद पुरान कहाहिं ॥ १ ॥

नीति के छप्पय (स्वहस्त लिखित एक पुर्जे से)—धिक नरेस बिनु देस देस धिक जहं न धरम रुचि। रुचि धिक सत्य विहीन सत्य धिक बिनु बिचार सुचि॥ धिक बिचार बिनु समय समय धिक बिना भजन के। भजनहुं धिक बिनु लगन लगन धिक लालच मन के॥ मन धिक सुन्दर बुद्धि बिनु बुद्धि सुधिक बिनु ज्ञान गति। धिक ज्ञान भगति बिनु भगति धिक नहिं गिरिधर पर प्रेम अति ॥ १ ॥

मुझे खेद है कि न तो मैंने इनके सब ग्रन्थों के। पढ़ा है और न इतना अवसर मिला कि उत्तमोत्तम कविता छांटता। यत्किञ्चित उदाहरण के लिये उद्धृत कर दिया है और चित्रकाव्य के। छापने की कठिनता से सर्वथा ही छोड़ दिया है ॥

रोग और मृत्यु

बचपन से लोगों ने उन्हें भङ्ग पीने का दुर्व्यसन लगा दिया था। वह अति के। पहुंच गया था और अन्त में इसीके कारण उन्हें जलोदर रोग हो गया। बहुत कुछ चिकित्सा हुई, परन्तु कोई फल न हुआ। सं० १९१७ की बैशाख सु० ७ के। अन्त समय आ उपस्थित हुआ। पूज्य भारतेन्दु जी और उनके छोटे भाई बाबू गोकुलचन्द्रजी के। सीतला जी का प्रकोप हुआ था। दोनों पुत्रों के। बुलाकर देखकर बिदा किया। इन लोगों के हटते ही प्राण पखेरू ने पयान किया। चारों ओर अन्धकार छा गया, हाहाकार मचगया। पूज्य भारतेन्दु जी कहते थे कि "वह मूर्ति अब तक मेरी आंखों के सामने विराजमान है।

तिलक लगाए बड़े तकिए के सहारे बैठे थे। दिव्य कान्ति से मुखमण्डल दीप्त था, मुख प्रसन्न था, देखने से कोई रोग नहीं प्रतीत होता था। हम लोगों को देखकर कहा कि सीतला ने बाग मोड़ दी। अच्छा अब ले जाव।" इनकी अन्त्येष्टि क्रिया एक सम्बन्धी (नन्हूसाव) ने की थी।

श्री राधाकृष्णदास।

अङ्गरेज़ी भाषा की उन्नति का संक्षिप्त इतिहास।

[गत अंक के आगे]

ऐंग्लोसैक्सन पुस्तकों में से कोई भी इस समय के लिये विशेष उपयोगी नहीं। कुछ आल्हा बिरहा की सी काव्य की पुस्तकें हैं, विशेषतः धर्म सम्बन्धी और कुछ झूठ सच मिले हुए इतिहास की! बस। परन्तु यह बात ध्यान देने योग्य है कि अंग्रेज़ों की पुण्यभूमि में देशानुरागी प्रजापालक पहिला राजा अलफ़्रेड हुआ और उसने मातृभाषा की उन्नति, देशोन्नति के लिये, आवश्यक समझी और उसमें पुस्तकों का अनुवाद करके उसने औरों का उत्साह बढ़ाया। इस बात को जानकर हमारे उन अंग्रेज़ी या संस्कृत विद्या के विद्वानों को लज्जा आनी चाहिए, जो देशानुरागी बनते हैं और उन्नति का दम भरते हैं। परन्तु मातृभाषा की पुस्तकों की ओर देखना हो—भला उन्हें पढ़ने और इस भाषा में पुस्तकें लिखने की कौन कहे—एक अप्रतिष्ठा समझते हैं। जैसे हमारे देश में सब शिक्षा अंग्रेज़ी ही में दी जाती है वैसे ही सैकड़ों वर्ष तक केवल इंग्लैंड ही में नहीं, वरन यूरप के सभी देशों में, सब शिक्षा लैटिन में होती थी। लेकिन देश के सच्चे हितैषी मातृभाषा में पुस्तकें रचना अपना कर्तव्य और गौरव समझते थे। इसी पुण्य प्रभाव से अंग्रेज़ों के राज्य में आज दिन सूर्य अस्त नहीं होता।

हमारे कुछ शिक्षित भाई कहते हैं कि अच्छी किताबें तो लिखें; लेनेवाला कौन है? यह सुन कर कुछ तो हंसी आती है, कुछ शोक होता है। क्या अलफ़्रेड राजा ने भी यह सोचा था कि किताबों से उन्हें क्या मिलेगा। ऐश व आराम से राज्य करें! अलफ़्रेड राजा ही क्या? प्राचीन काल में किताबों की बिक्री होती कहां थी? क्या रुपए के लालच के सिवा हम किसी और सबब से अपना समय अच्छे काम में नहीं लगा सकते? स[ब] यूरोपीय देशों का इतिहास स्पष्टरूप से बता रहा है कि दरिद्र और दुःख दूर करने का एक मात्र उपाय विद्या है और हमारे गरीब भाइयों को बिना मातृभाषा के विद्या कैसे प्राप्त हो सकती है? अगर हम स्वार्थपरता की इतनी पराकाष्ठा को पहुंच गए हैं कि दूसरे की भलाई के लिये का[म] करना पाप समझते हैं, तो क्या अपनी बुद्धि का चमत्कार दिखाने में भी कुछ आनन्द नहीं होता? क्या कीर्ति वा नाम के लिये श्रम करने में भी आनन्द नहीं होता, कि जैसा आजकल अलफ़्रेड ऐसे राजाओं का नाम आदर पूर्वक लिया जाता वैसेही सैकड़ों वर्ष बाद हमारा भी लिया जाय? कीड़े मकोड़े पैदा होते हैं; कुछ दिन जीते हैं; फिर मर जाते हैं। क्या ऐसाही मनुष्य का भी कर्तव्य है कि उसका दुनिया में आना न आना दोनों एक सा रहे! दूसरों की भलाई के लिये प्रयत्न करने से ज्यादा ईश्वर को कोई भी बात प्रिय नहीं। अगर ऊपर कहे हुए विचारों में से कोई भी हमारी सोती बुद्धि को नहीं जगाता तो हमें अंग्रेज़ों को दोष न लगाना चाहिए। जितना उन्होंने उपकार किया है उसके भी हमारे सदृश स्वार्थान्ध लोग पात्र नहीं। जो स्वयं दूसरों की कुछ परवाह नहीं करते, उनकी परवाह कोई क्यों करे, जिएं या मरें।

डेन लोग—सैक्सन राज्यकाल के बीच ही में डेन लोगों के इंग्लैन्ड पर हमले शुरू हुए। यह लोग डेन्मार्क, नार्वे और स्वीडन के निवासी थे और सैक्सनों

बाद गोथा यही समुद्र के राजा हुए। यह लोग बड़े निर्दयी थे। गिर्जाघर और सन्यासिओं के मठ तक ये जलादेते और लोगों को मार डालते। अलफ्रेड राजा ने इनको रोकने का अच्छा इन्तज़ाम किया था, परन्तु उसके मरने पर फिर इन लोगों के अत्याचार आरम्भ हुए। अन्त में इन्होंने राज्य छीन लिया। इनके ३ राजा हुए और केवल २४ बर्ष राज्य रहा। इनके अनन्तर फिर सैक्सन राजा के सन्तानों में से एक को राज्य प्राप्त हुआ। जब डेन लोगों का राज्य हुआ तब सैक्सन राजा फ्रांस के नारमण्डी प्रान्त के डयूक के यहां जा बसा था। इंगलेण्ड की अपेक्षा यह देश बहुत सभ्य और धनवान था। यह अन्तिम राजा २७ वर्ष वहां रहने के कारण बहुत कुछ बदल गया था। इनके ज़माने में फ्रांसीसी विद्वानों की बड़ी प्रतिष्ठा थी और उच्चपद विशेषतः फ्रांसीसी लोगों ही को मिलते थे। यह द्वितीय सैक्सन राज्यकाल २५ वर्ष रहा। सैक्सन राजा की मृत्यु पर विलियम, नारमण्डी के डयूक ने यह प्रगट करके कि सैक्सन राजा ने उसे अपना उत्तराधिकारी बनाया है, इंग्लैण्ड पर आक्रमण किया। एक युद्ध हुआ जिसमें विलियम की जय हुई और नार्मन राज्य प्रारम्भ हुआ। यह घटना १०६६ में हुई। द्वितीय सैक्सन राज्यकाल में या डेनों के ज़माने में विद्या और उन्नति सम्बन्धी कोई विशेष बात नहीं हुई। नार्मन राज्य का वृत्तान्त अब दिया जायगा।

ऊपर कहे हुए सैक्सनों को परास्त करने वाले विलियम महाशय वही हैं जिनकी सन्तान आज तक इंग्लैण्ड में राज्य कर रही है। केवल इंग्लैण्ड क्या, उनका राज्य पृथिवी के एक तिहाई हिस्से पर है। यही विलियम हमारे परम प्रशंसनीय महाराजा सप्तम एडवर्ड के पूर्वज थे।

अब हम उस समय तक आ पहुंचे हैं जिसके पीछे अंगरेज़ों को किसी अन्य देशीय का शासन नहीं स्वीकार करना पड़ा। इस कारण यह कहना अयुक्त न होगा कि उनकी उन्नति, विद्या, धन, सभी उनके परिश्रम का फल है। इस छोटे से लेख में केवल विद्या और मातृभाषा की उन्नति का हाल दिया जायगा। सब इतिहासों से विदित है कि बिना विद्या की उन्नति के कोई उन्नति नहीं हो सकती और बिना मातृभाषा की उन्नति विद्या का प्रचार नहीं हो सकता।

१०६६ ई०, अर्थात् जब से नार्मन राज्य हुआ, तब से अब तक ८३५ वर्ष हुए। इस समय को विद्या और मातृभाषा की उन्नति के लिहाज़ से ४ कालों में विभक्त कर सकते हैं।

१–१०६६ से १३५०–२८४ वर्ष
२–१३५० से १५५०–२०० वर्ष
३–१५५० से १७००–१५० वर्ष
४–१७०० से अजकल तक

अब एक एक का वृत्तान्त अलग अलग दिया जायगा।

प्रथम काल (१०६६ से १३५०)

इस काल के इंग्लैण्ड के राजा को विदेशी समझना चाहिए। स्कूलों में नार्मन फ्रेंच पढ़ाई जाती थी; कचहरियों में भी यही बोली जाती थी। इसीमें कानून बनते थे। इसीमें वकील मिसलें लिखते थे और इसी को क्लर्जी (ईसाई पादरी) अपने व्याख्यानों में प्रयोग करते थे। फ्रांसीसी पहनाव हुआ। उच्चपद सब नार्मनों को ही मिलते थे। सैक्सनों की भाषा और सैक्सनों से यह लोग घृणा करते थे।

इस ज़माने में बहुत सी पुस्तकें लैटिन में लिखी गईं। कुछ नार्मन फ्रेंच में भी हैं। काव्य, ईसाई धर्म और इतिहास–इन्हीं विषयों पर पुस्तकें हैं। इस समय के अन्तिम भाग में कुछ पुस्तकें ऐसी बनीं जिन्हें सैक्सन-फ्रेंच में लिखी कहना चाहिए। विशेषतः यह नार्मन फ्रेंच से अनुवाद की गई थीं। इनके द्वारा बहुत से फ्रेंच लैटिन शब्द अंग्रेज़ी में प्रचलित हुए और इस प्रकार अंग्रेज़ी भाषा का भण्डार पुष्ट हुआ। ये पुस्तकें देशानुरागी महात्माओं की बनाई हुई थीं। क्रमशः कुछ सैक्सन

लोगें ने नार्मन स्कूलें में शिक्षा पाई ग्रैार उन्होंने अपने ग्रैार देशवासियें के विद्यालाभ पहुंचाने का विचार किया। यह स्पष्ट है कि प्रत्येक व्यक्ति के न इतना अवसर है न इतना उत्साह कि अन्य देशीय भाषा में प्रवीण हो; इसी विचार से नार्मन-फ्रेंच का अंगरेज़ी में अनुवाद होने लगा। जिस शब्द के लिये सैक्सन शब्द न मिला, उसके लिये वही फ्रेंच शब्द रख दिया। इस प्रकार पुस्तकें आधी सैक्सन, आधी फ्रेंच अथवा सैक्सन-फ्रेंच में बनीं। इससे हमें बहुत लाभकारी शिक्षा मिलती है। भाषाकोष पूरा करने के निमित्त अनुवाद करना पहिली आवश्यकता है। जर्मन, फ्रेंच, अंगरेज़ी इत्यादि जितनी आधुनिक भाषाएं हैं, सबके इतिहासें से यही बात स्पष्ट है।

सैक्सनें की अपेक्षा नार्मन लोग ज्यादा सभ्य थे। खाने में इन्होंने भेड़ बकरी इत्यादि के मांस की प्रथा चलाई। वस्त्र इनके सैक्सनों से अधिक महीन ग्रैार सुन्दर होते थे। मकान भी ईंटों के बनने लगे। धनवान नार्मन लोग लकड़ी की चारपाइयें पर सोते थे, सैक्सन लोगें की नाईं ज़मीन पर नहीं। मेज़ कुर्सी का भी कुछ कुछ प्रचार हुआ। परन्तु याद रखना चाहिए कि यह अमीरों का हाल था। अधिकांश प्रजा तो उसी पुराने ढंग पर चली जाती थी।

ऊपर लिखे वृत्तान्त से मालुम होगा कि इस काल में उन्नति कम हुई। से। ठीक है। सामाजिक उन्नति कम हुई। राजनैतिक बातों के लिखने से लेख बहुत बढ़ जायगा। इस समय का मुख्य काम यह हुआ कि सैक्सन, डेन ग्रैार नार्मन, इन तीनों के वैर विरोध के क्रमशः कम करके एक क़ौम बनी। जब तक पहिले सब एक क़ौम न हो जाते, उन्नति कैसे होती। से मानो यह उन्नति के मार्ग की पहिली बहुत आवश्यकीय मंज़िल तै हुई।

द्वितीय काल (१३५० से १५५०)

अंग्रेज़ों के इतिहास का यह बड़ा ही गैारवास्पद काल है। अंग्रेज़ क़ौम का इसे बालपन कहना चाहिए। जिस जातीय एकता का पहिले कहे हुए काल में जन्म हुआ था, उसको इसीमें पुष्टि हुई। साथ ही साथ अंग्रेज़ी भाषा का भी जन्म हुआ। अंग्रेज़ों के राजा तृतीय एडवर्ड ग्रैार फ़रांसीसी राजा से घोर युद्ध हुआ। इस युद्ध का परिणाम यह हुआ कि विलियमवंशीय नार्मनें का अपनी सैक्सन प्रजा का सहारा लेना पड़ा ग्रैार इस प्रकार क़ौमी एकता के बड़ी सहायता पहुंची।

इसी काल के आरम्भ ही में विकलिफ़ ने बाइबिल का अंग्रेज़ी में अनुवाद करके अंग्रेज़ी गद्य की ग्रैार चासर ने अपनी काव्य रचनाग्रों से अंग्रेज़ी पद्य की नीव डाली। कचहरियें में अंग्रेज़ी का चलन चला। वकीलें की वक्तृताएं ग्रैार पादरियें के उपदेश अंग्रेज़ी में होने लगे। इस समय पुस्तकें विशेषतः दे ही विषयें पर लिखी गईं। एक काव्य, दूसरे धर्मसम्बन्धी। परन्तु काव्यरचना समस्यापूर्ति या गज़लें की धूम न थी। किन्तु सुन्दर सुन्दर किस्से ग्रैार ग्रैार भाषाग्रों से अनुवाद किए गए। लैटिन ग्रैार फ्रेंच पुस्तकों में से अधिकांश का अनुवाद हुआ ग्रैार एक एक नहीं बल्कि एक एक पुस्तक के कई एक अनुवाद हुए। इतिहास का कुछ हाल भी पद्य में लिखा गया। अंग्रेज़ों का पुराना इतिहास (क्रानिकल) जो अब तक लैटिन में लिखाजाता था, अंग्रेज़ी में लिखा जाने लगा। ईसाइयें के कैथलिक ग्रैार प्रोटेस्टैंट के मतविरोध के कारण छोटी छोटी पुस्तकों ग्रैार व्याख्यानें की बैाछार रही। काव्य, इतिहास ग्रैार ईसाईधर्म, इन विषयें के सिवाय ग्रैार विषयें की पुस्तकें लैटिन ही में लिखी जाती थीं। इस काल में छापे की कल के ईजाद होने से विद्या वृद्धि के बड़ी सहायता पहुंची। इसी काल में बहुत से उन स्कूलें ग्रैार कालिजें की बुनियाद डाली गई जो आज तक इंग्लैण्ड में वर्तमान हैं। धनी लोग जो पहिले गिरजाघर इत्यादि बनवाते थे या आलसी साधु सन्तों को खिलाते थे, इन स्कूलें के लिये रुपया छोड़ जा

लगे। हमारे देश की आधुनिक दशा बहुत कुछ इस काल की अवस्था से मिलती जुलती है।

तृतीय काल १५५० से १५००

चासर और विकलिफ की अंग्रेज़ी में और आजकल की अंग्रेज़ी में कुछ भेद है, इसलिये वह पुरानी अंग्रेज़ी कहाती है। उसमें बहुत कुछ सैक्सन व्याकरण के रूप पाए जाते हैं जो आजकल नहीं मिलते। बदलते बदलते इसमें अंग्रेज़ी अपने आधुनिक रूप को प्राप्त हुई। यह अंग्रेज़ी इतिहास का सबसे प्रसिद्ध काल है। इसमें महाकवि शेक्सपियर और मिलटन; बड़े भारी ज्ञानी बेकन और विज्ञान के जन्मदाता न्यूटन हुए। धर्मसम्बन्धी विषयों पर बड़े विद्वान हुकर ब्रौन, जिरमो टेलर इत्यादि ने पुस्तकें लिखकर सुन्दर अंग्रेज़ी गद्य साहित्य की नीव डाली। न्यूटन के अतिरिक्त विलकिन्स, गिलबर्ट, हार्वे इत्यादि ने विज्ञान की जड़ जमाई। बहुत से नाम गिनने से क्या लाभ। संक्षेपतया, १५५० से पहिले तो अंग्रेज़ी लेखकों के मुख्य विषय तीन थे—काव्य, धर्म, इतिहास। अब तीन विषय और मिले—नाटक, राजनीति और विज्ञान। इसमें धर्मसम्बन्धी वाद विवाद बहुत कम हुआ और राजनैतिक वाद विवाद भी आरम्भ हुआ।

यह पढ़के अत्यानन्द होता है कि कवियों में से अधिकांश उच्चशिक्षा पाए हुए आक्सफोर्ड केम्ब्रिज के से प्रसिद्ध विश्वविद्यालयों के एम. ए. थे। मिलटन ने एम. ए. होने के बाद ग्रीक फ्रेंच और इटालियन में अभ्यास बढ़ाया था। इन लोगों ने हमारे अभागे देश के बहुत से कवियों की तरह समस्या पूर्ति ही को अपना कर्तव्य न समझा, न नायिका-भेद को कविता का अन्त माना।

न्यूटन और बेकन ने अपने उमदा से उमदा ग्रन्थ लैटिन में लिखे। विज्ञान की पुस्तकें प्रायः लैटिन ही में लिखी जाती थीं। अंग्रेज़ी की इतनी उन्नति पर भी समझा जाता था कि वह ऐसे गुरु विषयों के योग्य नहीं है।

इस काल के अन्त में रायल सोसाइटी नामक एक समाज विज्ञान की उन्नति के लिये स्थापित हुई। वह आज तक वर्तमान है और अपना कर्तव्य बड़ी योग्यता से पूरा कर रही है।

इस कालके वृत्तान्त में एक बात और ध्यान देने योग्य यह है कि लेखकों में से कुछ तो अति दरिद्र थे; दो तीन ने कारागृह में पुस्तकें लिखीं। धनवान भी थे, परन्तु थोड़े। इन लोगों के चित्त में विद्यानुराग पैदा करने का केवल द्रव्य ही एक कारण न था। अंग्रेज़ी इतिहास के हर काल में बेकन सदृश अनेक ऐसे लोग गिनाए जा सकते हैं जो जन्म भर विद्योपार्जन और ग्रन्थरचना ही करते रहे, परन्तु किसी लोभ से नहीं। स्काट सदृश बहुत से ऐसे हुए हैं जो धनलाभ करनेवाला पेशा छोड़ विद्या की सेवा में लगे रहे। भारतवर्ष में तो लोगों ने किसी प्रकार हम इमतिहान पास किया, पेट में दाना गया और विद्या को तिलाञ्जलि मिली। बिलायत में अनेक धनी जो स्वयं ग्रन्थ रचना नहीं कर सकते थे, विद्यानुरागी जनों को धनसहायता पहुंचाना अपना धर्म समझते थे और अब भी ऐसा ही है। न जाने कितनी छात्रवृत्तियां, कितने कालिज, कितने पुस्तकालय इत्यादि इसी तरह स्थापित किए गए और किए जाते हैं। अभी हाल ही में एक करोड़पति सौदागर करनेजी ने स्काटलैण्ड में विद्यावृद्धि के निमित्त तीन करोड़ रुपए दिए हैं। तीन करोड़! ज़रा ध्यान तो दीजिए। इसके सिवाय कितने होनहार युवकों को निज के तौर पर धनवानों से सहायता मिलती रही है। शेक्सपियर के आश्रयदाता इसेक्स थे। बेकन को उनके बाप के मर जाने पर उनके चचा ने उच्च से उच्च शिक्षा दी। मिलटन का विद्यानुराग जानकर उनके बाप ने उनके एम. ए. पास होने पर भी किसी नौकरी इत्यादि का अनुरोध न किया, किन्तु अपने स्वयं उपार्जित धन से ऐसा प्रबन्ध कर दियो कि जन्म भर निःशंक विद्याकी सेवा में लड़का

लगा रहे। बाईस वर्ष के एक मित्र ने अपने मरते समय इतना धन छोड़ दिया कि वह बिना कष्ट काव्यरचना में लगे रहें। इसी प्रकार के सैंकड़ों उदाहरण हैं। इस देश में तो लड़का परीक्षा में उत्तीर्ण हुआ और उसके मा बाप, भाई बन्धु, उससे पूछने लगे "कोई नौकरी मिली?" यदि परीक्षा के पीछे भी कहीं पुस्तक हाथ में देखली तो कुटुम्बी और मित्र सभी उसे विक्षिप्त समझते हैं। क्या इसी प्रकार देश का कल्याण होगा? इसीसे उन्नति की आशा है? जिस जाति में ऐसे महात्मा पैदा होते हैं कि विद्या की सेवा में धन लगाना अपना परम कर्तव्य समझते हैं, वेही धनी होने के योग्य हैं।

इसी काल में राजा की ओर से बाइबिल का अनुवाद हुआ और लैटिन बाइबिल की जगह अंग्रेज़ी बाइबिल इस्तेमाल होने लगी। ब्याह के समय प्रतिज्ञाएं जो लेटिन में पढ़ी जाती थीं वह अंग्रेज़ी में पढ़ी जाने लगीं। सब धर्मसम्बन्धी कार्रवाई अंगरेज़ी ही में होने लगी। छापेख़ाने की कृपा से और अंगरेज़ों के धर्मानुराग के कारण बाइबिल घर घर पढ़ी जाने लगी और उसपर वादविवाद होने लगा। वह समय गया जब लोग अपना धर्म जान ही न सकते थे; जो अटायं सटायं पुरोहितों ने बताया, वही ईश्वरवाक्य हो गया। इसी ज़माने से कांटा छुरी से खाना, धनी लोगों के घरों में चटाई, दरी, अच्छी अच्छी मेज़ कुर्सियों का प्रचार, तथा तसवीरों का लगाना इत्यादि आरम्भ हुआ।

१७०० के पश्चात्।

इंग्लैण्ड में विद्या की आधुनिक दशा इस छोटे से लेख में पूर्णतया वर्णन करना नितान्त असम्भव है। तथापि कुछ थोड़ा सा हाल लिखा जाता है। पहिले देखना चाहिए कि कौन से नए विषय अंग्रेज़ी भाषा और साहित्य में शामिल हुए।

१७०० से पहिले अंग्रेज़ी में उपन्यासों का शायद नाम भी मुश्किल से मिलता; आज कल उपन्यासों की बिक्री प्रतिदिन लाखों की संख्या को पहुंचती है। पहिले लेखक डानियाल डिफो थे। १७११ में इनका पहिला उपन्यास राबिन्सन क्रूसो निकला। उस समय से अंग्रेज़ी उपन्यासलेखकों की गणना की जाय तो सैकड़ों की नौबत आवे। परन्तु इनमें से कोई १२,१३ उत्तम समझे जाते हैं। यह बात ध्यान देने योग्य है कि बहुधा इनमें से ऐसे हुए हैं जो लैटिन, ग्रीक के सिवाय फ्रेंच, इटालियन, जर्मन, स्पेनिश इत्यादि भाषाएं भी जानते थे।

विद्या की दूसरी शाखा जो इस ज़माने में परम उन्नति को प्राप्त हुई, वह इतिहास है। पहिले के इतिहासों में, जो क्रानिकल कहलाते हैं, सत्य असत्य का कुछ विचार ही नहीं। वास्तविक घटनाएं और कही सुनी कथाएं, सब एकही प्रकार लिखी गई हैं। आर्थर राजा के १२ साथियों की असम्भव कीर्तियां उसी प्रकार माननीय समझी जाती थीं जैसे नेलसन या वेलिङ्टन की फरांसीसियों पर जय। आर्थर की जादू की ढाल तलवार इत्यादि का हाल बड़ी गम्भीरता और तफ़सील से लिखा है। यही क्या; जगह जगह पर असम्भव बातें भरी हैं। इससे पहिले ज़माने में मिलटन ने क्रानिकलों के आधार पर एक इतिहास लिखना चाहा था, परन्तु थोड़ा लिखने के बाद ही उसने उसे छोड़ दिया। पहिला अच्छा इतिहास डेविड् ह्यूम का अट्ठारहवीं शताब्दी के मध्य में निकला। सत्य के प्रेमियों ने बहुत सी भाषाएं पढ़ के, अनेक देशों में पर्यटन करके और बहुत परिश्रम के साथ, जिसका यहां बयान करना कठिन है, वह सिद्धान्त निश्चय किए जिनके अनुसार लिखी हुई घटनाओं के सत्यासत्य का निर्णय हो सके। अंग्रेज़ी में दुनिया भर की सभी कौमों का इतिहास मिलेगा। इतिहास के उत्तमोत्तम ग्रन्थ सब इसी शताब्दी में बने हैं और जान पड़ता है कि विद्या की यह उत्तम शाखा थोड़े ही दिनों में कपोलकल्पित कथाओं से विज्ञान की पदवी

को पहुंच जायगी। इतिहास से मिले हुए विषय, जैसे जीवनचरित, भूगोल, देशपर्यटनवृत्तान्त, इत्यादि सभी इस ज़माने में बड़ी उन्नति को प्राप्त हुए हैं।

तीसरी शाखा विद्या की जो इस समय में उन्नति को प्राप्त हुई, वह विज्ञान है। कहां तो १७०० से पहिले अंग्रेज़ विज्ञानियों ने भी अपनी पुस्तकें लैटिन ही में लिखीं, कहां अब दुनिया भर में किसी किसी विज्ञान के उत्तमोत्तम ग्रन्थ अंग्रेज़ी ही में हैं। इस छोटे से लेख में विज्ञान ग्रन्थों का संक्षेप हाल भी शामिल करना कठिन है। यह कहना काफ़ी समझना चाहिए कि अंग्रेज़ी भाषा अब उन तीन भाषाओं में है जिनमें से एक न एक का जानना, चाहे जिस देश का विज्ञानी हो, ज़रूरी समझा जाता है। दूसरी भाषाएं फ़्रेंच और जर्मन हैं। कोई शाखा विज्ञान की ऐसी नहीं जो अंग्रेज़ी ग्रन्थों से पूर्णतया न सीखी जा सके। अब और छोटे छोटे विषय कहां तक गिनावें। संसार में कोई शाखा विद्या की अब तक ऐसी नहीं है जो अंग्रेज़ी भाषा में न विद्यमान हो।

अंग्रेज़ी भाषा को और विद्या के प्रेमियों को बड़ी सहायता उन महानुभावों से मिली, जो प्राचीन और आधुनिक भाषाओं में भली प्रकार ज्ञान प्राप्त करके उनकी पुस्तकों का अंग्रेज़ी में तर्जुमा करते आए हैं। इंग्लैण्ड में ऐसे लोग, स्त्री भी और पुरुष भी, हर जगह मिलेंगे जो अंग्रेज़ी लैटिन और ग्रीक के सिवाय फ़्रेंच, जर्मन, इटालियन स्पैनिश, रशियन इत्यादि युरोपीय भाषाओं में से दो तीन भाषाएं जानते हैं; और आक्सफ़ोर्ड, कैम्ब्रिज के से बड़े विद्यालयों में तो संस्कृत, अर्बी, यूनानी, चीनी, जापानी फ़ारसी, फिनीशियन इजिपशियन, तामील, टिलगू, मराठी, बंगला, हिन्दी, उर्दू, सभी प्राचीन और आधुनिक भाषाओं के ज्ञाता मिलेंगे। केवल वही भाषाएं लोग नहीं सीखते जिनका आज कल चलन है, बल्कि उन्हें भी जिनको नष्ट हुए सहस्रों वर्ष होगए। हमारे परम माननीय प्रोफ़ेसर मैक्समूलर १८ भाषाएं जानते थे और उनकी अनुवाद की हुई पुस्तकें दो हज़ार पृष्ठ से कम न होंगीं।

हम लोगों में महान दोष एक यह है कि स्कूल या कालिज से निकलते ही विद्या से नाता तोड़ देते हैं, अपने अमूल्य समय को व्यर्थ नष्ट करते हैं। चाहे एम. ए. तक क्यों न पढ़ा हो, स्कूल या कालिज की किताबें पढ़ जाना भी क्या कोई विद्या है? शिक्षा तो केवल इसलिये होती है कि उस राह पर पढ़नेवाले को लगादे जिससे विद्या प्राप्त होसके। यह भी समझना भूल है कि पढ़ना नौकरी के लिये है। यहां मिडिल एण्ट्रन्स पास करने पर नौकरी के लिये अपना दावा समझते हैं; इंग्लैण्ड में इससे ज्यादा योग्यता के लोग गाड़ी हांकते हैं या कारख़ानों में मज़दूरी करते हैं।

इंग्लैण्ड में शहरों और क़स्बों की तो कौन कहे, बड़े बड़े गावों तक में ऐसे पुस्तकालय हैं जहां से किताबें और अख़बार पढ़ने को मिलते हैं। मुफ़्त नहीं, लोग इतने विद्यानुरागी हैं कि इनका ख़र्च चन्दे से चलता है। फिर देखिए, बड़े शहरों में रात के स्कूल हैं, जहां दिन को मज़दूरी करनेवाले लोग जा के विद्या प्राप्त करते हैं। ये लोग मीलों से चलकर आते हैं और रातही को वापस जाते हैं और नियत फ़ीस इत्यादि भी देते हैं। इसके सिवाय विश्वविद्यालयों की ओर से और बहुत सी विद्या की उन्नति के लिये समाजें हैं; उनकी ओर से तथा बहुत से विद्यारसिकों के स्वयम् परिचय से लेकचर हुआ करते हैं, जिनकी मन्शा केवल यह है कि वे लोग जिन्होंने कारणविशेष से स्कूल जल्द छोड़ दिया है, इनके द्वारा अपने को शिक्षा देसकें। कहां तक बयान किया जाय; हर जगह विद्या ही की चर्चा है। ध्यान देने योग्य इसमें केवल यह बात है कि वहां लोग मामूली लेकचर तक के लिये टिकट लेते हैं और दाम देते हैं। हमारे देश में लोग रण्डियां नचाते हैं; परन्तु एक किताब

या पत्रिका ख़रीदना हो तो ४ दिन तक सोचेंगे; फिर अख़ीर में कहेगे 'अजी जाने दो'।

कुछ महाशय यह कह बैठते हैं कि खाने को न मिले और विद्या की उन्नति में ध्यान दें, यह कैसे होसकता है? ज़रा अंग्रेज़ों का पुराना इतिहास पढ़िए। सैकड़ों अच्छे ग्रन्थकार होगए हैं, जानसन, सेवेज, मारलो इत्यादि, जो भीख मांगते थे। पहिले पहल आक्सफोर्ड वा पेरिस को सैकड़ों कोस पैदल चलकर विद्यार्थी भीख मांगते जाते और तमाम ज़िन्दगी इसी प्रकार काटते थे। ख़ैर वह जाने दीजिए। क्या हमारे एम. ए., बी. ए., सब लंघन ही कर रहे हैं? कदापि नहीं। बहुत से उनमें तो इंगलैण्ड के बड़े से बड़े विद्याभूषणों से ज़्यादा धनी हैं। परन्तु इनमें से दो एक को छोड़ कर कोई आध घण्टा भी विद्योपार्जन में नहीं लगाते। यह बात छिप नहीं सकती कि हमलोगों में विद्यानुराग नहीं, इम्तहान पास करने का शौक चाहे भलेही हो; वह भी नौकरी की लालच से। समय और धन का उचित प्रयोग भी नहीं जानते। ऐसी हालत में कुछ दुरुस्ती की उमेद न रखना चाहिए। भारतवर्ष दिन दिन और भी बुरी दशा को प्राप्त होगा। हां, अब भी समय है:—जो हम ज़रा ध्यान दें तो सब कुछ बन सकता है।

गिरिजादत्त बाजपेयी, एम. ए.।

———

गङ्गावतरण

"तरलित तुमुल तरंगवती सुरधुनी सुशीला।
करत पुनीत व्योमपथ उतरति है करि लीला॥
सावधान दिक्कुञ्जर; धरा! तुहू सुधि इत दै।
रे फनीस! धरु याहि; कमठ! ताही मधि चित दै॥
हैमवती यह बहिन उमा की बड़ी पुनीता।
आवत, पापपुञ्जजन सुगति देन मनचीता॥
हटो, बचो रे गगनबिहारी! मारग छोरो।
नतकंधर से विनय सहित तृन ह्वै तृन तोरो॥
भानुवंस अवतंस महाभागवत भगीरथ।
कियो नाम तूहूने या छिति पै सुभ तीरथ॥
अब राजर्षि! तपस्या तेरी यह फल लाई।
सजग होउ शिव!" गगन गिरा यों भाषि थिराई॥
जहं लगि हो अवकाश व्योमभारती समोई।
बढ़ी प्रतिध्वनि आघात प्रतिघात विलोई॥
डगमगान दिक्कुञ्जर, धरनी डोलन लागी।
सेष सगमगाने, कच्छप की थिरता भागी॥
देवासुर नर नाग चराचर सरकि सकाने।
जलचर थलचर नभचर कंपितगात चुपाने॥
पाइ विपुल अवकाश आज आकाश शब्दमय।
कियो नाम निज सत्य, भाषि 'गंगे! जय जय जय'॥
कोटि भानुगति गर्व खर्व करि धाई गंगा।
पितागेह तजि व्योमबीथि मधि आई गंगा॥
ठठकि एक छन गगन मध्य मुसुकाई गंगा।
चितै शंभु निज गति की बात सुनाई गंगा॥
"हे हे भाम!* भवानीपति! मम बेग न जानहु।
क्यों बरबस मम भार सहन को तुम हठ ठानहु॥
सहित तुमहिं कैलास भेदि पाताल सिधैहौं।
निज छोटी भगिनी कों तव मुख कहा दिखैहौं॥
या बावरे भगीरथ की मति पै तुम भूले।
मसक होइ नग गहन चले, दैवहिं प्रतिकूले॥
अस्तु, होहु तुम सजग;" भाषि यों अहमिति वानी।
नभमंडल ते बेगहि धाई, चितै भवानी॥
सुनत व्यंगमय अहमिति बचन विषमलोचन यों।
तमकि उठे रिस घोरि मूर्त्ति धरि कोप पुंज ज्यों॥
चांपि पगनि कैलास रौद्रवपु कटि कर दीन्हे।
पृष्ठभाग में जुगल करन निज शूलहि लीन्हे॥
फट फटाइ निज जटा तिहूं लोचन रिस बोरे।
ज्वाला-माला-भीषन आनन ओप अथोरे॥
करि ऊंचे मस्तक गंगा दिसि नैन तरेरे।
वाकी बेगवती तरलित गति हूं को हेरे॥
अभिमानिनि के गर्व खर्व करिबे हित ठाढ़े।
मूर्त्तिमन्त रस रौद्र मनहुं छिन छिन प्रति बाढ़े॥
विनय सहित ठाढ़े ह्वै राजा चितव संभु दिसि।
अति सकात निज हृदय मध्य लखि संकर की रिसि।

* भगिनीपति।

कबहुं कबहुं गंगा की गति हूं पै दृग फेरत।
पुनि तामस अधिदैवहु की मानस-मति हेरत॥
नदी हूं करि कोप ठरी चितवत सिव पाहीं।
मनहुं आज वाहू के रिसि की सीमा नाहीं॥
पारवती दै ठेस पीठ नंदी की ठाढ़ी।
चितवति गंगादिस, धरकति छाती अति गाढ़ी॥
मनहु वेग धारा में निज गतिपुंज मिलावति।
वायुवेग प्रति छिन पाछे करि उतरति आवति॥
मुदित नैन सिथिलित सुअंग वर बलित बसन तन
खलित केस अति ललित छटा छिटकति चहुंप्रतिछिन
वह धावत आवति मुनिजन-मानस हरखावत।
कै वाकी दिसि यह भूगोल गेंद सो धावत॥
कोटि कोटि घन नादीन सों करि यह दिग कम्पित।
गिरी शंभु की जटा मध्य गङ्गा करि झम्पित॥
घूमन लागी जटा जूट घनगहन मध्य वह।
चकित गर्व करि सर्व सकुच तन चसक नव्य वह॥
थर थराय मन में सकाइ सिरनाइ सोच तें।
विनवन लागी सिवहिं शैलवाला सकोच तें॥
इत राजर्षि भगीरथहू विनती अति कीन्हो।
तब तजि कोप शंभु गङ्गा को धारा दीन्ही॥
दिव्य सुरथ पै चढ़े भगीरथ आगे धाए।
पाछे भागीरथी चली चित चोप चढ़ाए॥
गर्जति उफनति झूमति हहहराति तट तोरति।
अनगिनतिन जनपद पद धौत करति छिति वोरति
जन्हु रिषी के आश्रम को जलप्लावन कीन्हों।
तब मुनि रिस करि गङ्गधार सारी पी लीन्हो॥
जब बहुरि करी विनती राजा कर जोरे।
तब जान्हवीधार काननि ते जन्हुहि छोरे॥
मिली धार वा सगर सुवन की राख बहाई।
सागर सों मुरि कपिलमुनी के पग सिर नाई॥
ब्रह्मशाप तें छूटि गए सुरधाम सगरसुत।
"जय गंगे जय गंगे" यों कहि कहि तेहि विनवत॥
तब आई गङ्गा छितिपै मंगल की मूला।
भए चराचर मुदित मिटे सब के मनसूला॥
हरी भरी धरनी धरनी यह हरि की सोहति।
निज नव जोवन की छन छटा छिटकि मन मोहति॥

नवजुग मानो छयो जगत में याकें आए।
पै 'मातगंगे!' अब का लखियत मुंह बाए!!!
तू कहुं जाइ बिलाई, कैसी बनि सचुपाई
हाय भयो यह कहा! अंब! गंगे! लखु आई!!!
रहे न अब राजर्षि भगीरथ राम न राजा।
नहि ब्रह्मर्षि जन्हु, कुलगरु वशिष्ट महराजा॥
त्रेता द्वापर बीति अमल कलजुग को आयो।
हाय! पराधीनतापाश भारतहि बंधायो॥
विचरे जहं ब्रह्मर्षि, कोटि राजर्षि राजगन।
वह भारत पददलित भयो म्लेच्छन के घन घन॥
उलट फेर अति भयो हाय गंगे! या भूपर!
तू छिति छोरि गई पताल, कै धाई ऊपर!!!
'भारत भारत' नाम आज आरत ह्वै बाँचो।
साँचो सब कछु गयो, ठाठ रहिगो अब काँचो॥
इन्द्रप्रस्थ अयोध्या मथुरा भूरि नसानी।
महा महा जनपद की अब ना रही निसानी॥
गज़नी की आसुरी अनीक नीक सब नास्यो।
अन्धकार में परयो देस को देस उजास्यो॥
स्वामी ह्वै बहु बने दास दासी भारतजन।
आरज सों बरजोरी यवन भए अनगिनतिन॥
भाई भाई को तजि दीन्हों तनय बाप को।
शिष्य गुरू को, पत्नी पति को, जीव जाप को॥
गिरो भयानक बज्राघात धर्म पै आई।
हंसी खुसी सब भगी, मची चहुं हाय रोवाई॥
ढहे देवमन्दिर अपार द्विज मारे कोटिन।
वाल बृद्ध वनिता जन के सिर कटे अनगिनतिन॥
ईंट यहां की मक्के में जा लगी निगोंड़ी।
मन्दिर के सामान यवनगन मसजिद जोड़ी॥
धन, जन, बल पुरुषार्थ, सत्य सब नस्यो यहां को।
सब सोवत हैं, नहिं जानत धन गयो कहां को॥
वधे पिथोराराय गए, सब सूर अहेरी।
भयो क्षत्रकुल ध्वंस हाय लागी नहिं देरी॥
राख, हाय, पद्मावति की मिलि गई पवन में।
धन्य अहो! परताप! सीस नहिं नयों यवन में॥
कोटि वीर, अन्गिनत वीरवाला सब नासी।
हाय किते सोवति है तू गंगे सुखरासी?

कब लैहैं अवतार कल्कि भगवान बतावहु ?
छोरि आपुनी नींद, मात ! गंगे इत आवहु ॥
छल बल के कल करि भारतजन वेगि जगावहु ।
समल अमल करि हृदय निजत्व तिनहिं समझावहु
धन, बल, विद्या, विनय, नीति, वाणिज्य, शिल्प बहु
सीखहिं भारतवासी जन, जानहिं निजत्व यहु ।
पाइ सबै निज निज निजत्व भारतवासी जन ।
"जय गंगे ! जय गंगे ! जय जय भाषहिं प्रति छिन ॥

श्री किशोरीलाल गोस्वामी ।

स्वर्गवासी लाला वृजमोहनलाल

यह हम कई बेर लिख चुके हैं कि भारतवर्ष बड़ा दानी देश है। प्राचनी काल में तो इसके दान का कहना ही क्या था। उन दिनों में तो यथा आवश्यक दान दिया जाता था, परन्तु इन दिनों में इस टूटी हुई अवस्था में भी इसमें दान बहुत होता है। हां, यदि इस आज काल के दान में किसी प्रकार की आपत्ति देख पड़ती है तो वह केवल यही है कि आवश्यकता और उचित अनुचित का विचार करके आज कल दान नहीं दिया जाता, जिससे लाभ की अपेक्षा प्रायः हानि हो जाती है और वह हानि भी ऐसी कि जिससे देश की उन्नति में रुकाव होता है। इस समय यदि कोई कार्य अत्यन्त आवश्यक है तो यही है कि भारतवासियों की प्रवृत्ति दान के उचित मार्ग पर लगाने की ओर की जाय। हमलोग किसीका नाम नहीं लिया चाहते, पर हमें इस बात के कहने में कुछ भी भय और सङ्कोच नहीं है कि हमने अपनी आंखों ऐसे स्थानों पर लोगों के दान देते देखा है जहां का रुपया केवल दुराचार, व्यभिचार और जघन्य पापों की वृद्धि ही में व्यय किया जाता है। देखें, भारतवासियों की आंखें कब खुलती हैं कि वह अपने कठिन परिश्रम से कमाए हुए पैसे के दानस्वरूप उचित मार्ग में लगाने का उद्योग करते हैं। हमें तो विशेष दुःख इस बात पर होता है जब हम यह देखते हैं कि यदि इस कुरी[ति] के दूर करने का कोई महानुभाव उद्योग करते [हैं] तो देश के शत्रु धर्म्म की आड़ में हाहाकार म[चा] कर सारे उद्योगों के वृथा कर देते हैं और सा[थ] ही भोले भाले राजे महाराजे भी इन घोर स्वार्थि[यों] के जाल में फंसकर अनजाने देश का अनिष्ट क[र] बैठते हैं। अस्तु, ये बातें ऐसी हैं कि जिनकी सुधा[र] लोगों की आंख खुलने ही पर केवल हो सकती [है] और वह तब तक होना सम्भव नहीं है जब त[क] विद्या का पूरा पूरा प्रचार न हो। इसलिये ह[म] घूम फिर कर इस बात पर जोर देते हैं।

संसार की गति सदा एक सी नहीं रही है[।] कुछ न कुछ परिवर्तन सदा होता रहता है। य[दि] किसीके दिन आज अच्छे हैं तो कल उसे दु[ःख] सागर में गोते खाने पड़ते हैं। यदि कोई आ[ज] शोकसागर में निमग्न है तो कल उसके भाग्य [में] सुख और आनन्द प्राप्त करना है। इस नियम [का] पालन मनुष्यों के जिस प्रकार करना पड़ता है, [वै]से ही जातियों के भी करना पड़ता है। बस इस[ी] अधीनस्थ होकर यदि हमारा यह देश एक स[मय] सभ्यता, विद्या, सदाचार आदि गुणों में उच्च[तम] आसन पर विराजता था तो आज उसकी क्या [दुर्]गति है। परन्तु समय कुछ आशा दिखा रहा [है] हमारे देशवासियों के विद्याप्रचार में उत्सा[ह] होता जाता है। दान उचित मार्ग पर लग र[हा] है। इसीसे हम आशा करते हैं कि हमारे दिन अ[च्छे] आने वाले हैं, चिन्ह शुभ हैं। यद्यपि पञ्जाब में [यह] प्रथा बहुत दिनों से चल रही थी कि शुभ उत्स[वों] पर देश का हित करनेवाली सभा समाजों के द[ान] दिया जाता था, परन्तु हमें यह जानकर वि[शेष] आनन्द होता है कि इन प्रान्तों में भी उस प्रथा [का] प्रारम्भ होगया है। हमारे देश के मित्र बिगड़े नह[ीं] इन प्रान्तों में इस प्रथा के चलानेवाले आर्यसमा[जी] नहीं हैं, वरं सनातनधर्म्मावलम्बी हैं। अभी प[ञ्जाब] में दो बड़े प्रशंसनीय दान हुए हैं। हिसार में ए[क] दानी महाशय ने १३०००) रु० अनाथों की र[क्षा]

के लिये दिया है। गोविन्दपुर में एक दूसरे दानी महोदय ने १५०००) रु० इसलिये दान किया है कि आयुर्वैदिक रीति के अनुसार औषधालय खोला जाय, जिसमें लोगोंको औषधि बिना मूल्य दीजाय। इन दानों की बात सुन हम आनन्दित और साथही लज्जित भी हो रहे थे। आनन्दित इसलिये कि हमारे देश में ये उत्तम उत्तम कार्य होरहे हैं, और लज्जित इसलिये कि हमारे प्रान्त में कुछ नहीं होता है। परन्तु यह सम्वाद पाकर हमको विशेष सन्तोष हुआ कि प्रयाग में एक दानी महाशय ने एक पुस्तकालय के लिये ४००००) रुपए दानकिए हैं।

हिन्दी पढ़े लिखे लोगों में कोई ही ऐसा होगा जो प्रयाग के भारतीभवन पुस्तकालय का वृत्तान्त न जानता हो। इसके संस्थापक बाबू ब्रजमोहन लाल जी थे। इनकी अवस्था अभी ३२ वर्ष की थी। स्वयं विशेष विद्यालाभ न करने पर भी इनकी रुचि विद्याप्रचार और विशेषकर हिन्दी प्रचार की ओर अधिक थी। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिये आपने एक पुस्तकालय स्थापित कर रक्खा था, जिसमें हिन्दी और संस्कृत की प्रायः समस्त अच्छी अच्छी पुस्तकों को संगृहीत करने का उद्योग है। इस पुस्तकालय का समस्त व्यय बाबू ब्रजमोहन लाल स्वयं देते थे। किसीसे कुछ नहीं लेते थे। गतवर्ष आप बद्रीनाथ जी गए थे। वहां से किसी ऐसे रोग से पीड़ित हो आए कि वह दिनों दिन बढ़ता ही गया। बहुत कुछ उद्योग करने पर भी उसकी शांति नहीं हुई। निदान इस मई के मध्य में इस असार संसार को छोड़ परलोक सिधारे। जब उन्होंने अपना समय निकट जाना तो उन्हें अपने प्यारे पुस्तकालय की सुध आई। हमारे पीछे यह सदा चला जाय इस चिन्ता ने उन्हें विह्वल किया। निदान अपने भाइयों की सम्मति से उन्होंने इस पुस्तकालय के लिये एक भूमि जो अहियापुर में स्थित है, १००००) रुपए पुस्तकालय के लिये एक गृह बनवाने को, २५०००) रुपए उसके खर्च को सदा चलाने के लिये और ११३१९॥।=)॥। जो उनके पास पुस्तकालय के हिसाब में जमा था, दान दिया और इस सब कार्य के प्रबन्ध के लिये निम्न लिखित महाशय ट्रस्टी नियत किएगए—

राय रामचरण दास बहादुर
लाला भवानी प्रासाद } लाला ब्रजमोहनलाल
लाला राजा राम } के भाई
बाबू कालिकाप्रसाद खत्री
पण्डित मदनमोहन मालवीय
ठाकुर जयकृष्ण व्यास
राय बहादुर लाला लाल विहारीलाल, बी ए।

ब्रजमोहन लाल जी की अवस्था अभी कुछ भी न थी। चरित्र और व्यवहार उनका आदर और अनुकरण करने योग्य था। आडम्बर करने अथवा लोगों से वाहवाही लेने की कभी उनके मन में कामना उत्पन्न नहीं हुई। सदा शान्ति पूर्वक चुपचाप अपना काम करना यही उनका मूल मंत्र था। ऐसे निस्वार्थी देशहितैषी पुरुष के उठ जाने से हमारे देश ने एक अपूर्व पुरुष खोया। ईश्वर उनकी आत्मा को शान्ति और उनके कुटुम्बियों को इस शोक के सहन करने की शक्ति दे। बाबू ब्रजमोहनलाल जाति के खत्री थे और धर्म्म उनका वैष्णव था। खत्रियों में विद्याप्रचार की ओर ध्यान ही नहीं और वैष्णवों में ऐसे दान की प्रथा नहीं है। इन दोनों के विपरीत होने पर बाबू ब्रजमोहनलाल का ४००००) का दान बहुमूल्य और वे स्वयं आदर्श माने जाने चाहिए। हमारी प्रार्थना अपने देश के उन पढ़े लिखे धनाढ्य लोगों से है कि, जो निस्सन्तान हैं। वे भारतवासी मात्र को अपनी सन्तान मानें और अपने धन को देशहितकर कार्यों में लगा सदा के लिये यश के भागी हों।

मोतियों की गुफा

इस विचित्र संसार में अनेक मनुष्यों पर अनेक प्रकार की आश्चर्य जनक घटनाएं हुआ ही करती हैं, परन्तु जैसी घटनाएं मुझ पर

बीती हैं वैसी कदाचित् किसी बिरले ही मनुष्य पर बीती होंगी। मेरा नाम श्यामबलदेव है। मैं नौधाम नगर का रहनेवाला हूं। मैंने संसार के समस्त देशों में भ्रमण किया है और ऐसी ऐसी विचित्र बातें देखी हैं कि उनका वर्णन करने से कदाचित् वे गप्प तथा असम्भव जान पड़ेंगी। जिस समय मैं पीतसागर में यात्रा कर रहा था तो मैंने कई बेर जापानी गोताखोरों को समुद्र में से मोती निकालते देखा था। वे कहते थे कि यहां पर कई ऐसे छिछले स्थान हैं जहां ये मोती अधिकता से मिलते हैं। परन्तु इन स्थानों में से निरन्तर मोती निकाले जाने के कारण अब उन में बहुत कम मोती रह गए हैं। उन्होंने यह भी कहा कि इस पीत सागर में एक अधिक गहिरे स्थान पर एक गुफा है जहां ढेर के ढेर मोती हैं; परन्तु हमलोग किसी भांति इस गुफा तक पहुंच नहीं सकते। ऐसा जान पड़ता है कि ईश्वर ने इन मोतियों को इस गुफा ही में रहने के लिये बनाया है। मैंने विचार किया कि यदि कोई ऐसी युक्ति की जाती कि जिससे हमलोग इस गुफा तक पहुंच सकते तो हमलोगों के हाथ बड़ा द्रव्य लगता। तब से मैं सदैव इस युक्ति की चिन्ता में लगा रहता।

इसके वर्षों उपरान्त जब मैं अपने नगर नौधाम में पहुंचा तो मैंने बड़े हर्ष के साथ यह बात सुनी कि मेरे मित्र रुद्रपुरवासी फरकराम ने एक ऐसा जहाज़ बनाया है जो जल के नीचे चलता है। मैंने विचारा कि मेरे मनोरथ को सफल करने के लिये, अर्थात् पीतसागर की मोतीवाली गुफा में पहुंच कर असंख्य द्रव्य का स्वामी बनने के लिये, ठीक ऐसी ही वस्तु की आवश्यकता है। अतएव मैं अपने मित्र फरकराम से मिला और मैंने अपने विचार उनसे प्रकट किए और उनसे इस पानी के नीचे चलनेवाले जहाज़ के देखने की प्रार्थना की। फरकराम बड़ी तीक्ष्ण बुद्धि के मनुष्य हैं। इनका रुद्रपुर में कल बनाने का बड़ा भारी कारखाना है। इनको विचक्षण बुद्धि का प्रमाण इसी जल के नीचे चलनेवाले जहाज़ से मिलत है। इन्होंने मेरी बातें बड़े ध्यानपूर्वक सुनीं। उन्होंने कहा कि पीतसमुद्र की यात्रा के विष में मैं तुम्हारे प्रस्ताव को बहुत उत्तम समझता हूं। मैं इस विषय में और विचार करके जैसा होग वैसा तुम्हें शीघ्र कहूंगा।

अब हमलोग इस अद्भुत जहाज़ को देखने के लिये उठे। इस कार्य्यालय के बड़े हाते के भीतर ए ऊंची पक्की दीवारों का घेरा है, जिसमें एक ब तालाब है। यह अपूर्व जहाज़, जिसका नाम मे मित्र ने "निगाहक" रक्खा था, इसी तालाब म था। इसका अधिक भाग जल के भीतर था। जित भाग जल के ऊपर दिखाई देता था वह फौला का बना हुआ ढलुआं, लम्बा तथा पतला था, जो ठीक ह्वेल मछली के आकार का जान पड़ता था। इसमें कई खिड़कियां भी थीं जिनमें अत्यन्त मो हलबी शीशे लगे हुए थे। इसकी छत पर ए सकड़ा लम्बा स्थान बना था जिसके चारों ओ लोहे को छड़ें लगी थीं; और इसमें दो मस्तूल थे। एक तखते द्वारा, जोकि तालाब के किनारे जहाज़ पर लगा था, हमलोग जहाज़ के ऊ गए। वहां फरकराम ने एक छोटा सा फौलाद द्वार खोला। इसमें प्रवेश कर तथा चक्कर सीढ़ी से नीचे उतर कर हमने अपनेको एक कमरे में पाया। इसमें दो व्यक्ति, जिनका नाम ब और पदम है, और जो फरकराम के बड़े विश्वास पात्र नौकर हैं, इस कमरे की झाड़ पोंछ लगे थे। फरकराम ने इस कमरे को सब प्रका से सुसज्जित करने में कोई बात उठा नहीं रक्ख थी। इसमें अच्छी अच्छी कुरसियां, सोने चांदी अच्छे अच्छे असबाब तथा अमूल्य अमूल्य पुस्त थी। वास्तव में यदि इसे तैरता हुआ राजभवन क तो अत्युक्ति न होगी। इसके आगे भोजनगृह था यहां पर के अमूल्य बर्तनों को देख मैं चकित गया। इसके पीछे फरकराम मुझे शस्त्रगृह में गए। यहां पर मैंने तोप, बन्दूक, पिस्तौ

भाले, फरसे, छुरे तथा अनेक प्रकार के शस्त्र देखे। परन्तु मैं यह नहीं समझ सका कि ये तोप, बन्दूक जल में किस काम के होंगे, क्योंकि उनसे जो गोला जल के भीतर छोड़ा जायगा वह दो ही चार फुट जा कर रह जायगा। मैंने अपना यह विचार फरकराम से कहा। उन्होंने उत्तर दिया कि इसमें साधारण गोला नहीं छोड़ा जाता, वरन् इसके लिये मैंने सूई के आकार का लग भग डेढ़ फुट लम्बा गोला बनाया है। यह भीतर से पोला है और इसके भीतर एक प्रकार का मसाला भरा है। जब यह किसी वस्तु पर चलाया जाता है तो भीतर प्रवेश करने से इसके नोक पर जो सूई लगी है, वह भीतर दब जाती है और उसकी रगड़ से इसके भीतर का मसाला इतने ज़ोर से फूट उठता है कि उसके आघात से यदि ह्वेल मर न भी जाय तो अचेत अवश्य हो जायगी। यह बात सुन कर मैं फरकराम की मन ही मन प्रशंसा करने लगा। इतने में मेरे मित्र फरकराम ने मुझसे पूछा कि क्या आप समझ सकते हैं कि इस जहाज़ को स्वेच्छापूर्वक कैसे डुबा सकते हैं और फिर जब चाहें तब उसे कैसे पानी के तल के ऊपर उठा सकते हैं। मैंने कहा कि नहीं। इस पर फरकराम ने जहाज़ की एक पटरी अलग की, जिसके भीतर एक कोठा दिखाई देने लगा। फरकराम ने कहा कि यह कुण्ड है। इसमें बड़ी शक्ति की कल लगी है, जिसके द्वारा यह कुण्ड बात की बात में जल से भर जाता है और तब यह जहाज़ जल के नीचे चला जाता है। फिर जब जहाज़ को ऊपर लाना चाहते हैं तो दूसरी कल द्वारा इस कुण्ड का पानी निकाल देते हैं, जिससे कि जहाज़ तुरन्त ऊपर चला आता है। मैंने कहा कि जहाज़ को इस प्रकार जल के नीचे ले जाने के पहिले ये सब द्वार बन्द कर दिए जाते होंगे, जिसमें कि इस जहाज़ के भीतर पानी न आवे। मेरे मित्र ने कहा हां, इसके लिये केवल एक कल दबानी पड़ती है जिससे सब द्वार आपसे आप ही बन्द हो जाते हैं। इसके अनन्तर मेरे मित्र मुझे यन्त्रगृह में ले गए। यहां पर मैंने जो बात देखी उससे मैं दङ्ग हो गया। मेरे मित्र ने कहा कि इसी यन्त्र द्वारा हमलोग पानी के नीचे रह सकते हैं। इस यन्त्र से प्राणप्रद वायु बनती है और जो नलियां इसमें लगी हैं, वे ही जहाज़ भर में स्वच्छ वायु पहुंचाती हैं और साथ ही इसके गन्दी हवा का नाश भी करती हैं।

अब भोजन का समय हो जाने के कारण फरकराम ने मुझसे चलने के लिये कहा। आते समय उसने अपने दोनों नौकरों से कहा कि बहुत सम्भव है कि हमलोगों को शीघ्र यात्रा करनी पड़े। अतएव तुम लोग 'निगाहक' को सब प्रकार से इस योग्य कर रक्खो कि हमलोग जिस समय चाहें यात्रा कर सकें।

दूसरे दिन प्रातःकाल मेरे लिये बड़े हर्ष की बात हुई कि फरकराम ने आकर मुझसे कहा कि "मैंने कल रात्रि को पीत सागर की यात्रा के विषय में विचार कर इस यात्रा को शीघ्र करना निश्चय किया है, और इसकी तैयारी करता हूं।" फिर भी मेरे मित्र को अपनी अनुपस्थिति में अपने बड़े कार्यालय का प्रबन्ध करने में पूरे १७ दिन लगे। अट्ठारहवें दिन हमलोग यात्रा के लिये तैयार हो गए।

जिस तालाब में 'निगाहक' था वह नहर द्वारा नदी से मिला हुआ है और यह नदी सीधी समुद्र से मिली है; अतएव हमलोगों को 'निगाहक' पर ठीक तालाब ही से यात्रा करने में कोई आपत्ति नहीं थी।

यद्यपि इस बात का पहिले ही से प्रबन्ध किया गया था कि 'निगाहक' की यात्रा किसीको विदित न हो; पर न जाने कैसे यह बात नगर भर में फैल गई थी और जब हमलोग तालाब के बाहर हुए तो नहर से लेकर नदी के बहुत दूर तक दोनों तटों पर हमलोगों ने बड़ी भीड़ देखी जो कि हमलोगों को देख कर प्रसन्नता से चिल्ला रही थी। फरकराम ने कहा कि इन बिचारों को निराश करना

नहीं चाहिए; इन लोगो को 'निगाहक' का विचित्र तमाशा दिखाना ही उचित है। अतएव उन्होंने हमलोगों को भीतर बुला कर नम्बर ३ वाली कल को दबाया जिससे कि जहाज़के सब द्वार बन्द हो गए। तब उन्होंने उस कल को दबाया जिससे कुण्ड भर जाता था। इसके दबाते ही तुरन्त जहाज़ बोझ पाकर पानी के नीचे चला गया। जल के नीचे हमलोगों को किसी प्रकार का क्लेश नहीं जान पड़ा। बिजली के प्रकाश से हमलोगों को सब वस्तुएं भली भांति देख पड़ती थीं ग्रैार प्राणप्रद वायु बनानेवाले यन्त्र द्वारा स्वच्छ वायु भी मिलती थी। परन्तु हम लोग बहुत देर तक जल के नीचे नहीं रहे। फरकराम ने तनिक ही देर में जल निकालने वाली कल दबाई, ग्रैार तुरन्त ही जहाज़ तूम्बी की नाईं उछल कर ऊपर चला ग्राया। इसपर चारों ग्रोर से सब लोग बड़ी प्रसन्नता से जय जय ध्वनि मचाने लगे।

ग्रब 'निगाहक' की गति बढ़ा दी गई ग्रैार रुद्रपुर शीघ्रही पीछे छूट गया ग्रैार धीरे धीरे दृष्टि से बाहर हो गया। संध्या होने के पहिले ही हमलोग समुद्र में पहुंच गए। ग्रन्धेरा होने पर 'निगाहक' में बिजली का प्रकाश कर दिया गया ग्रैार इस प्रकार 'निगाहक' रात्रि भर चलता रहा। सवेरा होने पर जब हमलोग जहाज़ की छत पर गए ते। हमलोगों ने ग्रपने को ग्रनन्त समुद्र के बीच पाया। चारों ग्रोर समुद्र ही समुद्र दिखाई देता था। स्थल का कहीं नाम को भी दर्शन नहीं था। यहां पर मेरी प्रबल इच्छा समुद्र के तल को देखने की हुई। मैंने इसे फरकराम से प्रगट किया। परन्तु उन्होंने कहा कि यहां पर समुद्र बहुत गहिरा है, ग्रर्थात् लगभग एक मील के गहिरा होगा; ग्रतः यहां पर यदि हम समुद्रतल पर पहुंचने का यत्न करें ते। वहां पर पहुंच कर हमलोग जल के बोझ से दब कर पिलुद हो जांयगे ग्रैार फिर कभी जल के ऊपर न ग्रा सकेंगे। परन्तु हमलोग शीघ्र ही समुद्र के ग्रधिक छिछले भाग में पहुंचेंगे ग्रैार वहां पर तुम्हारी इच्छा पूरी हो सकती है।

इसके दूसरे दिन फरकराम ने कहा कि, ग्रब हमलोग हज़ार फुट से ग्रधिक गहिरे पानी में नहीं हैं ग्रैार यह स्थान समुद्र का एक चित्ताकर्षक भाग भी है; ग्रतएव हमलोग यहां पर समुद्र के तल पर उतरेंगे।

फरकराम ने कल द्वारा 'निगाहक' के सब द्वार बन्द कर दिए ग्रैार फिर कुण्ड को भरनेवाली कल को हिलाया, जिससे वह बहुत ही थोड़े समय में समुद्र के तल पर धीरे से लग गया। ग्रब फरकराम ने एक कल को दबाया जिससे सब बिजली के दीपक जलने लगे। ग्रब हमारी दृष्टि एक बड़े ग्रद्भुत दृश्य पर पड़ी ग्रैार मैं इसे देख कर कुछ देर तक ग्रवाक हो गया। जहां तक बिजली का प्रकाश पहुंचता था, वहां तक नाना प्रकार के जलचर तैरते हुए देख पड़ते थे। समुद्र का तल स्वच्छ सफेद बालू का था, जिसपर केकड़े, बड़ी बड़ी पानी की मकड़ियां, ग्रष्टपद तथा कई प्रकार के घोंघे थे। इसके बीच बीच में मूंगों के वृक्ष तथा ग्रन्य कई प्रकार के जल के वृक्ष लगे थे, जिनके बीच में ग्रनेक प्रकार ग्रैार रङ्ग बिरङ्ग की छोटी बड़ी मछलियां तैरती थीं। इस दृश्य को मैं बहुत देर तक चुपचाप देखता रहा। फरकराम ने मुझसे पूछा कि क्या यह ग्रच्छा नहीं होगा कि हमलोग जहाज़ पर से उतर कर समुद्र तल की सैर करें। मैंने उनसे कहा कि यह कैसे सम्भव है? ये सब विकटाकार जन्तु हमलोगों को लील ही जांयगे। फरकराम इस पर हंसे ग्रैार बोले कि इन जन्तुग्रों के लिये हमको प्रबन्ध करना चाहिए। यदि हमलोग सावधान रहेंगे ते। इनमें से ग्रधिकांश जन्तु हमलोगों को क्लेश नहीं देंगे।

इतने में बरन ने बड़ी दूर पर एक वस्तु देखी ग्रैार उसे हमलोगों को दिखलाया। मुझे जान पड़ा कि यह एक डूबा हुग्रा जहाज़ है जिसकी कदाचित् सामुद्रिक ग्रांधी में पड़ कर यह दशा हुई है। फरकराम ने भी कहा कि हां, यही बात है। इतनी दूर से वह वाणिज्य का जहाज़ ग्रा

पड़ता था। अतएव हम लोगों की सम्मति उसको जाकर देखने की हुई।

फरकराम ने तुरन्त कुण्डवाली कल को थोरे से दबाया जिससे जहाज़ समुद्रतल के कुछ ऊपर होगया और उस डूबे हुए जहाज़ की ओर हम लोगों को ले चला। इसके ठीक निकट पहुंचने पर 'निगाहक' खड़ा कर दिया गया। अब इस डूबे हुए जहाज़ को दशा से यह स्पष्ट विदित होता था कि यह किसी आंधी में पड़ कर इस दशा को प्राप्त हुआ था। इसके एक द्वार के भीतर एक मनुष्य का पञ्जर था जो ऐसा जान पड़ता था, कि किसी कारण से जहाज़ से निकल नहीं सका और वहीं का वहीं समाप्त हो गया। यह हमलोगों के लिये एक बड़ा हृदयविदारक दृश्य था, जिससे हम सभों के रोएं खड़े हो गए।

अब फरकराम ने बरन से गोताखोरी का वस्त्र लाने के लिये कहा, तथा मुझसे भी अपने साथ डूबे हुए जहाज़ पर चलने को कहा। मैंने तो पहिले इसे स्वीकार नहीं किया, परन्तु बरन को भी फरकराम के साथ जाते देख, मुझमें भी साहस आगया और मैं भी चलने के लिये प्रस्तुत हो गया। थोड़ी ही देर में हम तीनों ने गोताखोरी के वस्त्र पहिन लिए। फरकराम ने पदम को, जो 'निगाहक' पर रहने को था, सब बातें समझा दीं।

जल के नीचे 'निगाहक' पर से उतरने के लिये एक बहुत ही छोटी कोठरी थी, जिसमें दो द्वार थे,—एक तो भीतर के कमरे की ओर और दूसरा ऊपर छत की ओर। इस कोठरी में पहुंच कर हमलोगों ने कमरे की ओर वाला द्वार बन्द कर दिया और गोताखोरी का टोप पहिर लिया, जिसमें सांस लेने के लिये नली भी लगी थी। इन नलियों के द्वारा भीतर कोठरी में से वायु आती थी और इनके लिये इस द्वार में छेद बने थे। जिसमें इन नलियों द्वारा वायु भली भांति आ सके इसलिये "निगाहक" समुद्रतल से लगभग ४० फीट ऊपर उठा लिया गया। अब हमलोग छत वाला द्वार खोल कर रस्सी पकड़ कर नीचे उतर गए। कुछ देर तक तो मुझे बड़ा कष्ट मालूम हुआ। जल के दबाव से मेरे कान में भयानक शब्द सुनाई पड़ते थे, परन्तु थोड़ी ही देर में मुझे इसको सहन पड़ गई।

मैंने फरकराम को पुकारा, परन्तु मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ जब कि उन्होंने मेरे पास खड़े रह कर भी कोई उत्तर नहीं दिया। मैं अनुमान ही कर रहा था कि यहां कदाचित् जल के दबाव के कारण शब्द सुनाई नहीं पड़ता, कि इतने ही में फरकराम ने अपना सिर मेरे सिर में लगा कर यही बात कही और कहा कि जब कभी तुम्हें कुछ कहना हो तो इसी प्रकार से सिर में सिर मिला कर कहना।

बरन डूबे हुए जहाज़ पर चढ़ गया था, अतएव फरकराम के पीछे पीछे मैं भी उसपर चढ़ने लगा। मेरे चारों ओर बहुत सी बड़ी बड़ी मछलियां तैर रही थीं, जिससे मुझे बड़ा डर लगता था। परन्तु सौभाग्यवश इनमें कोई भी हमलोगों से न बोली। इस जहाज़ पर पहिली वस्तु हमलोगों को एक तोप मिली, जिससे फरकराम ने अनुमान किया कि यह सम्भवतः डाकूलोगों का जहाज़ है। यह अनुमान पीछे से सत्य ही निकला। जब हम लोग जहाज़ के कमरे में गए तो वहां टेबुल के चारों ओर छ मनुष्यों के पंजरों को देखा। इस टेबुल पर एक बड़ी लोहे की सन्दूक थी और उसके सामने अशर्फी का बड़ा ढेर लगा था। ऐसा जान पड़ता था कि जिस समय यह जहाज़ डूबा, उस समय ये डाकू आपस में बँटवारा कर रहे थे। हमलोगों ने इस जहाज़ के प्रत्येक भाग को इसलिये खोजडाला कि कहीं और भी कुछ धन न हो। परन्तु हमलोगों को कुछ मनुष्यों के पञ्जर तथा शस्त्रों के अतिरिक्त और कुछ न मिला। अतः हमलोग इन अशरफियों को अपने 'निगाहक' पर ले जाने का उपाय सोचने लगे। बरन पहिले ही

से अपने साथ एक थैला लेआया था। अतएव उसने अशरफियां उसी थैली में भर लीं और जो शेष रह गईं, उसे उस लोहे वाली सन्दूक के ढकने में रख हमने और फरकराम ने मिल कर उसे उठा लिया।

हमलोग इस डाकुओं के जहाज़ से उतर कर तीन ही चार कदम चले होंगे कि बरन अपनी अशर्फियों का थैला पटक, बड़े भय से 'निगाहक' के लटकते हुए रस्से की ओर लपका। हमलोगों ने भी शीघ्र ही उसके भय का कारण देखा, तथा अशर्फी का ढकना पटक, उसका अनुगमन किया। एक बड़ी भारी मछली, जिसकी नाक पर तलवार के धार ऐसी कोई नोकीली बस्तु थी, हमलोगों की ओर लपक रही थी। यह मछली हमलोगों के बहुत ही निकट आ गई थी; अतएव 'निगाहक' पर चढ़ जाना हमलोगों को असम्भव जान पड़ा और हमलोग निराश होकर अपना अपना छुरा निकल कर उससे लड़ने के लिये खड़े हो गए। यह मछली सीधी आते आते सहसा मुड़ी और हमलोगों के चारों ओर चक्कर लगाने लगी। कदाचित् आक्रमण करने का अवसर ढूंढ रही थी। कुछ देर चक्कर लगाने के पीछे अन्त को यह फिर सीधी होकर फरकराम पर लक्ष करके आई। परन्तु फुरतीले फरकराम सहसा उसके रास्ते में से ऐसे हट गए कि वह मेरे और उनके बीच होकर निकल गई। हमलोगों ने उसे योंही नहीं निकल जाने दिया, वरन् दोनों जनों ने दोनों ओर से भरपूर छुरा भी मारा, जिससे उसके शरीर से रक्त बह चला और वह ऊपर की ओर चक्कर देती हुई बड़े वेग से गई। उस समय हमलोगों को बड़ा भय था कि कहीं वह ऊपर जाते हुए हमारी सांस लेने की नलियों को न तोड़ दे। परन्तु सौभाग्यवश ऐसा नहीं हुआ। थोड़ी ही देर में हमलोगों ने इस मछली को फिर नीचे आते देखा। हमलोग फिर सावधान हो गए। परन्तु इसबेर हमलोगों का भय व्यर्थ ही था, क्योंकि हमारे छुरों के लगने से वह मर गई थी और शीघ्र ही तल पर आ गिरी। अब फरकराम ने पदम से 'निगाहक' को नीचे समुद्रतल पर ले आने का सङ्केत किया और उसके नीचे आने पर हमलोग सुगमता से सब अशरफ़ियां बटोर कर उस पर ले गए। पानीवाली कोठरी में जाकर बाहर छतवाला द्वार बन्द कर दिया गया और पानी यन्त्र द्वारा निकाल दिया गया। तब हम तीनों मनुष्य गोताखोरी के वस्त्र उतार कर भीतर आए। अशर्फियों को गिनने से मालूम हुआ कि वे साठ हज़ार हैं। यह निश्चय किया गया कि सब लोग इसका सम भाग करके बांटलें।

फरकराम कुछ कहा ही चाहते थे कि इतने में 'निगाहक' को बड़े जोर की टक्कर लगी, जिससे हमलोगों के पैर उखड़ गए। अपनेको सम्हालते ही हमलोग कांच की खिड़की की ओर देखने दौड़े। देखने से विदित हुआ कि यह टक्कर एक बड़ी भारी ह्वेल ने लगाई थी जो कि आकार में 'निगाहक' के बराबर थी। यह ह्वेल पुनः दूसरा धक्का लगाने के लिये हमलोगों की ओर बड़े वेग से आ रही थी। इससे हमलोगों को बड़ा ही भय हुआ। यदि यह दूसरा धक्का भी 'निगाहक' के बगल की ओर लगता तो वह अवश्य ही टूट कर टुकड़े टुकड़े हो जाता। परन्तु फुरतीले फरकराम ने बिजली की भांति शीघ्रता से 'निगाहक' का सिरा जिसमें एक बड़ा भारी शक्तिमान कीला लगा हुआ था, ह्वेल की ओर कर दिया। परन्तु यह कार्य कठिनता से समाप्त हुआ होगा कि ह्वेल ने दूसरा धक्का लगाया। इससे 'निगाहक' बड़े ज़ोर से हिलने लगा, जिससे हमलोगों को बड़ा भय हुआ। परन्तु थोड़ी ही देर पीछे जब हिलना बन्द हुआ और हमलोग खिड़की में देखने को गए, तो देखा कि कीला लगभग दो फीट के ह्वेल के शरीर में धंस गया था और ह्वेल मर गई थी। परन्तु इस मृतक ह्वेल के भारी बोझ के कारण हमारा 'निगाहक' अपने स्थान से हिल नहीं सकता था। अतएव यह आवश्यक हुआ कि इस ह्वेल को किसी भांति कीले से अलग करें

इस कार्य के लिये पदम और बरन गोतेख़ोरों के वस्त्र पहिना कर भेजे गए और इन लोगों ने उस मछली को फरसों और छुरों से कुछ काल में काट काट कर नीचे गिरा दिया।

जल के नीचे एकबारगी इतनी घटनाएं हो जाने से सब लोगों ने यही उचित समझा कि अब जल के ऊपर ही ऊपर यात्रा की जाय। अब केवल पीतसागर में ही पहुंच कर फिर जल के नीचे यात्रा की जायगी। अतः जल का कुण्ड खाली कर दिया गया जिससे तुरन्त 'निगाहक' जल के तल पर आगया। इस समय सूर्य्य विस्तृत समुद्र पर बड़ी सुन्दरता से चमक रहा था।

चार दिन तक हमलोग यात्रा करते रहे। पांचवें दिन मध्याह्न के समय हमलोगों ने दक्षिण की ओर से एक अद्भुत प्रकार का पीला बादल उठते देखा जो एक बड़ी भारी आंधी थी। मैं जानता था कि समुद्र के इस भाग में आंधी कैसी प्रबल होती है। अतएव मेरे तो प्राण निकल गए। परन्तु फरकराम ने मुझे आश्वासन दिया और कहा कि इस आंधी से हमलोगों को कोई भय नहीं करना चाहिए, क्योंकि आंधी का प्रभाव केवल जल के तल से १०० फ़ीट नीचे तक रहता है। इसके नीचे आंधी का कोई प्रभाव नहीं देख पड़ता। अतएव यदि हमलोग जल के तल से १०० फ़ीट नीचे उतर चलेंगे, तो हमको आंधी कुछ जानही नहीं पड़ेगी। फरकराम ने अपने हाथ में एक आकाश-तोलन-यन्त्र ले लिया और जब आंधी अत्यन्त ही निकट आ गई तो हमलोगों ने 'निगाहक' को जल के लगभग १०० फ़ीट नीचे कर दिया। यहां पर वास्तव में जैसा फरकराम ने कहा था वैसा ही हुआ। इस जगह जल पूर्णतया स्थिर था और हमलोगों को आंधी का कोई भी चिह्न नहीं देख पड़ता था, यद्यपि आकाशतोलन यन्त्र द्वारा ज्ञात होता था कि आंधी बड़ी ही प्रचण्ड वेग से चल रही है। पूरे डेढ़ घण्टे तक फरकराम अपने हाथ में आकाश-तोलन-यन्त्र लिए रहे और तब उन्होंने कहा कि अब आंधी चली गई, अब हमलोग ऊपर चल सकते हैं। अतः जलकुण्ड खाली कर दिया गया और 'निगाहक' तुरन्त उछल कर जल के तल पर आ गया। यहां सूर्य पूर्णतया प्रकाशित हो रहा था और हमलोग बीती हुई आंधी के बादल उत्तर की ओर अब तक देख सकते थे। आंधी के पहिले जिस समय हमलोग 'निगाहक' को नीचे ले गए थे, उस समय हमलोगों को जल के पृष्ठ पर कहीं कोई जहाज़ नहीं दिखाई दिया, परन्तु इस समय लगभग आध मील की दूरी पर हमलोगों ने एक डूबता हुआ जहाज़ देखा, जिसके मस्तूल तथा रस्से इत्यादि सब टूट गए थे। अतएव हमलोगों ने 'निगाहक' को उसकी ओर बड़ी शीघ्रता से दौड़ाया। निकट पहुंचने पर इसमें दो मनुष्य दिखाई दिए जो निगाहक को आते देख कर, हमलोगों का ध्यान आकर्षित करने के लिये बड़ी उत्सुकता से अपना हाथ हिला रहे थे। पूछने से विदित हुआ कि इन दोनों में से एक उस जहाज़ का सहकारी कप्तान, और दूसरा रसोइयां था। उन्होंने कहा कि यह जहाज़ आम्रदेश से वाणिज्य का माल लेकर आ रहा था कि आंधी में पड़ कर उसकी यह दशा हुई। इसके सब मल्लाह बह गए और अब केवल येही दो मनुष्य शेष बच गए थे। अब इस जहाज़ के डूबजाने में कुछ भी देरी न थी, अतएव फरकराम ने 'निगाहक' को इस जहाज़ के निकट कर दिया और ये दोनों मनुष्य इसपर कूद आए। अब फरकराम ने 'निगाहक' को बड़ी शीघ्रता से इस जहाज़ से दूर हटाया,। हमलोग बहुत दूर नहीं पहुंचे थे कि जहाज़ को पानी के नीचे जाते देखा।

फरकराम इन दोनों नए व्यक्तियों को यह नहीं दिखलाया चाहते थे कि 'निगाहक' किन किन यन्त्रों द्वारा किस प्रकार से जल के नीचे चल सकता है। अतएव हमलोगों को जो पहिली पहिल भूमि दिखाई पड़ी, वहां इन्हें उतार दिया और वहां से ये दोनों एक जहाज़ में बैठ कर सुगमता से अपने देश को लौट गए।

पीतसागर पहुंचने तक हमारी शेष यात्रा में ऐसी कोई असाधारण बात नहीं हुई जो उल्लेख करने योग्य हो। हमलोग निर्विघ्न यथा समय पीत सागर में पहुंच गए। वहां हमलोगों को हज़ारों चीनी और जापानी जहाज़ मिले,—कोई मोती निकालने वाले, कोई मछलियों का शिकार करने वाले, कोई स्पञ्ज निकालने वाले, इत्यादि, इत्यादि।

अब हमलोगों को मोती की गुफा की खोज के लिये 'निगाहक' को फिर जल के नीचे ले जाना पड़ा। प्रसिद्ध पीतसागर बहुत गहिरा नहीं है, कोई दोही सौ फीट नीचे आने पर 'निगाहक' समुद्र तल पर आ लगा। यह बालू का एक बड़ा सुन्दर स्थान था, जिसमें ठौर ठौर पर बहुत से सुन्दर तथा दुष्प्राप्य सीप और समुद्री पौधे लगे हुए थे, जिन्हें देख कर हमलोग चकित हो गए। हमलोग इस मनोहर भूमि से ऐसे मोहित हो गए थे कि सदैव इसे ही देखा करने की इच्छा होती थी। परन्तु हमलोगों का मुख्य उद्देश्य मोतियों की गुफा खोजने का था। अतएव 'निगाहक' को धीरे धीरे आगे भी बढ़ाना ही पड़ा। कुछ काल तक तो 'निगाहक' ऐसे ही दृश्यों पर होके धीरे धीरे चलता गया। इसके उपरान्त सहसा दृश्य बदल गया। अब बलुए मैदान का अन्त हो गया और हमलोग चित्र विचित्र के मूंगों के भारी वन में पहुंच गए। यह उससे भी अधिक सुन्दर और मनोरञ्जक दृश्य था। मूंगे के कीड़ों ने अनेक भांति के अपूर्व और मनोहर वृक्ष बनाए थे। उनमें से कोई मनुष्य के आकार के, कोई देव के आकार के, कोई पशु और कोई पक्षी के आकार के थे। एक स्थान पर हम लोगों ने देखा कि मूंगे के वृक्षों का एक महल बन गया था, जो ऐसा जान पड़ता था कि मानों किसी मनुष्य ने बनाया हो। कई घण्टों के पीछे यह मूंगे का वन भी समाप्त हुआ और फिर स्वच्छ उज्वल बालू का मैदान आरम्भ हुआ। यहां पर हम लोगों की दृष्टि एक नङ्ग धड़ङ्ग मनुष्य पर पड़ी, जिसने समुद्र तल पर पहुंच कर एक मुट्ठी घास उठाई। यह एक जापानी मोती निकालनेवाला जान पड़ता था। उसकी दृष्टि तुरन्त 'निगाहक' पर पड़ी, जिसे उसने बड़े ही आश्चर्य से देखा और उसे कोई अद्भुत समुद्री जन्तु समझ कर वह इतना डरा कि बड़ी ही शीघ्रता से ऊपर चला गया। हम लोगों ने विचार किया कि यह ऊपर जाकर कहेगा कि मैंने एक बड़ा भारी भयानक जन्तु देखा है और कदाचित अब यहां कोई जापानी गोताखोर कभी नहीं आवेगा।

'निगाहक' बहुत धीरे धीरे आगे बढ़ता जाता था। फरकराम ने उसे अन्त में बिलकुल ठहरा दिया और तब उसने वरन से गोताखोरी के वस्त्र लाने को कहा। उसने कहा कि मैं स्वयं बाहर चल कर मोती खोजा चाहता हूं। इस पर मैंने भी उसके साथ चलने की इच्छा प्रगट की और उसके कहने से इस बेर वह, मैं और पदम भी चलने को प्रस्तुत हो गए। वरन को 'निगाहक' पर रहने की आज्ञा दी गई। इस बेर के गोताखोरी के वस्त्र पहिले जैसे नहीं थे। उनमें सांस लेने के लिये नलियां नहीं लगी थीं। परन्तु इस बेर हममें से हर एक के पीठ पर प्राणप्रद वायु उत्पन्न करनेवाला एक यन्त्र था। इससे हम लोगों को बड़ी सुगमता थी। हम लोग श्वास लेने के लिये 'निगाहक' पर आश्रित नहीं थे और स्वेच्छा पूर्वक उससे जितनी दूर चाहें जा सकते थे।

अब 'निगाहक' तल पर टिका दिया गया और हम लोग उसी पूर्व वर्णन किए हुए मार्ग से बाहर हुए और मोतियों की खोज करने लगे। मोती बहुधा एक विशेष प्रकार के सीप के भीतर मिलते हैं। परन्तु पीतसागर में ये प्रायः भूमि पर पड़े हुए मिलते हैं। मेरा अनुमान है कि सहस्रों वर्ष की पुरानी सीपों के गल जाने के कारण ये अलग हो कर इस प्रकार से मिलते हैं। थोड़ी ही देर में फरकराम ने एक बड़ा ही सुन्दर मोती पाया जो कि निस्सन्देह कई सौ अशर्फियों का मूल्य

था। इसके उपरान्त पदम को भी एक अच्छा मोती मिला। परन्तु उन दोनों मोतियों के अतिरिक्त हम लोगों के बहुत खोजने पर भी और कुछ हाथ नहीं लगा। इसका कारण मैं यह समझता हूं कि इस स्थान को वहांवाले गोताखोरों ने अवश्य भली भांति छान डाला होगा।

हम लोग 'निगाहक' से कुछ दूर निकल आए थे। हमें जल के नीचे किसी प्रकार का कष्ट अथवा भय नहीं था, क्योंकि हम लोगों के साथ श्वास लेने के लिये वायु बनानेवाला यन्त्र था, जिसको किसी प्रकार की हानि पहुंचना तनिक कठिन कार्य था। हम लोगों को अभी तक कोई घातक जन्तु भी नहीं देख पड़ा था, यद्यपि इसके लिये भी फरकराम अपने साथ एक जल में चलानेवाली बन्दूक लेते आए थे। परन्तु अब एक ऐसी घटना हुई जिससे उन्हें इसका प्रयोग करना पड़ा।

पदम बालू में मोती खोजते खोजते एक लम्बी ऊंची भूमि के निकट पहुंचा जो लगभग एक फुट ऊंची होगी। ऐसा जान पड़ता था कि किसी कारण से यहां बालू के बैठते बैठते यह भूमि ऊंची हो गई है। पदम को यह स्वप्न में भी ध्यान नहीं था कि इसके नीचे कोई वस्तु है। परन्तु ज्योंहीं वह अपना हाथ उस पर रखना चाहता था त्योंहीं वह चलने लगी। भूमि को चलते देख उसे बड़ा ही आश्चर्य हुआ और वह थोड़ी देर के लिये रुक गया। यह भूमि शीघ्र ही फिर स्थिर हो गई। कौतूहलवश पदम ने उसमें अपना छुरा धंसा दिया जिसका परिणाम बड़ा ही भयानक हुआ। तुरन्त ही बालू दूर हो गया और उसमें से एक बड़ा भारी हरा, लम्बा तथा सांप के सदृश जन्तु निकल आया, जिसने पदम को अपने फेंटे में लपेट लिया। विचारे पदम ने फरकराम को कई बेर सहायता के लिये बड़ी जोर जोर से पुकारा। फरकराम जल के नीचे उसे सुन नहीं सकता था, परन्तु जल में जो हलचल हुआ उससे उसका ध्यान उस ओर गया और उसने बड़े ही आश्चर्य के साथ उस जन्तु को पदम को फेंटे में लपेटे हुए और उसके सिर पर अपना मुंह बाए हुए देखा। फरकराम ने बड़ी ही शीघ्रता के साथ अपनी बन्दूक इस जन्तु पर ताक के छोड़ी। सूई उसके नीचे वाले जबड़े में लगी और उसके स्फोटन से वह उड़ गया। इससे यह जन्तु महाकोप से पदम को और भी अधिक ज़ोर से लपेटने लगा। परन्तु फरकराम ने फिर बड़ी शीघ्रता से दूसरी सूई छोड़ी। इस बेर वह उसके गले में लगी और उसकी मूड़ी उड़ गई। वह शीघ्र मर गया और पदम के प्राण बच गए। कौतूहलवश हम लोगों ने इस जन्तु को नापा और बड़े ही आश्चर्य का विषय है कि इसे पूरा ५० फीट लम्बा पाया। इसके बड़े बड़े मछलियों की नाईं पर तथा फनदार पीठ से ज्ञात हुआ कि यह समुद्री सांप नहीं है। फरकराम ने कहा कि यह एक प्रकार का जलव्याल है। यह बड़ा ही प्राचीन है। यह व्याल सहस्रों वर्ष का होगा। ऐसे जन्तु सदैव समुद्र के तल पर रहते हैं। कभी जल के ऊपर नहीं आते और यही कारण है कि हमलोगों के देखने में नहीं आते।

इस समय तक हम लोग 'निगाहक' से पूरे पाव मील दूर चले आए थे। फरकराम ने अब लौट चलना उचित समझा और ऐसा करने के लिये हम लोगों से सङ्केत किया। अतएव हम लोग लौट पड़े। 'निगाहक' अब थोड़ी ही दूर रह गया था कि हम लोगों ने फिर एक भयानक बात देखी। बहुत सी बड़ी बड़ी शार्क मछलियां हम लोगों के ऊपर जल में मड़रा रही थीं। इसमें कोई सन्देह नहीं था कि ये हम लोगों पर आक्रमण किया चाहती थीं। ये इतनी बड़ी बड़ी थीं कि इनमें से कोई एक भी किसी मनुष्य को समूचा निगल जा सकती थी। अतएव हम लोग बड़ी शीघ्रता से 'निगाहक' की ओर दौड़ने का यत्न करने लगे। जल में दौड़ने का यत्न करना एक विलक्षण कार्य है। इसका अनुभव केवल उन्हीं को हो सकता

है जो कभी जल में हले हों। परन्तु फिर भी हम लोग बहुत शीघ्र चले और ठीक उसी समय 'निगाहक' की छत पर पहुंचे जब कि इनमें से एक मछली हम लोगों की ओर लपकी थी। पदम इससे बाल ही बराबर बच गया। परन्तु अब हम लोग जलवाली कोठरी में पहुंच गए और उसके बाहरवाला द्वार बन्द कर दिया। तब शीघ्रता से उसका पानी निकाल हम लोग भीतरी कमरे में आ गए। खिड़की में से देखने से ज्ञात हुआ कि ये मछलियां अब 'निगाहक' के चारों ओर मड़रा रही थीं और उसपर भी आक्रमण करना चाहती थीं। अतएव फरकराम शस्त्रगृह में गया। वहां एक बन्दूक भर कर उसके मुख को एक रबर के नौ-पार्श्वमुख में डाला जो कि उसके खूब चिमाचिम बैठ गया। तब इसने मछलियों पर ताक के यह बन्दूक छोड़ी। इससे आस पास का पानी खौलने लगा और एक ही बार के बन्दूक छोड़ने से दस बारह मछलियां मर गईं और शेष डर कर भाग गईं।

अब हमलोगों ने फिर अपने मोती की गुफा को खोजने का विचार किया और 'निगाहक' फिर आगे बढ़ाया गया। कई दिन तक तो हमलोग इसी भांति यात्रा करते रहे और हमलोगों पर कोई ऐसी विशेष घटना नहीं हुई। एक दिन हमलोग एक गहिरे स्थान पर जा रहे थे तो हमलोगों ने देखा कि समुद्रतल का रूप बदल गया था। अब वहां की बलुई भूमि इस प्रकार की थी जैसी कि मोती पाए जाने वाले स्थानों की होती है। मैंने विचारा कि यदि मोती की गुफा वास्तव में है तो हमलोग अवश्य ही उसके निकट ही हैं।

सहसा हमलोगों ने बहुत से रस्से जिसमें भारी भारी बोझ बँधे हुए थे, नीचे आते देखे। हमलोगों ने तुरन्त ही जान लिया कि ये वेही रस्से हैं जिनका प्रयोग गोताख़ोर लोग गहिरे जल में शीघ्र पहुंच जाने के लिये करते हैं। शीघ्र ही गोताख़ोर लोग भी इन्हीं रस्सों पर दिखाई पड़े। ये लोग बालू में कुछ सेकेण्ड तक टटोल कर अपनी मुट्ठियां भर कर कङ्कड़ी आदि बटोर कर ऊपर चले जाते थे। यह बड़ा सुन्दर और मनोहर दृश्य था। जब कभी किसी गोताख़ोर की दृष्टि 'निगाहक' पर पड़ जाती तो वह बड़ा भयभीत होकर तुरन्त बड़ी शीघ्रता से ऊपर चला जाता, जिससे हमलोगों को बड़ी हंसी आती। 'निगाहक' आगे बढ़ता जाता था और हमलोगों को कुछ दूर तक ये दृश्य मिलते गए। परन्तु अब हमलोग इतने गहिरे स्थान पर पहुंच गए जहां पर स्पष्ट था कि गोताख़ोर नहीं आ सकते थे। यहां पर यदि खोजा जाता तो अवश्य बहुत मोती मिलते। परन्तु हमलोग विचारते थे कि मोतियों की गुफा समीप ही है और इसके ढूंढ निकालने की इच्छा हमलोगों में इतनी प्रबल थी कि 'निगाहक' को ठहराना उचित न समझा गया। मैं उसके लिये उत्सुकता से चारों ओर देख रहा था कि सहसा मेरी दृष्टि एक मूंगे के बन पर पड़ी जो एक बड़ी भारी गुहा की भांति था। न जाने क्यों मेरा विश्वास हुआ कि अवश्य यही हमारे मोतियों की गुफा होगी। मैंने अपना विचार सभों से प्रगट किया। वे लोग भी मुझसे इस विषय में पूर्णतया सहमत तथा बड़े प्रसन्न हुए। यह गुफा इतनी चौड़ी तथा ऊंची थी कि 'निगाहक' उसके भीतर भली भांति चल सकता था। परन्तु फरकराम ने उसे उसके भीतर ले जाना उचित न समझा। उसने पदम से लङ्गर डाल देने को कहा और 'निगाहक' इसी गुफा के मुंह पर खड़ा कर दिया गया। इससे बहुत सी चित्र बिचित्र की सुन्दर सुन्दर मछलियां जो कि इनके निकट थीं, डर कर भागीं। अब हमने, फरकराम ने, और बरन ने गोताखोरी के वस्त्र पहिने और पदम को 'निगाहक' पर रहने की आज्ञा दी गई। इस बेर हमलोगों ने अपने साथ छुरें और मोती बटोरने के लिये थैलों के अतिरिक्त एक एक बन्दूक भी ले ली।

अब हम तीनों जनों ने 'निगाहक' से उतर कर इस गुफा में प्रवेश किया। थोड़ी दूर तक तो हम

लोगों को 'निगाहक' से बिजली का प्रकाश मिलता गया, परन्तु मार्ग घुमावदार होने के कारण ग्रब उसमें उसका प्रकाश नहीं ग्रा सकता था ग्रौर हम लोगों को ग्रपने ग्रपने टोप पर के बिजली के प्रकाश पर निर्भर होना पड़ा। हमलोग ज्यों ज्यों इसके भीतर बढ़ते जाते थे, त्यों त्यों हमें ग्रधिक ग्रद्‌भुत दृश्य दिखाई देते थे। परन्तु यद्यपि हमलोग बालू में बड़ी सावधानी से खोज करते जाते थे, पर ग्रभी तक हमलोगों को एक भी मोती नहीं मिला, जिससे इसके मोतीवाली गुफा होने में कुछ सन्देह होता था।

निदान हमलोग एक ऊंची ग्रौर गुम्बजवाली कोठी में पहुंचे जो कि बड़ी ही सुन्दर ग्रौर मनोहर थी। यहां के सुन्दर उजले मूङ्गे के वृक्ष हमलोगों के टोप के प्रकाश से बड़े चमक रहे थे। वास्तव में, ऐसा सुन्दर दृश्य कदाचित् किसी मनुष्य ने नहीं देखा होगा। यहां पर फरकराम ने ग्रपने पैर के नीचे पड़ी हुई एक वस्तु उठाई। यह एक मोती था। इतना बड़ा मोती हम में से किसीने कभी नहीं देखा था। हमलोगों को इसपर बड़ी प्रसन्नता हुई ग्रौर ग्रब यह सन्देह नहीं रह गया कि यह मोती की गुफा नहीं है। हम सब बालूग्रों में बड़ी उत्सुकता के साथ खोजने लगे। हमलोगों ने कई घण्टों तक खोजा ग्रौर हमें बहुत से तथा बड़े ग्रमूल्य ग्रमूल्य मोती मिले, ग्रौर यदि हमलोग ग्रौर खोजते तो ग्रौर बहुत से भी पाते। वास्तव में यह गुफा मोतियों का भंडार ही जान पड़ती थी; परन्तु हमलोगों को 'निगाहक' से ग्राए बहुत देरी हो गई थी, ग्रतएव फरकराम की सम्मति से हमलोगों ने लैाट चलना उचित समझा। परन्तु इतने ही में हमें एक बड़ा शब्द सुनाई दिया। पानी में बड़ी खलबली दिखाई दी ग्रौर गुफा हिलने लगी। पहिले तो हमलोगों ने सोचा कि ग्रवश्य यह भूकम्प है, पर फरकराम ने शीघ्र ही विचार कर कहा कि मुझे जान पड़ता है कि पदम इस समय किसी बड़ी विपत्ति में पड़ गया है ग्रौर इसकी सूचना हमलोगों को देने के लिये उसने बन्दूक छोड़ी है। ग्रतएव हमलोग जल में जितनी शीघ्रता से चल सकते थे, उतनी शीघ्रता से गुफा के द्वार की ग्रोर चले। परन्तु हमलोग थोड़ी ही दूर गए थे कि दूसरा धक्का ग्राया। इसे ध्यानपूर्वक देखने से विदित हुग्रा कि यह वास्तव में जल के बन्दूक ही का धक्का है ग्रौर फरकराम का कथन सत्य जान पड़ा। ग्रतएव हमलोगों ने ग्रपनी चाल ग्रौर भी बढ़ा दी। यहां ग्राती बेर हमलोगों को रास्ता कुछ भी नहीं जान पड़ा था। पर इस बेर वह बहुत ही बड़ा जान पड़ता था ग्रौर ग्रन्त में जब हमलोग गुफा के मुंह के निकट पहुंचे, तो हमलोगों को 'निगाहक' की बिजली का प्रकाश न देख कर बड़ा ही ग्राश्चर्य हुग्रा। परन्तु इस ग्राश्चर्य की उस समय तो सीमा ही न रही जब कि गुफा के बाहर ग्राकर हमलोगों ने 'निगाहक' ही को न पाया। यह देख कर हमलोगों के ग्रागे ग्रन्धकार छा गया। हमलोग इसके ग्रलोप हो जाने का कारण नहीं विचार सकते थे। ग्रौर सब से बढ़ कर तो यह बात थी कि हमलोग जीवित कैसे रह सकते थे। भूमि हमलोगों से पूरे पचास मील दूर थी ग्रौर हमलोगों के यहां से निकलने का कोई उपाय नहीं देख पड़ता था। यह सत्य है कि जब तक वायु उत्पन्न करने वाला यन्त्र काम करता रहता तब तक हम लोग जीवित रह सकते थे। परन्तु यह कब ग्राशा की जा सकती थी कि यह यन्त्र सदैव काम करता रहेगा। जब यह बन्द हो जाता तो हमलोगों की बड़ी ही भयानक मृत्यु होती।

परन्तु ग्राशा बड़ी प्रबल होती है। ग्रतएव हमलोग बैठ कर यह ग्राशा करने लगे कि कदाचित पदम 'निगाहक' को लेकर फिर ग्रावे ग्रौर इस प्रकार ग्रब 'निगाहक' की व्यर्थ प्रतीक्षा करते करते रात होगई।

धीर गम्भीर ग्रौर बुद्धिमान फरकराम इस ग्रापत्ति में हमलोगों की भांति घबरा नहीं गया था। वह चुपचाप हमलोगों को बचाने की युक्ति सोच

रहा था और अन्त में उसने मुझसे कहा कि यदि 'निगाहक' नहीं भी लौटा तो भी हमलोगों के प्राण किसी न किसी भांति बच जायंगे। उसने कहा कि इस स्थान के आस ही पास बहुत से गोताखोर मोतियों की खोज में नीचे आते हैं। अतएव उन्हीं के साथ उनके रस्से को थाम कर ऊपर चला जाना कठिन नहीं होगा। वास्तव में इस भांति हमलोग अपने प्राण बचा सकते थे और इससे हमलोगों को बड़ी प्रसन्नता भी हुई, परन्तु साथ ही इसके 'निगाहक' का लोप हो जाना कम दुःख की बात नहीं थी। अतएव हमलोग सवेरा हो जाने पर भी घण्टों तक इस आशा में बैठे रहे कि कदाचित् 'निगाहक' अब आवे। परन्तु अपनी आशा को निष्फल ही देख, हार कर हम लोग उठने ही को थे कि हमलोगों को प्रकाश दिखलाई दिया और शीघ्र ही 'निगाहक' नीचे उतरता हुआ देख पड़ा। इस समय हमलोगों को जो आनन्द प्राप्त हुआ उसका वर्णन करना असम्भव है। हमलोग बड़ी ही उत्सुकता से 'निगाहक' की ओर दौड़े और शीघ्र ही उसके भीतर जा पहुंचे।

अब हमलोगों ने पदम से उसका सब वृत्तान्त पूछा, जिससे विदित हुआ कि जब हमलोग मोतियों की गुफा में गए और बहुत समय बीतने पर भी न लौटे तो उसने बिचारा कि हमलोग अवश्य बहुत थके मांदे होकर लौटेंगे। अतएव उसने हमलोगों के लिये भोजन बना रखने का विचार किया; और वह इसके लिये आग सुलगा रहा था कि 'निगाहक' को इतनी जोर से धक्का लगा कि पदम लुड़क गया। सम्हल कर उठते ही वह खिड़की की ओर देखने के लिये दौड़ा और वहां उसने जो कुछ देखा उससे उसके रोएं खड़े हो गए। एक अष्टपद, जो आकार में पर्वत के समान था, 'निगाहक' को अपने प्रबल हाथों से खींच रहा था। 'निगाहक' उसके सामने एक खिलौने की भांति जान पड़ता था। कुछ देर तक तो पदम किंकर्तव्यविमूढ़ खड़ा रहा, परन्तु अन्त में उसका ध्यान पानी में चलाने वाली बन्दूक पर गया। वह इसे अष्टपद पर नहीं चला सकता था। पर उसने सोचा कि यदि फरकराम को उसकी आपत्ति किसी भांति विदित होजायगी तो वह अवश्य आकर कुछ न कुछ उपाय करेगा। अतएव उसने दो गोले मोतियों की गुफा पर चलाए जिसका वर्णन मैं ऊपर कर चुका हूं। परन्तु अष्टपद अब भी बराबर 'निगाहक' को खींचता गया और बिचारा पदम इस जन्तु से छुटकारा पाने के लिये कोई उपाय न सोच सका। उसका इतना साहस नहीं होता था कि गोताखोरी के वस्त्र पहिन कर और बाहर निकल कर उसपर गोली चलावे। तब पदम ने सोचा कि कदाचित् 'निगाहक' को जल के ऊपर ले चलने से यह जन्तु इसे छोड़ दे। ऐसा विचार उसने तुरन्त जलकुण्ड खाली कर दिया और 'निगाहक' इतने भारी जन्तु के बोझ के रहते भी धीरे धीरे ऊपर उठने लगा और अन्त को जल के ऊपर पहुंच गया। यहां पर मोती निकालनेवाले गोताखोरों की कई नौकाएं थीं, परन्तु सब की सब इस भयानक जन्तु को देख कर दूर भागीं। पदम निराश होगया। उसे हमलोगों का स्मरण करके बड़ा दुःख हुआ। परन्तु वह करता हो क्या? जल के ऊपर आकर अष्टपद और भी आनन्दित जान पड़ता था। वह तैरता था और जिधर चाहता था उधर 'निगाहक' को खींच ले जाता था। उसने 'निगाहक' की छत पर के जङ्गले आदि भी तोड़ डाले। परन्तु वह उसकी फ़ौलाद की छत नहीं तोड़ सकता था और इसी कारण से पदम के प्राण बचे हुए थे। अब रात हो गई, परन्तु इस जन्तु ने अब तक 'निगाहक' को नहीं छोड़ा। वह रात भर उसी भांति उसे समुद्र में इधर से उधर और उधर से इधर खींचता रहा। बिचारा पदम पागल सा होगया। उसने बैठे बैठे एक बेर बिजली के प्रकाश का सारा प्रकाश इस जन्तु की आंख पर डाला। इसका उसपर कुछ प्रभाव दिखाई दिया। इससे वह कुछ हिचका और कभी कभी ऐसा जान पड़ता था कि 'निगाहक' को छोड़ देगा। परन्तु

उसके ऐसा करने के पहिले दिन का प्रकाश फैल गया। अब पदम पूर्ण तया निराश हो गया था, कि अष्टपद कदाचित् थक कर 'निगाहक' को छोड़ कर जल के नीचे चला गया। पदम बड़ा ही प्रसन्न हुआ और तुरन्त यन्त्रगृह में जाकर 'निगाहक' की चाल जितनी शीघ्र हो सकती थी उतनी कर दिया, जिसमें वह इस जन्तु से शीघ्र ही बहुत दूर चला जाय। अतएव थोड़ी ही देर में वह, उस स्थान से जहां कि अष्टपद ने डुब्बी मारी थी, कोसों दूर निकल गया।

परन्तु पदम जानता था कि उसकी दुर्घटना का अभी अन्त नहीं हुआ है, क्योंकि यह अत्यन्त आवश्यक था कि बिना कुछ समय खोए हुए वह हमलोगों से मिले। परन्तु वह यह नहीं जानता था कि वह हमलोगों के लिये किस ओर जाय। अस्तु, वह ईश्वर पर भरोसा करके अपने अनुमान के अनुसार 'निगाहक' को ले चला और जब उसने सोचा कि अब हम ठीक स्थान पर आ गए हैं तो उसने 'निगाहक' को डुबाया और धन्य है उस सर्व शक्तिमान जगदीश्वर की महिमा कि यद्यपि पदम को यह स्वप्न में भी विश्वास नहीं था कि मैं ठीक उसी स्थान पर उतरूंगा जहां कि फरकराम आदि मेरी प्रतीक्षा करते होंगे, परन्तु ऐसा हो हुआ जैसा कि हम ऊपर वर्णन कर चुके हैं।

अब हम लोगों की यात्रा का उद्देश्य पूरा हो गया था। हम लोगों ने घर लौटने के पहिले दो चार दिन होङ्गकोङ्ग ऐसे सुहावने देश में ठहरना उचित समझा। अतएव 'निगाहक' होङ्गकोङ्ग की ओर फेरा गया और दूसरे दिन प्रातःकाल हम लोग होङ्गकोङ्ग बन्दर के निकट पहुंच गए। परन्तु यहां पर 'निगाहक' को देख कर एक बड़ी हलचली मच गई। इसका कारण कदाचित यह था कि एक तो उस पर किसी देश का झंडा नहीं था और दूसरे उसका आकार देखकर लोगों को सन्देह हो सकता था कि वह टारपेडो या डाइनामाइट की डोंगी होगी। अतएव हम लोगों ने शीघ्र ही अपनी ओर चीन के जङ्गी जहाज़ को आते देखा। यह बात स्पष्ट थी कि वे हमें हानि पहुंचाया चाहते थे। फरकराम ने कुछ सोच विचार कर उन लोगों से लड़ना उचित न समझा उसने इस बन्दर के निकट एक ओर अपने ही देश के एक जङ्गी जहाज़ को खड़े देखा, जिस पर कि उसी के देश का झण्डा फहरा रहा था। उसने इसी जङ्गी जहाज़ की शरण लेनी उचित समझी। अतएव उसने 'निगाहक' को इसी जहाज़ की ओर फेरा और उसकी चाल बढ़ादी। इस पर चीनी लोगों ने सोचा कि हम लोग भाग रहे हैं और हम लोगों की ओर एक गोला छोड़ा। फरकराम ने इस समय बड़ी आपत्ति देखी। उसने बरन से कहा कि अपने देश का झण्डा 'निगाहक' पर लगा दो। बरन ने तुरन्त ऐसा ही किया, परन्तु इसका कोई प्रभाव नहीं हुआ। चीना लोगों को विश्वास हो गया था कि 'निगाहक' कोई टारपेडो या डाइनामाइट की डोंगी अवश्य है। अतएव अब 'निगाहक' की ओर दनादन गोले बरसने लगे। अब हम लोगों ने यही उचित समझा कि 'निगाहक' को जल के नीचे से स्वदेशी जङ्गी जहाज़ के निकट ले चलें और इसी प्रकार हम लोग सुगमता से उसके निकट पहुंच गए। चीनी लोगों को तोपों के धुएं में हमारी यह कार्रवाई विदित नहीं हुई। हमारे देश के जङ्गी जहाज़ का सर्दार फरकराम का एक जान पहिचानी था। अतएव उसने फरकराम का बड़ा ही स्वागत किया। अब चीनी लोगों को अपनी भूल विदित हो गई और उनके सर्दार ने फरकराम से अपनी अनुचित कार्रवाई के लिये क्षमा मांगी। हम लोग तीन दिन तक होङ्गकोङ्ग में ठहरे। चौथे दिन प्रातःकाल स्वदेशी जङ्गी जहाज़ के सर्दार से बिदा हो अपने देश की ओर यात्रा की।

दो दिन तो हम लोग निर्विघ्न चले गए। परन्तु तीसरे दिन एक ऐसी घटना हुई कि जिससे हम लोगों को बड़ी ही हानि तथा दुःख हुआ। इस दिन हम लोगों के मार्ग में कुछ चीनी जहाज़ दिखाई दिए जो वाणिज्य के जहाज़ जान पड़ते थे।

अतएव हम लोग निधड़क थे। परन्तु ज्योंही हम लोग उनके बीच में पहुंचे, त्योंहीं उन्होंने चारों ओर से हमें घेर लिया और इसके पहिले कि हम लोगों को उनकी बुरी इच्छा ज्ञात भी हो, सबके निकट वाले जहाज़ से, जो लगभग ५० गज को दूरी पर होगा। एक गोला आया, यह गोला 'निगाहक' के जलकुण्ड में होकर निकल गया, जिस से अब हम लोग उसे स्वेच्छापूर्वक नहीं डुबा सकते थे, जब तक कि उसे सदैव के लिये न डुबावें। फरकराम के मुंह से भय टपकने लगा। हम लोग चारों ओर से इन जहाज़ों से घिरे हुए थे, अतएव जिधर जाते उधर ही गोलों से हमारा स्वागत होता।

अब हम लोगों के लिये केवल दोही बातें थीं; लड़ना वा मरना। अतएव फरकराम ने पानी में चलानेवाली बन्दूक से काम लिया। उसने पहिले सबसे निकट वाले जहाज़ पर एक गोला चलाया, जिसने फट कर कई गज लम्बा चौड़ा छेद कर दिया। यह जहाज़ शीघ्रता से डूबने लगा और इसके सब जहाज़ी लोग भय से जल में कूदने लगे। फरकराम ने तुरन्त दूसरे जहाज़ पर गोला चलाया उसकी भी वही दशा हुआ और वह दोही तीन मिनट में सब जहाज़ियों समेत जल में निमग्न हो गया। परन्तु इस बीच में शत्रुओं के एक गोले से 'निगाहक' की भीतरी कोठरी का एक अंश उड़ गया और उसे बड़ी ही हानि पहुंची। फरकराम इससे बड़े ही कुपित होकर चारों ओर गोला बरसाने लगे। ये गोले जिधर ही जाते उधर ही अंटाधार कर देते। अब शत्रु के जहाज़ सब छिन्न भिन्न हो ही गए थे, कि पीछे से शीघ्र आते हुए एक जहाज़ के गोले का शब्द सुन पड़ा। मेरे यन्त्र द्वारा देखने पर ज्ञात हुआ कि यह वही हमारा स्वदेशी जङ्गी जहाज़ था जो कि हमारी सहायतार्थ आ रहा था। शत्रु तो निराश हो ही गए थे, परन्तु इस जहाज़ को आते देख उनका रहा सहा साहस भी जाता रहा। वे अपने प्राण लेकर भागे और शीघ्र ही एक नदी के मुहाने पर पहुंच गए, जहां पानी इतना छिछला था कि 'निगाहक' के अतिरिक्त और कोई जहाज़ उनका पीछा नहीं कर सकता था। परन्तु फरकराम की इच्छा उनके पीछा करने की नहीं थी। फरकराम उनके सात जहाज़ों को समुद्र तल पर पहुंचा चुका था और वह इससे सन्तुष्ट था।

अब हमारा स्वदेशी जहाज आगया। उसके कप्तान से विदित हुआ ये लोग डाकू थे। उसने यह भी कहा कि हम इन डाकुओं की खोज में वर्षों से थे। तुम लोगों ने उन्हें उचित दण्ड दिया। ये बातें हो ही रही थीं कि बरन बड़ा घबड़ाया हुआ नीचे से आया। उसने कहा कि 'निगाहक' में एक बड़ा छेद होगया है और उसमें बड़ी शीघ्रता से पानी भर रहा है। फरकराम इसे देखने को गया। परन्तु खेद कि वह शीघ्रता से डूब रहा था और फरकराम जैसे बुद्धिमान मनुष्य की भी उसमें कोई कला नहीं लग सकती थी। उसने बड़े शोक के साथ कहा कि अब 'निगाहक' का अन्त समय आ गया।

अब कोठरी में जल आ गया और 'निगाहक' बैठने लगा। मैंने बड़ी उत्सुकता के साथ फरकराम से पूछा कि क्या हमलोगों की अशर्फ़ियां किसी भांति नहीं बच सकतीं। उसने कहा "किसी भांति नहीं। कूदो और अपनी जान बचाओ"। अतएव हम सब अपने प्राण बचाने के लिये 'निगाहक' पर से कूद पड़े। फरकराम के मित्र जङ्गी जहाज़ के कप्तान पहिले ही से हमलोगों के लिये एक नाव भेज चुके थे। इसपर हमलोग ले लिए गए और हमलोगों ने शीघ्र ही 'निगाहक' को सदैव के लिये डूब जाते देखा।

हमारा स्वदेशी जङ्गी जहाज़ हमें पुनः हांग कोङ्ग ले गया और यहां हमारा भली भांति सत्कार किया गया। यहां से हमलोग एक जहाज़ पर बैठ कर पुनः अपनी जन्मभूमि को लौट आए।

नए चमत्कारिक तथा प्रबल यन्त्र आदि और वे सब अशरफियां भी, जो हमलोगों ने समुद्र तल के नीचे डूबे हुए जहाज़ पर से पाई थीं, 'निगाहक' के साथ ही चली गईं। परन्तु मोती की गुफावाले सब मोतियों की हमलोगों ने माला बना कर पहि

लिया था। अतएव वे सब हमारे साथ थे। अतः यह किसी अंश में सन्तोषदायक था।

यहां पर यह कह देना भी उचित जान पड़ता है कि कुछ काल में फरकराम ने 'निगाहक' के साथ डूबी हुई अशर्फियों के निकालने के लिये पुनः दूसरा जल में चलनेवाला जहाज़ बनाया, जिसकी यात्रा में मैं भी सम्मिलित था। इस दूसरी यात्रा का वृत्तान्त और भी अधिक मनोरञ्जक है और इसे मैं अपने पाठकों को फिर किसी समय सुनाऊंगा।

गोपालदास

युनीवरसिटी कमीशन

[गत अङ्क के आगे]

विश्वविद्यालय के विद्यार्थी

उत्तीर्ण होनेवालों की संख्या कम होने का कारण परीक्षा की निर्धारित कठिनता का प्रत्येक वर्ष में बदलना ही है और न कि बिना सोचे समझे सब विद्यार्थियों को परीक्षा देने की आज्ञा देना है। हम लोगों का विश्वास है कि इसमें हस्तक्षेप करने से हानि होगी। हम लोग नहीं सोच सकते कि विश्वविद्यालय विद्यार्थियों के सदाचार और स्वास्थरक्षा की ओर कैसे ध्यान रख सकता है। यह बात पूर्णतया कालेजों के प्रधान के हाथों में छोड़ देनी चाहिए, विशेष कर जब कि हम लोगों के प्रस्ताव किए अनुसार उनमें से सब लोग-फ़ेलो होंगे और अधिकांश सिण्डिकेट के मेम्बर होंगे।

आज कल सभाओं और साधारणों के विद्याविषयक कार्यों की ओर उचित ध्यान नहीं दिया जाता जिससे कि भिन्न भिन्न समाज एक दूसरे से अधिक संस्पर्श में रहें और इस भांति एक यथार्थ विश्वविद्यालय के जीवन की प्रवृद्धि करें। यह उत्तम होगा कि शिक्षा के भिन्न भिन्न केन्द्रों में व्यायाम के, विद्याविषयक और वैज्ञानिक समाज स्थापित किए जांय, जिसमें कि प्रोफ़ेसर तथा विद्यार्थी लोग सोत्साह अनुराग ले सकें। यदि ऐसे समाज भिन्न भिन्न कालिजों की अधीनता में स्थापित किए जांय तो इससे शिक्षक तथा विद्यार्थियों का परस्पर अधिक संसर्ग हो जायगा और विद्यार्थियों में विद्याध्ययन करने और अपने जीवन को देशहितकर कार्यों में लगाने में विशेष उत्साह होगा।

हम लोग एन्ट्रेन्स परीक्षा के लिये उम्र की सीमा बांधने के निस्संदेह विरुद्ध हैं। उचित दिनों तक परीक्षा करके देखने के पीछे यह रीति शिक्षा के हित के लिये हानिकारक पाई गई थी और कलकत्ता विश्वविद्यालय से तथा लन्दन विश्वविद्यालय से भी, जहां की देखादेखी यह प्रचलित की गई थी, इसे उठा दिया है। अतएव हम लोगों को इसके फिर से प्रचलित करने का कोई कारण समझ में नहीं आता। हम लोग यहां पर यह भी अनुमति देंगे कि स्कूल-फ़ाइनेल परीक्षा को किसी प्रकार से उन विद्यार्थियों का बाधक नहीं होना चाहिए जो कि अपना अध्ययन आप कालेज के वर्गों में भी किया चाहते हैं। इससे बहुत से लड़के इस परीक्षा मे नहीं सम्मिलित होते। स्कूल फ़ाइनेल परीक्षा एन्ट्रेन्स परीक्षा से कठिन है। अतएव उचित है कि जो लोग इस परीक्षा में उत्तीर्ण हों, उन्हें वे सब अधिकार प्राप्त रहें जो कि एन्ट्रेन्स में उत्तीर्ण हुए विद्यार्थियों को होते हैं।

विश्वविद्यालय की शिक्षा

हम लोग कह चुके हैं कि बी० ए०, बी० एस० सी०, बी० लिट० और एल० एल० बी० परीक्षाओं के लिये विश्वविद्यालय शिक्षक का कार्य न करे। यह काम इन परीक्षाओं के पीछे, अर्थात् एम० ए०, डी० एस सी०, डी० लिट० आदि में ही प्रारम्भ हो।

यह कहा जाता है कि बहुतेरे लड़के जब कालेज की पढ़ाई प्रारम्भ करते हैं तो उन्हें अङ्गरेज़ी का उचित ज्ञान नहीं होता। यह बात

सत्य है और इसका कारण (१) स्कूल वर्गों की पाठ्य पुस्तकों का बिना उचित विचार के चुना जाना, (२) परीक्षाओं की बुरी रीति जिसमें का उद्देश्य केवल यही जान पड़ता है कि विद्यार्थियों से व्याकरण के गूढ़ विषयों का लुप्तप्राय कथाओं का हवाला पूछा जाय और यह न जाना जाय कि उन्होंने कितनी अंग्रेज़ी सीखी है और (३) इन सब पढ़ाई पर यह तब तक नहीं सुधर सकती जब तक अध्यापकों को अच्छे वेतन न दिए जायंगे और उनके भविष्यत का उचित प्रबन्ध न किया जायगा। इसका दूसरा कारण यह है कि अध्यापकों को बहुत ही अधिक लड़के पढ़ाने पड़ते हैं। किसी भाषा का अध्यापक स्कूल के नीचे के वर्गों में एक घण्टे में १५ वा २० लड़कों से अधिक नहीं पढ़ा सकता। अध्यापक को अपना कार्य भली भांति करने के लिये अच्छी विद्या तथा पढ़ाने के उपयुक्त ढंग ही की अवश्यकता नहीं है, वरन् उसे अपने कार्य में अधिक अनुराग भी होना चाहिए। ऐसा करने के लिये यह आवश्यक है कि अध्यापकों के वेतन की अभिवृद्धि की जाय और उनके लिये उचित पेन्शन का भी प्रबन्ध किया जाय।

स्कूल की पाठ्यपुस्तकों का चुनना पूर्णतया प्रान्तिक टेक्सट् बुक कमेटी के आधीन है और इसमें शिक्षित सर्वसाधारण की कोई सम्मति नहीं सुनी जाती। स्कूलवर्गों की पाठ्यपुस्तकों का चुना जाना बड़ी गुरुता का कार्य है, क्योंकि यह उत्तम शिक्षा का आधार है और हम लोगों की सम्मति में जितना ध्यान इस ओर दिया जाना चाहिए उसका विश्वविद्यालयों में शोचनीय अभाव है। यह कार्य पूर्णतया प्रान्तिक कमेटी ही के हाथ में न छोड़ दिया जाना चाहिए, क्योंकि उसके चुनाव अब तक संतोषदायक नहीं हुए हैं। यह बात पूर्णतया टेक्स्टबुक कमेटी के आधीन नहीं कर देनी चाहियें, क्योंकि उन लोगों द्वारा पाठ्य पुस्तकों का चुनाव हम लोगों को ठीक नहीं जान पड़ता। इस कार्य की गुरुता और उसके सम्पादन करने की कठिनाई इसीसे स्पष्ट है कि पाठ्य पुस्तकों का विश्वविद्यालय द्वारा भी चुनाव बहुधा वैसा नहीं होता जैसा कि होना चाहिये।

ग्रीक और लेटिन भाषाओंकी पढ़ाई के सम्बन्ध में हम लोगों की यह सम्मति है कि भारतवर्षीय विश्वविद्यालयों के अध्ययनक्रम में इन भाषाओं के सम्मिलित करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

(१) हम लोगों की यह दृढ़ अनुमति है कि बोलचाल का अंगरेज़ी का अच्छा और शुद्ध ज्ञान प्राप्त करने के लिये यूरप की दो भाषाओं का केवल नाम मात्र ज्ञान प्राप्त करना केवल समय व्यर्थ करना है। इसके लिये विक्टोरिया के समय के ग्रन्थकारों को पढ़ना ही वास्तव में उपयोगी होगा।

(२) जर्मनी तथा अन्य युरप के देशों में प्राचीन भाषाओं के अध्ययन की प्रथा उठी जाती है और आधुनिक विद्वान लोग बिना इनके सीखे ही सन्तोषदायक कार्य कर रहे हैं।

परन्तु पूरब की प्राचीन भाषाएं विश्वविद्यालय के अध्ययनक्रम में स्थान पाने योग्य हैं। संस्कृत की पढ़ाई निन्दनीय और दोषयुक्त होती है। उस में नवसिखुओं के लिये अच्छी पुस्तकें नहीं हैं। इसके अतिरिक्त हम लोगों की अनुमति है कि संस्कृत भाषा देवनागरी अक्षरों में लिखी जानी चाहिये और कलकत्ता विश्वविद्यालय की नाईं इस में कोई प्रान्तिक हेर फेर न होने देना चाहिये।

संस्कृत की पढ़ाई के सम्बन्ध में हम लोग संस्कृत कालेजों में इस भाषा के पढ़ाए जाने की रीति पर बिना शोक प्रकाश किए हुए नहीं रह सकते। विद्यार्थी के वर्णमाला सीखते ही, बिना उस मातृभाषा का कुछ भी ज्ञान हुए, पढ़ाई का [illegible] प्रारम्भ हो जाता है। रटन्त विद्या को अत्यन्त उत्साह दिया जाता है। व्याकरण तथा न्याय के सूत्र पर सूत्र बिना यथार्थ तात्पर्य समझे ही रटे जाते हैं, विद्यार्थियों को जो कुछ आता है उसे समझने योग्य वर्णन करनेकी शक्ति उनमें तनिक भी नहीं होती। इस शिक्षा का आवश्यक [illegible]

यह होता है कि उन विद्यार्थियों को जो कि प्रति वर्ष उत्तीर्ण होते हैं और जो एक अथवा दो विषयों में विशेष विद्वान् कहलाते हैं, संस्कृत का वाक्य शुद्धता पूर्वक लिखने की योग्यता नहीं होती और न उनको हिन्दी ही का कुछ बोध होता है। यह अवस्था शोचनीय है। हम लोग यह सम्मति देंगे कि ये संस्कृत के कालेज विश्वविद्यालय के आधीन किए जायं और शिक्षा का विभाग केवल तभी होने दिया जाय जब कि विद्यार्थी लोगों को केवल हिन्दी ही का नहीं, वरन् संस्कृत का भी अच्छा बोध हो जाय।

विश्वविद्यालय भारतवर्षीय देशभाषाओं की पढ़ाई पर कुछ भी ध्यान नहीं देते और ऐसे बहुत से बी० ए० नहीं मिलेंगे जो किसी वैज्ञानिक वा न्याय के विषय पर अपना विचार ठीक ठीक लालित्य तथा सुन्दरता के साथ प्रकट कर सकें। इस बुराई को दूर करने के लिये हम लोग यह प्रस्ताव करते हैं कि इण्टरमीडिएट की परीक्षा में अङ्गरेज़ी के चार परचे—(१) पद्य, (२) गद्य, (३) देशभाषा से अङ्गरेज़ी में अनुवाद और (४) देशभाषा में लेख—इस परीक्षा के लिये देशभाषा की कोई पाठ्यपुस्तक नियत करने की आवश्यकता नहीं है।

इसी प्रकार से, बी० ए० की परीक्षा में भी अङ्गरेज़ी के चार परचे होने चाहिएं-(१) पद्य, (२) गद्य, (३) अङ्गरेज़ी में लेख और (४) देशभाषा में लेख अथवा उसके इतिहास के किसी अंश का अध्ययन।

स्कूल के वर्गों में देशभाषाओं की पाठ्य पुस्तकें नियत की जानी चाहियें न कि विषय चुने जाने चाहियें, क्योंकि इन वर्गों के विद्यार्थियों को इस भाषा में पूरी पूरी योग्यता प्राप्त करने की आवश्यकता है।

इस सम्बन्ध में हमलोग यह सम्मति भी देंगे कि प्रत्येक विश्वविद्यालय को उन सब देशभाषाओं को स्वीकार करना चाहिए जिनमें छपे हुए ग्रन्थ हैं। इलाहाबाद का विश्वविद्यालय इस बात में बहुत ही पीछे है।

गणित के विषय में, हम लोगों को प्रति वर्ष उसके कठिन किए जाने को, और जो लोग साहित्य का अध्ययन कम लेते हैं उनके लिये भी आवश्यक किए जाने की कोई आवश्यकता नहीं देख पड़ती; क्योंकि अधिकांश विद्यार्थियों को बाइनोमिएल थिओरम, संवगमान, अनुवृत्त, और ज्या का ज्ञान उनके जीवन में किसी कार्य का नहीं होता। यह विद्यार्थियों की धारणा पर एक व्यर्थ का बोझ है और इससे कोई व्यवहारिक लाभ नहीं होता। अतएव हमलोगों की प्रार्थना है कि यह एफ० ए० के लिये रुच्यधीन विषय हो। इसके स्थान पर इकोनोमिक्स, लोजिक और एथिक्स का, जो कि मनुष्यों को उनके जीवन के युद्ध के लिये तैयार करते हैं, पढ़ाना अधिक लाभदायक होगा।

धर्मशिक्षा

आज कल जैसी अवस्था है उसमें हमलोग धर्मशिक्षा का देना सम्भव नहीं देखते। इसमें बहुत ही अधिक कठिनाइयां पड़ेंगी और इसका कोई अच्छा फल नहीं निकलेगा। धर्मशिक्षा केवल भिन्न भिन्न समाजों के हाथ में छोड़ दी जाय, गवर्मेण्ट को इस विषय में हस्तक्षेप न करने में सावधान होना चाहिये।

परीक्षा

भारतवर्ष की शिक्षा की प्रथा में सबसे बड़ी बुराई यह है कि उसमें परीक्षाएं बहुत ही अधिक होती हैं। सब डिपार्टमेण्टेल परीक्षाओं को उठा कर उनके स्थान पर केवल स्कूल की परीक्षाएं कर दी जायं तो बहुत अच्छा हो। इससे अवश्य ही हेड मास्टरों के ऊपर अधिक भार हो जायगा और जिसका होना उचित है। हमलोगों की सम्मति है कि एन्ट्रेन्स और बी० ए० की परीक्षाओं के बीच एक से अधिक परीक्षा न हो। बम्बई विश्वविद्यालय में इनके बीच में दो परीक्षाएं होती हैं। अतएव

इनमें से एक परीक्षा लाभ के साथ उठा दी जा सकती है। ऐसा करने से वह विश्वविद्यालय भी अन्य विश्वविद्यालयों के बराबर हो जायगा। इसी प्रकार की भिन्नता कानून की परीक्षाओं में भी है। किसी विश्वविद्यालय में एल० एल० बी० की परीक्षा प्रथम है; किसी में एल० एल० बी० के उपरान्त भी अधिक पढ़ाई है और किसीमें अन्तिम परीक्षा एल० एल० बी० ही की है। ये सब भेद उड़ा कर इसके स्थान पर केवल दो परीक्षाएं की जा सकती हैं, अर्थात् एल० एल० बी० और एल० एल० डी०।

सारांश यह कि हमलोग भरतवर्ष भर के विश्वविद्यालयों की परीक्षाओं में समानता के होने और एक ही परीक्षाओं के लिये एक पदवियों के दिये जाने का पक्ष समर्थन करते हैं।

परीक्षकगण

विश्वविद्यालय प्रान्त भर में उच्चतम शिक्षा-सम्बन्धी समाज है। अतएव उसके कार्य सन्देह से बाहर होने चाहिएं। परीक्षकों के नाम न प्रकाशित होने के सम्बन्ध में हम लोग यह दृढ़ अनुमति देंगे कि उनके नाम प्रकाशित करने की प्राचीन रीति फिरसे प्रचलित की जाय। उनके नाम अप्रकाशित रखने से कोई लाभ नहीं होता और इसके अतिरिक्त वे वास्तव में कभी गोप्य नहीं रहते, वरन् बहुधा विद्यार्थियों को विदित हो जाते हैं।

दूसरी बात यह है कि संयुक्त प्रदेश में कुछ विषयों का तो मानो कई विशेष प्रोफ़ेसरों को एकाधिकार हो गया है। उदाहरणस्वरूप हम लोग अङ्गरेज़ी के अनुवाद (देशभाषा से अङ्गरेज़ी में) के परचे का उल्लेख करेंगे और मज़ा यह है कि भाषा के वाक्य, जो अनुवाद के लिये दिए जाते हैं, वे सदैव व्याकरण तथा मोहावरे में अशुद्ध और भद्दे होते हैं। हम लेगों को इसका कोई कारण नहीं देख पड़ता कि केवल वे ही लोग इसके परीक्षक होने के योग्य समझे जायं जिनकी मातृभाषा देशभाषा नहीं है। हमलोगों की सम्मति में जितनी देशभाषाएं हैं उतने ही भिन्न भिन्न पुरुष प्रश्न चुनने के लिये नियत किए जायं। यह बात केवल अनुवाद ही के नहीं, वरन् बहुत से दूसरे विषयों में भी है। हमलोग कमिशन को, शिक्षाविभाग से दस वर्षों में मिडिल की परीक्षा के परीक्षकों के नाम तथा उनकी आधुनिक स्थिति के पूछने को प्रार्थना करते हैं। इसकी जांच करने से यह बात प्रगट होगी कि बहुत सी अवस्थाओं में बहुत सामान्य योग्यता के पुरुष परीक्षक नियत किए गए हैं। इससे कमिशन यह भली भांति जान सकेगा कि शिक्षाविभाग में कैसा प्रबन्ध किया जाता है। हम लोगों की यह सम्मति है कि परीक्षकगण अधिकता से दूसरे प्रान्तों से लिये जायं जिसमें ये सब दोष तथा बहुत सी ईर्षाद्वेष दूर हो जायं।

हम लोगों की यह भी सम्मति है कि कालेज या स्कूल के प्रधान (मुखिया) की प्रार्थना पर उत्तरों की कापियां फिर से देखी जाया करें। इसके लिये कुछ फ़ीस नियत कर दी जाय।

विद्यार्थियों के, और विशेषतः अनुत्तीर्ण विद्यार्थियों के अंक सदैव उनके कालेज वा स्कूल के मुखिया के पास भेजे जायं जिसमें अध्यापक लोग अपने अपने विद्यार्थियों के दोष जान सकें तथा उन्हें दूर करने का यत्न करें।

डिग्री की परीक्षाओं के लिये केवल एकही केन्द्र न होना चाहिये। इलाहाबाद विश्वविद्यालय के सम्बन्ध में हम लोग चाहते हैं कि डिग्री की परीक्षाओं के लिये इलाहाबाद, लखनऊ और आगरा, केन्द्र स्थापित किए जायं। दूसरे विश्वविद्यालयों में भी इसी प्रकार किया जाय।

हम लोग यह भी सम्मति देंगे कि सब विषयों में कुछ वैकल्पिक प्रश्न भी रहने चाहियें कि जिससे कि विद्यार्थियों की योग्यता का पूरा परिचय मिल सके। इससे रटन्त बहुत रुक जायगी। दूसरे भिन्न भिन्न परीक्षाओं के भ्रम को रोकने के लिये

प्रश्न के पर्चे पर प्रत्येक प्रश्न के सामने उसके अंक के भी छपने की पुरानी रीति फिर से प्रचलित की जाय।

परीक्षकों के नियत किए जाने के विषय में हम लोगों की सम्मति है कि यह कार्य बोर्ड आफ़ ट्रूस्टीज़ द्वारा कराया जाय और कालेजों के प्रिन्सिपेलों से यह प्रार्थना की जाय कि वे परीक्षक नियत करने योग्य अध्यापकों और प्रोफ़ेसरों के नाम लिखें। परीक्षक होना केवल एक वा दो कालेजों का एकाधिकार न बनाया जाय। इलाहाबाद विश्वविद्यालय में रेजिस्ट्रार एक तिथि नियत करता है जिसके भीतर उसके पास परीक्षक होने के आवेदनपत्र पहुंच जाने चाहिएं। परन्तु यह तिथि कभी केलेण्डर में नहीं छापी जाती और इसका आवश्यक फल यह होता है कि बहुत से आवेदनपत्र उसके पास इस तिथि के उपरान्त पहुंचते हैं। इसका संशोधन तुरन्त होना चाहिए।

यहां पर हम लोग यह भी प्रार्थना करेंगे कि परीक्षाओं की तिथियों पर विद्यार्थियों के हित में फिर से पूर्णतया विचार किया जाय। भिन्न भिन्न विश्वविद्यालय बहुत दिनों से इन तिथियों की परीक्षा कर रहे हैं, अतएव अब यह समय आगया कि उन्हें इस विषय में एक संतोषदायक विचार सदैव के लिये स्थिर कर लेना चाहिए। जाड़े के महीनों को परीक्षा लेकर वा छुट्टी देकर न बिताना चाहिए।

रजिस्ट्रार और उसका दफ़्तर

हम लोगों की सम्मति में, प्रत्येक विश्वविद्यालय में ऐसा रजिस्ट्रार होना चाहिए जो अपना पूरा समय उसी काम में व्यतीत करे, जिसमें वह अपने आफ़िस का कार्य शीघ्र तथा भली भांति सम्पन्न कर सके। रजिस्ट्रार का वेतन बहुत ही अधिक है। रजिस्ट्रार के पद केलिये, जिसका अधिक कार्य क्लर्क का है, किसी यूरोपीय विश्वविद्यालय के ग्रेजुएट की आवश्यकता नहीं है। बहुतेरे ऐसे हिन्दुस्तानी लोग सुगमता से मिल सकते हैं जो कि इस पद के लिये पूर्णतया योग्य हों। हम लोग समझते हैं कि इसके लिये ३००) रुपया से ४००) रु० तक का वेतन बहुत है। हम लोगों की सम्मति में कुछ विश्वविद्यालयों ने रजिस्ट्रार नियुक्त करने में सदैव बुद्धिमानी नहीं की है। यहां यह बात कहनी छूट जाती है कि रजिस्ट्रार के कार्य सम्पादन करने के लिये फुर्तीले मनुष्य की आवश्यकता है और इस पद पर ऐसे लोगों का नियत किया जाना ठीक नहीं है जो अपना पूरा काल सरकारी नौकरी में व्यतीत कर चुके हों। ५५ वर्ष की अवस्था में पेन्शन लेने का नियम लाभ के साथ प्रचलित कर दिया जा सकता है।

सम्मिलित कालेज

सब सरकारी तथा सम्मिलित कालेजों के अध्यापन पर केवल प्रिन्सिपेल ही नहीं वरन् शिक्षाविभाग के डाइरेक्टर तथा उच्चवेतन के इन्स्पेक्टर लोग भी ध्यान रखते हैं। इसके अतिरिक्त ऊपर किए हुए प्रस्ताव के अनुसार, ये सब फेलो होंगे और इनमें से बहुत से सिण्डिकेट के मेम्बर भी होंगे। अतएव विश्वविद्यालय को अध्ययन तथा शिक्षा पर अमोघ अधिकार हो जायगा। और साधारण परीक्षाओं के परिणामों से शिक्षा की यथार्थ और पूर्ण उपयोगिता भी प्रगट हो जायगी। हम लोगों की सम्मति में इलाहाबाद विश्वविद्यालय में कालेजों के सम्मिलित करने के सम्बन्ध के नियम निष्प्रयोजन ही विशेष कठोर हैं। अतएव यह अत्यन्त वाञ्छनीय है कि ये नियम कुछ बदल दिए जायं।

इन्सपेक्टर

यद्यपि इस प्रश्न को कमिशन ने नहीं उठाया है, परन्तु हम लोग इसपर अपनी सम्मति देना आवश्यक समझते हैं। क्योंकि हम लोगों का विचार है कि इसका प्रत्यक्ष सम्बन्ध केवल कालेज हो की शिक्षा से नहीं, वरन् स्कूल की शिक्षा से भी है।

किसी प्रोफ़ेसर को कदापि इन्स्पेक्टर नहीं नियत करना चाहिए, क्योंकि (१) वह किसी एक विषय का विशेष विद्वान होता है और न कि अनेक विषयों का जानने वाला; (२) उसको कार्य निर्वाहकता का कोई अनुभव नहीं होता; (३) उसको भाषा का ज्ञान कुछ भी नहीं रहता। यह आशा रखना कि किसी विषय का विशेष विद्वान अपना समय किसी भारतवर्षीय भाषा के अल्प ज्ञान प्राप्त करने में व्यतीत करेगा, उचित नहीं है। परन्तु हेडमास्टर में ये सब गुण पाए जायंगे। (१) भिन्न भिन्न विषयों के बीसों अध्यापकों के कार्य को प्रतिदिन देख भाल करने से वह अवश्य प्राज्ञ हो जाता है। (२) उसे कार्यनिर्वाहकता का बहुत अनुभव रहता है। (३) उसे देश भाषा का ज्ञान किसी प्रोफ़ेसर की अपेक्षा अवश्य ही अधिक होता है।

फ़ीस

हम लोग कमिशन से सविनय प्रार्थना करते हैं कि वह भिन्न गवर्न्मेण्टों से फ़ीस अधिक करने की आज्ञा पर फिर से विचार करवावे। हिन्दुस्तानी सर्वसाधारण के हित में यह बात अत्यन्त ही हानिकारक है। दुर्भाग्यवश भारतवर्ष में बहुत से ऐसे दरिद्र लोग हैं जिन्हें उच्चशिक्षा पाने की अभिलाषा तथा योग्यता भी है। परन्तु वे अपने यत्नों में उस ऊंची फ़ीस से रोके जाते हैं जिसे कि वे नहीं दे सकते। हिन्दुओं तथा मुसलमानों के राज्य से सदैव केवल धर्मार्थ शिक्षा ही देने की नहीं, वरन् धर्मार्थ भोजन और स्थान देने की भी प्रथा थी। अतएव विद्यार्थियों को अपने अध्ययन के लिये द्रव्य देने का यह विचार इस देश की प्राचीन चाल के पूर्ण तया विरुद्ध है। इससे यह जान पड़ेगा कि सस्ती शिक्षा न देने की जो चिल्लाहट मच रही है वह स्वार्थी लोगों का काम है। उन कालेजों के विषय में जहां अब भी फ़ीस नहीं ली जाती, वा केवल नाम मात्र को ली जाती है, यह विचार करना भूल है कि विद्यार्थियों को शिक्षा के लिये कुछ नहीं देना पड़ता; अतएव वहां की शिक्षा सस्ती है। क्या वस्तुओं का अर्द्ध मूल्य सदैव उसके यथार्थ मूल्य ही के बराबर होता है? जब गवर्न्मेंण्ट फ़ीस थोड़ी लेती थी, उस समय क्या शिक्षा किसी प्रकार से "सस्ती" थी? ये ही प्रोफ़ेसर लोग इसी वेतन पर उस समय भी इतना ही और ऐसी ही भली भांति पढ़ाते थे जब कि विद्यार्थियों को कम देना पड़ता था। यह नहीं कहा जा सकता कि जो शिक्षा अब दी जाती है वह फ़ीस बढ़ जाने के कारण अधिक उत्तम हो गई। हां! इसने बुद्धि और विद्यो-त्साह के आगे धन का अधिक मान किया है। यह दुःख की बात है कि ऐसे विचार प्रचलित कि[ए] जायं। यह बात स्पष्ट है कि यह शिक्षा, उन मित्रों तथा सहानुभूति रखनेवालों के लिये जो [अ]पने चन्दों से ऐसी शालाओं को चलाते हैं तथा उन अध्यापकवर्गों के लिये, जो अपनी इच्छा से काम करके केवल अपने जीवननिर्वाह के योग्य वेतन लेते हैं, सस्ती नहीं है।

सभा इस बात पर ज़ोर देर देकर प्रार्थना करती है कि विद्यालयों की प्रवन्धकारिणी सभाओं को उनके प्रवन्ध में स्वतन्त्रता दी जाय, विशेषत उन विद्यालयों में जो गवर्न्मेंण्ट से कोई सहायता नहीं पाते। ऐसी सभाएं परीक्षाओं, अध्ययनक्रम तथा पाठ्य पुस्तकें आदि चुनने में सर्कारी नियमों से कुछ भी बाध्य न रक्खी जायं। इससे कु[छ] उद्योगी शिक्षोन्नति करनेवालों को अपने विचारों को कार्य में लाने का और उसकी उपयोगिता अथवा अनुपयुक्तता का निर्णय करने का अवसर मिलेगा। अन्त में सभा गवर्न्मेंण्ट से यह प्रार्थना करती है कि वह हिन्दुस्तानियों के अपने देश के युवकों के शिक्षा देने के बढ़ते हुए उत्साह को ऐसे दारु[ण] और कठोर प्रबन्ध प्रचलित करके नहीं रोके जिसमें इस बड़े देश की बहुत सी भिन्न भिन्न आव-श्यकताओं पर विचार नहीं किया गया। भारतवर्ष की प्राचीनरीति धन और विद्या को संयुक्त नहीं करती वरन् असम्बद्ध करते हैं। भारतवर्ष में विद्वान लो[ग]

प्रायः दरिद्र होते आए हैं। जो लड़के बहुत अधिक सम्भव है कि विद्या के दृढ़बर्द्धक, राजभक्त, शान्त प्रजा वा गवर्न्मेंण्ट के उपयुक्त नौकर हों, वे प्रायः ऐसे प्राचीन परन्तु दरिद्र वंश से उत्पन्न हुए होंगे जिसमें उच्च ज्ञान परम्परागत जान पड़ता है; परन्तु दरिद्रता उसका साधारण लक्षण है। ये वंश युरोपीय शिक्षा से दिन दिन अधिक वञ्चित रक्खे, जाते हैं।

अतएव सभा की यह प्रार्थना है कि यद्यपि गवर्न्मेंण्ट सब कालेजों के शिक्षकवर्गों की योग्यता पर ज़ोर दे, परन्तु वह उनके कालेजों को जो गवर्न्मेंण्ट से सहायता नहीं लेते, अपने कार्य के प्रबन्ध में स्वतन्त्रता दे और कम फीस के अभाव को दानी लोगों की उदारता से पूरा करने दे। सभा का विश्वास है कि बड़े नियमों से शिक्षा में हानि पहुंचेगी। अतएव वह प्रार्थना करती है कि गवर्न्मेंण्ट समस्त शिक्षा तथा विद्यासम्बन्धी उद्योगों पर कृपादृष्टि बनाए रहे और न कि उनका विरोध करे। इससे भारतवासी उस नीति के लिये कृतज्ञ होकर जो उनकी आवश्यकताओं और प्राचीन प्रथाओं को मान कर करने में उद्यत करे, उस साम्राज्य में और भी घनिष्ठता से मिल जायंगे जिसके अन्तर्गत शक्तिमान ईश्वर ने उन्हें कर दिया है

प्रकृति

(१)

छटा औरही भांति की देखते हैं
जहां दृष्टि हैं डालते फेर कर मुंह।
कहीं छन्द सुनते कहीँ रेखते हैं
कहीँ कोकिलों की मनोहर "कुहू कुह" ॥

(२)

कहीँ आम बौरे, कहीँ डालियों के
तले फूल आकर गिरे बीच थाले।
रखे हैं मनो टोकरे मालियों के
इकट्ठे जहां भौंर से भीर वाले ॥

(३)

कहीँ व्योम में साँझ की लालिमा है
कभी आकाश को स्वच्छ पाते हैँ हम्।
कभी रात्रि में मेघ की कालिमा हैं
कभी चन्द्रिका देख पछताते हैँ हम ॥

(४)

कभी इन्द्र का चाप है सप्तरंगी
जहाँ ज्योति के संग बूंदी घनी है।
कुसुम्भी, हरा, लाल, नीला, नरंगी
कहीँ पीत शोभा कहीँ बैंगनी है ॥

(५)

कहीँ ढ्ढेल से जीव हैं दृष्टि आते
कहीँ सूक्ष्म कीटादि की पँक्तियाँ हैँ।
उन्हेँ देख कर चित्त हैँ चित्त खाते
इन्हेँ देखने की नहीँ शक्तियाँ हैं ॥

(६)

कहीँ पर्वतों से नदी बह रही हैं
कहीँ वाटिका में बनाँ स्वच्छ नहरेँ।
कहीँ प्राकृतिक कीर्ति को कह रही हैं
छटाधीश वारीश की बंक लहरेँ ॥

(७)

कहीँ पेड़ की पत्तियाँ हिल रही हैं
कहीँ भूमि पर घास ही छा रही है।
सुगंधैँ कहीँ वायु में मिल रही हैं
कहीँ सारिका प्रेम से गा रही है ॥

(८)

कहीँ परवतों की छटा है निराली
जहाँ वृक्ष के वृंद छाए घने हैँ।
लगीँ एक से एक प्रत्येक डाली;
मनो पान्थ के हेतु तम्बू तने हैँ ॥

(९)

कहीँ दौड़ते झाड़ियों बीच हर्नैं
लिये मोद से शावकों को भगै हैं।
कहीँ भूधरों से झरैँ रम्य झर्नैं
अहा ! दृश्य कैसे अनूठे लगैं हैँ ॥

(१०)
कहाँ खेत के खेत लहरा रहे हैँ
प्रसन्नात्मा हैँ कृषीकार सारे।
उन्हैँ देख कर मूँछ फहरा रहे हैँ
सदा घूमते कांध पर लट्ठ धारे॥

(११)
अनोखी कला सच्चिदान्द की है
उसीकी सभी बस्तु में एक सत्ता।
अहो! कौमुदी यह उसी चंद की है
किया जिसने संयुक्त है पेड़ पत्ता॥

(१२)
उसी की प्रभा से प्रकाशित हुए हैं
लतायुक्त संसार के वृक्ष सारे।
उठे श्रृंग आकाश माना छुए हैँ
जहां हैँ चमकते अनेकों सितारे॥

(१३)
जहाँ ध्यान देते हैँ चारो दिशा में
पड़े दीख संसार नियमानुसारे।
सदा चंद आनन्ददाता निशा में
सदा सूर्य अपना उँजेला पसारे॥

(१४)
समै पर सदा फूल भी फूलते हैँ
उसी भाँति वृक्षों मेँ फल भी लगे हैँ।
नहीँ कौन सौंदर्य पर भूलते हैं
नहीँ कौन के चित्त उन पर डगे हैँ॥

(१५)
समै से सदा मेघ भी वर्सते हैँ
शिखंडी सभी नृत्य को खोलते हैँ।
घटा देख कर बूँद को तर्सते हैं
पपीहा तभी कंठ से बोलते हैँ॥

(१६)
अचम्भा सभी वस्तु संसार की है
वृथा दर्प विज्ञान भी ठानता है।
व वागीश ने सृष्टि विस्तार की है
वही एक सब मर्म को जानता है॥

वागीश्वर मिश्र

दुष्ट तजै नहिं दुष्टपने को

भानु तजै अपनी गति को बरु
पावकतेज प्रचंड घने को
पंकज हू तजि पंक निवास
बिकास करै गिरि श्रृंगन नेको।
गोविंदचंद्र चलै अचला महि
जाइ तलै कवि वृंद भनैं को।
पै निशि सोवत हू सपने मन
दुष्ट तजै नहि दुष्टपने को॥ १॥

शूकर नाहि तजै मल को भखु
वायस आमिख भोजन नेको।
कूकर अस्थि, न चर्म सियार,
न पन्नग हू विषदंत सने को।
शोणित पान तजै नहिं जोंक,
कहै कवि गोविंदचंद्र गिनै को।
तैसेहि क्रूर कुचाली महा खल
दुष्ट तजैं नहिं दुष्ट पने को॥ २॥

विष अमृत कायर शूर बनें
वायस शुभदायक युक्ति बने को।
निज चालिहु छांड़ि भुजंग चलै,
प्रिय अंग तजै सु मुखा अपने को।
पावक प्रकृति विसारि रहै,
धन आइ मिलै कबहू सपने को।
सतसंग प्रभाव बड़ो अद्भुत
किमि दुष्ट तजै नहिं दुर्ष्टपने को॥ ३॥

रावण सीय लई हरि कें पुनि
मान कियैा शुभ चित अपने को।
वालि भुआल अनीति करी
परि प्रीति करी पाइ दर्शन नीको।
गैातम नारी बिचारी तरी
करि पाप परी लै श्राप मुनी को।
शरणागति पाइ तिरे सिगरे,
किमि दुष्ट तजै नहिं दुष्ट पने को॥

केतक कोऊ करै उपदेश न
　लेश हिये मत आवत नेको
जैसे हलाहल के घट में
　गत बुंद सुधारस काहि गिने को ॥
गोविन्द चंद्र किये विनती नहि
　मानत नेक बिचार हनै को।
धारें फिरें गति पन्नग सी जग
　दुष्ट तजैं नहिं दुष्ट पने को ॥ ५ ॥

ज्ञान तजै नहिं ज्ञानी महातम
　ध्यान तजै नहिं ध्यानी खने को
लंपट वाम न दामहिं सूम
　न रामहिं गोविंदचन्द्र क्षणे को।
शूर तजै नहिं शूरता धर्म
　न कायर प्राण प्रमाण घने को।
सज्जन सज्जनता न तजै अरु
　दुष्ट तजै नहिं दुष्टपने को ॥ ६ ॥

काली वनमाली से जंग करी
　प्रभु अंग परसि पायौ पद नीको
ठग चोर रहे चहुं ओर कहे
　कवि वाल लहयौ पद सुर रमनें को
प्रभु दीनदयाल सदा ही कृपालु
　ऊंकार आधार यही एक मन को
तजि अवगुण दास किये प्रभु ने किमि
　दुष्ट तजै नहिं दुष्ट पने को ॥ ७ ॥

ज्ञान को सार सम्हार कहै शुभ
　नीत पुनीति कहै सब नों को
भवकूप परे मति हीन निरे बहु
　पाप करे अरु दुख सजनों को।
चारौ यतन करि सुद्ध करै तो
　प्रहार करै मल दुष्ट जने को
दंड प्रचंड बिना कबहूं पर
　दुष्ट तजै नहिं दुष्टपने को ॥ ८ ॥

ॐकार सिंह।

राजर्षि भीष्म पितामह जी

Lives of Great men all remind us, We can make our lives sublime.

प्रिय पाठकगण! सरस्वती की प्रत्येक संख्या में आप किसी न किसी योग्य पुरुष के जीवनचरित्र को अवश्य पाते हैं और जबसे इस पत्रिका ने जन्म लिया है, तबसे लेकर इस संख्या तक बहुत से जीवनचरित्र आप लोगों के दृष्टिगोचर हुए हैं और आपने अवश्य उनसे लाभ उठाया होगा। परन्तु जिस महापुरुष की जीवनी को लेकर आज मैं आपके सम्मुख उपस्थित हुआ हूं, वह एक अद्भुत जीवनी है। योंतो प्रत्येक देश में समयानुसार योग्य पुरुष उत्पन्न होते रहे हैं और उन पुरुषों के चरित्र को पढ़ उस देश की संतान ने अपने आदर्श सम्मुख रख उन्नति के शिखर पर चढ़ने का यत्न किया है; परन्तु आज जिस प्रभावशाली पुरुष का वृत्तांत मैं आपको सुनाऊंगा, उसकी गणना उन पुरुषों में है जो प्रत्येक मनुष्य के, चाहे वह किसी देश में उत्पन्न हुआ हो और किसी जाति से सम्बन्ध रखता हो, मान्य हैं। ऐसे पुरुष कौन हो सकते हैं? जिनके जीवन से संसारमात्र का उपकार हो, जिनके हृदय शुद्ध और पक्षपात से रहित हों, जिनको विशेष जाति से प्रेम और विशेष से द्वेष न हो, जो सदा धर्म को अपना मित्र मानें। पाठकगण! आपको आश्चर्य होगा कि ऐसा पुरुष कौन हो सकता है? जाति का और देश का लगाव अवश्य पुरुषों की जीवनिओं में पाया जाता है, परन्तु ऐसा विचार मत रखिए। इस आर्य्यावर्त की पवित्रभूमि में ऐसे ऐसे रत्न उत्पन्न हुए हैं जिन्होंने न केवल इसी देश के गौरव को बढ़ाया है, वरन् मनुष्यजाति के लिये उन्नति का द्वार खोल

गौरव के कारण हुए हैं। सच्चे Great men और आदर्श के योग्य पुरुष यदि इतिहास में मिल सकते हैं तो आर्य्यावर्त के ही बचे हुए इतिहास में मिलेंगे। कारण यह कि निष्काम कर्म करनेवाले और पक्षपात रहित धर्मात्माजन ही आदर्श के योग्य हो सकते हैं, जिन्होंने प्रकृति के नियम के अनुसार अपने धर्म (Duty) को ही मुख्य मान सदा आत्मा के अनुकूल कर्म किया है। वे पुरुष ही Great men कहला सकते हैं। संसार के प्रवाह के साथ बहनेवाले स्वार्थसिद्धि के लिये आत्मा का हनन करनेवाले और संसार के विरोध से डरनेवाले पुरुषों ने यदि किसी देश वा जाति को किसी अंश में लाभ पहुंचाया भी, तौभी वे महान पुरुष नहीं कहला सकते और न वे अनुकरण के योग्य ही हुए हैं। इसलिये आज एक राजर्षि का चरित्र मैं आपको बताऊंगा जो मनुष्य मात्र के अनुकरण के योग्य और प्रत्येक के जीवन को पलटदेने वाला है। वह चरित्र महाभारत के नायक पूज्यवर भीष्म पितामह जी का है।

भीष्म जी राजा शान्तनु के पुत्र थे, जैसा कि निम्नलिखित वंशावली से प्रतीत होता है—
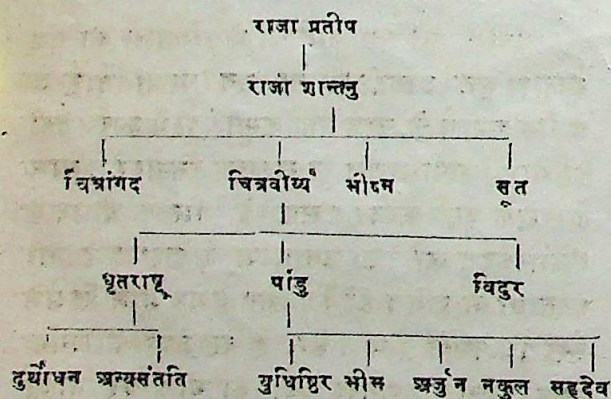
भीष्म जी का जन्मनाम देव था, परन्तु वह राजा शान्तनु की पहिली स्त्री गंगा के गर्भ से उत्पन्न हुए थे; इसलिये महाभारत के लेखक ने उनको गांगेय नाम से भी पुकारा है। माता पिता ने इनको पराविद्या (ब्रह्मविद्या) अध्ययन करने के लिये ब्रह्मर्षि वशिष्ठ जी के पास भेज दिया, जहां इन्होंने थोड़े ही काल में वेदों को अंगों सहित पढ़ लिया और फिर क्षात्र धर्म के ज्ञाता बृहस्पति जी से शस्त्रविद्या और राजनीति पढ़ी। इस प्रकार वे परा और अपरा दोनों विद्याओं में निपुण हो गए। महाराजा शान्तनु की पहिली स्त्री गंगा मर चुकी थी। एक दिन महाराज जंगल में आखेट के लिये गए। वहां उन्होंने एक युवती को देखा। राजा उसके रूप को देख उसपर मोहित हो गए और उनकी इच्छा हुई कि उसके साथ विवाह कर लें। निदान उन्होंने अपने आदमियों को उसका वृत्तान्त जानने के लिये भेजा। जान पड़ा कि वह दास (मछुए) की लड़की है और नाम उसका सत्यवती है। राजा उसके पिता के पास जा कर अपनी इच्छा प्र की। दास ने कहा कि मैं अपनी कन्या राजा देसकता हूं, यदि राजा यह प्रण करे कि रा का अधिकार इस लड़की के संतान को होगा। राजा ने यह अस्वीकार किया, क्योंकि उसका यो पुत्र देव राज्य का अधिकारी था। राजा शान्त वहां से लौट आया, परन्तु सदा विरह की अ से जलने लगा। शरीर निर्बल हो गया। जब दे को इसका कारण ज्ञात हुआ तो उसकी आ यह सहन न कर सकी कि उसके कारण उस पिता को दुख हो। उसने मन में विचार किया यद्यपि मुझे बड़ी भारी कठिनाइयों का साम करना पड़ेगा, परन्तु क्या मैं अपने पिता को दु देख सकता हूं! मुझे राज्य न मिले, धन न मि परन्तु मेरा पिता आनन्द से रहे क्योंकि यो पुत्र का धर्म पिता की श्रद्धा से सेवा करना है माता पिता के ऋण से पुत्र उऋण नहीं सकता। अस्तु, वह आप, सत्यवती के पिता पास गया और उससे प्रार्थना की कि वह अप कन्या का विवाह राजा से करदे; परन्तु उसने उत्तर दिया कि मैं अपनी कन्या राजा को त अर्पण कर सकता हूं जब राजा इसकी सं को राज्य देना स्वीकार करे। अब देव के अपने पिता को सुखी करने का इसे छो

और कोई उपाय न था कि आप अपने अधिकार को छोड़ दे। उस समय देव बोला—

एवमेतत्करिष्यामि यथा त्वमनुभाषसे
योऽस्यां जनिष्यते पुत्रः स नो राजा भविष्यति।
आदि—४०५१

अर्थात्, जैसा तू कहता है वैसाही करूंगा, इस कन्या की सन्तान ही को राज्य का अधिकार होगा। देव ने यह पण किया कि वह अपने पिता के सिंहासन पर नहीं बैठेगा और सत्यवती के गर्भ से जो पुत्र होगा वही सिंहासनारूढ़ होगा। परन्तु दास ने इसपर भी संतोष नहीं किया; क्योंकि ईश्वर को अभिप्रेत था कि देव कठिन व्रत धारण करके 'भीष्म' नाम से संसार में प्रसिद्ध हो और एक उदाहरण बन के दिखलावे कि किस प्रकार कोई पुरुष बालब्रह्मचारी रह सकता है, और इस पवित्र व्रत ब्रह्मचर्य्य के क्या क्या गुण हैं। दास ने कहा मैं केवल यही नहीं चाहता कि तुम ही सिंहासन पर न बैठो। सम्भव है कि तुम्हारी सन्तान तुम्हारे पीछे इसके पुत्रों को मार राज्य का अधिकार छीन ले। इसलिये मैं यह चाहता हूं कि तुम्हारी सन्तान भी सिंहासन पर न बैठे और कोई झगड़ा हो। देव अपने विषय में तो कह सकता था, संतान के झगड़े को मूल से कैसे काट सकता था। विचार में पड़ गया कि क्या किया जावे। झट ध्यान आया कि विवाह ही नहीं करेंगे, न सन्तान पैदा हो, न झगड़ा मचे। दास से कहा—

अद्य प्रभृति मे दास ब्रह्मचर्य्यं भविष्यति
अपुत्रस्यापि मे लोका भविष्यन्त्यक्षया दिवि।
महा० आदि०—४०६०

हे दास, आज से व्रतधारण करता हूं कि मैं सारी उमर ब्रह्मचारी रहूंगा और पुत्र से रहित होने पर भी मुझे अक्षय द्युलोक की प्राप्ति होगी। पाठकगण! आज अपनी अधोगति पर दृष्टि कीजिए और प्राचीनकाल के पुरुषों की सत्यता विचारिए। पिता के तनिक से सुख के लिये देव भीष्म व्रत को धारण करता है। आज कल के मनुष्यों की तरह नहीं कि आज व्रत किया, दूसरे दिन तनिक से विषय में फंस व्रत को भंग कर दिया। नहीं, नहीं, वीर ने जो व्रत किया उसको जीवन भर निवाहा। क्या इतिहास में ऐसा दूसरा उदाहरण मिल सकता है? इस तीव्र व्रत से वह भीष्म के नाम से प्रसिद्ध हो गए।

यद्यपि आत्मसमर्पण के बहुत से उदाहरण इतिहासों में मिलते हैं।—रामचन्द्र जी ने १४ वर्ष पिता की आज्ञा से दण्डक वन में काटे; परन्तु वह पिता की आज्ञा और अपना कर्तव्य था; भीष्म का कर्म्म स्वतन्त्रतापूर्वक था, पिता की आज्ञा नहीं थी; राम ने १४ साल स्त्री सम्भोग नहीं किया तो भीष्म सारी उमर पिता के सुख के लिये ब्रह्मचारी रहा; राम का आत्मत्याग थोड़े वर्षों के दुःख के लिये था, परन्तु भीष्म का आत्मत्याग आयु पर्यन्त के आनन्द और सुख को तिलाञ्जलि देनेवाला था। बुद्धदेव का आत्मत्याग अपने सुख (मुक्ति) के हेतु था, उसमें स्वार्थ टपकता है, परन्तु भीष्म ने दूसरे के सुख के लिये दुःख सहन किया।

संसार की सब जातियों के इतिहास को एक छोर से दूसरी छोर तक पढ़ जाओ, ऐसा उदाहरण न मिलेगा, ऐसे त्याग का नमूना दिखलाई नहीं पड़ेगा। अपने सुख स्वच्छन्द, तिसपर भारत के राज्य को केवल पिता के आनन्द के लिये न्योछावर करने का उदाहरण भूगोल के किसी राज घराने में न पाओगे। धन्य है यह भूमि जिसने ऐसे पुत्र उत्पन्न किए! धन्य है यह वेदों की शिक्षा जिसने ऐसा व्रतधारी वीर बनाया! वह कैसा सुन्दर और मनोहर समय रहा होगा जब ऐसे पुत्र माता की गोद में खेलते थे! वह कैसा उत्तम समय था जब ऐसे सदाचारी पुरुष उत्पन्न होते थे! आज चाहे हम अपनी मूर्खता से ब्रह्मचर्य्य पर उपहास करें, परन्तु समय आवेगा जब संसार इन्हीं नियमों को पुनः ग्रहण करेगा।

भीष्म जी की दृढ़ता

भीष्म जी के इस व्रत के पश्चात् राजा शान्तनु का विवाह उस कन्या (सत्यवती) से होगया और उसके गर्भ से राजा के दो पुत्र चित्रवीर्य्य और चित्राङ्ग उत्पन्न हुए। दोनों अभी बालक ही थे कि राजा शान्तनु ने प्राण त्याग दिया। पिता के पीछे राज्य का काम और उन बालकों का सारा प्रवन्ध भीष्म जी को दिया गया, जिन्होंने बालकों की तरुण अवस्था पर्य्यन्त अपने कर्तव्य को पिता की भांति निभाया, और पीछे उनको सब कारोबार सौंप दिया। चित्राङ्ग युवा अवस्था में ही परलोकगामी हुए। अभी उनका विवाह भी नहीं हुआ था। भीष्म जी को भाई की मृत्यु का बड़ा दुख हुआ; परन्तु उन्होंने बड़े धैर्य्य से उसको सहन किया।

चित्रवीर्य्य युवा थे। उनके विवाह की चिन्ता सत्यवती को लग रही थी, सत्यवती ने भीष्म जी से कहा कि काशीनरेश की दो कन्याएं अम्बिका और अम्बालिका हैं। यदि राजा अपनी कन्याएं चित्रवीर्य्य को व्याह दे तो बहुत ही अच्छा हो। काशीनरेश के साथ भीष्म जी की अनबन थी, इसलिये यह बात सम्भव न थी कि राजा स्वेच्छा से अपनी कन्याओं का विवाह कर देता। अन्त में युद्ध के पश्चात् भीष्म जी के भाई का विवाह उन दोनों कन्याओं से हो गया। यद्यपि सत्यवती ने वंश की वृद्धि के हेतु इतना यत्न किया, और भीष्म जी ने भी भाई के विवाह के लिये युद्ध किया; परन्तु यहां कुछ और ही होना था। चित्रवीर्य्य भी विवाह के थोड़े दिनों पश्चात् परलोक सिधार गए और दोनों रानिओं को विधवा कर गए। अब शान्तनु के सिंहासन पर बैठनेवाला कोई न रहा और भारतखण्ड का राज्य बिना अधिकारी के होगया। तब सत्यवती ने सब मन्त्रियों की सम्मति से भीष्म जी से प्रार्थना की कि वह सिंहासनारूढ़ हों, परन्तु उन्होंने अस्वीकार किया। यह वही सत्यवती है कि जिसके लिये भीष्म जी को प्रण करना पड़ा था कि वह सिंहासन पर नहीं बैठेंगे, और आज वही सत्यवती भीष्म जी से विनय करती है कि तुम सिंहासन पर बैठो। अहा! समय की अद्‌भुत गति है! मनुष्य कुछ विचारता है और परमात्मा कुछ करता है। देव! तेरी लीला अपरम्पार है! मनुष्य बड़ा मूर्ख है जो तेरे किए हुए पर सन्तोष न कर लोभ से भटकता है और अपने जीवन को व्यर्थ खोता है। सत्यवती ने भीष्म जी को पुनः एकान्त में बुलाया और कहा—

> मम पुत्रस्तव भ्राता वीर्य्यवान् सुप्रियश्च ते
> बाल एव गतः स्वर्गमपुत्रः पुरुषर्षभ।
> इमे महिष्यौ भ्रातुस्ते काशीराजसुते शुभे
> रूपयौवनसम्पन्ने पुत्रकामे च भारत।
> तयोरुत्पादयापत्यन् सन्तानाय कुलस्य नः
> मन्नियोगान्महाबाहो धर्मं कर्तुमिवार्हसि॥

अर्थात्, हे पुरुषश्रेष्ठ! मेरे पुत्र तेरे भाई वीर्यवान और सुन्दर बाल अवस्था में ही सन्तानहीन मर गए; उनकी दोनो स्त्रियां काशीनरेश की कन्याएं रूप यौवन से युक्त पुत्र की इच्छा करती हैं। इसलिये हे महाबाहो! मेरी आज्ञा से हमारे वंश की वृद्धि के लिये तू उनसे सन्तान उत्पन्न कर और तू ही इसके करने योग्य है।

माता के यह वचन सुन भीष्म जी चकित हो गए। विचारा कि क्या माता मुझे कुबीज समझती हैं जो ऐसा कहती है? क्या इसको मेरे व्रत का ध्यान नहीं? क्या इसने मुझे क्षत्रिय नहीं समझा? क्या इसने विचारा है कि मैंने इसके पिता के सम्मुख योंही मिथ्या प्रतिज्ञा की थी? भीष्म बड़े दुखित हुए, शरीर पसीने से भर गया। अन्त को बोले "माता! क्या तू मेरी परीक्षा करती है, या मुझे कायर समझती है? मैं क्षत्रिय हूं, स्मरण रख—

> त्यजेच्च पृथिवी गन्धमापश्च रसमात्मनः
> ज्योतिस्तथा त्यजेद्रूपं वायुः स्पर्शगुणं त्यजेत्
> विक्रमं वृत्रहा जह्याद्धर्मं जह्याच्च धर्मराट्
> नत्वहं सत्यमुत्स्रष्टुं व्यवसेयं कथञ्चन॥

पृथिवी अपने स्वाभाविक गुण गन्ध को त्याग दे, जल अपने गुण को त्याग दे, (सूर्य) अपने गुणरूप को छोड़ दे, वायु स्पर्श को छोड़ दे; इन्द्र अपने विक्रम को, और धर्मराज धर्म करना त्याग दे; परन्तु यह क्षत्रिय कदापि भी अपने वचन से नहीं हटेगा। भीष्म जी के यह वचन सुन सत्यवती बहुत निराश हुई, क्योंकि उस ने पहिले भीष्म को ऐसा दृढ़ न समझा था। वह नहीं जानती थी कि इस वीर के ब्रह्मचर्य्य व्रत को देख सैकड़ों पुरुष अपने जीवनों को पवित्र करेंगे; और यह संसार में अक्षय कीर्ति का भागी बनेगा। अन्त को भीष्म जी से वंश की वृद्धि का उपाय पूंछा। उन्होंने कहा कि प्राचीन वैदिक नियम नियोग से सन्तान उत्पत्ति करनी चाहिए और इस प्रयोजन के लिये कृष्ण द्वैपायन जी को, जिनका दूसरा नाम वेदव्यास है, बुलवाया और उनसे नियोग के द्वारा दो पुत्र उन दो रानिओं के हुए—धृतराष्ट्र और पांडु। और विदुर दासीपुत्र थे। धृतराष्ट्र अन्धे थे, इसलिये उनको राज्य न मिला, विदुर दासी के पुत्र थे, इसलिये वे भी अधिकारी न समझे गए। तीसरे पांडु को सिंहासन मिला।

कौरव और पांडवों का झगड़ा

पांडु राजसिंहासन पर बैठ न्यायपूर्वक राज्य करने लगे। उनकी दो स्त्रियां थीं, एक कुन्ती जो श्रीकृष्ण जी के पिता की बहिन थी, दूसरी माद्री जो मद्र देश के राजा की कन्या थी। इन रानियों के गर्भ से राजा के ५ पुत्र हुए—युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन कुन्ती के गर्भ से, और नकुल सहदेव माद्री के गर्भ से। धृतराष्ट्र का विवाह गान्धार के राजा की कन्या गान्धारी से हुआ। यद्यपि राजा धृतराष्ट्र बड़े थे, और सिंहासन का अधिकार उनको था, परन्तु वह अन्धे थे, इसलिये उनको राज्य का कुछ भाग दे दिया गया, राज्य का अधिकार पांडु को मिला।

राजा धृतराष्ट्र के बहुत से पुत्र थे। उन सब में दुर्योधन बड़ा था। महाभारत के कर्ता ने धृतराष्ट्र की सन्तान को कौरव और पाण्डु की सन्तान को पाण्डव लिखा है। पाण्डव अभी बालक ही थे कि उनका पिता कालवश होगया। इसलिये वे सब अपने चचा धृतराष्ट्र के पास रहने लगे। युधिष्ठिर जो पांडु के सबसे बड़े पुत्र थे, राज्य के अधिकारी समझे गए, और इन्हींको राज्यतिलक लगाया गया। परन्तु राज्य का प्रबन्ध दुर्य्योधन करता था, क्योंकि धृतराष्ट्र आप कुछ कर नहीं सकते थे। इसलिये उसने अपने पुत्र को काम सौंप रक्खा था। दुर्य्योधन का स्वभाव बड़ा दुष्ट था। उसने विचारा कि यदि मैंने कुछ न किया तो राज्य चचा के लड़कों के ही हाथ में रहेगा और इनके पीछे इनकी सन्तान सँभाल लेगी और मेरा और मेरी सन्तान का जीवन इनकी सेवा में ही बीतेगा। उसने अपने मित्रों से सम्मति करके पांचों पांडवों को मार डालने का यत्न किया। भीष्म जी, जिनको दोनों भाइयों के पुत्र एक थे और जो युधिष्ठिर और दुर्य्योधन के स्वभाव से भली प्रकार परिचित थे, सदा दुर्य्योधन को समझाया करते थे। दुर्य्योधन भीष्म जी से बहुत डरता था। इसलिये उनके भय से वह अपनी इच्छा पूर्ण न कर सका। अन्त को यह निश्चय हुआ कि पांडव राज्य के दूसरे भाग में भेज दिए जांय। पांडव भीष्म जी के आज्ञानुसार वहां चले गए, परन्तु दुष्ट ने वहां भी दुष्टता की। लाख का घर उनके निवास के लिये बनवाया, जिसमें समय पा कर उसको आग लगा दी जावे और पांचों भाई जल मरें। पांडव वहां से विदुर की कृपा से बच कर निकल गए और बहुत वर्ष जङ्गलों में घूमते रहे। घूमते घूमते पाञ्चाल देश के राजा द्रुपद की कन्या के स्वयम्वर में पहुंचे, जहां अर्जुन ने, जो तीर चलाने में बड़े निपुण थे, अपनी धनुर्विद्या का अद्भुत प्रताप दिखाकर द्रोपदी से विवाह किया। दुर्य्योधन ने जब देखा कि पांडव बच कर निकल गए तो उसने शतरञ्ज का जाल फैलाया और युधिष्ठिर को, जिन्होंने अपने भुजबल से नया राज्य कायम कर लिया था, और बड़े

ऐश्वर्य्यवान भी होगए थे, धोखे से बुला कर जूए में फंसाया, जिसका परिणाम यह हुआ कि युधिष्ठिर सब कुछ हार गए और उन्होंने १२ वर्ष बनों में, जो उस जूए की शरत थी, बड़े दुख से काटे। १३वें वर्ष में पांडव लोग विराट राजा के पास जा भेष बदल कर रहने लगे। राजा विराट के पास बहुत सी गाएं थीं, और प्राचीन-काल में गाय ही देश का धन समझी जाती थी। क्योंकि यही घृत और दूध के देनेवाली है जो मनुष्य के शारीरिक और आत्मिक बल को बढ़ाने वाले हैं। इनकी हानि से सब प्रकार की हानि और इनकी वृद्धि से सब प्रकार की वृद्धि समझी जाती थी। इसलिये दुर्य्योधन ने विराट देश पर चढ़ाई की। भीष्म जी को सेना का नायक बनाया, जिन्हों ने तीन ओर से विराट पर धावा किया। अर्जुन ने उत्तरनामक विराट के पुत्र के साथ रण में जाने की राजा से आज्ञा लेली थी। अर्जुन ने इस चातुरी से सेना का प्रबन्ध किया और ऐसे बाण मारे कि भीष्म जी झट कह उठे कि विरोधियों में अर्जुन अवश्य है, अर्जुन के बिना ऐसे तीर मारना दूसरे का काम नहीं। अन्त को दुर्यो-धन अपने साथियों के साथ परास्त होकर अपनी राजधानी को भाग गया, और विराट का पुत्र आनन्दित हो अपनी राजधानी को लौटा। राजा विराट को जब मालूम हुआ कि यह पांचों योद्धा पांडु के पांचों पुत्र हैं, तो वे अति प्रसन्न हुए और उन्होंने अपनी लड़की उत्तरा का विवाह अर्जुन से करने का विचार किया। अर्जुन ने, जो गानविद्या के बड़े पंडित थे, भेष बदल कर विराट की कन्या को गानविद्या सिखाने में अपना समय काटा था। इस कारण उन्होंने विराट का प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया कि उत्तरा का मैं गुरु हूं और वह मेरी कन्या के समान है। निदान अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु के साथ उसका विवाह ठैरा जो बड़ी धूम धाम से होगया।

पांडव १२ वर्ष से छिपे हुए थे, इसलिये भीष्म जी को इस युद्ध से पहिले उनका वृत्तान्त ज्ञात न था। पांडवों की वीरता और उनके सच्चरित्र को स्मरण कर और उनके दुःख का वृत्तान्त सुन वे अति क्लेशित हुए। वे जानते थे कि धृतराष्ट्र और उसके पुत्रों ने पांडवों को धोखा दिया है और उनका अधिकार छीना है। इसलिये अब पांडव अवश्य अपनी भुजबल से राज्य को लेने का यत्न करेंगे, । क्योंकि वेही वंश में सबसे बड़े थे। भीष्म चाहते थे कि शान्ति से निबटेरा हो जाय और युद्ध तक नौबत न पहुंचे। इस कार्य्य को करने के लिये वे धृतराष्ट्र के पास गए और उनको कहा कि तुम दुर्य्योधन को बुलाकर समझाओ कि पांडव उसके भाई हैं और राज्य के अधिकारी हैं। वे क्षत्रिय हैं, वीर हैं, अवश्य अपनी भुजा के बल से राज्य को लेने का यत्न करेंगे और फिर परिणाम जो होगा वह तुम आप विचार सकते हो।

भीष्म जी का दुर्य्योधन को समझाना

जब पांडवों का जीना सब पर प्रकट हो गया तो राजा द्रुपद ने भी यह शुभ समाचार सुन अपने आदमी विराट देश में भेज पांडवों को बुलवाया। पांडव विराट के राजा की आज्ञा से पांचाल देश में चले आए। श्री कृष्णजी, जो उस समय के बड़े नीतिज्ञ और यदुकुल के भूषण थे, पांडवों से मिलने के लिये पांचाल देश में गए। राजा द्रुपद और श्रीकृष्णजी ने पांडवों को सम्मति दी कि अपना अधिकार लेने के लिये यत्न करो। युधिष्ठिर ने कहा कि राज्य तो मैं दुर्य्योधन के पास जूए में हार चुका हूं, अब कैसे मांग सकता हूं और यत्न कर सकता हूं? श्रीकृष्णजी ने कहा कि दुर्य्योधन ने धोखे से बाज़ी जीती है और कोई कार्य्य न्यायपूर्वक नहीं किया है, इस लिये उसको अवश्य दंड देना चाहिए। यद्यपि पांडव इसके विरुद्ध थे, परन्तु अन्त को कृष्ण जी के समझाने से राजी हो गए और राजा द्रुपद का पुरोहित दूत बन कौरवों के पास गया। दूत ने कौरवों की सभा में जा अपने राजा का संदेशा कहा और समझाया कि पांडव इस समय नम्रता से राज्य

का अपना भाग मांगते हैं; अच्छा होगा यदि आप लोग स्वीकार करें, नहीं तो युद्ध होगा, वंश नष्ट हो जायगे, देश का सत्यानाश करोगे। विचार करो और बतलाओ कि क्या आज्ञा है।

भीष्म जी, जो सभा में विद्यमान थे, बोले "हमारे बड़े धन्य भाग हैं कि हम पांडवों के शुभ समाचार सुनते हैं। इतने दुःख सहन कर के भी वे धर्म पर स्थित हैं और देखिए, नम्रता पुर्वक अपना भाग मांगते हैं। क्या वे युद्ध से नहीं ले सकते हैं? परन्तु वे धर्म छोड़ना योग्य नहीं समझते। अर्जुन बड़ा वीर है, मुझे उसके सामने खड़ा होनेवाला योद्धा और कोई देख नहीं पड़ता।" अभी वे बोल ही रहे थे कि कर्ण अति क्रोधित हो उनकी बात काट बोला "हे भीष्म! तुम बूढ़े हो गए हो, तुम्हारी इन्द्रियां शिथिल हो गई हैं, इसी लिये तुम्हें कोई योद्धा अर्जुन सा नहीं देख पड़ता। पांडव अपना अधिकार जूए में हार गए, अब उनको गजभर भूमि भी नहीं दी जायगी, युद्ध होगा और अर्जुन की वीरता भी मालूम हो जायगी"। कर्ण की बातें सुन भीष्म जी बड़े क्रोध में आए, परन्तु अपने क्रोध को थोड़ी देर में शान्त कर बोले "ए कर्ण, क्या तू स्वयम्वर का दिन भूल गया? उस दिन तेरी वीरता कहां गई थी? विराट के राज्य पर जब धावा हुआ और अर्जुन के तीरों ने जब सेना को परास्त कर दिया था, उस समय तेरा वीरत्व कहां गया था? ए वीर! मैं तो बूढ़ा हो गया हूं, इसमें कोई संदेह नहीं; परन्तु सत्य जानो मैं युद्ध से भय नहीं करता"। राजा धृतराष्ट्र ने दूत को कहा कि कल विचार कर उत्तर दिया जावेगा। दूसरे दिन पांडवों के पास दूत भेजा गया और कह दिया गया कि युद्ध के बिना गज भर भी भूमि नहीं मिलेगी। जब श्री कृष्ण जी ने कौरवों का उत्तर सुना तो उन्होंने यह आवश्यक समझा कि आप जाकर ठीक ठीक फैसला कर आवें। युधिष्ठिर ने भी श्री कृष्ण से निवेदन किया कि जहां तक हो शान्ति ही करनी चाहिए। आप न्यायपूर्वक कार्य्य कराने का यत्न कीजिए। श्री कृष्ण जी दूत बन कौरवों की सभा में पहुंचे और उन्होंने धृतराष्ट्र को समझाया और अपने आने का कारण कहा। धृतराष्ट्र चुप रहे। दुर्योधन ने कहा कि हे कृष्ण! तुम ही सब युद्ध के कारण हो। हम कभी भी पांडवों को राज्य का भाग नहीं देंगे। श्रीकृष्ण जी ने कहा वंश के बड़े और धर्म के ज्ञाता भीष्म जी सभा में विद्यमान हैं, उनके होते हुए तुम्हारा कोई अधिकार नहीं कि तुम कुछ कहो। भीष्म जी इस समय तक विचार में मग्न थे। कृष्ण जी के वाक्य सुन दुर्योधन से बोले "हे दुर्योधन! शोक है कि तू अपने दुष्ट मित्रों के कहने पर चल धर्म अधर्म का विचार नहीं करता। स्मरण रख, सदा सत्य की जय हुआ करती है। शास्त्रों ने कहा है—

सत्यमेव जयते नानृतं

सदा सत्य की जीत होगी, क्या इन सब पापों को करके भी तू राज्य को अपने साथ ले जायगा? अरे मूर्ख! अधर्म का त्याग कर, न्यायपूर्वक जो तेरा भाग है उसको ले। अधर्म से यदि चक्रवर्ती राज्य भी मिले तो उस पर लात मार। धोखे से तूने युधिष्ठिर का राज्य छीना, उनको जंगल में भेजा, इतने दुःख दिए; और अब, जब वे नम्रतापूर्वक फिर अपना अधिकार मांगते हैं तो, तू युद्ध का भय दिखाता है! क्या तुझे भीम की भयङ्कर गदा का आघात भूल गया! अरे, जिस समय वह वीर गदा लेकर रण में आवेगा तो तेरा रक्त सूख जावेगा। उस समय तू मेरी शिक्षा को याद करेगा। युद्ध का नाम न ले, पांडवों का सामना करना हँसी नहीं। कृष्ण जी आप इतना क्लेश उठा यहां आए हैं जिस में किसी तरह युद्ध न हो, आपस में शान्ति से फैसला होजाय। परन्तु तू अपने और कर्ण के घमण्ड में किसीकी सुनता ही नहीं। हे दुर्योधन! कृष्ण जी की सम्मति के अनुसार कार्य्य कर, तेरा इसी में कल्याण है"। विदुर ने भी भीष्म का अनुमोदन किया, परन्तु किसी ने ठीक कहा है—

विनाशकाले विपरीत बुद्धिः

उस निर्बुद्धि के हृदय पर किसी की बात का कुछ प्रभाव न हुआ, वह उलटा भीष्म जी को कहने लगा कि आप युद्ध से भय करते हैं और कायरता की बातें कहते हैं। परन्तु भीष्म जी ने कहा कि हम क्षत्रिय हैं युद्ध में जाने से भय कदापि नहीं करते, परन्तु युद्ध के फल से भय अवश्य करते हैं। अच्छा हो यदि शान्ति हो जाय। भीष्म जी ने बहुत समझाया, परन्तु उसने स्पष्ट कह दिया कि मैं तो एक सूई की नोक के बराबर भी कोई वस्तु पांडवों को नहीं दूंगा। श्री कृष्ण और भीष्म जी का सारा प्रयत्न निष्फल गया। भीष्म जी यदि पांडवों को अपना अधिकार छोड़ने के लिये कहते तो पांडव अवश्य छोड़ देते। परन्तु उनका जीवन क्या था, धर्म का साक्षात रूप था। वे अपने और दूसरे के कर्तव्य का पूर्णतया विचार करनेवाले थे। सदा न्यायानुकूल पक्षपात रहित जो कर्म होता उसको करना अपना धर्म समझते, चाहे उसके लिये अपना शरीर ही क्यों न चला जाय।

जब कृष्ण जी का आना भी निष्फल हुआ तो भीष्म जी को युद्ध अटल प्रतीत होने लगा। परन्तु उन्होंने पुनः एक बार यत्न किया और धृतराष्ट्र और उसके पुत्र को समझाया कि शान्ति से आपस में सन्धि कर लो, परन्तु कुछ न हुआ। अन्त को भीष्म जी ने कहा कि मुझे और कोई शोक नहीं केवल यही अधिक दुःख है कि युधिष्ठिर से सामना करना होगा, जो पितरों की श्रद्धा पूर्वक सेवा करनेवाला है और सदा धर्म पर दृढ़ है।

[शेष आगे।

एक विद्यार्थी।

विनय

प्रभु हो पुनि भूतल अवतरिए।
अपुने या प्यारे भारत के पुनि दुख दारिद हरिए॥
धरम गिलानि होति जबही जब तब तब तुम वपु धारत।
दुष्टन हरि साधुन निर्भय करि तब ही धरम उबारत॥
महा अविद्या राच्छस ने या देसहिं बहुत सतायो।
साहस, पुरुषारथ, उद्यम, धन, सबहो निधिन गंवायो॥
काल, पात्र अधिकार विरोधी सब ही कारज साधैं।
सांचे धर्म छांड़ि मिथ्या बिश्वासन ही आराधैं॥
जेते गुन जग में बढ़िबे के ते अवगुन इन लेखे।
देखि प्रतच्छ प्रमान अनेकहु करत हाय अनदेखे॥
जो कोउ हित की कहत बात तो कोपैं सब ही भारी।
धरम बहिरमुख, मूरख, नास्तिक कहि कहि देवैं गारी॥
कहँ लगि कहौं दयानिधि इनकी सबहि भए मतवारे।
जो तुम सांचे जगतपिता तो क्यों न दया उर धारे॥
जौ कोउ कबहुं धरम परचारक भाग्यन ही सों जनमे।
तो वे शुष्क जगत स्वारथरत भक्ति नेकु नहिं मन में॥
झूठे मन केवल बनावटी तुव अस्तित्वहिं मानैं।
करिकै ओट धरमग्रन्थन की भेद और जिय ठानैं॥
जद्यपि निहचैय देस दसा लखि कोउ कोउ दुःखित भारी।
पै ये देशकाल बिनु सोचे चलत चाल हितकारी॥

ताहो तें इनके बातन को होत प्रभाव न नेको।
तैंतिस कोटि अछूत बढ़वत ये संख्या और अनेको ॥
करुनामय ! शङ्करस्वामी सम पुनि भूतल वपु धारौ।
मेटि सकल उपधर्म भ्रमित विश्वासहिं जड़ सों जारौ ॥
थापि प्रेम मन भक्ति अचल सांचे गुन हिन्दुन दीजै।
मूल धर्म निरधारित करि प्रभु त्राहि ! कल्यानहि कीजै ॥
उद्धत भए सबै मनमाने बिना तुम्हारे आए।
काहू की न सुनैंगे ये करिहैं निज निज मन भाए ॥
जो यह बात न मन में आवै तो मघवा कों टेरौ।
हुकुम देहु दल बल समेत भारत पै डारै डेरौ।
पूर्न प्रताप प्रलय बरसा करि छिन में याहि बहावै।
रहै न नाम हिन्द हिन्दू को जग में अब न लजावै ॥
देखो जग उपहासास्पद ह्वै तुम्हरो नाम धरावैं।
कृष्ण कृपानिधि ! कृष्णकाय ये तुम्हरी बिरद हँसावैं ॥
कै मारौ कै तारौ इनको कछु निस्तार लगाओ।
त्राहि त्राहि करुनामय केशव ! दासहिं प्रभु अपुनाओ ॥ १ ॥

जानकी जयमाल

...ता असम्भव पन पूरित लखि आनन्दित अति।
...त्साह जयमाल लिये धाई चञ्चल गति ॥
...विकुल रवि तट पहुंचि रूप के तेज बिमोहित।
भूलि तन दसा रही चित्र पुतरी सी सोहित ॥
लखि प्रेम बिवस पिय जब झुके अति सँकोच डारी गरैं
यह प्रेममई मूरति दोऊ नित नित नव मङ्गल करैं ॥

सुनीति

[अनुवाद]

...र्वे शिष्य उपदेस, पालन नारि कुलच्छिनी।
...खियन सङ्ग हमेस, पण्डित हू दुख नित लहहिं ॥
...टा नारी, मित्र सठ, उत्तरदायक दास।
...ह ससर्प के बास तें, मृत्यु हथेली पास ॥
...पद हित धन रच्छिए, धन दै रच्छिय नारि।
...पुहु रच्छिय सवदा धन अरु नारि बिसारि ॥
...पद हित धन रच्छहीं, धनियन कों कह क्लेस।
...लक्ष्मी अब पग करत रहै न सञ्चित लेस ॥
...हिं सम्मान, न जीविका, नहिं बान्धव जेहि देस।
...हिं विद्या चरचा, तहां बसिकै पावत क्लेस ॥
...नी, वेदविद विप्र, नृप, नदी, वैद्य ये पांच ?
जहां होहिं नहिं तहं बसे निहचै पावै आंच ॥
भय, उदारता, कुशलता, लाज, जीविका बित्त।
जिनमें नहिं ये पांच गुन तिनकों करै न मित्त ॥
काम पड़न पैं भृत्य अरु बान्धव सङ्कट काल।
मित्र बिपति में परखिए धन छय जानिय बाल ॥
रोग, दुःख, दुर्भिक्ष अरु राजद्वार, मसान।
शत्रु घिरें में साथ जे ते हैं बन्धु महान ॥
ध्रुव तजि अध्रुव आस बस धावहिं जे अज्ञान।
ध्रुवहू खोवहिं व्यर्थ ते अध्रुव प्रथम नसान ॥
रूपहीन हू सुकुल की व्याहहिं सुता सुजान।
रूपवती कुल नीच तजि सोहत व्याह समान ॥

नदी, शस्त्रधारी, नखी, श्रृङ्गी, राजा नारि।
भूलि न इन्हें पतीजिए बुध जन कहत विचारि॥
विष ते अमृत काढ़िए सुवरन अशुचि विहाय।
नारि रत्न दुष्कुलहु तें विद्या नीचहु पाय॥
कुल नारिन भोजन द्विगुन लज्जा चौगुन नैन।
साहस षटगुन, आठ गुन तन में व्यापत मैन॥

श्रीराधाकृष्णदास

काव्यसरोवर

चल मन! काव्य सरोवर तीर,
जहं सद्भाव सरोज प्रस्फुटित,
मन आवेग सुसीर।
सो सरोज दल नव रस मधुमय,
पूरन छटा प्रकासे।
तासों नहीं मिष्ट कोउ परिमल,
कमल मध्य आभासे॥
कत सुख होत न तासु घ्राण से,
यह निश्चय अनुमान।
भाउक भ्रमर मत्त मधु छकि छकि
चाहत मधु नहिं आन॥
नव कल्पना संग बांध्यौ है,
वा सरवर को तीर।
लालित्यता रूप है जाको,
शोभित निर्मल नीर॥
नाना छन्द हंसगण राजत,
है अन्तर आनन्द।
विचरण करत नित्य पत्रोपरि
वसि वसि तहँ स्वच्छन्द॥
जलचरगण तिहि मध्य विराजैं;
यति यमकानुप्रास।
सुख से करत नित्य नव क्रीड़ा,
लखि लखि भूलत त्रास॥
अलंकार सारससमूह को,
मन्द मन्द झँकार।
श्रवण श्रवण महँ प्रविशि अधिकतर
करत सु सुख संचार॥
जल करि बिन्दुपात वा सर को
सन्तापित को प्रान।
होत स्निग्ध ततकाल अशि ही,
निश्चय यह कर ध्यान॥
एक बार सुस्पर्श किए ते,
वा सरवर को नीर।
नाना भांति भावना अगिनी,
होत शान्त अति धीर॥
जो महान या विधि पुष्कर की,
करत सृष्टि सो धन्य!
नहीं अलौकिक शक्ति मान है,
तासों दीसत अन्य॥

जानकी प्रसाद तिवारी,

श्रीगुरु अर्जुन जी

संसार की सदा से यह रीति चली आई कि यहां दो प्रकार के मनुष्य उत्पन्न होते हैं, एक भले और दूसरे बुरे। केवल मनुष्य ही क्या चाहे जिस वस्तु विशेष पर ध्यान दीजिए, सब में दो प्रकार की श्रेणी दिखाई देगी। एक तो उनमें से उत्तम श्रेणी का है और दूसरा निकृष्ट। दूर क्यों जाते हैं, एक बड़ी नदी ही का प्रमाण लीजिए। देखिए कितने ही दुर्गन्धयुक्त नाले उस महानद के स्वच्छ जल में आकर मिलते हैं। वे अपने भर सक उस महानद को गंदा करने में कोई बात उठा नहीं रखते, परन्तु क्या उस महानद के बहते हुए स्वच्छ जल को वे अपनी नाईं गंदा कर सकते हैं? नहीं, कभी नहीं! वह नद ऐसा महान है कि उन सब नालों को हज़म कर जाता है और फिर भी उसका जल जैसे का तैसा स्वच्छ बना रहता है।

यही दशा मनुष्यलोक की भी है। यहां जब कोई महानुभाव महात्मा जन्मग्रहण करता है तो उसके विपरीतभाव वाले असंख्य मनुष्य उसे हानि

जाने की यथासाध्य चेष्टा करते हैं। परन्तु उन पामरों का यह वैर उस उदारचित्त महात्मा के महान हृदय में लीन हो जाता है। अन्त को उन्हें स्वयम् लज्जित होना पड़ता है और वह अलौकिक पुरुष अपने सद्गुणों से लोगों को मोहित कर, उन का आदर्श हो जाता है और गोस्वामी तुलसीदास जी के इस वाक्य को सार्थक कर दिखाता है कि "बूंद अघात सहैं गिरि कैसे। खल के बचन साधु सह जैसे"। इन्हीं महात्माओं की श्रेणी में सिक्खों के पांचवें गुरु अर्जुन जी भी थे। इनके महान हृदय का परिचय आप लोगों को आगे चल कर मिलेगा। गुरु रामदास जी के चरित्र में आप लोग पढ़ आए हैं कि उन्हें तीन पुत्र थे—पहिले पृथिवीचंद, दूसरे महादेव और तीसरे हमारे चरित्रनायक अर्जुन जी। अर्जुन जी का जन्म संवत १९२० मिती वैशाख सुदी ३ मंगलवार के दिन रामदास जी की प्रियपत्नी भानी जी के गर्भ से मुकाम गोइंदवाल में हुआ था। गुरु रामदास जी के दो लड़के बड़े नालायक थे। वे कभी भी पिता की आज्ञा नहीं मानते और सर्वदा वैसे ही काम किया करते थे जो रामदास जी को अधिक नापसन्द होते। परन्तु उनके तीसरे और सबसे छोटे पुत्र अर्जुनजी का आचरण अपने बड़े भाइयों से सर्वथा विपरीत था। वे सर्वदा पिता की आज्ञा में चलते और बड़ी भक्ति से पिता माता की सेवा किया करते थे। इस कारण पिता का भी उन पर विशेष स्नेह था। परन्तु उनका बड़ा पुत्र पिता का स्नेह अर्जुन जी पर अधिक देखकर सदा मन में जला करता था कि कहीं हमारे पिता अर्जुन को ही गुरुगद्दी न दे दें। इस कारण वह सर्वदा अपने सबसे छोटे भाई अर्जुन जी का बुरा विचारा करता। एक समय का वृत्तान्त है कि किसी कार्य विशेष के कारण रामदास जी ने अपने बड़े पुत्र पृथिवीचंद को लाहोर जाने की आज्ञा दी। इस ख्याल से कि मेरी अनुपस्थिति में पिता कहीं अर्जुन को गद्दी न दे दें, उसने लाहोर जाने से साफ़ इंकार किया।

रामदास जी को पुत्र के इस आचरण से बड़ा दुःख और क्रोध हुआ। उन्होंने अर्जुन जी को बुलाकर लाहोर जाने को कहा और साथही यह भी कह दिया कि जब तक "मैं तुझे न बुलाऊं, तू घर मत आइयो।" अर्जुन जी ने पिता की आज्ञा सुनते ही लाहोर की ओर कूच कर दिया और वे पिता का काम पूरा कर वहां रहने लगे। जब बहुत दिन हो गए और पिता ने अर्जुन जी की कुछ खोज खबर न ली, तब घबड़ा कर अर्जुन जी ने पिता को पत्र लिखा। अर्जुन जी का बड़ा भाई तो सदा उनसे वैर करने के घात में लगा ही रहता था, अतएव पत्र वाहक से मिलकर मार्ग ही में उसने चिट्ठी गुम कर दी। बहुत दिनों तक उत्तर की अपेक्षा करने पर जब अर्जुन जी को पिता की कोई चिट्ठी भी न मिली तब उन्होंने एक दूसरी चिट्ठी लिखी। पृथिवीचंद की दुष्टता के कारण वह चिट्ठी भी रामदास जी तक न पहुंच पाई। अन्त को उकता कर अर्जुन जी ने अपने एक विश्वासपात्र मित्र के हाथ पिता को तीसरी चिट्ठी भेजी। सौभाग्यवश इस बार पृथिवीचंद की कोई कला न चली और वह चिट्ठी रामदास जी के निकट निर्विघ्न पहुंच गई। दो चिट्ठी के गुम होने का हाल विदित होने पर गुरु रामदास जी को पृथिवीचन्द ही पर सन्देह हुआ और उसको बुला कर जब उन्होंने चिट्ठी के बारे में पूछा तो वह बिलकुल अनजान बन-गया। अन्त को जब रामदास जी ने उसकी तलाशी ली तो उसकी जेब से दोनों चिट्ठियां साफ़ निकल आईं। रामदास जी ने पृथिवीचन्द को बड़ी डांट बताई और वह बड़बड़ाता हुआ घर से बाहर चला गया। उस दिन से उसने अपने पिता और भ्राता से और भी अधिक विरोध करना आरम्भ किया।

रामदास जी ने अर्जुन जी को लाहोर से बुला भेजा और उनकी पितृभक्ति से अधिक संतुष्ट हो कर उनको अपना उत्तराधिकारी बनाया।

अर्जुन जी का दो विवाह हुआ था, पहिले तो

संवत १६३२ में चन्दनदास सेठी की लड़की रामदेवी से, और दूसरा संवत १६४७ में किसन-चन्द खत्री की लड़की गंगाजी से। पहिली स्त्री से सन्तान न होने के कारण ही गुरु साहब को दूसरा विवाह करना पड़ा था। इन्हीं गङ्गादेवी के गर्भ से महात्मा हरगोविन्द जी ने जन्मग्रहण किया था, जो अर्जुन जी के बाद गुरु की गद्दी पर बैठे थे और जिनके प्रताप और धर्मरक्षा का हाल "सरस्वती" की आगामी संख्या में आप लोगों के नयनगोचर होगा।

संवत १६३८ में गुरु अर्जुन जी ने गद्दी प्राप्त की थी। अपने पूर्व पुरुषों की भांति ये भी सब गुणों से सम्पन्न थे। समागत भक्तजनों को अपने मधुर सम्भाषण से सन्तुष्ट रखना, गुरु नानक जी के सत्य सिद्धान्तों का मधुर उपदेशों द्वारा प्रचार करना, धर्मशाला और बावली इत्यादि बनवाना, ये सब तो इनके नित्य के काम थे। अमृतसर में जो बावली "तरन तारन" के नाम से विख्यात है उसकी नीव इन्होंही ने डाली थी। इसके सिवाय गुरु अर्जुन जी ने भेट वसूल करने का एक नया उपाय निकाला। उन्होंने कई गुमाश्ते इस काम पर नियत कर दिए कि वे प्रत्येक सिक्ख जमीदार की जमीदारी में जाकर रहें और उसकी तमाम जमीदारी के आमदनी का दसवां भाग लेकर सङ्गत में भेजदें*। इस उपाय से अर्जुन जी को द्रव्य की कमी न रही और दान पुण्य का काम बे रोक टोक चलने लगा। कदाचित् ही ऐसा कोई दिन जाता होगा, कि जिस दिन भूखों और अभ्यागतों को भोजन न मिलता हो। प्रतिदिन प्रसाद बाँटा करता था और एक घड़ी के लिये भी लङ्गर ठंढा नहीं होता था।

एक समय का वृत्तान्त है कि गुरु अर्जुन जी के निकट एक सन्तोषा नामक खत्रीपुत्र कामना से आया और उसने उन्हें बहुत सा धन रत्नादिक भेंट दिया। अर्जुन जी ने उस धन से सन्तोषसर नामक एक तालाब खुदवाना प्रारम्भ किया। प्रायः तीन गज़ भूमी खोदी गई होगी कि इतने में फावड़ा किसी कठिन वस्तु से टकराया। मिट्टी हटाने पर एक गुमटी निकल आई। जब बड़ी कठिनाई से उस गुमटी का दरवाज़ा खोला गया तो भीतर एक योगी ध्यानमग्न बैठा दिखाई दिया। अनेक प्रकार के उपाय करने पर जब योगी जी के ध्यान खुले तो अपने सम्मुख के लोगों को देख कर वह बड़े आश्चर्यित हुए। गुरु अर्जुन जी ने उस योगाभ्यासी महात्मा से आलाप करना प्रारम्भ किया। बात चीत करने पर विदित हुआ, वह योगी महाशय श्रीरामचन्द्र जी के समय से वहां तपस्या कर रहे हैं। किसी कारणवश उनके गुरु राजर्षि जनक जी ने उन्हें शाप दिया था कि "तू पापरूपी कलियुग देखेगा और जब संसार में गुरु नानक जी अथवा उनके उत्तराधिकारी किसी गुरु का तू दर्शन करेगा तब तेरी मुक्ति होगी"। इतना कह कर योगी ने प्राण छोड़ दिए। हम नहीं कह सकते कि ऊपर लिखी घटना कहां तक सत्य है। इसके विचारने का भार हम विचारवान् पाठकों ही पर छोड़ कर अपने लेख का सिलसिला जारी रखते हैं।

आज दिन अमृतसर का सिक्ख मन्दिर जो "दरबार साहब*" के नाम से विख्यात है, इन्हीं गुरु अर्जुन जी ही की कीर्ति है। संवत् १६४५ में इस तालाब को, जिसकी नीव गुरु रामदास जी ने डाली थी, इन्होंने बनवा कर पूरा किया और तालाब के बीच में एक अत्यन्त सुन्दर मन्दिर निर्माण करवाया जिसकी शोभा आज तांई दर्शकों का मन मोह लेती है।

गुरु अर्जुन जी ने अपने सिक्खों को अमृतसर की आबादी बढ़ाने की आज्ञा दी। इस कारण आस पास के सिक्ख सब ग्राम छोड़ छोड़ कर अमृतसर में आ बसे।

* यह रीति बराबर दसवें गुरु तक जारी रही।

* इस मन्दिर को संवत १८१८ में काबुल के बादशाह अहमद शाह अब्दली ने गिरवा दिया था। फिर महाराज रणजीत सिंह जी ने इसका जीर्णोद्धार करवाया।

एक समय लाहोर का हाकिम हुस्न ख़ां इनके दर्शनों को आया। वह इनके धर्मोपदेशों से ऐसा मुग्ध हो गया कि सर्वदा इनके आज्ञानुसार सब काम करने लगा। अर्जुन जी के नाम पर उसने लाहोर पुर्वी बाज़ार में एक बावली भी बनवाई थी। आज दिन सिक्ख लोग जिस ग्रन्थ साहब को पवित्र मानते और जिसकी पूजा करते हैं, उसको संग्रह कर लिखने का गौरव भी अर्जुन ही जी के बांटे पड़ा है। इन्होंही ने श्री गुरु नानक जी की भक्तिपूर्ण बाणियों को इकट्ठा कर ग्रन्थ साहब लिखा। इस ग्रन्थ में उन्होंने अन्य अन्य प्रसिद्ध भक्तों के भजन भी भिन्न भिन्न राग रागिनियों में लिपिबद्ध किए हैं। सिक्खों की प्रत्येक सङ्गत में इसकी प्रतिलिपि वर्तमान है। इसकी पूजा होती है, और कड़ाह प्रसाद (हलुवा) भोग लगता है। मरने के समय सिक्ख लोग ग्रन्थ साहब का पाठ सुनते हैं। गुरु अर्जुन जी ने जिस ग्रन्थ को लिखा था, अमृतसर दरबार साहब में उसकी पूजा होती है। बैशाखी के मेले में, जो बैशाख मास में होता है, सर्व साधारण बिना रोक टोक के ग्रन्थ साहब का दर्शन कर पाते हैं। इस ग्रन्थ साहब को संवत १८८८ में पञ्जाब केशरी महाराजा रणजीत सिंह ने दर्शनार्थ उठवा मंगवाया था और २५०००) इसकी भेंट दिए थे। इसके पीछे संवत १९१६ में पटियाला के राजा नरेन्द्र सिंह ने भी इसे दर्शन हेतु मंगवा भेजा था और दर्शन पूजन के अनन्तर ७००) की जागीर भेंट दी थी। बड़ी बड़ी दूर से लोग अर्जुन जी के दर्शन को आया करते थे और उन्हें धन रत्नादिक भेंट दिया करते थे। परन्तु उस धन का अधिकांश सत्कार्य में व्यय होता था। इसी समय में अमृतसर में गुरु की बाजार भी बनी थी। उसी समय के लगभग लाहोर के हाकिम वज़ीर खां का जलन्धर रोग गुरु जी ने अपने शिष्य भाई 'बूढ़ा' से आराम करवाया था।

आप लोगों को याद होगा कि गुरु अर्जुन जी का बड़ा भाई पृथिवीचन्द जब से घर से निकल के गया, बराबर अर्जुन जी की अनिष्टचेष्टा में लगा रहता था। परन्तु अर्जुन जी के चढ़ते प्रताप के सामने उसकी कोई चेष्टा भी सफल नहीं होती थी, यहां तक कि उसने एक बार शाहनशाह अकबर से जाकर शिकायत की कि अर्जुन जी डकैतों के सर्दार हैं और उनके शिष्य सब डाँकू हैं। इन लोगों ने डकैती से ही इतना ऐश्वर्य बढ़ा लिया है। गुरुआई इत्यादि, लोगों को ठगने के लिये, सब इनका भंडपना है। अकबर ने पृथिवीचन्द की बातों पर विश्वास करके अर्जुन जी की गिरफ्तारी के लिये पृथिवीचन्द के साथ एक अफ़सर कर दिया। परन्तु दैवसंयोग से वह अफ़सर मार्ग ही में अग्नि से जल कर मर गया। अन्त में जब अकबर ने एक योग्य मनुष्य को अर्जुन जी का सच्चा हाल जानने के लिये भेजा तो वह अर्जुन जी की सरलता, भगवद्भक्ति देख कर परम सन्तुष्ट हुआ और अकबर से आकर उसने सब हाल कहा। अकबर स्वयम् उनके दर्शनों को गया और वहां जाकर ग्रन्थ साहब सुनना चाहा, क्योंकि अर्जुन जी के विपक्षियों ने उसे यह भड़का दिया था कि ग्रन्थ साहब में अर्जुन जी ने राजविद्रोह की बातें लिख रक्खी हैं। अर्जुन जी ने बिना सङ्कोच के सब प्रकार से उलट फेर कर जैसा बादशाह ने फरमाया, ग्रन्थ साहब सुना दिया। क्रोधित होना तो दूर रहा, वरन् अपूर्व भक्तिरसपूर्ण भजनावलियों को सुनकर उसका मन मुग्ध हो गया और उसने बड़े भक्ति भाव से ग्रन्थ साहब को ५१ अशरफ़ी भेंट की और अर्जुन जी के मधुर सम्भाषणों से प्रसन्न होकर वह उन पर विशेष श्रद्धा भक्ति रखने लगा, तथा एक वर्ष के लिये अर्जुन जी ने उस प्रान्त का कुल लगान अकबर से माफ़ करवा दिया। इसका कारण यह था कि उस वर्ष उस प्रान्त में अकाल पड़ गया था और ऐसी अवस्था में सुकाल की भांति राजकर देना गरीब किसानों के लिये सर्वथा असम्भव था। अतएव उन लोगों ने गुरु अर्जुन जी की शरण पकड़ी थी

और उन्हींके उपकार करने की नीयत से अर्जुन जी ने अकबर को लगान माफ़ कर देने का अनुरोध किया था। दयाशील बादशाह ने भी अर्जुन जी का मनोरथ सफल किया। जब अर्जुन जी के चिरशत्रु पृथिवीचन्द और उसके साथियों ने देखा कि 'हमलोग जितना ही अर्जुन जी की अनिष्टचेष्टा करते हैं, उतना ही इनका यश और प्रताप और भी बढ़ता जाता है,' तो उन लोगों के हृदय में ईर्षानल रात दिन दहकने लगी। पाठकगण! आप लोगों को कदाचित् कहना नहीं होगा कि इन सब बुराइयों के मूल अर्जुन जी के सगे भाई पृथिवीचन्द ही थे। हाय, भारत, तू कैसी दुर्भाग्य है। आज नया नहीं, लाखों वर्ष से लोग देखते और सुनते चले आते हैं कि भ्रातृविरोध का कैसा खोटा परिणाम हुआ है। इसी भ्रातृविरोध ने लङ्का का नाश करवाया, इसीने महाभारत करवा कर पृथ्वी वीरशून्य कर डाली, परन्तु तौभी भारतवासी नहीं चेतते। भाइयो, एक बार श्री रामचन्द्र जी के वचन की ओर तो टुक ध्यान दो। देखो, रावण के साथ युद्ध करते समय जब लक्ष्मण जी को शक्ति लगी है तो उन्होंने क्या कह कर विलाप किया है "अस विचार उठहु तुम ताता। मिलहि न पुनी सहोदर भ्राता"। आहा, क्या भ्रातृप्रेम है! शरीर पुलकित हो जाता है! परन्तु शोक है कि ऐसे ऐसे उच्च आदर्श सामने रहते हुए भी भारतवासी भ्रातृप्रेम को एक बार ही तिलाञ्जलि दे दें।

अस्तु, उस कुटिल भ्रातृविरोधी ने अनेक प्रकार महात्मा अर्जुन जी को हानि पहुंचाई। यहां तक कि एक बार उसने उनके पुत्र हरगोविन्द को ज़हर देने की भी चेष्टा की, परन्तु पापी की वह भी चेष्टा विफल हुई। गुरु अर्जुन जी अच्छी प्रकार से जानते थे कि हमारे भाई साहब ही हमारे पीछे पड़े हैं। परन्तु उस सात्विकी-स्वभाव-सम्पन्न उदारचेता महात्मा ने एक घड़ी के लिये भी अपने भाई का बुरा न सोचा, वरन् वे बराबर जगदीश्वर से पृथ्वीचन्द की मङ्गलकामना किया करते थे।

अकबर की मृत्यु के पीछे जब जहांगीर भारत का सम्राट हुआ तो उसके शाहज़ादे खुसरो ने इस बात से चिढ़ कर पिता के विरुद्ध विद्रोह खड़ा किया। अन्त को इसी बलवे में उसने अपने प्राण गंवाए। जिस समय विद्रोहियों की पकड़ धकड़ जारी थी, उस समय संदेह करके गुरु अर्जुन जी भी अपने कई साथियों समेत खुसरो के साथ विद्रोह में शामिल होने के अपराध में पकड़ लिए गए और विशेष कर जहांगीर के एक हिन्दू मन्त्री की कुटिलता से इनपर बड़े बड़े ज़ुल्म किए गए। इनके साथी सभों को सूली दे दी गई और जब इनके बड़ी निर्दयता से मारे जाने का प्रबन्ध होने लगा तो इन्होंने एक बार रावी में स्नान करने की प्रार्थना की। प्रार्थना स्वीकार होने पर कतिपय रक्षकों के साथ वह रावी स्नान को चले और अपनी मृत्यु निकट आई जान कर स्नान करती बार उन्होंने ऐसा गोता मारा कि नदीगर्भ में लीन हो गए और फिर बाहर न निकले। इसी प्रकार संवत १६६३ साल में महात्मा अर्जुन जी का परलोक बास हुआ।

बेणीप्रसाद

भाग ३] जुलाई १९०२ ई० [संख्या ७

विविध वार्ता

गत मास की सरस्वती में हम प्रयाग-निवासी बाबू ब्रजमोहनलाल की मृत्यु का समाचार अपने पाठकों को सुना चुके हैं। उस समय तक हमें उनका चित्र नहीं प्राप्त हो सका था इसलिये उसे हम अपने पाठकों की भेंट नहीं कर सके। इस मास की पत्रिका के साथ बाबू ब्रजमोहनलाल का चित्र दिया जाता है जिसके देखने से पाठक जान सकेंगे कि उनकी चाल और रहन कैसी सादी थी और उनके उद्देश्य कैसे सहन और अनुकरणीय थे।

* * *

प्रान्तिक सरकार की स० १९००-१९०१ की रिपोर्टें अभी प्रकाशित हुई है, उसमें से मुख्य मुख्य बातें हम नीचे लिखते हैं। इस वर्ष तिब्बत और नैपाल से ब्यापार अधिकता से हुआ। गत वर्ष १२५ लाख का माल नैपाल और तिब्बत में बिका था, परन्तु इस वर्ष १३४ लाख का माल बिका। भारतवर्ष से नैपाल को रूई, चीनी, अनाज और मट्टी का तेल जाया करता है। इस वर्ष अकाल-पीड़ित लोगों के दुख निवारणार्थ ६०,००० रु० सरकारी कोष से व्यय हुआ और २५००० रु० अकालक्लेश निवारिणी सभा से मिला। ४८०,०६७ मनुष्यों ने रीलीफ में काम किया जिनका व्यय प्रत्येक मनुष्य के हिसाब से =) प्रतिदिन पड़ा। इस वर्ष ९०५० मनुष्य डेमिरारा, फीजी, त्रिनिडाड और मैरिशस (मिरच देश) मज़दूरी करने और रुपया कमाने के लिये भेजे गए।

* * *

आबकारी से सरकार को इस वर्ष सबसे अधिक आमदनी हुई, अर्थात् ६५१७८१५ रु० की आय हुई जो गत वर्ष से ३८५ लाख अधिक है। देशहितैषियों को इस पर विचार करना चाहिए। शिक्षा में अब लों ये प्रदेश पीछे ही पड़े हैं। गत वर्षों से स्कूलों की संख्या में न्युनता है, परन्तु पढ़ने वालों की संख्या में ७७३२ की अधिकता है। शिक्षा पर इस वर्ष ४५,५५,२५३ रुपया व्यय हुआ। बरेली के जेहलख़ाने में लड़के-कैदियों के लिये स्कूल स्थापित है, उसका नाम रिफ़ारमेटरी स्कूल है। इस वर्ष यह शिक्षाविभाग में मिला दिया गया और एक योरोपियन सुपरिण्टेण्डण्ट का पद स्थापित हुआ

है। यह स्कूल चुनार में लाया जायगा। इस वर्ष प्रत्येक बालक पर वार्षिक ५५।॥)॥ व्यय हुआ। बड़ी प्रसन्नता की बात है कि इस स्कूल के पढ़े हुए लड़के जेहलख़ाना छोड़ कर वही रोज़गार करते हैं, जो उन्हें सिखाया जाता है ग्रैार ग्राशा है कि बहुत शीघ्र बदमाशों की संख्या कम हो जायगी। हम यहां अपनी सरकार को हृदय से धन्यवाद देते हैं कि जिसने इस प्रवन्ध से न केवल उन बालकों के जीवन सुधारने का उपाय किया कि जो अन्यथा ठग ग्रैार जुआरी होते, वरञ्च हमारे समाजसुधारकों को यह उपदेश दिया कि देखो तुम लोग केवल वर्ष में एक दिन सोशल कान्फरन्स कर लेते हो, फिर रुपया कमाने ही की धुन में तुम्हारा समय नष्ट होता है। प्रत्येक दिन तुम देखते हो कि महन्त ग्रैार साधु छोटे छोटे नाबालिग लड़कों को गोद लेकर उन्हें भीख मांगना सिखाते हैं, पर तुम्हें इससे क्या मतलब, तुम हर एक सुधार की आशा सरकार ही से रखते हो। यह विचार करने की बात है कि जो लड़के किसी अनाथालय अथवा फ़्रीस्कूल में जाकर व्यापारी, बुद्धिमान ग्रैार सज्जन होते व इन साधुओं के हाथों में जो स्वयं कुएं में गिर कर ग्रैारों को भी खींचते हैं, पड़कर बदमाश लुच्चे ग्रैार आलसी होंगे! ग्रैार फिर नाबालिग़ बच्चों पर साधुओं का अधिकार कैसा?

***

स्त्री शिक्षा अब तक पादरियों ही के हाथों में है, पर सरकारी मदर्सों में भी पढ़नेवालियों की अधिकता होती जाती है। हर्ष की बात है कि सरकार ने लखनऊ में एक पाठशाला खोलने का प्रवन्ध किया है जहां की पढ़ी हुई लड़कियां कन्या पाठशालाओं में अध्यापिका हुआ करेंगी। इसके लिये बहुत सा पुरस्कार ग्रैार वृत्ति भी मिलेगी।

***

बनारस में ९९,०१९ रु० नलों के बनाने में खरच हुआ। मसूरी में पानी की कल का बनाना निश्चय हुआ। टीका लगाने की प्रथा सर्वप्रिय हो चली है।

***

इन प्रान्तों में ४ पागलख़ाने हैं—बरेली, बनारस, आगरा ग्रैार लखनऊ। सरकार की इच्छा है कि आगरे में योरोपियन पागलों के लिये सदर पागलख़ाना बनवादे। देखा गया है कि हिन्दुस्तानी पागलों में अधिक लोग गांजा पीने के कारण सौदाई हुए हैं, इन पागलख़ानों में ८१५४८ रु० ख़र्च हुए जिसमें से अङ्गरेज़ों ने योरोपियन लोगों के लिये २३८९ रु० आपस में चन्दे से दिया। पागल लोगों की मेहनत से ३०३६ रु० का मुनाफ़ा हुआ।

अस्पतालों से ३६३३१७० मनुष्यों को दवा मिली। कुल अस्पताल ४८४ हैं जिनमें ७३४६०१ रु० ख़र्च हुआ।

रिपोर्ट में लिखा है कि डिस्ट्रिक्टबोर्ड्स में लोग अब अधिक अनुराग प्रगट करते हैं। हमें अभी इसमें सन्देह है।

आगरा, अलीगढ़, मैनपुरी, एटा, फ़तहगढ़ ग्रैार मेरठ में डकैती अधिक हुई।

पुलिस को दुरुस्त करने के लिये प्रान्तिक सरकार ने प्रस्ताव किया है कि १ डिप्टी इन्सपेक्टर जेनरल ग्रैार हो। १४ असिस्टेन्ट सुपरिन्टेन्डेन्ट, १४ इन्सपेक्टर ग्रैार एक डिप्टी सुपरिन्टेन्डेन्ट जो हिन्दुस्तानी हों नियत किए जांय।

मैनपुरी, इटावा, फ़र्रुख़ाबाद में अब तक लोग अपनी लड़कियों को मार डालते हैं।

जेहलख़ाने में २८७६७ कैदी थे। गत वर्ष २७४३९ थे। इनमें से ४९०५ कई बेर क़ैद हो चुके हैं। ३१६७ अपील करने पर छोड़ दिए गए, २४५६ मियाद पूरी होने पर ग्रैार ८१२८ नेकचलनी पर छोड़े गए। ८ कैदी भागे जिनमें से पकड़े गए।

हिन्दी ग्रन्थों में अधिक उपन्यास छपे। "भयानक भ्रमण" जो बेलून पर से अफ़्रिका का भ्रमण है एक अङ्गरेज़ी पुस्तक का अनुवाद है। स्त्रीशिक्षा पर दो ग्रन्थ हैं—"पतिव्रतधर्मप्रकाश", जो मेरठ

स्वामीप्रेस में छपा है और "स्त्रीधर्मप्रकाश" जिसको पेशावर के काशीराम बर्म्मा ने रचा है। इनके अतिरिक्त कई ग्रन्थों के नाम हैं। सरस्वती की हिन्दी को कठिन हिन्दी लिखा है। अङ्गरेज़ी ग्रन्थों की आलोचना करते हुए गवर्नमेन्ट ने लाला बैजनाथ की बनाई "Hinduism" की प्रशंसा की है और भूल से उन्हें कायस्थ समझ लिया है। हिन्दी पत्रों में भरतजीवन और राजदूत का सबसे अधिक प्रचार है। हमें हर्ष है कि जनसंख्या के समय लोगों का यह यत्न कि किसी प्रकार उर्दू अथवा हिन्दी जाननेवालों की संख्या अधिक हो जाय सरकार पर भी प्रकट हो गया। हमें हर्ष इसलिये है कि हिन्दी जाननेवालों को तो जनसंख्या के समय झूठी कार्रवाई करने की कोई आवश्यकता ही नहीं थी। हां, जिन्होंने कोलाहल अधिक मचाया, जिन्होंने सर एंटनी को झूठा बनाया, जिसके कारण उक्त महोदय को स्वयं एक पत्र पञ्जाब के एक प्रसिद्ध पत्र को लिखना पड़ा, उन्हींसे डर था। रिपोर्ट के शब्द ये हैं—

The approaching census operations led to a controversy in the Press between Hindu and Muhammadan journalists, the former asserting that the advocates of Urdu would take advantage of the census to manipulate the returns in favour of an Urdu majority of Urdu-knowing persons and the converse argument being raised by their opponents. One paper contended that there was only one language spoken in the provinces by whatever name it might be called and suggested, that in order to avoid any manipulation of the figures, either the language column should be identical with that of the last census or that the two languages should be strictly and distinctly defined. Another observed that the distinction of sect played an important part in the fabric of native society and insisted that the sect to which every person belonged should be ascertained and recorded in the schedules.

* * *

युनान के किसी बादशाह ने अपने बुद्धिमान मन्त्री से पूछा था कि क्या यह सम्भव है कि मेरे राज्य में बसनेवालों की संख्या मालूम होजाय! मन्त्री ने बहुत विचार कर नैराश्य प्रगट किया। जो बात युनान के एक छोटे से राज्य में बुद्धिमानों ने असम्भव समझी थी, विशाल अङ्गरेज़ी राज्य में वह सम्भव हो गई। विचारा युनानी बादशाह केवल जनसंख्या जानने में सफलीभूत न हुआ, अङ्गरेज़ी राज्य में प्रत्येक दसवें वर्ष जो जनसंख्या होती है उसमें विद्या, स्वास्थ्य, व्यापार, धर्म सम्बन्धी आदि अनेक विषयों पर अनुसन्धान होता है। सच तो यह है कि यदि किसी देश की उन्नति अथवा अवनति के विषय में पूर्ण ज्ञान प्राप्त करना हो तो मनुष्यगणना की रिपोर्ट से बढ़ कर सहायता और किसीसे नहीं मिलसकती। इस बेर की रिपोर्ट से हमें यह देख कर बड़ा खेद हुआ कि हिन्दुओं की संख्या गत दस वर्ष में ६१३४४७ न्यून हो गई। इसका कारण लोग अकाल और प्लेग बतलाते हैं, पर जब हम और जातियों की संख्या में वृद्धि देखते हैं तो हमें इसका कारण प्लेग और अकाल नहीं मालूम होता। यदि प्लेग और अकाल ही इसका कारण होता तो मुसलमान, ईसाई इत्यादि सबकी संख्या घटती; परन्तु नहीं। सिवाय हिन्दु और जैनों के और किसीकी संख्या नहीं घटी। प्रिय हिन्दुओ, अब विचारने का समय है। अब तक हम आप घमंड के उमंग में आकर कहा करते थे कि बौद्धों, मुसलमानों, ईसाइयों, सबने हमारे धर्म पर आघात किए, पर हमारा धर्म अटल है। अब हिसाब लगाइए कि दस वर्ष में ६ लाख

से अधिक हिन्दू न्यून हुए तो कितने वर्ष तक हम में ऐसे लोग और रह सकते हैं जो "हमारा धर्म अटल है" की ध्वनी दे सकते हैं! एक ऐसे गृह की कल्पना करो कि जिसमें अन्दर जाने का रास्ता तो बन्द हो और बाहर आने के कई रास्ते हों और उसमें से जो बाहर आता है फिर अन्दर नहीं जा सकता, ऐसी अवस्था में कदापि सम्भव नहीं कि एक दिन ऐसा न आवे कि वह गृह खाली होजाय! क्या यही दशा हिन्दूधर्म की नहीं है! अकाल आया कुछ कङ्गले हिन्दू मरे, इनके लड़के भूख के मारे भटकते हुए उदार और दयावान पादरियों के हाथ आए और ईसाई हो गए, अथवा किसी हिन्दू बालक ने भूल चूक कर किसी अन्य धर्मावलम्बी के साथ खालिया, हुक्का पानी बन्द! हिन्दु समाज के नायकों को इन बातों पर विचार करना चाहिए और ऐसे उपाय सोचने चाहिए जिसमें हिन्दूधर्म की जड़ दिनोदिन दृढ़ होती चली जाय और ऐसा न हो कि उसके माननेवालों की संख्या प्रतिदिन घटती जाय।

* *
*

इस मास की पत्रिका के साथ हम राजा रवि वर्म्मा कृत 'शकुन्तला जन्म' के चित्र की प्रतिलिपि देते हैं। राजा रविवर्म्मा के मनोहर और सुन्दर चित्रों में से यह भी एक है। इस चित्र में मेनका, शिशु शकुन्तला और वृद्ध ऋषि विश्वामित्र के चेहरों का भाव बड़ी ही सुन्दरता से चित्रित किया गया है। पाठक चित्र को ध्यानपूर्वक देख कर इन भावों को हृदयङ्गम कर सकते हैं। राजा रविवर्म्मा के चित्रों का मूल्य यद्यपि अधिक नहीं है, पर प्रत्येक पुरुष की सामर्थ्य के बाहर यह बात है कि वह सब चित्रों को खरीद सके और तिसपर से बहुत से चित्र ऐसे हैं जिन्हें बड़े राजा महाराजों ने खरीद लिया है और जिनका देखना भी अब, गिने चुने लोगों को छोड़ कर असम्भव है। इस लिये हमने उन चित्रों को सरस्वती के साथ प्रकाशित किया। अभी और कई चित्र बाकी हैं जिन्हें हम समय समय पर सरस्वती में प्रकाशित करते रहेंगे।

* *
*

हमें भारतभ्रमण नामक पुस्तक का पहिला और दूसरा भाग प्राप्त हुआ है। चरजपुरानिवासी बाबू साधुचरण प्रसाद ने पांच वेर यात्रा करके भारत वर्ष के प्रायः समस्त प्रसिद्ध प्रसिद्ध नगरों के स्थानों को देखा। इन्हीं यात्राओं का वृत्तान्त उन्होंने लिपिबद्ध करना विचारा है। यह पुस्तक पांच भागों में विभाजित होगी, जिनमें पहिले दो भाग छपकर अभी प्रकाशित हुए हैं—तीन भाग शेष हैं। प्रथम भाग में लग भग १०० पृष्ठ की भूमिका और ३३२ पृष्ठों में मूल ग्रन्थ है, जिसमें स्थान स्थान पर सुन्दर सुन्दर चित्र दिए हैं। इस भाग में संयुक्तप्रदेश, मध्यभारत, राज पुताना अजमेर और मध्यप्रदेश के नगरों का वर्णन है। दूसरा खण्ड ५६० पृष्ठों का है और इसमें संयुक्त प्रदेश, अवध, पंजाब और सिन्ध के नगरों का वर्णन है। हिन्दी में यह पुस्तक अपूर्व निकली है। इतनी बड़ी यात्रा अब तक कोई नहीं छपी थी। पुस्तक लिखने के ढंग और भाषा आदि के विषय में कोई बात त्रुटि की नहीं है कि जिसके विषय में कुछ कहा जाय। ऐसे पुस्तकों के छपने से हिन्दी भाषा का गौरव है और हम ग्रन्थकर्ता को धन्यवाद देते हैं कि उन्होंने ऐसी पुस्तक के लिखने और छपवाने का उद्योग और साहस किया। यद्यपि ग्रन्थकर्ता ने यात्रा आठ वर्ष पूर्व की थी और उसी समय का वृत्तान्त उसमें लिखा है जिससे आधुनिक स्थिति में कहीं कहीं बहुत भेद पड़ गया है, तथापि ग्रंथ में बहुत सी बातें ऐसी हैं जो सब के लिये उपयोगी होंगी। हमें यह प्रकाशित करते दुःख होता है कि ग्रन्थकर्ता ने अपनी सम्मति अथवा अपने मन की भावनाओं को कहीं भी स्थान नहीं दिया, जिससे उनके विषय में हमें कहीं भी कुछ पता नहीं लगता और पढ़नेवालों को किसी प्रकार

की शिक्षा नहीं मिलती। भिन्न भिन्न स्थानों और वस्तुओं को देख कर मनुष्य मात्र के हृदय में भांति भांति के विचार और भावनाएं उत्पन्न होती हैं, परन्तु ग्रंथकर्ता ने अपने को इन बातों से बचाया है जिससे हमारी सम्मति में ग्रन्थ में एक प्रकार का अभाव रह गया है। पर इसके होने पर भी ग्रंथ उत्तम और प्रशंसनीय है। प्रति भाग का मूल्य भी बहुत कम है, अर्थात् केवल १॥) मात्र।

श्रीगुरु हरगोविन्द जी

महात्मा भर्तृहरि जी का बचन है—परिवर्तिनि संसारे मृतः को वा न जायते, स जातो येन जातेन याति वंश समुन्नतिम्। सो ठीक ही है। भला यदि इतना भी किसी पुरुष ने न कर दिखाया तो फिर उसका मनुष्यतन धारण करना क्या खाक सुफल होगा। फिर तो उसकी गिनती उन्हीं साधारण मनुष्यों में होगी जिन्हें पशु की उपमा दी जाती है, क्योंकि पशु और मनुष्य में यही भेद है कि उन्हें उपर्युक्त श्लोकार्थ के अनुसार कार्य करने का ज्ञान नहीं होता। मनुष्य में उस परमपिता परमेश्वर ने यह बात विशेष दी है और आवश्यकतानुसार वह अपने ज्ञान से लाभ उठा कर अपना जन्म सुफल कर सकता है। आवश्यकतानुसार, मैंने इसलिये कहा कि संसार में भिन्न भिन्न अवस्थाही में पड़ कर यशस्वी पुरुष भिन्न भिन्न मार्गों पर चलके महात्मा नाम धारण करने के योग्य हो गए हैं। परमात्मा की वेदरूपी आज्ञानुसार प्रत्येक मनुष्य को महात्मा होने का उद्योग करना उचित है और उसका उपाय भी सहज है, केवल साधन कठिन है। वह साधन क्या है—"कर्तव्यपालन"। भावी महात्मा पुरुष स्वभावतः कर्तव्यसाधन की ओर चल पड़ते हैं, अथवा यों कहिए कि मौका आतेही उनके यह भाव उत्तेजित होकर उनके जीवन ही की चाल सहसा पलट देते हैं। साधारण मनुष्यों में यह बात नहीं पाई जाती। आप लोगों ने सुना होगा कि घटनाविशेषही ने राजा गाधी के पुत्र राजकुमार विश्वामित्र को महर्षि विश्वामित्र बना दिया और ब्राह्मणत्व पद की प्राप्ति करा दी; और आप लोगों से यह बात भी न छिपी होगी कि महर्षि जमदग्नि के पुत्र परशुराम जी ने क्षत्रियत्व का व्रत क्यों धारण किया। अपने परम पूज्य पिता पर क्रूर क्षत्रिय का अत्याचार देख कर, भला तेजस्वी ऋषिकुमार क्यों कर चुप बैठे रहते। उन्होंने अभिमानी क्षत्रिय को अपने फरसे का मजा चखा दिया और ऐसा चैतन्य करा दिया कि फिर कभी भी क्षत्रिय ने ऋषियों को सताने का साहस नहीं किया।

सरस्वती के गत अङ्क में आप लोगों ने देखा होगा कि महात्मा गुरु अर्जुन जी पर यवन सम्राट ने कैसे कैसे अत्याचार किए और अन्त को बिचारे शान्तचित्त महात्मा ने दुष्टों के अत्याचार से दुखित हो प्राण ही दे दिए। सच पूछिए तो यहीं से सिक्ख जाति की वीरता की जड़ जमी। भला क्या ऐसे महात्मा पुरुष का वलिदान खाली जाता। उनके तेजस्वी पुत्र हरगोविन्द जी से यह अन्त न सहा गया। पिता की इस शोचनीय मृत्यु ने उस वीर युवक के रग रग में जोश भर दिया और परम्परागत धर्मचर्चा के बदले उन्हें युद्धचर्चा का प्रेमी बना दिया और इस दृढ़प्रतिज्ञ युवक ने वह वीरता दिखाई कि प्रभातचन्द्र की नाईं यवन सम्राट का तेज भी इस बालसूर्य्य के आगे फीका पड़ गया। हमारे इस वीर युवक का जन्म संवत् १६५२ (ईसवी १५९५) आषाढ़ सुदी ६ रविवार को आधी रात के समय माता गङ्गाजी के गर्भ से हुआ था। इस पुत्ररत्न के उत्पन्न होने से पिता अर्जुन जी को अपार आनन्द हुआ, क्योंकि उनकी युवावस्था अतीत हो गई थी। प्रौढ़ावस्था का भी मध्याह्नकाल आ गया था। तब तक सन्तान न होने के कारण वह सर्वदा सन्तापित रहा करते और दिन पर दिन उनकी पुत्रलालसा बढ़ती जाती थी, जिस कारण उन्हें और भी कष्ट होता

था। फिर किस प्रकार उनकी स्त्री गङ्गाजी ने एक तपस्वी से पुत्र होने की आशीष पाई, इसका वर्णन गुरु अर्जुनजी के चरित्र में आ चुका है। इन्हीं योगीश्वर के आशीर्वाद से यह पुत्र अति सुन्दर और तेजस्वी हुआ, तथा पिता ने इतने दिनों की आशा का फल पा अपने को धन्य समझा और अपने दुलारे पुत्र का नाम हरगोविन्द रक्खा। इस पुत्रका तेज उसकी अवस्था के साथ क्रमशः बढ़ने लगा। अर्जुनजी भी इस पुत्ररत्न पर विशेष स्नेह रखते थे।। आप लोगों को यह बात अच्छी प्रकार से विदित होगी कि अर्जुन जी का बड़ा भाई पृथ्वीचन्द उनसे सदा वैर रखता था। उस वैर का कारण भी आप लोगों पर अच्छी प्रकार से विदित है। जब अर्जुन जी बहुत समय तक निस्सन्तान रहे तो पृथ्वीचन्द की विद्वेषाग्नि कुछ शान्त सी हो चली थी। क्योंकि उसे पूर्ण आशा हुई थी कि अर्जुन जी के बाद मेरा पुत्र तो अवश्य गुरु की गद्दी का उत्तराधिकारी होगा। परन्तु विधाता को यह स्वीकार न था कि पृथ्वीचन्द के वंशधर गुरु की गद्दी का सुख भोगें। इसलिये उसने अर्जुन जी के घर पुत्ररत्न देने की कृपाकर दुखित दम्पति का हृदय शीतल किया। परन्तु इसके विपरीत कुटिल पृथ्वीचन्द की दबी दबाई द्वेषाग्नि भड़क उठी। उसकी सब आशा विफल हो गई, उसके सब सुखस्वप्न हवा हो गए। इस निराशा ने उसे और भी कुटिलतर बना दिया। उस दुष्ट ने अर्जुन जी के नयनों के तारे निर्दोष बालक हरगोविन्द की हत्या करना स्थिर किया। सच है "आतुरानां किं न करोति पापं"। इस मायारूपी संसार में आकर जो पुरुष लोभ और क्रोधरूपी शत्रु से बचा है वह धन्य है। नहीं तो कितनों ही को इस लोभ और क्रोधरूपी अग्नि ने भस्म कर दिया और कर रही है। भला पृथ्वीचन्द की क्या हकीकत थी, यह शत्रुगण मनुष्यों को पूरा अन्धा बना कर उसके धर्म और आत्मिक बल की मनमानी लूट करते हैं। तदनुसार पृथ्वीचन्द भी इसके परिणाम से बिलकुल अन्धा हो रहा था। उस क्रूरमति पापान्ध ने यह भी न विचारा कि मेरे इस कार्य का परिणाम क्या होगा। मौका पाकर वह एक दिन शिशु हरगोविन्द को घर से बाहर कुछ दूर ले गया और वहां उसके सामने सर्प छोड़वा दिए। इस दुष्टाधिराज ने यह विचार कर शिशु हरगोविन्द की हत्या सर्प-दंशन से करवानी चाही कि जिसमें मुझपर लोग इस हत्या की शङ्का न करें, मैं अनायास यह कह कर छूट जाऊं कि सर्पदंशन से इसकी मृत्यु हो गई। परन्तु शिशु हरगोविन्द तो भविष्यत में महा वीरपुरुष होनेवाला था और उसका यश संसार में फैलनेवाला था। इन सर्पों से भला वह क्योंकर मर जाता। हरगोविन्द जी सर्प देखते ही ज़ोर ज़ोर से चिल्ला कर रोने लगे। संयोगवश कहीं अर्जुन जी वहां आ निकले। अपने प्रियतम पुत्र की रोदनध्वनि पहिचान कर वे शीघ्र घटनास्थल पर आ मौजूद हुए और वहां की अवस्था देख कर उन्होंने अपने भाई से पूछा कि "यह क्या माजरा है," जिस पर पृथ्वीचन्द ने उत्तर दिया कि मैं हरगोविन्द को सर्पों का तमाशा दिखाने साथ ले आया था, सो यह सर्पों को देखते ही रोने लगा। चलिए इसे घर इसकी माता के पास पहुंचा आवें। बिचारा लड़का हँस पड़ा। उसी समय वह अर्जुन जी के साथ उनके घर जाकर बालक हरगोविन्द को गङ्गा जी की गोद में दे आया और वह भी माता का स्तन पान कर शान्त हुआ।

इधर जब इस दुष्ट ने देखा कि "यह वार खाली गया तो उसने अब दूसरा उपाय रचा। वह उपाय भी अद्भुत ही था। पाठको, आप शायद भागवत पुराण में पढ़ा होगा कि राजा कंस ने शिशु श्रीकृष्ण की हत्या के हेतु पूतना को भेजा था, जो सुन्दरी का वेष धर स्तनों में विष लगा श्रीकृष्ण को दुग्धपान करा मारने को [illegible] से गई थी, परन्तु उसकी इच्छा पूर्ण न हुई। [illegible] ठीक इसका अविकल अभिनय यहां भी हुआ

अर्थात् पृथ्वीचन्द ने एक धाय अर्जुन जी के यहां नौकर रखवा दी, जिसने पृथ्वीचन्द की शिक्षा के अनुसार स्तनों में विषलेपन कर हरगोविन्द जी को दूध पिलाना चाहा। परन्तु महात्मा नानक जी का वचन क्या खाली जाता, जिन्होंने कहा है कि "जाको राखे साइयां मार न सके कोय। बाल न बांका कर सके जो जग वैरी होय"। अतएव यहां भी शिशु हरगोविन्द ने उस धाय की गोद में जाते ही रोदन करना आरम्भ किया। अनेक प्रकार के सान्त्वना से जब तक माता की गोद में न गए, चुप न हुए। उस धाय ने कई बार अपने अभिप्रायसिद्धि की चेष्टा की; परन्तु जब वह हरगोविन्द जी को गोद में लेती तभी वे चिल्ला कर रोने लगते। अतएव हरगोविन्द जी की माता ने धाय को अपने पुत्रपालन के उपयुक्त न जान नौकरी से छुड़ा दिया। पृथ्वीचन्द के दोनों वार खाली गए। उसे चारों ओर निराशा ने आ घेरा। ईर्षा और क्रोध से उसकी आत्मा तड़फड़ाने लगी और वह रात दिन हृदय में जलने लगा। इधर हरगोविन्द जी दिन दिन बड़े होने लगे। बाल्यावस्था ही में इन्हें कसरत कुश्ती तथा अस्त्रधारण से अधिक शौक था। क्रमशः जब युवावस्था प्राप्त हुई तब तो इनका पूर्ण तेज विकसित होने लगा। घोड़े पर चढ़ने, अस्त्र बांधने और शिकार खेलने के ये बड़े शौकीन थे। सब मिलाकर इनके तीन विवाह हुए थे। पहिला तो संवत १६६१ भादों सुदी ७ को नारायण दास की कन्या दामोदरी जी से, दूसरा संवत १६७० वैशाख सुदी ८ को हरिचन्द खत्री की कन्या नानकी जी से, और तीसरा संवत १६७२ सावन बदी ११ को दुर्गामल की कन्या महादेवी से।

पाठको! आपलोगों को सुनके आश्चर्य होगा कि केवल ११ वर्ष की ही अवस्था में यह गुरुगद्दी पर बैठे थे और इसी अल्पवय में इन्होंने अपना कार्य पूरी योग्यता से निबाहा। संवत् १६६३ में गद्दी पर बैठने के साथ ही इन्होंने दोनों ओर की कमर में दो तलवारें बांधनी आरम्भ कीं और पूरा पूरा वीरवेष धारण कर ये धर्माचार्य से अस्त्राचार्य बन गए। परन्तु इस अवस्था में भी गुरुगद्दी के मामूली धर्मकार्य बन्द न थे। इनके धर्मोपदेश भी ऐसे सारगर्भित होते थे कि लोग उनकी अल्पावस्था में ऐसी तीक्ष्ण धर्मबुद्धि देख चकित और चमत्कृत हो जाते। क्यों न हो, महात्मा श्री गुरु नानक जी का गद्दीधारी क्या कभी किसी बात में भी सामान्य बुद्धि का परिचय दे सकता है, और विशेष कर धर्मविषय में जो नानक जी का प्रधान उद्देश्य था! गुरु हरगोविन्द जी ने गद्दी पर बैठने के बाद अपना ठाठ बिल्कुल राजाशाही बना लिया, तथा संवत १६६५ मिती आषाढ़ बदी ५ को अमृतसर के सामने एक बड़ा रौनकदार दर्बारी महल बना कर इसका नाम "तख़्त अकाल भुनगा" रक्खा और फ़र्श बिछवा गद्दी लगा प्रातःसंध्या दोनों समय दर्बार करने लगे। केवल इतना ही नहीं, वरन् उन्होंने लोहगढ़ नाम का एक दृढ़ किला भी बनवा लिया और सिपाहियों को नौकर रख युद्ध का सब सामान करने लगे। प्रातःसंध्या दोनों समय सैनिकों को कवायद लेते, तथा उत्तम उत्तम अस्त्र शस्त्र तथा तोप बन्दूक और गोली से किला भरने लगे। इन्हें वीरपुरुषों की कथा सुनने में बड़ा प्रेम था।

संवत १६६८ में लाहोर आकर इन्होंने अपने पिता अर्जुन जी को समाधि बनवाई। इनके इस राजशाही ठाठ और चढ़ते प्रताप को देख कर पृथ्वीचन्द के लड़के को बड़ी ईर्षा पैदा हुई। उसने यवन सम्राट के दीवान चन्दूलाल के मारफ़त बादशाह से यह शिकायत की कि "गुरु हरगोविन्द जी धर्म का बहाना करके हज़ूर के देश हस्तगत करने के लिये सेना और युद्धसामग्री एकट्ठी कर रहे हैं। उनकी नीयत अच्छी नहीं, अर्थात् वह राजविद्रोही हैं। बादशाह ने दीवान

को बातें सुन कर गुरु साहब को बुलवा भेजा। हमारे उत्साही गुरु साहब भी निर्भयचित्त हो सौ सिक्ख सवारों को साथ ले दिल्ली जा पहुंचे और दर्बार में उपस्थित हो उन्होंने शाहंशाह से यथायोग्य भेंट की। इनकी सुशीलता, नम्रता और सुन्दर कान्ति तथा वीरवेष देखकर बादशाह मोहित हो गया और इनके बातों के ढंग ने तो उसे गुरु साहब का चेला ही बना दिया। इनसे बात चीत होने पर बादशाह ने असली बातें सब समझ लीं और बड़े ही सम्मानपूर्वक इनका सत्कार किया और उन्हें ५००) रुपया रोज़ीना देना स्वीकार किया, तथा वह उनसे सविशेष प्रेम रखने लगा। जब कहीं बाहर या शिकार खेलने बादशाह की सवारी जाती, हरगोविन्द जी साथ रहा करते थे। एक दिन का वृत्तान्त है कि बादशाह के साथ यह शिकार खेलने निकले। बन में प्रवेश करते ही एक बड़ा सिंह सामने आ लपका। जब से बादशाह गोली चलावें चलावें तब से हमारे वीर युवक हरगोविन्द जी चट हाथी से कूद पड़े और उन्होंने खंजर के एक ही वार में शेर का काम तमाम कर दिया। हरगोविन्द जी की इस वीरता से शाहंशाह को अधिक प्रसन्न होना उचित था, परन्तु यहां तो मामला ही उलट गया। शाहंशाह इस बात पर रुष्ट हो गए कि तुमने मेरा शिकार क्यों मारा। किसीने सच कहा है कि "राजाओं की संगति करनी उचित नहीं, क्योंकि एकही क्षण में प्रसन्न होकर वह निहाल कर देते हैं, और दूसरे ही क्षण में ज़रासी बात पर रुष्ट हो प्राणों के गाहक बन जाते हैं"। देखिए इसका दृष्टान्त आपके सामने ही है। बादशाह के इन वचनों की गुरु साहब ने कुछ भी परवाह न की, अतएव बादशाह ने क्रोधित हो उनसे २०००००) रुपया जरीमाना तलब किया। क्यों न हो "सौ चोट सोनार की तो एक लोहार की"। कहां तो ५००) रोज़ मिलते थे, अब उलटे ही दो लाख देने की पारी आई। प्रथम तो हरगोविन्द जी के पास उस समय इतना द्रव्य ही न था कि वह बादशाह को जरीमाना में देते और दूसरे उन्होंने देने से सम्पूर्ण इंकार किया। इसपर यवन सम्राट और भी अधिक रुष्ट हो गया और उन्हें ग्वालियर के किले में बन्दी करवा दिया। जब पुत्र की इस विपत्ति का सम्वाद माता गङ्गाजी को पहुंचा तो वह अति चिन्तित हुईं और पुत्र के उद्धार का उपाय सोचने लगीं। अन्त को उन्हींके आज्ञानुसार सिक्खों ने जरीमाने का रुपया इकट्ठा कर शाहंशाह को दे गुरुसाहब का उद्धार करना चाहा; परन्तु जब इसकी खबर हरगोविन्द जी को लगी तो उन्होंने इस उपाय से छुटकारा पाना बिल्कुल अस्वीकार किया और अपनी माता से कहला भेजा कि मैं स्वयम् ही बन्दीखाने से छूट आऊंगा आप किसी बात की चिन्ता न करें। गुरु साहब बन्दीखाने ही में थे कि एक दिन रात को शाहंशाह एक अत्यन्त भयानक स्वप्न देख चौंक उठा और फिर रात भर उसे निद्रा न आई। भय और चिन्ता ने उसे ऐसा आ ग्रसा कि वह कठिनाई से करवटें बदलने का साहस करता। अन्त को ज... खुदा खुदा करते प्रातःकाल हुआ और झरोखे से बालरवि की किरणें बादशाही पलंग पर पड़ने लगीं तथा पक्षिओं ने चुहचुआहट मचा उषा देवी के आगमन का सम्वाद दिया, तब बादशाह सलामत भी चिन्ता और शोक से मुरझाए हुए आंख मलते उठ बैठे, तथा नित्यकर्म से निश्चिन्त हो अति उदास चित्त से दर्बार में जा बैठे। बादशाह की उदास आकृति देख कर दर्बारी सब कानाफूसी करने लगे। अन्त को प्रधान मंत्री ने विनयपूर्वक बादशाह सलामत की उदासी का कारण पूछा, जिसके उत्तर में उन्होंने रात्रि के स्वप्न का हाल सविस्तर कह सुनाया। मंत्री ने बादशाह की आज्ञा ले एक फकीर को बुलवा भेजा जिसे दर्बारी पहुंचा हुआ समझते थे और स्वयं शाहंशाह भी उनको सम्मान की दृष्टि से देखते थे। इन्होंने जब दर्बार में उपस्थित हो बादशाह से स्वप्न का सब वृत्तान्त सुना तब कुछ सोच विचार

कर उत्तर दिया कि "आपने किसी खुदा के बन्दे को सताया है। उसी कारण आपको यह कुस्वप्न दिखाई दिया"। बादशाह ने जब इस बात की खोज की तो मालूम हुआ यह अत्याचार गुरु नानक जी के गद्दीधारी गुरु हरगोविन्द जी ही पर हुआ है, अतएव उन्होंने तत्क्षण हरगोविन्द जी को बन्दीगृह से छुटकारा पाने की आज्ञा भेज उन्हें दरबार में उपस्थित होने के लिये कहला भेजा। जब यह संदेसा बन्दीखाने के दारोगा को पहुंचा तब उसने गुरु साहब को नजरबन्दी से छुड़ाना चाहा। परन्तु हमारे उदार चित्त परोपकारी चरित्रनायक ने बिना अपने साथी कैदियों के कैद से छुटना अस्वीकार किया। जब बादशाह को यह सम्वाद पहुंचा तो उन्होंने गुरु साहब के साथी समस्त कैदियों के छुटकारे का आज्ञापत्र भेज दिया, तथा गुरुसाहब के साथ अन्य कैदियों का भी छुटकारा हो गया। क्यों न हो, यदि वे बिचारे दीन कैदी ऐसे महात्मा की संगत से भी छुटकारा न पाते तो फिर सत्सङ्गत का माहात्म्य ही क्या रह जाता।

अस्तु गुरु साहब पुनर्वार दरबार शाही में इसी ठाठ से उपस्थित हुए। शाहंशाह ने बड़ा सत्कार कर गुरु साहब को अपनी दहिनी ओर बैठाया और इन्हें बहुत कुछ रत्न मणि इत्यादि भेंट देना चाहा। परन्तु हमारे निर्लोभी चरित्रनायक ने उस ओर देखा तक नहीं, जिससे बादशाह और भी प्रसन्न हुआ और इनसे पूर्व की अपेक्षा अधिक प्रेम रखने लगा तथा उसने गुरु साहब को एक हज़ार पैदल और पांच सौ सवार सदैव साथ रखने की आज्ञा दे दी।

आप लोगों को विदित होगा कि दीवान चन्दूलाल हरगोविन्द जी का पुश्तैनी बैरी था। इसी दुष्ट के सताने से गुरु अर्जुन जी ने अपने प्राण दिए। हमारे जोशीले गुरु साहब की आंखों में वह सर्वदा खटकता था। अतएव एक दिन मौक़ा पाकर हरगोबिन्द जी ने चन्दूलाल की सारी कलई बादशाह के सामने खोल दी। जब बादशाह को अपने दीवान की दुष्टता विदित हुई तो उसने तत्क्षण उसे गुरु साहब के सपुर्द कर दिया। प्रबल बैरी को हाथ में पाकर हरगोविन्द जी का पितृ-शोक उभड़ आया। जब उनके चित्त में यह बात उठी कि इसी पामर के अत्याचार से दुखित हो मेरे परमपूज्य पिता ने नदी में डूब कर प्राण दे दिए, तब तो शोक के स्थान पर भीषण क्रोध ने इस वीर युवक के हृदय पर अपना अधिकार जमा लिया और जैसे इस पामर दीवान ने गरम गरम जलते हुए बालू के तोबड़े से अर्जुन जी को तपा कर क्लेश दिया था, वैसे ही हमारे गुरु साहब ने इसे भड़भूँजे के यहां ले जाकर जलते हुए बालू का थैला उसके मुख पर चढ़ा दिया, जिसमें श्वास लेने के साथही जलते हुए बालू के कण उस पामर के दिमाग तक पहुंच जाते और अन्त को दम घुट कर उस नराधम की उपयुक्त मृत्यु हुई। उसका यह दण्ड उपयुक्त ही हुआ, क्योंकि महात्मा गुरु अर्जुन जी साहब को भी इस दुष्ट ने बिना अपराध बँधवा मंगवाया था और इससे भी बढ़ कर इसने क्लेश पहुंचाया था। किसी ने सच कहा है कि—

"त्रिभिर्वर्षैस्त्रिभिर्मासैस्त्रिभिः पक्षैस्त्रिभिर्दिनैः।
अत्युत्कटैः पापपुण्यैरिहैव फलमाप्नुते"॥

ऐसे दुष्ट की यदि ऐसी शास्ति न होती तो अन्य प्रभुत्वशाली कुटिलों की आंख के पट्टे कैसे खुलते। इसके अनन्तर कुछ दिनों के पीछे गुरु हरगोविन्द जी अमृतसर लौट आए और वहां सिक्खों ने इनका अत्यन्त आदर सत्कार कर बहुत दिनों के बाद गुरु के दर्शन पा आनन्दित हो बहुत से धन रत्नादिक भेंट दिए और इनके धर्मोपदेशों तथा जातीय उत्साह के अमृतमय वाक्यों को सुन कर अपने कानों को तृप्त किया। इसी बीच में शाहंशाह ने गुरु साहब को पञ्जाब का सूबेदार नियत कर दिया, जिस कारण अपने बल बढ़ाने का इन्हें और भी उत्तम अवसर प्राप्त हुआ। कुछ

दिन अमृतसर में रह कर घूमते फिरते गुरु साहब गुजरात पहुंचे, जहां का एक नामी फकीर दूल्हा इनका शिष्य हो गया। ख्याल रहे कि युद्धचर्चा में लीन होकर हमारे सर्वगुणसम्पन्न चरित्रनायक ने धर्मचर्चा नहीं छोड़ी थी। इनके धर्मोपदेश भी ऐसे गूढ़ होते थे कि जिससे बड़े बड़े ज्ञानियों के छक्के छूट जाया करते ग्रैार वे इन्हें अपना गुरु मानने लगते। गुजरात से लैाट कर तिलवण्डी में आ इन्होंने नेमानी एकादशी का मेला नियत किया, जो अब तक प्रत्येक वर्ष हुआ करता है। इसी समय के लगभग गुरु साहब ने कैालसर नामक तालाब भी बनवाया था।

संसार में यह बात तो साधारण ही है कि कुटिल लोग, जिन्हें राक्षसों से भी बुरा कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। व्यर्थ ईर्षावश किसीका चढ़ता प्रताप देख कर उसकी बुराई करने पर उतारू हो जाते हैं। अतएव चन्दू के लड़के ने सम्राट शाहजहां से गुरु हरगोविन्द जी की शिकायत करनी आरम्भ की, परन्तु उसकी एक न चली। उल्टा उसीपर शाहंशाह ने क्रोधित होकर उसे कैद कर लिया ग्रैार वह गुरु साहब से ग्रैार भी अधिक प्रेम रखने लगा, तथा सात सैा सवार, एक हज़ार पैदल ग्रैार सात तोपें बादशाह की ग्रोर से इनके साथ रहने लगीं।

मुसलमानों से यह न सहा गया। उन्होंने बादशाह सलामत से हरगोविन्द जी के विषय में नित्य नई नई शिकायत करनी आरम्भ की ग्रैार मुल्लाओं ने यह कह अपने मुरीदों की शिकायत का अनुमोदन किया कि हरगोविन्द साहब कुरानशरीफ़ की निन्दा करते हैं ग्रैार इस्लामियों को क़त्ल करने का जोश सिक्खों में फैला रहे हैं। पञ्जाब की सूबेदारी पाकर उन्हें अपनी कार्यसिद्धि का ग्रैार भी उत्तम अवसर मिल गया है, इत्यादि इसी प्रकार से दरबारी लोग गुरु साहब के विरुद्ध नित्य सम्राट का कान भरने लगे, जिसका परिणाम यह हुआ कि शाहजहां ने उनसे पञ्जाब की सूबेदारी छीन ली ग्रैार दरबार में उपस्थित हो उन्हें शाही आदाब बजा लाने तथा राजभक्त रहने की प्रतिज्ञा करने की आज्ञा भेज दी। हमारे तेजस्वी गुरु साहब से क्या कभी यह बात सही जा सकती थी। उन्होंने बादशाही आज्ञापत्र फाड़ कर फेंक दिया ग्रैार दूत को ऐसा रूखा उत्तर सुनाया कि वह जल भुन कर ख़ाक हो गया। जब शाही दर्बार में उपस्थित हो दूत ने हरगोविन्द जी का उत्तर सुनाया तो बादशाह सलामत तो क्रोध से जामे के बाहर हो गए ग्रैार तत्क्षण एक नामी मोग़ल सेनापति को सात हज़ार फ़ौज के साथ हरगोविन्द जी को पकड़ लाने के लिये भेज दिया। बादशाही फ़ौज क्रमशः गुरु साहब के स्थान के निकट पहुंची। आहा! आज हमारे वीर युवक का सुप्रभात है! हरगोविन्द जी आनन्द से विह्वल हो उठे। इतने दिनों से जिस लिये अपने को प्रस्तुत कर रहे थे, आज वह अवसर आ उपस्थित हुआ। आज दुराचारी यवनों के रक्त से अपनी कृपाणधार को स्नान करावेंगे, आज धर्मबल से उत्साहित अपने महाबली सिक्खों के हाथ मोग़लों को उनके अत्याचार का समुचित प्रतिफल देंगे, इन्हीं सब भावों से पूर्ण उत्साहित हो अस्त्र शस्त्र से सुसज्जित, अरबी घोड़े पर सवार, तीन हज़ार सिक्ख वीरों के साथ हमारे वीरवर गुरु हरगोविन्द जी युद्धक्षेत्र में शत्रुओं के सम्मुख आ डटे। शत्रुसेना के सामने आते ही उत्साही हरगोविन्द जी ने अपना घोड़ा आगे बढ़ा मोग़लों पर आक्रमण कर दिया। दोनों दलों में घनघोर युद्ध ठन गया। गोला गोली ग्रैार अस्त्रों की झञ्झनाहट से कान के पर्दे उड़े जाते थे। जिधर हमारे चरित्रनायक का हाथ पड़ता था उधर का मैदान चन्द मिनटों में साफ़ नज़र आता। तलवार चलाने में इनकी फुर्ती देख कर मोग़ल सेना स्तम्भित सी हो गई। इसी बीच में कहीं मोग़ल सेनापति हरगोविन्द जी के सामने आ पड़ा, बस फिर क्या देर थी, गुरु साहब ने चट से अपनी बरछी पर सिपहसालार साहब को लोक लिया

और ख़ां साहब चैारङ्ग हो गए। इधर सिक्खों ने भी मोग़ल सैनिकों को मार काट कर मैदान स.फ़ कर दिया। एक एक सिक्ख ने बीस बीस मोग़लों को मार गिराया, यहां तक कि सेनापति के मरते ही बची बचाई सब सेना भाग निकली। हमारे विजयी चरित्रनायक विजयदुन्दुभी बजाते हुए घर लैाट आए। इस पराजय से और भी क्रोधित हो सम्राट ने संवत १६८५ विक्रमी में तीन सेनापतियों के अधिकार में पन्द्रह हज़ार सैन्य हरगोविन्द जी पर चढ़ाई करने के लिये भेजी गई। हरगोविन्द जी ने अमृतसर के किला लोहगढ़ में अपना मोरचा बांधा और शत्रुओं के आक्रमण करने पर सन्ध्या समय तक घोर संग्राम होता रहा। अन्त को सूर्यास्त होने पर कल के लिये युद्ध स्थगित रख दोनों पक्षवालों ने अपने अपने खेमें में विश्राम किया। जब आधी रात जा चुकी, चारों ओर सन्नाटा छा गया, तब गुरु साहब उठ कर अपने सिक्ख वीरों को लेकर एकाएकी मोग़लों के खेमें पर जा पड़े। इस आक्रमण से मोगलों की बड़ी हानि हुई। अन्त को जब प्रातःकाल हुआ तब नियम पूर्वक युद्ध होने लगा, परन्तु सिक्खों की वीरता से मोग़ल सेना घबड़ा गई और जब मोग़ल सेनापतियों ने देखा कि गुरु हरगोविन्द जी से अधिक युद्ध करने में सिवाय हानि के कोई लाभ नहीं, तब यह कह कर कि फकीरों से क्या लड़ें, लड़ाई बन्द कर दी और अमृतसर अधिकार कर दिल्ली चले गए। हरगोविन्द जी को भी अमृतसर त्याग कर ...वाल ग्राम में चला जाना पड़ा। जब गुरु साहब वहीं थे उस समय संवत १६८६ आषाढ़ सुदी प्रतिपदा को इनकी स्नेहमयी माता गङ्गाजी परलोक सिधार गईं। अपनी माता जी की मृत्यु से हमारे मातृभक्त चरित्रनायक को अति शोक हुआ। संवत् १६७५ विक्रमी में हरगोबिन्द जी ने परगना बटाला में गोइन्दवाल नामक ग्राम बसाया।

जब बादशाही सेना हरगोविन्द जी को बिना बन्दी किए दिल्ली लैाट गई तो शाहंशाह सेनापतियों से बड़े रुष्ट हुए और पांच हज़ार सेना के साथ फिर चढ़ाई करने की आज्ञा दी। गुरु हरगोविन्द जी ने भी दो हजार सिक्खों के साथ बटाला नामक स्थान में बादशाही फ़ौज का सामना किया और अद्भुत वीरता दिखा शाहंशाही फ़ौज को परास्त किया। इस युद्ध में जालन्धर के नाजिम का लड़का मारा गया था। इस कारण पुत्रशोक से दुखित हो उसने हरगोविन्द जी से बदला लेना चाहा और बड़े धूमधाम से गुरुसाहब पर चढ़ाई कर दी। परन्तु हरगोविन्द जी की वीरता के सामने नाज़िम बिचारे के पैर कब टिक सकते थे। अति घनघोर युद्ध के पश्चात् हमारे गुरुसाहब की तलवार ने नाज़िम साहब को युद्धक्षेत्र की कब्र में सुला दिया और उसकी सेना सब छितिर बितिर होकर इधर उधर भाग गई।

जब बादशाही सेना मार खाकर राजधानी को लैाटी तो बादशाह ने अत्यन्त क्रोधित हो पुनर्वार चढ़ाई करनी चाही, परन्तु बादशाह के मंत्री वज़ीर ख़ां ने समझाया कि हज़ूर दीन दुनियां के मालिक होकर एक फ़कीर से लड़ते शोभा नहीं देते। हरगोविन्द जी गुरुगद्दी के अधिकारी हैं। चाहे वह कितना ही राजशाही ठाठ रक्खें, अन्त को तो फ़कीर ही कहलावेंगे। उन्हें यदि आप जीत भी लेंगे तो आप उनका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते, क्योंकि वह तो सर्वस्व त्याग कर फिर जैसे के तैसे बन जायंगे। इससे हज़ूर को उचित है कि उनपर चढ़ाई करने का विचार त्याग दें। मंत्री की यह सलाह शाहजहां के चित्त में बैठ गई और उन्होंने युद्ध का संकल्प त्याग दिया।

इधर गुरु हरगोविन्द जी युद्ध में बार बार जयी होने के कारण अति उत्साही हो उठे और स्वेच्छा पूर्वक अपनी रुचि के अनुसार कार्य करने लगे। इन्हें अच्छे घोड़ों का बड़ा शौक था। लाहोर के

हाकिम के यहां अरबी घोड़ों की एक जोड़ी अति उत्तम थी। पहिले तो हरगोविन्द जी ने लाहोर के हाकिम से उन घोड़ों की याचना की, परन्तु जब उसने देना अस्वीकार किया तो एक अति चतुर और बलवान शिष्य के द्वारा इन्होंने दोनों घोड़े चुरवा मंगवाए और खुल्लम खुल्ला उनपर सवारी करने लगे। जब नवाब साहब को इसकी खबर लगी तो वे आग बबूले हो गए और गुरु साहब को अर्थ दण्ड के साथ घोड़े लेकर उपस्थित होने की आज्ञा भेज दी। पर हमारे निर्भयचित्त गुरु साहब इन धमकियों से कब डरनेवाले थे। उन्होंने नवाब साहब को ऐसा कठोर उत्तर भेजा कि वह तो जामे से बाहर हो गया और बाइस हजार सेना के साथ उसने इन पर चढ़ाई कर दी। अमृतसर के पास उभयपक्षवालों में ख़ूब जम कर तलवार चली। लाश पर लाश गिरने लगी। हरगोविन्द जी का एक मात्र पुत्र गुरु दित्ता अद्भुत वीरता दिखा कर इस युद्ध में मारा गया, तथा नवाबी फ़ौज के भी बहुत से नामी सर्दार मारे गए। परन्तु अन्त को विजय-लक्ष्मी ने हमारे ही चरित्रनायक पर कृपा की और नवाबी फ़ौज परास्त हो छितिर बितिर हो गई। इस युद्ध में गुरुसाहब के भी बहुत से वीर काम आए।

इस युद्ध के थोड़े ही दिन बाद गुरु हरगोविन्द जी ने अपने अधीन मुसलमान सेनापति पैंदाख़ां से किसी बात पर रुष्ट हो उसे सेवा से निकाल दिया। वह जालन्धर के हाकिम के पास चला गया और उसने उसे गुरु साहब से लड़ने के लिये उभाड़ा। अतएव संवत १६९१ विक्रमी में कुछ सेना ले पैंदाख़ां ने गुरुसाहब पर चढ़ाई की, परन्तु दीपशिखा के पतङ्ग की नाईं वह गुरुसाहब की अस्त्ररूपी अग्नि में जल मरा। इसकी सेना को परास्त कर गुरु साहब युद्धक्षेत्र से लौट रहे थे कि इतने ही में दूसरे सेनापति असमान ख़ां ने बची बचाई सेना इकट्ठी कर हरगोविन्द जी का पीछा किया; परन्तु गुरु साहब ने उसे भी सहज ही में परास्त कर दिया। इन युद्धों में विजय लाभ करने से गुरु हरगोविन्द जी की वीरता का यश भारत भर में फैल गया; बड़े बड़े नवाब और राजे इनसे डरा करते और बहुत से तो इनके शिष्य हो गए। गुरु हरगोविन्द जी ने मालवा देश में खूब भ्रमण किया था और वहां के अधिकांश अधि-वासियों को अपना शिष्य बनाया था। इनके धर्मोपदेश से मुग्ध हो वहां का एक नामी जमीं-दार भी इनका शिष्य हो गया था, उसने समय समय पर धन और जन से इनकी बड़ी सहायता की थी। गुरु हरगोविन्द जी शरीर से बड़े बल-वान और सुन्दर थे, और अस्त्र चलाने में इनके सामने कोई नहीं ठहर सकता था। इसके अति-रिक्त स्वभाव की सरलता और निर्भयता के लिये तो ये लोकविख्यात हो ही रहे थे। इनकी वीरता के विषय में कुछ लिखना पृष्टपेषण करना है, और साथ ही इनके धर्म्मोपदेशों का भी कुछ वृत्तान्त लिखा जा चुका है जिसके दोहराने की कोई आवश्यकता नहीं है।

गुरु हरगोविन्द जी के चित्त की दृढ़ता भी सराहने योग्य है। एकमात्र पुत्र के मरजाने पर भी उन्होंने कुछ शोक प्रकाशित न किया और धीरता पूर्वक इस दुःख को सहन किया। गुरु हरगोविन्द जी का विचार था कि सिक्खों की एक अति बल-वान सेना बना कर, स्थान स्थान पर बुर्ज और किलों में उन्हें स्थापित कर सिक्खों का विजय डंका पंजाब भर में बजा दें; परन्तु कराल काल ने उनकी यह अभिलाषा पूरी न होने दी। संवत १७०१ विक्रमी चैत्र कृष्ण अमावास्या को हमारे शूरवीर चरित्रनायक परलोक सिधार गए। इन की समाधि कीर्त्तिपुर (पंजाब) में बनी हुई वर्त्त-मान है, जहां इनका कमान, तर्कस, पिस्तौल और एक तलवार भी रक्खी हुई है। गुरु हरगोविन्द जी की मृत्यु के बाद इनके पोते हरराय जी इनके उत्तराधिकारी हुए, जिनका चरित्र सरस्वती की आगामी संख्या में लिखा जायगा।—वेणीप्रसाद

गुल-बहार

[१]

गङ्गा के दहिने किनारे पर मुङ्गेर बसा हुआ है। तीर से थोड़ी ही दूर पर मुङ्गेर का किला अब टूटा फूटा बेमरम्मत उजाड़ सा पड़ा है। क़िले के सामने 'कष्टहारिणी' घाट है। इस घाट के पास अब तक एक सुरङ्ग देख पड़ती है; पर वह कहां तक गई है, या उसके भीतर से कहां कहां राह गई हैं, इसका पता बहुत ही कम लोग जानते या नहीं ही जानते होंगे। हम इस छोटे से उपन्यास में जिस ऐतिहासिक घटना का वर्णन करेंगे, उससे इस सुरङ्ग का विशेष सम्बन्ध है, इस लिये पाठक लोग सुरङ्ग को याद रक्खें।

पलासी की लड़ाई के बाद (सन् १७५७ ई०) अभागे सिराजुद्दौला के साथ ही साथ बङ्गाल, बिहार और ओड़ीसा का भाग्य भी लौट गया। लाट क्लाइव, मुर्शिदाबाद के रसीडेण्ट वाट्स् साहिब, महाराज कृष्णचन्द्र, राजा राजवल्लभ, वनिकश्रेष्ठ जगतसेठ, दुष्ट अमीचन्द आदि लोगों ने षड़यन्त्र कर और बढ़ावा दे दे कर प्रधान सेनापति बूढ़े मीरजाफ़र ख़ां * को भी लालच की डोर में फांसा। हाय! राज्य के लोभ में पड़ कर वृद्ध मीरजाफ़र ने भी धर्म को तिलाञ्जलि दी और बङ्गाल, बिहार तथा ओड़ीसा के राज्य की डोर एक तरह से चालबाज़ लाट क्लाइव के हाथ में पकड़ा दी।

पलासी की लड़ाई के पहिले मीरज़ाफ़र ख़ां की यह इच्छा थी कि 'क्लाइव के द्वारा नरपिशाच सिराजुद्दौला को तख़्त से उतार कर खुद नवाब बनें, फिर पीछे अंगरेजों को बङ्गाले से निकाल बाहर करें। किन्तु ऐसा मन्सूबा बाँध कर मीर-जाफ़र ने बड़ा धोखा खाया, क्योंकि उस विचारे को इस बात की ख़बर हीं न थी कि अंगरेज़ लोग किस धातु के आदमी हैं। लड़ाई के पीछे उसने यह बात जानी कि 'पलासी की लड़ाई के बाद सचमुच अंगरेज ही बङ्गाल, बिहार और ओड़ीसा के मालिक बन बैठे और मैं केवल इनके हाथ का खिलौना भर ही हूं और और बरायनाम नवाब बनाया गया हूं।

जब कि मीरजाफ़र का मन अंङ्गरेज़ों की ओर से ऐसा खिंचा हुआ था तो इस बात में क्या अचरज माना जा सकता है कि वह नवाब होते ही अंगरेज़ों को हेच और खोटा समझने लग गया हो! यही कारण था कि उसके शासन से अंगरेज़ प्रसन्न नहीं रहे और उन लोगों ने मीरजाफ़र के बदले उसके दामाद मीरकासिम को जोकि मीरज़ाफ़र के समय में सेनापति के पद पर था, बङ्गाल, बिहार और ओड़ीसा का नवाब बनाना चाहा। थोड़े ही दिनों में मीरज़ाफ़र निकाला गया और उसकी जगह बङ्गाल बिहार और ओड़ीसा के नवाबी तख़त पर मीरक़ासिम बैठा।

सचमुच मीरक़ासिम के राज्यशासन से उसके मित्र या शत्रु सब प्रसन्न हुए। और इधर अभागे मीरजाफ़र ने अपनी मूर्खता, कृतघ्नता, विश्वासघात और घोर पाप के लिये इतना पश्चात्ताप किया कि थोड़े ही दिनों में उसे तहेगोर पहुंचना पड़ा।

कुछ दिन पीछे मीरक़ासिम के भी मन का भाव बदल गया और उसने बङ्गाल, बिहार और ओड़ीसा से अंगरेज़ों के पैर उखाड़ देने का उपाय सोचना आरंभ किया, परन्तु यह बात तो वह बिल्कुल ही भूल गया था कि 'मैं अंगरेज़ों की ही कृपा से बङ्गाले का नवाब बनाया गया हुं'। किन्तु तौ भी उसने डर के मारे अंगरेज़ों के विरुद्ध प्रगट में तो कुछ न किया, वरन उनसे घनिष्ठता का बर्ताव करने लगा; पर भीतर ही भीतर वह अगरेज़ों के निकाल बाहर करने के उपायों के सोचने से भी खाली न था। किन्तु ज्यों ज्यों राजकाज में अंगरेज़ों का ज़ोर बढ़ता गया त्यों त्यों मीरकासिम अंगरेज़ों के कामों पर बराबर अपनी अरुचि और अप्रसन्नता प्रकट करता गया।

* कोई कोई इसे ख़ज़ांची बतलाते हैं।

यों ही होते होते अन्त में वह इतना उत्तेजित हुआ कि अंगरेज़ों को एकदम बङ्गाले से निकाल बाहर करने का षड़यन्त्र करने लगा। पर उसने भी बड़ा धोखा खाया, अपने किए पर पछताया और यह समझा कि विश्वासघातियों ने उसका कहां तक सत्यानाश किया।

[२]

यहां पर हमारे पाठकों को बीते हुए इतिहास के पत्रे खोलने चाहिएं। जब कि मीरज़ाफ़र ख़ां की लड़की और मीरकासिम की प्यारी बीबी मयना बेगम अपना अन्तिम स्वास पूरा कर रही थी और दूसरे लोक में जाने के लिये तयार थी, उस समय की एक घटना का यहां पर लिखना बहुत ही आवश्यक है।

नवाबी महल की वर्णना करना हमारे ऐसे निकिञ्चन व्यक्ति के लिये बिल्कुल असम्भव है। जब कि हमने झोपड़ी में पड़े पड़े कभी महलों का सपना भी नहीं देखा, तो फिर ऐसी दशा में हम महल, वरन नवाबी महल का वर्णन क्या कर सकते हैं? किन्तु हां, यदि 'जहां न जांय रबि, वहां पहुंचै कबि' की कहावत पर ही आपलोगों का आग्रह हो तो साफ साफ सुन लीजिए कि दुर्भाग्यवश हम वैसे कवि भी नहीं हैं। तोभी आपलोगों के सन्तोष के लिये इतना लिख देते हैं कि आप लोग अपनी अपनी रुचि के अनुसार एक अद्वितीय सजे सजाए महल की कल्पना कर लीजिए और उसी महल में मीरकासिम की प्रधाना बेगम मयना बीबी को एक मखमली पलङ्ग पर मौत के गले मिलती हुई देखिए।

मृत्युशय्या पर पड़ी हुई मयना की सुन्दरता प्रातःकाल के चन्द्रमा की भांति फीकी पड़ गई है, सुन्दर चौड़े माथे पर मौत की रेखा खिंच गई है और आंखें मरने से पहिले ही पाताल को पहुंच गई हैं। ओठों पर हँसी के बदले विषाद की कालिमा फैली हुई है और गालों के गढ़े में अन्तिम दशा की स्याही भरी हुई देख पड़ती है। जो आंखें किसी समय "अमी हला हल मद भरी सेत स्याम रतनार। जियत मरत झुकि झुकि परत, जेहि चितवत एक बार" की नमूना थीं, उनसे इस समय चौधारे आंसू बह रहे हैं। मयना बीबी का हाथ मीरकासिम के हाथ में है और वह भी अपनी प्यारी बेगम की अन्तिम दशा पर आंसू बहा रहा है। पास ही दो बालक अपनी माता की तुरत होनेवाली मौत के भेद को न समझ कर मनकी उमङ्ग से किलकारी मार रहे थे। उन दोनों बालकों में एक लड़का था, दूसरी लड़की। ये दोनों ही बालक यमज अर्थात् साथही उत्पन्न हुए थे; और रूप, रङ्ग, अवस्था, स्वभाव और चेहरे मोहरे में बिलकुल एक ही से थे। अवस्था दोनों की उस समय दो बरस की थी।

जिस महल में पलङ्ग पर मयना बेगम पड़ी थी, उसीके बगलवाले कमरे में नवाब के कई नौकर चाकर, लौंडियां, राजकर्मचारी, मुसाहब और कई हकीम बैठे हुए थे। सभी चुपचाप, सभी चिन्ता में डूबे हुए और सभी आंसू बहा रहे थे।

थोड़ी देर पीछे उस सन्नाटे को दूर करती हुई बहुत ही धीमी आवाज़ से मयना बेगम मीरकासिम का हाथ अपने हाथ में लेकर रोते रोते कहने लगी,—"प्यारे शौहर! अब यह लौंडी रुख़सत होती है। और दिल गवाही देता है कि बिहिश्त में ज़रूर हम दोनों की वह मुलाकात होगी, जिसमें कभी जुदाई की आग में जलनाही नहीं होता। आह! अफ़सोस! सद-अफ़सोस! यहां पर मैं तुम्हारी ख़िदमत जी जान से भर पूर न कर सकी; लिहाज़ा लौंडी के गुनाहों को मुआफ करो। और प्यारे शौहर! मैं बड़ी कमबख़्त औरत हूं, मगर मेरी आख़िरी आर्ज़ू यही है कि जब ये दोनों बच्चे "अम्मा, अम्मा" कह कर मेरे लिये रोवेंगे, तब तुम इन दोनों नासमझों को अपने कलेजे से लगा कर ढाढ़स देना न भूलोगे। प्यारे! ये दोनों

बच्चे, तुम्हारे ही हैं, इसलिये ज्यादः क्या कहूं, मगर देखना, इन्हें किसी तरह की तकलीफ़ न होने पावे"।

बस अधिक वह कुछ न कह सकी और इतना कहते कहते ही उसके मुखड़े से मौत की चपेट प्रगट होने लगी। देखते देखते वह इस संसार को छोड़ कर चल बसी और मीर कासिम के पत्थर सरीखे कलेजे को भी पानी करती गई। नवाब रोता हुआ बाहर गया। पिता को रोते देख दोनों बच्चे भी बिलख बिलख कर रोने लगे। नवाब का इशारा पाकर धाय दोनों लड़कों को वहां से हटा ले गई और मयना को यथासमय गोर दी गई।

[३]

ऊपर कही हुई घटना को आज चौदह बरस बीत गए। बालक बालिका इस समय मीर कासिम के गले के हार हो रहे हैं। यदि संसार में अब मीर कासिम की कोई प्यारी वस्तु थी तो यही दोनों बच्चे थे। अब ये दोनों सोलह बरस के हुए हैं और पिता से यह बात भी दोनों ने जानी है कि बहुत छोटी अवस्था में छोड़ कर माता परलोक सिधार गई। यद्यपि दोनों सोलह बरस के हुए सही, पर बालक की अपेक्षा बालिका बहुत ही नासमझ या भोली थी, यहां तक कि वह अभी तक संसार की किसी बात नहीं समझी थी।' लड़के का नाम बहार अर्थात् बसन्त और लड़की का नाम गुल अर्थात् फूल था। दोनों ही अद्वितीय सुन्दर और एक से थे, यहां तक कि जब दोनों को मर्दानी पोशाक पहराई जाती तो लोग यह नहीं पहचान सकते थे कि इनमें कौन गुल है और कौन बहार। और यही कौतुक जनानी पोशाक में दोनों को पहिनाई जाती थी, होता था।

मीर कासिम इस समय (सन १७६२–६३ ई०) मुर्शिदाबाद से मुंगेर के किले में आकर सेना भर्ती करने लगा और उस सेना को ऐसा सुधारने लगा कि जिसमें लड़ाई के समय किसी तरह की कसर न रहने पावे। इस समय उसके साथ कोई बेगम नहीं आई थी।

निदान वह संसार के सभी सुखों से मुह मोड़ कर ऐसी मुस्तयद्दी के साथ सेना के सुधारने में लगा कि यदि उसका सेनापति गुर्गन खां विश्वासघात न करता तो फ़िरङ्गियों के लिये भयानक समय उपस्थित होने में रत्तीभर भी संदेह न था। रात दिन मीर कासिम को यही चिन्ता घेरे रहती कि क्योंकर बंगाले से फ़िरङ्गियों को निकाल बाहर करें। किन्तु ऐसे नाजुक समय में भी छिन भर के लिये उसने गुल बहार का ध्यान अपने जी से नहीं भुलाया था। वे दोनों भी मीर कासिम के साथ मुंगेर आए थे।

उस समय बंगाले में अंगरेज़ों का मुखिया क्लाइव था। मीर कासिम की बगावत का हाल जासूसों ने क्लाइव के कानों तक पहुंचाया। नए देश में अपने राज्य फैलाने के लिये कैसी पेंचीली नीति की आवश्यकता है इस विषय में क्लाइव बड़ा निपुण था। उसने नवाब के अनेक कर्मचारी और सेनापति गुर्गन खां को भीतर ही भीतर अपनी ओर मिला लिया था। और उसके जासूस, जोकि नवाब के मुसाहबों में भी थे और बराबर नवाब के साथ रहते थे, रत्ती रत्ती हाल क्लाइव के कानों तक पहुंचाया करते थे। यही कारण था कि मीर कासिम का मन्सूबा क्लाइव को मालूम होगया और उसने इस सर्कशी के बारे में नवाब से कैफ़ियत तलब की।

नवाब मीर कासिम ने क्लाइब के पत्र का ऐसा भयानक उत्तर दिया कि जिसका सहना क्लाइब सरीखे विचित्र प्रकृतिवाले राजनैतिक पुरुष के लिये कब संभव था? बस, तुरन्त नवाब के गिरफ़्तारी के लिये अंगरेज़ी फ़ौज मुंगेर रवानः हुई। यह समाचार सुन मीर कासिम ने भी

अंगरेज़ी फ़ौज़ के मुक़ाबिला करने का पूरा पूरा प्रबन्ध किया और फिर उसने कई लड़ाइयां लड़ कर अनगिनती अंगरेज़ों को काट डाला। पर इस उपन्यास में उसकी अंतिम लड़ाई का ही हाल लिखा गया है।

उस समय गुर्गनखां नाम का एक व्यक्ति, जिसे लोग अंगरेज या अंगरेज से उत्पन्न बतलाते हैं, नवाब का बहुत ही कृपापात्र और सेनापति भी था। इस लिये नवाब ने गुर्गन खां के साथ किले की रक्षा करने का पूरा पूरा बन्दोबस्त किया। पर यह बात बिचारे के सपने में भी नहीं मालूम थी कि नमकहराम गुर्गन ख़ां चतुरशिरोमणि क्लाइव से मिला हुआ है।

[४]

देखते देखते मुंगेर के किले के सामने अंगरेज़ी फ़ौज़ ने आकर छावनी डाली। इसमें और और सेनापतियों के साथ स्वयं क्लाइव भी आया था। इसके पहिले मीर कासिम के साथ अंगरेज़ों की कई लड़ाइयां हुई थीं और जगह जगह उसने बड़ी निर्दयता के साथ बहुतेरे अंगरेज़ों को काट डाला था। किन्तु यहां पर हम उस अंतिम लड़ाई का हाल (सन १७६३—६४) लिखते हैं, कि जिस लड़ाई के बाद फिर किसीने बंगाले में मीर कासिम का मुख न देखा और उसी लड़ाई या मीर कासिम के भागने के बाद ही अंगरेज़ों के पैर भली भांति बङ्गाल में जम गए।

लड़ाई छिड़ने के एक दिन पहिले क्लाइव ने मीर कासिम को अंगरेज़ों की आधीनता स्वीकार कर लेने के लिये एक चिट्ठी लिखी, किन्तु विश्वासघातक गुर्गन खां के बढ़ावे में आकर उस (मीर कासिम) ने क्लाइव के पत्र का ऐसा मुंहतोड़ जवाब दिया कि जिससे अंगरेज़ी सेना ने लड़ाई का डङ्का बजाया।

दूसरे दिन बड़े तड़के ही से अंगरेज़ी सेना में जुझाऊ बाजे बजने लगे, कमर बांध कर गोरे लड़ने के लिये किले के सामने खड़े होने लगे, और किले के भीतर नवाब की फौज किले की रक्षा करने के लिये जगह जगह माट के मुहाने पर कमर बांध कर खड़ी हुई। पहिले अंगरेज़ों की ओर से धुआं और आग के गोले उगलती हुई तोप बज्र की भांति घहरा उठी जिसका जवाब तुरत ही नवाब की ओर से दिया गया। फिर तो गहरी लड़ाई बँध गई। उस समय अंगरेज़ो सेना ने किले के उत्तर और पूरब ओर से हमला किया था। किले के भीतर नमक हराम गुर्गन ख़ां उत्तर की ओर और नवाब मीर कासिम पूरब की ओर किले का बचाव करते थे। मीर कासिम के पास ही घोड़े पर चढ़ा हुआ सोलह बरस का शाहज़ादा बहार भी निधड़क लड़ाई का तमाशा देख रहा था और गुल किले की ऊंची बुर्जी पर धाय के साथ बैठी हुई लड़ाई देख रही थी।

पूरब की ओर से नवाब ने ऐसी तेज़ी के साथ तोप दागनी आरम्भ करदी कि जिससे थोड़ी ही देर में उस ओर की अंगरेज़ी सेना को हार कर पीछे हटना पड़ा। पूरब से अंगरेज़ी सेना हार कर उत्तर ओर हमला करने वाली सेना की सहायता के लिये जामिली। यह देख नवाब ने घबरा कर बहार से कहा, "बेटा! बहार! दौड़ो गुर्गन खां से कहो कि बड़ी मुस्तैदी के साथ अंगरेज़ों का मुकाबिला करे।" पिता की आज्ञा पातेही सोलह बरस का वीर बालक बहार घोड़ा दौड़ाता हुआ बात की बात में गुर्गनखां के पास पहुंचा और थोड़ी ही देर में लौट आकर मीर कासिम से कहने लगा—

"बाबा जान! गुर्गनखां हाथ पर हाथ रक्खे बैठा है और अपनी फौज को भी तोप छोड़ने से उसने रोक रक्खा है। आपके हुक्म बमूजिब जब मैंने उससे जाकर अंगरेज़ों का मुकाबिला करने के लिये कहा तो उसने यह जबाब दिया कि अभी मुझे क्या ज़रूरत है कि फ़ुज़ूल गोले बारूद बर्बाद करूं! क्योंकि अभी तक मैं लड़ने की कोई ज़रूरत नहीं देखता।"

यह सुनतेही नवाब की आंखों में मारे क्रोध के खून उतर आया और उसने ताव पेच खाकर कहा,—"नमकहराम, एहसानफ़रामोश, बद-ज़ात, पाज़ी गुर्ग़न !!! अफ़सोस, मूज़ी ने बेमौके बड़ी दग़ा की !!! ख़ैर ! इस वक्त यहां पर हमारा कोई सच्चा मददगार दोस्त है ? अगर कोई हो तो फ़ौरन जाकर अभी उस सूअर के बच्चे, हरामी पिल्ले गुर्गन का सिर काट लावे।"

यह सुनतेही नवाब के पांच चार नमकहलाल मुसाहब हाथ जोड़े हुए आगे आए और सबके सब बोले—"जहांपनाह ! गुलाम हुज़ूर के हुक्म बजा लाने की इजाज़त मांगता है।"

मीर कासिम ने कहा—"ऐ ! प्यारे दोस्तो ! जाओ और फ़ौरन उस ख़ूंख़ार मूज़ी का सिर काट कर मेरे रूबरू ले आओ।"

सुनतेही वे चारों पांचों मुसाहब घोड़ा फेंकते हुए चट गुर्गन के पास पहुंचे और झट उस (गुर्गन) के सिर को धड़ से अलग कर सिर लिये हुए नवाब के सामने आए।

नवाब ने क्रोध से गुर्गनखां के सिर पर थूका और बाएं पैर से ठोकर मार उसे किले की दीवार के नीचे लुढ़का दिया।

इतने ही में घबराए हुए बहार ने, जोकि उस समय घोड़े पर चढ़ा हुआ बार बार किले के उत्तर की ओर आता जाता था, आकर नवाब से कहा कि,—"प्यारे वालिद ! नमकहराम गुर्गन की दग़ाबाज़ी से अंगरेजों ने किले के उत्तर फाटक पर अपना कबजा कर लिया है और उस ओर वाली हुज़ूर की सारी फ़ौज उन्हीं गोरों में जा मिली है। लिहाज़ा जब तक काफ़िर हम लोगों को गिरफ़्तार करें, फ़ौरन यहां से निकल चलना चाहिए। अगर जिन्दगी बरकरार रहेगी तो अल्लाह दुबारः हुकूमत व रियासत बख़्शेगा। गुस्ताख़ी मुआफ़ हो, अभी भी भागने का मौका हाथ से नहीं गया है।"

यह सुनतेही वीर मुसलमान मीरकासिम ने एक बार उत्तर ओर नज़र दौड़ाकर उधर की सारी दशा अपनी आंखों देखी और फिर बहार से कहा,—"सच है, अज़ीज़ ! बहार ! ठीक है। अब यहां पर ठहरना नामुनासिब है।"

यह कहता हुआ नवाब बहार को साथ लिये हुए किले के पूरब ओर से घोड़ा दौड़ाता हुआ दक्खिन ओर को भागा और सौ कदम चलने के बाद एक आमबाड़ी के पास पहुंच और वहीं घोड़ा छोड़ बहार के साथ ही साथ उस आमबाड़ी के भीतर घुसा।

वह आमबाड़ी कई बीघे जमीन को घेरे हुई और बहुत ही घनी थी और इस समय वहां पर कोई न था। नवाब ने उसके बीचोबीच एक संगमर्मर की क़ब्र के पास अपने तईं पहुंचाया और वहां पहुंच और उस क़ब्र के बीचोबीच एक स्याह चौखूटे पत्थर पर खड़े हो कर दो एक बार उसपर अपने पैरों का बोझ डाला। इससे तुरतही उस स्याह पत्थर के पासवाला एक सफ़ेद पत्थर धर्ती के अंदर किवाड़ी के पल्ले की भांति झूल गया और उसके भीतर जाने के लिये सीढ़ियां दिखलाई दीं। बहार को साथ लिये हुए नवाब सीढ़ियों को तय करता हुआ और साथही उस सफेद पत्थर को भी बन्द करता हुआ नीचे एक तहख़ाने में पहुंचा, जहां से तीन ओर को तीन रास्ते गए हुए थे। उनमें से एक राह तो उस बुर्ज़ पर गई थी, जिसपर गुल अपनी धाय के साथ बैठी हुई थी; दूसरी राह भीतर ही भीतर सुरङ्ग की भांति गङ्गा किनारे की ओर गई थी और तीसरी राह एक गुप्त ख़ज़ाने की ओर गई थी, जोकि क़ब्रिस्तान कह कर प्रसिद्ध था।

वहां पहुंच कर नवाब ने बहार से कहा,—"बेटा ! तुम्हें यहां के हर एक दर्वाजे खोलने के तरीके मालूम हैं न ?"

बहार,—"जी हां ! बखूबी मालूम हैं।"

मीरकासिम,–'बेटा! तो तुम गुल और उस की धाय को लेकर सुरङ्ग के रास्ते से दर्या किनारे जाओ और कोई किश्ती ठीक करके उसपर सवार हो हमारा इन्तज़ार करो। हम फ़ौरन कुछ ज़र व जवाहिर अपने साथ लेकर आते हैं। क्योंकि अब यहां रह कर मीरजाफ़र के खूंख़ार पाजी लड़के के हाथ सिराजुद्दौला की तरह मारे जाने के बनिसबत यहां से निकल जाना ही बिहतर होगा। हम हर्गिज़ पीठ न दिखलाते और जहां तक हो सकता दुश्मनों को मार कर अपनी जान देते; मगर तुम्हारी वालिदह के आखिरी जुमलों ने हमें मजबूर किया और तुम दोनों के लिये हमें दुश्मनों को पीठ दिखलाकर भागना पड़ा। इसलिये, बहार! जल्दी करो। अपनी हमशीरा को लेकर किश्ती पर सवार हो जाओ और हमारा इन्तजार करो, हम फौरन आते हैं।

यह कह कर नवाब खज़ाने वाली राह से चला गया और बहार गुल और धाय को बुर्ज पर से साथ ले गङ्गा किनारे की ओर चला।

[५]

बहार पिता की आज्ञा से जहां तक होसका जल्दी ही, अपनी बहिन और धाय को साथ ले किले की सुरङ्ग की राह से निकल गङ्गा किनारे पहुंचा।

गङ्गा सुरङ्ग के मुहाने पर ही लहराती थी और उसीके पास ही दैवसंयोग से एक छोटीसी किश्ती भी बँधी थी। बस, गुल और धाय को साथ लिए हुए बहार उस पर सवार होगया और मीरकासिम के आने की बाट जोहने लगा।

किश्ती में उन तीनों के सवार होते ही एक मांझी, जिसकी कि वह डोङ्गी थी, दौड़ा हुआ आ कर उस पर चढ़ बैठा और बहार को पहिचान कर एक लम्बी सलाम करके बोला—"हज़रत सलामत! जल्दी भागिए, कहिए आपको कहां पहुंचा दूं। आपके वालिद को गिरफ़्तार करने के लिये फिरङ्गी के जासूस छुटे हैं"।

बहार ने रोकर कहा "जरा ठहरो! मेरे वालिद अभी आते हैं।" यों कह कर वह सुरङ्ग की ओर टकटकी बाँध कर देखने लगा। "यह आते हैं, यह आते हैं;" योंही एक घण्टा बीत गया और नवाब न आया; तब तो बहार को एक एक पल एक एक युग के समान बीतने लगा। पासही किले के दूसरी ओर फिरङ्गी के जीत के नगाड़े बज रहे थे, दनादन तोपों की बाढ़ दग रही थी, और सिपाहियों के कोलाहल से कान के पर्दे फटे जाते थे। ऐसे समय में बिचारा बहार अपनी बहिन के साथ किश्ती पर खड़ा खड़ा नवाब की राह तक रहा था।

मांझी ने मामला बेढब देख कर डोंगी खोल दी। हाय बिचारे बहार के कलेजे पर एकाएक बज्र घहरा पड़ा। पहिले तो उसने नवाबी जोश में आ कर मांझी को नाव खोलने से बर्जा, पर जब मांझी ने न माना, तब तो बहार ने उसकी बहुत ही आर्जू मिन्नत की; किन्तु इतने पर भी डरपोक मांझी ने कुछ न सुना और किश्ती खोल ही दी।

मांझी के डरने का कारण भी था, क्योंकि जीत के नगाड़े बजाते बजाते बहुतेरे गोरे धीरे धीरे गङ्गा किनारे की ओर आ रहे थे। यदि वे किश्ती, या किश्ती पर सवार गुल और बहार को देख लेते तो अवश्य उन सभों को गिरफ़्तार करने में देर न करते। और जब यह उन लोगों को मालूम होता कि "ये लड़के नवाब के हैं और इन्हें मांझी भगाए लिए जाता है," तो चाहै लड़कों का कुछ न होता, किन्तु मांझी के प्राणों पर अवश्य आ बनती। यही सब सोच समझ कर मांझी ने बहार के रोने गिड़गिड़ाने पर कुछ भी ध्यान न दिया और प्राण के भय से किश्ती बीच धारा में खेकर ले चला। हाय! तब तक भी मीरकासिम का कहीं पता न था।

धीरे धीरे जब डोंगी बीच धारा में पहुंची उस समय बहार ने देखा कि मीरकासिम सुरङ्ग के मुहाने से बाहर निकल कर खड़ा है। यह देख

बहार ने मांझी से किश्ती किनारे ले चलने के लिये बहुत कहा, पर उसने एक न माना। किन्तु हा! नवाब की उस समय की शोचनीय अवस्था को देख पितृभक्त बहार मारे क्रोध के भभक उठा। उसने मन में सोचा कि "यह हरामज़ादा मांझी अपनी जान के डर से किनारे की ओर किश्ती नहीं ले चलता, मगर इस नाचीज़ की जान के बनिस्बत मेरे वालिद की जान इस वक्त ज्यादः बेशकीमत और निहायत ख़तरे में है"। यह सोच कर बहार ने अपने पिता की विपद के आगे अपना प्राण तुच्छ समझा। यद्यपि उस समय मुङ्गेर के किले के ऊपर अंगरेज़ी पताका फहरा रही थी, और हाट, घाट, गली बाज़ारों में मीरकासिम के बैरी घूम रहे थे, क्योंकि क्लाइव ने यह सुन कर कि "मीरकासिम भागा है", उसके गिरफ़तार करने के लिये चारों ओर अपने जासूस दौड़ा दिए थे। ऐसे समय में फिर किश्ती को लौटा कर मुङ्गेर के किले वाली सुरङ्ग के पास जाना क्या हँसी खेल था। पर यह एक डरपोक मांझी के छोटे से कलेजे का काम था! यद्यपि बहार इस बात को भली भांति समझता था कि "यदि मैं पकड़ा गया तो मेरी जान और मेरी बहिन की आबरू जाने में शायद देर न लगे।" पर इसी सोच से वह क्या अपने प्यारे पिता को ऐसी अवस्था में कभी भूल या छोड़ सकता था? निदान हठी मलाह के ऊपर झल्ला कर बहार ने कमर से तलवार खैंच कर ऐसे ज़ोर से मांझी की गर्दन पर मारी कि वह एकही चोट में दो टुकड़े होकर गङ्गा में जा गिरा। उस समय डोंगी बीच धारा से टप कर उस पार की ओर पहुंच गई थी।

इधर गङ्गा किनारे खड़ा खड़ा नवाब मीरकासिम सारी लीला देख रहा था। हा! एकबार मयना बेगम के मरने के समय उसकी आंखों से आंसू गिरे थे और फिर आज पितृभक्त सुकुमार बालक बहार की पितृभक्ति देखकर उसकी आंखें डबडबा आईं। किश्ती पर से बहार टकटकी बांध कर नवाब की ओर निहार रहा था, नवाब भी अपने वीर बालक की ओर एक टक देख रहा था।

इधर बहार ने आपही डांड़ ले कर किश्ती का मुख किले की ओर फेरा और उधर कई गोरे सुरङ्ग की ओर आते दिखलाई दिए। गोरों को देखते ही नवाब ने ज़ोर से सीटी बजाई, जिसकी आवाज सुन कर गोरे तो इधर उधर ताकने लगे, क्योंकि वे उस जगह को नहीं देख सकते थे जहां पर नवाब खड़ा खड़ा उनको देख सकता था। किन्तु बहार ने अपने पिता की सीटी पहिचान कर मुख फेरा। तब नवाब ने रूमाल हिला कर कुछ इशारा किया, जिसे समझ कर बहार किश्ती को उसी पार की ओर ले चला और नवाब गोरों के वहां पर पहुंचने के पहिले ही सुरङ्ग के भीतर घुस कर ग़ायब होगया।

उधर तो बहार गङ्गा के उस पर जाकर गांव में छिपने का विचार करने लगा और इधर गोरों ने सुरङ्ग के पास पहुंच और मशाल बाल उसके भीतर घुस कर देखा तो वह एक छोटीसी गुफा दिखलाई दी, जिसमें कहीं पर भी किसी राह या कोठरी आदि का कोई चिन्ह नहीं जान पड़ता था।

[क्रमशः

श्रीकिशोरीलाल गोस्वामी।

चीनी-तुर्किस्तान

काश्मीर से उत्तर-पश्चिम की ओर प्रकृति की शोभा निराली ही है। प्रकृति-देवी के अनुपम सुन्दर स्वरूप से आल्हादित होकर यात्री जिस समय उत्तर की ओर जाता है तो उसे कहीं तो दुर्गम मार्ग, कहीं अति वेगवान नद और नाले और कहीं दीवार की भांति खड़े पहाड़ मिलते हैं, जिन्हें देख कर यह प्रतीत होता है कि मनुष्य के भौगोलिक ज्ञान की यहीं सीमा है। समुद्र से बारह और चौदह हजार फ़ीट ऊंचे त्रगबल और वर्ज़िल पास हैं। उनके परे भयानक घाटियां

और सिन्ध नदी है। सिन्ध का वेग यहां ऐसा तीव्र है कि कोसों तक कोई नाव नहीं मिलती और यदि कोई साहसी नाव ले भी जाय तो केवल इस बात की शिक्षा देने के लिये कि साहस का भी कहीं अन्त है। पर विद्यारसिक को संसार की कोई भी कठिनाई उसके उद्देश्य में सफलीभूत होने से नहीं रोक सकती। नैनसन की तत्परता के आगे उत्तरीय प्रान्त की बारह महीने रहनेवाली बरफ़ को भी हार माननी पड़ी। कई बेर हतोत्साह होने पर भी क्रिस्टोफ़र कोलम्बस ने अपने उद्देश्य को न तो मार्ग की कठिनाई के कारण और न उन पशुसमान भयानक नरभक्षी जातियों के कठोर आक्रमणों के कारण छोड़ दिया। हम भी आज एक इस समय के कोलम्बस की यात्रा का बहुत ही संक्षिप्त वर्णन करेंगे कि जिसने एक ऐसे देश में जो वर्तमान समय में असभ्य जातियों का निवासस्थान है, प्राचीन, मनोहर सभ्यता का अनुसन्धान किया है।

डाक्टर स्टाइन आज कल पंजाब में स्कूलों के इन्स्पेक्टर हैं। उन्हें पुरातत्वसम्बन्धी विषयों में बड़ा अनुराग है। उन्होंने संस्कृत के बृहत् और एक मात्र काश्मीर इतिहास राजतरङ्गिणी का अंगरेज़ी अनुवाद किया है। जिस समय वे उसका उल्था कर रहे थे, वे स्वयं काश्मीर गए और वहां उनसे काश्मीर के असिस्टेंट रजिडण्ट से मिलाप हुआ। उन्होंने स्टाइन साहब से चीनी तुर्किस्तान में प्राचीन लिपि, गृह और तसवीरें इत्यादि के कहीं कहीं मिलने का समाचार कहा। इसी समय डाक्टर हारनले ने एशियाटिक सोसाइटी के जर्नल में चीनी-तुर्किस्तान की प्राचीन ऐतिहासिक सामग्री पर एक बड़ा लेख लिखा। इसके पूर्व कई रूसी यात्री इस प्रान्त में यात्रा करते हुए प्राचीन बहुमूल्य पदार्थ ले आए थे। वहां के मुसलमानों ने जब देखा कि फरङ्गी लोग हमेशा प्राचीन पुस्तकें इत्यादि ढूंढा करते हैं तो वे बनावटी पुस्तकें जिन पर विचित्र अक्षर खुदे हुए हों साहब लोगों के हाथ बेच कर रुपया कमाने लगे। ऐसे ढंगों का एक दल हो गया जिनके सर्दार इसलाम आखूं का नाम बहुत विख्यात है। डाक्टर हारनले के लेख और तसवीरों में इसकी दी हुई अधिक सामग्री है और डा० हारनले को धूर्त पर श्रद्धा भी थी। यह धूर्त दो एक सच्ची वस्तुओं के साथ बनावटी झूठे पदार्थ ऐसी चालाकी से दे दिया करता था कि सब लोगों को इसकी सचाई पर विश्वास था। पर जब डाक्टर स्टाइन ने (जो केवल इस प्रान्त के पुरातत्वसम्बन्धी अनुसन्धान ही के उद्देश्य से गए थे) विशेष छान बीन की तो इस इसलाम आखूं की पोल खुल गई। स्टाइन ने इसको अपने सामने बुलाके ऐसे टेढ़े प्रश्न पूछे कि इन्हें स्वयं अपना भेद खोलना पड़ा। भारतवर्षीय इतिहासज्ञ लोगों को मालूम होगा कि सेण्ट जेवियर पादरी के साथ यहां के पण्डितों ने भी ऐसा ही किया था। जब उन्होंने वेद मांगे तो पण्डितों ने कोई माहात्म्य उठा कर दे दिया और सैंकड़ों रुपए भस लिए। इसलाम आखूं से जिस प्रकार साहब ने सब कबूल करवा लिया वह जानने योग्य है, पर उन्होंने उसे बड़ी रिपोर्ट में लिखने का वादा किया है। इस धूर्त यवन का यह नियम था कि वह साधारण देशी कागज़ को, जो खुतन नगर में बनता है, एक प्रकार की गोंद में रंग के धुएं में लटका देता था जिसमें यह धोखा हो कि कोई प्राचीन लिपि है। अब इस पर खुदे हुए ब्लौक से जो उसने बनवा रक्खे थे, प्राचीन भाषा ब्राह्मी अथवा खरोष्ठी के अक्षर छाप देता था और एक पुस्तक बनवा कर उसके पत्रों में बालू छोड़ देता था, जिसमें यह मालूम हो कि पुस्तक गड़ी हुई मिली हैं। परन्तु डाक्टर स्टाइन ने एक सहल उपाय इन के जाली सिद्ध करने का किया। जिस गोंद में यह कागज रंगा जाता था वह पानी में घुल जाती है, इस कारण गीला हाथ लगाते ही उसका रंग बदलने लगता था। इसके विरुद्ध जो सचमुच प्राचीन लिपियां थीं उन पर पानी का इतनी जल्द कुछ भी असर नहीं होता था।

निदान जिस देश में जाने के लिये इतनी कठिनाइयां थीं ग्रैार जिस स्थान में प्राचीन पदार्थों के संग्रह होने की ऐसी सम्भावना थी, वहां जाने के लिये स्टाइन साहब उत्सुक थे। उन्होंने अपनी इच्छा डाक्टर होरनले पर प्रकट की, जिन्होंने तुरन्त भारतवर्षीय सरकार से इनकी प्रार्थना स्वीकार कराई ग्रैार इनको इण्डिया ग्रैार पञ्जाब की गवर्नमेण्ट ने मिलकर ९००० रु० व्यय के हेतु दिया ग्रैार चीनी राज्य में जाने के लिये पास दिलवाया। सर्वे (नाप) विभाग से एक आदमी इनकी सहायता के लिये ग्रैार कुछ बन्दूकें भी इनको मिलीं। २९ मई सं० १९०० को साहब श्रीनगर से गिलगिट की ग्रोर रवाना हुए। यहां इन्हें एक गहरी ग्रैार खड़ी चट्टान में एक बुद्ध की मूर्ति खुदी हुई मिली। चीनी यात्रियों ने "पोलियो" प्रदेश का वर्णन किया है। अब लों इस स्थान का ठीक पता नहीं मिला था, परन्तु "स्कारदो" में साहब ने वहां के निवासियों को "पोलियो" कहते हुए सुना। इससे प्रतीत होता है कि "स्कारदो" का प्राचीन नाम पोलियो रहा होगा। गिलगिट से हुंज़ा गए। रास्ते में उन्हें हिमालय की अद्भुत ग्रैार मोहिनी छटा के दर्शन मिले। यहां से थोल गए। इस स्थान में २० फ़ीट का एक प्राचीन बौद्ध स्तूप देखा जिसकी कुर्सी पक्की थी। यहां से पामीर गए। वहां के लोग जो दस वर्ष पूर्व ऐसे भयानक थे, अब सभ्य हो चले हैं। साहब ने इसे भाषाग्रों का ग्रजायबघर कहा है, क्योंकि यहां बहुतसी भाषाएं बोली जाती हैं। इसके परे खुतन प्रान्त है। यहां कोहमारी में एक बौद्ध मन्दिर है, जिसका नाम ह्यानसाङ्ग ने गोश्टङ्ग लिखा है। इस स्थान में अब एक मुसलमानी मजार है। एक गुफ़ा भी यहां है जहां से ऐसा कहते हैं कि ग्रिनार्ड ग्रैार डिट्रियल डिरिन्स को प्राचीन ग्रन्थ मिले थे।

खुतन एक मरुस्थल है। इसमें थोड़ी दूर तक उपजाऊ भूमि भी मिलती है। इसमें बहुत से सिक्के ठहरे पाई जाती हैं। इसमें स्टाइन साहब को मिट्टी के बर्तन मिले जिन पर बड़ा सुन्दर रङ्ग दिया हुआ था। एक घड़े पर एक बन्दर बैठा सितार बजा रहा है. दूसरे पर एक गौ की मूर्ति है। दो एक बुद्ध अथवा वैरागियों की मूर्तियां भी मिलीं। यहां इन्हें कोई प्राचीन मकान नहीं मिला। इसका कारण पत्थर का न होना है, क्योंकि जिस स्थान पर ऐसी सभ्यतासूचक वस्तुएं मिलें वहां मकान का ग्रभाव ग्रसम्भव है। मालूम होता है कि यहां लकड़ी के मकान थे जो जल में समय पाकर गल गए हैं। यहां पर नालों में लोग सोना जमा किया करते हैं ग्रैार इन प्राचीन वस्तुग्रों के ग्रनुसन्धान का प्रारम्भ सोने ही के लालच का परिणाम है। यह प्रश्न बड़ा रोचक है कि इस निर्जन स्थान में सोना कहां से ग्राया। साहब ने इस सोने को लेकर जांचा। मालूम हुआ कि यह सोने का पत्र है। पाठकों पर यह विदित कर देना उचित है कि जिस मार्ग से साहब यात्रा कर रहे थे उसी स्थान से फाहियान ग्रैार ह्यानसांग भी गए थे। इसी स्थान का वर्णन पढ़ते हुए "सयूकी" ग्रर्थात् इन चीनी यात्रियों की कथा में उन्हें मिला कि यहां उनके समय में बौद्ध मन्दिर ग्रैार मठ थे जिनमें बुद्ध देव की स्वर्णमूर्तियां थीं ग्रैार मन्दिरों की भीत पर सोने के पत्र मढ़े थे। क्या आश्चर्य है कि उस खण्डहर में से बहता हुग्रा पानी उन स्वर्ण कणों को ग्रपने साथ बहा लाता हो कि जो मूर्तियों ग्रैार भीतों को सुसज्जित करते थे। यहां प्राचीन स्तूपों के चिन्ह जगह जगह मिलते हैं, पर मुसलमानों ने उन सबको ग्रपनी ज़ियारतगाहें बना लिया है।

यहां से ग्रागे बढ़ कर साहब दन्दान उल्लीक़ स्थान में गए। इस शब्द का ग्रर्थ है "हाथी दांत के घर"। यहां इनको बड़ी प्राचीन ग्रैार रोचक वस्तुएं मिलीं। एक मकान खुदवाने पर उसमें लकड़ी का सामान, दीवारों पर बुद्ध की मूर्तियां ग्रैार छोटी छोटी मूर्तियां जो दीवारों से उखड़ कर गिर पड़ी थीं, मिलीं। साहब इनमें से कुछ ग्रपने साथ ले ग्राए हैं। इन दीवारों पर एक विशेष प्रकार का

सुन्दर प्रस्तर है। यहां पर एक मूर्ति इन्हें मिली जिसका शरीर किसी देवता का मालूम होता है, परन्तु सिर चूहे का है। ह्यानसांग ने लिखा है कि खुतन के निकटवर्ती स्थानों में चूहे की पूजा होती थी। तसवीरों के रङ्ग पर बालू का असर स्पष्ट मालूम होता है। इन्हीं खण्डहरों में प्राचीन हस्त-लिपियां भी प्राप्त हुईं जिनका सविस्तर वर्णन साहब अपनी बड़ी रिपोर्ट में करेंगे। एक प्रकार की काठ की पुस्तकें यहां मिलीं। यह हिन्दुस्तानी पट्टी की तरह से हैं।

इसके और परे नीया नदी के तट पर कई प्राचीन गृह खोदे गए। यहां साहब को एक प्राचीन समय की दरी मिली और इनकी कोठरियों को देख कर यह मालूम हो जाता है कि उस समय में लोगों का रहन सहन कैसा था, मिलनेवाले कमरे में लोग कैसी वस्तुएं रक्खा करते थे। साहब को यहां एक क़लम मिली जिसपर हड्डी का मुट्ठा है। प्राचीन जातियों की विद्यावृद्धि का ज्ञान प्राचीन लिपियों से होता है। यहां काग़ज़ पर लिपियां बहुत कम मिलती हैं। दो तख़तियां लेकर जो कुछ लिखना चाहा वह पहिले एक पर फिर उसीके सम्बन्ध में दूसरे पर लिख कर तख़तियों को बन्द कर देते थे। किसी किसी तख़्ती में चमड़े के तस्मे मिलते हैं जो छेद में खोंसे हुए हैं, जिनसे ये तख़्तियां बांधी जाती थीं। इनमें विषय धार्मिक नहीं है, वरञ्च सामाजिक पत्रव्यवहार। जैसे काश्मीर की प्राचीन लिपियों पर, यद्यपि वे ब्राह्मणों की संग्रह की हुई हैं, चमड़े की जिलदें मिलती हैं, उसी प्रकार यहां तख़ती के बदले चमड़े पर लिखे हुए अक्षर मिले हैं। यह चमड़ा अब सिमट गया है, परन्तु इसको फैलाने से इस पर लिखे हुए अक्षर पढ़े जा सकते हैं। इन लिपियों के अक्षर खरोष्ठी, ब्राह्मी, पाली और संस्कृत हैं। काग़ज़ की लिपियों पर विषय बौद्धधर्म है और काठ की तख़तियों पर सरकारी अथवा किसी पुरुष विशेष का पत्रव्यवहार है। इन कोठरियों में से एक जगह एक काठ की टूटी हुई कुर्सी भी मिली है जिसपर बड़ी सुन्दर नकाशी है।

इसके परे 'इन्दोर'', "कारडैाङ्ग" इत्यादि स्थानों में भी इसी प्रकार की वस्तुएं मिलीं। साहब को जिस सिलसिले तरतीब से ये प्राचीन वस्तुएं मिलीं, उसी तरह नम्बर देकर उन्होंने उन्हें अपने साथ रख लिया हैं, जिसमें उनके समय का निर्णय करने में सुगमता हो। अपनी बड़ी रिपोर्ट में साहब प्रत्येक लिपि के समय का निर्णय करेंगे। कहीं कहीं उन्होंने इस छोटे वृत्तान्त में भी संकेतमात्र दे दिया है। उदाहरण के हेतु इतना लिख दिया जाता है कि इन लिपियों में "य" अक्षर "य" लिखा है जिससे उसका समय सातवीं शताब्दी सन् ईसवी निश्चय होता है और सिक्कों में सबसे पीछे के आठवीं शताब्दी के मिलते हैं। इन स्थानों की सभ्यता और समय में भिन्नता है, जिसका बड़ी रिपोर्ट में पृथक् वर्णन होगा। कारदङ्ग में साहब को सूखी गाजर कई प्रकार की दाल इत्यादि खाने के पदार्थ मिले।

काशग़र बहुत ही प्रसिद्ध स्थान है। चीनी यात्रियों को यहां सैंकड़ों स्तूप मिले थे, परन्तु हमारे योरोपियन यात्री को केवल एक ही स्तूप मिला जिसमें मुसलमानों ने क़बरें बना ली हैं। इसका रङ्ग अभी फीका पड़ गया है, अब दुरुस्त नहीं हो सकता। पुराने स्तूपों के खण्डहर अबलों विद्यमान हैं। इस स्थान को लोग "कोनह शहर" (प्राचीन नगर) कहते हैं।

यों तो सरकार अंगरेज़ी के प्रभाव से जहाँ जहाँ साहब बहादुर गए, इन्हें चीनी राज्य के मजिस्ट्रेट (अम्बान) लोगों ने पूरी सहायता दी। मजदूर, भोजन के पदार्थ, चौकीदार इत्यादि बराबर मिलते गए, परन्तु विदेश में इन वस्तुओं के अतिरिक्त यदि किसी प्रकार उस प्रान्त के निवासियों की सहायता और सहानुभूति का लाभ भी मिल जाय तो सोने में सुगन्ध है। पाठकों को आश्चर्य होगा कि जिस स्थान पर यह जाकर चीनी यात्रियों का ना

...ते थे ग्रैार उनसे यह कहते थे कि मैं भी उन्हीं स्थानों में भ्रमण कर रहा हूं जहां उनके चरण पड़े थे ग्रैार इसके साथ ही भारतवर्ष ग्रैार मध्य एशिया के प्राचीन सम्बन्ध को उनपर प्रकट करते तो वे लोग साहब का बड़ा सम्मान करते थे।

इन सब स्थानों में भ्रमण करते ग्रैार सामग्री एकत्र करते हुए २९ मई को साहब १२ बड़े बड़े सन्दूक इन सामग्रियों से भर कर ट्रान्स-केस्पियन रेलवे से होते हुए, जिसको ग्राज्ञा उन्होंने मंगा ली थी, लन्डन की ग्रोर पधारे। उनके साथी भारतवर्ष की ग्रोर लैाटे जिनमें से सब-सरवेयर रामसिंह के उत्साह, व्युत्पत्ति, परिश्रम ग्रैार सुशीलता की साहब ने बड़ी प्रशंसा की है। हमें तो सब-सरवेयर रामसिंह के दर्शनों की इच्छा होती है।

लन्दन पहुंचने पर साहब को छः सप्ताह लन्दन में रहने की ग्राज्ञा मिली ग्रैार इतने समय में इन्होंने ग्रपनी वस्तुग्रों की सूची बना कर उसे विख्यात ग्रजा-यबख़ाने ग्रर्थात् बृटिश म्यूज़ियम में रखवा दिया। ग्रब फिर भारतीय गवर्नमेण्ट ने स्टाइन साहब को १८ महीने लन्दन में रहने की ग्राज्ञा दी है, जिसमें वे पूरी रिपोर्ट तैयार कर सरकार की सेवा में प्रकाश करने के हेतु दें। धन्य हैं स्टाइन साहब ग्रैार धन्य ग्रंगरेज़ी सरकार!

ग्रब एक बात ग्रैार कह कर हम इस लेख को समाप्त करते हैं। यह प्रश्न पूछा जा सकता है कि यह प्राचीन सभ्यता जिसकी सामग्री स्टाइन साहब को प्राप्त हुई, किस जाति की है ग्रैार इतिहास इस पर चुप क्यों है। तिब्बत के एक ग्रन्थ में लिखा है जिसको रोकहिल ने ग्रपने रचे "बुद्ध के जीवनचरित्र" में उद्धृत किया है कि तक्षिला के निवासियों को ग्रशोक ने हिमालय के उत्तरी प्रान्तों में निकाल दिया था। इस कथा का वर्णन ह्यान-सांग ने भी किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि वर्तमान चीनी तुर्किस्तान में यही जाति जाकर बसी। यह बात नीचे लिखे प्रमाणों से दृढ़ होती है।

(१) ग्रशोक के पीछे के शिलालेखों में ग्रधिकांश का विषय सामाजिक है–धार्मिक नहीं। इस प्रान्त की तख़्तियों में भी पत्रव्यवहार ही मिले हैं। पंजाब में भी ग्रशोक के पीछे के ग्रन्थ ऐसे ही मिले हैं। (२) जैसे सिक्के तक्षिला में मिलते हैं, बनावट में उसी प्रकार के चीनी-तुर्किस्तान में भी मिले हैं। (३) तक्षिला में भी खरोष्टी ग्रक्षरों का प्रयोग होता था, यहां भी उन्हीं का था।

ग्रन्त में यह कहने की कोई ग्रावश्यकता नहीं कि हमें साहब की पूरी रिपोर्ट पढ़ने की बड़ी उत्कंठा है ग्रैार ईश्वर ग्रैार सरकार से प्रार्थना है कि वे उन के ग्रन्यान्य स्थानों के ग्रनुसन्धान में सहायक हों।

रामनारायण मिश्र।

बीजापुर

ईश्वर की ऐसी विचित्र लीला है कि कभी उजाड़ स्थान को वह सुन्दर नगरी बनाता है ग्रैार कभी सुहावनी नगरी को उजाड़ कर देता है। यह उसकी मानो नित्य की लीला है। ग्रस्तु, हम ग्रपने पाठकों को ऐसा ही एक उदाहरण सुनाते हैं। भारतवर्ष के दक्षिणी देशों में बीजापुर एक प्राचीन प्रसिद्ध नगरी है जो शोलापुर से दक्षिण लगभग ३० कोस की दूरी पर कृष्णा ग्रैार भीमा नदी के बीच में पर्वत पर बसी हुई है। इसके ग्रास पास सृष्टिकर्ता ने कोई सुन्दर सुहावन मनभावन दृश्य नहीं दिखाया है। जिधर देखिए जहां तहां लम्बे चैाड़े सरपट मैदान पर कहीं कहीं ग्रनाज की हरी भरी लहलहाती खेती ग्रपनी शोभा दिखाती है। चाहे सृष्टिकर्ता का सृष्टिवैचित्र कुछ न हो, पर पुराने समय के उस स्थान के रहनेवाले मुसलमानों की ग्रनेक प्रकार की कारीगरी से बनी बहुत सी इमारतें ग्रभी तक पुरानी कारीगरी की साक्षी दे रही हैं। पहिले तो नगर के पास पहुंचतेही बीजापुर की नामी इमा-

रत "गोल-गुम्बज" की छटा दिखाई देती है। फिर तो ज्यों ज्यों नगरी निकट आती जाती है, त्यों त्यों और मसजिद आदि छोटी बड़ी इमारतें देखने में आती जाती हैं। कोई साबूत, कोई अध-टूटी, किसीका भग्नावशेष देख पड़ता है। नगर के चौतरफा पत्थर का कोट बना हुआ है, जिस की परिधि अनुमान ३ कोस के घेरे की होगी। कोट के नीचे गहिरी खाई खुदी हुई है जिसे देखते ही आक्रमणकारी जनों की आशातृष्णा सूख जाती है। कोट के ऊपर जगह जगह पर सुन्दर सुदृढ़ अनेक बुर्ज बने हुए हैं, जिससे कोट की अधिक दृढ़ता प्रतिपादित हो रही है। कहते हैं कि किसी समय में जब इस नगरी के सौभाग्य के दिन थे, इसका भाग्यभानु अपनी पूर्ण दीप्ति से दीप्तिमान हो रहा था। तब इसके स्वामी ने अपने भाई बेटों को नगर के एक एक गुम्बज बनाने का भार सौंपा था। सबने अपनी अपनी रुचि के अनुसार एक एक गुम्बज बनवाया था। इसीसे वे अब एक दूसरे से सम्पूर्ण भिन्न रंग ढंग के हैं। नगर में भी अनेक मीनार हैं जिनमें सोरजी, लन्दा, कसब, फिरंगी और ऊपरी बुरूज ही नामी हैं। सोरजी (सिंहराज) बुरुज के ऊपर बीजापुर की प्रसिद्ध तोप "मालक मयदान" रक्खी हुई है, पर यह अपने काम में कैसी है यह नहीं कह सकते। ऐसा सुनने में आता है कि जब यह छूटती थी तो अपने वैरियों का दर्प चूर्ण कर देती थी। इस तोप का घेरा इतना बड़ा है कि एक मनुष्य इसके अन्दर घुस कर भली प्रकार से सो सकता है। इस मालक मैदान तोप को मुहम्मद रुमी खां ने बनवाया था। कहते हैं कि रुमीखां ने इस तोप को अपने पुत्र को बलिदान देके उसके रक्त से सींचा था। ऊपरी गुम्बज अली आदिल शाह के प्रसिद्ध सेनापति हैदर खां ने बनवाया था। नगर के चारों ओर जो कोट है वह तालीकोट की लड़ाई के बाद कमजोर हो गया था, इस लिये अली आदिलशाह ने अपने यहां के एक एक भाग एक एक सर्दारों को बनवाने की आज्ञा दे दी थी। जिस समय नगर का कोट बनने लगा था उस समय हैदर खां किसी वैरी से युद्ध कर रहे थे; जब लौट आए तो देखा कि कोट लगभग बन चुका है; इसलिये वह इस दीवार के बनवाने में कुछ सहायता न दे सके, पर इस बात का उनके जी में मलाल बना रहा। इसलिये बादशाह ने कहा कि अगर तुम्हें बनवाना है तो एक ऐसी मीनार बनवाओ जो सबसे ऊंची बने तो तुम्हारा नाम भी सब लोगों से ऊंचा माना जायगा। तभी उन्होंने एक ऊंची जगह पर एक ऐसी ऊंची मीनार बनवाई जिस पर चढ़ने से नगर के सब स्थान दिखाई देते हैं और नगर के चाहे कहीं से इस मीनार को देख लो, इसीसे इसका नाम "ऊपरी बुरुज" रक्खा गया। इसके ऊपर दो बड़ी बड़ी तोपें रक्खी हुई हैं। इसमें एक तोप बहुत लम्बी है। लन्दा कसब के ऊपर भी एक बड़ी तोप रक्खी हुई है। सन् १६८६ ईसवी में जब औरङ्गज़ेब ने बीजापुर पर चढ़ाई की थी उस समय उन्होंने जो गोला गोली मारे थे अभी तक उनके निशान जगह जगह पर बने हुए हैं। पहिले "मङ्गल-तोरण" नाम का नगर में जाने का एक बड़ा फाटक था। औरङ्गज़ेब भी उसी रास्ते से नगर में घुसा था। इसलिये पहिला नाम बदल कर उसने उसका नाम "फतह फाटक" रक्खा था।

नगर में जाने के पांच फाटक थे जिनमें ४ तो अभी तक ज्यों के त्यों हैं, पांचवां फाटक बन्द हो गया है, क्योंकि सरकारी कचहरी वग़ैरह इमारतें उसी ओर हैं। उस ओर जाने से नगर की एक सुन्दर छटा दिखाई देती है। जगह जगह टूटी फूटी इमारतों के देखने से अनुमान होता है कि किसी समय यह एक हरीभरी सुन्दर नगरी थी। जो चार पुरानी इमारतें रह गई हैं, अगर उन्हें छोड़ दिया जाय तो अब नगर में देखने लायक कुछ नहीं है। आज कल बची बचाई जो कुछ लोगों की इमारत या देखने लायक चीज़ें हैं, वे सब पश्चिम वाले फाटक के सामने या आस पास ही दिखाई

देती हैं, और इसके सिवाय जिधर जाइए उधर ही उजाड़ बीहड़ बियाबान दिखाई देता है। फाटक के अन्दर दोतर्फ़ा पेड़ों की श्रेणियों की ऐसी कतार लगी हुई है कि वह सीधी किले के अन्दर चली गई है। इस किले का नाम अर्क किला है। यह गोल बना हुआ है और एक मील के घेरे में है। इसी स्थान में बड़े बड़े साहब सूबों के रहने योग्य सुन्दर कोठियां बनी हुई हैं। किले के अन्दर अनेक प्रसिद्ध इमारतें हैं, जैसे सतमहला महल, आनन्द महल, बाहर प्रस्तार महल, मालिक जहान और अली आदिल की अधबनी समाधि का स्थान और पुरानी मसजिद। ये सब इस बात का प्रमाण देती हैं कि कोई समय ऐसा था कि जब बीजापुर के भाग्य जगे हुए होंगे, पर कालबली ने उसे भी मिट्टी में मिला दिया। वर्तमान अवस्था को देख उस समय जी को इस बात पर खेद होता है कि हा विधाता, बने को बिथोरना तो मानो तेरा नित्य का खेल है। तात्पर्य यह कि इस समय बीजापुर की उजाड़ दशा हो रही है। बड़ी बड़ी इमारतें, मसजिदें और विलासियों के राजभवन खण्डहर से टूटे फूटे उजड़े बिगड़े पड़े हैं।

इस समय जितनी इमारतें हैं उन सभों में अर्क किला सर्वोत्तम माना जाता है। यूसफ आदिल शाह पहिले सुलतान ने इस किले का बनवाना प्रारम्भ किया था और इब्राहीम आदिल शाह के समय में यह बन के तैयार हो गया था। ध्यान से देखने से जान पड़ता है कि हिन्दुओं के पुराने सुन्दर सुन्दर देवताओं के मन्दिरों को तोड़ फोड़ के मुसलमानों ने अपनी मनमानी मसजिदें और विलासभवन बनवा लिए थे। कहते हैं कि दूसरे इब्राहीम बादशाह को अपने धर्म्म पर से अश्रद्धा हो गई थी और हिन्दूधर्म पर श्रद्धा थी, इसलिये वे नरसोबा नामक मन्दिर में आके पूजा सेवा किया करते थे। अभी तक कभी कभी उसी जगह पर मेला लगा करता है। अर्क किले की लम्बी चौड़ी सुन्दर कई एक इमारतें एक में मिली हुई अच्छी छटा दिखाती हैं। चीन महल में जजी, मजिष्ट्रेटी और कलेक्टरी की कचहरी लगती है। इसीके पास सतमहला भवन अपनी उंचाई के अभिमान में सिर ऊंचा किए छाती फुलाए खड़ा है। गगन महल में पुराने राजा लोग दरबार करते थे। उसीके सामने ही एक बड़ी खिलान अब तक है, पर सब जगह से यह खिलान खिल गई है। इस हालत पर भी अपनी समता में वह दूसरी नहीं रखती। आनन्द महल का जैसा नाम है बनावट भी वैसी ही सुन्दर है। इस ठौर पर विलासी राजाओं के विलास के अनेक उपयुक्त मकान बने हुए हैं। कहीं फुलवारी, कहीं फुहारे, कहीं गुप्त द्वार बने हुए थे, जहां से रानियां आ के बाग़ की सैर करती थीं। वे इस चतुराई से बनवाए गए थे कि रानियां बाहर की सब वस्तु भली प्रकार निहार सकती थीं। इस इमारत की बनावट बड़ी चतुराई से बनाई गई थी। भीतर से रानियां सब कुछ बाहर की चीजें देख सकती थीं, पर बाहर वाला उन्हें नहीं देख पाता था। अर्क किले के एक एक घर में ऐसी कारीगरी बनी हुई है कि जो जगत् में बीजापुर की कीर्त्ति को सँभाल रही है। यह वही किला है जिसमें नाबालिग़ सुलतान इसाइल के विरोध में मन्त्री कमाल ख़ां गुप्त सलाह करने गए थे, पर अपने ही प्राण गवां आए। इसी किले के अन्दर अनेक ऐतिहासिक बातें हो चुकी हैं, जैसे चांद सुलताना इसी किले में अपना दरबार करती थी। मन्त्रियों ने सलाह करके उन्हें कैद कर सितारे निकाल दिया था। इसी ठौर में विलासप्रिय महमूद अपनी प्यारी नायिका रम्भा के प्रेम आनन्द में समय बिताते थे। आदिलशाही नवाबों के इसी ठौर में न जाने कितने लड़ाई झगड़े हुए हैं, और यहां ही से उस बंश की भी समाप्ति हुई। विजयी औरङ्गजेब के चरणों पर यहां के सुलतान सिकन्दर ने हार मान के अपना ताज रख दिया था। चाहे अब यहां की सम्पूर्ण विभव ध्वंस हो गई हो तो भी पुराने समय की एक उत्तम साक्षी इन वर्तमान खंडहरों से पाई जाती है।

इस समय बीजापुर में जो टूटी फूटी इमारतें वर्तमान हैं, उन सभों में से "बोल" अथवा "गोल" गुम्बज ही प्रधान है। यह सुलतान महमूद की समाधि है। इतना बड़ा गुम्बज उस नगर में क्या, शायद पृथ्वी भर में दूसरा न होगा। गुम्बज की बाहरी ऊंचाई १९८ फ़ीट की है और जिस चौखूंटी दीवार पर यह बनाया गया है उसको एक एक ओर की दीवार की लम्बाई १३५ फ़ीट की है। इमारत चौखूंटी है जिसकी नाप १८२२५ फ़ीट है। रोम नगर में जो पन्थियन है यह उससे भी बड़ी है। बाहर चार कोनों पर चार मीनारें हैं, जिसमें नीचे से ऊपर तक बराबर झरोखे बने हुए हैं। इन मीनारों में सात खन हैं। इसके अन्दर ऊपर तक जाने के लिये सीढ़ी बनी हुई है। इन पर चढ़के छ खन पर जाने से छत पर पहुंच जाते हैं जहां से चारों ओर दूर दूर की शोभा दिखाई देती है। उस पर से धर्ती पर खड़े हुए मनुष्य भुनगे से जान पड़ते हैं। इस गुम्बज के अन्दर जो ज़रा सा भी कोई बोलता है तो चारों ओर उस इमारत भर में वह शब्द ऐसा गूंज जाता है मानो हजारों मनुष्य के बोलने का भ्रम हो जाता है। दक्षिणवाले दरवाजे से जहां समाधि है वहां का रास्ता है। वहां सुलतान के गोर के पास ही बेगम और शाहजादों की भी गोर हैं। दक्षिण ओर के द्वार के पास ही एक पत्थर की पटिया पर फारसी अक्षरों में लिखा हुआ है कि सुलतान महमूद का हिजरी सन् १०६७, अर्थात् ईसवी सन् १६५६ में, देहान्त हुआ था। दक्षिण की ओर जो द्वार है उसके ऊपर लोहे की संकल में एक बहुत भारी पत्थर लटक रहा है। लोगों को ऐसा गुमान था कि इसी के गुण से इस बड़े गुम्बज पर बिजली नहीं गिर सकती। एक बेर इसी गुम्बज़ पर बिजली गिर भी चुकी है तौभी लोगों के जी से वह पहिला अनुमान नहीं टसकता।

गोल गुम्बज के बाद ही "इब्राहिम रोजा" अर्थात् इब्राहिम बादशाह की कबर और मसजिद बनी हुई है।

इब्राहिम रोजा

शहरपनाह की पश्चिम दीवार से सटा हुआ इब्राहिमशाह का रोजा है। गोल गुम्बज की जैसी सीधी सीधी बनावट है, इब्राहिम रोजे में वैसी ही अनेक प्रकार की सुन्दर कारीगरी है। इसकी कबर, मसजिद, बगीचा और मीनार का दूर से बड़ा सुन्दर दृश्य मालूम होता है। मुगलों ने जब बीजापुर पर चढ़ाई की और इस पर उनकी अमलदारी बैठ गई तो उस समय यह रोजा भी उन्हीं लोगों के अधिकार में आगया था। उस समय मालिक मैदान नामी तोप के गोलों से इस मीनार को बहुत कुछ हानि सहनी पड़ी थी। आज कल बहुत कुछ बिगड़ी हुई जगहों की फिर से मरम्मत हो चुकी है। इन बड़ी बड़ी पत्थरों की इमारतों के नकाशी के कामों को देख सुन लोगों के चित्त में बड़ा ही कुतूहल और विस्मय होता है कि न जाने क्योंकर कितने कारीगरों ने कितने दिनों में इन्हें बनाया होगा, और न जाने कितने रुपए इन इमारतों के बनाने में खर्च पड़े होंगे। इब्राहिम रोजे के एक जगह पत्थर पर फारसी अक्षरों में लिखा हुआ है—मालिक सन्दाल ने बड़े खर्च और मेहनत से यह कबर और इमारत बनवाई थी। इनके बनवाने में डेढ़ लाख नौ सौ हून खर्च हुआ था। एक एक हून का दाम अगर सात सात शिलिङ्ग भी मान लिया जाय तो ५२८१६ पाउण्ड होता है। एक मोटा हिसाब लगाने से साढ़े पांच लाख रुपए होते हैं। पर शायद इतने रुपए तो खाली गुम्बज ही के बनवाने में खर्च हो गए होंगे। सारी इमारत के बनवाने का खर्च नहीं है। सारी इमारत के बनवाने में एक करोड़ रुपए से कम न खर्च हुआ होगा, बल्कि कुछ अधिक ही हुआ होगा।

६५३३ रेजे रोज काम करते थे ग्रोर २६ वर्ष ११ महीने ११ दिन में बन के तैयार हुआ था। इन लोगें की जो गिनती लिखी गई है वह शायद कारीगर, राज मिस्त्री प्रभृति ऊंचे दर्जे के कारीगरों की गिनती होगी। इनके अलावा गरीब मजूरे मजदूनियों को अन्न वस्त्र देके काम अवश्य ही लिया गया होगा। बिना ऐसा किए ऐसी इमारतों का बनना सम्भव न था। यह मुसलमानों की एक अनोखी चाल है कि अपने जीते जी अपने लिये क़बर बनवा छोड़ते हैं। हिन्दुओं में तो ऐसी प्रथा है कि जब तक जीते हैं तबही तक सब कुछ, मरने के उपरान्त तो अपने मृतशरीर को जला के भस्म कर डालते हैं और उस राख को भी लुप्त कर देने की इच्छा रखते हैं।

अली रोज़ा

मुसलमान जाति अपने भवन से बढ़ के अपनी समाधि गृह को अच्छा सँभाल के बनवाती है। सुलतान महमूद के लड़के अली आदिल शाह ने गोल गुम्बज के समान अपनी कबर को तैयारी से बनवाया था। उनको इच्छा थी कि मेरे समाधि मन्दिर की परछांही मेरे पिता के समाधिमन्दिर पर पड़े। परन्तु ईश्वर की यह इच्छा न थी। मकान बनने भी न पाया कि उनको मृत्यु हो गई। अस्तु, अधूरे मकान ही में उनको गोर दी गई। अभी तक वही अधबना उनका कबरवाला मकान दिखाई देता है। उसी अधूरे मकान का नाम "अलीरोजा" है। पर अधबना मकान होने पर भी बहुतेरे तैयार भवनों से चढ़ा बढ़ा है। जैसी उनके जी में इस समाधि बनवाने की इच्छा थी, अगर बन के तैयार हो जाती तो सचमुच गोल गुम्बज से इसकी सज धज चढ़ बढ़ के होती और अली भी अपनी इच्छा पूरी कर अपने जी के सुख से मरते।

इस अधबनी मसजिद के एक कोने में चमकदार सुन्दर नकाशियों के हरे पत्थरों से बनी हुई एक कबर है।

सुलतान सिकन्दर की क़बर

सुलतान सिकन्दर की कबर ग्रोर ग्रोर लोगें की कबरों के बीच में बनी हुई है। इसके उत्तर की ओर मक्का फाटक से किले में जाने की राह में पास ही पास दो सुन्दर कबरें बनी हुई हैं। दोनों कबरों के पास ही पास होने के कारण इन कबरों का नाम दो बहिनें पड़ा हुआ है, पर कहते हैं कि एक में दूसरे अली के प्रधान मन्त्री खवाश खाँ और दूसरी में उनके उस्ताद अब्दुलकादिर की लाश गड़ी हुई है।

औरङ्गज़ेब की बेगम की क़बर

इन कबरों से कुछ दूर दीवारों से घिरे हुए एक बगीचे के बीच में औरङ्गज़ेब की बेगम की एक कबर है। दिल्ली से सुफेद सङ्गमरमर मंगवा के यह कबर बनवाई गई थी। ऐसे पत्थर बीजापुर के इलाकों में नहीं मिलते। कोई कोई ऐसा भी कहते हैं कि यह औरङ्गज़ेब की बेगम नहीं बल्कि उनकी लड़की की कबर है। इस बारे में ऐसी किम्वदन्ती है कि जब औरङ्गज़ेब ने महाराष्ट्र-कुल-कमल-दिवाकर वीर-शिरोमणि महाराज छत्रपति श्रीशिवाजी को अनेक प्रकार से समझा बुझा के दिल्ली बुला के कुछ दिन तक उन्हें दिल्ली में रक्खा था, उसी समय शाहजादी से उनकी आंख लग गई थी। अगर शिवाजी मुसलमानी धर्म स्वीकार कर लेते तो बादशाह खुशी से शिवाजी को अपनी लड़की ब्याह देते। पर शिवाजी तो कट्टर हिन्दू थे, अस्तु ब्याह न हुआ और लड़की क्वारी ही मर गई और बीजापुर ही में उसको गोर दी गई *।

इसके सिवाय मोती गुम्बज, बारह पावे की गुम्बज प्रभृति बहुत से कबरस्तान हैं, जिन्हें लेख बढ़ जाने के ख्याल से न लिखा।

आसार महल

इसे सुलतान महमूद ने बनवाया था। और

---

* इस विषय पर Rev. Hobert Counter ने एक छोटी सी पुस्तक अंगरेज़ी में लिखी है।

की अपेक्षा अभी तक यह टूटा फूटा नहीं है। पहिले यह कचहरी के लिये बना था, इसीसे इसका नाम "अदालत महल" भी रक्खा गया था। इस-पर से महल में जाने आने के लिये ऊपर से पटाव दार छत्त पटी हुई थी। कुछ दिन बाद जब कचहरी के लिये एक दूसरा मकान बन के तैयार हुआ तो यह दूसरे काम में आने लगा। काल पाके मुहम्मद के मूछों के दो बाल इसमें ला के रखते ही इस इमारत का भाग्य खुल गया। इसपर तब से कोई आफ़त भी न आई। अदालतवाला महल तो टूट फूट गया, पर यह अभी तक बना हुआ है। इसकी उंचाई १३५ फ़ीट की है और इसमें दो खन हैं। नकाशीदार लकड़ी की छत चार मजबूत खम्भों पर है। दूसरे खन में कई एक कोठरियां हैं। इन्हींमें से एक कोठरी में मुहम्मद साहब के मूछों के बाल धरे हुए हैं। अक्सर यह घर बन्द रहता है। साल में किसी एक दिन इसके भक्तों को इसके दर्शन होते हैं। और और घरों में से किसीमें चीन के खिलौने, किसीमें कालीनें, किसीमें मखमली मसनद आदि बहुमूल्य वस्तुएं धरी हुई हैं। इन मकानों की दीवार और छत्तों पर भांति भांति के बेल बूटे, तसवीरें लिखी हुई हैं। एक मकान में महमूद बादशाह की सुन्दर तसवीर बनी हुई थी, परन्तु गवांरों के हाथ पड़ के नष्ट भ्रष्ट हो गई है। योंहीं और और तसवीरों का भी हाल है। आसार महल में बीजापुर के बारे में कई एक हाथ के लिखे हुए लिखत थे, पर कुछ तो समय बली ने नष्ट कर दिए और कुछ दूसरी जगह भेज दिए गए।

मेहतर महल

यह एक नामी महल है। इसमें बड़ी उत्तम उत्तम नकाशी के काम बने हुए हैं, पर इसके बारे में जितने मुंह उतनी तरह की बातें सुनाई देती हैं। कोई तो कहता है कि किसी एक मेहतर के नाम से इस महल का नाम मेहतर महल पड़ा है। उसका किस्सा यों कहते हैं कि इब्राहिम बादशाह को कोढ़ हो गया था। बादशाह ने अनेक उपाय किए, पर फल किसीसे कुछ न हुआ। एक दिन एक ज्योतिषी ने प्रश्न विचार के बताया कि सवेरे सोके उठते ही जहांपनाह जिसका मुंह पहिले पहिल देखें उसे धनरत्न से निहाल करदें तो उनका रोग आराम हो जायगा। एक रोज बादशाह को रात को भरपूर नींद न आई, सवेरे ज्यों हीं उठे त्यों हीं सामने एक मेहतर दिखाई दिया। उसीको बादशाह सलामत ने बहुत कुछ धन दिया। उसी धन से उसने यह महल बनवाया था। कोई कोई ऐसा कहते हैं कि फकीरों के मेहतर अर्थात् महन्त याने मुखिया ने मसजिद के सामने यह महल बन-वाया था, इससे इसे मेहतर महल कहते हैं। किस्सा चाहे जो हो पर इस महल की बनावट बड़ी ही प्रशंसनीय है। इसके दो मंजिले के ऊपर वाली छत ऐसे अच्छे ढंग से बनी है कि पहिले तो उसकी बनावट ही एक अनोखे ढंग की है, दूसरे उसमें जो काम किया हुआ है वह एक से एक बढ़ा चढ़ा हुआ है, जिसे देख के बड़े बड़े अंगरेजी इञ्जीनियरों की बुद्धि भी चकरा जाती है। जैसे बेल बूटे लकड़ी पर अच्छे कारीगर बनाते हैं, वैसी ही नकाशी सुचतुर कारीगरों ने पत्थरों पर बनाई है। किसी नामी अंगरेज ने कहा है कि ऐसी उत्तमता से यह मकान बना है कि कायरो के नामी मकानों से किसी बात में घट के नहीं है।

जुमा मसजिद

जुमामसजिद के जोड़ की दक्षिण में दूसरी कोई मसजिद नहीं है। इसकी बनावट बड़ी ही सुन्दर है। इसमें बड़ी सुघराई से और कारीगरी से काम बने हुए हैं। यह मसजिद एक मनुष्य की बनवाई हुई नहीं है। आदिल शाह से लेके औरङ्गजेब तक बादशाहों ने अपने अपने समय तक इस मसजिद में कुछ कुछ काम बनवाए हैं, तो भी इसका काम पूरा न होने पाया। बाहर के मीनार के बिना यह मसजिद टुंची सी लगती है। भीतर घुसते ही एक चौखूटा आंगन मिलता है जिसके तीन ओर

तो दालान और कोठरियां हैं और बीच आंगन में फ़ौवारा है। मसजिद के चारों ओर सुन्दर खम्भों पर रङ्ग बिरङ्गे सुन्दर महराव, लम्बी दालानें, और गुम्बज बने हुए हैं; पर सब सुन्दर बनावट-दार चमचमाते गच पर एक एक आदमी के बैठने के लिये लकीरें खिंची हुई हैं, जो लगभग ४००० मनुष्य के बैठने लायक होंगी। मेहराबों पर दीवान हाफ़िज़ की शेर खुदी हुई हैं, जैसे कि

"जीवन का कोई भरोसा नहीं है। यह क्षण स्थायी है"। "क्षणभंगुर संसार में शान्ति नहीं है"। "संसार इन्द्रियसुख का भण्डार है"। "मनुष्य देह अमूल्य पर अनित्य है"।

उन्हीं लेखों से मालूम होता है कि सन् १६३६ (१०४५) में सुलतान महमूद की आज्ञा से उसके सेवक मलिक याकूब ने इस मेहराब को बनवाया था।

इनके सिवाय मालिक जहान, मालिक सन्दाल, आन्दू बुखारा, प्रभृति न जाने कितनी ही मस-जिदें हैं जिनका कहां तक बयान लिखा जाय। बीजापुर कबर और मसजिदों से भरा पड़ा है।

मक्का मसजिद

अर्क किले के बीच में आनन्दमहल के पास मक्का मसजिद बनी हुई है। मक्के की मसजिद की यह नकल बनी है, इसीसे इसका नाम मक्का मसजिद रक्खा गया है। यह छोटी सी अच्छी मस-जिद है, मानो एक सुन्दर सा खिलौना बना हुआ है। ऐसी किम्वदन्ती सुनाई देती है कि चौदहवीं शताब्दी के आरम्भ में किसी एक नामी पीर ने इस मसजिद को बनवाया था। उस समय बीजापुर हिन्दू राजाओं के आधीन था। पीर ने अपने दल बल के साथ वहां आके अपना अड्डा जमाया। हिन्दू राजाओं ने जी से चाहा कि इन लोगों को यहां से भगा देना चाहिए। जब अपने बल से न भगा सके तब उन लोगों ने अपने जी में यह विचार किया कि ऐसा उपाय करना चाहिए जिससे इन्हें किसी तरह की रसद न मिले तो आपही भूख के मारे दुखी हो यहां से निकल भागेंगे। वहां की प्रजामात्र से ऐसा करार करवा लिया कि कोई किसी तरह की खाने पीने की वस्तु पीर या उनके साथियों को न दे। कई दिनों तक जब पीर के साथी मारे भूख के बिकल होने लगे तब वे लोग एक हिन्दू की गौ को पकड़ लाए और उसीको हत्या करके उन्होंने अपनी भूख बुझाई। इसी बहाने से हिन्दू मुसलमानों के बीच घोर झगड़ा हुआ। हिन्दूलोग पीर को पकड़ के राजा विजनराय के पास ले गए। उनसे पूछने पर वे कहने लगे कि हमलोगों ने पेट की प्रवल आग बुझाने के लिये यह हत्या की है, पर अगर कहिए तो हम मंत्र के बल से इस गौ को फिर से जिला दें। यह कहके उसकी हड्डियां सब जमा करके पीर ने अपने मंत्र-बल से उस गौ को फिर से जिला दिया। यह देख राजा ने अपने जी में बड़े ही चकित हो और प्रसन्न हो पीर साहब को रहने की आज्ञा दी और उनके खाने पीने का सुप्रबन्ध कर दिया। पीर साहब को राजा की ओर से जो जमीन मिली थी उसी पर उन्होंने मक्का मसजिद बनवाई और उसी मसजिद के पास ही पीर की कबर बनवाई गई।

गोरख इमली

बीजापुर में इतनी अधिक मीनारें, मकबरे, कबरें और मसजिदें हैं कि जिनका वारापार नहीं है। राजमहल के अन्दर इमली के दो प्रसिद्ध वृक्ष हैं। वे दोनों वृक्ष गोरख इमली के नाम से प्रसिद्ध हैं। उस जमाने में जिस किसीको फांसी की सज़ा मिलती थी वह इन्हीं पेड़ों में से किसी एक पेड़ में लटकाया जाता था, इसीसे ये दोनों पेड़ आज तक जग में प्रसिद्ध हैं।

आसाद वेग

जिस समय बीजापुर के भले दिन थे, उस समय इसके विभव को देख देख के अनेक देखने

वालों ने इस स्थान के बारे में इतिहास लिखा है, परन्तु उन सभों में से आसाद बेग ने जो इतिहास लिखा है वह अच्छा लिखा गया है, इससे उन्हींके लिखे इतिहास को यहां संक्षेप में लिखते हैं। बीजापुर का इतिहास लिखने के पहिले इस बात को जान लेना चाहिए कि आसाद बेग कौन थे और किस समय में उन्होंने बीजापुर का हाल लिखा था। सन् १६०० के कुछ ही बाद जिस समय में इब्राहिम आदिलशाह और सम्राट अकबर शाह के बीच एक सन्धि हुई थी, उसी मौके पर सम्राट के कुमार दानियल के साथ इब्राहिम ने अपनी लड़की के विवाह की बात चीत ठीक की थी। उसी समय आसादबेग अकबर शाह की ओर से इस विवाह में बीजापुर आए थे। वहां उनकी पूरी मिहमानदारी हुई और बिदाई में भी बहुत कुछ देके राजकुमारी के साथ ही वे बिदा किए गए थे। इन्हीं बरातियों के साथ इतिहास लिखनेवालों में प्रसिद्ध लेखक फ़रिश्ता भी आए थे। बीजापुर के बादशाह ने अकबर शाह के लिये बेशकीमती जवाहिरात और बढ़िया बढ़िया कई एक हाथी भेजे थे। उन हाथियों में से एक ऐसा हाथी था जो नित्य दो मन शराब पिया करता था, जिसमें बड़े झगड़े बखेड़े करने पड़ते थे। इस शादी में शाहजादी राजी न थीं, इसीसे भीमा नदी तक आके न जाने क्या जी में आया कि उल्टी पीछे लौट गईं। एक रोज़ रात को ऐसी तेज़ आंधी आई कि तम्बू कनात उखड़ उखड़ा के टूट फूट गया था। सारा लश्कर तितर बितर हो गया, लोग भी कहां के कहां चले गए। उसी मौके में शाहजादी भी न जाने कहां चल दीं। दूसरे दिन सवेरे खोज खाज के लोग फिर उन्हें ठिकाने ले आए और शाहजादे दानियल के डेरे में शाहजादी को आसादबेग जाके पहुंचा आए। बीजापुर की छटा देख आसाद बेग ऐसे रीझे कि उन्होंने स्वयम् उस स्थान की प्रशंसा यों लिखी—बीजापुर में गगन से बात करते हुए सुन्दर सुघड़ राजभवन और अटारियां नगर की शोभा बढ़ा रही थीं। हाट बाट में सुन्दर सुहावन मनभावन द्रव्यों से प्रायः सजी सजाई दूकानें नगर की शोभा बढ़ा रही थीं। प्रति दूकानों के आगे एक एक हरे भरे छायेदार वृक्ष हैं जिनके मधुर मन्द शीतल पवन के झकोरों से आते जाते पथश्रान्त बटोही शान्त होते थे। बीजापुर के बजार की चौड़ान लगभग ६० हाथ के थी और वह बजार दो कोस की लम्बान में बसा हुआ था। उस बजार में जैसी सुन्दर सुघड़ चीजें सहज में मिलती थीं प्रायः उस मेल की और ठौर सहज में नहीं मिलती थीं। किसी दूकान में हीरा, मोती, मानिक, पन्ना आदि रत्न जगमगा रहे थे, कहीं सूरज चांद से सोने चांदी के सुघड़ आभूषण शोभा दे रहे थे। कहीं बजाजे में भांति भांति के देश देशान्तरों के सुन्दर वस्त्र धरे थे। योंही मनीहारों की दूकानों में अनेक मनहोरी वस्तु, पसरहट्टे में किराने और ठठेरों की टोली में अनेक प्रकार के बासन, रंगरेजों की दूकानों पर अनेक रङ्ग बिरङ्गी चीजें, धीर वीरों के लिये भांति भांति के अस्त्र शस्त्र चमचमा रहे हैं। कहां लों कहें, यावत् वस्तुएं जिसकी असंख्य संख्या है, बीजापुर के बजार की शोभा बढ़ा रही थीं। निदान कहां तक लिखें, जो जो वस्तु बीजापुर में मिलती थी, वह दूसरे ठौर सहज ही नहीं मिलतीं। ठौर ठौर संगीतविद्या में निपुण गायक और नर्त्तकी गण भूलोक में गन्धर्वलोक का सा आनन्द दिखाया करते थे। नगरवासी जो जिस अवस्था में थे उसी अवस्था में अपने को धन्य और परम सुखी और भाग्यवान मानते थे। अनेक शोभा को लिख अन्त उन्होंने फारसी भाषा में लिखा है—

"अगर बहिस्त अन्दर (?) ज़मीनस्त,
हमीनस्तो ओ हमीनस्तो हमीनस्त"

पर अब पाठक यह न समझें कि अभी भी बीजापुर वैसाही हरा भरा अपनी शोभा सम्पादन कर रहा है। नहीं कदापि अब वह बीजापुर पुरा

बीजापुर सरीखा नहीं है। अब तो वे बातें इतिहासों ही में रह गई हैं।

बीजापुर के मातहत अनेक छोटी छोटी बस्तियां थीं, जैसे शाहपुर, जोरपुर, इब्राहिमपुर, नैारसपुर, अल्लापुर, अपनापुर इत्यादि अनेक पुर बीजापुर के अन्तर्गत बसे हुए उसकी शोभा सम्पादन कर रहे थे। पर काल बली ने अब उनकी कहानी सी छोड़ रक्खी है, क्योंकि "काल नाम नहीं खाय"। अब तो शाहपुर, जोरपुर, पीर अमीन की दरगाह, अफ़ज़लपुर की गिरी पड़ी निशानी रह गई हैं। पहिले तो बीजापुर ग्रैार इसके आस पास १० लाख आदमियों की बस्ती थी।

सन् १६३५ ईसवी में जब मुगलों ने बीजापुर पर चढ़ाई की ग्रैार महमूद बादशाह ने उनकी चढ़ाई को रोका, तो उस समय शाहपुर को अनेक प्रकार की हानि सहनी पड़ी थी। ग्रैार जब बादशाह को किले के बाहर रहना कठिन हुआ तब विवश शाहपुर की बस्ती उजाड़ हो गई।

अफ़ज़लपुर

जिन लोगों ने शिवाजी की जीवनी पढ़ी है उन्हें अफ़ज़ल ख़ां की कथा मालूम है। इस अफ़ज़लपुर में अफ़ज़ल खां रहा करते थे। इस ग्राम में लिखने योग्य कोई विशेष बात नहीं है, सिवाय इसके कि नवाबी खानदान की बहुत सी कबरें एक ही जगह में एक बनावट की बनी हुई हैं। इन कबरों के बारे में लोग ऐसा कहते हैं कि जितनी कबरें हैं सब ग्रैारतों ही की हैं। ये ग्राम ग्रैार इमली के पेड़ों की झुरमुट के बीच में बनी हुई हैं। इन्हीं पेड़ों की झुरमुट में एक छोटासा तालाब है जिसका पानी अब बिलकुल सूख गया है। एक एक कतार में सात सात कबरें हैं ग्रैार कबरों की ११ कतारें हैं। ऐसी कहतूत चली आती है कि अफ़ज़ल खां ने जिस समय शिवाजी पर चढ़ाई की थी, उस समय ज्योतिषियों ने अफ़ज़लख़ां से स्पष्ट कह दिया था कि अब की आप लैाट के घर न आवेंगे। इस कहने पर उन्हें कुछ ऐसा कड़ा विश्वास हो गया था कि वे अपने घर गृहस्थी का पूरा प्रबन्ध कर गए थे। उनको ७७ बेगमें थीं। उनके बारे में उन्होंने सोचा कि यदि हम न लैाटें तो इन बिचारियों की क्या गति होगी। यह सोच उन्होंने अपनी कुल बेगमों को एक साथ उसी तालाब में डुबो दिया ग्रैार तालाब के किनारों पर उतनी ही कतारें बनवा दीं ग्रैार आप बेफ़िकर हो शिवाजी पर चढ़ दैाड़े। अब न जाने यह बात कहां तक सच्ची है। पर एक ही जगह एक ही ढंग की कबरों को देख के कुछ कुछ इस बात पर विश्वास तो होता है, क्योंकि नहीं तो एक ही जगह एक ही सी इतनी कबरें क्यों बनतीं? इससे जी में आता है कदाचित् बात ठीक ही हो।

नैारसपुर

शाहपुर के पश्चिम नैारसपुर है। बीजापुर छोड़ के दूसरे इब्राहिम ने नैारसपुर बसाया था ग्रैार इसीको अपने राज्य की राजधानी बनाया था। इसीसे सन् १६०० ईसवी में वहां बहुतेरी अच्छी ग्रैार बड़ी बड़ी इमारतें बन गई थीं। बीजापुर से यह स्थान इसलिये रमणीक है कि यहां सुन्दर सुहावने हरे भरे जङ्गल पहाड़ हैं। चाहे जो हो, पर इब्राहिम की लालसा पूरी न हुई, क्योंकि किसी ज्योतिषी ने जो पहिले कह दिया था कि नैारसपुर को अगर राजधानी बनाग्रोगे तो वह तुम्हें फलवान न होगा। विवश इब्राहिमशाह को नैारसपुर छोड़ना पड़ा, पर वहां अनेकों ने अच्छी हवेलियां बनवाली थीं। जी बहलाने की वहां कई एक अच्छी जगह थीं। इस समय एक टूटी फूटी हवेली पड़ी हुई है। किसी समय में वह बड़ी सुन्दर हवेली थी जिसे "सङ्गीत महल" कहते थे। बीजापुर में जितनी नामी इमारतें थीं, यह उनमें से किसीसे किसी बात में घट के न थी। उसके साम्हने सुन्दर सुन्दर फौवारों, हैाज़ों ग्रैार स्वाभाविक पानी के झरनों ने उस स्थान को बड़ा ही रमणीक बना दिया था,

क्योंकि स्वाभाविक दो नदियां दोनों ओर से मानों उस मकान को लपेट रही थीं। थोड़ी ही दूर पर एक छोटी सी पहाड़ी अपनी न्यारी ही शोभा दे रही है। इन सब स्वाभाविक शोभा के बीच में होने से उस मकान की बड़ी सुन्दर छटा हो गई थी।

बड़े अचरज की बात है कि बीजापुर के चौतरफ़ा तो बीहड़ सुनसान सरपट उदास मैदान पड़ा हुआ है, पर न जाने इतने टुकड़े में ऐसी सुन्दर छटा क्यों कर हो गई? यह सिवाय विश्वम्भर की महिमा के और क्या कहा जाय! बीजापुर के चौतरफ़ा मरुभूमि की ऐसी सूखी धर्ती देख यह अचरज होता है कि इतने बड़े राज की यह राजधानी क्यों कर मानी गई। कदाच यह हो कि बीजापुर के अन्दर जल का अधिक सुपास है। इसका बाहरी हिस्सा जैसा सूखा है वैसेही इसके अन्दर कई एक अच्छे जल के स्थान हैं। जब कभी किसी तरह की बदअमली होती थी तो इन्हीं जलाशयों से वहां वाले अपना अपना गुजारा करते थे। उत्तर दिशा की धर्ती में उपज नहीं होती इसलिये बैरियों को इधर आक्रमण करने का अच्छा सुबीता है। इसलिये वह ओर भली प्रकार रक्षित है। दक्षिण दिशा से पुरवासियों के लिये गल्ला और पानी का प्रवन्ध हो सकता है। नगर के अन्दर जल का अधिक सुबीता है। नगर के अन्दर ताज बावली आदि कई अच्छे स्थान हैं। सिवाय इसके बेगमताल आदि और भी कई अच्छे जलाशय हैं।

कार्तिक प्रसाद।

भाग ३] अगस्त १९०२ ई० [संख्या ८
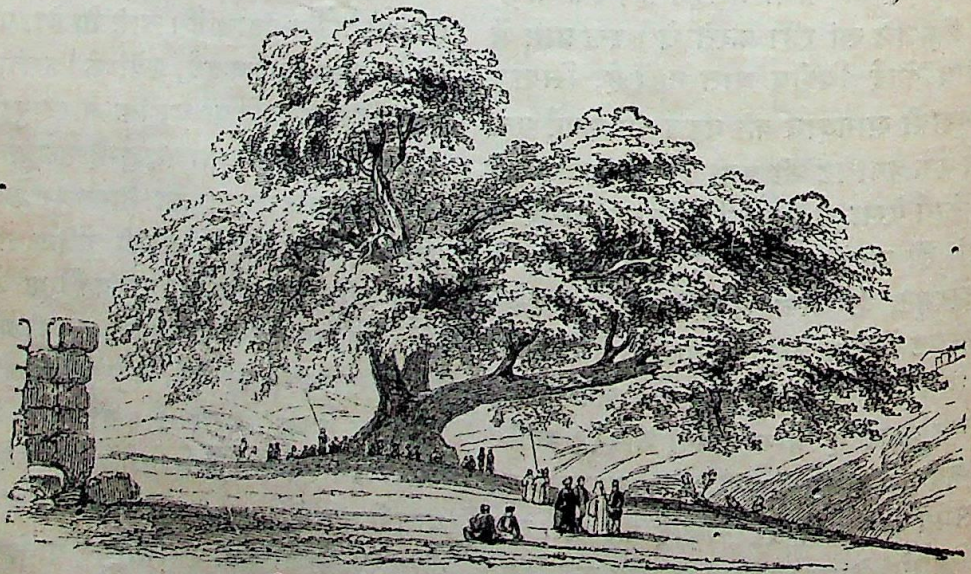
विविध वार्ता।

अंग्रेजी अख़बारों के पढ़ने वालों में कदाचित् ही कोई ऐसा होगा जो डाक्टर शरत् मलिक के नाम से परिचित न हो। ये बंगाल के रहने वाले हैं, परन्तु इस समय इङ्गलैण्ड में डाक्टरी कर रहे हैं। केवल यही बात उनकी योग्यता से परिचित करा देने के लिये काफी होगी कि एक देशी भाई विलायत जाकर अंग्रेजी रीति से चिकित्सा करके मान के साथ धन उपार्जन कर सकता है। परन्तु जब हम यह देखते हैं कि डाक्टर महाशय वहां साधारण डाक्टरों में नहीं गिने जाते, वरन् अपने काम में वे चुने हुए लोगों में गिने जाते हैं और साथ ही अपने देशहित के कामों में सहायता देते रहते हैं, तो हमें उनके उच्च श्रेणी में गिने जाने में कुछ भी सन्देह नहीं रह जाता। अधिक दिन नहीं हुए कि डाक्टर महाशय कई बातों की जांच के लिये भारतवर्ष, चीन और जापान आदि देशों में यात्रा को निकले थे। अब इस समय वे इंगलैण्ड में विराजमान हैं। उन्होंने एक चिट्ठी के उत्तर में, जोकि महाराष्ट्र देश के एक महाशय ने लिखी थी, निम्नलिखित सम्मतियां दी हैं—

[१] विलायत यात्रा के सम्बन्ध में डाक्टर महाशय लिखते हैं कि हमारे युवकों को उस समय तक विलायत यात्रा का साहस न करना चाहिये जब तक वे निम्नलिखित बातों का पूरा पूरा प्रबन्ध न करलें—

(१) साधारण व्यय का प्रबन्ध।

(२) असाधारण व्यय का प्रबन्ध।

(३) कम से कम एक वर्ष के खर्च के लिये विलायत के किसी बङ्क में पूर्वही रुपया जमा करादें, जिसमें किसी विशेष अवसर पर उनको परदेस में कठिनाइयों का सामना न करना पड़े।

केवल उन्हीं लोगों को विलायत में विद्योपार्जन आदि के लिये जाना चाहिए जिनका आचरण अनुकरणीय और जिनकी योग्यता असाधारण हो, क्योंकि साधारण श्रेणी के लोग वहां जाकर कई प्रकार की बुराइयों में फँस जाते हैं, जिससे अपना द्रव्य नष्ट करने के अतिरिक्त विदेशियों को इस बात का अवसर देते हैं कि वे हमारे विषय में हानिकारक सम्मति स्थिर करें।"

[२] दूसरी बात यह है कि हमारे युवकों को इङ्गलैण्ड और जापान में से किस स्थान को विद्योपार्जन के लिये चुनना चाहिए। डाक्टर मलिक इङ्गलैण्ड के आगे जापान को पसन्द करते हैं और इसके निम्न लिखित कारण बताते हैं—

जापान पूर्वी देश है इस कारण इङ्गलैण्ड की अपेक्षा जापान से हमारा सम्बन्ध स्वभावतः अधिक है। यह सोचना कि जापान ने केवल पश्चिमी बातों की नकल करके सब उन्नति प्राप्त की है सर्वथा झूठ और अप्रमाणिक है। इसमें सन्देह नहीं है कि जापान ने कई बातों को पश्चिमी लोगों से सीखा है, परन्तु जो कुछ उन्नति उसने की है वह उसके साहस और उद्योग का फल है। यह प्रश्न हो सकता है कि जापान अभी उठ रहा है, इस लिये यह देश हमें ऐसी शिक्षा नहीं दे सकता जैसी कि योरप के लोग दे सकते हैं। इसका उत्तर यह है कि पहिले तो हमने अभी उतनी उन्नति ही नहीं की है। हमें ऐसी चीज़ों के सीखने की आवश्यकता जिसे जापान नहीं सिखा सकता, उस समय हो सकती है जब हम उन्नति की सीढ़ी पर कुछ दूर चढ़ जांय। यद्यपि बहुत सी बातों में जापान पश्चिमी जातियों से पीछे है, तथापि यह बात हमलोगों को याद रखनी चाहिए कि कई ऐसी बातें भी हैं जिनमें दूसरे लोग जापान का सामना नहीं कर सकते। यह बात सब लोगों को मालूम न होगी कि अमेरिका ऐसे देश को भी आवश्यकता पड़ने पर जापान से तारपीडो डोंगियाँ मोल लेनी पड़ीं, क्योंकि अमेरिकावाले ऐसी अच्छी तारपीडो डोंगियां नहीं बना सकते जैसी जापानवाले बनाते हैं। इन बातों के अतिरिक्त और देशों की अपेक्षा जापान में रहने का खर्च थोड़ा पड़ता है। हमलोगों के लिये जापान में शिक्षा पाने के पक्ष में एक बात और है। जापाननिवासी हमें मान की दृष्टि से देखते हैं, क्योंकि वे बौद्धमत के अनुयायी हैं और बुद्धदेव का जन्म भारतवर्ष में हुआ था। अंग्रेज़ लोग साधारणतः हमलोगों को आधे जङ्गली समझते हैं। इन बातों से यह सिद्ध होता है कि हमलोगों में और जापानियों में प्राकृतिक सम्बन्ध है। यदि हमारी इच्छा कभी भी किसी दूसरे देश में जाकर कुछ सीखने की हो तो हमें पहिले जापान का ध्यान कर लेना चाहिए। अंग्रेज़ अपने व्यापार का भेद किसीको बताया नहीं चाहते। इसीलिये इङ्गलिस्तान के कारखानों में किसी विदेशी को जाने की आज्ञा नहीं मिलती।

[३] भारतवर्ष के धन को अन्य देशों में जाने से रोकने के विषय में मिस्टर मलिक की यह सम्मति है-

(१) जो चीज़ें अन्य देशों से आकर यहां बिकती हैं उनको न खरीदा जावे और उनके बदले यहां की बनी चीज़ें अधिक पसन्द कीजावें।

(२) यहां की बनी चीजें अन्य देशों में बिकने के लिये भेजी जावें। दूसरी बात अभी यहां के लिये कठिन है, इसीलिये डाक्टर साहब पहिली बात पर अधिक जोर देते हैं। वे स्वयं विलायत में निवास करते हुए भी अपने देशों की बनी चीज़ों का अधिक व्यवहार करते हैं।

डाक्टर महाशय की सम्मति के अनुसार भारतवर्ष में निम्नलिखित प्रकार के कारखाने खोलकर लेगों को अपने को तथा अपनी जाति को लाभ पहुंचाना चाहिए।

(१) कपड़े के कारखाने, जैसे रुई का तैयार करना, सूत कातना, कपड़े बुनना, इत्यादि।

(२) शीशे के कारखाने।

(३) चमड़े के कारखाने।

(४) छपाई के कारखाने। विलायत में यह काम बहुत महँगा होता है। यदि विलायत के पुस्तक प्रकाशकों से ठीका किया जावे तो इसमें अधिक लाभ हो सकता है।

अन्तिम विषय डाक्टर साहब ने यह लिखा कि विलायत का रुपया उधार लेकर हम लोगों को अपने कारखानों में लगाना चाहिए। क्योंकि भारतवर्ष में ६) रु० सैंकड़े सूद पर रुपया मिलता

है, पर विलायत में बहुत कम सूद पर मिलता है। यदि किसीको ३॥) से ५) तक ब्याज मिल गया तो वह अपने के बड़ा भाग्यवान समझता है।

* *
*

युनिवर्सिटी कमिशन की रिपोर्ट प्रकाशित हो गई है। उसमें बहुत से प्रस्ताव ऐसे किए गए हैं जिनसे उच्च शिक्षा के प्रचार में बाधा पड़ सकती है। हम आगामी संख्या में कमिशन ने जो मुख्य मुख्य प्रस्ताव किए हैं, उनका सारांश पाठकों के सूचनार्थ प्रकाशित करेंगे।

* *
*

हमारे राजराजेश्वर श्रीमान, सप्तमएडवर्ड के राजतिलकोत्सव का आनन्द हमलोग जून मासही में मनानेवाले थे, परन्तु दैवदुर्विपाक से वह उत्सव न हो सका। श्रीमान् ने जून और जुलाई मास में जैसा शारीरिक कष्ट भोगा उसे स्मरण कर हृदय व्याकुल हो जाता था, परन्तु आज अत्यन्त आनन्द का दिन है कि यह उत्सव निर्विघ्न समाप्त हो गया।

* *
*

हमको यह जानकर बड़ा सन्तोष हुआ कि इस वर्ष मुर्शिदाबाद में बंगला भाषा के ग्रन्थ-कर्ताओं और तत्वज्ञों की एक महती सभा होगी। इसमें बंगला भाषा के सम्बन्ध में अनेक बातों पर विचार किया जायगा। अभी से इस सभा की तय्यारियां हो रही हैं और ऐसी आशा की जाती है कि लगभग १००० प्रतिनिधि वहां उपस्थित हों। हमारी प्रार्थना है कि बंगला के सुविज्ञ लेखकगण इस बात पर विचार करें कि उनकी भाषा के ग्रन्थ देवनागरी अक्षरों में छपा करें। इस विषय पर हम पहिले भी लिख चुके हैं। हम लोगों का यह उद्योग होना चाहिए कि जहां तक सम्भव हो सके विभिन्नता को दूर कर एकता को फैलावें। यदि अभी भारतवर्ष की एक भाषा नहीं हो सकती तो आर्य भाषाओं का एक अक्षरों में लिखा और पढ़ा जानता तो सर्वथा सम्भव है। इस के होजाने पर सम्भव है कि आगे चलकर प्राकृतिक नियमों के अनुसार भारतवासियों की एक राष्ट्र भाषा भी होजाय। भूमण्डल पर जितने देश हैं सब में भाषा की उन्नति के साथ देश की उन्नति हुई है। दूर की बात जाने दीजिए, अभी थोड़े ही दिन हुए हैं कि अंग्रेजों और बूअर लोगों में सन्धि हुई है। अंग्रेजों को सदा से अपनी भाषा का पक्ष और अभिमान है और वे सदा उसके प्रचार में लगे रहते हैं। अंगरेजों की यह इच्छा थी कि ट्रांसवाल के स्कूलों में भी अंगरेज़ी भाषा का प्रचार होजाय। पर दूरदर्शी स्वदेशाभिमानी और स्वभाषाप्रेमी बुअर इस बात को कब स्वीकार कर सकते थे। अन्त में सन्धि में यही लिखा गया कि ट्रांसवाल के स्कूलों में डच भाषा भी पढ़ाई जाय। हमारे देशवासियों को इससे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। हमलोग तो स्वार्थ में पड़कर सब बातों को भूल जाते हैं। हमारे देशहितैषियों को इस बात का उद्योग करते रहना चाहिए कि भारतवासियों की एक भाषा होजाय, क्योंकि जब तक यह न होगा तब तक देश की उन्नति सम्भव नहीं है। देशोन्नति के तीन मुख्य कारण बताए जाते हैं, अर्थात् एक भाषा, एक धर्म्म और एक जाति। हमारे देश में सबसे अधिक सम्भावना प्रथम ही में सफलता प्राप्त करने की है। इसलिये हमारी प्रार्थना है कि बँगला तथा और और भाषाओं के प्रधान प्रधान लेखकगण इस प्रस्ताव पर विचार करें और ऐसा उपाय करें कि जिसमें पहिले एक अक्षरों का प्रचार हो जाय। हम अपने सहयोगियों से भी प्रार्थना करते हैं कि वे इस विषय पर अपने अपने पत्रों में लेख लिखें।

पण्डित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर

सन् १२२७ (बङ्गला) बारहवीं आश्विन को हमारे चरित्रनायक ने बङ्गालप्रान्त के ज़िला मेदिनीपुर के बीरसिंह नामक ग्राम में एक

दरिद्र ब्राह्मण के घर जन्म लिया। आगे चलकर हमारे चरित्रनायक ईश्वरचन्द्र नाम से प्रसिद्ध हुए।

ज्यों ज्यों हमारे चरित्रनायक बड़े होने लगे, त्यों त्यों बाल्यस्वभाव की चपलता के कारण अधिक उत्पात मचाने लगे। बाल्यावस्था में यह ऐसे उधमी थे कि इनके पड़ोसी सब इनसे बड़े ही तङ्ग रहा करते। यदि कोई धमकाता तो इनका क्रोध और भी बढ़ जाता था; जिस बात की जिद् पकड़ते उसे बिना किए छोड़ना तो जानते ही न थे। परन्तु माता से ये बड़े डरा करते थे। माता यदि ज़रा भी घुड़कतीं तो शान्त होकर बैठ जाते थे। साथ ही इनकी गुणमयी माता के गुणों का भी इन पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि इनके बाल्यावस्था के सब अवगुण गुणों में बदल गए। बाल्यावस्था में यह बड़े जिद्दी थे, अतएव बड़े होने पर वह बड़े दृढ़प्रतिज्ञ बन गए। जिस कार्य में हाथ डालते उसे बिना पूरा किए नहीं छोड़ते। सच है, माता के स्वभाव का सन्तान पर बहुत कुछ प्रभाव पड़ता है। जहां माता सुशिक्षिता गुणवती होती है वहां सन्तान भी तदनुरुप होता है। यदि ईश्वरचन्द्र की माता गुणवती न होतीं तो क्या सम्भव था कि उनकी बाल्यचपलता उन्हें भविष्यत में दृढ़प्रतिज्ञ बनाती? जब ईश्वरचन्द्र की पांच ही वर्ष की अवस्था थी तो उनके पिता ने उन्हें ग्राम की पाठशाला में बैठा दिया। वहां पर जाकर ईश्वरचन्द्र खूब मन लगा कर पाठ सुनते और जब तक पाठशाला ही में उसे याद न कर लेते घर नहीं आते थे। अतएव अपनी तीक्ष्ण बुद्धि के कारण तीन वर्ष में इस भावी महापुरुष ने पाठशाला की समस्त शिक्षा समाप्त की। इनके पिता कलकत्ते के एक नामी ज़मींदार के यहां ८) मासिक वेतन पर नौकरी करते थे। अतएव पुत्र को अङ्गरेज़ी शिक्षा देने की इच्छा से वे उन्हें कलकत्ते ले आए; परन्तु फिर उनकी सलाह पलट गई और ईश्वरचन्द्र को उन्हों-ने संस्कृत की शिक्षा देनाही स्थिर किया, और सन् १८२९ ईसवी की पहिली जून को नौ वर्ष की अवस्था में पुत्र को संस्कृत कालेज में भर्ती कर दिया। ईश्वरचन्द्र इस कालेज के व्याकरण की तीसरी श्रेणी में पढ़ने लगे। बालक ईश्वरचन्द्र ने यहां भी अपनी तीक्ष्ण बुद्धि विद्यानुराग और सुशीलता से अध्यापकों को अपने ऊपर प्रसन्न कर लिया। अपनी श्रेणी में वह सब बालकों से प्रथम रहा करते थे, श्रेणी में किसी बालक से नीचे रहना वह अपना बड़ा अपमान समझते थे। इसी प्रकार से बड़े परिश्रम से विद्याध्ययन करते हुए छ मास के पीछे इन्होंने परीक्षा दी, जिसमें इनका नम्बर सबसे अौवल रहा और इन्हें ५) मासिक वृत्ति मिलने लगी। ईश्वरचन्द्र के पिता बड़े गरीब आदमी थे। कुल ८) रुपया मासिक से बड़े भारी परिवार का खर्च चलाना पड़ता था। इस कारण हमारे चरित्र-नायक को भी कभी कभी भोजन बसन में बड़ा कष्ट सहना पड़ता। कदाचित् पाठकगण पूछ सकते हैं कि ईश्वरचन्द्र को ५) मासिक वृत्ति मिलती थी, फिर वह कष्ट क्यों उठाते थे? क्या आप उत्तर सुना चाहते हैं? सुनिये। हमारे स्वाभाविक ही दयावान, परदुःखकातर महात्मा बाल्यावस्था ही में इस द्रव्य से अपने श्रेणी के दरिद्रतर बालकों की सहायता करते और आप आधा पेट भोजन कर घर के बने हुए मोटे कपड़े पहिरकर एकान्त चित्त से विद्याभ्यास करते थे।

ईश्वरचन्द्र ने ग्यारह ही वर्ष की अवस्था में व्याकरण श्रेणी का पाठ समाप्त कर साहित्य श्रेणी में प्रवेश किया। साहित्यश्रेणी के अध्यापक ने ईश्वरचन्द्र की इतनी कम उमर देख कर उन्हें साहित्यश्रेणी में भर्ती करना अस्वीकार किया। परन्तु जब ईश्वरचन्द्र ने परीक्षा देकर उस श्रेणी में पढ़ने की योग्यता सिद्ध कर दिखाई तो अध्यापक महाशय चकित रह गए और उन्होंने अति स्नेह से अपने शिष्य को पढ़ाना आरम्भ किया। हमारे दृढ़परिश्रमी चरित्रनायक ने पहिले वर्ष रघुवंश, कुमार सम्भव आदि ग्रन्थों का पाठ समाप्त कर परीक्षा

[श्रे]णी और उसमें सर्वोच्च स्थान पाया। दूसरे वर्ष माघ, भारवी, मेघदूत, शकुन्तला, उत्तररामचरित्र, विक्रमोर्वशी, मुद्राराक्षस, कादम्बरी, और दशकुमारचरित्र इत्यादि काव्यग्रन्थों को आद्योपान्त याद कर लिया और इस बार की परीक्षा में भी इन्हींका नम्बर सबसे अधिक रहा। साहित्य श्रेणी के अध्यापक और उस श्रेणी के बालक सब ईश्वरचन्द्र की सफलता देख कर दङ्ग रह गए। केवल इतना ही नहीं, वरन् इसी उमर में ईश्वरचन्द्र ने संस्कृत में बातचीत करने की योग्यता भी प्राप्त कर ली। शिक्षक महाशय भी अपने गुणी छात्र के गुणों पर मोहित से हो गए। वह प्रायः लोगों से कहा करते थे कि "ईश्वर करे यह बालक चिरजीवी रहे। आगे चल कर यह एक अद्वितीय मनुष्य होगा"।

अभी ईश्वरचन्द्र की अवस्था केवल १४ वर्ष ही की थी कि खीरपाई ग्राम के शत्रुघ्न भट्टाचार्य की आठ वर्ष कन्या दीनमयी से इनका विवाह हो गया। विवाह हो जाने के पीछे साहित्यश्रेणी का पाठ समाप्त कर पन्द्रह वर्ष की अवस्था में ईश्वरचन्द्र ने अलङ्कार श्रेणी में पढ़ना आरम्भ किया और वर्ष ही भर में साहित्यदर्पण, काव्यप्रकाश और रसगङ्गाधर इत्यादि संस्कृत के अलङ्कार ग्रन्थ पढ़ लिये, तथा सदा की भांति इस बार की परीक्षा में भी यही प्रथम रहे।

इस समय के नियमानुसार बालकों को पहिले अलङ्कार, न्याय और वेदान्त पढ़ कर तब स्मृतिशास्त्र पढ़ना पड़ता था और स्मृतिशास्त्र की परीक्षा में उत्तीर्ण होने पर तब उन्हें जज-पण्डित की नौकरी मिल सकती थी। परन्तु ईश्वरचन्द्र ने अलङ्कारश्रेणी ही में पढ़ते समय कालेज के अध्यक्ष को दरखास्त भेज कर स्मृतिशास्त्र पढ़ने की आज्ञा प्राप्त करली।

विद्यालय की पढ़ाई समाप्त कर लड़के ला-कमेटी की परीक्षा देने की इच्छा से स्मृतिश्रेणी में भर्ती होते थे और दो तीन वर्ष तक बड़े परिश्रम से मनुसंहिता, मिताक्षरा और दायभाग इत्यादि का पाठ समाप्त कर उन्हें परीक्षा देनी पड़ती थी। इस परीक्षा में बिरला ही कोई छात्र उत्तीर्ण होता था। परन्तु हमारे चरित्रनायक ने छ ही महीने में इन ग्रन्थों का पाठ समाप्त कर परीक्षा दी और बड़ी उत्तमतापूर्वक उत्तीर्ण हुए। ईश्वरचन्द्र की इस सफलता से उनका यश मलयवृक्ष के सौरभ की भांति चारों ओर फैल गया। बड़े बड़े पण्डित जब यह सुनते कि सत्रह वर्ष के लड़के ने जज-पण्डित की परीक्षा पास की है, तो वे चकित हो जाते। अस्तु, थोड़े ही दिन पीछे त्रिपुरा के जज-पण्डित की जगह खाली हुई। ईश्वरचन्द्र ने यह पद प्राप्त करने की इच्छा से आवेदनपत्र भेजा। वहां इनके नौकरी की मञ्जूरी भी हो गई, परन्तु पिता की इच्छा न होने से इन्होंने यह पद ग्रहण न किया, और १९ वर्ष की उमर में वेदान्त पढ़ने लगे। इसके पीछे न्याय और दर्शनशास्त्र पढ़ कर परीक्षा दी, जिसमें इनका नम्बर सबसे प्रथम रहा और इन्हें १००) पारितोषिक मिला। ईश्वरचन्द्र से कालेज भर के शिक्षक लोग अति प्रसन्न रहते और विशेष कर वेदान्तश्रेणी के अध्यापक शम्भुचन्द्र वाचस्पति तो इनके स्नेहपाश में ऐसे बँध गए थे कि बिना इनके पूछे कोई काम ही नहीं करते थे। कारण यह था कि अतिवृद्धावस्था होने के कारण उठने बैठने तथा स्नानाहार इत्यादि करने में उन्हें अन्य किसी मनुष्य के सहारे की आवश्यकता पड़ती थी। अतएव ईश्वरचन्द्र ही सदा गुरु की सेवा में लगे रहते और हर घड़ी उनके साथ रहते थे। अपनी सेवा से उन्होंने वृद्ध गुरु को अपने वश कर लिया। गुरु जी भी ईश्वरचन्द्र की बुद्धिमानी से उन पर ऐसे प्रसन्न थे कि उनकी सलाह अति उत्तम समझते थे। एक दिन का वृत्तान्त है कि पण्डित जी ने ईश्वरचन्द्र से कहा "बेटा, मैं अति वृद्ध हो गया हूं, उठने बैठने के लिये हर समय एक मनुष्य के सहारे की आवश्यकता पड़ती है, इसलिये मेरा विचार है कि एक विवाह कर लूं। तुम्हारी क्या सम्मति

है"। ईश्वरचन्द्र गुरु की बात सुन कर मनमें सोचने लगे कि "ये पच्चासी वर्ष के वृद्ध यदि किसी बालिका से विवाह करेंगे ते इसका क्या परिणाम होगा? क्या थोड़े ही दिनों में यह मर न जायंगे? क्या उनकी बालिका पत्नी को जन्म भर वैधव्य कष्ट के अथाह सागर में गोते न खाने पड़ेंगे? हाय, उस समय उस कोमलहृदया पराधीना बालिका की क्या दशा होगी।" यही सब प्रश्न ईश्वरचन्द्र के मन में उठने लगे और उनका चित्त अतिव्यथित हो गया। अन्त में रुँधे हुए कण्ठ से उन्होंने उत्तर दिया "गुरू जी, आपके समान मैं बुद्धिमान नहीं हूं कि आपको कुछ सलाह दे सकूं। आपने संसार के बहुत कुछ उलट फेर देखे हैं। ऐसे विवाह के परिणाम भी आपने बहुत से देखे होंगे। ऐसी अवस्था में क्या ऐसा बेमेल और अनुचित विवाह करना आप उचित समझते हैं? एक निरापराधिनी बालिका के जीवन के कुल सुखों को मिट्टी में मिलाने का आपको क्या अधिकार है? केवल अपने स्वार्थ के लिये एक कोमल प्राण को जन्मभर रुलाना क्या आपसे बुद्धिमान पण्डित को शोभा देता है?" पण्डित जी चुपचाप ईश्वरचन्द्र की बातें सुनते रहे और उस के उत्तर में ईश्वचन्द्र का दोनों हाथ थाम कर बड़ी नम्रता से उन्होंने अपने विवाह की आवश्यकता जतला कर इस कार्य में उनकी सम्मति चाही। परन्तु हमारे अटलचित्त ईश्वरचन्द्र नाहीं ही करते गए और अन्त को यह कह कर घर चले आए कि "न जाने कुलीनों में से कब यह सत्यानाशी प्रथा जड़मूल से नष्ट होगी"! इधर ते ये घर चले, उधर गुरुजी के विवाह का आयोजन होने लगा और पाठको, कहते कलेजा कांपता है कि पचासी वर्ष के वृद्ध से बारह वर्ष की एक अति रूपवती कुलीन कन्या का विवाह होही गया।

ईश्वरचन्द्र ने जब इस विवाह का वृत्तान्त सुना ते कांप उठे और सजलनयन हो रुद्धकण्ठ से चिल्ला उठे "हे परमात्मा क्या इस देश को रसातल भेजना ही तेरा अभिप्राय है! जहां नारियां कष्ट पाती हैं, उस घर, उस देश का कभी कल्याण नहीं होता।" बस, यह कह कर ईश्वरचन्द्र चुप हो गए और मन में कुछ सोचने लगे, और साथही उनके मुख से दृढ़प्रतिज्ञाव्यञ्जक लक्षण झलकने लगे। मनहीं मन उन्होंने कुछ निश्चय किया। क्या निश्चय किया, इसका हाल आगे चल कर उनके कामों से आप लोगों को विदित होगा। एक दिन पण्डित जी ने विद्यासागर से कहा "इतने दिन हुए तुम अपनी नवीन गुरुपत्नी के दर्शनों को नहीं गए। हमारे अचलचित्त चरित्रनायक रो दिए, आंखों से दो धारा आंसू बह निकलीं। पण्डित जी उस समय तो चुप हो गए, परन्तु एक दिन वे ईश्वरचन्द्र को जबरदस्ती घर लेही गए। वहां जाकर ईश्वरचन्द्र ने जब अपनी बालिका गुरुपत्नी को देखा तो उनके चित्त में करुणा का समुद्र उमड़ आया, जिसके जलकणों ने आंखों द्वारा बह कर गुरुपत्नी के पाद्यअर्घ का काम किया और २) गुरुपत्नी के चरणों में प्रणामी रख कर हमारे चरित्रनायक घर से बाहर निकल आए। गुरु जी ने शिष्य को कुछ जलपान करने को कहा, परन्तु हमारे तेजस्वी महात्मा ने उत्तर दिया 'इस नरककुण्ड में अब जलस्पर्श नहीं करूंगा।" यह कह वे सीधे घर चले आए। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि पण्डित शम्भूचन्द्र जी थोड़े ही दिन पीछे परलोक सिधार गए और उनकी विधवा पत्नी पिता के घर जा रही।

इसी बीच में जब ईश्वचन्द्र न्याय और दर्शन शास्त्र पढ़ रहे थे तो व्याकरण की दूसरी श्रेणी के अध्यापक ने कुछ दिनों के लिये छुट्टी ली। हमारे चरित्रनायक ही उतने समय तक के लिये इस पद पर नियुक्त हुए जिसे उन्होंने अच्छी योग्यता से निबाहा। इनकी शिक्षा देने की प्रणाली को कालेज के सब पण्डितों ने सराहा। इसके पीछे कुछ दिनों में दर्शन शास्त्र की परीक्षा समाप्त की। ईश्वरचन्द्र की सफलता देख कर उस श्रेणी के अध्यापक ने कहा था कि

यों तो बहुत बड़े बड़े पण्डित देख पड़ते हैं, परन्तु ऐसा कोई बिरला ही देख पड़ेगा जिसने आरम्भ से लेकर अब तक प्रत्येक शास्त्र की परीक्षा में प्रथम स्थान अधिकृत किया हो।

सन् १८४१ ईसवी की १ जून को शिक्षा समाप्त कर ईश्वरचन्द्र ने कालेज छोड़ा और साथही अंगरेजी पढ़ने की आकांक्षा से उन्होंने घर में एक शिक्षक नौकर रख लिया और थोड़े ही दिनों में अंग्रेज़ी और हिन्दी में भी इन्होंने विशेष व्युत्पत्ति प्राप्त कर ली। ईश्वरचन्द्र के कालेज छोड़ने के पीछे कलकत्ते के फ़ोर्ट विलियम्स कालेज के प्रधान पण्डित की जगह खाली हुई। अतएव वहां के अध्यक्ष मार्शल साहब ने, जो पहिले संस्कृत कालेज में रह चुके थे और विद्यासागर के गुणों से अच्छी तरह परिचित थे, इन्हींको वह पद देना स्थिर किया। परन्तु विद्यासागर उस समय अपनी जन्मभूमि वीरसिंह ग्राम में थे, अतएव मार्शल साहब ने उन्हें घर से बुला कर ५०) मासिक बेतन पर इस पद पर नियुक्त किया। उस समय विलायत से जो सिविलियन यहां नौकरी करने आते थे, उन्हें यहां के फ़ोर्ट विलियम्स कालेज में देशीभाषा की परीक्षा देनी पड़ती थी। यदि कोई सिविलियन फ़ेल होजाता तो उसे निराश हो विलायत लौट जाना पड़ता था। इन सिविलियनों की परीक्षा हमारे चरित्रनायक ही लेते थे। अतएव एक दिन अध्यक्ष मार्शल साहब ने उनसे कहा कि "सिविलियन लोग बहुत सा द्रव्य व्यय कर नौकरी की आशा से हज़ारों कोस से विदेश आते हैं। इसमें यदि वे कृतकार्य नहीं होते तो उनकी दुर्दशा का ठिकाना नहीं रहता। अतएव आप कृपाकर उनसे कठिन प्रश्न न किया करें और यथासाध्य उन्हें पास करा देने का उद्योग करें।" पाठको! हमारे धनहीन चरित्रनायक ने, जिन्होंने आधा पेट भोजन कर दरिद्रता से कठिन परिश्रम कर विद्याभ्यास किया था, और अब ५०) मासिक पर नौकर हो गए थे, अपने अध्यक्ष के इस अनुरोध का उत्तर दिया "नहीं, नहीं, साहब, मुझसे यह नौकरी न होगी। चाहे भिक्षा से पेट पालना पड़े, परन्तु मैं अनुचित कार्य कभी न करूंगा।" इस धर्मपरायण, निर्भीतचित्त ब्राह्मण युवक के उत्तर को ज़रा सोचिए और कहिए तो सही आपमें कै ऐसे मनुष्य निकलेंगे जो धर्म के आगे समस्त संसारी सुखों को तुच्छ समझते हैं। क्या विद्यासागर नहीं जानते थे कि पिता बड़े गरीब हैं, मुझे भी भर पेट अन्न आज तक प्राप्त न हुआ। इस अवस्था में यदि नौकरी छूट जायगी तो मेरा कहां ठिकाना लगेगा। परन्तु नहीं—ऐसी सामान्य बातों से तो कायर ही डर जाया करते हैं। धर्म-वीरों को इनसे भय कहां। अस्तु, विद्यासागर ने साफ नाहीं करदी। क्रोधित होना तो दूर रहा, वरन् मार्शल साहब को स्वयम् लज्जित होना पड़ा और हमारे चरित्रनायक की सत्यनिष्ठा ने उनके चित्त में जगह करली। "अपने कर्तव्य पर दृढ़ रहना' हमारे चरित्रनायक का मोटो था। इसी बीच में फ़ोर्ट विलियम्स् कालेज के हेडराइटर का पद खाली हुआ। मार्शल साहब ने विद्यासागर ही को यह पद देना चाहा, परन्तु उन्होंने उसे आप न ले, अपने एक मित्र को उक्त पद पर ८०) मासिक पर नौकर रखवा दिया। नौकर होने के पीछे सबसे पहिला काम विद्यासागर का अपने वृद्ध पिता को परिश्रमशील नौकरी से छुट्टी देना था। उन्होंने अपने पिता को नौकरी छोड़ कर बैठ रहने के लिये अनुरोध किया और २०) मासिक घर पर उनके पास भेजने लगे। बाकी ३०) रुपए से कलकत्ते में ८। ९ आदमियों की गृहस्थी चलाते थे।

फ़ोर्ट विलियम्स कालेज की सीनियर और जूनियर परीक्षाओं के प्रश्न निर्वाचन का भार भी विद्यासागर ही पर था, जिस कठिन कार्य को वह बड़ी योग्यता से निवाहते थे।

जिस समय हमारे चरित्रनायक फ़ोर्ट विलियम्स कालेज में पढ़ा रहे थे, उसी समय एक दिन भारत के गवर्नर जेनेरेल उस कालेज को देखने

आए। वहां विद्यासागर से बात चीत कर वे अतिप्रसन्न हुए। साथ ही विद्यासागर ने लाट साहब से यह भी कहा कि "गवर्न्मेंण्ट संस्कृत कालेज की उन्नति की ओर कुछ ध्यान नहीं देती। यहां के जो लड़के पास होते हैं उन्हें सर्कार कोई नौकरी नहीं देती, केवल एक जज-पण्डित का पद था, वह भी तोड़ दिया गया। अतएव कालेज के छात्र दिन पर दिन घटते जाते हैं। आप कृपा कर यदि बङ्गाल प्रान्त के प्रत्येक ज़िलों में विद्यालय स्थापित कर संस्कृत कालेज के उत्तीर्ण विद्यार्थियों को उन विद्यालयों का शिक्षक नियुक्त करें तो अति उत्तम हो"। बुद्धिमान लार्ड हारडिञ्ज ने विद्यासागर के प्रस्तावानुसार सन् १८४५ ईसवी से समस्त बङ्गाल प्रान्त में एक सौ एक विद्यालय स्थापित करने की आज्ञा दे दी और साथ ही यह आज्ञा भी दी कि संस्कृत कालेज के पास किए हुए विद्यार्थी इन पाठशालाओं के शिक्षक नियुक्त किए जांय। इन शिक्षकों की परीक्षा का भार मार्शल साहब और विद्यासागर पर रक्खा गया। लार्ड हारडिञ्ज के स्थापित किए हुए विद्यालयों में से अब भी कई एक विद्यालय हारडिञ्ज-बङ्ग-विद्यालय के नाम से बङ्गालप्रान्त में मौजूद हैं।

इसी बीच में संस्कृत कालेज के व्याकरण की प्रथम श्रेणी के अध्यापक की जगह खाली हुई। अध्यक्षों ने विद्यासागर ही को यह जगह देनी चाही, परन्तु हमारे निर्लोभी परोपकारी महात्मा ने यह नौकरी आप न ले अपने मित्र तारानाथ वाचस्पति को ९०) मासिक पर दिलवा दी। जिस समय तारानाथ जी की नौकरी की बातचीत विद्यासागर ने अध्यक्षों से की थी उस समय पण्डित तारानाथ कलकत्ते में न थे। अध्यापक की आवश्यकता भी शीघ्र ही थी। अतएव विद्यासागर कलकत्ते से तीस कोस दूर रात दिन चल कर पण्डित जी के घर पहुंचे और वहां से उन्हें अपने साथ लाकर उस पद पर नौकर रखवा दिया। हमारे उदारचित्त ईश्वरचन्द्र पण्डित जी से किसी अच्छी नौकरी दिलाने की पहिले ही प्रतिज्ञा कर चुके थे, अतएव समय पड़ने पर अपने स्वार्थ का कुछ ख्याल न कर उन्होंने अपनी प्रतिज्ञा पूरी की।

अस्तु, अभी तो हमने विद्यासागर महाशय की परोपकारता का यह छोटा सा एक ही दृष्टान्त दिखलाया। आगे चल कर उनके गुण पाठकों पर सम्पूर्ण रूप से विदित होते जायंगे। परन्तु साथ ही हम आपलोगों को उनकी मातृभक्ति का एक नमूना दिखा दिया चाहते हैं। जिस समय महात्मा विद्यासागर फ़ोर्टविलियम्स कालेज में नौकरी कर रहे थे, उसी समय एक दिन उनके घर से उनके छोटे भाई के विवाह का सन्देसा आया। कलकत्ते से उनके घर के और सब लोग तो विवाह में सम्मिलित होने के लिये वीरसिंह ग्राम को चल दिए, परन्तु कार्याधिक्य के कारण कालेज के अध्यक्ष ने विद्यासागर को छुट्टी न दी। उस दिन तो ये कुछ न बोले और सन्ध्या को घर पर आ भोजन इत्यादि कर लेट रहे। परन्तु नींद कहां? वहां तो यही ख्याल बँध रहा था कि घर किस प्रकार से जाऊं। हमारे मातृभक्त विद्यासागर माता की आज्ञापालन में अपने को असमर्थ देख अत्यन्त दुखी हुए। वह अच्छी प्रकार से जानते थे कि मेरी स्नेहमयी माता मुझसे जैसा स्नेह रखती है, सम्भव नहीं कि विवाह में मुझे अनुपस्थित देख वह दुखी न हो। क्या मैं ही अपनी देवीतुल्य माता के दुःख का कारण होऊंगा? उन्होंने कितना कष्ट सह कर मुझको इतना बड़ा किया। परन्तु अब भी क्या मैं उन्हें कष्ट ही देता रहूंगा। ऐसा करने के लिये मुझे किसने विवश किया? यहीं नौकरी ने! धिक्कार है ऐसी नौकरी पर। यहीं सोचते सोचते सवेरा हो गया। सवेरा होते ही अति शीघ्र प्रातकृत्य समाप्त कर ईश्वरचन्द्र कालेज के अध्यक्ष मार्शल साहब के घर जा पहुंचे और उनसे बोले कि "साहब, मुझे घर अवश्य ही जाना है। माता जी ने बुलाया है। मैं यहां अब एक

पड़ी नहीं ठहर सकता। छुट्टी दीजिए या इस्तीफ़ा मंज़ूर कीजिए।" मार्शल साहब इस ब्राम्हण युवक की मातृभक्ति देख कर मुग्ध हो गए और तत्क्षण उन्हें घर जाने की छुट्टी दे दी। तदनुसार यह भी उसी समय टेट में कुछ द्रव्य ले सीधे घर की ओर चल पड़े। उनका घर कलकत्ते से दो दिन का मार्ग था। उस समय रेल थी ही नहीं, मार्ग में भी चोर डाकुओं का बड़ा भय रहता था, परन्तु हमारे निर्भीतचित्त महात्मा इन सब की कुछ परवाह न कर अकेले ही घर को ओर चले। उस समय वर्षाकाल था। मार्ग बड़ा खराब हो रहा था, परन्तु विद्यासागर धुन बाँधे चलते ही गए। बीच में एक ग्राम में रात को विश्राम कर फिर सवेरे चलना प्रारम्भ कर दिया। चलते चलते मध्यान्ह समय एक नदी के तीर आ खड़े हुए। वर्षाकाल के कारण यह नदी खूब ही उमड़ रही थी। तरङ्ग का वेग ऐसा था कि निमिषमात्र में फेंका हुआ तृण तरङ्ग के धक्के से टूक टूक हो जाता था। सारांश यह कि वर्षाकाल में नदियों की जो अवस्था होती है वही इस नदी की भी अवस्था थी। पार जाने के लिये कोई नाव भी नहीं थी। क्या करें, आजही बारात जाने वाली है; घर पहुंचना बहुत आवश्यक है। यही सब विचारते विद्यासागर नदी के तीर खड़े रहे; परन्तु थोड़ी ही देर में कर्तव्य स्थिर कर नदी में कूद पड़े और उस पार जाने के लिये तैरने लगे और अन्त को उनके साहस ने उन्हें पार पहुंचा ही दिया। पार जाकर अपने मामा के यहां मध्यान्ह-कृत्य समाप्त कर फिर घर की ओर चले। सन्ध्या के समय फिर ऐसी ही एक नदी ने विद्यासागर का मार्ग रोका। उसे भी इन्होंने वैसे ही पार किया। उस पार कई कोस का निर्जन मैदान था, जहां चोर डाकुओं का भी अधिक भय रहता था, परन्तु हमारे चरित्रनायक अपनी इष्टदेवी माता के चरणों में ध्यान लगाए सीधे घर की ओर चले। इधर घर में सन्ध्या ही को बरात चली गई थी। ईश्वरचन्द्र की माता पुत्र के वियोग से अति दुखित हो अश्रुविमोचन कर रही थीं। आधी रात हो गई, माता ने कुछ भी भोजन न किया। घर में सब सो गए थे, ऐसे समय में एकाएकी उन्होंने पुत्र का कण्ठस्वर सुना जो दरवाजा खटखटा कर पुकार रहे थे "मा, मा, मैं आ गया, दरवाज़ा खोल दो।" ईश्वरचन्द्र की माता ने बिजली की नाईं दौड़ कर द्वार खोल दिया और हमारे चरित्रनायक माता के चरणों पर गिर पड़े। पहिले तो माता पुत्र मिल कर खूब रोए, फिर माता ने पुत्र के गीले वस्त्र बदलवाए और दोनों ने बैठ कर साथही भोजन किया। पाठको! क्या आपमें से कोई ऐसे मातृ-भक्त है? यदि न हो तो आप अपनी माता के उपयुक्त सन्तान नहीं। आपको महात्मा ईश्वरचन्द्र विद्यासागर को आदर्श मान कर अपनी स्नेहमयी माता की भक्ति और सेवा करनी चाहिए। शोक है कि "जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी" ऐसे सिद्धान्त के रखनेवाले भारतवर्ष में वृद्धमाताएं अपने पुत्रों द्वारा तिरस्कृत होती हैं। हमें अपनी स्त्री पुत्रों ही की सेवा से छुट्टी नहीं मिलती कि वृद्धमाता की बात पूछें। हमारे लिये क्या यह लज्जा की बात नहीं!

घर में कुछ दिन रह कर विद्यासागर अपनी नौकरी पर लौट आए। अंग्रेज़ अफ़सर लोग प्रायः विद्यासागर से काव्य रचवाया करते थे और प्रसन्न हो उन्हें सैकड़ों रुपए पुरस्कार दिया करते थे। परन्तु हमारे चरित्रनायक वे सब रुपए कालेज के छात्रों की वृत्ति में दे डालते थे। आप ५०) मासिक वेतन के सिवाय एक कौड़ी भी नहीं छूते थे। इसी अवसर पर संस्कृत कालेज के सहकारी सम्पादक की जगह खाली हुई और विद्यासागर उस जगह बदल गए। संस्कृत कालेज में आने के उपरान्त इन्होंने कालेज का नित्य नवीन सुधार करना प्रारम्भ किया। शिक्षक और बालकों के आने जाने का ठीक समय नियत कर परीक्षा लेने की नवीन पद्धति अवलम्बन करने के कारण उस वर्ष की परीक्षा का फल अति उत्तम रहा, जिस कारण से कालेज

के अध्यक्ष सब इन पर अति प्रसन्न हुए। इनके बनाए हुए नियमानुसार आज तक संस्कृत कालेज में शिक्षा दी जाती है।

विद्यासागर महाशय को आत्मसम्मान का कैसा ख्याल रहता था इसका भी एक उदाहरण सुन लीजिए। एक दिन का वृत्तान्त है कि किसी विशेष कार्य के कारण विद्यासागर हिन्दू कालेज के अध्यक्ष कार साहब के पास गए थे। साहब बहादुर के मग़ज़ में 'काले आदमी' की कुछ बू समाई हुई थी। इस लिये विद्यासागर के आने की कुछ परवाह न कर वह टेबुल पर सबूट पैर फैला कर कुर्सी पर ढासना लगाए अधलिटे से रहे। हमारे चरित्रनायक ने साहब के इस आचरण से अपना अपमान समझा, परन्तु चुपचाप अपना कार्य कर चले आए। एक दिन कहीं ऐसा मौका आन पड़ा कि साहब बहादुर को किसी कार्य के लिये विद्यासागर के पास आना पड़ा। हमारे प्रवर विद्यासगार महाशय भी उसी प्रकार फटी हुई चट्टी पहिरे हुए टेबुल पर अधखुले पैर फैलाए कुर्सी पर ढासना लगाए अधलिटे से रहे। साहब बहादुर ने कमरे में प्रवेश कर जब विद्यासागर का यह आचरण देखा तो अति क्रोधित हुए। वहां बैठने के लिये दूसरी कुर्सी भी न थी। अतएव साहब बहादुर शीघ्रता से अपना कार्य समाप्त कर अपने स्थान को चले आए और विद्यासागर की शिकायत कर संस्कृत कालेज के अध्यक्ष मएट साहब के पास एक चिट्ठी लिखी। मएट साहब ने विद्यासागर महाशय से कैफियत तलब की जिसका उत्तर उन्होंने बड़ा ही मजेदार दिया था। उन्होंने कहा कि "मैं एक बार कार साहब से मिलने गया था। वहीं से अभ्यर्थना करने की यह रीति सीख आया था। मैंने समझा कि भारतवासी असभ्य हैं, सुसभ्य देश में शायद किसीकी खातिरदारी करने की यही रीति होती है, इसलिये मौका पड़ने पर मैंने उपार्जित शिक्षा के खर्च करने में कृपणता नहीं की है। इसमें यदि मेरा कुछ अपराध हुआ तो उसके उत्तरदाता मेरे शिक्षागुरु कार साहब ही हैं।" अध्यक्ष मएट साहब विद्यासागर का युक्तिपूर्ण उत्तर सुन निरुत्तर हो गए।

इसके पीछे संस्कृत कालेज की कार्यप्रणाली के सम्बन्ध में कालेज के सम्पादक से विद्यासागर की कुछ अनबन हो गई। अतएव हमारे स्वाधीनचेता महात्मा ने तत्क्षण नौकरी छोड़ दी। नौकरी छोड़ दी, परन्तु खरचा जारी रहा। उनकी ओर से जो अनाथ बालक भोजन पाते थे वे वैसेही पाते रहे। कलकत्ते के घर का खरच छोटे भाई के वेतन से चलने लगा और ५०) मासिक उधार लेकर पिता के पास जाने लगे। यद्यपि द्रव्याभाव से समय समय पर उन्हें अति कष्ट भोगना पड़ता था परन्तु चिन्ता का लेशमात्र नहीं! सर्वदा दुखियों के दुःख दूर करने के लिये कमर बांधे तैयार। इसी बीच में मएट साहब के कहने से उन्होंने एक अंग्रेज़ को छ महीने तक बङ्गला और हिन्दी पढ़ाई थी। शिक्षा समाप्त होने पर उस साहब ने ५०) मासिक वेतन के हिसाब से विद्यासागर को ३००) देना चाहा, परन्तु हमारे निर्लोभी महात्मा ने इस तङ्गी की अवस्था में भी यह द्रव्य लेना अस्वीकार कर कहा "वाह साहब! अपने मित्र मएट साहब के अनुरोध से मैंने आपको थोड़े दिनों तक पढ़ा दिया उसका वेतन कैसा?"

नौकरी छोड़ने के पीछे १८४९ ईसवी तक इन्हों ने नौकरी आदि कोई काम नहीं किया। आपलोगों को शायद याद होगा कि विद्यासागर ने अपने एक मित्र को ८०) मासिक वेतन पर फ़ोर्ट विलियम कालेज के हेडराइटर के पद पर नियुक्त करा दिया था। उनके यह मित्र अब नौकरी छोड़ कर डाक्टरी करने लगे। तब मार्शेल साहब के बहुत ज़ोर देने पर विद्यासागर ने वह पद ग्रहण कर लिया। इसके पीछे ही संस्कृत कालेज के साहित्याध्यापक का पद शून्य होने पर विद्यासागर उस पद पर नियुक्त कर दिए गए। थोड़े ही दिन पीछे जब कालेज के सेक्रेटरी का पद शून्य हुआ

तो वह पद तोड़ कर प्रिन्सिपल का नवीन पद बनाया गया, जिस पर १५०) मासिक पर विद्यासागर नियुक्त हुए। इस पद पर नियुक्त होने के साथ ही उन्होंने अपनी तमाम विद्याबुद्धि कालेज की उन्नति में लगा दी। कालेज के पुस्तकालय में बहुत सी हस्तलिखित प्राचीन संस्कृत पुस्तकें पड़ी सड़ रही थीं। विद्यासागर महाशय ने उन सब पुस्तकों को छपवा दिया। इसके सिवाय संस्कृत कालेज के छात्रों को फ़ीस नहीं देनी पड़ती थी। एजुकेशनेल काउन्सिल (शिक्षासमिति) में प्रस्ताव कर ईश्वरचन्द्र ने यह नियम पास करवा दिया कि प्रत्येक समर्थ छात्रों को फीस देनी पड़ेगी। इस पर कई महाशयों ने उन पर कटाक्ष भी किया। परन्तु उन लोगों की भूल थी। बुद्धिमान पण्डित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर जानते थे कि बेण्टिक, मेटकाफ, हेयर, बेथून ऐसे सदाशय अंग्रेज सब भारतवर्ष में न आवेंगे। उस अवस्था में कुछ फ़ीस नहीं है इसके बदले दूनी फ़ीस लगा दी जायगी। इसलिये पहिले ही से थोड़ी फ़ीस लगा कर उन्होंने भावी विपद का बोझा हलका कर दिया। बाकी दरिद्र छात्रों की निर्दिष्ट संख्या तो अब तक बिना वेतन संस्कृत कालेज में शिक्षा पाती है।

आपलोगों को बतलाया जा चुका है कि विद्यासागर सर्वदा संस्कृत शिक्षा की उन्नति के उपाय सोचा करते थे। साथही उन्हें यह भी ध्यान आया कि बिना व्याकरण पढ़े संस्कृत काव्य का आनन्द नहीं आता। बहुत से लोग संस्कृत काव्य पढ़ने की इच्छा रहने पर भी व्याकरण की भयावनी मूर्ति देख कर डर जाते हैं और काव्य का रसास्वाद नहीं ले सकते। अतएव ऐसे लोगों के सुबीते के लिये बङ्गला भाषा में उन्होंने व्याकरण की उपक्रमणिका रच कर संस्कृत व्याकरण का मार्ग सुगम कर दिया। इसके अतिरिक्त सहज सहज संस्कृत ग्रन्थ पञ्चतन्त्र, रामायण, हितोपदेश और महाभारत इत्यादि से संग्रह कर उन्होंने ऋजुपाठ नाम की तीन पुस्तकें बना डालीं जो अब बङ्गाल प्रान्त के विद्यालयों में पढ़ाई जाती हैं। यह तो उनकी साहित्यचर्चा का आभासमात्र दिया गया है। आगे चल कर उनकी समस्त रचना का वृत्तान्त आपलोगों को विदित होगा।

इस समय हमारे चरित्रनायक की यशोराशि चारों ओर धीरे-धीरे फैल रही थी। ऐसे समय में एजुकेशनेल काउन्सिल के सभापति, बङ्गललनाओं के आन्तरिक शुभचिन्तक मिष्टर ड्रिङ्कवाटर बेथून से विद्यासागर की भेंट हुई। हमारे गुणी ईश्वरचन्द्र की मिलनसारी ने उन्हें अपना हितैषी बन्धु बना लिया। केवल यही क्यों, गवर्नर जेनेरेल लोर्ड हारडिंज, डेलहौसी, केनिंग प्रभृति उच्चपदाधिकारी अंग्रेज़ लोग भी विद्यासागर को विशेष सम्मान की दृष्टि से देखते थे और शिक्षासम्बन्ध में इनकी सम्मति सर्वोपरि समझते थे। इनका स्वभाव भी ऐसा सरल और मिलनसार था कि जो इनसे एक बार मिलता वह उनकी प्रशंसा किए बिना न रहता; परन्तु हमारे दयाशील चरित्रनायक यथार्थ हितैषिता दीनहीन अनाथ बालकों और विधवाओं से रखते थे। जहां किसी दरिद्र परिवार का कष्ट इनके कर्णगोचर होता, बस, तत्क्षण वे स्वयम् वहां जा पहुंचते थे और तन मन धन से उन बिचारों के कष्ट दूर करने की चेष्टा करते थे। जब कभी अधिक परिश्रम से थक जाया करते तो वे सांवताल परगने में ई आई रेलवे के एक स्टेशन खरमटांड़ नामक ग्राम में जाकर विश्राम किया करते, परन्तु वहां भी सर्वदा सांवताली दीन दुखियों के कष्टमोचन में दत्तचित्त रहते थे। विद्यासागर ने थोड़ी सी होमिओपेथिक डाक्टरी भी सीख ली थी और जब किसी दरिद्र रोगी के यहां जाते तो दवाई का बक्स साथ रहता था। एक बार का वृत्तान्त है कि खरमटांड़ में एक दिन सबेरे एक मेहतर ने आकर पण्डित ईश्वरचन्द्र से रोकर कहा कि "महाराज, मेरी स्त्री को हैज़ा हो गया है। आप यदि कुछ उपाय न करेंगे तो मुझ गरीब का सत्यानाश हो जायगा।"

हमारे निरीह परोपकारी महात्मा तत्क्षण एक मनुष्य के साथ बैठने का एक मोढ़ा और ओषधि का बक्स लेकर उस मेहतर के घर जा पहुंचे और समस्त दिन निराहार बैठे हुए उस स्त्री का इलाज करने लगे। अन्त को सन्ध्या समय जब रोगी की अवस्था निरापद हो गई तो घर आकर स्नानाहार किया। पाठको! कहिए तो सही, ऐसे कै मनुष्य निकलेंगे जो मेहतर ऐसी नीच जाति के घर जाकर मलराशि का दुर्गन्ध इत्यादि का सब दुःख सहन कर रोगी की सेवा करें। लाट साहब के दर्बार में सम्मान प्राप्त करने को बहुत से लोग निकल आवेंगे, परन्तु उन्हींमें से क्या कोई ऐसा मनुष्य भी निकलेगा जो अपने मान अपमान, नीच ऊंच, सुख दुःख का कुछ ख्याल न कर सर्वदा दीन दुखियों के दुःखमोचन में बद्धपरिकर रहे। बहुत धनवान वा उपाधिप्राप्त होनेहो से सच्चा सम्मान प्राप्त नहीं होता। सच्चा सम्मान तो ऐसेही परोपकारी कामों से मिलता है। भारतवर्ष में नाम को तो बहुत से देशहितैषी हैं, परन्तु ऐसे कै हैं जो भारत की दीन प्रजाओं से सच्चा हित रखते हैं। यदि सच्चे देशहितैषी बनने का दावा रखते हैं तो इस परोपकारी महात्मा ईश्वरचन्द्र विद्यासागर का अनुकरण क्यों नहीं करते?

अस्तु, इसी प्रकार से हमारे दयावान चरित्र-नायक दरिद्रों की सर्वदा सहायता किया ही करते थे, जिस कारण बङ्गवासी उन्हें विद्यासागर के बदले दयासागर कहने लग गए थे।

विद्यासागर के प्रिन्सिपल होने के पीछे शिक्षा समिति ने कालेज की पूर्ण उन्नति किस प्रकार हो सकती है, इस विषय का उनसे एक रिपोर्ट मांगी। विद्यासागर ने अपनी समस्त विद्याबुद्धि खर्च कर यह रिपोर्ट तैयार कर समिति के निकट भेज दी। समिति के अध्यक्ष इस रिपोर्ट को पढ़ कर ऐसे प्रसन्न हुए कि उन्होंने विद्यासागर का वेतन १५०) से ३००) कर दिया और उन्हींकी रिपोर्ट के अनुसार बङ्गाल प्रान्त में बहुत से नार्मल स्कूल स्थापित हुए, तथा सन् १८५५ ईसवी से २००) मासिक वेतन पर नदिया, हुगली, बर्द्धमान और मेदनीपुर इन चारों ज़िले के इन्स्पेक्टर आफ़ स्कूल्स विद्यासागर नियत हुए। अस्तु, दोनों मिला कर अब इन्हें ५००) मासिक वेतन मिलने लगा। इसके पहिले संस्कृत कालेज में जो विद्यार्थी चाहता अंग्रेजी पढ़ता था; परन्तु विद्यासागर ने यह नियम कर दिया कि प्रत्येक विद्यार्थी को परीक्षा में अन्य विषयों की भांति अंग्रेजी के नम्बरों पर भी ध्यान रखना पड़ेगा। गवर्न्मेण्ट ने भी इनके इस कार्य का सर्वथा अनुमोदन किया। इसी समय एजुकेशनेल कार्उन्सिल तोड़ कर बङ्गाल के छोटे लाट ह्यालिडे साहब ने डाइरेक्टर आफ पब्लिक इन्स्ट्रक्शन नाम का नवीन पद बनाकर डबलू गारडन यङ्ग नामक एक छोकरे सिवीलियन को उस पद पर नियुक्त कर दिया। ईश्वरचन्द्र ने ह्यालिडे साहब को समझाया कि आप यदि ऐसी जवाबदेही के पद पर किसी प्रवीण मनुष्य को नियत करते तो उत्तम होता। इसपर लाट साहब ने उत्तर दिया कि काम तो सब मैं ही करूंगा, यङ्ग साहब तो केवल उपलक्षमात्र हैं। आप आफ़िस में जाकर उन्हें ज़रा कामकाज सिखा आया करिए। अस्तु विद्यासागर सप्ताह में एक दिन डाइरेक्टर साहब को काम सिखला आया करते थे।

सन् १८५४ ईसवी में विलायत के मन्त्रीमण्डल ने भारतवासियों की शिक्षा के लिये कई लाख रुपए खर्च करना मञ्जूर किया और सन् १८३५ में मेकाले और लार्ड विलियम बेण्टिंक की पद्धति के अनुसार शिक्षा देना स्थिर किया। अतएव उसी आज्ञा के अनुसार विद्यासागर ने बङ्ग-प्रान्त के कई जिलों में बहुत से विद्यालय स्थापित किए। डाइरेक्टर यङ्ग साहब इसके विरोधी थे। उन्होंने अन्य दो अङ्गरेज़ इन्स्पेक्टरों की मन्त्रणानुसार विद्यासागर को नवीन विद्यालय स्थापित करने से निषेध किया; परन्तु विद्यासागर ने उनकी बात न सुन कर लाट ह्यालिडे को इस वृत्तान्त से सूचित किया। छोटे लाट

ने इस विषय में मन्त्रीमण्डली की सम्मति मांगी, जिसके उत्तर में उन्होंने विद्यासागर ही की सम्मति पसन्द की। अस्तु, हमारे उत्साही चरित्रनायक दूने उत्साह से नए नए विद्यालय स्थापित करने लगे। डाइरेक्टर साहब प्रत्येक कार्य में विद्यासागर का विरोध करने लगे। परन्तु ईश्वरचन्द्र ऐसी बुद्धि-मानी से काम चलाते थे कि साहब बहादुर की कुछ दाल नहीं गलने पाती थी। ह्यालिडे साहब के कहने से विद्यासागर ने उपरोक्त चारों ज़िलों में बहुत सी कन्या-पाठशालाएं स्थापित कीं। उन पाठशालाओं के खर्चे का बिल डाइरेक्टर साहब ने मंज़ूर नहीं किया और साथ ही यह भी कहा कि कन्या पाठशाला में द्रव्य व्यय करना वर्तमान शिक्षानीति के सम्पूर्ण विरुद्ध है। इस बात से हमारे चरित्रनायक के चित्त को बड़ा कष्ट हुआ।

सर चार्ल्स् उड के मतानुसार सन् १८५३ ईसवी में विश्वविद्यालय स्थापित करने का प्रस्ताव हुआ और सन् १८५७ ईसवी के जनवरी महीने में युनिवर्सिटी स्थापित हुई। इस युनिवर्सिटी के सभासदों में विद्यासागर भी एक थे। प्रथम वर्ष के Convocation में हमारे माननीय चरित्रनायक को गवर्नर जेनरेल के बगल में आसन मिला था और हर एक काम में इनकी सम्मति समादृत होती थी। उसी वर्ष २८ नवम्बर को बोर्ड आफ़ एक्ज़ामिनर्स नियत हुआ जिसमें संस्कृत, बङ्गला और हिन्दी के प्रश्न निर्वाचन का भार विद्यासागर ही पर रक्खा गया, तथा सन् १८६५ ईसवी में यह एम० ए० के संस्कृत परीक्षक नियुक्त हुए। युनिवर्सिटी बनने के पीछे कई अधिवेशनों में संस्कृत कालेज के उठा देने का प्रस्ताव हुआ। बहुत से अङ्गरेज़ों और बङ्गालियों ने इस मत की पुष्टि की, परन्तु अकेले विद्यासागर की युक्ति और तर्क वितर्क ने उनके प्रतिपक्षियों का मुंह बन्द कर दिया और संस्कृत कालेज की रक्षा हो गई।

बङ्गाल के लेफ्टिनेण्ट गवर्नर ह्यालिडे साहब और विद्यासागर में बड़ी मित्रता थी। वह प्रायः ही लाट साहब के घर काम काज की बातों के लिये जाया करते थे। सप्ताह में एक दिन तो अवश्य ही जाया करते थे। इनकी चाल बड़ी सीधी सादी थी। एक धोती, चादर और चट्टी जूता पहिने रहा करते थे, और इसी पोशाक़ से वह लाट के यहां भी जाया करते थे। एक दिन लाट साहब ने उन्हें चोगा चपकन पहिर कर आने के लिये विशेष अनुरोध किया। अतएव यह भी दो तीन दिन वह पोशाक पहिर कर लाट साहब के पास गए, परन्तु चौथे दिन हमारे सरलचित्त महात्मा बोल उठे "बस, साहब, यही मेरी आपकी अन्तिम भेंट है।" ह्यालिडे साहब ने चकित हो कर पूछा "क्यों पण्डित जी, क्या हुआ?" हमारे चरित्रनायक ने हँसकर जवाब दिया "महाशय, मुझसे कैदी की नाईं स्वांग सज कर आपसे भेंट करने नहीं आया जायगा। यह पोशाक मुझे बोझ मालूम पड़ती है।" लाट साहब ने विद्यासागर की सरलता देख कर कहा "कोई हर्ज नहीं। आपको यदि इस पोशाक के पहिरने में कुछ कष्ट मालूम देता हो तो आप चाहे जो पोशाक पहिर कर हमसे भेंट करने आया करें।" बहुत से लोग जिनका यह ख्याल है कि पोशाक ही भलमनसाहत का चिन्ह है, और इसीसे सम्मान प्राप्त होता है, आंख खोल कर देखें और विद्यासागर की इस सादगी से शिक्षा ग्रहण करें। भाइयो, सच्चा सम्मान तो केवल सच्चे गुणों ही से मिलता है, पोशाक से नहीं।

विद्यासागर और डाइरेक्टर साहब से कभी नहीं बनती थी। लाट ह्यालिडे सर्वदा इसी उद्योग में रहते कि दोनों में मित्रता हो जाय। परन्तु यङ्ग साहब बड़े क्रूरस्वभाव के मनुष्य थे और इसके विपरीत विद्यासागर सरल स्वभाव के थे। इस अवस्था में दोनों में मेल क्यों कर होने लगा था? एक बार विद्यासागर ने स्कूलों के Inspection की रिपोर्ट लिखकर डाइरेक्टर साहब को दी। डाइरेक्टर साहब ने रिपोर्ट देख कर कहा

कि "इस रिपोर्ट को खूब अच्छी प्रकार से सजा दीजिए, जिसमें अफ़सर लोग देख कर समझें कि शिक्षा का कार्य खूब अच्छी प्रकार से चल रहा है। इसके उत्तर में हमारे न्यायपरायण, उन्नत-हृदय महात्मा ने इस कार्य में अपना अपमान समझ उत्तर दिया कि "जो बात मैंने एक बार लिख दी उसमें अब कुछ अदल बदल नहीं हो सकता।" डाइरेक्टर साहब ऐसा करने के लिये ज़िद करने लगे, परन्तु विद्यासागर साफ़ नाहीं करते गए। अन्त को जब बात बढ़ने की नौबत आन पहुंची, तब विद्यासागर वहां से चल दिए और घर आकर नौकरी छोड़ने का अभिप्राय जतला कर डाइरेक्टर साहब को एक पत्र लिखा और साथ ही उस पत्र की एक नकल छोटे लाट हालिडे साहब के पास भी भेज दी। हालिडे साहब ने विद्यासार को बुलाकर यह सङ्कल्प छोड़ देने के लिये बहुत कुछ समझाया, परन्तु हमारे दृढ़चित्त महात्मा ने साफ़ नाहीं की और कहा कि जो नौकरी एक बार छोड़ दी उसे अब कभी ग्रहण न करूंगा। यही मेरी अन्तिम नौकरी हुई, अब बाकी का जीवन मैं शिक्षाविस्तार और लोकहित में बिताऊंगा, तथा मेरा यह व्रत चिता के साथ अन्त होगा।' अतएव सन् १८५८ ईसवी के नवम्बर महीने में इन्होंने इस्तीफ़ा देही दिया। यद्यपि इस नौकरी के छोड़ देने से विद्यासागर ऐसे व्ययी आदमी को कुछ दिनों तक बहुत कष्ट उठाना पड़ा, परन्तु उन्होंने नौकरी इत्यादि नहीं की। उनके कई एक अंग्रेज़ मित्रों ने भी उन्हें नौकरी करने का अनुरोध किया, परन्तु वह प्रतिज्ञा पर अटल रहे। आगे चल कर उन्होंने किस प्रकार से देश-सेवा कर अपना कर्तव्य पालन किया इसका वृत्तान्त आप लोगों को 'सरस्वती' की आगामी संख्या में सुनाया जायगा। [शेष आगे।

वेणीप्रसाद

गुलबहार।

[गत अङ्क के आगे]

[६]

किश्ती मुङ्गेर के दूसरे किनारे जा लगी। मुङ्गेर के उस पार एक छोटा सा गांव था। नाव को गङ्गा किनारे एक खूंटे के सहारे से अँटका कर बहार गुल और धाय को साथ लिए हुए उसी गांव में जाने का विचार करने लगा। पहिले बहार गङ्गा किनारे खड़ा हो कर मुङ्गेर की सुरङ्ग के उस स्थान को टकटकी बांध कर देखने लगा, जहां कुछ देर पहिले मीर क़ासिम खड़ा था। किन्तु जब नवाब के पकड़ने के लिये अंगरेज़ों ने बारह किश्तियां गङ्गा में इधर उधर दौड़ानी प्रारम्भ कीं, तब धाय ने बहार से कहा कि "बेटा! अब यहां पर एक लहज़ा भी न ठहरना चाहिए। क्या तुम नहीं देखते कि काफ़िर अंग्रेज़ तुम लोगों के पता लगाने के लिये दर्या में चारों ओर अपनी किश्तियां दौड़ा रहे हैं। चुनांचे अब फ़ौरन यहां से क़दम उठाओ और कहीं पर अपने को छिपाओ।"

बहार ने चिहुंक कर कहा,—"अम्मा! मेरे वालिद जहां गए हैं मैं भी वहीं जाया चाहता हूं।"

धाय बोली,—"ठहरो, तुम्हारे वालिद अभी तक ज़िंदः हैं। पस, तुम क्यों नाहक़ खुद बखुद अपने तईं अंग्रेजों के हाथ में फंसाया चाहते हो। अगर अंग्रेजों के हाथ में पड़नाही अच्छा समझते थे तो फिर भाग क्यों आए?"

धाय की बातों से बहार के होश ठिकाने हुए और तब उसने गुल और धाय को साथ लेकर गांव में जा एक कंगाल किसान की कुटिया में अपना डेरा डाला। उस दरिद्र किसान ने गुल और बहार को नहीं पहिचाना, केवल धनवान का लड़का समझ कर उसने उन सभों की अपने सामर्थ्य भर भली भांति पहुनाई की।

हा ! एक दिन जिस गुल और बहार को मख़मली सेज पर भी सुख से नींद नहीं आती थी, उन्हें दरिद्र किसान की कुटी में टूटी चटाई पर सोना पड़ा और जिन्हें राजभोग पर अरुचि होती थी, उन्हें अ ज कच्चे पक्के ज्वार बाजरे और चना चबेना पर संतोष करना पड़ा। बलिहारी समय की है, यह जो चाहे सो करे।

[७]

रात दो पहर से अधिक जा चुकी है, निशादेवी ने स्याह चादर ओढ़ कर कृष्णाभिसारिका के सुन्दर वेश से अपने को संवारा है, चारों ओर गहरा सन्नाटा फैला हुआ है, पर कभी कभी उस सन्नाटे को झींगुर, स्यार, कुत्ते और निशाचर पक्षी अपनी कर्कश ध्वनि से दूर कर देते हैं। ऐसे समय में वह दरिद्र किसान अपनी कुटिया में बेसुध पड़ा सो रहा है, पर आफ़त के मारे बहार, गुल और धाय की आंखों में आज नींद का नाम निशान तक नहीं है। बहार ने कहा "प्यारी, गुल जागती है ?"

गुल,—"हां, बहार !"

बहार,—"गुल ! तू हमारे साथ चलेगी ?"

गुल,—"ज़रूर चलूंगी, बहार !"

बहार,—"मगर, प्यारी हमशीरा ! इस इक़रार के पेश्तर तुझे यह पूछना मुनासिब था कि कहां चलने का इरादा है।"

गुल,—" हां, बहार !

बहार,—" गुल! तू निरी भोली है।"

गुल,—" ऐं बहार !" इतना कहते कहते उस बालिका (गुल) की आंख से मोती के दाने की भांति एक बूंद आंसू लुढ़क गया, पर अन्धेरा रहने के कारण बहार ने उसे नहीं देखा। किन्तु गुल के आंसू की बूंद चलाने का क्या हेतु था, इसे भला हमारा नीरस हृदय कैसे समझ सकता है? बहारने कहा,—" गुल! मेरा दिल इस बात की गवाही देता है कि वालिद मेरे अभी तक मुँगेर के क़िले वाली सुरङ्ग में मौजूद होंगे। उन्होंने मुझे इशारे में यह बात बतलाई थी कि मैं क़ब्रिस्तान वाले पोशीदः तहख़ाने में मुन्तज़िर रहूंगा; चुनांचे ऐसा यक़ीन होता है कि जब तक काफ़िर अंग्रेज़ उनके पता लगाने से बाज़ न आएंगे, तब तक वे उसी जगह अपने तईं छिपाए रहेंगे। लिहाज़ा मैं उनके वास्ते कुछ खाने पीने की चीज़ें लेकर उनके पास जाया चाहता हूं, सो क्या तू भी मेरे हमराह चलना चाहती है ?"

गुल—"हां, बहार !"

बहार—"अहा, अफ़सोस. सद अफ़सोस ! आज मेरे वालिद के मुंह में एक दाना भी नहीं गया है, या इलाही ! तू मददगार हो मेरा।"

गुल—'तो चलो बहार ! झटपट चलो। बाबा जान के देखने के वास्ते मेरी भी रूह तड़प रही है।"

बहार—"अच्छा, गुल! भला तू यह तो बतला कि किस हिकमत से हमलोग उस जगह तक पहुंच सकते हैं ?"

गुल—"जैसे दिल चाहे, चलो बहार !"

बहार—"जा, री, भोली? तुझे ज़रा भी समझ नहीं है? प्यारी गुल! मैंने वहां तक पहुंचने के लिये एक हिकमत सोची है। ख़ैर, तू अपनी बीन लेले और मेरे साथ चल।"

बहार की धाय ने बहुत समझाया और शत्रुओं के मुंह में जाने से हज़ार रोका, पर सब व्यर्थ हुआ; क्योंकि उसने धाय के कहने पर ज़रा भी ध्यान न दिया। लाचार, धाय को भी उन दोनों का साथ देना पड़ा।

निदान, फिर तो कुटी में से एक शेर की बड़ी सी खाल ले और बीन लिये हुई गुल का हाथ पकड़ कर धाय के साथ बहार कुटी से बाहर हुआ और गङ्गा किनारे आकर सभों के साथ अपनी उसी किश्ती पर सवार हो मुँगेर के क़िले की ओर चला।

[८]

इसके बादही मुँगेर में एक प्रवाद फैल गया

कि "दो पहर रात को क़ब्रिस्तान की ओर से बहुत ही मीठी बीन की आवाज आती है और कभी कभी यह सुरीली मधुर तान भी सुनाई देती है कि—

"बहार आई तो उसके साथ ही,
गुल के क़दम आए।
हुई रुख़सत चमन से यह तो,
वह फिर कब ठहरती थी।"

परन्तु यह बीन बजाने या तान लड़ानेवाला कौन है, इसके पता लगाने में लोगों ने बहुत सिर मारा, पर सब व्यर्थ हुआ और किसीने भी इस विचित्र भेद का पता न पाया। उसी दिन से मुंगेर के हिन्दू और मुसलमानों ने भूत प्रेत के डर से क़िलेवाले क़ब्रिस्तान की ओर का जाना एक दम से छोड़ दिया, और अङ्गरेज़ी पहरेदार, जो रात को उधर पहरे पर तैनात होते, मारे डर के कांपा करते थे; यहां तक कि लोगों ने क़िले से भागने का विचार कर लिया था।

बात की बात में यह सब वृत्तान्त क्लाइव के कानों तक पहुंचा। वह इन बातों को सुनकर बेतहाशा हँस पड़ा। सच है, जो मौत से नहीं डरता, यहां तक कि जो डर क्या वस्तु है, इसे रत्ती भर भी नहीं जानता वह इस खबर को सुन कर क्यों न हँसेगा। ख़ैर जो हो, पर उस रात को स्वयं क्लाइव पहरेवाले के पास सारी रात ठहर कर उस अफ़वाह के पता लगाने के लिये कमर कसकर तैयार हुआ।

उस समय क्लाइव जङ्गी पोशाक पहरे हुए था। दुनली बंदूक, गोली बारूद, से भरी हुई उसके हाथ में थी। पहरे वाला उससे जरा दूर हट कर खड़ा हुआ था और अंधेरी रात के सन्नाटे ने सबको अपनी स्याह चादर में छिपा लिया था। आधी रात के समय सुरङ्ग के मुहाने की ओर से रसीली बिहाग रागिनी की मतवाली ध्वनि बीन की तारों से निकल कर धीरे धीरे हवा में तैरने लगी और साथही किसी अलौकिक गले की गिटकिरी भी उसका साथ देने लगी। उस समय क्लाइव के निडर कलेजे में भी छिन भर के लिए कँपकपी पैदा हुई। पर उस बीर अंग्रेज़ ने इस दुर्बलता के लिये अपने हृदय को आपही धिक्कार और दृढ़ता से अपने को निडर बना[illegible]।

थोड़ी देर में सचमुच किसीके पैर की चाप सुनाई दी। चट क्लाइव ने अंधेरेही में उस आवाज़ पर निशाना साध कर बंदूक दाग दी। रात के गहरे सन्नाटे को तोड़ कर "दन दन" दो गोलियां आकाश में मिलगईं और उनके साथही किसीके पैर की आहट और बीन की मीठी धुनि भी सन्नाटे में मिल गई। तुरत लालटेन लेकर चारों ओर खोज की गई, पर कोई भी मरता जीता दिखलाई न दिया। यह दशा देख क्लाइव के अचरज का ठिकाना न रहा, पर फिरभी दूसरी रात को इस रहस्य के पता लगाने का मनसूबा बांध कर वह अपनी पलंग पर जाकर सो रहा।

दूसरी रात को आकाश घने काले बादलों से छाया हुआ था। एक बार जोर से पानी भी बरस गया था। रह रह कर बिजली चमकती और झींगुर तथा मंडूकों के कर्कश स्वर से लोगों का कलेजा दहलता था; परन्तु ऐसे दुर्दिन का क्लाइव ने कुछ भी खयाल न किया और सुरंग के मुहाने की ओर उसी जगह पर अपने को आज भी पहुंचाया, जहां पर कि कल की रात खड़ा था।

आधीरात के ढलते ही बीन की सुरीली ध्वनि सुनाई दी और साथही उसके शेर के पैर की चाप भी कानों में खलबली पहुंचने लगी। क्लाइव उसी शेर के पैर की आहट पर कान लगाए हुए उसी के पीछे पीछे किले के दक्खिन ओर धीरे धीरे बढ़ने लगा। पैर की चाप भी धीरे धीरे क़ब्रिस्तान के पास आकर एकाएक ठहर गई। क्लाइव बड़ी सावधानी के साथ चारों ओर उस शेर का पता लगाने लगा, पर कहीं भी शेर का कुछ निशान नहीं दिखलाई दिया। इस विचित्र तमाशे को देख छिन भर के लिये उस

कलेजा फिर कांप उठा। उसने सुरङ्ग के भीतर घुसने का बहुत साहस किया, पर न जा सका। फिर उसने अपने धड़कते हुए कलेजे को पोढ़ा किया और हंसकर आपही आप मनमें यों कहा कि, "खैर आज नहीं, तो कल अवश्य इस रहस्य का भेद बिना जाने न रहूंगा"। यों कह वह वहां से चला और अपने डेरे की ओर जाने लगा। जब वह आधे रास्ते में पहुंचा होगा कि एकाएक वही शब्द उसे अपने पीछे से सुन पड़ा। यह देख वह चिहुंक उठा और फिर कर पीछे देखने लगा; पर वहां था कौन? फिर उसने लालटेन लेकर चारों ओर खोज ढूंढ की, पर कहीं भी कुछ न दिखलाई दिया।

निदान फिर तो क्लाइव सीटी बजाता हुआ अपने डेरे की ओर बढ़ा। इतनेही में बिजली के चमकने पर उसकी रहस्य भेदकरनेवाली तीखी आंखों ने अपने से कुछ दूर पर एक शेर को देख लिया। बस, चट क्लाइव ने निशाना साध कर बंदूक दाग दी। उस गगनभेदी शब्द ने गङ्गा की तरङ्गों से ठोकर खा कर एक अलौकिक करुणाध्वनि की सृष्टि की। क्लाइव ने फिर बिजली के चमकने से देखा कि शेर ज़मीन में पड़ा हुआ तड़प रहा है। बस, चट उसने शेर की ओर बढ़ते हुए बिगुल बजाना प्रारम्भ किया और बात की बात में हाथों में मशाल लिए हुए बहुतेरे गोरे और काले सिपाही वहीं पर पहुंच गए।

किन्तु हाय! यह क्या!!! अरे यह क्या बला है? हे राम! यह क्या!!! क्लाइव ने अपने सामने पर्तों में एक परम सुन्दर सोलह वर्ष के सुकुमार बालक को लोहू में डूबे हुए देखा, जिसके कलेजे में गोली लगी थी और मुंह से बराबर खून के फवारे छूट रहे थे। पासही शेर की एक बड़ी सी खाल पड़ी थी। पीड़ा से तड़पते, कराहते और दम तोड़ते हुए बालक के सरलतामय मुख को देखकर क्लाइव के वज्रहृदय में भी गहरी चोट पहुंची। उस समय उस अंग्रेज़ वीर के हृदय की वैसी ही अवस्था थी, जैसी कि हाथी के धोखे से मुनिकुमार सिंधु को मार कर महाराज दशरथ की हुई थी। अंग्रेज़ वीर क्लाइव थोड़ी देर तक सन्न हो कर वहीं खड़ा खड़ा उस बालक को निहारता रहा, फिर स्वयं उस बालक को अपनी गोद में उठाकर डाक्टरी इलाज के लिये अपने कमरे में उठा ले गया।

डाक्टर मर्शन साहब वहीं बुलाए गए, पर उसके आने के पहिले ही बालक की दुखदाई पीड़ा का अंत हो गया और उसके देहरूपी पिंजरे से प्राण पखेरू उड़ गया।

क्या हमारे रसज्ञ पाठकों ने इस स्वर्गीय बालक को चीन्हा? यह और कोई नहीं, हमारे इस छोटे से उपन्यास का नायक पूर्वपरिचित बालक बहार था। हाय! बेचारा बहार संसार की सारी बहार को अपने साथ ले कर अपनी मां की गोदी में सोने के लिये इस प्रकार अकाल ही में चल बसा। और हायरे अभागे मीर कासिम! आज तू राज्य और पुत्र इन दोनों रत्नों से रहित हुआ! किसकी सामर्थ्य है कि ललाट के लिखे को मिटा सकै!!!

[८]

मीर कासिम को खिलाने पिलाने के लिये प्रति दिन आधी रात के समय बहार खाने पीने का सामान लिए हुए उस पार से किश्ती खे कर आता और पिछली रात को लैाट जाता था। वह अपने साथ बराबर गुल और धाय को भी लाता। रुपए पैसे की कमी न रहने के कारण बहार ने उस दरिद्र किसान को भी, जिसके यहां कि डेरा किया था, मालामाल कर दिया था। और वह किसान यह न जान कर भी कि ये लड़के किसके और कहांके हैं, जो जान से इनकी सेवा टहल करने लगगया था।

प्रति दिन आधी रात को बहार गुल और धाय को लिए हुए शेर की खाल ओढ़ कर सुरङ्ग

के रास्ते से कब्रिस्तान के भीतर मीर कासिम के पास पहुंचता। मीर कासिम गुल और बहार को अपने कलेजे से लगा कर बहुत ही प्रसन्न होता; भांति भांति की स्नेह भरी बातों से उन दोनों को धीरज देता था। उसका वीरहृदय भी थोड़ी देर के लिये स्त्री-स्वभाव-सुलभ कोमलता से बदल जाता और वह टकटकी बांध कर दोनों लड़के लड़की की ओर घंटों तक निहारा करता।

गुल छोटे छोटे नाज़ुक हाथों से कभी कभी सुरीली बीन बजाती और कभी कभी—

"बहार आई तो उसके साथ ही,
गुल के क़दम आए।
हुई रुख़सत चमन से यह तो,
वह फिर कब ठहरती थी!"

की तान लड़ाती और अभागा मीर कासिम इसी को सुख, वरन् स्वर्गीय सुख समझ कर थोड़ी देर के लिये अपने भुनते हुए कलेजे को ठंढा करता। और जब बहार बड़े स्नेह से उसे खिलाने बैठता, तब उस (मीर कासिम) के कलेजे में सैंकड़ों बिच्छुओं के एक साथ डंक मारने की पीड़ा होने लगती। बीती हुई सारी घटनाएं उसकी आंखों के आगे नाचने लगतीं और वह मुर्दे की भांति काठ होकर धर्ती में घंटों पड़ा रह जाता।

जिस रात को बहार ने क्लाइव की गोली खा कर अपनी जान दे दी थी, उस रात को बहार और गुल नवाब से बिदा होकर उस पार कुटी को जाने के लिये अंधेरे में अपने को छिपाए हुए जाते थे। उस दिन धाय उसी पार कुटी ही में रह गई थी। उस दिन नवाब स्वयम् उन दोनों को किश्ती पर सवार कराने के लिये उन दोनों के आगे आगे था।

पहिले मीर कासिम के पैर की चाप क्लाइव ने सुनी थी, उसके पीछे ही बहार शेर की खाल ओढ़े हुए जाता था। उसी समय बहार की वैरिन बिजली ने अपनी चमक में क्लाइव को शेर की सूरत दिखलादी और उसने भी शेर के धोखे में फंसकर गोली दागही तो दी। पक्के निशानेबाज़ क्लाइव की गोली हवा में सनसनाती हुई बहार के कलेजे को छेद कर पार निकल गई। यह देख मीर कासिम पकड़े जाने के डर से बेहोश गुल को, क्योंकि वह गोली की आवाज़ और बहार के गिरने के साथ ही बेहोश होकर धर्ती में गिर गई थी,—उठा कर सुरङ्ग की ओर भागा। हा! अपने प्राण सभी को ऐसे प्यारे होते हैं!!!

इसी कारण से अब क्लाइव बहार के पास पहुंचा, तब उसने वहां पर सिवाय बहार के और किसीको नहीं देखा था।

दूसरे दिन बहार के शव के कारण बड़ा गोलमाल मचा। कितने उसे पहिचान कर नवाब का बेटा बतलाने लगे और कितनों ने इस बात को न मान कर उसे फ़रिश्ता बतलाया। उसकी पोशाक से सभों ने उसे मुसलमान समझा, इस लिये क्लाइव ने मुसलमानों के द्वारा ही उसे कब्र में रखने का विचार किया। किन्तु मुसलमानों ने बहार के शरीर को छूना बिल्कुल अस्वीकार किया। इसका कारण उन लोगों ने यह बतलाया कि, "ऐसे हसीन और खुबरू इनसान नहीं, बल्कि फ़रिश्ते होते हैं, चुनांचे फ़रिश्ते के तन को छूना हमलोगों की ताक़त के बाहर है" इत्यादि।

किन्तु मुसलमानों की इस मूर्खता पर क्लाइव ने ध्यान न दिया और दूसरे दिन सबेरे वीरोचित सम्मारोह के साथ स्वयं बहार के समाधिकर्म को पूरा किया।

[१०]

इस घटना के कई दिन बाद फिर उसी जगह से आधी रात के समय बीन की मीठी ध्वनि सुनाई देने लगी। और कभी कभी ऊपर लिखी हुई तान भी कान के छेदों में घुसने लगी। तब तो लोग बहुत ही चकित हुए और आपस में कानाफूसी कर कहने लगे कि क्या "बहार सचमुच बिहिश्त का फ़रिश्ता है? और सचमुच क्या बहार ही का

से निकल कर पहिले की भांति बीन बजाता और मीठी तान उड़ाता है ?"

इसी भांति लोग तरह तरह की बातें कर कर के तिल का पहाड़ बनाने लगे। अब तो पहरेवालें का कलेजा मारे डर के और भी दहल उठा और इस बात की सारी खबर फिर क्लाइब साहब के कानों तक पहुंची, जिसे सुन कर उसने मन ही मन यह निश्चय किया कि "इस मामले के अन्दर कोई न कोई गुप्त रहस्य ज़रूर छिपा हुआ है"। यह सोच कर उसने कई रातें को खुद घूम घूम कर बहुत खोज ढूंढ़ की, परन्तु सिवाय बीन की आवाज के और वह किसी बात का भी पता न लगा सका। आठ दस दिन योंहीं बीत गए; एक दिन सवेरे क्लाइब अपने कमरे में बैठा हुआ कोई चिट्ठी पढ़ रहा था, इतने ही में किले के बाहरी हिस्से में बड़ा कोलाहल मच उठा जिसे सुन क्लाइब ने मन में समझा कि मालूम देता है मीर क़ासिम ने दोबारः फ़ौज इकट्ठी कर के किले पर हमला किया है। यह सोचते ही उसकी तलवार तेज़ी के साथ म्यान के बाहर निकल पड़ी और वह जल्दी से उठ किले की दीवार के पास जाकर बाहर की ओर झांक कर देखने लगा कि यह कैसा हल्ला गुल्ला है।

किन्तु उसने देखा कि किले के आस पास एक भी मुसलमानी फ़ौज नहीं है और न कहीं मीर क़ासिम ही दिखलाई देता है। इतने ही में एक सेनापति ने आकर क्लाइब से यों कहा—

"जनाब आली! आपने अपने हाथ से जिस ख़ूबसूरत लड़के के गोली से मार डाला था, वही लड़का कब्र से निकल कर कब्र के पास ही हरी हरी नर्म घास पर पड़ा सो रहा है। अगर न यक़ीन हो तो खुद मुलाहज़ा किया जाय"।

क्लाइब ने यह बात सुनी सही, पर वह इस ख़बर पर किसी तरह भी विश्वास न कर सका। किन्तु सच्ची बात जानने और इस विषय के गुप्त रहस्य तक पहुंचने की इच्छा से वह तुरन्त खबर देनेवालें के साथ बहार की कब्र की ओर चला। उसने उस कब्र के पास पहुंच कर क्या देखा कि सचमुच वही बालक, जोकि कई दिन हुए, गोली खा मरा था, आंखें बन्द किए हुए, वहीं पर, कब्र के पास ही सोया हुआ है।

इस विचित्र तमाशे का देख कर थोड़ी देर के लिये क्लाइब के होश हवास उड़ गए। पर फिर उसने अपनी मानसिक दुर्बलता को रोका और भली भांति अपने के सम्हाल कर धीरे धीरे उस बालक के माथे पर हाथ फेरना प्रारम्भ किया, जिससे क्लाइब के जान पड़ा कि बालक का माथा बरफ़ सा ठंढा है और नाक पर हाथ रखने से जाना गया कि सांस नहीं चलता है। तब निश्चय हुआ कि यह मुर्दा है।

तब तो जितने लोग वहां बटुरे थे, सभों के अचरज का ठिकाना न रहा, पर क्लाइब का अचरज देर तक नहीं टिक सका। उसने तुरन्त अपने के सम्हाल कर और भली भांति मुर्दे के देख कर कहा—

"यह लड़के का नहीं बल्कि लड़की का मुर्दा है।"

यद्यपि उस मुर्दे के बदन पर मर्दानी पोशाक थी, पर क्लाइब की सूक्ष्मदृष्टि ने उस पोशाक के भीतर तक पहुंच कर इस बात के साफ कर दिया कि यह लड़का नहीं, वरन लड़के की पोशाक पहिरे हुई लड़की है।

निदान दूसरे दिन शुक्रवार को सवेरे से फिर शोकसूचक बाजे बजने लगे। क्लाइव स्वयं फ़ौजी रस्म के अनुसार उस लड़की के गाड़ने की इच्छा से बहार की कब्र के पास गया। उस समय क्लाइब की आज्ञा से हिन्दू मुसलमान सभी उस लड़की की समाधिक्रिया में शामिल हुए। उस समय क्लाइब ने शोक में डूब कर जो कुछ वाक्य कहे थे, उनमें से कुछ थोड़े से यहां पर लिखे बिना कलम आगे किसी तरह नहीं बढ़ना चाहती—

"Friends ! we have killed perhaps two innocent children, whoever they may be.

Nothing can undo what is done. Let us do all honour that we can do to them. We shall have another military funeral for this girl, say for this angel !!"

बहार की कब्र के पास ही लड़की का प्राण-शून्य कलेवर दूसरी क़ब्र में रखने पर समाधि-क्रिया पूरी की गई। तब जितने लोग वहां पर थे, उन सभोंने क्लाइव के साथ आंखों से आंसू टपकाते हुए उन लड़के लड़कियों की दोनों क़ब्रों पर ख़ूब ही फूल बर्साए। इसके बाद बालकबालिका के स्मरणार्थ क्लाइव के आज्ञानुसार प्रतिदिन किले में दिन में तीन बार तोप दागी जाने लगी।

इसके कुछ दिन पीछे क्लाइव कलकत्ते चला-गया, और उसके जातेही तोप की सलामी भी जो कि लड़के लड़कियों के स्मरणार्थ प्रति दिन होती थी, बन्द होगई; किन्तु यह बात आज दिन तक भी जारी है कि मुंगेर के रहनेवाले (विशेष कर मुसलमान) प्रति शुक्रवार के फूलों से उन बालक बालिकाओं की क़ब्रों के सजाते, मान मन्नत करते, और मनोकामना पूरी होनेपर बड़ी धूम धाम से उनकी पूजा करते हैं। उस जगह के आज दिन मुंगेरवाले "पीरशाही" कहते हैं।

[११]

इस लड़की को हमारे पाठकों ने अवश्य ही चीन्ह लिया होगा। यह और कोई नहीं, इस छोटे से उपन्यास में लिखी घटना की नायिका गुल ही थी।

जैसे बहुत लोगों ने बहार को पहिचान कर उसे नवाबज़ादा बतलाया था, वैसे ही कईयोंने गुल को भी चीन्ह कर नवाबजादी कहा। और दोनों के एक स्वरुप के देखकर क्लाइव ने भी इस बात पर विश्वास किया और यह भी उसके दिल ने भली भांति समझ लिया कि नवाब जरूर ही यहीं पर कहीं पासही छिपा हुआ है। पर ऐसे गुलाब से बच्चों के मरने से अब वह बहुत दिनों तक कभी जी नहीं सकता। क्लाइव ने ठीक ही सोचा था, क्योंकि अंत में सचमुच ऐसा हुआ और उस बिचारे ने लड़के लड़कियों के ग़म में अपने के आप मार डाला।

यह बात हम ऊपर कह आए हैं कि जिस रात के बहार मारा गया, उस रात के उसकी धाय उसी पार कुटी में थी, और मीर कासिम बहार के गोली खाकर गिरते ही गुल के उठा सुरङ्ग में जा कर छिप बैठा था। गुल बेहोश थी, सो बड़ी बड़ी कोशिश से होश में लाई गई और बहार की बात पागल की भांति अपने पिता से पूछने लगी। हाय! उस समय कमबख्त मीर कासिम के चित्त की क्या दशा थी, इसे हम किसी तरह भी नहीं लिख सकते। वह एक तरह पागल हो गया था और उसका पागलपन यहां तक बढ़गया था कि उसी रात के, जिस रात के कि बहार मारा गया, वह गुल के उसी सुरङ्ग में सोती हुई छोड़ कर एक ओर के भाग निकला और उसी रात के मुंगेर की सीमा के बाहर निकल गया। फिर उसे कभी किसीने इस संसार में जीता जागता न देखा। जान पड़ता है कि उसने बहुत जल्द अपनी जान का फैसला आपही कर डाला होगा।

दूसरे दिन धाय ने जब कि बहार और गुल के लैाटते न देखा तो बहुत ही खेद किया और घबराकर वह मुंगेर वापस आई। किन्तु हाय उसने आकर बहार की जो कुछ दशा अपनी आंखों से देखी, इससे उस बेचारी का ऐसा बुरा हाल हुआ, जैसा कि मा का अपने बच्चे के मारे जाने पर होता है।

उसने अपने के बहुत छिपाकर बहार की समाधिक्रिया देखी और फिर वह हर तरह से अपने के छिपाती हुई गङ्गा किनारेवाली सुरङ्ग के रास्ते से गुल के पास पहुंची, क्योंकि वह सुरङ्ग के भीतर जाने का ढंग जानती थी। उसने भीतर जाकर अकेली गुल के जमीन में पड़ी पाया।

गुलने धाय के देखतेही उसके गले लपट कर बहार और मीर कासिम का हाल बार बार पूछा

प्रारम्भ किया। धाय बेचारी मीर कासिम का तो कुछ हाल जानती ही न थी, इसलिये उसने नवाब के बारे में कुछ भी न कह कर बहार की अकाल-मृत्यु का सारा हाल गुल से कह सुनाया।

सब सुन कर गुल ने कुछ समझा कि नहीं यह तो वही जाने; पर उस समय जैसा इसका भाव था, इससे यही जान पड़ता था कि वह बिलकुल पागल हो रही थी और आंखें फाड़ फाड़ कर धाय की ओर निहारती हुई उससे यही बार बार पूछ रही थी कि बहार कहां है, बाबा कहां हैं?

हा! धाय बार बार गुल को कलेजे से लगा कर यों कहती कि "बच्ची! तेरा भाई अंग्रेजों के हाथ से मारा गया और तेरा बाप फिरंगियों से हार और बेटे का मारा जाना देख कर कहीं भाग गया होगा।" पर बिचारी भोली लड़की गुल यह सब कुछ भी नहीं समझती थी। और वह क्योंकर समझ सकती थी! जो गुल इस संसार में अपने पिता, भ्राता और धाय के अलावे और किसीको चीन्हती भी न थी, जो सोलह बरस की उम्र में पैर रख कर भी धूल में लोट लोट कर पुतलियों और गुड़ियों के साथ या बहार के साथ खेला करती, जो पढ़ने लिखने के समय भी 'अलिफ़ बे' कहती हुई बहार ही का मुंह निहारा करती, वह नादान या भोली लड़की बिचारी गुल यह बात क्योंकर समझ सकती थी कि काल और भाग्य के भयानक चक्र की चपेट इसे कहते हैं और इस चक्की में अभागे लोग इस तरह पीसे जाते हैं!!!

निदान धाय ने गुल को बार बार समझाया कि किस तरह तेरा करम फूट गया है, अब इस दुनियां के पर्दे पर बहार का नाम निशान भी नहीं है और अब हज़ार हज़ार तरह से हज़ार बार जान देने पर भी बहार का पाना गैरमुमकिन है, क्योंकि इस नापाक दुनियां में अब बहार से मुलाकात होही नहीं सकती, इत्यादि। पर गुल ने एक न समझा और धाय से बार बार यही पूछना प्रारम्भ किया कि "बहार कहां है, बाबा जान कहां है?"

हजार तरह से समझाने पर भी, बहार के न पाने पर भी, गुल बहार के लिये जरा भी न रोई। केवल कान तक फैली हुई उसकी आंखों की पुतलियां चक्कर खाने लगीं। एकाएक उसके मुखड़े पर स्याही फैल गई। उसका चेहरा गंभीर हुआ, अङ्ग स्थिर हो गए और वह पत्थर की भांति अचल हो कर वहीं बैठी रह गई। कभी कभी यह धाय से वही बात पूछती, जो ऊपर लिखी जा चुकी है, कभी कभी अपनी उङ्गलियों से बीन के तार छेड़ती, कभी कभी ऊपर लिखे हुए गज़ल के टुकड़े को गा उठती और फिर पत्थर की मूरत की भांति जहां की तहां बैठी रह जाती। हाय! क्लाइव, यह तूने क्या किया! बहार के जीवनप्रदीप के साथ ही तूने गुल के जीवन-प्रदीप को भी बुझाही दिया! हा हन्त! हा हन्त!! हा!!!

कभी कभी आधी रात को गुल फिर बीन बजाती और अपने आपे में न रह कर गाती थी, जिसे लोगों ने बहार के मरने पर सुना था। बहार के मरने के आठ दस दिन बाद एक दिन आधी रात के समय गुल धाय को सुरङ्ग ही में छोड़ अकेली ही गङ्गा किनारे निकल कर टहलने लगी, क्योंकि जबसे बहार मारा गया और नवाब गायब हुआ, गुल धाय के साथ सुरङ्ग ही में रहती थी।

निदान गुल आधीरात को इधर उधर घूमती हुई चुंबक से खैंचे हुए लोहे की भांति अपने भाई बहार की कब्र की ओर चली और कब्र के पास पहुंच कर उसीके पास ही सो रही।

हा! कदाचित् जगदीश्वर ने यह समझ कर कि इस पापी संसार में गुल के रहने का अच्छा स्थान हैही नहीं, उसे भी स्वर्ग में बुला कर बहार से मिला दिया होगा!

सबेरा होतेही गुल को लोगों ने बहार की क़ब्र के पास मरी हुई पाया ग्रैार फिर जो कुछ हुग्रा, वह हाल हम ऊपर लिख ही ग्राए हैं।

लोग कहते हैं कि यमज (एक साथ पैदा हुए) बालकों में से एक के मरने पर दूसरा भी मर जाता है। यह बात कहां तक सच है सो ईश्वरही जाने, पर यहां पर तो यह बिलकुल हीं सच हुई।

गुल की समाधिक्रिया भी ग्रभागीन धाय ने देखी ग्रैार उसी दिन गङ्गा में डूब कर उसने ग्रपनी भी जान दे दी।

जगदीश्वर! तू दयामय है, इस लिये ग्राशा होती है कि तूने गुल ग्रैार बहार की स्वर्गीय ग्रात्मा को परमशान्ति ग्रवश्य हीं दी होगी!

"बहार ग्राई तो उसके साथही
गुल के क़दम ग्राए।
हुई रुख़सत चमन से यह तो,
वह फिर कब ठहरती थी!"

श्री किशोरीलाल गोस्वामी।

रहिमन विलास

गहि सरनागत राम की भव सागर की नाव।
रहिमन जगत उधार कर ग्रैार न कछू उपाव॥
ग्रैार न कछू उपाव पाप के बोझ दबाए।
पूर्व कर्म की वायु भयानक लहर उठाए॥
कहुं सुझात नहिं ठैार सुदुस्तर भव सागर महि।
चहत बचन जो मूढ़ ग्रजैां प्रभु सरनागत गहि॥ १॥

यह रहिमन सब सङ्ग लै उपजत नाहिन कोय।
सबै प्रीति ग्रभ्यास बस होत होत ही होय॥
होत होत ही होय सबै ग्रवसर निज पाए।
करु उद्योग उपाय ग्रतिहि दृढ़ चित्त लगाए॥
दुरुह काज लखि 'दास' हारि हिम्मत तू जिन रह।
सब कछु मनुजहि करै राखु निश्चय निज जिय यह॥ २॥

निज कर क्रिया रहीम कहि सुधि भावी के हाथ।
पासे ग्रपने हाथ में दांव न ग्रपने हाथ॥
दांव न ग्रपने हाथ जदपि है हाथ पराए।
पै बिनु कर्मन किए शुभाशुभ फल नहिं पाए॥
भाग्य भरोसे भूलि समय जिनि चूकै रे नर।
होनी होय सुहोय करै कर्तव्य जु निज कर॥ ३॥

रूप, कथा, पद, चारु पट, कञ्चन, दूबा, लाल।
ज्यों ज्यों निरखत सूक्ष्म गति मोल रहीम बिशाल॥
मोल रहीम बिशाल ग्रधिकतर सुख उपजावै।
ज्यों ज्यों तिनमें गड़ौ तत्व त्यों त्यों दरसावै॥
'दास' प्रेम को नेम बिलच्छन ग्रैारहु बेहद।
ताके ग्रागे कहा मोल है रूप कथा पद॥ ४॥

बड़न कोऊ जौ घटि कहै नहिं रहीम घटि जाहिं।
गिरिधर मुरलीधर कहे कछु दुख पावत नाहिं ॥
कछु दुख पावत नाहिं जगतधर गिरिधर भाखे।
पूरन ब्रह्म अपार नाम नन्दनन्दन राखे ॥
वामन रूपहिं धरयो भए बैराट सोऊ तौ।
'दास' घटैं नहिं नेकु कहै लघु बड़न कोऊ जौ ॥ ५ ॥

ससि, सकोच, साहस, सलिल, साजे नेह रहीम।
बढ़त बढ़त बढ़ि जात हैं, घटे न तिनकी सीम ॥
घटे न तिनकी सीम देखतहि मैं घटि जाई।
बढ़त कछुक दिन लगै जतन बहु भांति बनाई ॥
बढ़ि कै जब यह घटै जाइ सोभा औरहु नसि।
जदपि सोई पै कृष्ण पक्ष फीको लागै ससि ॥ ६ ॥

बड़े दीन के दुख सने होत दया उर आन।
हरि हाथी के कब हुती कहु रहीम पहिचान ॥
कहु रहीम पहिचान रही कब हरि हाथी सन।
सहज सुभाउ दयालु देखि नहिं सके दुखित जन ॥
पर उपकारिन साथ काम नहिं जान चीन के।
सब संसार कुटुम्ब लखैं हित बड़े दीन के ॥ ७ ॥

कहि रहीम नहिं लेत हैं रहो विषय लपटाइ।
घास चरे पशु आप तैं गुर लौं लाए खाइ ॥
गुर लौं लाए खाइ विधाता प्रकृति बनाई।
बोझ ढोइ नित मरैं पढ़न सों जान छिपाई ॥
आम्र वृक्ष तजि दूर बेलि बबूलहिं लपटहि।
भव दुख सुख सों सहैं सहज हरिनाम न मुख कहि ॥ ८ ॥

रहिमन राज सराहिए जो बिधु के विधि होय।
रवि को कहा सराहिए उगै तरैयां खोय ॥
उगै तरैयां खोय नाहिनै तासु बड़ाई।
बड़े सराहनं जोग सोई जो जग सुखदाई ॥
प्रभुता मद जिनि भूलु प्रजापालहि किन सुख सन।
यह सरीर नसि जाय रहै इक कीरति रहिमन ॥ ९ ॥

दुरदिन परे रहीम प्रभु दुरथल जैये भाग।
जैसे जैयत घूर पर जब घर लागै आग ॥
जब घर लागै आग सबै मरजाद भुलावै।
समुझि समय को फेर सबै सहतै बनि आवै ॥

जैसो समयो देखि रहैं तैसो ह्वै तू किन ।
मैान होइ सह्यु दास परै जो कबहूं दुर्दिन ॥ १० ॥

क्षमा बड़न को उचित है छोटन को उतपात ।
कहँ रहीम प्रभु को घस्यो जो भृगु मारी लात ॥
जो भृगु मारी लात ग्रैारहू ग्रादर दीनो ।
लघु प्रकृतिहिं पहिचानि नेकु जिय रोस न कीनो ॥
नदी नीर गम्भीर काम कहँ भवर पड़न को ।
छिल छिल जल इतराय सहुज गुण क्षमा बड़न को ॥ ११ ॥

जो गरीब सों हित करैं धन रहीम वे लोग ।
कहां सुदामा बापुरो कृष्ण मिताई जोग ॥
कृष्ण मिताई जोग कहां शवरी गुह बानर ।
तजि दुरजोधन पाक शाक खायो जु बिदुर घर ॥
जैान प्रेम मन करै कहा तैा लै ग्रमीर कोँ ।
तेई नर जग धन्य करैं हित जो गरीब सों ॥ १२ ॥

कुटिलन संग रहीम बसि साधु बचैाती नाहिं ।
नैना टैना करत हैं उरज मरोरे माहिं ॥
उरज मरोरे माहिं फंसे शिव नारद ज्ञानी ।
ग्रोछे संगति बैठि होत बित हित की हानी ॥
सबै साधुता दाबि रँगत सहजहिं ग्रपुने रँग ।
सत सङ्गत मैं बैठु दूरि तजु तू कुटिलन सँग ॥ १३ ॥

कमला यह न रहीम थिर सांच कहत सब कोय ।
पुरुष पुरातन की बधू क्यों न चंचला होय ॥
क्यों न चंचला होय सिंधुतनया चंचलमति ।
एकन को करि तुष्ट देइ तजि सहज चपलगति ॥
बड़न गिरावै दास धरै छोटन सिर समला ।
कोटि जतन किन करौ रहै नाहिन थिर कमला ॥ १४ ॥

जाइ समानी ग्रब्धि मैं गङ्ग नाम भयो धीम ।
काको महिमा ना घटी पर घर गए रहीम ॥
पर घर गए रहीम होइ ग्रवसहिं हलकाई ।
जदपि न पूँजी तदपि भरम निज गेह सुहाई ॥
ग्राधे पेटहि खाइ सहै बरु सरबस हानी ।
पर घर धाए 'दास' बड़ाई जाइ समानी ॥ १५ ॥

रहिमन कहत जो पेटु सों क्यों न भयो तू पीठ ।
भूखे मान घटावहीा भरे डिगावै डीठ ॥

भरै डिगावै डीठ नीठ जग को तृण जानै ।
सबै खुटाई भरी क्रोध तनिकहि मैं आनै ॥
याके भरिवे हेत करत नर पाप अनेकन ।
सबही दुख को हेत 'दास' यह पेट जु रहिमन ॥ १६ ॥

आपु सदा बेकाम के शाखा दल फल फूल ।
रोकत जाय रहीम कह औरन के फल फूल ॥
औरन के फल फूल रोकि जग अनहित करहीं ॥
व्यर्थहिं रोकै भूमि भार पृथिवी पर धरहीं ॥
आपु करै नहिं काम और कों मारै आँकुस ।
ऐसे जन सों भूलि 'दास' करिए जिन आपुस ॥ १७ ॥

बड़े जो छोटेन सों बँधैं कहि रहीम यह लेख ।
सहसन के हय बांधिए लै कौड़ी के मेख ॥
लै कौड़ी के मेख अस्व गज बांधि जु राखहिं ।
मुक्तामणि अनमोल पोहि गुन नाहिं जु नाखहिं ॥
बड़े बड़े सदग्रन्थ लिखत इक तुच्छ कलम सो ।
लघु को हूं आदरैं अहैं जग लोग बड़े जो ॥ १८ ॥

धूर उड़ावत सीस पैं कहु रहीम केहि काज ।
जेहि रज रिषि पतनी तरी सो ढूंढ़त गजराज ॥
सो ढूंढ़त गजराज आजु व्याकुल ह्वै भारी ।
ज्यों बूड़त गज देखि धाइ गहि लियो उबारी ॥
त्यों ही हम पैं द्रवैा नाथ गजराज मनावत ।
अंसुआं ढारत नैन भूमि सिर धूर उड़ावत ॥ १९ ॥

जो रहीम भावी कहूं होती अपुने हाथ ।
राम न जाते हिरन सँग सीता रावन साथ ॥
सीता रावन साथ जाइ दुख असह न पावत ।
दसरथ बचन न देत प्रान प्रिय पुत्र गँवावत ॥
जदपि राम सरवज्ञ टारि नहिं सके लिखी सो ।
कोटिन करो उपाय होत निश्चय भावी जो ॥ २० ॥

हित अनहित सब कोउ कहै की सलाम की राम ।
हित रहीम जब जानिए जेहि दिन अटकै काम ॥
जेहि दिन अटकै काम न तादिन मुखहिं छिपावै ।
आपु सहै दुख कोटि मित्र के काम बनावै ॥
बिपति देइ जो साथ मीत जानिय तेहि नित चित ।
सम्पद मैं तो धाइ बनत सहजही सबै हित ॥ २१ ॥

श्री राधाकृष्ण दास ।

सम्राट अकबर

आईन-ई-अकबरी के लेखक ने कहा है कि "शासन के तीनों विभागों की सफलता ग्रैार राव रङ्क सब श्रेणी की प्रजा की इच्छाग्रों की पूर्णता, शासक की दिन व रात्रि-परिचर्या पर निर्भर है।"

यदि अकबरशाह इस कसैाटी पर कसा जाय तो क्यों वह इतना बड़ा महापुरुष हुग्रा, तथा शासन में क्यों उसने इतनी सफलता प्राप्त की, इन बातें का पता भली भांति लग सकता है।

इतनाही कहना बहुत न होगा कि अकबर का जीवन नियमबद्ध था, वरन् उसके विचार ग्रैार प्रयत्न सदा अपने प्रयोजन की सिद्धि से सम्बन्ध रखते थे, यही मानना पड़ेगा। वह प्रयोजन क्या था? यही कि शासनरूपी ऐसा दुर्ग निर्माण कर जाऊं जिसकी नीव प्रजा के हृदय पर पड़े ग्रैार शासक चाहे कैसाही क्यों न हो, पर इस दुर्ग की एक भी ईंट वा पत्थर भङ्ग वा निर्बल न होने पावे।

अकबर की मानसिक दशा का समझ लेना माने उसकी नीति की कुञ्जी का पा लेना है। अकबर के समय में स्वतन्त्र विचार प्रगट करना कोई जानता ही नहीं था। जिन लोगों के बीच अकबर ने जन्म लिया तथा शिक्षा पाई, वे लोग प्राचीन ढर्रे पर चलनेवाले मनुष्य थे; उनके मन में न तो कभी नए विचार आते ग्रैार न उन्हें अच्छे ही लगते। उन लोगों का दृढ़ विश्वास था कि ग्रहले इस्लाम के छोड़ ग्रैार सब अन्यमतावलम्बी नरक की अग्नि में भूने जायंगे। इन नरकगामियों के मार उनका सर्वस्व अपहरण कर लेना, व उनको सत्य धर्म्म का अनुयायी बनाना उनके मत में एक बड़ा पुण्यकार्य्य था। यद्यपि ग्रहले इस्लाम की संख्या भारत में बहुत थोड़ी थी ग्रैार बहुधा इन्हीं लोगों की राजभक्तिहीनता से मुसलमान नरेशों को आपत्ति में पड़ना पड़ता था, तथापि अकबर के पूर्व ऐसा कोई सुलतान नहीं हुग्रा जिसने अपार हिन्दु प्रजा के अनुनयन से लाभ उठाने का कभी विचार भी किया हो, उस प्रजा को लाभ पहुंचाना वा सन्तुष्ट रखना तो बातही निराली है। यदि अकबर के पूर्व कोई इस बात को जिह्वा पर भी लाता तो महा मूर्ख वा धर्मद्वेषी समझा जाता। पर यह अकबर की बुद्धि की ही विलक्षणता थी कि उसके मन में सदा के राजभक्त हिन्दुग्रों को सन्तुष्ट करके उन्हें अपना मित्र बनालेना ग्रैार उनके धर्म में किसी प्रकार का हस्तक्षेप न करना, तथा उन्हीका आश्रय ले कर सदा के अभक्त मुसलमान सेनापतियों वा सामन्तों पर अपना आधिपत्य जमा लेना, ये सब विचार उत्पन्न हुए।

चाहे इस नीति में स्वार्थपरता हो, तौभी वह अकबर के पूर्वगत सुलतानों की संकीर्ण नीति की अपेक्षा अधिकतर उदार थी, ग्रैार यदि ग्रैारङ्गज़ेब भी उस उदार नीति का अवलम्बन करता तो कदाचित् मुग़लवंश ऐसी अधोगति को ऐसे शीघ्र न पहुंचता। पर बात तो यह थी कि अकबर के डग पर डग मारनेवाले दारा के परास्त करने के हेतु ग्रैारङ्गज़ेब को प्रतिकूल नीति स्वीकार करनी पड़ी। यदि वह दारा के काफ़िर कह कट्टर मुसलमान न बनता तो भला ये लोग उसका इतना पक्ष कब करते। हां, इनके पक्ष से ग्रैारङ्गज़ेब को अपने वंश का नाशक तो बनना पड़ा, पर आमरण देहलीसाम्राज्य का शासक बन जाना क्या उसके लिये कम बात थी। स्वार्थी लोग इसके सिवाय ग्रैार क्या चाहते हैं? हिन्दु-प्रिय दारा के अलग करके देहली का सम्राट बन जाना ही तो ग्रैारङ्गज़ेब का मुख्य उद्देश्य था। सो अपनी क्षुद्र नीति के द्वारा उस उद्देश्य को पूर्ण करके वह अकबर के स्थापित साम्राज्य को सदा के लिये दुर्बल कर गया।

हम ऊपर कह आए हैं कि अकबर ने उन लोगों के बीच में शिक्षा पाई थी जिन लोगों में दुराग्रह

समाया हुआ था। ऐसे कट्टर लोगों में रह कर भी जब अकबर के ऐसे स्वतन्त्र वा उदार विचार हो गए तो उसे हम विलक्षण पुरुष न कहें तो क्या कहें। वह छुटपन में भी विचारशील था। बैराम खां की आधीनता में रह कर भी उसे हिन्दू राजाओं के सद्‌गुणों को देखने के अनेक अवसर मिले थे। वह देखता था कि मेरी प्रजा अधिकांश हिन्दू ही है। यद्यपि हिन्दुओं को मुसलमान होने में सिवाय लाभ के हानि कुछ नहीं है, तोभी ये क्यों अपना सर्वस्व त्याग हिन्दू ही बने रहने के लिये ऐसी चेष्टा करते हैं? इस-में कोई विशेष भेद अवश्य है। फिर वह मुसल-मान अमीरों वा राजपूत सरदारों के आचरणों की तुलना करता तो हिन्दू राजपूतों ही में भक्ति अधिक देखता था। इन्हीं लोगों में उसे सत्य-रति विश्वासपात्रता आदि कई सद्‌गुण मिलते थे। ऐसी ऐसी बातों पर विचार करने से वह यही स्थिर करता कि इस्लाम सब लोगों के लिये आवश्यक नहीं है। उसे प्रत्यक्ष देखने में आता कि मुसलमान अमीर तो दग़ा देते, पर राजपूतों के कार्य्य राजभक्तियुक्त होते हैं। शनैः शनैः अकबर के ये विचार दृढ़ हो गए। वह यही कहने लगा कि जब मैंने ही सत्यमार्ग नहीं पाया तो दूसरों को उसपर चलाने की चेष्टा कैसे कर सकता हूं। अब उसने सत्यमार्ग खोजने का प्रयत्न आरम्भ किया। भाग्यवश उसे फ़ैज़ी और अबुलफ़ज़ल ये दो विद्वान् वा उदारचित्त मुसलमान मित्र मिल गए। इन दोनों ने अकबर के विचार बिलकुल परिवर्तित कर दिए। प्रति दिन इस्लाम धर्म के लोगों की संकीर्णता उसे साक्षात् दीखने लगी और उसको घृणा होने लगी। धीरे धीरे सबही मतवालों को उसने ऐसाही पाया। सब मतों के सिद्धान्तों का मथन कर उसने यही स्थिर किया कि गुणदोष सबही में एकसे पाए जाते हैं। फिर किसी विशेष मत का सत्कार कर शेष मतों का तिरस्कार करना सुबुद्धि का काम नहीं है। ऐसे उदार विचार पहिले पहल अकबर के ही मन में अंकुरित हुए। देश काल का स्मरण करने से यह कुछ कम विचित्र बात न थी।

यह नहीं समझना चाहिए कि अकबर के मन में ये सिद्धान्त एकदम उत्पन्न हो गए होंगे। सब सच्चे और स्थायी ज्ञान के समान इनकी भी शनैः शनैः वृद्धि होती गई। एक मुसलमान इतिहासकार लिखता है कि ब्राह्मणों वा सुमानियों की संगति से अकबर पुनर्जन्म में विश्वास करने लगा था। हां, सङ्गति का प्रभाव तो अवश्य पड़ता ही है; पर ऐसी सङ्गति में जो अकबर की रुचि हुई, इसका कारण केवल अबुलफ़ज़ल और फ़ैज़ी का सम्पर्क है। एक तो वह स्वतः विचार-शील पुरुष था, दूसरे ऐसे दो उदाराशय विद्वानों के साथ मैत्री हो जाने से उसके विचार और भी दृढ़ हो चले और अन्त में वह बिलकुल द्वेष-शून्य हो गया।

अबुलफ़ज़ल

अबुलफ़ज़ल कैसा पुरुष था वह उसके लेख ही से स्पष्ट विदित होता है। "मेरे मन को शान्ति नहीं थी, मेरा चित्त कभी तो मंगोलिया के साधुओं और कभी लिबानन के यतियों के सिद्धान्तों की ओर आकर्षित होता था। तिब्बत के लामाओं और पोर्तगाल के फरङ्गी पाद्रियों से वार्तालाप करने की मुझे बड़ी उत्कंठा रहा करती थी। पारसी पण्डितों के साथ बैठकर उनके सिद्धान्तों पर विचार करने में मुझे बड़ा आनन्द प्राप्त होता था। अपने देश के मौलवियों से मुझे बड़ा तिरस्कार हो गया था"।

भला ऐसा विद्वान वा उदारचित्त मित्र पाकर अकबर सरीखे विलक्षण बुद्धिवाले सज्जन पर सत्सङ्गति क्यों न असर करे! युद्ध, आखेट, शासनकार्य्य—सभी में अबुलफ़ज़ल अकबर के साथ रहता था, तनिक भी अवकाश मिलने पर वह सदा उससे धर्म्म विषय पर वार्तालाप करता था।

पहले २० वर्ष तक तो अकबर को युद्ध करने तथा मुग़ल साम्राज्य दृढ़ करने में अहर्निशि लगा रहना पड़ा। बङ्गाल, गुज़रात, मालवा आदि प्रान्तों में पठान लोग सदा उपद्रव किया करते थे। यदि अकबर तनिक भी इन शत्रुओं की उपेक्षा करता तो उसे अपने पिता हुमायूं के समान देश विदेश मारा मारा फिरना पड़ता। सो जब तक उसने उन्हें नीति के कथनानुसार विध्वंस न कर डाला, तब तक उसे तनिक भी विश्राम न मिला। इन शत्रुओं से लड़ने के सिवाय उसे और और लोगों से भी युद्ध करना पड़ा। नीति में जो कहा है कि सन्तोषी नृपति और असन्तोषी ब्राह्मण अवश्य ही नष्ट हो जाते हैं, सो बहुत ही सत्य है। शत्रुओं से परिवृत राजा यदि उनको न दबा ले तो वे उसे अवश्य ही दबा बैठेंगे, और ऐसे अवसर में मित्र भी शत्रु बन जांयगे। इसके अतिरिक्त एक ही देश में अनेक स्वतंत्र शासक होने से वहां शान्ति डेरा नहीं डाल सकती। अकबर की नीति का यह एक अटल सिद्धान्त था कि सारा भारतवर्ष एक ही छत्र के नीचे आए बिना यहां शान्तिस्थापन कदापि नहीं हो सकती और बिना शान्ति के प्रजा को सुख होना असंभव है।

दूसरे उसे अनुभव से तथा मुसलमानों के इतिहास से यह बात भी स्पष्ट विदित हो गई कि भिन्न धर्म्म वा भिन्न देश के शासक यदि चाहें कि हम बलात् अपना अधिकार स्थापित रख सकें, सो भी उनकी बड़ी भूल है। चाहे उन शासकों के पास कैसी ही वीर वा विशाल सेना क्यों न हो, और चाहे वे कैसेही पराक्रमी वा साहसी क्यों न हों, पर जब तक शास्य और शासक के मध्य प्रीति का संचार न होगा तब तक उनका अधिकार भी दृढ़ नहीं हो सकेगा।

तीसरे, अकबर ने यह भी देखा कि हिन्दुओं को जितनी प्रीति अपने धर्म्म से है, उतनी अपने प्राण वा धन से नहीं है। इस मुग़ल बादशाह के पूर्व जितने सुलतान हो गए थे, वे सब हिन्दुओं से द्वेषभाव रखते थे। अतएव उनकी हिन्दू प्रजा ने कभी उनका मङ्गल नहीं चाहा। उन्हें केवल अपने सधर्म्मी मुसलमानों का ही भरोसा रखना पड़ता था। इन मुसलमानों में हर प्रकार के लोग विद्यमान थे। तुर्की मुग़ल, पठान, अरब आदि सब क़ौमों के मुसलमान केवल अपनी उन्नति के विचार से आए थे, और सबल सुलतान से तो दबते थे, पर निर्बल को दबाकर वे लोग स्वतः अधिकारी बन जाया करते थे। अकबर ने भी सिंहासनारूढ़ होते ही अपने सेनापतियों की अभक्ति का परिचय पाया। यह देख उसने हिन्दुओं से मैत्री पैदा करने का दृढ़ सङ्कल्प कर लिया। उन दिनों में राजपूत जाति बहुत ही सबल और प्रभावशालिनी थी। उस जाति के नेताओं को अपने बस में करके उसने मुसलमानों को दबाना चाहा। मैत्री का बन्धन विवाहादि सम्बन्ध से बहुत दृढ़ हो जाता है। यह तो स्वाभाविक नियम है; इसीलिये अकबर ने राजपूतों की कन्याओं को अपने वंश में लेना उचित समझा।

अपना अधिकार दृढ़ करने को अकबर ने अपने विचारों को कार्य्यरूप में लाना चाहा और अपने दोनों मित्रों की सहायता वा उनके परामर्श से उसने अपनी शासनप्रणाली परिवर्तित कर डाली। बिचारे कट्टर मौलवी दाँतों में उंगली दबा दबाकर रह गए, गालों पर हाथ फ़ेर फेर कर तोबा तोबा करने लगे। यदि उनकी चलती तो वे अकबर को पदच्युत किए बिना न रहते, पर वीर राजपूतों की तलवार देख कर उनके देव भाग जाते। अबुलफ़ज़ल भी बड़ा धूर्त था। धर्म्म विवाद में वह कोई ऐसी बात निकाल बैठता जिससे मुल्लाओं को अकबर के विषय में अनादर सूचक वचन कहने पड़ें और अकबर की घृणा उत्तरोत्तर बढ़ती जाय।

इबादतख़ाना

बृहस्पतिवार को सायंकाल उलमा अर्थात् मुसलमान विद्वानों की सभा इबादतख़ाने में हुआ करती थी। इसमें सदा धर्म्म विषय में विवाद हुआ करता था। अकबर और अबुलफ़ज़ल के उदार या गंभीर विचारों को सुनकर संकीर्ण हृदय उलमा के सभ्यों को बहुत बुरा लगता और वे क्रोध में आकर कुछ का कुछ कह बैठते थे। शीआ और सुन्नी आपस में भी गाली दे बैठते जिससे अकबर को उनकी संकीर्णता देख बहुत घृणा हो आती और वह उन्हें सावधान करता और बहुधा उसे सभा से निकलवा देने तक की धमकी देनी पड़ती थी।

एक दिन अबुलफ़ज़ल ने एक ऐसा विषय उपस्थित किया जिससे अकबर का मत उलमा से सदा के लिये विरक्त हो गया। उसने यह प्रश्न उठाया कि जिस प्रकार सांसारिक बातों में अकबर का निर्णय प्रामाणिक समझा जाता है, वैसाही धार्म्मिक विषयों में भी मानना अवश्य है। ऐसा प्रश्न उठाना माना इस्लाम की जड़ पर कुठाराघात करना है, क्योंकि कुरानशरीफ़ के अतिरिक्त और दूसरा क्या प्रमाण हो सकता है ! मुल्लाओं के इस उत्तर पर अबुलफ़ज़ल ने कहा कि यद्यपि कुरानशरीफ़ ही पर इस्लाम स्थापित है, तथापि तुम्हीं लोग तो एक एक आयत के अर्थ निकालने में अलग अलग सम्मति देते हो जो परस्पर विरुद्ध होने से सबही सत्य नहीं हो सकतीं। इस दशा में एक निर्णय देनेवाले की बहुत बड़ी आवश्यकता है, सो बादशाह के अतिरिक्त और दूसरा कौन इस बात को कर सकता है ! बिचारे मौलवी निरुत्तर हो गए, पर उनके हृदय में क्रोधाग्नि प्रज्वलित हो उठी और उसी दिन से उन लोगों ने अबुलफ़ज़ल को अपना पूरा शत्रु समझ लिया और उसके नाश कर देने का सङ्कल्प कर बैठे। ऊपर से तो अकबर का विरोध कर ही नहीं सकते थे, इसलिये उन लोगों को उसे मुजतहिद का पद देना ही पड़ा और एक सनद लिख कर उसपर हस्ताक्षर कर दिए। यह सनद प्रोफ़ेसर ब्लैकमैन की अंग्रेजी आईन-इ-अकबरी के १८६ पृष्ठ में दी हुई है। अबुलफ़ज़ल ने अकबरनामे में इस विषय पर यों लिखा है—"इस पत्र से बड़ा ही लाभ हुआ। (१) शाही दरवार में प्रत्येक जाति और प्रत्येक मत के लोग उपस्थित होने लगे और प्रत्येक मत के उत्तम उत्तम सिद्धान्त स्वीकार किए गए। (२) एक ही भाव से सब मत देखे जाने लगे, जिससे सबको धर्म्म सम्बन्धी स्वतंत्रता मिल गई। (३) दुष्ट कट्टर लोगों की सदा के लिये हार हो गई।" पहिले उलमा के दो मेम्बरों ने हस्ताक्षर करना अस्वीकार किया, पर पीछे से समझ बूझ कर झख मार उन दोनों ने भी सही कर दी। उलमा में अबुलफ़ज़ल का पिता भी था। उसने हस्ताक्षर के साथ ही इतना और जोड़ दिया कि संसार के सर्व धर्मों का मथन कर मैंने भी यही सिद्धान्त स्थिर किया था और ऐसी ही शुभ घटना की बहुत काल से आशा लगाए था।

अकबर के मुजतहिद नियुक्त होते ही मानो धर्मस्वातंत्र्य ने इस देश में अवतार ले लिया। प्रत्येक मत के अनुयायी निडर हो राजसभा में अपने अपने सिद्धान्तों का समर्थन करने लगे; मानो अकबर का दरबार शिकागो का Parliament of Religions ही बन गया। अकबर ने भी बहुत प्रसन्न होकर अपने मित्र अबुल फ़ज़ल को अनेक धन्यवाद दिए और मनमाने परिवर्तन करने का बीड़ा उठाया।

न्यायालय में संशोधन

अकबर का प्रधान न्यायाधीश कट्टर सुन्नी मुसलमान था; अतएव शिआओं वा हिन्दुओं पर बड़ा ही अत्याचार किया करता था। उसने फ़ैज़ी को भी बहुत तङ्ग किया था। अकबर ने उसे ऊपरी सत्कार के साथ मक्का भेज दिया और एक दूसरे प्रभावशाली कर्म्मचारी की भी ऐसी ही

गति हुई। सब न्यायाधीशों को आज्ञा दे दी गई कि वे सुन्नी वा शीआ तथा हिन्दु, पारसी, ईसाई आदि सब मतवालों के साथ समभाव से न्याय करें। अबुलफ़ज़ल और फ़ैज़ी निरन्तर अकबर के साथ रह कर उसको सब प्रकार के संशोधनों में पूर्ण सहायता दिया करते थे।

नया धर्म्म

अकबर ने देखा कि बहु-मत-मतान्तरों के कारण सदा झगड़ा हुआ करता है। ऐसी दशा में शान्ति रहना बहुत दुष्कर बात है। इंगलिस्तान में भी महारानी इलीज़ेबेथ का ऐसा ही विचार था। उस समय में धर्म्म और शासन के बीच सघन सम्बन्ध था। बिना एक मत हुए शासक-लोग सुशासन करना दुस्साध्य समझते थे।

अकबर ने सब भिन्न भिन्न मतों के स्थान में एक मत स्थापित करने के अभिप्राय से दीन-इलाही नामक एक नए धर्म्म को चलाया। इस धर्म्म का मूल सिद्धान्त यह था कि ईश्वर एक है और अकबर उसका भूमि पर ख़लीफ़ा वा प्रतिनिधि है। दीन-इलाही का यह मानो कलमा वा महावाक्य था। मुसलमानी प्रार्थनाओं को सङ्कीर्ण मान उसने पारसियों की प्रार्थनाओं का प्रचार करवाया और ईश्वराराधनविधि हिन्दूशास्त्रों से सङ्कलित करवाई। मुसलमानी सन के बदले पारसी शाका चलाया गया और राजकीय पत्रों पर उसीका उपयोग होने लगा।

इन सब परिवर्त्तनों से दुराग्रही समाज के हृदय पर बड़ा आघात पहुंचा, पर वे बादशाह का कर ही क्या सकते थे; अतएव अबुलफ़ज़ल के साथ ही शत्रुता मनाना चाहते थे। इन परिवर्त्तनों के सिवाय भगवानदास, मानसिंह, बीरबल आदि हिन्दुओं को बड़े बड़े पदों पर विभूषित देख उनके हृदय को ईर्षाग्नि और भी सन्तप्त करती थी। ईर्षा-वश उन्हें इन हिन्दू कर्म्मचारियों के गुण दृष्टिगत नहीं होते थे। उनका काफ़िर होकर बड़े बड़े पद पाना ही एक बड़ा अनर्थ था। ये लोग इन हिन्दू कर्म्मचारियों को किस तुच्छभाव से देखते थे, यह बात मुसलमान इतिहासलेखकों के ग्रन्थ पढ़ने से ही विदित होती है।

अकबर की धर्म्मजिज्ञासा

बादशाह ने ईसाई मत के सिद्धान्तों का ज्ञान प्राप्त करने के अभिप्राय से गोआ के फ़रङ्गी पादरी रेडोस्को एक्वैवा को अपने दरबार में बुला कर रक्खा और फैज़ी से नए नियम का अनुवाद भी करवाया। कोई कोई यह भी कहते हैं कि इसी समय अकबर ने फ़रङ्गी कन्या मरियम से विवाह किया था। पादरी साहिब ने निमंत्रण पाकर यही समझा कि अब अकबर अवश्य ही ईसाई हो जायगा और ऐसा होने से भारतवर्ष भर में ईसाई मत अनायास ही प्रचलित हो जावेगा। पादरी साहिब की यह बड़ी भूल थी जो उन्हें पीछे से मालूम भी हो गई। अकबर ने जो ईसाईमत का आदर और उसके सिद्धान्तों की जिज्ञासा की, यह कोई विशेष बात न थी जिससे पादरी साहिब को उसके ईसाईमत ग्रहण करने की आशा हो जाय।

अबुलफ़ज़ल लिखता है कि पादरी साहिब के पहुंचने बाद एक दिन इबादतख़ाने में जो सभा हुई उसमें उलमा के मेम्बरों ने उक्त साहिब को बहुत कटुबचन कहे और ईसाई धर्म्म के विरुद्ध उन्होंने व्यर्थ आक्षेप करना आरम्भ कर दिया, पर प्रमाणों द्वारा एक भी कथन सिद्ध न कर सके। इसपर पादरी ने धर्म्मपरीक्षा करने का एक अनूठा प्रस्ताव किया। उसने कहा कि तुम लोग कुरानशरीफ़ ले लो और हम बैबिल लिये लेते हैं, चलो दोनों अग्निप्रवेश करें और जो कुशलपूर्वक बिना भस्म हुए बाहर निकल आवे उसीका मत सत्य समझा जाय। विचारे मुल्लाओं को इतना विश्वास तो था ही नहीं कि अग्निप्रवेश कर सकें फिर सिवाय गालियों के उनके पास और दूसरा

क्या उत्तर था ! अकबर को उनका दुराग्रह देख बहुत क्रोध हुआ और उसने उन्हें खूब उलटी पलटी बातें सुनाईं। उसने कहा कि श्रद्धा के बिना ऊपर से किसी मत का अवलम्बी बनने की बांग मारना बड़ी गर्हित बात है। तुम लोगों में सिवाय झूठे अभिमान के कुछ नहीं है। जो कुछ कहते हो उसके सिद्ध करने में नितान्त अशक्य हो। केवल कलमा पढ़ने, खतना कराने वा राजा के भय से दण्डवत् प्रणाम करने से ईश्वर प्रसन्न नहीं होता। "

इस लेख से इतना तो सिद्ध होता है कि अकबर को किसी मत का पक्षपात न था। मुसलमान विद्वानों से वह इसलिये अप्रसन्न था कि वे लोग सिवाय अपने मत के और सब मतों को असत्य समझते थे और उनपर अत्याचार भी करना चाहते थे। वास्तव में वह उन लोगों के दुराग्रह का विरोधी था, न कि इस्लाम का।

सूर्य्य पूजन

अकबर सूर्य्य की पूजा किया करता था, इस लिये लोग उसे पारसी समझने लगे थे। वास्तव में पारसी लोग अग्नि वा सूर्य्य की ही पूजा नहीं करते, किन्तु इन दो पदार्थों में ईश्वर का महत्व अधिक देख कर वे उनके द्वारा उसी परमात्मा की उपासना करते हैं। यही अकबर का सिद्धान्त था। उसे पारसियों का सीधा सादा मत बहुत अच्छा लगता था।

सती

अकबर किसीके धर्म्म पर हस्तक्षेप नहीं करता था, यह तो सत्य है; पर धर्म्म का आश्रय कर जो लोग दूसरों को प्राणभय में डालते थे, उनको स्वतन्त्रता नहीं देता था। हिन्दुओं में सती होने की प्रथा बहुत काल से प्रचलित थी। महाभारत में माद्री महारानी के सती होने की वार्ता है, जिससे यही सिद्ध होता है कि अपने पति की आत्मा को योगबल से रोक कर योगाग्नि से शरीर को भस्म करके स्त्री पति के साथ जा सकती है। असल सती इस प्रकार होनी चाहिए। समय पाकर यह प्रथा दूषित हो गई थी। स्वार्थीलोग पात्र अपात्र सबही स्त्रियों को सती करके वंशकी कीर्ति बढ़ाना चाहते थे। बस, घर घर सती करना ही रह गया था, जिससे बिचारी अबलाओं को बड़ा कष्ट सहन कर प्राण देने पड़ते थे। इस अत्याचार का नाम धर्म्म नहीं है, पर तौभी अकबर ने इस प्रथा को बिलकुल उठा देने की आज्ञा नहीं दी। उसने केवल यह आज्ञा प्रचलित की कि जो स्त्री तनिक भी सती होने में असमञ्जस करे उसे बलात् सती करनेवाला दण्ड पावेगा।

जयमल अम्बर के विहारीमल का भतीजा था। यह वही राजा विहारीमल है जिसने सब राजपूतों से पहिले अकबर के साथ सम्बन्ध किया था। अतएव उसके वंश के लोग बादशाह को बहुत प्रिय थे। राजा जयमल का विवाह जोधपुर की राजकुमारी से हुआ था। एकबार बादशाह ने राजा जयमल को अपना प्रतिनिधि बनाकर बङ्गाल प्रान्त के अमीरों के पास किसी विशेष कार्य्य सम्पादन के लिये भेजा था। चौसा पहुंचकर जयमल की मृत्यु हो गई। अकबर अजमेर में था। उसे समाचार मिला कि जयमल की विधवा सती होना अस्वीकार करती है, पर उसके भाई बन्धु तथा ससुरालवाले उसे बलात् सती करने की चेष्टा कर रहे हैं। अकबर ने तुरन्त विहारीमल को कई राजपूतों के साथ ऊटों पर सवार करके उस अबला की सहायता के लिये भेजा। ये लोग ऐन वक्त पर पहुंचे; देखा कि उदयसिंह बलात् विधवा माता को चिता पर बैठाना चाहता है। विहारीमल ने उसे पकड़ कर सब दर्शकों को मार भगाया और उस दीन विधवा को प्राण दान दिया।

हमने इस लेख में अकबर की धर्म्मसम्बन्धी नीति वा विचारों का कुछ वर्णन किया है। दूसरे लेख में उसकी राजनीति का वर्णन करेंगे।

रघुबरप्रसाद द्विवेदी।

आकाशमंडल

खड़ा हुआ मैं, निकल के घर से, गगन में तारे, चमक रहे थे।
सभी अनोखे, सभी मनोहर, सभी प्रभा से, दमक रहे थे।
अपूर्व गहने, रजत के पहने, अपार छवि से, छमक रहे थे।
मनो प्रतीक्षा, करें किसी की, इसी से मग में ठमक रहे थे॥

फिरीं जो आँखें इधर अचानक, मयंक बानक बना के आया।
रहे जो पहले बने रुपहले, उन्हें सुनहली छटा दिखाया।
विचारने वे लगे चकित हो, बदन में शोभा कहाँ से लाया।
कहाँ की ऐसी अनूप झाँकी, स्वरूप अपना कहाँ बनाया?

किया है हम को बड़ा ही लज्जित, दिखा सुसज्जित शरीर प्यारे।
घमंड हम को बड़ा था मन में, इसी से सब से खड़े थे न्यारे।
परन्तु देखा इसे है जब से, सुरङ्ग धारे तिलक सँवारे।
तभी से तन में बड़ी जलन है, कहीं कलन है कसक के मारे॥

"सदैव पति हैं यही हमारे" कहा क्षमा ने "न बैर करिये।
प्रभाव इनका प्रगट न तुम पर, चलो इन्हीं के चरन को धरिये।
स्वभाव इनका बड़ा ही शीतल, कहे से मेरे नहीं मुकरिये।
इन्हें सुधाकर, कहते हैं सब, वृथा न प्यारे हृदय में जरिये॥

सुराज्य* इनका अतीव विस्तृत, पहाड़ खाड़ी जहाँ महत हैं।
सदैव शास्त्रानुसार जिसके, पितर निवासी रहे बहुत हैं।
गमन करें हैं सदा गगन में, विमान इनके तुरङ्ग युत हैं।
द्विजेश इनको मनुष्य कहते, प्रधान अत्री ऋषीश सुत हैं"॥

कहा ग्रहों ने य बात सुन कर "किया है तुमने विचार उत्तम।
जदपि बहुत है पसार अपना, असार तो भी बिना पराक्रम।
धरा, हमारे समान तुम हो, बड़े हैं विधु से कई गुना हम।
स्वयं प्रकाशित नहीं कदाचित्, इसी से अपना प्रताप है कम"॥

"कहो न ऐसे वचन कभी तुम, बिना हमारा प्रभेद जाने"।
उपग्रहों ने कहा कड़क कर लिये अहंता स्वतन्त्रि ताने।
"मयंक भी है हमारे ऐसा किया है भ्रम यह समीक्षा ने।
दिया प्रतिष्ठा इसी से भू ने, इसीमें उसने बिनोद माने॥

दिवस* अठाइस लगाके लग भग, प्रदक्षिणा वह उसी की करता।
इसी से उससे प्रसन्न है वह, लगा लिया है बचत का परता।
स्वलाभकारी बिचार करके, प्रदान कर दी उसे अमरता।
स्वयं प्रकाशित नहीं है वह भी, इसीसे यह है अधिक अखरता"॥

"वचन हमारा प्रमाण मानो" कहा धरा ने तुरन्त सब से।
"समानता की तुम्हें शशी से, हवा लगी है बताओ कब से?
महत्व इनका हमें विदित है, रचा है विधि ने प्रपञ्च जब से।
पता तुम्हारा अभी लगा है, विचार कर लो तनिक भी अब से।

जदपि उचित है कथन तुम्हारा, पड़ा है उन पर प्रकाश रवि से।
तथापि उनकी प्रदीप्ति सुन्दर, सदा प्रशंसित रही सुकवि से।
उन्हीं से औषधि हुई हैं रुज में, नहीं हैं जो कम कदापि पवि से।
कहाँ हैं जग में सजीव ऐसे, न मोह जावें सुधांशु छवि से।

नहीं हैं भुम में मनुष्य वे जो न कौमुदी से प्रमोद पाते।
कहाँ न कैरव हुए प्रफुल्लित कहाँ न तस्कर रहे लुकाते।
इसीसे उसकी हुई प्रशंसा इसीसे मानव सुकीर्ति गाते।
अनेक तारे य सुनके प्रमुदित हुए हैं सहमत रहे जो जाते।

"सदैव इससे हुए उपकृत मनुष्य उससे प्रसन्न हैं अति।
यही है कारण महत्व का भी बखानने वे लगे रसा प्रति।
"परोपकारी सदा सुखी है उसीका यश है उसीकी उन्नति।
इसीसे सब विधि सुयोग्य है शशि चलो हमारा बनेगा वह पति"।

हुई यथोचित सभी की सम्मति चले वहाँ पर बने ठने से।
चतुर्दिशा में पहुँच के घेरा रहे ठसक वे वहाँ घने से।
अधीश अपना उसे बनाया लगे चमकने उसी कने से।
तभी से मङ्गल हुआ गगन में वितान नीले रहे तने से।

बागीश्वर मिश्र।

---

* कहते हैं कि चन्द्रलोक का व्यास २१६० मील है और उस पर सृष्टि का होना भी निश्चित है।

* पृथ्वी की एक परिक्रमा में चन्द्र को २७ दिन ७ घन्टे मिनट और ११½ सेकण्ड लगते हैं। यह भी एक उपग्रह है।

भाग ३] सितम्बर १९०२ ई० [संख्या ९

विविध वार्ता

आज कल गवर्मेंण्ट की आज्ञा से संयुक्त प्रदेश का शिक्षाविभाग इस बात का विचार कर रहा है कि लड़कों के पढ़ने के लिये जो पुस्तकें हिन्दी में बनाई जावें, उनकी भाषा कैसी हो। अर्थात् वह संस्कृतमिश्रित हो या उर्दू-मिश्रित। इस विषय पर अनेक लोगों से सम्मति ली गई है। हम यहां पर केवल इतना ही कहा चाहते हैं कि स्कूली पुस्तकों की हिन्दी ऐसी हो कि उसका हिन्दीपन बना रहे। यद्यपि हम इस बात के पक्ष में नहीं हैं कि हिन्दी में बिना आवश्यकता के ज़बरदस्ती संस्कृत के कठिन कठिन शब्द भर दिए जांय, और साथ ही यद्यपि हम इस बात का भी विरोध नहीं करते कि इसमें उर्दू के शब्द न आवें, पर हमारा कहना इतना ही है कि किसी अवस्था में हिन्दी का रूप न बिगड़ने पावे। हमारा सिद्धान्त तो यह है कि सरल हिन्दी का प्रयोग सब अवस्थाओं में लाभकारी हो सकता है, पर यह बात विषय और लेखक पर बहुत कुछ निर्भर रहती है। अतएव भाषा के लिये कोई कसौटी नहीं बनाई जा सकती। उसे लेखकों पर छोड़ देना चाहिए, परन्तु उन्हें इस बात का ध्यान अवश्य दिला देना चाहिए कि भाषा का गौरव उसके भाषा बने रहने ही से वर्तमान रहेगा, संस्कृत या उर्दू बना देने से वह बात चली जायगी। जो लोग यह चाहते हैं कि स्कूली पुस्तकों की भाषा निरी बोलचाल की बड़ी साधारण हो, उन्हें इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि यदि लड़का पढ़ लिख कर सूर, तुलसी, बिहारी, केशव और चन्द की कविता न समझ सका तो, उसका पढ़ना ही वृथा है। युनिवर्सिटी कमीशन ने यह प्रस्ताव किया है कि एम० ए० की परीक्षा के लिये यदि कोई अंग्रेजी साहित्य ले तो उसे देशभाषा भी अवश्य पढ़नी होगी। अब हमारा प्रश्न यह है कि यदि हिन्दी में एम० ए० पास करके भी कोई हिन्दी काव्य को भली भांति न समझ सका तो उस परीक्षा और उस पढ़ने से ही क्या लाभ है! इसलिये हमारी सम्मति में ऐसा उद्योग होना चाहिए, और ऐसी पुस्तकें बननी चाहिएं जो क्रमशः कड़ी होती जांय और जिनके अध्ययन से सब प्रकार की हिन्दी समझ में आसके।

इस स्थान पर हम इस बात पर पुनः हिन्दी के लेखकों और गवर्न्मेण्ट का ध्यान दिलाया चाहते हैं कि यदि गद्य के विषय में इन सब बातों के विचार करने की आवश्यकता है तो पद्य के विषय में भी यह विचार लेना आवश्यक है कि क्या नीचे की श्रेणियों के लड़कों को ब्रजभाषा की कविता पढ़ाई जाय। हमारी सम्मति में छोटे छोटे बालकों को इस कविता के पढ़ाने की कोई आवश्यकता नहीं है। हम कई बेर लिख चुके हैं कि प्राचीन काल में हिन्दी का गद्य और पद्य दोनों ब्रजभाषा में था; परन्तु अब गद्य की भाषा निराली होगई है और वह अब बोली तथा लिखी भी जाती है। इस लिये यह आवश्यक है कि पद्य की रचना भी उसी भाषा में हो जिसमें गद्य लिखा जाता है। हम हिन्दी के प्रसिद्ध प्रसिद्ध कवियों से प्रार्थना करते हैं कि वे बालकों के लिये तो खड़ी बोली में पद्य रच कर इस अभाव की कुछ अंश में पूर्त्ति कर दें। पण्डित श्रीधर पाठक खड़ी बोली के सब से प्रसिद्ध कवि हैं, इसलिये उन्हींकी कविता से १७ प्रकार के छन्दों को उद्धृत करके हम आशा करते हैं कि हिन्दी के कविगण ब्रजभाषा के छन्दों ही में खड़ी बोली की रोचक कविता बनाने का उद्योग छोड़ दें। उन्हें बिना किसी सङ्कोच के अन्य भाषाओं के छन्दों का प्रयोग करना चाहिए। निम्नलिखित छन्दों में जो प्राचीन हैं उनके नाम दिए गए हैं।

१ (नवीन)

अहो आइये आज गुण उस कर्ता के गाइये
जिसके कृपा कटाक्ष से सकल मनोरथ पाइये॥

२ (फारसी)

किया चाहिये पहले उसका स्मरन।
कि जिस्के चरन में जगत का शरन॥

३ (नवीन)

यह भूमि भारती अब क्या पुकारती।
इस्की ही बुद्धि से तो हुई इस्की दुर्गती॥
होते हैं पाप घोर लाखों अरब करोड़।
युवती विपति भोगे हैं षोड़श कलावती॥

४ (भुजङ्ग प्रयात)

पृथीराज जैचन्द जब से भये हैं।
उसी काल से इस्के दिन फिर गये हैं॥
परस्पर के विद्वेष की चण्ड ज्वाला
बढ़ी देश में भीमरूपा कराला
किया भ्रष्ट उसने प्रजा भारती को
बिगाड़ा सभों की विशुद्धा मती को
हुआ म्लेच्छ आवास सब देश भर में
अविद्या गई छाय प्रत्येक घर में
कहाए सभी आर्य हिन्दू औ काफिर
पताका विमल देश यश की गयी गिर

५ (प्लवङ्गम)

स्वच्छ स्वेत हिम युक्त हिमाचल चोटियां
रजतमयी कैलास शिखर की जोटियां
चमक रहीं चहुं ओर अतुल छबि छाजतीं
भारत सुजस समूह समान बिराजतीं

६ (रोला)

सुन के नव घनघोर हुए बनगज मदमाते
बार बार हो मुदित हर्ष चिंघार सुनाते
जिनके विशद कपोल विमल उत्पल आभाधर
लसैं दान में सने घने लिपटे हैं मधुकर

७ (नवीन)

जिन्के उपल नील उत्पलनिभ जलभरविनत
नवल घन चुम्बित
जिन पर त्यों सब ओर विकल रव निर्झर
विमल बहैं छविमण्डित
विलसैं मुदित मयूर नृत्यरत अगनित वृन्द
अमित आनन्दित
सो मम प्राणप्रिये पर्वतवर करैं चाहयुत
चित्त उमङ्गित

८ (नवीन)

अर्जुन साल कदम्ब केतकी के कानन कम्पाय-
-मान कर
उनके कुसुमों के सौरभ से होवै गर्भित।
ऐसा सुखद समीर मेघ जल सीकर से

होकर शीतलतर
किसके मन को करै नहीं उत्सुक ग्रौर चिन्तित॥

९ (वंशस्थ)

चलावैं चन्द्रन में भिगोई पंखियां
उरोजमण्डलपै सजावैं हार हैं॥
ग्रलापैं वीणा स्वर सूक्ष्म रागिनी
जगावैं यों मानों प्रसुप्त काम हैं।

१० (नवीन)

शोचनीय मम दशा कथा मैं कहूं ग्राप सो सुनलीजै
प्रेमव्यथित ग्रबला पर ग्रपनी दयादृष्टि योगी कीजै
केवल प्रेम प्रेरणा के वश छोड़ा ग्रपना गेह
धारण किया प्राणपति के हित पुरुष वेष निज देह

११

मचा करो गलियों में झगड़े
घर में किन्तु सुमति चहिये
भाई बहनें जहां रहें मिल
वहां लड़ाई नहिं चहिये
चिड़ियां भी मिल कर रहती हैं
ग्रपने घोसों के ग्रन्दर
बड़ी शरम की बात एक ही
घर के बालक लड़ें ग्रगर

१२

पत्र पुष्प बिन देख कमलिनी को
मधुकर ग्रब त्याग चले
श्रवण सुखद गुञ्जित रव करते
उत्सुक मन ग्रनुराग भरे।

१३ (वसन्त तिलक)

I

हे मित्र! ग्राज प्रिय पत्र मिला तुम्हारा
पढ़के प्रसन्न ग्रति चित्त हुग्रा हमारा
ग्रबलों परन्तु प्रिय मित्र! कहो कहां थे?
उनके यहां थे ग्रथवा ग्रपने यहां थे?

II

क्यों बात सारी ग्रपनी हमसे छिपाते
क्या क्या करो हो हमको नहिं क्यों बताते
कोई कहे कि तुम हो पति पण्डितों के
विद्या घमण्ड जड़ता ग्रघ मण्डितों के
कोई कहै है तुमको रणवीर बांके
पहले तुम्हारे पुरखे नृप थे यहां के
बाणिज्य में निपुण कोई तुम्हें बताता
कोई कला कुशल ज्ञान गुनी गिनाता

१४ (नवीन)

योग्यता उपेक्षित रहती है
विज्ञता ग्रनादृत रोती है।
ग्रापस का नेह नस जाने से
शिष्टता भ्रष्ट पद होती है।

१५ (विशिष्ट ग्रार्या)

प्रीति पत्र प्रिय! तेरा ग्राया
पञ्जाब प्रान्त से जो था प्रेरा
हुग्रा प्रसन्न घनेरा पढ़कर
प्रेमानुरक्त मन मेरा

१६ (मालिनी)

खिलित न कुसूमी रङ्ग सिन्दूर कासा
ग्रति पवन चले से वेग जिसका बढ़ा है
निज तट विटपों की चोटियों से लिपट के
विकट प्रबल ज्वाला दाह करती फिरै है

१७ (दोहा)

चाँद सूर्य तारे सभी पिण्डे हैं ये गोल
जिनसे इस ग्राकाश की भरी हुई है पोल
ये गोले इस पोल में रहें ग्रधर सब काल
ग्राकर्षण की शक्ति से नियमित इनकी चाल

इन छन्दों के देखने से यह स्पष्ट प्रगट होता है कि यदि हिन्दी के प्रेमी कविगण ध्यान दें तो वे खड़ी बोली के लिये बड़ी सुगमता से यह निश्चय कर सकते हैं कि किस किस प्रकार के छन्द इसमें हो सकते हैं जिसमें ग्रन्य लोगों को कविता करने में सुबीता हो जाय॥

* * *

हमको इस बात को प्रकाशित करते बड़ा ग्रानन्द होता है, कि संयुक्त प्रदेश की गवर्न्मेंट ने काशी नागरीप्रचारिणी सभा के कामों से प्रसन्न

होकर उसकी वार्षिक सहायता ४००) से ५००) कर दी है। यह रुपया गवर्न्मेण्ट प्राचीन हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों की खोज के लिये देती है और सभा को प्रति वर्ष एक रिपोर्ट अपने काम की गवर्न्मेण्ट के पास भेजनी पड़ती है। इस खोज को प्रारम्भ हुए आज तीन वर्ष के लगभग हो चुके और सभा अब तक दो वार्षिक रिपोर्टें गवर्न्मेण्ट के पास भेज चुकी है। प्रथम वर्ष की रिपोर्ट पर प्रसन्न हो कर गवर्न्मेण्ट ने उसे अपने व्यय से छापना प्रारम्भ कर दिया है और वार्षिक सहायता बढ़ा कर अपनी गुणग्राहकता का परिचय दिया है। सभा के लिये यह बात बड़े गौरव की है।

***

दिल्ली दरबार की तय्यारियां बड़े धूम धाम से हो रही हैं। लार्ड कर्जन ने भारतवर्ष के चुने चुने सम्पादकों को भी न्योता भेजा है। हिन्दी पत्रों के जिन जिन सम्पादकों को न्योता भेजा है उनमें भारतमित्र और वेंकटेश्वर समाचार का नाम न देख कर हमको बड़ा आश्चर्य और दुख हुआ। ये दोनों हिन्दी के बड़े प्रसिद्ध पत्र हैं और इनका प्रचार सब प्रान्तों में है। गवर्न्मेण्ट को उचित था कि इन्हें भी अवश्य बुलाती। काशी नागरीप्रचारिणी सभा ने गवर्न्मेंट से प्रार्थना की है कि ये दोनों पत्र तथा हिन्दी का एकमात्र दैनिकपत्र हिंदोस्थान भी बुलाया जाय। हमें आशा है कि लार्ड कर्जन सभा की प्रार्थना पर ध्यान देंगे।

***

हमारे पास कई पुस्तकें और रिपोर्टें समालोचना के लिये आई हुई हैं। हमें आशा थी कि हम उनकी समालोचना इस संख्या में कर सकेंगे। पर दुःख है कि कई कारणों से हम ऐसा न कर सके। जिन जिन महाशयों ने ये पुस्तकें हमारे पास भेजी हैं वे हमें इस बेर क्षमा करें। अगामी संख्या में हम उनके विषय में अपने सम्मति प्रकाशित करेंगे॥

प्रतिभा

प्रतिभा से हमारा अभिप्राय उस शक्ति से है जिसे अंगरेज़ी में जीनियस (Genius) कहते हैं। इस देश के रुद्र नामक एक प्राचीन पण्डित ने प्रतिभा का जो लक्षण कहा है वह यह है—

प्रज्ञा नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा मता।

अर्थात् जिस बुद्धि अथवा जिस शक्ति के द्वारा मनुष्य को नए नए विचार सूझते हैं उसका नाम प्रतिभा है। हमारे देश के नए और पुराने सभी विद्वानों ने प्रतिभा-शक्ति की प्राप्ति प्रायः कवियों ही के विषय में कही है; परन्तु इस प्रकार का कथन युक्तिगर्भित नहीं जान पड़ता। प्रतिभा एक शक्ति-विशेष का नाम है; उसके पाने के अधिकारी केवल कवि ही नहीं हो सकते; दार्शनिक, तार्किक, आलङ्कारिक, चिकित्सक, गणितवेत्ता और ज्योतिर्विद इत्यादि सब शास्त्रों और सब विषयों के जाननेवाले उसे पा सकते हैं और उसके बल से नए नए आविष्कारों और विचारों की उत्पत्ति करके अक्षय्य कीर्त्ति सम्पादन कर सकते हैं। अतः यह कहना ठीक नहीं कि केवल कवि ही प्रतिभावान् होते हैं।

२। प्रतिभा मनुष्य के अधःपात का चिन्ह है! यह सुनकर प्रायः सबको आश्चर्य्य—महा आश्चर्य्य होगा; और होना ही चाहिये; क्योंकि, जिस गुण को, आज तक, सब कोई एक अलौकिक शक्ति अथवा एक अलौकिक ऐश्वरीय प्रसाद समझते आए हैं, उसको मनुष्य के अधःपतन अथवा मनुष्य की क्षीणता का चिन्ह बतलाना सहसा विश्वास नहीं किया जा सकता। परन्तु योरप के विद्वानों ने, अनेक काल पर्य्यन्त, अनेक खोज और परीक्षाएं करके यह बात सिद्ध करदी है कि प्रतिभा का होना एक प्रकार का रोग है; रागी वह रोग उस प्रकार के रोगों में से है जिस प्रकार के उन्माद (विक्षिप्तता = पागलपन) और अपस्मार (मिर्गी

आदि रोग होते हैं! इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि सारे प्रतिभाशाली पुरुष एक विशेष प्रकार के पागल होते हैं!! अतएव हमारे विश्व-विख्यात कालिदास, भवभूति और भास्कराचार्य आदि महापुरुष सब पागल थे!!!

३। अपस्मार और विक्षिप्तता मानसिक विकार रोग हैं। उनका सम्बन्ध केवल मन और मस्तिष्क से है। प्रतिभा भी एक प्रकार का मनोविकार ही है। इन विकारों की परस्पर इतनी संलग्नता है कि प्रतिभा को अपस्मार और विक्षिप्तता से अलग करना और प्रत्येक का परिमाण समझ लेना बहुत ही कठिन है। इसी लिये प्रतिभावान् पुरुषों में कभी कभी विक्षिप्तता के कोई कोई लक्षण मिलने पर भी मनुष्य उनकी गणना बावलों में नहीं करते। प्रतिभा में मनोविकार बहुत ही प्रबल हो उठते हैं; विक्षिप्तता में भी यही दशा होती है। जैसे विक्षिप्तों की समझ असाधारण होती है अर्थात् साधारण लोगों की सी नहीं होती; एक विलक्षण ही प्रकार की होती है; वैसे ही प्रतिभावानों की भी समझ असाधारण होती है। वे प्राचीन मार्ग पर न चलकर नए नए मार्ग निकाला करते हैं; पुरानी लीक पीटना उनको अच्छा नहीं लगता। प्रतिभाशाली कवियों के विषय में किसी ने सत्य कहा है—

लीक लीक गाड़ी चलै, लीकहि चलै कपूत।
बिना लीक के तीनि हैं, शायर, सिंह, सपूत॥

जिनकी समझ और जिनकी प्रज्ञा साधारण है वे सीधे मार्ग का अतिक्रमण नहीं करते; विक्षिप्तों के समान प्रतिभावान्ही आकाश पाताल फाँदते फिरते हैं। इसीसे विक्षिप्तता और प्रतिभा में समता पाई जाती है।

४। जिस वस्तु का जो साधारण स्वरूप है उस स्वरूप के किसी अवयव की जब आश्चर्य-जनक वृद्धि हो जाती है तब प्रायः यह देखने में आता है कि उस वस्तु के और किसी अवयव अथवा अवयवों का आकार छोटा और पतला पड़ जाता है। बहुधा यह देखा गया है कि जिन मनुष्यों का डील डौल बहुत बड़ा होता है उनके विचार क्षुद्र होते हैं और जिनके विचार उन्नत होते हैं उनका डील डौल सामान्य होता है। जिनमें शरीर की प्रकाण्डता पाई जाती है उनमें कल्पनाओं की न्यूनता होती है; और जिनमें कल्पनाओं की प्रकाण्डता पाई जाती है उनमें शरीर के किसी न किसी अवयव की न्यूनता अथवा क्षीणता देखी जाती है। अर्थात् किसी बात में बढ़ जाने से उस बढ़ती का प्रायश्चित्त करना ही पड़ता है। जितने प्रतिभाशाली पुरुष हैं उनके मस्तिष्क में कल्पनाओं की उत्तुङ्ग तरङ्ग-मालाएं सदैव ही उठा करती हैं; यही कारण है जो उनके शरीर में प्रायः कोई न कोई न्यूनता पाई ही जाती है। इस प्रकार की न्यूनता जीवित दशा में यदि प्रत्यक्ष न भी देख पड़े तो मरने पर मस्तिष्क की परीक्षा करनेवाले डाकृरों को उसके कोई न कोई ऐसे चिन्ह अवश्य ही मिलते हैं जो प्रतिभाहीन मनुष्यों में नहीं पाए जाते।

५। शारीरिक और मानसिक विकारों की जब हम परीक्षा करते हैं तब यह देखते हैं कि उनमें से बहुतेरे विकार विक्षिप्त और प्रतिभाशाली पुरुषों में तुल्यतया पाए जाते हैं। बेपरवाही, सन्देह, अभिमान, अत्यल्प कारणवश अथवा अकारणही क्रोध और हर्ष, छोटी बात को बढ़ाकर कहना, जिसका अस्तित्वही नहीं उस विषय का विस्तृत वर्णन करना—इत्यादि बातें जैसे विक्षिप्तों में पाई जाती हैं वैसेही प्रतिभाशाली पुरुषों में भी पाई जाती हैं। विक्षिप्तों में प्रायः यह देखा गया है कि उनके कान बड़े होते हैं; उनकी डाढ़ी छोटी होती है; उनके दांत एक से नहीं होते हैं; उनका सिर कभी छोटा और कभी बड़ा होता है; उनका शरीर छोटा अथवा अनियमित होता है; उनको सम्भोग सुख की इच्छा कम रहती है और बात चीत करने में उनके मुख से बहुधा रुक रुक कर शब्द निकलते हैं। ये सब शारीरिक लक्षण प्रतिभाशाली विद्वानों

में भी प्रायः पाये जाते हैं। इस देश के प्रतिभा-वानों के मानसिक और शारीरिक विकारों का पूरा पूरा वर्णन किसीने नहीं लिख रक्खा; इसलिये इन बातों पर सहजही विश्वास नहीं आता; परन्तु योरप के विद्वानों ने बड़े परिश्रम से और बड़े खोज से इन सब का पता लगाया है और पता लगाकर पागलख़ानों में अनेक वर्ष पर्य्यन्त रहकर विक्षिप्तों के आकार और विकारों से उनकी तुलना करके ये सिद्धान्त स्थिर किए हैं।

६। अरिस्टाटल, प्लेटो, ग्रे, गोल्डस्मिथ, तामस मूर, चार्लस् लैम्ब इत्यादि योरोपीय प्रतिभावानों के आकार छोटे थे। इस देश के विद्वानों में से ईश्वरचन्द्र विद्यासागर और वामन शिवराम आपटे का आकार भी लम्बा न था। बाबू रमेशचन्द्रदत्त भी एक मध्यम आकार के पुरुष हैं। ईसाप, गालबा, पोप, स्काट, बाइरन और गिबन इत्यादि में से कोई कुबड़ा, कोई लंगड़ा और कोई टेढ़े पैरों का था। कानपुर के पण्डित प्रतापनारायण की भी कमर कुछ झुकी हुई थी। डिमास्थनीज़, सिसरो, अरिस्टाटल, वाल्टर स्काट, मिल्टन और नेपोलियन अत्यन्त दुबले पतले थे। बेकन, न्यूटन, पोप और नेल्सन बाल्यकाल में बहुत ही अशक्त और रोगी थे। ईसाप, अरिस्टाटल, डिमास्थनीज़, वर्जिल और डारविन तोतले थे। मिल्टन, वेंकटाध्वरि और सूरदास अन्धे थे। कानपुर के प्रसिद्ध कवि ललिताप्रसाद जी को भी नेत्रों से कम देख पड़ता है। इंगलैण्ड में जितने बड़े बड़े कवि हो गए हैं वे प्रायः सभी निःसन्तान थे। उदाहरणार्थ—शेक्सपियर, बेन जानसन, मिल्टन, ड्राइडन, एडिसन, पोप, गोल्डस्मिथ और कौपर इत्यादि। न्यूटन, पिट, फाक्स, ह्यूम, गिबन, मेकालें, लैम्ब इत्यादि प्रतिभाशाली विद्वानों ने विवाहही नहीं किया। शेक्सपियर, बाइरन, कोलरिज, एडिसन और कारलाइल आदि ने विवाह तो किया परन्तु उससे वे सुखी नहीं हुए।

जैसे विक्षिप्त और अर्द्धविक्षिप्त मनुष्यों की आकृति उनके माता पिता की आकृति से बहुधा कम मिलती है, वैसे ही प्रतिभाशालियों की भी आकृति उनके माता पिता की आकृति से नहीं मिलती। जूलियस सीज़र, नेपोलियन, वाल्टेर और बाइरन इस बात के प्रमाण हैं।

मरने के अनन्तर, प्रतिभाशाली पुरुषों के मस्तकों की परीक्षा करने पर, यह देखा गया है कि उनकी बनावट में और साधारण मनुष्यों के मस्तकों की बनावट में कभी कभी बड़ा अन्तर पाया जाता है। विक्षिप्तों के मस्तकों में जो न्यूनाधिकता रहती है वही बहुधा प्रतिभावानों के मस्तकों में रहती है। यह न्यूनाधिकता नीचश्रेणी की मनुष्य जातियों में भी पाई जाती है। इन्हीं कारणों से यह सिद्धान्त और भी दृढ़ होता है कि प्रतिभाशाली होना मनुष्यत्व की नियत सीमा से नीचे आना है। मस्तिष्क की बनावट की यह विलक्षणता किसी किसी में जन्म से ही होती है और किसी किसी में किसी कारणविशेष से बीच में आ जाती है। किसी ऊँचे स्थान से गिर पड़ने अथवा घोड़े इत्यादि बलवान पशुओं की लात लगने से किसी किसी के सिर में ऐसी चोट आ जाती है, कि सिर की बनावट में अन्तर हो जाता है, जिससे मनुष्य में प्रतिभा का सहसा उदय हो उठता है। विक्षिप्तता भी मस्तिष्क में विकार उत्पन्न होने ही से होती है; सिर में चोट लगने से भी कभी कभी किसी किसी की बुद्धि में विक्षेप आ जाता है।

७। प्रतिभा एक ऐसी शक्ति है कि अपस्मार के समान वह समयविशेष पर सहसा स्फुरित हो उठती है; उस समय वह किसी प्रकार रोकने से नहीं रुकती। अपस्मार के आक्रमण में मनुष्य जैसे बहिर्ज्ञानहीन हो जाता है वैसे ही प्रतिभा के स्फुरित होने पर वह आपे में नहीं रहता; उस समय वह एक विलक्षण शक्ति के वशीभूत होकर उसीको प्रेरणा के अनुसार काम करने लगता है और वे बातें जिन से वह पहले नितान्त अनभिज्ञ था, बिना प्रयास कहने लगता है;

विषयों का उसे कुछ भी ज्ञान न था उन विषयों पर विलक्षण वाक्पटुता दिखलाने लगता है; और जिन स्थानों को उसने कभी पहले नहीं देखा था उनका उनके अनुरूप विस्तृत वर्णन करने लगता है। प्रतिभा के द्वारा नई नई बातों का आविर्भाव इस कारण नहीं होता कि वह उनको आविर्भूत करना चाहती है; किन्तु इस कारण होता है कि आविर्भाव करना प्रतिभा का स्वभावही है। वह आविर्भावरूप कार्य्य किए बिना रही नहीं सकती। इस प्रतिभा के विकाश में जो आनन्द मिलता है वह वर्णनातीत है। एक विद्वान् ने लिखा है कि लेखनकला किसीकी इच्छा पर अवलम्बित नहीं रहती, अर्थात् इच्छा करने पर उसे कोई अपने आधीन नहीं कर सकता; उसकी सिद्धि एक प्रकार के मनोजन्य सुखद ज्वर के वेग पर अवलम्बित रहती है। वह कहता है कि मैं जो कुछ लिखता हूं उसे न तो अपने देश के लाभ के लिये लिखता हूं; न भाषा की उन्नति के लिये लिखता हूं; और न कीर्ति के लियेही लिखता हूं। मुझमें जो लेखन-शक्ति है उसे काम में लाने से मुझे जो एक अलौकिक आनन्द मिलता है, उसीकी प्राप्ति के लिये मैं लेखनी उठाता हूं। यह उक्ति बहुत यथार्थ है; इसकी यथार्थता का अनुभव केवल प्रतिभाशील जनही कर सकते हैं। प्रतिभावानों में इस अद्भुत शक्ति के उदय होने के जो कारण हैं भविष्यद्वादी महात्माओं में उनकी उक्तियों के भी वही कारण हैं; और विक्षिप्तों में उनके कार्य, उनकी बातचीत, और उनके असम्बद्ध प्रलापों के भी वही कारण हैं।

८। अन्तरात्मा की प्रेरणा से समय समय पर प्रतिभा विकसित हो उठती है और उस प्रेरणा के न रहने से मुकुलित हो जाती है। जिस प्रकार विक्षिप्त मनुष्य कभी कभी, कोई कोई सदैव ही, एकान्त में चुप चाप बैठे रहते हैं, किसीसे कुछ बोलते नहीं, वैसेही प्रतिभाशील पुरुष लिखने अथवा विचार करने के समय, एकान्त में चित्त को एकाग्र करके प्रतिभा के विकाश की प्रतीक्षा करते रहते हैं। जिस समय प्रतिभा का विकाश होता है उस समय वे अपने अस्तित्व को भूल जाते हैं; उनकी दशा पिशाचग्रस्त मनुष्य की सी हो जाती है। ऐसी दशा को प्राप्त होने पर प्रतिभावानों को शारीरिक पीड़ा पहुँचने पर भी उसका अनुभव उन्हें नहीं होता। उस समय वे एक के दो मनुष्य हो जाते हैं, एक तो प्रतिभाविशिष्ट आत्मा और दूसरा इन्द्रियगोचर पञ्चभूतात्मक देह। ऐसी अवस्था बहुत काल तक नहीं रहती; परन्तु जब तक वह रहती है तब तक प्रतिभावानों के मुख से अथवा उनकी लेखनी से जो कुछ निकलता है वह उससे सहस्र गुणित अधिक अच्छा होता है जो प्रतिभा के मुकुलित हो जाने पर लिखा अथवा कहा जाता है। यही कारण है जो किसी किसी प्रतिभावान् के ग्रन्थ में कोई कोई स्थल अत्यन्त सामान्य और कोई कोई अत्यन्त उन्नत देखे जाते हैं।

९। प्रतिभा के जागृत होने पर मनुष्य जब किसी वस्तु की भावना करने लगता है तब वह उसमें इतना लीन होजाता है कि फिर उसे और किसी बात का ध्यान नहीं रहता। उस समय यदि उसके सिर पर दुन्दुभी का घोरनाद भी हो तो वह भी उसे न सुन पड़े। न्यूटन की प्रतिभा का जिस समय उद्बोधन होता था, उस समय वह अपने लिखने के कमरे को छोड़ कर जब किसी दूसरे कमरे में किसी वस्तु को लाने जाता तो वहां से वह प्रायः रिक्तहस्त ही लौट आता था। वहाँ पहुँचते पहुँचते उसे अपने अभीष्ट कामका विस्मरण हो जाता था। एक बार अपनी भानजी की उँगली को तमाखू समझ कर वह अपने हुक्के में भरने लगा था! प्रतिभाशील पुरुष कभी कभी अपने घर का मार्ग तक नहीं ढूंढ़ पाते हैं; घोड़े से उतर कर चलते चलते उसे खो तक देते हैं; और कुछ काल के लिये अपना अथवा अपने नगर इत्यादि का नाम तक भी भूल जाते हैं!!! प्रतिभा के उद्बोधन होने पर जो कुछ वे लिखते अथवा कहते हैं वह सब, प्रतिभा के मुकुलित हो

जाने पर, किसी किसी की विस्मरण तक हो जाता है। अपने ही लेखों को वे नहीं पहचान सकते; उन को देख देख कर उन्हें आश्चर्य्य होता है; और हजार प्रयत्न करने पर भी प्रतिभा के पुनर्वार जागृत हुये बिना वे फिर वैसे लेख नहीं लिख सकते। जितनी देर तक प्रतिभा की सत्ता रहती है उतनी देर तक प्रतिभावान् को बिना प्रयास नई नई उक्तियां सूझती चली जाती हैं और नए नए विचार उसके ध्यान में आते जाते हैं। उस समय प्रतिभावान् को, प्रतिभारूपी दर्पण के भीतर, उसके भावना किए हुए विषयों के चित्र से दिखलाई पड़ते हैं। उन चित्रों को वे प्रत्यक्ष देखते से जाते हैं और तदनुकूल वर्णन मुख से करते चले जाते हैं। मोरोपन्त महाराष्ट्र देश में एक विख्यात कवि हो गए हैं। आर्या छन्द में उन्होंने अद्वितीय कविता की है। एक बार किसीने उनसे पूछा कि किस प्रकार आप इतना शीघ्र ऐसी अच्छी कविता करते हैं। इसके उत्तर में उन्होंने कहा कि "पूना में पेशवाओं के राजमन्दिर से दक्षिणा ले लेकर जिस प्रकार हजारों ब्राह्मण प्रति दिन फाटक से बाहर निकला करते हैं, उसी प्रकार ईप्सित अर्थों से भरे हुए शब्दसमूह मेरे मुख से, बिना प्रयास, आप ही आप निकला करते हैं"। यह नितान्त सत्य है। सत्यमेव प्रतिभावानों को कोई प्रयास नहीं पड़ता; प्रतिभा के स्फुरित होने पर उनके मुख से नई नई उक्तियों का निकलना एक सहज बात है। विक्षिप्तों का मुख प्रायः बन्द नहीं रहता; वे सदैव ही कुछ न कुछ कहा ही करते हैं। प्रतिभावान् भी एक प्रकार के विक्षिप्त ही हैं!

१०। विक्षिप्तों के समान प्रतिभाशाली पुरुष बहुधा उदासीन रहते हैं। किसी किसी समय उनपर उदासीनता ऐसी छा जाती है कि उनको, उस समय, बात चीत करना विष सा जान पड़ता है। ऐसी अवस्था में चुपचाप बैठना अथवा पड़ा रहनाही उनको अच्छा लगता है। कोई कोई भंग अफीम और मद्य आदिक मादक पदार्थों के वशीभूत हो जाते हैं। अधिक मद्य पीनेही से सिकन्दर की मृत्यु हुई; कोलरिज को भी इसी कारण अपने जीवन से हाथ धोना पड़ा। बाबू हरिश्चन्द्र को तो नहीं जानते; परन्तु, सुनते हैं, उनके पिता जो एक प्रसिद्ध कवि थे, बहुत भंग पीते थे; भंगही के कारण स्यात् वे अल्पायु भी हो गए। योरप के प्रतिभाशाली विद्वानों में तो अनेक मद्यप हो गए हैं। उदाहरण के लिये हाफमैन, अडिसन, शेरीडन, केरियू, लैम्ब और टामसन का नाम बस होगा। प्रतिभावान्, कभी कभी उचित अनुचित का विचार भी नहीं करते; चाहै न्याय्य हो चाहै अन्याय्य, जो जी में आता है उसे करही डालते हैं। योरप में इस प्रकार के कई प्रतिभाशाली हुए हैं जिन्होंने अनेक जघन्य काम किए हैं; यहां तक कि अपनी धर्मपत्नियों को बुरी तरह मारा है, उन्हें छोड़ दिया है, और उनको जान से मार तक भी डाला है! प्रतिभाशीलों के कोई कोई काम ऐसे होते हैं जिनसे उनकी विक्षिप्तता स्पष्ट प्रकट होती है। उदाहरणार्थ--

जानसन जिस समय लण्डन की सड़कों पर चलता था उस समय सड़क के किनारे के खम्भों को हाथ से बराबर छूता जाता था; यदि वह किसी खम्भे को छूना भूल जाता था तो लौट कर उसे छू आता था; बिना उसे छुए वह कदापि आगे न बढ़ता था। नेपोलियन में भी एक ऐसाही पागलपन था। जब वह बाहर निकलता था--फिर चाहै वह उस समय अपनी सेना के अग्रभागही में क्यों न हो--तब जितने घर उसे देख पड़ते थे सब की खिड़कियों को गिन कर वह जोड़ता जाता था। ये पागलपन के चिन्ह नहीं तो क्या हैं?

विक्षिप्त प्रायः बड़े घमण्डी होते हैं और अभिमान से भरी हुई बातें बहुधा किया करते हैं। कोई अपने को राजा बतलाता है; कोई नवाब; कोई कुछ; कोई कुछ। प्रतिभावानों की भी यही दशा होती है। वे प्रायः अभिमानी होते हैं; अपने सम्मुख किसीको कुछ नहीं समझते; दूसरे

विद्वानों का उत्कर्ष उनसे सहाही नहीं जाता। छोटी छोटी बात पर वे लड़ पड़ते हैं और अपनी बात रखने के लिये बड़ी बड़ी पुस्तकें तक लिख डालते हैं। जिन बातों को सुनकर प्रतिभाहीन पुरुषों के मनमें कोई बुरा विकार नहीं उत्पन्न होता, उसे सुनकर प्रतिभाशाली पुरुषों के हृदय में प्रचण्ड पीड़ा उत्पन्न हो जाती है। थोड़ेही में वे अपना अपमान समझते हैं और किसीके मुख से कोई विनोदात्मक भी बात सुनकर क्रोध से जल उठते हैं। जिन बातों में औरों को स्वप्न में भी किसी प्रकार का अनुचित सन्देह नहीं होता, उन्हीं बातों में वे सन्देह की पर्वतमाला ढूंढ़ निकालते हैं। सारांश यह कि वे बहुतही सूक्ष्मदर्शी और शीघ्र-कोपी होते हैं। प्रतिभाशीलता का यह लक्षण, इस समय, इस देश के भी कई विद्वानों में जागरूक है।

११। ऊपर यह लिखा जाचुका है कि प्रतिभा एक प्रकार की विक्षिप्तता है। यद्यपि इन दोनों मानसिक विकारों में कुछ भिन्नता है, तथापि जहां एक होता है वहां दूसरा भी अवश्यमेव पाया जाता है, चाहे उसकी मात्रा कम हो चाहे अधिक। इटलीनिवासी अध्यापक लेम्ब्रोसो ने इस विषय में एक पुस्तक लिखी है जिसमें उन्होंने यह निर्विवाद सिद्ध कर दिया है कि योरप के अनेक प्रतिभाशाली पुरुष थोड़े बहुत विक्षिप्त थे। सौदी, कौपर, कालिंस, गालो, ल्यंज, हैमिल्टन इत्यादि अनेक विद्वानों के नाम लेम्ब्रोसो ने अपनी पुस्तकमें लिखे हैं और प्रत्येक के विषय में ऐसे ऐसे प्रमाण दिए हैं कि उनको पढ़कर बड़ा आश्चर्य्य होता है और मन में यह भावना दृढ़ता से स्थान कर लेती है कि वे लोग सचमुचही पागल थे। इन प्रतिभावानों की विक्षिप्ततासम्बन्धी बातें इतने विस्तार से दी गई हैं कि उनका समावेश इस निबन्ध में होना असम्भव है। अतः इस विषय की केवल सूचनाही देना हम बस समझते हैं।

१२। जितने प्रतिभाशील पुरुष हैं सब में पूर्ण रूप से प्रतिभा का उदय नहीं होता है। किसी में थोड़ा, किसी में कुछ विशेष और किसी विरले में उसका पूरा पूरा आविर्भाव होता है। इस प्रकार का आविर्भाव मनुष्य की इच्छा के अनुकूल सदैव नहीं होता; किसी किसी महीने में इच्छा करते ही अथवा आपही आप प्रतिभा विकसित हो उठती है; किसीमें बहुत प्रयत्न करने पर भी उसका अत्यल्प विकास होता है; और किसीमें हजार प्रयत्न करने पर भी वह निकट नहीं आती। विद्वानों ने परीक्षा द्वारा इस बात का पता लगाया है कि गरमी के आरम्भ में विक्षिप्तों की विक्षिप्तता जैसे सहसा प्रबल हो उठती है, वैसे ही प्रतिभा भी उस समय विशेषरूप से विकसित होती है। अर्थात् वसन्त ऋतु में प्रतिभा को अधिक उत्तेजना मिलती है। आज तक जितने प्रसिद्ध ग्रन्थों और आविष्कारों की सृष्टि हुई है, अर्थात् प्रतिभावानों ने जिन नई नई बातों का पता लगाया है, उनका हिसाब इस प्रकार है—

महीना	साहित्य और शिल्प सम्बन्धी ग्रन्थ	ज्यौतिषिक आविष्कार	प्राकृतिक, रासायनिक और गणितसम्बन्धी आविष्कार	जोड़
जनवरी ...	१०१	३७	०	१३८
फरवरी ...	८२	२१	१	१०४
मार्च ...	१०४	४५	५	१५४
अप्रैल ..	१३५	५२	५	१९२
मई ...	१४९	३५	९	१९३
जून ...	१२५	२४	५	१५४
जुलाई ...	१०५	५२	५	१६२
अगस्त ...	११३	४२	०	१५५
सितम्बर ...	१३८	४७	५	१९०
अकतूबर ...	१८३	४५	४	१३२
नवम्बर ...	०३	४२	५	१५०
दिसम्बर ...	८६	२७	२	११५

इसके देखने से यह तत्काल ध्यान में आ जाता

है कि अप्रैल और मई में सबसे अधिक आविष्कारों की सृष्टि हुई है। इस देश में मई के महीने में प्रचण्ड गरमी पड़ती है, परन्तु यह हिसाब योरप का है जहां मई की गिनती वसन्त में है। अप्रैल और मई के अनन्तर सितम्बर है। इस महीने में आविष्कारों के अधिक होने का यह कारण है कि उपर्य्युक्त हिसाब में कई ऐसे देशों के प्रतिभाशाली विद्वानों के आविष्कार मिले हुए हैं जहां सितम्बर के महीने में भी थोड़ी गरमी पड़ती है। इस हिसाब में साहित्य और शिल्प के केवल उतने ही ग्रन्थों का उल्लेख किया गया है जिनकी उत्पत्ति का महीना विदित है। वे ग्रन्थ जिनका महीना नहीं किन्तु ऋतु विदित है, यदि ऊपर के हिसाब में जोड़ दिए जावें तो ऋतुओं के अनुसार सब ग्रन्थों की समष्टि इस प्रकार होगी—

वसन्त	३८८
ग्रीष्म	३४७
हेमन्त	३३५
शिशिर	२८०
जोड़	१३५०

अर्थात् वसन्त में सब से अधिक और शिशिर में सबसे कम ग्रन्थों की उत्पत्ति हुई। ऋतुओं के अनुसार रासायनिक और ज्यौतिषिक आदि आविष्कारों का हिसाब इस प्रकार है—

ऋतु	प्रसिद्ध प्राकृतिक, रासायनिक और गणित सम्बन्धी आविष्कार	ज्यौतिषिक आविष्कार
वसन्त	२२	१३१
ग्रीष्म	१०	१२०
हेमन्त	१५	१३५
शिशिर	५	८३

सब प्रकार के ग्रन्थों और आविष्कारों को जोड़ कर ऋतुओं के अनुसार पृथक् करने पर यह फल निकलता है—

वसन्त	५४१
ग्रीष्म	४७७
हेमन्त	४८५
शिशिर	३६८
जोड़	१८७१

अर्थात् वसन्त में सबसे अधिक और शिशिर में सबसे कम आविष्कार हुए। योरपवाले वर्षा और शरद को अलग ऋतु नहीं मानते, इस लिये ऊपर के हिसाब में ये दोनों ऋतु पृथक् नहीं दिखलाई गईं।

इस प्रकार, यह सिद्ध करके कि वसन्त में प्रतिभा का सविशेष उद्बोधन होता है, विद्वानों ने अनेक पागलखानों की रिपोर्टों को जो पढ़ा तो तत्कालही उनको यह विदित हो गया कि वसन्त ही में उन्माद रोग भी लोगों को सबसे अधिक होता है। इस विषय में पागलखानों की रिपोर्ट देखने की तादृश आवश्यकता नहीं; इस देश में सभी इस बात को जानते हैं कि वसन्त में मनुष्य क्या पशु पक्षी तक उन्मत्त हो उठते हैं। अतएव इसमें कोई सन्देह न रहा कि प्रतिभा और पागलपन का आदि कारण एक ही है और प्रतिभाशीलता भी एक प्रकार की विक्षिप्तता है!

१३। प्रतिभावान् पुरुष विशेष करके उन्हीं देशों में अधिक होते हैं जहां शीत बहुत अधिक नहीं पड़ता। जिस देश अथवा जिस प्रान्त में पहाड़ियों की अधिकता होती है; नदियां सब काल बहा करती हैं; हरियाली सब ओर छाई रहती है, वहां प्रतिभा को अधिक उद्दीपन मिलता है। शीतप्रधान देशों में वे प्रान्त, जिनके निकट ज्वालामुखी पर्वत हैं, अथवा जहां भूकम्प हुआ करता है, प्रतिभा के प्रदीप्त होने में बहुत सहायता देते हैं। प्रतिभा के लिये वही देश अधिक हितावह हैं जिनमें न अधिक ऊष्णता ही पड़ती है और न अधिक शीत ही पड़ता है। जहां शीतोष्णता प्रायः सम रहती है वहीं प्रतिभा का पूरा पूरा विकाश होता है। भारतवर्ष, ग्रीस और इटली में जो इतने कवि, दार्शनिक, तत्वज्ञ और ज्योतिषी हो गए हैं उसका कारण इन देशों की प्राकृतिक बनावट, और जल वायु आदि की उपयोगिता ही समझना चाहिये।

१४। पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियां अधिक कोमल

अशक्त, भीरु और वातप्रकृतिवाली होती हैं ; इस लिये उनमें बहुत कम प्रतिभा देखी जाती है। सशक्त, निर्भय, दृढ़ाङ्ग और पित्तप्रकृतिवाले पुरुषों ही को उन्माद अधिक सताता है। उन्माद और प्रतिभा का पिता एकही है ; इसी लिये जहां भाई का विशेष आवागमन रहता है वहां भगिनी भी पहुंच जाती है।

१५। विक्षिप्तता, अपस्मार और कुष्ठ इत्यादि ऐसे रोग हैं कि ये यदि पिता के हुए तो पुत्र के भी बहुधा हो जाते हैं और वंशक्रमानुसार चलेही जाते हैं। यह बात प्रतिभा के विषय में चरितार्थ नहीं है। प्रतिभाशील पिता का पुत्र भी कभी कभी प्रतिभाशील होता है ; यही नहीं किन्तु प्रपौत्र में भी पिता और पितामह की प्रतिभाशीलता का क्वचित पता लगता है ; परन्तु भावी सन्तति में उसका संक्रमण इतना साधारण नहीं है जितना साधारण उपर्युक्त रोगों का संक्रमण है। तथापि यह न समझना चाहिए कि इसकारण, प्रतिभा और विक्षिप्तता का अनैक्य सिद्ध होता है। कदापि नहीं। यदि प्रतिभावान् के प्रतिभावान् पुत्र नहीं होता तो पागल बहुधा होता है ; अथवा कभी कभी पागल के प्रतिभावान् उत्पन्न हो जाता है। बाइरन का पिता अर्द्धविक्षिप्त था। सिसरो का पुत्र महा मद्यप था। लूथर और थेमिस्टाक्लिस के पुत्र अविवेकी, दुःशील और सिड़ी थे। इन्हीं कारणों से यह बात फिर भी दृढ़ होती है कि प्रतिभा एक प्रकार की विक्षिप्तता ही है।

१६। नगरों की अपेक्षा ग्रामों का जल वायु प्रतिभा को अधिक उत्तेजित करता है। अनेक प्रसिद्ध प्रतिभाशील पुरुष ग्राम ही में उत्पन्न हुए हैं। ऐसे पुरुष ग्राम छोड़ कर यदि नगर में भी आ बसते हैं, चाहै जितने छोटे वय में वे ऐसा करैं, तो भी उनकी प्रतिभा का बीज उनके मस्तिष्क में पूर्ववत् बना रहता है और संयोग पाते ही अंकुरित हो उठता है। प्रतिभा को प्रदीप्त करने के लिये सुयोग की बड़ी आवश्यकता है। सुयोग न आने से प्रतिभा का विकाश नहीं होता और प्रतिभाशाली पुरुष प्रसिद्ध नहीं होते। कभी कभी किसी किसी ग्राम में एक आध ग्रामीण ऐसा पाया जाता है जो नवीन नवीन पहेलियां बुझाने और नवीन नवीन कहानियां कहने में परम प्रवीण होता है। उसकी बातें सभी सुनना चाहते हैं; उसके मुख से निकली हुई साधारण बातें भी अच्छी लगती हैं। कभी कभी वह कोई ऐसी उक्ति कह बैठता है जिसे सुन कर चित्त चमत्कृत हो जाता है। ये सब प्रतिभा के लक्षण हैं। इस प्रकार के प्रतिभाशील पुरुष का संसर्ग यदि अच्छे समाज से न हुआ और यदि विद्या परिशीलन का सुयोग उसे न आया तो उसकी प्रतिभा वहीं ग्राम में पड़े पड़े क्षीण हो जाती है; उसका पूरा चमत्कार देखने में नहीं आता। इससे प्रतिभा-सम्पन्न मनुष्य के लिये परिमार्जित समाज की सङ्गति और विद्याध्ययन की बड़ी ही आवश्यकता रहती है। कालिदास, श्रीहर्ष, भास्कर, मिल्टन, बाइरन, हाफिज और शेख़ सादी इत्यादि प्रसिद्ध कवियों को यदि विद्याध्ययन का सुयोग न आता तो उनकी कवित्वशक्ति कदापि स्फुरित न होती और और उनकी प्रतिभा उनके मस्तिष्क ही में मलिन हो जाती।

१७। जो विक्षिप्त पागलखानों में रहते हैं वे कभी कभी सहसा प्रतिभाशीलता के लक्षण दिखलाने लगते हैं। यह कहा ही जा चुका है कि प्रतिभा और विक्षिप्तता का आदि कारण एकही है; उनमें परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। अतएव कभी कभी कोई ऐसी आन्तरिक घटना हो जाती है जिसके कारण विक्षिप्तता के साथ ही प्रतिभा भी आविर्भूत हो उठती है। बाल्यावस्था में हम जिस पाठशाला में पढ़ते थे उसमें एक पण्डित कभी कभी आया करते थे। वे संस्कृत के अच्छे विद्वान् थे और साहित्यशास्त्र से उनको बड़ा प्रेम था। दैवयोग से वे विक्षिप्त हो गए। कभी कभी उनकी विक्षिप्तता इतनी प्रबल हो उठती थी कि वे निकटवर्ती गंगा के घाट पर श्मशान से हड्डियां और नरकपाल इकट्ठा कर लाते और मन्दिरों से

मूर्तियों को फेंक कर वहां उन अशुचि पदार्थों को रख देते थे। परन्तु जब कभी वे पाठशाला में आते थे और विद्यार्थियों को काव्यसंग्रह नाम की हिन्दी पुस्तक पढ़ते देखते थे, तब उनमें विलक्षण प्रतिभा स्फुरित हो उठती थी। उस समय वे सैकड़ों पद्य हिन्दी में कहने लगते थे। उनमें से कुछ दूसरों के बनाए थे; कुछ स्वयं, तत्काल, उन के गढ़े हुए थे। कभी कभी जब दो एक चरण किसी प्राचीन पद्य के वे भूल जाते थे तब तत्क्षण नए बनाकर पद्य को पूरा कर देते थे। यह हमारी देखी हुई बात है। योरप के पागलख़ानों से विक्षिप्तों की लिखी हुई मासिक पुस्तकें निकलती हैं। ऐसे अनेक ग्रन्थ भी उस देश की भाषाओं में छपे हैं जिनमें केवल विक्षिप्तों की कविताएं संग्रह की गई हैं। इस प्रकार की कविताओं में अनुप्रास और यमक की अधिकता होती है; लालित्य भी रहता है; परन्तु अर्थगौरव की न्यूनता पाई जाती है। जब मनुष्य किसी विषय में उत्तेजित हो उठता है तब उस उत्तेजना के कारण उसके मन को नानाप्रकार के विकार चंचल करने लगते हैं। मन की चंचलता के कारण इन विकारों का वर्णन जो मनुष्य के मुख से निकलता है वही कविता है। जिस प्रकार कोई दुःख आ पड़ने पर अपने इष्टमित्र को देख रोने से दुःख का वेग कम हो जाता है, उसी प्रकार मनोविकारों को मुख से कह डालने से सिर हलका हो जाता है। गद्य की अपेक्षा पद्य में ऐसे वर्णन अधिक हृदयग्राही और विकारगर्भित होते हैं। इसी लिये पद्य में कविता करने की प्रेरणा मनुष्य में स्वभावही से आविर्भूत होती है। विक्षिप्तों के मस्तिष्क में जब किसी कारण से प्रतिभा जग उठती है और उनके चित्त का क्षोभ उनसे सँभाला नहीं जाता, तब वे उसे दूर करने का यत्न करते हैं और प्राकृतिक प्रेरणा के वशीभूत होकर कविता करने लगते हैं।

विक्षिप्तों की प्रतिभा कभी कभी कविता की ओर प्रवृत्त न होकर शिल्प की ओर प्रवृत्त हो जाती है। उनके किए हुए कोई कोई शिल्पकार्य ऐसे अपूर्व होते हैं जिनको देखकर आश्चर्य होता है। शिल्पकार्य की ओर प्रायः वेही विक्षिप्त झुकते हैं जिनको कभी पहले शिल्प का कुछ संस्कार हो जाता है; परन्तु साहित्य—विशेषतया कविता की ओर वे बिना पूर्वसंस्कार के भी प्रवृत्त हो जाते हैं।

१८। कोई कोई ऐसे प्रतिभाशाली होते हैं कि उनके ग्रन्थों में उनकी विक्षिप्तता का पूरा पूरा प्रमाण उनकी अनर्गल, युक्तिहीन और अप्रासंगिक उक्तियों में मिलता है। इस प्रकार की उक्तियों को विचारपूर्वक पढ़ने से मनमें तत्कालही यह भावना उत्पन्न होती है कि जिस समय ग्रन्थकर्त्ता के मुख से वे निकली हैं उस समय उसका चित्त ठिकाने न था। परन्तु किसी किसी के ग्रन्थों में इस प्रकार के प्रमाण नहीं मिलते; तथापि ऐसे मनुष्यों की दिन-चर्य्या को देखने, उनके लिखे हुए पत्रों को पढ़ने और उनके इष्ट मित्रों से उनके गुप्त और प्रकट जीवन-चरित का पता लगाने से उनके कार्य्यों में विक्षिप्तता के चिन्ह मिले बिना नहीं रहते। साक्रेटिस और न्यूटन के समान प्रतिष्ठित तत्वदर्शी और विज्ञानी पुरुषों के चरित में भी विद्वानों ने विक्षिप्तता का पता लगाया है! विक्षिप्तों में प्रतिभा का प्रकाश और प्रतिभाशीलों में विक्षिप्तता के चिन्ह देख कर यही कहना पड़ता है कि इस भूमण्डल की प्रत्येक मनुष्य-जाति का भाग्य—अभ्युत्थान अथवा पतन—सदैव विक्षिप्तोंही के हाथ में रहता है!! इससे यह भी सिद्ध होता है कि आजतक जिस देश की जितनी उन्नति हुई है उतनी सब विक्षिप्तोंही की कृपा-कटाक्ष का फल है!!!

महावीरप्रसाद द्विवेदी।

प्लेग की चुड़ैल

गत वर्ष जब प्रयाग में प्लेग घुसा और प्रतिदिन सैकड़ों ग़रीब और अनेक महाजन ज़मींदार वकील मुख़्तार के घरों के प्राणी मरने लगे तो लोग घर छोड़ छोड़

कर भागने लगे यहां तक कि कई नामी डाकृर भी दूसरे शहरों को चले गए। एक महल्ले में ठाकुर विभवसिंह नामी एक बड़े ज़मींदार रहते थे। उन्होंने भी अपने इलाके पर जो प्रयाग से ५ मील की दूरी पर था, चले जाने की इच्छा की। सिवा उनकी स्त्री और एक पांच वर्ष के बालक के और कोई सम्बन्धी उनके घर में नहीं था। रविवार को प्रातःकाल ही सब लोग इलाके पर चलने की तयारी करने लगे। जल्दी में उनकी स्त्री ने ठंढे पानी से नहालिया। बस नहाना था कि ज्वर चढ़ आया, हकीम साहब बुलाए गए और दवा दी गई, पर उससे कुछ लाभ न हुआ। सायंकाल को गले में एक गिलटी भी निकल आई। तब तो ठाकुर साहब और उनके नौकरों को अत्यन्त व्याकुलता हुई। डाकृर साहब बुलाए गए, उन्होंने देखते ही कहा कि प्लेग की बीमारी है, आप लोगों को चाहिये कि यह घर छोड़ दें। यह कहकर वह चले गए। अब ठाकुर साहब बड़े असमंजस में पड़े। न तो उनसे वहां रहते ही बनता था, न छोड़के जाते ही बनता था। वह मन में सोचने लगे यदि यहां मेरे ठहरने से बहूजी को कुछ लाभ हो तो मैं अपनी जान भी ख़तरे में डालूं। परन्तु इस बीमारी में दवा तो कुछ काम ही नहीं करती, फिर मैं यहां ठहर कर अपना प्राण क्यों खोऊं। यह सोच जब वह चलने के लिये खड़े होते थे तब वह बालक जिसका नाम नवलसिंह था, अपनी माता के मुख की ओर देखकर रोने लगता था और वहां से जाने से इन्कार करता था। ठाकुर साहब भी प्रेम के कारण मूक अवस्था को प्राप्त हो जाते थे और विवश हो बैठ रहते थे। ठाकुर साहब तो बड़े सहृदय और सज्जन पुरुष थे, फिर इस समय उन्होंने ऐसी निठुरता क्यों दिखलाई, इसका कोई कारण अवश्य था, परन्तु उन्होंने उस समय उसे किसी को नहीं बतलाया। हां, वह बार बार यही कहते थे कि स्त्री का प्राण तो जाही रहा है, इसके साथ मेरा भी प्राण जावै तो कुछ हानि नहीं, पर मैं यह चाहता हूं कि मेरा पुत्र तो बचा रहे, मेरा कुल तो न लुप्त हो जावे। पर वह विचारा बालक इन बातों को क्या समझता था। वह तो मातृभक्ति के बंधन में ऐसा बंधा था कि रात भर अपनी माता के पास बैठा रोता रहा। जब प्रातःकाल हुआ और ठकुराइन जी को कुछ चेत हुआ तो उन्होंने आंखों में आंसू भर के कहा बेटा नवलसिंह! तुम शोक मत करो, तुम किसी दूसरे मकान में चले जाओ, मैं अच्छी होकर शीघ्रही तुम्हारे पास आऊंगी। पर वह लड़का न तो समझानेही से मानता था न स्वयं ऐसे स्थान पर ठहरने के परिणाम को जानता था। बहू जी तो यह कह कर फिर अचेत हो गईं, पर बालक वहीं बैठा सिसक सिसक रोता रहा। थोड़ी देर बाद फिर डाकृर, वैद्य, हकीम आए, पर किसी की दवा ने काम न किया। होते होते इसी तरह दोपहर होगई तीसरे पहर को बहू जी का शरीर बिलकुल शिथिल होगया और डाकृर ने मुख की चेष्टा दूरही से देखकर कहा 'बस अब इनका देहान्त होगया, उठाने की फिक्र करो'। यह सुन सब नौकरनियां और नौकर रोने लगे और पड़ोस के लोग एकत्रित होगए, सबके मुख से यही बात सुन पड़ती थी 'अरे क्या निर्दई काल ने इस अबला का प्राण लेहीडाला, क्या उसकी सुन्दरता, सहृदयता और अपूर्व पातिव्रत धर्म का कुछ भी असर उसपर नहीं हुआ, क्या इस क्रूर काल को किसीके भी सद्गुणों पर विचार नहीं होता!! एक पड़ोसी जो कवि था, यह सवैया कह कर अपने शोक को प्रकाश करने लगा—

सूर को चूर करै छिन में
अरु कादर को दर धूर मिलावै।
कोविदहूं को बिदारत है,
अरु मूरख को रख गारु चबावै॥
रूपवती लखि मोहत नाहिं,
कुरूप को काटि तूं दूर बहावै।

है कोउ औगुण वा गुण या जग
निर्दयी काल जो तो मन भावै ॥"

स्त्रियां कहने लगीं 'हा हा, देखो वह बालक कैसा फूट फूट कर रो रहा है। क्या इसकी ऐसी दीन दशा पर भी उस निठुर काल को दया नहीं आई ? इस अवस्था में बिचारा कैसे अपनी माता के वियोग की व्यथा सह सकैगा! हा इस अभागे पर बचपनहीं में ऐसी विपत्ति पड़ी"! ठाकुर साहब तो मूर्छित होकर भूमि पर गिर पड़े थे। नौकरों ने उनके मुंह पर गुलाब छिड़का और थोड़ी देर में वह सचेत हुए, उनकी मित्रमंडली में से तो कोई महाशय उस समय वहां उपस्थित नहीं थे। हां, उनके पड़ोसियों ने जो, वहां एकत्र हो गए थे यह सम्मति दी की स्त्री के मृत शरीर को गङ्गा तट पर ले चल कर दाह क्रिया करनी चाहिये। परन्तु डाकृर साहब ने जो वहां फिर लौट कर आए थे, कहा कि पहिले तो इस मकान को छोड़ कर दूसरे में चलना चाहिये, पीछे और सब खटराग किया जायगा। ठाकुर साहब को भी यह राय पसन्द आई, क्योंकि उन्होने तो रात ही से भागने का इरादा कर रक्खा था, वह तो केवल उस लड़के के अनुरोध से रुके हुए थे। परन्तु क्या उस लड़के को उस समय भी वहां से ले चलना सहज था ? नहीं, वह तो अपनी मृत माता के निकट से जाना ही नहीं चाहता था। बार बार उसी पर जाकर गिर पड़ता था और उसकी अधखुली आँखों की ओर देख देख कर रोता और माता माता कह कर पुकारता था। उसका रुदन सुनकर देखने वालों की छाती फटती थी और उनकी आंखो से आंसुओं की धारा बहती थी। अन्त में ठाकुर साहब ने उस बालक को पकड़ कर गोद में उठा लिया और गाड़ी में बिठाल कर दूसरे मकान की ओर रवाना हुए। अलबत्तः चलती बार ठाकुर साहब ने स्त्री के मृत शरीर की ओर देखकर कुछ अंगरेज़ी में कहा था, जिसका एक शब्द मुझे याद है, याने फेअरवेल (Farewell)। नौकर सब ठाकुर साहब ही के साथ रवाना हो गए; परन्तु उनका एक पुराना नौकर उस मकान की रक्षा के लिये वहीं रह गया। पड़ोसी लोग भी इस दुर्घटना से दुखी होकर अपने घरों को लौट गए, परन्तु एक पड़ोसी के हृदय पर इन सब बातों का ऐसा असर हुआ कि वह वहीं बैठा रह गया और मन में सोचने लगा कि ऐसी दशा में पड़ोसी का धर्म क्या है! इस देश की यह रवाज है कि जब तक महल्ले में मुर्दा पड़ा रहता है तब तक कोई नहाता खाता नहीं, जब उसकी दाह क्रिया का सब सामान ठीक हो जाता है और लोग उसको वहां से उठा ले जाते हैं, तब पड़ोसी लोग अपने अपने दैनिक कार्यों के करने में तत्पर होते हैं। परन्तु यहां का यह हाल देख कर वह बहुत विस्मित होता था और सोचता था कि यदि ठाकुर साहब भय के मारे अपने इलाक़े पर भाग गए तो मृतक की क्या दशा होगी; क्या इस पुण्यवती स्त्री का शरीर ठेलेही पर लदके जायगा! उसने उस बुड्ढे नौकर के आगे अपनी कल्पनाओं को प्रकाशित किया। उसने उत्तर दिया कि अभी ठाकुर साहब की प्रतीक्षा करनी चाहिये, देखैं वह क्या आज्ञा देते हैं। वह पड़ोसी भी यही यथार्थ समझ के चुप हो गया और संसार की असारता और प्राणियों के प्रेम की निर्मूलता पर विचार करने लगा। उस समय उसे नानक जी का यह पद याद आया "सबै कुछ जीवत को व्यवहार" और सूरदास का "कुसमय मीत काको कौन" भी स्मरण आया। पर समय की प्रतिकूलता देख वह इन पदों को गा न सका, मनहीं मन गुनगुनाता रहा। इतने ही में ठाकुर साहब के दो नौकर वापस आए और उन्होंने बूढे नौकर से कहा कि हमलोग पहरे पर मुक़र्रर हैं और तुमको ठाकुर साहब ने बुलाया है। वह मक्खन सौदागर के मकान में ठहरे हैं। वहीं तुम जाओ। उस बुड्ढे का नाम सत्यसिंह था। जब वह उक्त स्थान पर पहुंचा तो उसने देखा कि ठाकुर साहब के चंद मित्र जो वकील, महाजन और अमले थे, इकट्ठे हुए

हैं और वे सब एकमत होकर यही कह रहे हैं कि आप अपने इलाके पर चले जाइए, दाह क्रिया के झंझट में मत पड़िए, यह कर्म आप के नौकर कर देंगे, क्योंकि जब प्राण बचा रहैगा तो धर्म की रक्षा हो जायगी। ठाकुर साहब ने इस विषय में पुरोहित जी की सम्मति पूछी। उन्होंने भी उस समय हां में हां मिलाना ही उचित समझा और कहा कि धर्मशास्त्रानुसार ऐसा हो सकता है; इस समय चाहे कोई दग्ध करदे, इसके अनन्तर जब सुभीता समझा जायगा आप एक पुतला बना कर दग्धक्रिया कर दीजिएगा। इतना सुनते ही ठाकुर साहब ने पुरोहित जी से कहा यह ३०) लीजिए और मेरे आठ नौकर साथ ले जाकर कृपा करके आप दग्धक्रिया करवा दीजिए और मुझे इलाके पर जाने की आज्ञा दीजिए। यह कहकर लड़के को साथ लेकर और मित्रों से बिदा होकर ठाकुर साहब इलाके पर पधारे और पुरोहित जी सत्यसिंह प्रभृति आठ नौकरों को लेकर उनके घर पर गए। सीढ़ी बनवाते और कफ़न इत्यादि मंगवाते सायंकाल हो गया। जब नाइन बहूजी को कफ़नाने लगी, उसने कहा इनका शरीर तो अभी बिल्कुल ठंढा नहीं हुआ है और आंखैं अधखुली सी हैं, मुझे भय मालूम होता है। पुरोहित जी और नौकरों ने कहा यह तेरा भ्रम है, मुर्दे में जान कहां से आई! जल्दी लपेट, ताकि गंगा तट ले चलकर इसका सतगत करैं। रात होती जाती है, क्या मुर्दे के साथ हम लोगों को भी मरना है। ठाकुर साहब तो छोड़ ही भागे, अब हमलोगों को इन पचड़ों से क्या मतलब है, किसी तरह फूंक फांककर घर चलना है। क्या इसके साथ हमें भी जलना है? सत्यसिंह ने कहा भाई, जब नाइन ऐसा कहती है तो देख लेना चाहिये, शायद बहूजी की जान न निकली हो। ठाकुर साहब तो जल्दी से छोड़ भागे, डाकृर दूरही से देख कर चला गया, ऐसी दशा में अच्छी तरह जांच कर लेनी चाहिये। सब नौकरों ने कहा सत्यसिंह तुम तो सठिया गए हो, ऐसा होना असंभव है। बस, देर न करो, ले चलो। यह कह कर मुर्दे को सीढ़ी पर रख कन्धे पर उठा सत्यसिंह का वचन असत्य और राम नाम सत्य कहते हुए दशाश्वमेध घाट की ओर ले चले। रास्ते में एक नौकर कहने लगा ७ बज गए हैं, दग्ध करते करते तो १२ बज जावैंगे। दूसरे ने कहा फूकने में निस्सन्देह सारी रात बीत जायगी। तीसरे ने कहा यदि ठाकुर साहब कच्चा ही फेंकने को कह गए होते तो अच्छा होता। चौथे ने कहा मैं तो समझता हूं कि शीतला, हैज़ा, और प्लेग से मरे हुए मृतक को कच्चाही बहा देना चाहियें। पांचवे ने कहा यदि पुरोहित जी की राय हो तो ऐसाही कर दिया जाय। पुरोहित जी ने, जिसे रात्रि समय स्मशान में जाते डर मालूम होता था, कहा जब पांच पञ्च की ऐसी राय है तो मेरी भी यही सम्मति है और विशेष कर इस कारण कि जब एक बार ठाकुर साहब को नरैनी, अर्थात् पुतला, बनाकर जलाने का कर्म करनाही पड़ेगा तो इस समय दग्ध करना अत्यावश्यक नहीं है। छठवें और सातवें नौकरों ने कहा बस, चल कर मुर्दे को कच्चाही फेंक दो, ठाकुर साहब से कह दिया जायगा कि जला दिया गया। परन्तु सत्यसिंह जो यथा नामः तथा गुणः बहुत सच्चा और ईमानदार नौकर था, कहने लगा मैं ऐसा करना उचित नहीं समझता, मालिक का कहना और मुर्दे की गति करना हमारा धर्म्म है, यदि आपलोग मेरा कहना न मानैं तो मैं यहीं से घर लौट जाता हूं, आपलोग चाहैं जैसा करैं और चाहे जैसा ठाकुर साहब से कहैं; यदि वह मुझसे पूछैंगे तो मैं सच्च सच्च कह दूंगा। यह सुन कर नौकर घबराए और कहने लगे कि भाई इन ३०) में से जो ठाकुर साहब ने दिए हैं, तुम सबसे अधिक हिस्सा लेलो, लेकिन यह वृत्तान्त ठाकुर साहब से मत कहना। सत्यसिंह ने कहा मैं हरामख़ोर नहीं हूं, ऐसा मुझसे कदापि न होगा, लो मैं घर जाता हूं, तुम लोगों के जी में जो आवै सो करना। जब यह कह कर वह बुड्ढा नौकर चला गया तो बाकी नौकर जी में बहुत डरे और पुरो-

हित जी से कहने लगे कि अब क्या करना चाहिये, बुड्ढा तो सारा भेद खोल देगा और हमलोगों को मौकूफ़ करा देगा। पुरोहित ने कहा तुम लोग कुछ मत डरो, अच्छा हुआ कि बुड्ढा चला गया; अब चाहे जो करो; ठाकुर साहब से मैं कह दूंगा कि मुर्दा जला दिया गया, वह मेरा विश्वास बुड्ढे से भी अधिक करते हैं। ३०) में से ७) तो सीढ़ी और कफ़न में खर्च हुए हैं, दो दो रुपए तुम सात आदमी लेलो, बाकी ९) मुझे नवग्रह का दान दे दो, मुर्दे को जल में डालकर राम राम कहते हुए कुछ देर रास्ते में बिता कर कोठी पर लौट जाओ, ताकि पड़ोसी लोग समझें कि अवश्य ये लोग मुर्दे को जला आए। यह सुन कर वे सब बहुत प्रसन्न हुए और २३) आपस में बांटकर मुर्दे को ऐसे अवघट घाट पर ले गए जहां न कोई डोम कफ़न मांगने को था, न कोई महाब्राह्मण दक्षिणा मांगने को। वहां पहुंच कर उन्होंने ऐसी जल्दी की कि सीढ़ी समेत मुर्दे को जल में डाल दिया और राम राम कहते हुए करारे पर चढ़ आए क्योंकि एक तो वहां अंधेरी रात वैसेही भयानक मालूम होती थी, दूसरे वे लोग यह डरते थे कि कहीं सर्कारी चौकीदार आकर गिरफ़तार न कर ले, क्योंकि सर्कार की तरफ़ से कच्चा मुर्दा फेंकने की मनाही थी। निदान वे बेईमान नौकर इस तरह स्वामी की आज्ञा भंग करके उस अविश्वसनीय पुरोहित के साथ घर लौटे।

अब सुनिए उस मुर्दे की क्या गति हुई। उस सीढ़ी के बांस ऐसे मोटे और हलके थे जैसे नौका के डांड़ और उस स्त्री का शरीर कृशित होकर ऐसा हलका होगया था कि उसके बोझ से वह सीढ़ी पानी में नहीं डूबी और इस तरह उतराती चली गई जैसे बांसों का बेड़ा बहता हुआ चला जाता है। यदि दिन का समय होता तो किनारे पर के लोग अवश्य इस दृश्य से विस्मित होते और कौवे तो ज़रूर कुछ खोद खाद मचाते। परन्तु रात का समय था, इससे वह शव सहित सीढ़ी का बेड़ा धीरे धीरे बहता हुआ त्रिवेणी पार करके प्रायः पांच मील की दूरी पर पहुंचा। पर यह तो कोई अचम्भे की बात न थी। अत्यन्त आश्चर्यजनक घटना तो यह हुई कि गङ्गाजल की शीतलता उस सोपानस्थित शरीर के लिये, जिसे लोगों ने निर्जीव समझ लिया था, ऐसी उपकारी हुई कि जीव का जो अंश उसमें रह गया था वह जग उठा और बहू जी को कुछ होश आया। परन्तु अपने को इस अद्भुत् दशा में देख वह भौचक सी रह गईं। उनके शरीर का यह हाल था कि प्राणान्तक ज्वराग्नि तो बुझ गई थी, परन्तु गले में की गिल्टी ऐसी पीड़ा दे रही थी कि उसके कारण वह कभी कभी अचेत सी हो जाती थीं। परन्तु जब उस सर्वशक्तिमान जगदीश्वर की कृपा होती है तो अनायास प्राणरक्षा के उपाय उपस्थित हो जाते हैं। निदान वह सीढ़ी बहते बहते ऐसी जगह जा पहुंची जहां करौंदे का एक बड़ा भारी पेड़ तट पर खड़ा था और उसकी एक घनी डाली झुक कर जल में स्नान कर रही थी और अपने क्षीरमय फल फूल गङ्गा जी को अर्पण कर रही थी। वह सीढ़ी जाकर उसी डाली से टकराई और उसमें उलझ कर रुक गई और उस डाली में का एक कांटा बहू जी की गिल्टी में इस तरह चुभ गया जैसे किसी फोड़े में नश्तर। गिल्टी के फूटते ही पीड़ाजनक रुधिर निकल गया, और बहू जी को फिर चेत हुआ। झट उन्होंने अपना मुंह फेर कर देखा तो अपने को उस हरी शाखा की शीतल छाया में ऐसा स्थिर और सुखी पाया जैसे कोई श्रान्त पथिक हिण्डोले पर सोता हो। सूर्योदय का समय था, जल में किनारे की ओर कमल प्रफुल्लित थे और तटस्थ वृक्षों पर पक्षीगण कलरव कर रहे थे। उस अपूर्व शोभा को देख कर बहू जी अपने शरीर की दशा भूल गईं और मन में सोचने लगीं कि क्या मैं स्वर्गलोक में आ गई हूं, वा केवल स्वप्न अवस्था में हूं; और यदि मैं मृत्युलोक ही में इस दशा को प्राप्त हुई हूं तो भी परमेश्वर मुझे इसी

सुखमय अवस्था में सर्वदा रहने दे। परन्तु इस संसार में सुख तो केवल क्षणिक होता है, "सुख की तो बौछार नहीं है दुख का मेंह बरसता है। यह मुर्दों का गांव रे बाबा. सुख महँगा दुख सस्ता है"। थोड़ी ही देर बाद पक्षीगण उड़ गए और लहरों के उद्वेग से कमलों की शोभा मन्द हो गई। सीढ़ी का हिण्डोला भी अधिक हिलने लगा, जिससे दुःखित शरीर को कष्ट होने लगा; बहू जी का जी घबराने लगा। परन्तु उनका बश क्या था; शरीर में शक्ति नहीं थी कि तैर कर किनारे पर पहुंचै, हालां कि चारही हाथ की दूर पर एक छोटा सा सुन्दर घाट बना हुआ था। वह मन में सोचने लगीं कि शायद मुझको मृतक समझ मेरे पति ने मुझे इस तरह बहा दिया है, परन्तु उनको ऐसी जल्दी नहीं करनी चाहिये थी; मेरे शरीर की अवस्था की जाँच उन्हें भली भांति कर लेनी चाहिये थी; भला उन्होंने मेरा त्याग किया तो किया, उनको बहुत स्त्रियां मिल जायंगी, परन्तु मेरे नादान बच्चे की क्या दशा हुई होगी। अरे, वह मेरे वियोग के दुःख को कैसे सह सकता होगा! हा. वह कहीं रोरो के मरता होगा! उसको मेरे सदृश माता कहां मिल सकती है, विमाता तो उसको और भी दुःखदायिनी होगी। हे परमेश्वर! यदि मैं मृत्युलोक ही में हूं तो मेरे बालक को शान्ति और मुझे ऐसी शक्ति प्रदान कर कि मैं इस दशा से मुक्त होकर अपने प्राणप्रिय पुत्र से मिलूं। इतना कहते ही एक ऐसी लहर आई कि कई घूंट पानी उनके मुख में चला गया। गङ्गाजल के पीते ही शरीर में कुछ शक्ति सी आगई और पुत्र के मिलने की उत्कण्ठा ने उनको ऐसा उत्तेजित किया कि वह हाथों से धीरे धीरें उस सीढ़ीरूपी नौका को खेकर किनारे पर पहुंच गई। अब बांस की सीढ़ी छोड़ हाथों के सहारे से उस घाट की सीढ़ियों पर चढ़ गईं, परन्तु श्रम से मूर्छित हो कर भूमि पर गिर पड़ीं। कुछ देर बाद जब होश आया तो उस स्थान की रमणीयता देख कर फिर उन्हें यही जान पड़ा कि मैं मरने के पश्चात् स्वर्ग-लोक में आ गई हूं। गङ्गा जी के उज्वल जल का मन्द मन्द प्रवाह आकाशगङ्गा की शोभा दिखाता था और किनारे किनारे के स्थिर जल में फूले हुए कमल ऐसे देख पड़ते थे जैसे आकाश में तारे।

दोहा—गङ्गा के जल गात पै दल जलजात सोहात
जैसे गोरे देह पै नील वस्त्र दरसात ॥

तट पर अम्ब कदम्ब अशोकादि वृक्षों की श्रेणियां दूर तक चली गईं थीं और उनके समीप के उपवन की शोभा "जहां वसन्त ऋतु रह्यो लुभाई" ऐसी मनोहर थी कि मनुष्य का चित्त देखते ही मोहित हो जाता था। कहीं करौंदे कौरैया इन्द्रबेला आदि के वृक्ष अपने फूलों की सुगन्ध से स्थानों को सुबासित कर रहे थे, कहीं बेला चमेली केतकी चम्पा की फूलों से लदी हुई डालियां एक दूसरे से मिली हुई यों देख पड़ती थीं जैसे पुष्पों की माला पहिने हुए सुन्दर बालिकाएं एक से एक हाथ मिलाए खड़ी हों। उनके बीच बीच में ढाक के वृक्ष लाल फूलों से ढके हुए यों देख पड़ते थे जैसे संसारियों के समूह में विरक्त बनवासी खड़े हों। इधर तो इन विरक्तों के रूप ने बहू जी को अपनी वर्त्तमान् दशा की ओर ध्यान दिलाया; उधर कोकिला की कूक ने हृदय में ऐसी हूक पैदा की कि एक बार फिर बहू जी पति के वियोग की व्यथा से व्याकुल होगई; कहने लगीं कि इस शोक-सागर में डूबने से बेहतर यही होगा कि गङ्गा जी में डूब मरूं। फिर सोचा कि पहिले यह तो मैं बिचार लूं कि मेरा मरना भी सम्भव है या नहीं; यदि मैं स्वर्ग लोक के किसी भाग में आगई हूं तो यहां मृत्यु कैसे आ सकती है। परन्तु यह स्वर्ग लोक नहीं जान पड़ता, क्योंकि स्वर्ग में शारीरिक और मानसिक दुःख नहीं होते, और मैं यहां दोनों से पीड़ित हो रही हूं। इनके अतिरिक्त अब मुझे क्षुधा भी मालूम होती है। बस, निस्संदेह मैं मृत्युलोक ही में इस दशा को प्राप्त हुई हूं। यदि मैं मनुष्य ही के शरीर में अब तक हूं और मर कर पिशाची

नहीं होगई हूं, तो मेरा धर्म यही है कि मैं अपने अल्पवयस्क बालक को ढूंढ कर गले से लगाऊं। परन्तु मैं शारीरिक शक्तिहीन अबला इस निर्जन स्थान में किसे पुकारूं, किधर जाऊं! हे करुणामय जगदीश्वर तू ही मेरी सुध ले, यदि तू ने द्रौपदी दमयन्ती आदि अबलाओं की पुकार सुनी है तो मेरी भी सुन। यह कह कर गङ्गा जी की ओर मुंह फेर घाट पर बैठ गईं और जल की शोभा देखने लगीं। इतनेही में दक्षिण दिशा से एक दासी हाथ में घड़ा लिए गङ्गा जल भरने को आई। जब उसने पीछे ही से देखा कि कोई स्त्री कफन का सा श्वेत कपड़ा पहिने अकेली चुपचाप बैठी है, उसके मन में कुछ शंका हुई। जब उसने देखा कि नीचे पानी में एक मुर्दावाली सीढ़ी भी तैर रही है तब तो उसे अधिक भय मालूम हुआ और उसने सोचा कि अवश्य कोई मरी हुई स्त्री चुड़ैल होकर बैठी है। जब उसके पांव की आहट पाकर बहूजी ने उसकी ओर मुंह फेरा और गिड़गिड़ा कर उससे कुछ पूछने लगी तो वह उनकी खोड़राई हुई आंखें और अधमरी स्त्री की सी चेष्टा देखकर भय से चिल्ला उठी और चुड़ैल चुड़ैल करके वहीं घड़ा पटक कर भागी। बहूजी ने गला फाड़ फाड़ कर उसे बहुत पुकारा, पर वह न लौटी और अपने ग्राम में ही जाकर उसने दम लिया। जब उसकी भयभीत दशा देखकर और स्त्रियों ने उसका कारण पूछा तब उसने सब वृत्तान्त कह सुनाया, परन्तु वह ऐसी डर गई थी कि बार बार घाट ही की ओर देखती थी कि कहीं वह चुड़ैल पीछे पीछे आती न हो। उस समय ग्राम के कुछ मनुष्य खेत काटने चले गए थे और कुछ ठाकुर विभवसिंह के साथ टहलने निकल गए थे। केवल स्त्रियां और लड़के गांव में रह गए थे। उनमें से किसीको यह साहस नहीं होता था कि घाट पर जाकर उस दासी की अपूर्व कथा की जांच करे। चुड़ैल का नाम सुनते ही वे सब ऐसी डर गईं थीं कि अपने अपने लड़कों को घर में बन्द करने लगीं कि कहीं चुड़ैल आकर उन्हें चबा न डाले। उस समय ठाकुर साहब का लड़का नवलसिंह भी अपनी मृत माता को स्मरण कर कर नेत्रों से आंसू बहाता हुआ इधर उधर वहीं घूम रहा था और लड़कों के साथ खेलने की उसे इच्छा नहीं होती थी। जब एक स्त्री ने उससे भी कहा कि भैया तुम अपने बँगले में छिप जाओ, नहीं तो वह चुड़ैल आकर तुम्हें पकड़ लेगी, वह आश्चर्यित होकर पूछने लगा कि चुड़ैल कैसी होती है और कहां है। यदि वह यहां आवेगी भी तो मुझे क्यों पकड़ेगी, मैं ने उसको कोई हानि नहीं की है इधर तो यह बातें हो रही थीं, उधर बहूजी निरास होकर फिर मनमें सोचने लगीं कि यह तो निश्चय है कि मैं अभी तक मृत्युलोकही में हूं; पर क्या वास्तव में मेरा पुनर्जन्म हुआ है, क्या मैं सच मुच चुड़ैल हो गई हूं जैसा कि वह स्त्री मुझे देखकर कहती हुई भागी है। अवश्य इसमें कुछ भेद है, वरन् मैं इन कृशित अंगों पर कफन सा श्वेत वस्त्र लपटाए, काले नागों के से बालों के लट लटकाए हुए इस अज्ञात निर्जन स्थान में कैसे आजाती! हे विधाता मैंने कौन सा पाप किया जो तूने मुझे चुड़ैल का जन्म दिया? क्या पातिव्रत धर्म का यही फल है? अब मैं इस अवस्था में अपने प्यारे पुत्र को को कहां पाऊंगी और यदि पाऊंगी तो कैसे उसे गले लगाऊंगी। वह तो मेरी डरावनी सूरत देखतेही भागेगा। पर जो हो मैं उसे अवश्य तलाश करूंगी और यदि वह मुझसे सप्रेम नहीं मिलैगा तो उसको भी इसी दशा में परिवर्तित करने की चेष्टा करूंगी। यह कह कर वह धीरे धीरे उसी ओर चली जिधर वह दासी भागी थी। दुर्बलता के मारे सारा देह कांपता था, पर क्या करें क्षुधा के मारे रहा नहीं जाता था। निदान खिसकते खिसकते उपवन डांक कर वह एक वाटिका में पहुंची, जिसमें अमरूद नारङ्गी फालसा लीची सन्तरा इत्यादि के पेड़ लगे हुए थे और क्यारियों में अनेक प्रकार के अंगरेजी और हिन्दुस्तानी फूल फूले हुए थे। वाटिका के दक्षिण ओर एक छोटा सा

ंगला बना हुआ था, जिसको देख कर बहू जी ने मन में कहा यह तो वैसाही बँगला मालूम होता है जैसा मेरे इलाक़े पर के बगीचे में बना हुआ है। क्या मैं ईश्वर की कृपा से अपनी ही बाटिका में तो नहीं आ गई हूं ? अरे, यह पुष्पमंडप भी तो वैसाही जान पड़ता है जिसमें तीन वर्ष हुए मैं नवलजी को गोद में लेकर खेलाती थी। मैं जब यहां आई थी तो ग्राम की स्त्रियों से सुना था कि निकटही गङ्गा जी का घाट है। मैंने ठाकुर साहब से वहां स्नान करने की आज्ञा मांगी थी, परन्तु उन्होंने नहीं दी। क्या उसी पाप का तो यह फल नहीं है कि मैं इस दशा को प्राप्त हुई हूं। परन्तु उसमें मेरा क्या दोष था; स्त्री के लिये तो पति की आज्ञा पालन करना ही परम धर्म है। यह फल मेरे किसी और जन्म के पापों का मालूम होता है। इसी तरह मन में अनेक कल्पनाएं करती हुई बहू जी एक नारंगी के पेड़ के नीचे बैठ गईं और लटकी हुई डाल से एक नारंगी तोड़ कर अपनी प्रज्वलित क्षुधाग्नि को बुझाना चाहती थीं कि इतने में नवलसिंह घूमता घूमता उसी स्थान पर आ गया। उसको देखते ही बहूजी की भूख प्यास जाती रही। जैसे हरिणी अपने खोए हुए शावक को पाकर उसकी ओर दौड़ती है, वैसे ही बहूजी झपट कर नवलसिंह से लपट गईं और "बेटा नवलजी, बेटा नवलजी " कहकर उसका मुख चूमने लगीं। उस समय नवलसिंह की अपूर्व दशा थी। कभी तो बहूजी की डरावनी सूरत देखकर भय से भागना चाहता था, कभी माता के मुख की आकृति स्मरण करके प्रेमाश्रु बहाने लगता और भोलेपन से पूंछता था कि माता तुम मर के फिर जी उठी हो और चुड़ैल हो गई हो! हम लोग तो तुमको घरही पर छोड़ आए थे, तुम अकेली गिरती पड़ती यहां कैसे आगई हो ? बहू जी ने कहा बेटा, मैं नहीं जानती कि मैं कैसे इस दशा को प्राप्त हुई हूं। यदि मेरा शरीर बदल गया और मैं चुड़ैल हो गई हूं, तो भी मेरा हृदय पहिले ही का सा है और मैं तुम्हारी ही तलाश में खिसकते खिसकते इधर आई हूं।

इधर तो इस प्रकार प्रेमालिङ्गन और प्रश्नोत्तर हो रहा था, उधर ग्राम्य स्त्रियों ने दूर ही से यह घटना देख कर हाहाकार मचाया और कहने लगीं, अरे, नवल जी को चुड़ैल ने पकड़ लिया! चलियो ! दौड़ियो ! बचाइयो ! अरे, यह क्या अनर्थ हुआ ! हमलोग क्या जानती थीं कि वह डाइन बाटिका में आ बैठी है, नहीं तो नवल जी को क्यों उधर जाने देतीं" । इसी तरह सब दूरही से कौआरोर मचा रही थीं, परन्तु डर के मारे कोई निकट नहीं जाती थी। इतने ही में विभवसिंह और उनके साथ जो गांव के आदमी टहलने गए थे, वापस आगए। यह कोलाहल देख कर उनको बड़ा आश्चर्य हुआ। उस दासी के मुंह से सब वृत्तान्त सुन कर ठाकुर साहब ने कहा मुझे प्रेतयोनि में तो विश्वास नहीं है, पर ईश्वर की अद्भुत माया है, शायद सच ही हो। यह कह कर और झट बँगले में से तमञ्चा लेकर वह उसी नारङ्गी के पेड़ की ओर झपटे, जहां नवलसिंह को चुड़ैल पकड़े हुई थी और गांववाले भी लाठी ताने हुए उसी ओर दौड़े। पिता को आते देख लड़के ने चाहा कि अपनी माता के हाथों से अपने को छुड़ाकर और दौड़कर अपने पिता से शुभ सन्देश कहे; लेकिन उसकी माता उसे नहीं छोड़ती थी। ठाकुर साहब ने दूर ही से यह हाथापाई देख कर समझा कि अवश्य चुड़ैल उसे ज़ोर से पकड़े है और ललकार कर कहा "बेटा घबड़ाओ मत, मैं आया"। जब पास पहुंचे, उन्होंने चाहा कि चुड़ैल को गोली मार कर गिरा दें, पर लड़के ने चिल्ला के कहा "इन्हें मारो मत, मारो मत, माता हैं, माता हैं"। ठाकुर साहब को उस घबड़ाहट में लड़के की बात समझ में नहीं आई और चूंकि वह पिस्तौल तान चुके थे, उन्होंने फ़ायर कर ही दिया। आवाज़ होते ही बहू जी अचेत होकर भूमि पर गिर पड़ीं, और लड़का चौंक कर ज़मीन पर बैठ गया। ठाकुर

साहब ने उसे गोद में उठा लिया और कहा "बेटा डरो मत, अब तुम बच गए, बताओ तो यह कौन है, क्या वास्तव में चुड़ैल है ?" बहू जी को अचेत देख सब आदमी चिल्ला के कहने लगे "चुड़ैल मर गई, चुड़ैल मर गई।" यह सुन कर स्त्रियां भी समीप आईं और चारों ओर खड़ी हो देखने लगीं। उनमें से वह दासी बोली यही दुष्टिन चुड़ैल है जो घाट पर बैठी थी और यहां आ कर नवल जी को निगलना चाहती थी। दूसरी स्त्रियां कहने लगीं हमने तो सुना था कि डाइनों और चुड़ैलों के बड़े बड़े दांत और नख होते हैं, इसके तो वैसे नहीं हैं, यह निगोड़ी किस प्रकार की चुड़ैल है ? एक ने कहा कि यह डाइन की बच्ची है, बढ़ने पर इसके भी दांत बड़े होते।

इधर तो यह ठठोलियां हो रहीं थीं, उधर जब नवलसिंह को निश्चय हुआ कि माता गोली की चोट से मर गईं तो वह शोक के मारे अचेत हो गया। अब सब लोग भयातुर हो कर उसकी ओर देखने लगे। कोई कहता था कि यह पिस्तौल की आवाज़ से डर गया है, कोई कहता था कि इसे चुड़ैल लग गई है। निदान जब वह कुछ होश में आया तो रो रो के कहने लगा, "यह तो मेरी माता हैं, मैंने तो मना किया था, आपने इन्हें गोली से क्यों मारा?" ठाकुर साहब ने कहा तुम्हारी माता तो मर गईं और पुरोहित जी की चिट्ठी कल रात ही को आई कि उनको गङ्गा तट पर ले जाकर जला दिया, यह चुड़ैल तुम्हारी माता कैसे हो सकती है?" लड़के ने कहा "आप समीप जाकर पहिचानिये तो कि यह कौन है"। ठाकुर साहब ने निकट जा ध्यान देकर देखा तो मुख की आकृति उनकी स्त्री ही की सी देख पड़ी और मस्तक पर मस्सा भी वैसाही देख पड़ा। जब छाती पर से कपड़ा हटा कर देखा तो हृदय पर दो तिल भी वैसे ही देख पड़े जैसे बहू जी के थे। तब तो ठाकुर साहब बड़े विस्मित हुए और कहने लगे "क्या आश्चर्य है, यह तो मेरी प्रियपत्नी ही मालूम होती है!" फिर उन्होंने लड़के से कहा "बेटा, तुम सोच मत करो, मैंने इन्हें गोली नहीं मारी है; तुम ने जब मना किया तो मैंने आकाश की ओर यह समझ कर गोली चला दी कि यदि कोई बला होगी तो तमंचे की आवाज़ ही से भाग जायगी"। लड़के ने कहा "देखिए इनके गले में गोली का घाव है, आप कहते हैं कि मैंने गोली नहीं मारी"। ठाकुर साहब ने कहा "यह तो गिल्टी का घाव है, मेरी गोली तो आकाश में तारा हो गई"। इसके अनन्तर ठाकुर साहब ने सब लोगों को वहां से हटा दिया और स्वयं कुछ दूर पर खड़े होकर गांव की नाइन से कहा तुम बहू जी के सब अंगों को अच्छी तरह पहचानती हो। पास जाकर देखो तो कि वह वही हैं, कोई दूसरी स्त्री तो नहीं है। नाइन डरते डरते पास गई और आंखें फाड़ फाड़ कर देखने लगी। इतने में बहूजी को कुछ होश आया और ज्योंही वह उठ के बैठने लगीं त्योंही नाइन भाग कर दूर खड़ी हुई। बहू जी ने उसे पहचान कर कहा अरी बदमियां! मेरा बच्चा कहां गया? नवल जी को जल्द बुला, नहीं तो मेरा प्राण जाता है। ठाकुर साहब तो मेरे प्राण ही के भूखे हैं, प्रयाग जी में मुझे बीमार छोड़ कर भाग आए, जब मैं किसी तरह यहां आई तो मुझपर गोली चलाई, न जाने मुझसे क्या अपराध हुआ है। यदि प्लेग से मर कर मैं चुड़ैल होगई हूं तो इस प्रेत शरीर से भी मैं उनकी सेवा करने को तयार हूं। यदि वह मेरी इस वर्तमान दशा से घृणा करते हैं तो मुझसे भी यह तिरस्कार नहीं सहा जाता, मैं अभी जाकर गङ्गा जी में डूब मरूंगी; पर एक बार मेरे बच्चे को तो बुला दे, मैं उसे गले तो लगा लूं। अरे, उसे छोड़ कर मुझसे कैसे जिया जायगा? हे प्रमेश्वर, तू यहीं मेरा प्राण ले ले"। यह कह कर वह उच्चस्वर से रोने लगीं। ठाकुर साहब से ये सच्चे प्रेम से भरे हुए वियोग के वचन नहीं सहे गए, उनका हृदय गद्गद होगया, रोमांच हो आया और आंखों से आंसू गिरने लगे।

झट दौड़ कर उन्होंने बहू जी को उठा लिया और कहा "मेरे अपराध को क्षमा करो, मैंने जान बूझ कर तुम्हारा तिरस्कार नहीं किया, यदि तुम मेरी पत्नी हो तो चाहे तुम मनुष्य-देह में हो वा प्रेत-शरीर में, तुम हर अवस्था में मुझे ग्राह्य हो। यद्यपि मेरे मन का संदेह अभी नहीं गया है और इसकी निवृत्ति का यत्न मैं धीरे धीरे करता रहूंगा, पर तुमको मैं अभी से अपनी प्रिय पत्नी मानकर ग्रहण करता हूं। यदि तुम्हारे संसर्ग से मुझे प्लेग पीड़ा वा प्रेतबाधा भी हो जाय तो कुछ चिन्ता नहीं, मैं अब किसी आपत्ति से नहीं डरूंगा।" यह कह कर वह बहू जी को अपने हाथों का सहारा देकर रंगभवन में ले गए और नवल जी को भी वहीं बुलाकर सब वृत्तान्त पूछने लगे।

इतनेही में सत्यसिंह भी शहर से आ गया। जब उसने गांववालों से यह अद्भुत कथा सुनी तो वह उसका भेद समझ गया और ठाकुर साहब के सामने जाकर कहने लगा "महाराज! अब आप अपने मन से शंका दूर कीजिए, यह सचमुच बहूजी हैं, इसमें कोई संदेह नहीं है। जब टहलनाइन इनको कफ़नाने लगी थी तो उसने कहा था कि इनका देह गर्म है। मैंने इसकी जांच करने के लिये कहा, पर दुष्ट नौकरों ने न करने दिया और उन्होंने लेजाकर कच्चा ही गङ्गा जी में फेंक दिया। अच्छा हुआ, नहीं तो अब तक जल कर बहुजी की राख हो गई होती। मुझे निश्चय है कि बहू जी की जान नहीं निकली थी, और गङ्गा जी की कृपा से वह बहती बहती इसी घाट पर लगीं और जी उठीं। अब अपना भाग्य सराहिए, इनको फिर से अपनाइए और बधाई बजाइए"।

इतना सुनतेही ठाकुर साहब ने फिर क्षमा मांगी और निशंक हो बहूजी को अंक से लगाया और प्रेमाश्रु बहाए। बहूजी भी प्रेम से बिह्वल होकर नवल जी को गोद में लेकर बैठ गईं और उसके कन्धे पर अपना सिर रखकर रोने लगीं।

जब गांववालों ने यह वृत्तान्त सुना तो वे आनन्द से फूल उठे और बहूजी के पुनर्जन्म के उत्सव में मृदङ्ग मंजीरा और फाग के डफ बजा कर नाचने गाने लगे, और स्त्रियां सब पान फूल मिठाई लेकर दौड़ीं और बहूजी को देवी मान कर उनका पूजन करने और क्षमा मांगने लगीं। बहूजी ने कहा इसमें तुमलोगों का कोई दोष नहीं, यह मेराही दुर्भाग्य था जिसने ऐसे दिन दिखाए। अब ईश्वर की कृपा से जैसे मेरे दिन लौटे हैं वैसेही सबके लौटें॥

भगवानदास, बी. ए.

श्री स्वामी विवेकानन्द जी

संसार में सर्वदा ईश्वर के कुछ ऐसे प्यारे पुत्र उत्पन्न हुआ करते हैं जो अपने समय की आवश्यकताओं को निहार कर देशहित ही को अपना कर्तव्य समझते हैं। "समय की आवश्यकताएं" तो अनेक हुआ करती हैं, पर एक सच्चे कार्यदक्ष पुरुष का अपने जीवन के आरम्भ में यह कर्तव्य होता है कि वह अपनी सामर्थ्य और अपनी शक्ति को तौल कर उसको उसी ओर लगाता है कि जिधर वह कृतकार्य हो। किसी महापुरुष की जीवनी पर आलोचना करते हुए इतिहासवेत्ता को इस सिद्धान्त पर अवश्य ध्यान रखना चाहिए। बहुधा लोगों को यह कहते सुनते हैं कि हा! अमुक पुरुष में गुण तो बहुत थे और अमुक अमुक कार्य उसने अच्छे किए, पर उसको चाहिए था कि अमुक सभा वा समाज के उद्देश्यों से भी कुछ अनुराग प्रकट करता। प्रत्येक पुरुष में एक प्रकार की विशेष शक्ति हुआ करती है और इसीके पहिचानने और उसको अपने कर्तव्यों में प्रयोग करने ही को किसी पुरुष के जीवन की सफलता कहते हैं। जो पुरुष अपनी योग्यता को जान कर और उचित अवसर पड़ने पर, उसको देश की सेवा में लगा देता है, वही पुरुष संसार में आदर्श होकर अमर हो जाता

है। परन्तु जो कुछ योग्यता हम अपने में पावें उस को दिखाने में स्वार्थ, अहङ्कार इत्यादि का लेश भी न होना चाहिए और यही सच्चे देशहितैषी की कसौटी है। यदि हम में वक्तृता देने को उत्तम शक्ति है तो हम उसको व्यर्थ विवाद अथवा शास्त्रार्थ में इस हेतु न नष्ट करें कि हमारे विरोधी अथवा श्रोतागण हमारी विद्या बुद्धि से चकित हो जांय, अथवा इस शक्ति से हमारा उदर पूर्ण हो। जिस सभा अथवा समाज का हम बीड़ा उठाएं वह भले लोगों में चाहे बदनाम ही क्यों न हो जाय, पर हम अपनी वक्तृताशक्ति से अपना पेट तो भर लें। इस उद्देश्य से काम करना न केवल नीचता है, परन्तु ईश्वर की दी हुई शक्ति को—कि जिसके प्राप्त करने में हमने बहुत परिश्रम नहीं किया—अधर्म में लगाना है। सारांश यह कि हम सब में एक विशेष शारीरिक अथवा मानसिक बल ईश्वर की ओर से मिला हुआ है, उसको ऐसे समय में काम में लाओ कि जब उससे देश की सेवा निःस्वार्थ और निष्कपट होकर की जा सके और महान पुरुष वही है जो ऐसा करता है।

भारतवर्ष में जब अंग्रेज़ी शिक्षा का प्रारम्भ हुआ और हिन्दू युवकों ने जब अंग्रेज़ी साहित्य और विज्ञान और इसके साथ ही अंग्रेज़ों के चरित्र से विज्ञता प्राप्त की, तो उनकी बुद्धि कुछ चक्कर में आ गई। घर में आकर देखते थे कि सब में देश-हितैषिता का अभाव है, विद्या से अनुराग नहीं, स्त्रियों का उचित सम्मान नहीं, धर्म पर लोग विचार नहीं करते, धर्म्म के आचार्यों के चरित्र उनके यजमानों से भी अधम हैं, मुफ़्त के खानेवालों की संख्या अधिक है और उन्हीं का आदर किया जाता है, एक पुरुष कई विवाह कर लेता है और 'कुलीन' कहलाता है। ऐसे समय में इन हिन्दू युवकों ने, जिनके चित्त से अंग्रेज़ों की ज्योति पुराने अन्धकार को निकाल रही थी, भूल से यह समझा कि यही हिन्दूधर्म है और इसका छोड़ना आत्मोन्नति और देशोन्नति का लक्षण है। ऐसे समय में राजा राममोहन राय पैदा हुए और उन्होंने अपने अलौकिक गुणों को इसी बात के सिद्ध करने में लगाया कि उस समय की वर्तमान सामाजिक अवस्था यथार्थ वैदिक और शास्त्रोक्त हिन्दूधर्म से बिलकुल भिन्न है और इसी उद्देश्य को, जिसको राजा राममोहन राय ने आरम्भ किया, श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अत्यन्त परिश्रम, बुद्धिमत्ता और देशहितैषिता से पूर्ण किया। इसका परिणाम यह हुआ कि हिन्दुओं के चित्त में प्राचीन आर्य ग्रन्थों और आर्य सभ्यता में पूर्ण विश्वास हो गया और वे लोग भली भांति जान गए कि धर्म में हमको विदेशियों का अनुकरण करने की कोई आवश्यकता नहीं है। परन्तु इन महात्माओं का विदेशियों के उन झूठे विचारों को दूर करने में कुछ भी असर न हुआ कि जो वे लोग हिन्दूधर्म और सभ्यता के सम्बन्ध में प्रकट करते थे! हिन्दुओं का इसाई होना तो कम हो गया, परन्तु विलायत में जा कर पादड़ियों का हिन्दुस्तान की कल्पित दुर्दशा के चित्रों को दिखा कर रुपया लाना बन्द न हुआ। कोई विद्वान पादड़ी तालाबों की तस्वीरें बाजारों में दिखलाता कि जिनमें मगर अपना मुंह बाहर निकाल कर उन असभ्य हिन्दुओं की ओर देख रहे हैं कि जो किनारे पर खड़े होकर अपनी लड़कियों को उस तालाब में फेंका ही चाहते हैं। कोई सती की दुर्दशा दिखलाता, कोई ग्रहणस्नान करने की मूर्खता का चित्र सामने रख इन असभ्यों में (कोई कोई महाशय यह भी कह देते थे कि हिन्दू नर-मांसभक्षक हैं) इसाई धर्म का प्रचार करने के हेतु दान देने की अपील करता। इसका राजनैतिक परिणाम यह होने लगा कि जितने अंग्रेज़ भारत में हमारे शासक होकर आते, वे यह समझ लेते कि हमें असभ्यों पर राज्य करना है और इनसे वैसा ही बर्ताव किया जाय कि जैसा अमेरिका के रेड इण्डियन्स से किया गया था। स्वयम् लार्ड जोर्ज हेमिल्टन ने, जो भारत के राजकीय मन्त्री हैं, एक समय में कहा था कि भारतवासी जङ्गली

हैं। हमारे शासकों में ऐसा विचार होना हमारे लिये कैसा हानिकारक है उसके सिद्ध करने की कोई आवश्यकता नहीं। ऐसी अवस्था में इस बात की आवश्यकता थी कि यूरोप और अमेरिका-निवासियों पर अपने यथार्थ बल अर्थात् धर्म्म को प्रकट करें। इसपर पुस्तकें लिखने से कोई लाभ न था। इसके लिये आवश्यक था कि किसी सुअवसर पर हम में से कोई योग्य पुरुष स्वयम् विदेश जाता और हमारे धर्म की यथार्थ मर्यादा हमारे शासकों की जाति पर मनोहर रूप से प्रकट करता। आज हम जिस पुरुष का जीवनचरित्र लिखते हैं, उसने हमारी ऐसी ही अवस्था में हमारा उद्धार किया। हम कृतघ्नी चाहे जो कुछ कहें, पर उनके उपदेशों का जो प्रभाव हुआ है उसको स्वयम् विदेशियों ने स्वीकार किया है और अभी थोड़े ही दिन हुए कि उन्हीं लोर्ड जार्ज हेमिल्टन ने कूपर्स हिल कोलेज में व्याख्यान देते हुए कहा था कि हिन्दुओं की प्राचीन सभ्यता और हमारी नवीन सभ्यता में समता नहीं हो सकती। हम यह नहीं कहते कि उक्त लोर्ड महोदय के विचार को स्वामी जी ने सुधारा, पर हमारा तात्पर्य यह है कि एक ऐसे पदाधिकारी का, जो अपने वाक्यों को बहुत समझ सोच कर निकालते हैं, उनके जीवनकाल ही में मत परिवर्तन स्पष्ट जातीय मत परिवर्तन की सूचना देता है।

संक्षिप्त जीवनी

स्वामी जी का जन्म बङ्गाल में हुआ था। संन्यास ग्रहण करने के पूर्व इनका नाम नरेन्द्र नाथ दत्त था। यह जाति के कायस्थ थे। इनके पिता एक वकील के मोहर्रिर थे। पिता ने अपने पुत्र को संस्कृत और अङ्ग्रेज़ी की शिक्षा दी और नरेन्द्रनाथ ने बी० ए० तक पढ़ा। पिता की इच्छा थी कि पुत्र को वकील बनावें, और बालक नरेन्द्र नाथ को संस्कृत और फिलासोफ़ी (दर्शन शास्त्र) पढ़ने की बड़ी अभिलाषा और धर्मों के तत्व को जानने की जिज्ञासा थी। इस समय बङ्गाल में एक महात्मा संन्यासी रहते थे, जिनका नाम परमहंस रामकृष्ण था। इनके उपदेशों और सद्गुणों में ऐसी विद्युत् शक्ति थी कि उस समय के बड़े बड़े विद्वानों ने, जो नास्तिक हो गए थे, इनके सत्संग से ईश्वर में विश्वास किया। कहा जाता है कि विख्यात ब्राह्म उपदेशक बाबू केशव चन्द्र सेन भी "हरि बोल" कहने वाले दल के साथ परमहंस जी के प्रभाव से नृत्य करने लग गए थे और उन्होंने मूर्तिपूजा पर अपना मत भी कुछ बदल दिया था। जो कुछ हो, युवक नरेन्द्रनाथ की धर्म-पिपासा उन्हें परमहंस के उपदेशों के स्रोत की ओर ले गई और उन्हें योगी परमहंस से पूरा सन्तोष प्राप्त हुआ। परमहंस जी स्वयम् कहा करते थे कि मेरे शिष्यों में नरेन्द्रनाथ सुहृद् और विद्वान होगा और संसार में विख्याति प्राप्त करेगा। नरेन्द्रनाथ उस समय संन्यासी हो गए और स्वामी रामकृष्ण ने इनका नाम विवेकानन्द रक्खा। उसी समय से इन्होंने संस्कृत पढ़ने में और भी परिश्रम करना आरम्भ किया। ये कई वर्ष लों काशी में रहे। हमारे परिचित कई पुरुषों ने विवेकानन्द के विलायत से आने पर हमसे कहा कि वे स्वामी जी को उस समय जानते थे कि जब वे काशी जी में पढ़ते थे और उस समय वे ऐसे दत्तचित्त होकर पढ़ते थे कि बहुत से लोग तो कभी यह भी सन्देह नहीं कर सकते थे कि यह अङ्गरेज़ी जानते हैं। निदान स्वामी जी भ्रमण करते हुए और संस्कृत की व्युत्पत्ति बढ़ाते हुए हिमालय के गुप्त और रमणीक स्थानों में पहुंचे और उन्होंने वहां योगाभ्यास भी किया।

वेदान्त प्रचार का आरम्भ

इसी समय में पत्रों में समचार छपने लगा कि अमेरिकान्तर्गत शिकागो नगर में एक वृहत प्रदर्शनी होगी और उसके साथ ही धर्म की एक महासभा भी होगी, जिसमें पधारने के लिये

संसार के सब धर्मों के आचार्य निमन्त्रित किए जायंगे। प्रत्येक धर्म्म के प्रतिनिधि अपने धर्म्म की व्याख्या करेंगे जो छप जायगी और जिसपर पाठक गण स्वयम् विचार करलेंगे। काशी में विख्यात स्वामी भास्करानन्द जी को भी निमन्त्रण आया था, पर नवयुवक विवेकानन्द को जानता ही कौन था कि निमन्त्रण आता। पर देशहितैषिता की आग को लौकिक संकोच और सामाजिक विड़म्बना भी नहीं बुझा सका। स्वामी विवेकानन्द मन्द्राज पहुंचे और वहां राजा रामनाद से अपनी यह इच्छा प्रकट की कि यदि द्रव्य से सहायता मिले तो मैं भी धर्ममहासभा में जाऊं। उदार राजा ने सब प्रवन्ध कर दिया और हमारे नायक अनजाने और अनजान अमेरिका में जा पहुंचे। इनको पहुंचने में कुछ विलम्ब हो गया था और कहा जाता है कि ब्राह्म और थियासोफ़िस्ट प्रतिनिधियों ने विवेकानन्द जी के महासभा में सम्मिलित होने का बड़ा विरोध किया था परन्तु इस कथन की सत्यता वा असत्यता के हम उत्तरदाता नहीं हैं। बहुत यत्न करने पर स्वामी जी को भी व्याख्यान देने की आज्ञा मिली।

अमेरिका में स्वामी जी

अमेरिका की धर्ममहासभा का व्याख्यान बहुत सारगर्भित और मनोहर है। उसपर बहुत से पादड़ियों और विदेशी विद्वानों ने यह कहा था कि यदि यही हिन्दू धर्म है जिसकी व्याख्या स्वामी जी ने की, तो इस पर इसाई धर्म का कुछ भी असर नहीं हो सकता। परन्तु हिन्दुस्तान के बहुत से पादड़ियों और योरोपियन समाचार पत्रों के सम्पादकों ने यह लिखा था कि हमलोग नित्य हिन्दूधर्म को देखते हैं और हम कह सकते हैं कि सर्वसाधारण का हिन्दूधर्म स्वामीजी के बताए धर्म से उतना ही भिन्न और पृथक है कि जितना कोई और विदेशी मत। इस पर स्वामी जी ने अमेरिका ही में Popular Hinduism अर्थात् "सर्वसाधारण का हिन्दूधर्म" पर व्याख्यान दिया। स्वामी जी के व्याख्यान इतने रोचक होते थे कि हज़ारों अमेरिकन पुरुष और स्त्रियां उनका व्याख्यान सुनने आते, सैकड़ों अखबारों के प्रतिनिधि उनसे मिलने और उनसे धर्मचर्चा करने के हेतु जाते। इस बात को सब लोग स्वीकार करते हैं कि अमेरिका की धर्ममहासभा में इनसे अधिक प्रतिष्ठा और आदर किसी धर्म के प्रतिनिधि का नहीं हुआ।

वहां से चल कर स्वामी जी इङ्गलैण्ड होते हुए, कि जहां उन्होंने बहुत से व्याख्यान दिए, भारतवर्ष को लौट आए। यहां आने पर सीलोन और मन्द्राज में उनका बड़ा आदर सत्कार हुआ और फिर जहां जहां वे गए, लोग उनका स्वागत करते रहे। अमेरिका और विलायत में उन्होंने बहुत सा रुपया भी जमा किया था। उनकी इच्छा थी कि भारतवर्ष के मुख्य मुख्य स्थानों में मठ स्थापित हों कि जहां से साधु शिक्षा पाकर उपदेशक बनें। उन्होंने अपने जमा किए हुए रुपए से दो एक मठ स्थापित भी किए, परन्तु अपने विचार को वह पूरा न कर सके। भारतवर्ष में आने के कुछ काल पीछे वह रुग्न हो गए और उस समय से बराबर रोगग्रस्त रहे। तिस पर भी सदैव देश की सेवा का ध्यान उनके चित्त पर बँधा रहता। जो कोई उनके दर्शनों को जाता उससे यही चर्चा रहती। एक बार वे पुनः विलायत इस हेतु से गए कि फ़्रान्स देश में यदि प्रदर्शनी के साथ धर्ममहासभा होगी, कि जिसके होने की बड़ी सम्भावना थी, तो वहां हिन्दूधर्म का गौरव फ्रान्सीसी भाषा में वहां के लोगों पर प्रकट करें। उन्होंने फ्रेञ्च भाषा में भी अच्छी उन्नति करली थी।

विवेकानन्द और थियोसोफ़िस्ट

हिन्दी पढ़नेवाले "थियोसोफ़ी" से शायद अनभिज्ञ हों, पर वे इस सभा की वर्तमान नायिका एनी बेसेण्ट के नाम से अवश्य परिचित होंगे।

इस सभा के संस्थापक और सभापति कर्नल आलकट हैं। कहते हैं कि स्वामी विवेकानन्द अमेरिका जाने के पहिले मन्द्राज में कर्नल आलकट से, जिनका जन्मस्थान अमेरिका है, मिलने गए और उनसे उनके उत्साही मित्रों के नाम कुछ पत्र मांगे। परन्तु कर्नल महोदय ने इनसे थियोसोफ़िस्ट हो जाने का अनुरोध किया। स्वामी जी ने कहा कि मुझे बहुत सी बातों पर सन्देह है, मैं थियोसोफ़िस्ट न हूंगा; जिसपर कर्नल महोदय ने क्रुद्ध होकर स्वामी जी से चले जाने को कहा। इस बात को स्वामी जी ने स्वयं मन्द्राज को स्पीच में कहा है। स्वामी जी का मतभेद थियोसोफ़िकल सोसाइटी से "महत्माओं के अस्तित्व" पर ही विशेष था। थियोसोफ़िकल सोसाइटी के अधिकांश मेम्बरों का विश्वास है कि हिमालय पर्वत के किसी दुर्गम स्थान पर महात्मागण रहते हैं जो सोसायटी पर अति कृपा रखते हैं। एक का नाम "कुतुहूमी लाल सिंह" है। यह विशेष विशेष लोगों से पत्र व्यवहार भी रखते हैं और कभी कभी सूक्ष्मरूप से अमेरिका और इङ्गलैण्ड जाकर लोगों को दर्शन भी दे आते हैं। स्वयम् कर्नल आलकट से विलायत और अमेरिका में महात्मागण कभी पगड़ी अङ्गरखा पहिन कर और कभी किसी दूसरे वेष में मिल आते हैं। किसी किसी थियोसोफ़िस्ट का तो यहां तक दृढ़ विश्वास है कि वे लोग जब कोई शुभकार्य आरम्भ करेंगे, या किसी अपौरुषेय शक्ति का आवाहन करेंगे तो "महात्माओं" (Masters) का आशीर्वाद पहिले प्राप्त कर लेंगे। जब तक मेडम ब्लैवट्स्की जीवित थीं, तब तक महात्माओं की सहायता से कर्नल साहब और उक्त लेडी साहिबा विचित्र विचित्र बातें किया करते थे—यथा रोगियों को चङ्गा करना, टेबुल से पत्र व्यवहार करना इत्यादि। सोसाइटी के लोगों में किसी किसी का यह भी विश्वास है कि हिन्दुओं के वर्तमान वेद असली वेद नहीं हैं। असली वेद महात्माओं के पास हैं जो उचित समय पर उनको प्रकट करेंगे। स्वामी विवेकानन्द को ऐसे महात्माओं की स्थिति में विश्वास नहीं था। वे मानते थे कि हिमालय पर योगीजन निवास करते हैं। अमेरिका से जो उत्तर उन्होंने मन्द्राज के हिन्दुओं के प्रशंसापत्र पर भेजा था, उसमें उन्होंने स्पष्ट लिखा है कि हिमालय पर योगीजन रहते हैं। वे परोपकारी, पण्डित और बहुत ही उच्चश्रेणी के मनुष्य हैं; परन्तु उन्हें महात्मा कुतुहूमी लाल सिंह का विचित्र वृत्तान्त एक रोचक उपन्यास, जो भोले भाले हिन्दुओं के लिये रचा गया हो, मलूम होता था। जो हो परन्तु हमारा स्वयम् यह विश्वास है कि उक्त सोसायटी ने संस्कृत के उद्धार करने और हिन्दुओं को इसाई होने से रोकने में भारतवर्ष की सच्ची सेवा की है। परन्तु इसके साथही हिन्दुओं के मिथ्या विश्वासों को वैज्ञानिक रूप देकर हिन्दुओं की सच्ची उन्नति को भी बहुत कुछ रोका है! किम्वदन्ती है कि हिन्दू कोलेज की ओर से स्वामी जी को एक पत्र भेजा गया था कि वे हिन्दू कालेज के लिये चन्दा एकट्ठा करने में सहायता दें, परन्तु उन्होंने इसे इस कारण स्वीकार नहीं किया कि हिन्दू कालेज में थियोसोफ़ी की शिक्षा होगी। हमें इस कथा में केवल इसी लिये विश्वास होता है कि हिन्दू कालेज के हेतु काम करनेवाले लोगों में अच्छे वक्तागण केवल योरोपियन ही हैं। लोगों को यह कहते सुना है कि कालेज के चन्दे की अपील केवल मिसेज़ बेसन्ट ही करती हैं। दूसरे हिन्दू मेम्बर (जिनका यह मुख्य कर्तव्य है) चुप चाप बैठे रहते हैं। शायद इस दोष को दूर करने के हेतु स्वामी विवेकानन्द से प्रार्थना की गई हो।

विवेकानन्द का मत

विवेकानन्द का मत वेदान्त था। अपने मत की व्याख्या करते हुए वे नवीन विज्ञान शास्त्रों से बड़ी सहायता लेते थे, और यही उनके यश का

कारण हुआ। आज कल के बहुत से उपदेशक जिन्होंने डारविन, हक्सले, या टिण्डल की एक भी पुस्तक नहीं देखी, व्याख्यान का आरम्भ इन्हीं पर गालियों की बौछार से करते हैं। जिन जिन विषयों पर स्वामी जी के विश्वास था उनके मण्डन करने में वे अपने विश्वास को विज्ञानशास्त्र के अटल सिद्धान्तों के अनुकूल दिखलाने का प्रयत्न करते और उसमें सफलीभूत भी हुए हैं। स्वामी विवेकानन्द समाजसंशोधक भी थे। खाने पीने में वे धर्म नहीं समझते थे। आज कल के दिखौआ आडम्बरों के वह सोने की मैल समझते थे। मूर्ति-पूजा में उन्हें विश्वास था, परन्तु आज कल के पण्डों और धर्माचार्यों का वे सुधार चाहते थे। विदेशयात्रा के वे पक्षपाती थे और इसी कारण वे हिन्दुओं में मांस का प्रचार करते थे (हम इसके स्वामी जी की भूल समझते हैं) और स्वयम् भी मांस खाते थे। परन्तु ऐसा उन्होंने डाक्टरों के अनुरोध से किया; नहीं तो उनका जीना कठिन था। योगियों और आत्मिक उन्नति करनेवालों के वे मांस का निषेध करते थे।

स्वामी विवेकानन्द देवनागरी अक्षरों के बड़े प्रेमी थे। वे अपने बङ्गाली मित्रों से कहा करते थे कि बङ्गला भाषा भी देवनागरी अक्षरों में लिखनी चाहिए। उन्होंने स्वयम् कई पत्र ऐसेही लिखे थे। हिन्दी वह बहुत अच्छी तरह से बोलते थे।

हमारे पाठकों पर शायद विदित है कि जापान में भी इस वर्ष धर्ममहासभा होगी, जिसमें हिन्दू-धर्म के प्रतिनिधियों के हेतु जापानी लोगों ने जहाज और खाने पीने का विशेष प्रबन्ध कर दिया है। इस महासभा में स्वामी जी के भी निमंत्रण आया था, और उन्होंने जाना स्वीकार भी कर लिया था। परन्तु ईश्वर के विवेकानन्द के पाश्चात्य नगरों के ही उपदेशक होने का गौरव देना था, और यह यश उन्हें उचित समय में और उचित रूप से मिला। उनके दो शिष्य इस समय वेदान्त प्रचार में बहुत दत्तचित्त हैं—स्वामी ब्रह्मानन्द और स्वामी सारदानन्द। कई एक मेम और साहब भी इनके अनुगामी हैं। गत वर्ष जब कलकत्ते में प्लेग और अकाल पड़ा था, तो स्वामी विवेकानन्द और उनके उक्त शिष्यों ने चन्दा जमा करके स्थान स्थान पर चिकित्सालय और अनाथालय खोले थे। सहस्रों रोगियों और कङ्गालों की सेवा ये लोग स्वयम् प्रेमपूर्वक किया करते थे। धन्य हैं ऐसे लोग!

स्वामी जी की मृत्यु

ऐसे पुरुष का मनुष्य की पूरी अवधि तक जीते रहना देश और संसार के लिये बड़े उपकार की बात थी। परन्तु स्वामी जी का देहान्त ४ जुलाई १९०२ को ३९ वर्ष की अवस्था में होगया। उनकी मृत्यु योगियों की सी हुई। उन्हें अपनी मृत्यु का आभास पूर्वही से होगया था, उन्होंने बातचीत करते हुए शरीर त्यागा और वह शरीर जिसकी मधुर वाणी सुनने और जिसका सुन्दर रूप देखने के अमेरिका के निवासी सभाओं में एकत्रित होते, आज मैान हो गया। भारतवासियो, अभी तुम्हारे भाग्य मन्द हैं। भारत ने इसी शताब्दी में विवेकानन्द से भी बढ़े हुए लोग उत्पन्न किए, परन्तु वे सब ऐसे ही समय में हमसे छीन लिए गए कि जब द्वार खटखटाने से सोनेवालों की नींद ही खुली थी। मन्द्राज प्रदेश में स्वामी के मरने पर एक सभा शोक प्रकाश करने के हेतु हुई थी, और इसमें लोगों ने एक मठ स्थापित करने के लिये चन्दा भी जमा किया है, जिससे वेदान्त का प्रचार विदेश में होता रहे। सनातन धर्मावलम्बियो, जो आपका कर्तव्य है उसके या तो विदेशी लोग कर रहे हैं या ऐसे लोग जिन्हें आप गाली देते हैं। तनिक विचारिए कि आपने अब तक क्या किया!

रामनारायण मिश्र

राजर्षि भीष्मपितामह जी

[पूर्व प्रकाशित के आगे]

महाभारत का भयङ्कर युद्ध

पाठकगण! अब मैं आपको उस भयङ्कर युद्ध का वृत्तान्त सुनाता हूं जिसके परिणाम ने आर्य्यावर्त का सर्वस्व नाश कर दिया, संसार में जिसने अविद्या का घटाटोप अंधकार कर दिया, जगत में जिसके कारण विद्वानों का प्रभाव हुआ और जिसने संसार का रङ्ग बदल दिया। आप आश्चर्य्य करेंगे कि एक देश के युद्ध ने संसार में परिवर्तन कैसे कर दिया! आश्चर्य्य की बात नहीं। यदि आपको प्राचीन इतिहास के देखने का शौक है और आप संसार भर की प्राचीन जातियों के वृत्तान्त की जिज्ञासा करें तो आपको पता लगजाय कि संसार में इस युद्ध ने क्या परिवर्तन किया। महाभारत के युद्ध तक आर्य्यों का चक्रवर्ती राज्य था और वैदिक धर्म का प्रचार सारे संसार में था, क्योंकि युधिष्ठिर के यज्ञ में सब देशों के राजा एकत्रित हुए थे, और संस्कृत वाणी प्रत्येक देश में प्रचलित थी। यह सब वृत्तान्त महाभारत के पढ़ने से विदित होता है। महाभारत के इतिहास को एक तरफ रखकर आधुनिक सभ्य जातियों के तलाश किए हुए इतिहास को ध्यान पूर्वक पढ़ जाइए, सब अपने बड़ों को आर्यों से उत्पन्न हुआ मानते हैं और आपने आप को पहिले असभ्य मान कर फिर उन्नति करना बतलाते हैं। परन्तु समय असभ्यता का जो वे नियत करते हैं, वह इस युद्ध से सैकड़ों वर्षों पीछे का है और धर्म जितने प्रचलित बतलाते हैं सबका भाण्डार पारसियों के धर्म को बतलाते हैं। परन्तु उन्हीं पारसियों के पैग़म्बर जरदुश्त ने जन्दावस्था में आर्यों की बड़ी प्रशंसा की है और भारत के ब्राह्मणों के वैदिक सिद्धान्तों के आगे सिर झुकाया है। मैक्समूलर ने, जो भाषातत्व की जिज्ञासा करनेवालों के शिरोमणि समझे गए हैं संस्कृत वाणी को सब ज़बानों की जड़ माना है और दुनिया भर की ज़बानों को इससे निकला बतलाया है। परन्तु इसका समय जो उसने नियत किया है, वह भी महाभारत के बाद का है। पक्षपातरहित होकर यदि हम विचार करें तो परिणाम यही निकलता है कि इस युद्ध के बाद प्रत्येक देश में पृथक पृथक राज्य बने और विद्वानों के अभाव से उनमें असभ्यता फैली; क्योंकि आपस में मिलना, देश देशान्तर में जाना आना छुट गया। इसलिये जिसने जैसा चाहा धर्म चलाया। और जितने धर्म हैं सबों की सत्यता वेदों से ली हुई प्रतीत होती है, क्योंकि सबसे प्राचीन पारसियों के गुरु ने आप आर्य्यावर्त के ब्राह्मणों से सिद्धान्त सीखे और जितनी बोलियां आज कल प्रचलित हैं सब संस्कृत से किसी न किसी तरह बिगड़ कर इस अवस्था को प्राप्त हो गई हैं और उनके शब्द साफ संस्कृत शब्दों से मिलते हैं। असभ्यता से उन्नति करती हुई युरोपजाति के भूषण गेलिलिओ ने मालूम किया कि पृथ्वी गोल है और आर्यावर्त के विद्वान इस विद्या को ही भूगोलविद्या कहते हैं। सारांश यह कि जितना परिवर्तन संसार में हुआ, इस युद्ध के बाद ही हुआ है। इस जीवनी में मैं इस विषय पर पूर्णतया लिख नहीं सकता। यदि ईश्वर ने चाहा और अवसर मिला तो इस विषय को बहुत साफ़ करके कभी आप लोगों के सामने धरूंगा।

जब कृष्ण जी निराश हो लौट कर पांडवों के पास चले गए और भीष्म जी का सारा उपदेश, जो उन्होंने दुर्य्योधन को दिया था, निष्फल गया, तो दोनों ओर से युद्ध के सामान होने लगे। बहुत से राजा पांडवों के सहायक हो गए और उन्होंने अपनी सेना सहायतार्थ पांचाल देश में, जहां पांडव ठहर रहे थे भेज दी। पांडवों के पास ७ अक्षौहिणी सेना एकत्रित हो गई और सारी सेना धृष्टद्युम्न के, जो पांचाल देश के राजा द्रुपद का ज्येष्ठ पुत्र था, अधिकार में रक्खी गई

और वही उसके नायक बनाए गए। कौरवों ने बहुत शीघ्रता से अपने दूत भेज बहुत से राजाओं को अपनी ओर कर लिया और उनके पास ११ अक्षौहिणी सेना इकट्ठी हो गई। प्रत्येक देश के राजा इस युद्ध में शामिल हुए थे। बड़े बड़े विद्वान् वेदवेत्ता ब्राह्मण भी, जो युद्धविद्या में निपुण थे, इस युद्ध में कौरवों के सहायतार्थ आ गए। कौरवों की सेना के नायक भीष्म पितामह जी बनाए गए और सारी सेना का अधिकार इनको सौंपा गया। यद्यपि कर्ण ने, जो सदा इनके विरुद्ध रहता था, विरोध किया, परन्तु सर्वसम्मति से पितामह जी नायक बनाए गए और कर्ण रुष्ट हो चला गया।

युधिष्ठिर की आज्ञा से धृष्टद्युम्न अपनी सेना को रणभूमि में ले चले और भीष्म जी ने भी अपने राजा की आज्ञा से सारी सेना को युद्ध के लिये सुसज्जित कर कूच की आज्ञा दी। दोनों दलों की सेनाएं कुरुक्षेत्र के प्रसिद्ध अखाड़े में आ जमीं, और उन्होंने एक दूसरे के सम्मुख डेरे डाल दिए। यह वह भूमि है जिसको अब थानेश्वर कहते हैं। इस भूमि में जब जब आर्य्य जाति युद्ध के लिये इकट्ठी हुई है, इसका सर्वनाश हुआ है। सबसे पहिले महाभारत का युद्ध हुआ, जिससे आर्यावर्त्त का चक्रवर्ती राज्य नष्ट हुआ। इसके पीछे जब यवनों ने इस पवित्र भूमि को पदाक्रांत करना आरम्भ किया, और अरब के रेगिस्तान से तङ्ग आकर वे बनी बनाई स्वर्गसमान आर्यभूमि में अपने राज्य को दृढ़ करने के विचार से शहाबुद्दीन गोरी को नायक बना यहां पर आकर अपना अधिकार जमाने लगे थे, तो आर्य राजा पृथ्वीराज चौहान अपने वीर राजपूतों को संग लेकर उस दुष्ट का मुखमर्दन करने के लिये इसी भूमि में आडटा था। परन्तु वही घर की फूट, जिसने पहिले सर्वनाश किया था, उसीने भारत का रहा सहा गौरव इस वेर भी नष्ट कर दिया और यवनों का राज्य इस देश में दृढ़ हो गया। मुहम्मदी ध्वजा प्रत्येक स्थान पर फहराने लगी। क्यों न हो, इस फूट का स्वाभाविक फल ही यही है। पांच शताब्दी पीछे जब फिर आर्य्यावर्त्त के भाग्य उदय हुए और राजपूत कुलोत्पन्न महाराज शिवाजी आर्य्य जाति के पुनर्जीवित कर, इस पर अपना राज्य स्थापित करके आप चिरस्थायी कीर्ति प्राप्त कर स्वर्गधाम को सिधारे, तो उनके पीछे सारे भारत में वेदों की माननेवाली जाति ही अस्त्र शस्त्र से भूषित स्वतन्त्रता के सुख सहित विचरती थी। परन्तु हाय फूट, तू ने अब भी पीछा न छोड़ा और इस स्वतन्त्रता को स्वप्नवत् कर दिया। अहमदशाह अबदाली के साथ इसी कुरुक्षेत्र की भूमि में युद्ध हुआ था, जिसने आर्य्यों की भविष्यत् आशाओं पर पानी फेर दिया। हाय!

कर्मगति टारी न टरे

यह कह कर इस भूमि के वर्णन को छोड़ अपने विषय पर चलते हैं। जब दोनों ओर से सेनाएं युद्ध के लिये तय्यार थीं, वीरों ने शस्त्र निकाल लिये थे, दोनों दलों में क्षत्री हर्ष से शङ्ख बजाने लगे थे, जिन की ध्वनि से आकाश गूँज उठा था,—उस समय धृष्टद्युम्न ने अचल व्यूह रच अपनी सेना को अपने कर्तव्य के पालन करने का उपदेश दिया। भीष्म जी इस समय श्वेत घोड़े पर सवार श्वेत वस्त्र पहिने और श्वेत खड्ग धारण किए अपने योद्धाओं के उत्साह को बढ़ा रहे थे। पितामह जी की श्वेत दाढ़ी योद्धाओं को अपने धर्मपालन की ओर प्रवृत्त कर रही थी। भीष्म जी ने भी अपनी सेना की वीरता बढ़ाने के लिये उन्हें क्षात्रधर्म का उपदेश दिया। जब दोनों दलों के वीर युद्ध के लिये उद्यत हो उत्सुक चित्त से केवल अपने नायकों की आज्ञा की प्रतीक्षा कर रहे थे, उस समय पाण्डवदल के राजा युधिष्ठिर अपने रथ से उतर शस्त्र रख नंगे पांवों कौरवदल की ओर चल पड़े। सब लोग आश्चर्यान्वित हो उनकी ओर देखने लगे। शत्रु उनके रक्त के पियासे खड्गों को चमकाते हुए

सम्मुख खड़े हैं और यह उनकी ओर नङ्गे पांवों शस्त्र रहित जा रहे हैं। लोगों ने समझा युधिष्ठिर भयभीत हो युद्ध से डर कर भागना चाहते हैं। कोई बोला कायर हैं! क्षमाप्रार्थी होने के लिये कुरुदल में जाते हैं। अर्जुन, भीम, नकुल और सहदेव चारों भाइयों ने कारण पूछा। युधिष्ठिर मौन साधे हुए कुरुदल की ओर बढ़ते गए। उनकी बात का उत्तर तक न दिया। आखिर वे भीष्म जी के पास पहुंचे और उनके पांव पर शिर रख फिर हाथ जोड़ अभिवादन कर बोले—

"हे दुर्द्धर्ष! हमको आप से युद्ध करना है, युद्ध की आज्ञा दीजिए और आशीर्वाद दीजिए कि हमें जयलाभ हो।

भीष्म—मैं तुम्हारे आने से बड़ा प्रसन्न हुआ हूं। बेटा! युद्ध करो, तुम्हें अवश्य जय प्राप्त होगी और जिस बात की तुम्हें इच्छा हो वह कहो। युद्ध में तुम्हारी ही जीत होगी। मैं कौरवों का सेवक इसलिये हूं कि मैंने उनका नमक खाया है, धन से बद्ध हूं। सत्य जानिए, मैं धन से बद्ध हो कौरवों की ओर से लड़ता हूं।

युधि०—आप मेरी जय की प्रार्थना करें, मैं आप को अपने कर्तव्य से नहीं रोकता

भीष्म—हे राजन्! मैं पूछता हूं आप और क्या चाहते हैं? मैं तुम्हें आशीर्वाद देता हूं।

युधि०—प्रणाम कर सविनय पूछता हूं कि आपको मैं कैसे पराजित कर सकूंगा। यही बात मेरे हित की है। कृपा करके बतलाइए।

भीष्म—हे राजन्! देवता दानव भी मुझे परास्त नहीं कर सकते।

युधि०—फिर मुझे जय कैसे प्राप्त हो सकती है ज़रा आप विचारिए।

भीष्म—अच्छा! पुनः आना। अभी निश्चिन्त हो युद्ध करो।

युधिष्ठिर लौट कर अपनी सेना में मिल गए और अपने रथ पर सवार हो उन्होंने युद्ध की आज्ञा धृष्टद्युम्न को दी। यह युद्ध १८ दिन तक होता रहा। भीष्म जी १० दिन तक युद्ध करते रहे। प्रथम दिन इन्होंने पाण्डवों की सेना को अपने तीरों से घबरा दिया। यद्यपि अर्जुन और भीम ने इनके रथ को चीर घोड़ों को घायल कर दिया, परन्तु फिर भी इन्होंने खड़े हो कर इस ज़ोर से बाण मारे कि पांडवदल में घबराहट मच गई। पांडवों के श्वेत और शङ्ख महारथी प्रथम दिन भीष्म जी के हाथ से मारे गए। सन्ध्या को जब सेनाएं विश्राम हेतु अपने अपने डेरों में आईं, तो दिन के युद्ध को देख और अपने महारथियों की मृत्यु सुन युधिष्ठिर निराश हो गए। कृष्ण जी ने उनको सान्त्वना दे समझाया कि तुम्हारी ही जीत होगी, परन्तु युधिष्ठिर भीष्म जी के बल और अस्त्रविद्या को स्मरण कर जय को असम्भव समझते थे। तीसरे दिन जब भीष्म जी रण में युद्ध के लिये आए तो अर्जुन ने अपने गांडीव अस्त्र से पितामह जी को व्यथित कर दिया और अपने बाणों से उनके अस्त्रों को छिन्न भिन्न कर डाला। अहा! धर्म का पालन एक ऐसी वस्तु है जो पुरुष को कभी भी, चाहे वह किसी अवस्था में हो, नहीं गिरने देती। पोता दादे से कर्तव्य के पाश में बँधा हुआ युद्ध कर रहा है और यों कह रहा है कि अबसर मिले तो सिर तन से पृथक करदे। अर्जुन के युद्धविशारद होने पर भी उस दिन जय कौरवों की हुई और पांडवों के बहुत से वीर मारे गए। तीसरे दिन पांडवों ने इस वीरता से युद्ध किया कि कौरव घबरा गए और भीम की गदा के आघात से सहस्रों कौरवों के मुंड रुंड इधर उधर भागने लगे। दुर्योधन यह देख कर घबरा गया और भीष्म जी के पास जा कहने लगा कि शोक है, आपके रहते भी कौरवसेना की यह दशा हो! भीम ने कौरव सेना के कई वीरों को मारडाला है और आप कुछ नहीं करते। मालूम होता है कि आप को उनका पक्ष है। यदि आप पांडवों से लड़ना नहीं चाहते, तो स्पष्ट कह दीजिए, व्यर्थ मुझे हैरान क्यों करते हैं! आपकी ऐसी इच्छा थी तो आप मुझे

पहिले कह देते। मैं विचार कर कार्य्य करता। दुर्य्योधन के वचनों को सुन कर भीष्म जी हँसे ग्रौर उत्तर में बोले कि हे राजन! मैंने तो प्रथम ही कह दिया था कि पांडवों का सामना करना कठिन है। एक वे बली हैं, दूसरे धर्म पर स्थित हैं। परन्तु ग्रच्छा, मैं ग्रपनी शक्ति पर्य्यन्त यत्न करुंगा ग्रौर तुम्हारे लिये युद्ध करुंगा। यह कह भीष्म जी ग्रपना धनुष सँभाल पांडवसेना के महारथिग्रों को ग्रपने सुवर्णमुख वाले वाणों से पीड़ित करने लगे। पांडवदल वालब्रह्मचारी के वाणों से दुखित हो हाहाकार करने लगा। यह दशा देख कृष्ण जी ने ग्रर्जुन से कहा कि तुम ग्रागे बढ़ कर भीष्म जी का सामना करो, नहीं तो ग्राज भी शत्रु विजय पा जांयगे ग्रौर तुमने पण किया है कि मैं भीष्म जी को मारूंगा। ग्रब समय है, उनको मारने का यत्न करो। निदान ग्रर्जुन ने भीष्म जी का वल पूर्वक सामना किया ग्रौर उनके ग्राग्नेयास्त्र को, जो पांडवदल को जला रहा था, वारुणास्त्र से बिलकुल शान्त कर दिया ग्रौर शीघ्रता से प्रत्यंचा चढ़ा एक सुवर्ण की फोंक वाले वाण से भीष्म जी का धनुष तोड़ डाला। ग्रर्जुन की वीरता को देख भीष्म जी गद्गद हो गए ग्रौर प्रसन्नमुख हो बोले कि ग्रर्जुन, धन्य हो! धन्य हो! मैं तुम्हारी वीरता देख कर ग्रति प्रसन्न हुग्रा। ग्राग्रो निर्भय होकर मेरे साथ लड़ो। दोनों नरशार्दूल वाणों का मेह बरसा रहे थे ग्रौर एक दूसरे के वाण को बड़ी शीघ्रता से काटते थे। लड़ते लड़ते ग्रर्जुन तनिक ढीले हो गए, परन्तु भीष्म जी उसी प्रकार युद्ध करते रहे। कुन्तीपुत्र के ढीलेपन को देख कृष्ण ने दूसरे वीरों को ग्रर्जुन के सहायतार्थ पुकारा। सात्यकि ग्रौर धृष्टद्युम्न ग्रर्जुन की सहायता को ग्रा गए। बड़ा भारी युद्ध हुग्रा, रक्त की नदियां बहने लगीं, दोनों ग्रोर के ग्रनेक योधा मारे गए। जब कृष्ण ने देखा कि भीष्म जी तो उसी प्रकार युद्ध कर रहे हैं, परन्तु ग्रर्जुन ग्रभी तक ढीला है, तो उन्होंने दूसरे महारथिग्रों को युद्ध के लिये बुलाया। परन्तु भीष्म जी का सामना करना कठिन हो गया ग्रौर पांडवसेना घबरा कर भागा चाहती थी कि यह दशा देख कृष्ण ग्राप रथ से उतर युद्ध के लिये उद्यत हो गए ग्रौर उन्होंने धनुष को टङ्कार दी। कृष्ण के धनुष की टङ्कार सुन ग्रौर उन्हें ग्रपने सामने युद्धनिमित्त प्रस्तुत देख भीष्म बड़े प्रसन्न हुए ग्रौर बोले "ग्राइए! ग्राइए! ग्रहो भाग्य है जो ग्रापके साथ युद्ध करना पड़ा। ग्राप जैसे क्षत्री के हाथ से मरना मेरे लिये गौरव का हेतु है। सामने ग्राइए, जी खोल कर युद्ध कीजिए, ग्रापके साथ युद्ध करना कीर्तिवर्द्धक है"। कृष्ण जी ने भीष्म के वचन सुन क्रोध से उत्तर दिया कि ग्रापही प्रथम वध के योग्य हो, क्योंकि ग्रापने दुर्य्योधन को धोखा देने से न हटाया। दुर्य्योधन को ग्राज उसके कर्मों का फल मिलेगा। शोक है, ग्रापने उस पापी का साथ दिया। भीष्म जी बोले कि हे कृष्ण! मेरा कोई ग्रपराध नहीं, मैंने उस दुष्ट को बहुत समझाया, परन्तु उसने नहीं माना। मैंने ग्रब तक कौरवों का धन खाया है। यदि उनका साथ छोड़ देता तो कृतघ्नता के दोष से दूषित हो जाता। जब कृष्ण जी युद्ध के लिये चले तो ग्रर्जुन ने तत्क्षण उनको पकड़ लिया ग्रौर बोले मित्र! ग्राप युद्ध न कीजिए, मैं ग्रवश्य पितामह जी को रणभूमि में मारूंगा, ग्रब मैं ढीला नहीं रहूंगा। मैंने विराट नगर में जो वचन कहे थे कि धृतराष्ट्र के पुत्रों ग्रौर भीष्मपितामह ग्रादि सबको मार युधिष्ठिर को राज्य पर बिठाऊंगा, ग्रवश्य उन वचनों को पूरा करूंगा। ग्राप धनुष रख दीजिए।

श्री कृष्ण जी ने ग्रर्जुन पर विश्वास कर धनुष रख दिया ग्रौर वे रथ पर बैठ गए। युद्ध ग्रारम्भ हो गया ग्रौर ग्रर्जुन ने कौरवों की सेना को इस प्रकार उड़ाया कि लाशों के ढेर लग गए। संध्या हो गई। इस दिन भी कौरवों की जय हुई। चौथे दिन के युद्ध में भीम ने कौरवों के बड़े दल को ग्रपनी भयङ्कर गदा से मार डाला ग्रौर ग्राप हर्ष से नाद करने लगा। कौरव उसका भयङ्कर

रूप देख भागने लगे। दुर्योधन ने यह देख भीम को युद्ध के लिये ललकारा। भीम अपने शत्रु को ललकारते देख इस प्रकार उसकी ओर गया जैसे भूखा सिंह अपने आखेट की ओर जाता है। दुर्योधन और भीम का भयङ्कर युद्ध हुआ! क्योंकि दोनों गदाधारी थे, इसलिये बड़ा लोमहर्षण युद्ध होने लगा। दुर्योधन के भाई भी उसकी मदद को आए। भीम तनिक भी विचलित नहीं हुआ, वरन् दुर्योधन के देखते देखते उसने उसके कई भाइयों का शिरच्छेदन कर दिया। दुर्योधन के भाइयों की यह दशा देख महारथी शल्य दुर्योधन की रक्षा के लिये दौड़े और भीम की आंख बचा उसने ऐसा बाण मारा कि भीम मूर्छित हो गया; परन्तु शीघ्र उठ फिर सिंह-नाद करने लगा। भीम के नाद को सात्यकि ने सुना और तत्काल उसने भीम के पास अपना रथ पहुंचाया और कौरवसेना को वह अच्छे प्रकार मथन करने लगा। भीम ने सात्यकि की सहायता पा धृतराष्ट्र के ५ पुत्रों को मार डाला और दुर्योधन और शल्य को अनेक बाण मारे। जब भीष्म जी ने दुर्योधन के दल की यह दशा सुनी तो दूसरे कौरव सेनानायकों को दुर्योधन के सहायतार्थ भेजा और थोड़े समय बाद आप भी आ गए। दुर्योधन ने भीष्म जी से पांडवों के विजय और इस प्रकार लड़ने का कारण पूछा। भीष्म ने कहा जिनका पक्ष दृढ़ हुआ करता है और जो धर्म पर स्थित होते हैं, वे सर्वदा जान तोड़ कर लड़ा करते हैं। युधिष्ठिर के पक्षवाले जानते हैं कि हम धर्म के लिये युद्ध कर रहे हैं और ईश्वर के आज्ञानुसार दुष्ट को दण्ड देने का यत्न कर रहे हैं। इस लिये वे तनमन से युद्ध करते हैं। और फिर कृष्ण आप धर्म का उपदेष्टा उनके मध्य में स्थित हैं, कहो क्यों न वे इस प्रकार युद्ध करें! भीष्म जी इस दिन जिस ओर युद्ध का बल देखते उधरही घोड़ा दौड़ा पहुंचते। यद्यपि इन्होंने अपनी ओर से प्रबन्ध पूरा रक्खा, परन्तु उस दिन कौरवों की बड़ी हानि हुई और बहुत से दुर्योधन के भाई मारे गए। दुर्योधन ने बहुत शोक किया और वह भीष्म जी के पास जा रोने लगा और बोला कि मुझे किस प्रकार जयलाभ होगा! भीष्म जी ने कहा कि राजन्! मैंने तुमको पहिले ही युद्ध का परिणाम बतला दिया था, अब भी मान जाओ, पांडवों से संधि करलो, उनको उनका भाग दे दो, नहीं तो तेरे पिता का वंश और देश का बिलकुल नाश हो जायगा। मैंने कई बेर तुमको समझाया, परन्तु तुमने नहीं माना। तुमने जिस प्रकार पांडुपुत्रों का निरादर किया है, वे भला तेरे भाइयों को जीता छोड़ेंगे? अपने कर्मों का फल भुगत रहे हो। अबभी समय है, मेरा कहा मानों। स्मरण रखो सत्य उनकी ओर है।

सत्यम् बलम् महाबलम्!

सत्य का बड़ा बल है, उनको पराजित करना कठिन है। दुर्योधन चुप होकर वहां से उठ गया। पांचवें, छठे और सातवें दिन बड़े जोर की लड़ाई हुई। भीष्म जी ने अपने खड्ग से कई राजकुमारों के शिर उड़ाए और पांडवदल को इस प्रकार भस्मीभूत किया जिस प्रकार आग्नेय पर्वत अपने यौवन के दिनों में किया करता है। परन्तु उनके प्रवाह को अर्जुन और सात्यकि ने रोका और धृष्टद्युम्न ने अर्जुन के सम्मुख खड़े हो शेष कौरवसेना का संहार करना आरम्भ किया। युद्ध करते करते संध्या हो गई।

आठवें दिन पांडव सेना ने एक विचित्र व्यूह रचा और भीम को मुखिया बनाया। भीम ने सब सेना को दुरुस्त किया और वह आप अपने भयङ्कर गदा को घुमाने लगा। कौरवों के बीच में कौन ऐसा वीर था जो इसके सामने आता! कौरव सेना थर्रा उठी। जब भीष्म जी सामने आए तो भीम ने अपनी गदा से उनके रथवान को मार डाला, घोड़े बिना सारथी के रथ को उड़ा कर ले चले और रणभूमि से बाहर ले गए।

अब कौरव सेना के होश गुम हो गए, और भीम निर्भय हो इस प्रकार विचरने लगे जैसे अंधेरी रात पा निशाचर डोला करते हैं। भीम ने धृतराष्ट्र के ९ पुत्र मारडाले और दुर्य्योधन को मूर्छित कर दिया। दुर्य्योधन जब होश में आया तो भीष्म जो के पास पहुंचा और उनको युद्ध का वृत्तान्त सुना कर बोला कि आप रण से बाहर आगए, भीम कौरवों की सेना का संहार कर रहा है, कुछ बन नहीं पड़ता। भोष्म जी ने कहा हमने पहिले हो तुमको समझा दिया था, भला तुम किसीको सुनते हो? अब क्यों हैरान होते हो? चलो क्षत्रियों की भांति युद्ध करो, मेरे पीछे क्यों भाग आए युद्ध करना क्षत्री का धर्म है। मैं युद्ध से मुख नहीं फेरता। चलो मैं आता हूं। यह सुन दुर्य्योधन आकर युद्ध करने लगा और भीष्म जी ने भी आकर पांडवसेना से युद्ध करना आरम्भ कर दिया। थोड़ी ही देर में सन्ध्या हो गई, इसलिये सेनाएं विश्राम करने चली गईं। अपनी सेना का नाश और भाइयों की मृत्यु देख दुर्य्योधन ने कर्ण से सम्मति मांगी कि क्या करूं। कर्ण भीष्म जी का शत्रु था, इसलिये उसने यही सलाह दी कि तुम भीष्मपितामह जी के पास जाओ और उनसे कहो कि वे युद्ध से मुंह मोड़ मुझ को युद्ध की आज्ञा दें, क्योंकि भीष्म पांडवों को जय चाहते हैं इसलिये अच्छी प्रकार लड़ते नहीं, उनको नायक की पदवी से हटा मुझे वह पद दो, देखो फिर कैसा युद्ध होता है। एक ही दिन में पांडवसेना को भगा तुम्हें राज्यसिंहासन पर बिठा दूंगा। भीष्म कुछ तो पांडवों पर दया करते हैं और कुछ उनमें इतनी शक्ति भी नहीं कि पांडवों को पराजित कर सकें; इसलिये भीष्म से तुम विनय करो कि वे शस्त्र रख दें। जब भीष्म अलग हो जायंगे तो मैं पांडवों को पराजित कर दूंगा। दुर्य्योधन कर्ण की सम्मति के अनुसार भीष्म जी के तम्बू में गया। भीष्म जी ने उसको सुवर्ण की कुर्सी पर बिठाया और आने का कारण पूछा। दुर्य्योधन ने हाथ जोड़ आंखों में आंसू भर निवेदन किया कि हे पितामह! मैंने केवल आप पर विश्वास करके इस युद्ध को आरम्भ किया था; आपने कहा था कि शक्ति अनुसार युद्ध कर पांडवों को परास्त करने का यत्न करूंगा। पांडव मेरी सेना को नष्टभ्रष्ट कर रहे हैं; यदि आप पांडवों पर कृपादृष्टि रखते हैं तो कृपा कर कर्ण को युद्ध को आज्ञा दीजिए और आप आराम से रहिए। यह कह दुर्य्योधन चुप हो गया। भीष्म जी ने सांस भरा और किसी प्रकार का क्रोध या शोक प्रकट किए बिना, वे थोड़ी देर ठहर, दुर्य्योधन से बोले "हे दुर्य्योधन! तुम मुझे अपने इन शब्दों से घायल क्यों करते हो। जो कुछ मेरी शक्ति में है मैं करता हूं। अपनी शक्ति अनुसार तेरे शत्रुओं से लड़ता हूं तुम्हारे हित के लिये मैं अपने जीवन को बेच देना चाहता हूं। परन्तु तुम अपने भाई पांडवों के बल से भली प्रकार अभिज्ञ हो, तुम आप उनके हाथ देख चुके हो। वे मुझ पर कैसे कैसे वाण मारते हैं, यह भी देख चुके हो। मैं अपनी ओर से कसर नहीं करता हूं। परन्तु पांडवदल का सामना करना टेढ़ो खीर है। तुम ज्ञानशून्य हो, यह भी नहीं समझते कि मैं क्या करता हू। जैसा किसी ने बहकाया वैसा बकने लग गए। अब इतना महानयुद्ध आरम्भ करके कायर क्यों बनते हो। वीरों की तरह रण में लड़ो, जहां तक मुझ में बल है मैं लडूंगा और अपने कर्तव्य को पालन करूंगा, मैंने तेरा नमक खाया है, उसका प्रत्युपकार अवश्य दूंगा। तुम अब जा कर सो रहो प्रातःकाल तुम देखोगे कि मैं किस प्रकार लड़ता हूं। ऐसा युद्ध करूंगा कि सदा लोग उसे स्मरण रक्खेंगे और साक्षी देंगे कि किस प्रकार भीष्म ने धर्म पालन किया है"।

[क्रमशः]

एक विद्यार्थी

सेवावृत्ति की विगर्हणा

[१]

चाहै कुटी अति घने बन में बनावै;
चाहै बिना नमक कुत्सित अन्न खावै।

चाहे कभी नर नए पट भी न पावै ;
सेवा प्रभो ! पर न तू पर की करावै ॥
सेवा-समान अति-दुस्तर-दुःखदायी,
दुर्वृत्ति और अवलोकन में न आई ।
जीना कभी न उसका जग में भला है,
जो पेट-हेत पर-सेवन को चला है ॥
स्वातंत्र्य-तुल्य अतिही अनमूल्य रत्न,
देखा न और बहु वार किया प्रयत्न ।
स्वातंत्र्य में नरक-बीच विशेषता है;
न स्वर्ग भी सुखद जो परतन्त्रता है ॥
जो आत्मभाव अपना गिरि से गिरावै;
मानापमान कुछ भी मन में न लावै ।
जो शीश नीच-नर-सम्मुख भी झुकावै;
सेवा वही कर, किसी विध, पार पावै ॥
निद्रा, क्षुधादिक न जो जन जानते हैं;
न प्रात, रात, दिन जो पहचानते हैं
जो मैान, दुर्वचन भी सुन, ठानते हैं;
स्वातन्त्र्य खो कर वही सुख मानते हैं ॥
कोई कठोर यदि बात उसे कहै है,
कुत्ता कभी न फिर पास खड़ा रहै है ।
दुर्वाक्य बाण सह जो न करैं विचार,
धिक्कार क्यों न उनको दश लाख वार ॥
जो श्वान के सदृश सेवक मानते हैं,
वे तुल्यता न करना नर जानते हैं ।
कुत्ता कहां सकल काल यथेच्छचारी,
विक्रीत-जीवन कहां जन दास्यकारी !
पूजा यथा-समय न प्रभु-नाम-जाप;
होता शरीर-सुख से न कभी मिलाप ।
न स्वार्थही न परमार्थ-विचार-बात;
सेवा किए सब सुखैां पर वज्रपात ॥
सैाम्य-स्वरूप शिव ने सिर पै बिठाया
सर्व प्रकार अति आदर भी दिखाया ।
तो भी महा-कृश कलाधर की कला है;
हा हा ! पराश्रय नहीं किसको खला है ?
आलस्य-लीन, शुचि-सज्जनता-विहीन;
अन्तर्मलीन, पर-पीड़न में प्रवीण ।
रे दैव ! दण्ड मन जो कुछ और आवै,
ऐसे प्रभु-प्रवर से पर तू बचावै ॥

महावीरप्रसाद द्विवेदी

वस्तु-परिज्ञान ।

धूल और बालू

गङ्गा के किनारे पर एक छोटा सा नगर है। इसमें वृजकिशोर नाम का एक लड़का रहता है। यह लाहौर में डाकृरी पढ़ता है, इसलिये ज्यादः वहीं रहता है। आज कल छुट्टी होने से घर आया है। घर में इसके दो और छोटे छोटे भाई और एक बहुत छोटी बहिन है। ये तीनों आपस में दिन रात खेला करते हैं। आज ये सब धूल और बालू और बहुत से मिट्टी के छोटे बड़े टुकड़े इकट्ठे करके खेल रहे हैं। वृजकिशोर ने यह देख बिचारा कि इनको कुछ सिखलाना चाहिए, सिर्फ़ खेलने से इनका कुछ उपकार नहीं होगा। इसलिये वह उनके बीच जाकर बैठ गया और बोला "यह तुम सब क्या कर रहे हो ?"

लड़के डरे और चुप हो रहे। क्योंकि वे सब धूल में खेल रहे थे। वृजकिशोर उन्हें डरते देख कर हँसे और मीठे बैन से फिर पूछा, "बोलो, तुम लोग यहां क्या करते हो" ?

उन सभों ने कहा खेल खेल रहे हैं ।

बृज०—"तो यह क्या है ?"

उनमें से सबसे बड़े लड़के ने जिसका नाम केशव था कहा, "यह धूल है" ।

तब वे अपनी बहिन की तरफ देख कर बोले, "रानी यह क्या है" उसने कहा "बालू" ।

बृज०—"वाह, अभी तो केशव ने कहा कि यह धूल है" ।

लड़की—"हां, उनका धूल है, पर हमारा तो बालू है"

वृज०—"यह क्यों ! दोनों एक से तो हैं, दोनों ढेर मिट्टी के तो हैं !"

लड़की—"नहीं, देखिए मेरा सफेद है ग्रैार उनका मैला है ग्रैार यह हमलोग गङ्गा जी से लाए हैं"।

वृज०—"हां, इसलिये तुम इसको बालू कहती हो। तो ग्रैार कोई तुमसे बालू ग्रैार धूल में फरक पूछे तो तुम उसको बतला दोगी ?

लड़की—हां, मैं उससे कहूंगी कि बालू सफेद होती है ग्रैार नदी के किनारे पर मिलती है, पर धूल मैली होती है ग्रैार खेतों में, सड़कों पर ग्रैार नदी से दूर मिलती है।

वृज०—"भला ग्रैार कोई फरक इनमें है ? देखें, कौन बतलाता है" ?

वे सब एक दृष्टि से उन दोनों मिट्टी ग्रैार बालू के ढेरों की ग्रोर देखने लगे।

इतने में वृजकिशोर ने थोड़ीसी बालू ले कर अपने हाथ पर रख कर फैला दी ग्रैार कहा "देखो यह सब क्या है। छोटे छोटे बालू के हिस्से। तुम लोग जानते हो इनको हम लोग क्या कहते हैं ?"

उन लोगों ने कहा "नहीं"।

वृज०-ये 'कण' कहे जाते हैं।

फिर उन्होंने केशव के हाथ पर उसी तरह से थोड़ी सी धूल फैलाई ग्रैार कहा "देखो इसके कण कैसे हैं"। उन सभों ने उसे ग्रच्छी तरह से देखा ग्रैार कहा कि बालू के कण बहुत बड़े बड़े हैं। ये तो दिखाई पड़ते हैं। धूल के कण भी हैं पर ये बहुत छोटे हैं, ग्रच्छी तरह से दिखाई नहीं पड़ते"।

इतने में वे मिट्टी के टुकड़ों को देख कर बोले—"देखो तुम लागों ने इन सभों को भी बालू की तरह धूल से ग्रलग रक्खा है। इससे जान पड़ता है कि तुम इनमें ग्रैार धूल में भी बहुत फरक मानते हो।

गिरधर उनका छोटा भाई जो केशव से छोटा था, बोला। "क्या ग्राप इनमें कुछ फरक नहीं मानते ?"

वृज०-हां, देखने में तो फरक ज़रूर है, पर ग्रसल में ये एक ही हैं"।

लड़के ग्रापस में एक दूसरे की तरफ देखने लगे, जिससे वृजकिशोर को मालूम हुग्रा कि वे उनकी बातों को नहीं समझे, उन्होंने तुरन्त एक छोटा सा मिट्टी का टुकड़ा उठा लिया ग्रैार दोनों हाथों के बीच दबाकर ग्रच्छी तरह उसे तोड़ ग्रैार पीस डाला। फिर लड़कों के सामने दिखला कर पूछा "यह क्या है"?

उन सभों ने कहा "यह तो धूल है"।

वृज०-"यह धूल कहां से ग्राई" ?

वे बोले "उसी मिट्टी के टुकड़े में से जो ग्राप कें हाथ में था"। तब वृजकिशोर ने कहा कि 'देखो, इस मिट्टी के टुकड़े ग्रैार धूल में कुछ बहुत फरक नहीं है। दोनों एक ही तरह के कणों के ढेर हैं। फरक सिर्फ़ यही है कि ढेलों में ये कण ग्रापस में एक दूसरे से मिले हैं, जल्दी छूट नहीं सकते। इनके छोड़ाने के लिये बड़ा जोर करना पड़ता है। तुमने देखा था, ग्रभी हमने कितना जोर किया था, पर धूल में यही कण ग्रापस में एक दूसरे से जुटे नहीं रहते। वे बहुत जल्दी हट जाते हैं ग्रैार जमीन में धूल जो तुम देखते हो, इन्हीं टुकड़ों के टूट जाने से या कणों के ग्रलग हो जाने से बनती है"।

केशव ने कहा "लेकिन यह बालू कैसे बनती है ? इसके तो बहुत बड़े बड़े टुकड़े या ढोके हम लोग नहीं देखते कि जिनके टूट जाने या पिस जाने से यह बनती है। बतलाइए तो यह बालू के कण कहां से ग्राए ?"

वृजकिशोर उन लोगों को बालू क्या है, यह कैसे बना, यह ग्रन्त में क्या बन जायगा यह सब खेल ही में बताया चाहते थे, कि इतने में घर से एक नैाकर ग्राया ग्रैार बोला कि "घर में ग्राप की बोलाहट है। जल्दी चलिए"।

वृज०-क्यों ?

नैाकर-दो लड़के ग्राप के लिये देर से बैठे हैं। वृजकिशोर ने ग्रपने भाइयों से कहा "मैं तुम लोगों पर बहुत प्रसन्न हूं। ग्राज सांझ हो गई, घर चलो कल सवेरे बालू कैसे बनता है, यह तुम्हें बतावेंगे। ठीक सात बजे हम से मिलना"। र. द. प. [क्रमशः

भाग ३] अक्तूबर १९०२ ई० [संख्या १०

विविध वार्त्ता

आज कल का विज्ञान धीरे धीरे इस बात को सिद्ध करता जाता है कि बनस्पति में भी जान है, उनका जीवन भी ठीक अन्य जीवधारियों के समान है। अब एक नई बात सिद्ध हुई है। वह यह है कि बनस्पति भी मनोहर गान को पसन्द करते हैं। ऐसे स्थानों में जहां गान हुआ करता है और सूरज की धूप आती है, पौधे बहुत शीघ्र फल पुष्पान्वित हो जाते हैं। बोस्टन के एक डाकूर साहब लिखते हैं कि मैंने स्वयं इस बात की परीक्षा की है। वे कहते हैं कि मैंने एक लज्जावती का पेड़ अपने कमरे के पास लगा रक्खा था। जब कभी मैं बाजा बजाता वा कोई गीत गाता तो उस पेड़ की पत्तियां आप से आप खिल जातीं और उसकी टहनियां मेरी ओर झुक आतीं। यह देख कर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ और मैंने इस बात की परीक्षा करनी चाही। एक दिन मैं योंही गा और बजा रहा था और उस पेड़ के अद्भुत आल्हाद को देख रहा था, कि इतने में मैंने राग और ताल में जान बूझ कर गड़बड़ डाल दिया, जिसमें उस पेड़ की टहनियां एक दम सकुच गईं और पत्तियों ने मुंह बंद कर लिया। फिर मैंने उसी क्षण सुरीला गाना और बजाना प्रारम्भ किया और उस पेड़ की टहनियां आप से आप फैल गईं और पत्तियां खिल उठीं। साहब बहादुर इससे सिद्ध करते हैं कि जिस प्रकार मनोहर वाद्य और गान से मनुष्य का चित्त प्रफुल्लित हो एक अनिर्वचनीय आनन्द में निमग्न हो जाता है, उसी प्रकार पेड़ों की भी अवस्था है। ईश्वर की सृष्टि में बहुत सी ऐसी अद्भुत बातें हैं जिन्हें हम नहीं जानते। ईश्वर! तेरी माया का पार नहीं!

* *

अब तक यह सुनने में आता था कि मोती प्रायः समुद्रतल के अतिरिक्त और कहीं नहीं मिलते।

पर गत सितम्बर मास में एक झील में मोती और उसके सीप बहुत से पाए गए हैं, जिससे यह विचार होने लगा है कि झीलों में ये कैसे उत्पन्न हो सकते हैं।

पंजाब में फ़िरोज़पुर ज़िला है जिसकी एक छोटी सी तहसील का नाम फ़ाज़लका है। इस तहसील में एक झील है जिसे लोग "बन्ध" झील कहते हैं और जो तीन मील लम्बी और २, ३ सौ गज़ चौड़ी है। जब सतलज नदी बढ़ती है तो उसका पानी उसमें आता है, अथवा बरसाती पानी से यह झील भरी रहती है। गर्मी के दिनों में कभी कभी ऐसा भी होता है कि बहुत स्थानों में पानी सूख कर ज़मीन निकल आती है। परन्तु जाड़े के दिनों में यहां की शोभा अद्भुत हो जाती है। पानी के भरे रहने से सैकड़ों भांति के पक्षी इसके किनारों पर अपना डेरा आ जमाते हैं और अपने कलोल से दर्शकों के आनन्द को बढ़ाते हैं। म्युनिसिपैलिटी की ओर से इस झील में डोंगियां भी रहती हैं, जिनपर चढ़ कर दो चार आने देने से लोग इधर उधर घूम कर अपने सन्तप्त हृदय को प्रकृति के सुहावने दृश्यों और शीतल वायु से ठंढा करते हैं। सितम्बर मास में इसी झील के किनारे पर कई एक लड़कों ने एक सीप पाई, जिसे उन्होंने तोड़ा तो उसमें से एक चमकता हुआ मोती निकला, जिसे उन्होंने समझा कि किसी जानवर का सिर है। इसी भांति पर लड़कों ने बहुत से सीप तोड़ डाले और उनमें से मोती निकाल कर दो दो चार आने पर बेंच डाला। अब सर्कार को इसका पता लग गया है, वहां पर पहरा बैठ गया है और मोतियों की जांच हो रही है। जहां तक हमें ज्ञात है, पृथ्वीतल पर भारतवर्ष पहिला देश, पजांब पहिला सूबा, फ़ीरोज़पुर पहिला ज़िला, फ़ाजलका पहिली तहसील, और बन्ध पहिली झील है जिसमें मोतियों के सीप निकले हैं। जो कुछ हो, ईश्वर की सृष्टि में कोई बात असम्भव नहीं है। देखा चाहिए सरकारी जांच का क्या परिणाम होता है और कितने मूल्य के मोती यहां से निकलते हैं। रत्नगर्भा भारत वसुन्धरा में सब कुछ है, केवल कराल काल ने इसे व्यथित कर रक्खा है और दुर्दैव ने भारत में कुपूतों को उत्पन्न कर इस भारतमाता के यश और प्रतिष्ठा को मिट्टी में मिला रक्खा है।

* * *

हमें निम्नलिखित पुस्तकें प्राप्त हुई हैं जिनके विषय में हम अपनी सम्मति कई कारणों से अब तक नहीं लिख सके। इस संख्या में हम संक्षेप-रुप से अपनी सम्मति प्रकाशित करते हैं। जिन पुस्तकों की समालोचना इस वेर नहीं हो सकी, उसको दूसरी संख्या में छापने का उद्योग किया जायगा।

सावित्रीचरित्र—ग्रन्थकर्ता सत्यानन्द अग्निहोत्री। हिन्दू सन्तान में से कदाचित् ही कोई होगा जो सावित्री और सत्यवान के नाम से परिचित न हो। स्त्री अपने सतीत्वबल से क्या नहीं कर सकती, यह इस कथा से भली भांति विदित हो जाता है। हिन्दू स्त्री मात्र के लिये सावित्री का चरित्र, उसका स्वभाव, उसकी धर्म्मनिष्ठा, उसका पतिप्रेम, उसकी पतिसेवा आदि सब उत्तम उत्तम गुण, आदर्श होने चाहिए। यह पुस्तक प्रत्येक घर में रहनी चाहिए जिसमें स्त्रियां पढ़ कर लाभ उठा सकें। ग्रन्थकर्ता महाशय से हमारी प्रार्थना है कि जब वे इस पुस्तक का दूसरा संस्करण करें तो इसकी भाषा को और भी सरल कर दें, जिसमें स्त्रियां उसे सुगमता से पढ़ और समझ सकें।

नीतिसार—ग्रन्थकर्ता सत्यानन्द अग्निहोत्री। यह छोटी सी पुस्तक सात अध्यायों में विभक्त है। पहिले अध्याय में दृष्टान्तशतक से, दूसरे में नीतिशतक से, तीसरे में सुवचनशतक से, चौथे में चाणक्य-नीति से, पांचवें में शुक्रनीति से, छठवें में उप-देशशतक से और सातवें में रत्नशतक से श्लोकों का संग्रह करके नीचे भाषा में उनका अर्थ दिया है। सब मिलाकर १२९ श्लोक हैं। संग्रह अच्छा है।

विक्टोरिया भूषण—ग्रन्थकर्ता राजा फतहसिंह वर्म्मा। भूमिका के पढ़ने से ज्ञात होता है कि ग्रन्थकर्ता महाशय ने हिन्दी भाषा में महारानी विक्टोरिया का जीवनचरित्र न देखकर इस ग्रन्थ की रचना की है। परन्तु राजा साहब को जानना चाहिए कि हिन्दी में अब तक महारानी विक्टोरिया के कई जीवनचरित्र छप चुके हैं, जिनमें सबसे अच्छा और बड़ा पण्डित लज्जाराम मेहता का लिखा हुआ, श्रीवेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, में छपा है। यह भूषण ५६ पृष्ठों का ग्रन्थ है जिनमें से २५ पृष्ठों में तो केवल इङ्गलैंड के भिन्न भिन्न बातों और वस्तुओं का वर्णन है। शेष ३१ पृष्ठों में से २७ पृष्ठों में महारानी का और ४ पृष्ठों में महाराज एडवर्ड का चरित्र वर्णित है। समस्त ग्रन्थ पढ़ जाने पर भी हमें इसमें केवल छपाई को छोड़कर और कोई बात प्रशंसायोग्य न मिली। हां-कुछ नई बातों का हमें पता लगा, जिनके विषय में हमें पहिले ज्ञान न था। हम जानते थे कि इङ्गलैंड के लिये अन्न भारतवर्ष से जाता है और बिना जोते बोए पृथ्वी से अन्न उत्पन्न नहीं होता, पर इस ग्रन्थ के पढ़ने से हमें ज्ञात हुआ कि इङ्गलैंड ऐसा देश है—"सब खाद्य पदार्थ जहां पर होते, तरु बीज जमैं पृथ्वी बिन जोते"। राजा साहब को उचित था कि जब इङ्गलैंड का वृत्तान्त स्वयं कुछ नहीं जानते थे, तो और लोगों से पूछ वा ग्रन्थों में स्वयं पढ़लेते। किसी ऐसे नगर या देश के वर्णन में जो पृथ्वीतल पर वर्तमान हो, मनमानी रचना कर बैठना सर्वथा अनुचित है। यह तो सुनने में आया था कि, सर्कसवाले योरप में हाथी ले गए हैं। पर हमें यह नहीं ज्ञात था कि वहां "ठाढ़े झूमति (?) हैं मतङ्ग प्रमदा, कारे सुप्रवाज नौ"। आदि से अन्त तक पढ़ जाने पर भी हमको इस ग्रन्थ का कोई प्रयोजन न ज्ञात हुआ। इस ग्रन्थ से भाषाभण्डार के किसी अभाव की पूर्ति भी नहीं हुई। फिर राजा साहब ने क्यों कष्ट उठाकर इतनी लम्बी चौड़ी रचना को और छपाई में अपना रुपया नष्ट किया।

खत्री एजूकेशन कमेटी बनारस की पहिली वार्षिक रिपोर्ट—सन् १९०१ के जून और जुलाई मास में बरेली में खत्रियों की एक विशेष महती सभा जातिसम्बन्धी बातों पर विचार करने के लिये हुई थी। अनेक महाशयों के उद्योग से इस सभा ने यह निश्चय किया था कि एक कमेटी बनाई जाय जो खत्री बालक और बालिकाओं की शिक्षा का प्रबन्ध करे और उन्हें शिक्षा पाने में सहायता देवे। ३० महाशय इस सभा के सभासद चुने गए थे। पहिले वर्ष में कमेटी ने अपने नियम बना कर सभा की रजिस्टरी करा ली और नियमानुसार बालकों की सहायता प्रारम्भ कर दी। सब मिलाकर कमेटी ने १२६ विद्यार्थियों की सहायता में ५२४॥=) व्यय किए, तथा अन्य प्रकार से अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिये उद्योग किया। सभा का आय इस वर्ष में १०५१॥-)॥ हुआ जिसमें से ७०३॥-) कमेटी ने व्यय किया। वर्ष के अंत में ३४८॥-)॥ सभा का बचत रहा। महाराजाधिराज वर्द्वान १००) मासिक से इसकी सहायता करते हैं। रिपोर्ट में लिखा है कि, इस कमेटी का काम विशेष कर महाराजाधिराज वर्द्वान की सहायता से चलता है। पहिले वर्ष में कमेटी को ८००) रु० वर्द्वान से मिला और १२५) रु० अन्य सभासदों से। सभासदों ने ११५) रु० सभा के आर्थिक कार्यों के लिये दिया और एक अन्य महाशय ने अपने पुत्र के यज्ञोपवीतोत्सव पर १०॥-) कमेटी को दिया और ॥=)॥ सेविंग बैंक से सूद का मिला। सभा के वार्षिक अधिवेशन की रिपोर्ट से ज्ञात हुआ कि २६ अगस्त तक २९०) रु० इसे के सभासदों से और प्राप्त हुआ। इसमें से २५०) का दान प्रयाग के राय रामचरणदास बहादुर ने किया। हमें इस कमेटी के उद्योग और कार्य से विशेष सन्तोष प्राप्त हुआ और हमें आशा है कि भविष्यत् में यह कमेटी अपना काम निरन्तर

सफलता के साथ करती जायगी, खत्री लोग इसकी सहायता में किसी प्रकार की त्रुटि न करेंगे। आगामी वर्ष में कमेटी ने १४००) बालकों की सहायता में व्यय करना निश्चय किया है। हमारा विश्वास है कि कमेटी के कार्यकर्तागण इसमें से कुछ रुपया बालिकाओं की शिक्षा में भी व्यय करेंगे। काशी के कुछ लोगों की प्रार्थना पर और शिक्षाविभाग के डाइरेक्टर के अनुरोध से, बनारस की म्युनिसिपैलिटी ने २५) रु० मासिक उच्चश्रेणी की बालिकाओं की शिक्षा के लिये व्यय करना निश्चय किया है और स्कूल का समस्त प्रवन्ध नगरस्थ लोगों की एक कमेटी को सौंपा है। अभी हमको यह ज्ञात नहीं हुआ है कि इस कमेटी ने किस प्रकार स्कूल का चलाना निश्चय किया है। जो कुछ हो, पर हमें विश्वास है कि वे लोग बालिकाओं को ऐसी शिक्षा देंगे जिसमें वे अपने धर्म का पालन कर गृहस्थी के कार्यों में निपुण हों। खत्रीसभा को उचित है कि इस कमेटी की आर्थिक सहायता करके देखें कि बालिकाओं की शिक्षा का प्रवन्ध किस प्रकार उचित होगा। आशा है कि हमारी प्रार्थना पर उस सभा के लोग ध्यान दें।*

समालोचक मासिकपत्र—सम्पादक बाबू गोपालराम और प्रकाशक मिस्टर जैन वैद्य। समालोचनाओं की चर्चा अनेक महीनों से हिन्दीपत्रों और लेखकों में चल रही थी, परन्तु अभीतक इन सब विचारों का परिणाम कुछ नहीं हुआ था। अब (जयपुरनिवासी) मिस्टर जैनवैद्य ने अपने व्यय से यह पत्र निकालना आरम्भ किया है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि हिन्दी में इस समय उचित समालोचनाओं की आवश्यकता है, परन्तु हमें आशंका है कि यह पत्र उस अभाव को पूरा न कर सकेगा। इस प्रथम ही अंक को देख कर हम इस रुप और प्रवन्ध में इस पत्र के अधिक चलने के आकांक्षी नहीं हैं। इस अंक में एक "समालोचना" शीर्षक लेख निकला है जो निस्सन्देह किसी अन्य भाषा के लेख का अनुवाद है, क्योंकि पहिले उसकी लिखावट कहेदेती है कि हो न हो यह बंगला के किसी लेख का अनुवाद है, और दूसरे इसमें जिन जिन कवियों के नामों का उल्लेख किया गया है, उनके काव्यों को समझना तो दूर रहा, उनके ग्रन्थों के भी दर्शन बाबू गोपालराम जी ने न किए होंगे। जहां तक हमें ज्ञात है बाबू गोपालराम जी दो चार शब्द लिख लेने या अपने हस्ताक्षर कर लेने के अतिरिक्त उतनी ही अंगरेज़ी जानते हैं जितनी अफ्रिका के आदिम निवासी जानते होंगे। फिर उन्होंने ऐसे लेख को लिखने और अपनी धृष्टता दिखाने का साहस क्यों किया। इसके आगे चलकर सम्पादक महाशय ने नागरीप्रचारिणी सभा पर अपने हाथ साफ किए हैं। भाषासारसंग्रह के प्रथम भाग के प्रवन्धों की आपने समालोचना की है। प्रवन्ध और विषय अच्छा होने पर भी वह निन्दनीय है, क्योंकि दूसरी पुस्तकों में उस विषय पर लेख लिखे जा चुके हैं। धन्य बुद्धि और धन्य समालोचकशक्ति! सम्पादक महाशय! जिस शेक्सपीयर के एक अक्षर के समझने की भी आपमें शक्ति नहीं है, उसके नाटक के आशय पर जो लेख या कहानी लिखी गई है, उसमें किस अंग्रेजी शब्द के स्थान पर भाषा का कौन सा शब्द क्यों रक्खा गया है, इसके निर्णयकर्ता आप नहीं हो सकते। नागरीप्रचारिणी सभा के कार्यकर्ताओं को उचित है कि आगे जब भाषासारसंग्रह का दूसरा संस्करण हो तो हिन्दी के एकमात्र प्रभावशाली लेखक बाबू गोपालराम जी के जासूस से दो एक कहानियां उसमें सम्मिलित कर दें, जिसमें बालकों को लौकिक और पारलौकिक दोनो लाभ हों, और यदि यह आप लोगों के रुचिकर न हो तो माधवीकंकण के अनुवाद के कुछ भाग को अवश्य उसमें उद्धृत करलें, क्योंकि उसके पढ़ने से बालकों को एक लाभ अवश्य होगा कि वे

* यह नोट लिखने के पीछे हमें ज्ञात हुआ कि कमेटी ने १०) रु० मासिक इस स्कूल की सहायता के लिये देना स्वीकार किया है।

हिन्दी के साथ साथ क्रिया बदल कर बंगला भाषा भी सीख जांयगे। हम समस्त पत्र की आलोचना करके व्यर्थ अपना समय नष्ट नहीं किया चाहते। हमको इस पत्र के पढ़ने से बड़ा दुःख हुआ है। यदि यह पत्र न प्रकाशित होता तो अच्छा था। अन्त में हमारा प्रश्न पंडित दुर्गाप्रसाद मिश्र, पण्डित महावीर प्रसाद द्विवेदी, पण्डित श्रीधर-पाठक और पण्डित गंगाप्राद अग्निहोत्री आदि महाशयों से यह है कि यदि आपलोग समालोचक-समिति के सभासद हुए हैं तो क्या यह पत्र और इसके लेख आपलोगों की सम्मति से छापे गए हैं? यदि ऐसा नहीं हुआ है तो फिर आप लोगों के सभासद होने की क्या आवश्यकता है? अस्तु, हम अपने मित्र मिस्टर जैनवैद्य से प्रार्थना करते हैं कि वे इस उद्योग से हाथ उठावें और अपने रुपए को किसी दूसरे अच्छे काम में लगावें। समालोचक ने उचित समालोचना करने का बीड़ा उठाया है, इसीसे हमें कुछ स्पष्ट स्पष्ट लिखने का साहस हुआ। सम्पादक और प्रकाशक महाशय हमें क्षमाकर हमारी शकाओं के समाधान करने का उद्योग करेंगे।

वस्तु-परिज्ञान

[२]

बालू

दूसरे दिन लड़के सूर्य निकलने के पहिले ही उठ, हाथ मुंह धो, सफ़ेद कपड़े पहिन वृजकिशोर के पास गए और देखा कि उनके पास छोटे छोटे बरतनों में मिट्टी, बालू, पानी आदि रक्खे हुए हैं।

उनके जाते ही वृजकिशोर ने उनको कई छोटे छोटे पत्थर के टुकड़े दिए और पूछा कि ये कैसे बने और किस चीज से बने?

लड़के चुप रहे।

तब उन्होंने एक छोटा सा टुकड़ा लेकर एक शिला पर एक बड़े टुकड़े से तोड़ कर चूर चूर कर के पीस डाला और कहा कि देखो इन्हीं कणों का यह पत्थर बना था, जैसे धूल के कणों का यह मिट्टी का ढेला बना था। पत्थर के टुकड़े और मिट्टी के ढेलों में पहिला फरक यह है कि एक के कण हाथ से भी अलग अलग हो जा सकते हैं, पर दूसरे के नहीं।

फिर वे उन्हीं पत्थर के कणों को दिखला कर कहने लगे कि "देखो, इन्हींको हम लोग बालू कहते हैं।"

केशव ने कहा "पर यह नदी के किनारे लाखों मन कहां से आया?"
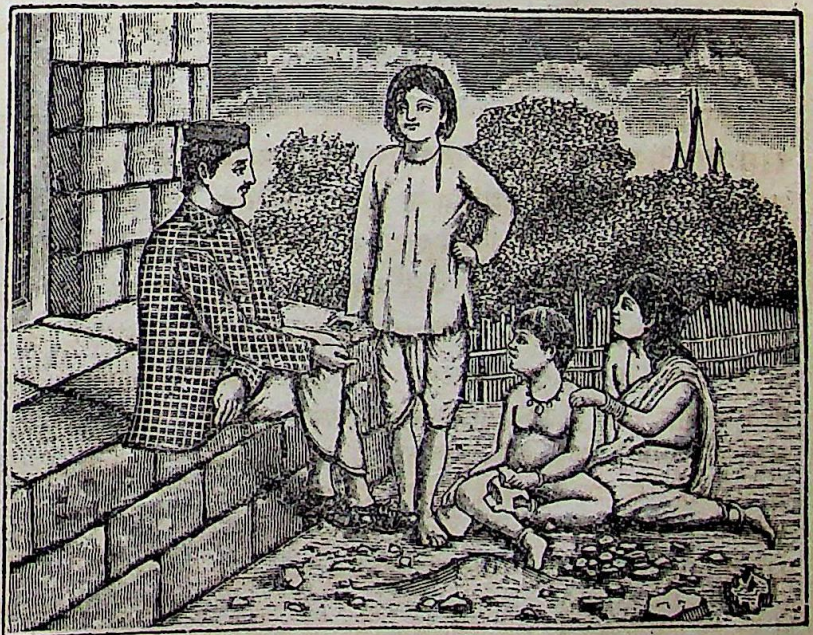
वृजकिशोर ने कहा "तुम जानते हो ये नदियां कहां से आई हैं?"

लड़कों ने कहा नहीं।

बृजकिशोर ने कहा नदियां अक्सर पहाड़ों में से निकलती हैं जो सिर्फ़ पत्थर और चट्टानों के ही बने होते हैं। नदियां इन्हीं पहाड़ों के बीच सैकड़ों कोस चट्टानों और शिलाओं के ऊपर हो बहती हैं।

गिरिधर बोला "तो बालू इन्होंने कैसे पैदा किया?"

बृजकिशोर ने हँस कर कहा "देखो, अगर यह छोटा सा पत्थर का टुकड़ा इस बड़ी शिला पर जोर से लुड़का करे तो क्या होगा"।
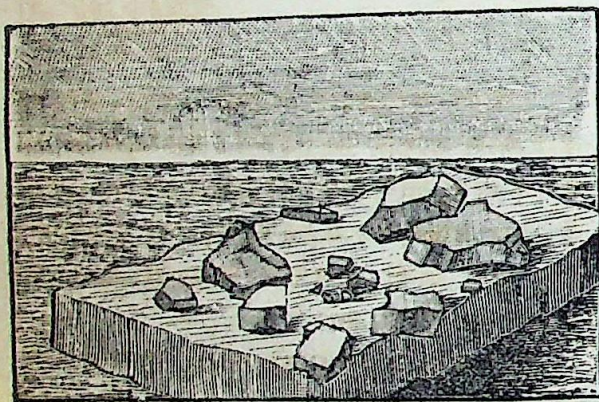
उसने कहा "किनारों से बहुत छोटे छोटे टुकड़े टूट जांयगे।"

बृज०—"अच्छा, अगर उन्हींके ऊपर यह टुकड़ा १५ मिनट तक दौड़ाया जाय, तो वे क्या होंगे? विचारो तो मालूम होगा कि वे इन्हीं बालू के कणों के बराबर होकर शिला पर फैल जांयगे। इसी तरह से अगर किसी शिला पर एक छोटा पत्थर का टुकड़ा कुछ देर तक बराबर ढुलकाया जाय तो, वह सिल पर बालू के कणों के ऐसा हो कर फैल जायगा"।

केशव ने कहा "हां, यह तो समझ गए। यहां आपने पत्थर से बालू बनाया, लेकिन नदियों में किस ने बनाया"?

बृजकिशोर ने कहा कि इन्हीं नदियों में जब वे पहाड़ों के बीच बहती हैं, बड़े बड़े पत्थर के टुकड़े टूट कर गिर पड़ते हैं और पानी की तोड़ में (पर नदी के तल में), शिलाओं के ऊपर सैकड़ों कोस तक महीनों लुढ़का करते हैं और घिस कर बालू के कण हो जाते हैं और नदी के जल के साथ बहते बहते किनारे पर फैलते चले जाते हैं।

केशव चकित और विचार कर हँसता हुआ कहने लगा "तो यह बालू की रेत इसी तरह से पहाड़ों के टुकड़ों के पानी में दौड़ने और घिसने से बनी है"।

बृजकिशोर ने कहा "हां, यह हज़ारों वर्ष से बनती चली आ रही है और इसी तरह से हज़ारों वर्ष तक बनती चली जायगी"।

पानी

गिरधर ने कहा "तो जल ही इन्हें इतनी दूर दूर तक ले आता है?"

बृजकिशोर ने कहा "हां, जल एक अपूर्व पदार्थ है। यह सबका उपकार करता है, पर भला यह तो बतलाओ कि जल में और बालू में क्या फरक है?

सब लड़कों ने कहा बहुत फरक है। जल बहा करता है और बालू सदा एक ही जगह पड़ा रहता है।

तब बृजकिशोर ने कहा "वाह! क्या बालू के कण नहीं चलते? जब दोपहर को हवा जोर से चलती है तो ये भी तो एक जगह से दूसरी जगह जाते हैं"।

केशव ने कहा "हां, यदि इन्हें कोई ले जाने वाला हो। जैसे नदी का जल, जैसा आप कहते हैं, इन्हें पहाड़ों से लाया, वैसे ही हवा भी इन्हें उड़ा कर एक जगह से दूसरी जगह ले जायगी। ये आप से नहीं डोलते, पर जल को तो हम यदि यहां गिरा कर छोड़ दें तो वह कभी यहां नहीं रहेगा। वह दौड़ कर कहीं और ही जाया चाहेगा"।

बृजकिशोर ने कहा, 'शाबास, यह तुमने एक अच्छा भेद दिखाया। जल सदा यदि रोका न जाय तो ऊंची जगहों से नीची जगहों की ओर दौड़ेगा,

वह कभी ऊंची जगह पर आप से नहीं रह सकता"।

इतने में रानी को चुपचाप बैठा देख वृजकिशोर ने कहा "रानी, तुमने कुछ नहीं बतलाया। अच्छा अपनी मुट्ठी में थोड़ी सा बालू तो लाओ"।

उसने मुट्ठी बाँधी और थोड़ा सा बालू ले आई।

फिर उन्होंने कहा "अच्छा एक मुट्ठी पानी ले आओ"।

रानी हँसने लगी और बोली "पानी मुट्ठियों में नहीं आ सकता"।

वृजकिशोर ने कहा "क्यों, क्या होता है देखा तो"।
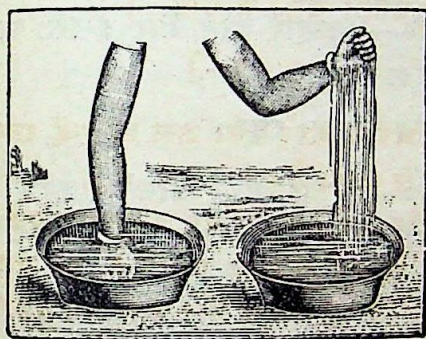
उसने पानी में हाथ रख कर मुट्ठी बाँधी और दिखलाया कि उसमें कुछ भी पानी नहीं है।

तब वृजकिशोर ने कहा "देखो यह जल का दूसरा स्वभाव है। उसको तुम हाथों से नहीं पकड़ सकते। चुटकियों से भी तुम उसको धर नहीं सकते। पर एक बड़ा ही सहज प्रश्न मुझे और करना है। देखें इसका उत्तर कौन देता है। देखो, यहां जितनी चीजें तुम देखते हो, सभों की कोई शकल या आकार है। यह चारपाई, गाय, किताब, घड़ी, सबही कोई न कोई आकार के हैं, पर बतलाओ तो पानी का कौनसा आकार है?

लड़के विचारने और आपस में एक दूसरे की ओर देखने लगे। तब वृजकिशोर ने कहा "देखो, यह कटोरा गोल है। यदि इसको हम पानी से भर दें तो उसमें पानी का आकार कैसा होगा।"

लड़कों ने कहा "गोल कटोरे की तरह।"

वृज०—"अच्छा यदि लोटे में भर दें तो?"

लड़के—"लोटे की तरह"।
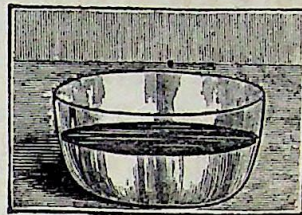
इस पर वृजकिशोर ने कहा "देखो, जल का कोई खास आकार नहीं होता। वह जिस बरतन में रख दिया जाय वैसी ही शकल का बन जाता है। यदि वह बोतल में रक्खा जाय तो बोतल का और यदि थाली में रक्खा जाय तो थाली के आकार का हो जायगा"।

ऐसा देख वे लड़के जो पहिले विचार और आश्चर्य में मालूम होते थे हँसने लगे और बोले "कहिये, और भी कोई इसका ऐसा स्वभाव है जिसको हम लोग देखते हों पर जानते नहीं?"

वृजकिशोर ने कहा "वह थाली तो हमें दो, उसमें थोड़ी बालू भी फैला दो।"
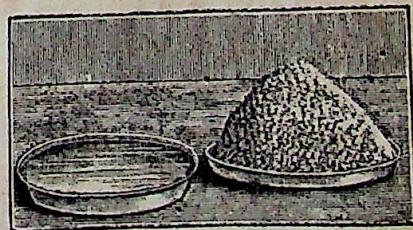
ऐसा करने पर उन्होंने उस थाली के बीच में बालू को चारो ओर से खींच कर जमा कर दिया और एक छोटा सा ढेर लगा दिया। फिर बालू को फेंक थाली को पानी से भर दिया और बोले कि "बालू की नांई इस जल को भी थाली

के चारों ओर से बटोर, क्या तुम लोग बीच में जमा करके एक ढेर लगा सकते हो ?"

केशव ने कहा "नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। यह सदा थाली भर में फैला रहेगा। इसके ऊपर की सतह ऊंची नीची नहीं हो सकती"।

वृजकिशोर ने कहा "देखो, जल के इतने स्वभाव हैं। इसका किसी बरतन में कोई ढेर नहीं लगा सकता। यह सदा उसमें फैला रहेगा और एक बराबर सतह रक्खेगा। यह सदा ऊंचे स्थानों से बह कर नीचे की ओर जायगा। इसको कोई कभी मुट्ठी बाँध कर या चुटकी से उठा नहीं सकता। उठाते ही नीचे गिर पड़ेगा, और इसका कोई निज का आकार नहीं है। जिस बरतन में रख दिया जाय उसके ही आकार का हो जायगा।"

इतने में लड़कों की घर के भीतर खाने की बुलाहट हुई और वे चलने पर उद्यत हुए। तब वृजकिशोर ने कहा "यदि तुम लोग सायंकाल में फिर आओ तो मैं एक अद्भुत वस्तु तुम लोगों को दिखाऊंगा। लड़के बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने बड़ी चाह से आने का वादा किया!

बिल्ली

संध्या होने पर वे उत्सुक लड़के चिराग लगते ही व्रजकिशोर के पास गए और बोले कि हम सब उस अद्भुत वस्तु को देखने आए हैं।

विजकिशोर ने कहा "अच्छा, बैठो, हमने उसको अभी पकड़ा है, देखो"।

उन्होंने कोठरी के कोने में से एक बिल्ली निकाली जिसको उन्होंने वहां बाँध रक्खा था।

केशव ने कहा "वाह, यह तो रानी की बिल्ली है, क्या इसीको आप अद्भुत कहते हैं?"

वृजकिशोर ने कहा "तुम लोग अद्भुत के माने नहीं जानते, क्या तुम इस बिल्ली के बारे में सब कुछ जानते हो ?"

केशव ने कहा "हां"

वृजकिशोर ने कहा "भला कहो तो इसका सिर कैसा होता है ?"

केशव—"गोल"

वृज०—"कान"

केशव—"खड़े खड़े"

वृज०—"तुम्हारे कान और इसके कानों में क्या फरक है ?"

केशव चुप हो रहा।

वृज०—"देखो, नहीं जानते। फरक यह है कि हमलोग अपने कानों को हिला नहीं सकते, और यह हिलाही नहीं सकती पर जिधर चाहे उधर फेर भी सकती है। अच्छा कहो तो, इसकी आंखों की पुतलियां कैसी होती हैं ?"

वे सब चुप हो रहे।

"इसी लिये हम इसको अद्भुत कहते हैं। देखो, यहां उँजेले में इसकी आंख की पुतली कैसी पतली रेखासी ऊपर से नीचे खिंची है पर अभी इसको अँधेरे घर में लेजाओ तो यही पुतलियां जो रेखा सी हैं फैल कर मटर के दाने के बराबर हो जायंगी। जानते हो यह क्यों ऐसा करती है"।

केशव—"नहीं"

वृज०—"अँधेरे में देखने के लिये"।

"रानी जरा इसके पंजें तथा हाथों को तू छू, देख तो ये कैसे हैं"।

रानी ने कहा ये तो "बड़े कोमल हैं"।

"फिर जब क्रोधित हो यह ...से मारती है तो खून क्यों निकलता है?"

केशव ने कहा "उनके भीतर ...ह है। उनको रानी ने नहीं देखा ...वृजकिशोर ने उसके एक पंजे ...को दबाया और चोखे घुमे घुमे ...पांच नह अगले और चार चार पिछले पञ्जों में ...खलाए और कहा, "देखो इन्हींसे यह शत्रु को ...रती है। और इन्होंको धंसा कर दिवाल या पेड़ों पर चढ़ जाती है।"

"इसके बाल और चमड़ों की ओर देखो, छूने में ये कैसे कोमल हैं, पर इसकी जीभ, दांत और मूछें बड़ी विचित्र और काम की हैं। इसकी जीभ बड़ी खरखरी ...ती है जिससे यह अपने रोएं को चाट साफ ...रती है, माँस को हाड़ से छुड़ा कर खाती है, ...र इसके दांतों को तो देखो, क्या ये तुम्हारे ...तों की तरह हैं?" वृजकिशोर ने उसको सुहरा ...र उसके मुंह को थोड़ा सा खोलकर दिखलाया ...र पूछा "क्या देखते हो"?

गिरिधर ने कहा "ऊपर और नीचे दो दो ...त बड़े लम्बे पतले और चोखे चोखे हैं"।

"हां वह इन्हींसे चूहों को पकड़ती है और ...ड़ डालती है, लेकिन क्या तुम लोग जानते हो ...ह कैसे खाती है?

रानी ने कहा "हम-लोगों की तरह"।

वृजकिशोर ने कहा "नहीं, देखो तुम लोग ...ह भी नहीं जानते। बिल्लियां हम लोगों की तरह ...हीं खाती, अपने खाने को मुंह के भीतर कूच या पीस नहीं सकती। इनका मुंह केवल ऊपर नीचे कैंची की नांई खुलता है। इनके मुंह के नीचे का भाग दहिने से बाएं या बाएं से दहिने हम लोगों की तरह नहीं चलता। ये चीजों को कूंचती नहीं, केवल निगल जाती है। अच्छा, एक प्रश्न और है, भला इनकी मूंछें किस काम की हैं?

लड़के फिर चुप हो रहे।

फिर वृजकिशोर ने पूछा "भला तुम लोग अँधेरे में कैसे चलते हो?"

गिरधर ने कहा "हाथ बढ़ाए चीजों को छूते हुए"

वृजकिशोर ने कहा "इसी तरह से जब बिल्लियां अंधेरे में चलती हैं तो ये अपनी मूंछों को आगे बढ़ा कर फैलाए रहती हैं और जो कोई चीज आगे मिलता है तो वह इन्हीं मूंछों में भिड़ती है, मूछों में भिड़ने पर अपने मुंह को खींच लेती है"।

लड़के सब आश्चर्य में आ हँसने लगे और बोले "हम लोग ऐसे ही और भी सब मामूली वस्तुओं के बारे में जानना चाहते हैं"। तब वृजकिशोर ने कहा अच्छा कल दस बजे आना। सवेरे हम तुम्हारे लिये और भी कई बड़ी रोचक वस्तुएं ला रक्खेंगे, परन्तु यह जो सब बातें सुनते हो, उन पर बिचारना।

भेंड़

वृजकिशोर दूसरे दिन सुबह हो जाने के कुछ काल पीछे घर के बाहर निकल बिचारने

लोगें कि लड़कों को आज कोई नई बात दिखलानी चाहिए। हवा ठण्डी बह रही थी और आकाश में छोटे छोटे बादल के टुकड़े उड़ रहे थे।

ऐसा देख उन्होंने लड़कों को बोलाया और कहा कि चलो, थोडा नदी के तट पर घूमें और कुछ नई चीजें देखें। यह सुन लड़के बहुत प्रसन्न हुए और चट उनके साथ हो लिए। उन लोगों ने थोड़ीही दूर जा एक खेत में जो घास से हरा भरा था एक झुण्ड भेड़ों का चरते देखा, उनको देख वृजकिशोर खड़े हो गए और बोले "देखो ये जीव कैसे छोटे छोटे देखने में सुन्दर हैं। तुम जानते हो ये भेड़ हैं पर ये यहां कर क्या रही हैं?"।
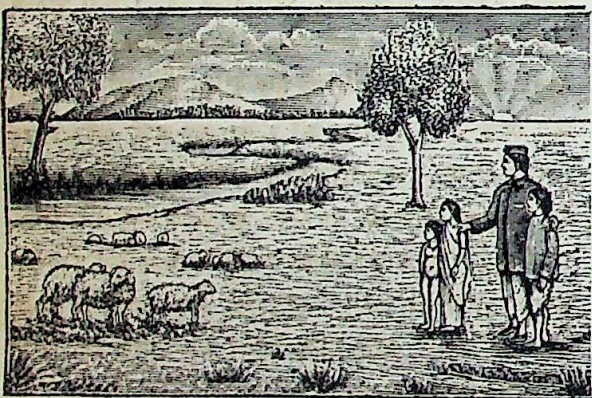
गिरधर ने कहा "ये चरती हैं, और घास को खाती हैं"।

तब वृजकिशोर ने पूछा "इसके सिवाय ये और क्या खाती हैं, तुम जानते हो ?"

"नहीं"

"ये घास, पेड़ों की पत्तियां और अन्न भी खाती हैं। ये तृणभक्षक कहलाती हैं। और भी देखो, ये गोल का गोल एक साथ सोती, चरती और चलती फिरती हैं। इन्हें मैदान में अकेला न पाओगे। ये मनुष्यों की नाई बीस पचीस एक सङ्ग रहती हैं।"

तब केशव ने कहा "इन्हें हमने कभी पास से नहीं देखा है, चलिए इसके निकट चलें।

वृजकिशोर ने कहा "नहीं ये भाग जांयगी। ये बड़ी डरपोक होती हैं। पर ठहरो, मैं, जो इनको

चरा रहा है उससे पूछ के, एक पकड़ लाऊंगा।"

तब वे जा गड़ेरिए से पूछ कर एक भेड़ पकड़ लाए और बोले "देखो रानी, इसकी कुल देह रोंए से ढकी है, और ये रोंए कैसे गझिन और बड़े हैं। तुम जानती हो क्यों ?"

"नहीं मैं नहीं जानती"।

"ये भेड़ जाड़े में रात भर बाहर खेतों में सोती हैं। बरसात में यदि पानी भी बरसा करै तो ये मैदान में खड़ी रहती हैं, और गरमी में धूप में चरा करती हैं। परमेश्वर ने इनको जाड़े की शीत, बरसात के पानी और गरमी की धूप से बचाने के लिये ये रोंए दिए हैं। इसी से अपने को बचाती हैं, ये कभी घर में नहीं रहतीं, यदि इनके पैरों की तरफ देखो तो ये कैसे पतले पतले बने हैं, लेकिन भला

गिरधर तुम बतलाओ तो इनके खुर में और घोड़ों के खुर में क्या भेद है ?"

गिरधर ने कहा कि "इनके खुर कटे हैं। एक एक खुर के दो दो हिस्से हैं पर घोड़ों के समूचे होते हैं"।

"वाह तुम्हारे उत्तर से तो मालूम होता है कि तुमने इनको पहिले भी देखा था, क्या तुम इनके बारे में सब कुछ जानते हो"।

उसने कहा "हां" तब वृजकिशोर ने पूछा "अच्छा बतलाओ तो इनके दांत किस तरह के हैं और कैसे जमे हैं।"

गिरधर ने कहा "एक कतार में हम लोगें की तरह"।

वृज०—"तब तुम कुछ नहीं जानते। देखो" ऐसा कह कर उन्होंने उस भेंड़ी का मुह खोलकर उन सभों को दिखलाया और कहा "देखो उसके मुंह में ऊपर आगे की तरफ कोई भी दांत नहीं है, पर नीचे एक कतार में कई हैं। ऊपर केवल मांस ही माँस है और देखो गद्दे की तरह बहुत
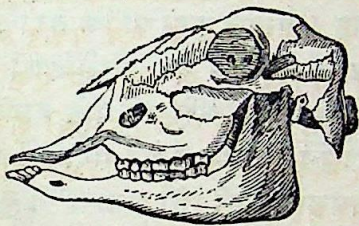
मुलायम नहीं है। ये लोग चरते समय घास के गुच्छे के नीचे की दांतों पर धर ऊपर के मांस के गद्दे से दबा खींच कर काट लेती हैं, परन्तु इनके चैाघड़ हमी लोगें की तरह बने रहते हैं। उन्हींकी मदद से ये खाती हैं।"

इतने में वे सब भेंड़ जो चरती थीं चरते चरते दूर चली गईं। उनकी ओर देख यह चिल्लाने लगी। इसकी इस दशा को देख लड़कें को कष्ट हुआ और उन्होंने उसे छोड़ दिया। यह मुंह को जमीन में लगा उनकी ओर दैाड़ी।

ऐसा देख केशव ने अपने बड़े भाई से पूछा "कहिए तो यह मुंह को पृथ्वी के इतने निकट कर के क्यों दैाड़ती है? घोड़े, बैल, बकरी, तथा और चारपाए तो मुंह को ऊपर करके चारों तरफ देखते दैाड़ते हैं, वे मुंह को पृथ्वी के पास इस तरफ लगा कर नहीं दैाड़ते"।

केशव ने कहा "देखो यह एक दूसरे में धंसी और भिड़ी सदा चलती और चरती हैं, इनको मुंह उठाकर चलने की जगह नहीं रहती, इस लिये बान पड़ जाने पर जब ये अकेली चलती हैं तो भी उसी प्रकार से मुंह जमीन में लगाए चलती हैं॥

[क्रमशः

र. द. प.

राजर्षि भीष्मपितामह जी

[२]

भीष्म जी का घायल होना

नवें दिन प्रातःकाल संध्या आदि से निवृत्त हो भीष्म जी अपने सुन्दर रथ पर सवार हो सेना की ओर चले। आगे उन्हें दुर्य्योधन मिला। दुर्य्योधन को संग ले भीष्म जी ने सेना को युद्ध के लिये उद्यत किया और सर्वतोभद्र नामी व्यूह रच पांडव सेना पर धावा करने की आज्ञा दी। पांडवों की सेना का वीर अभिमन्यु (अर्जुन का पुत्र) पांडव दल की रक्षा कर रहा था। कैारव सेना को बरसात के जलप्रवाह की भांति आती हुई देख उसने अपने पिता के दिए हुए सुन्दर पाशुपतास्त्र पर चिल्ला चढ़ाया और कैारव सेना को वहीं का वहीं रोक दिया। भीष्म जी यह देख अपनी सेना का उत्साह बढ़ाने के लिये आगे बढ़े। बहुत से पांडव महारथियों ने एकत्रित हो भीष्मजी को घेर लिया और मर्मभेदी बाण इस चतुराई से मारे कि उनके अङ्ग अङ्ग से रुधिर बहने लगा। बहते हुए रुधिर से भीष्म जी ऐसे शोभायमान हुए जैसे बहते हुए झरनों से पर्वत शोभायमान होता है। बहुत से घावों के होने पर भी भीष्म जी पर्वत की भांति अचल रहे और तनिक भी व्यथित न हुए। फिर क्रोध से उन्होंने अपने धनुष को टंकोर दी और चिल्ला चढ़ा बाणों की वर्षा करने लगे। उन्होंने इतने बाण मारे कि जिधर दृष्टि पड़ती थी बाण ही बाण दृष्टिगोचर होते थे। उन बाणों ने पांडव सेना को अधीर कर दिया और महारथियों को घबरा दिया। अर्जुन और सात्यकि अपनी सेना की यह दशा देख

सहायता के लिये बढ़े और उन्होंने भीष्म जी को घेर लिया। यह देख दुर्योधन ने अपने भाई दुःशासन को भीष्म जी के सहायतार्थ भेजा। भीष्म जी बड़े क्रोध में आ बाण वर्साने लगे और और दुःशासन पांडवदल को इस प्रकार काटने लगा जैसे किसान शस्य काटता है। इस बात को कृष्ण ने देख सात्यकि को दुःशासन से युद्ध के लिये कहा। सात्यकि ने कृष्ण की आज्ञा पा धृतराष्ट्र के पुत्र को मार भगाया। अब अर्जुन और भीष्म का युद्ध होने लगा। भीष्म जी के अस्त्रों को अर्जुन काटते थे और समय पा उनको घायल भी करते थे। परन्तु पितामह समझ बीच बीच में रुक जाते थे। भीष्म जी निश्चिन्त हो युद्ध कर रहे थे और थोड़ी देर में अर्जुन के रथ के इर्द गिर्द उन्होंने लाशों के ढेर लगा दिए। कृष्ण ने अर्जुन को पुकार कर कहा कि सावधान होकर युद्ध करो, नहीं तो स्मरण रखो आज भीष्म पांडवदल को बिलकुल भस्म कर देंगे। अर्जुन ने कुछ ध्यान नहीं दिया। जब कृष्ण ने देखा कि अर्जुन आज सब कोशिशों पर पानी फेरता है, तो आप रथ से उतर युद्ध के लिये उद्यत हो गए। भीष्म जी ने कृष्ण से कहा, आज आप फिर युद्ध के लिये उद्यत हुए हैं, आइए आप और मैं युद्ध करें। आप जैसे वीर के हाथ से आज मर कर जन्म सफल करूंगा। कृष्ण जी चलेही थे कि अर्जुन ने उनको पकड़ लिया और कहा कि आप दुःख न उठाएं, मैं अवश्य युद्ध करूंगा। क्या करूं, भीष्म जी को देख उत्साह भंग हो जाता है। परन्तु नहीं, अब मैं कायर नहीं बनूंगा। आप देखेंगे कि कल क्या होगा। संध्या हो गई थी। सेनाएं अपने अपने शिविरों में चली गईं।

रात को युधिष्ठिर ने अपने भाइयों और कृष्ण जी से सम्मति पूछी कि किस प्रकार भीष्म जी की मृत्यु हो। हमने इतना यत्न किया परन्तु वह सब निष्फल हुआ जाता है। भीष्म जी के होते हमारी जय होनी कठिन है। कौन वीर है जो भीष्म जी को संग्राम में घायल करे। कृष्ण जी बोले कि मैं भीष्म को रण में वध करूंगा। युधिष्ठिर ने कहा यह नहीं हो सकता, मैं आपको युद्ध करने के लिये नहीं कह सकता। अन्त को सर्वसम्मति से यह निश्चय हुआ कि भीष्म जी के पास चलना चाहिए और उनसे इस विषय में सम्मति लेनी चाहिए।

युधिष्ठिर अपने भाइयों और कृष्ण को साथ ले भीष्म जी के शिविर की ओर चले। वहां पहुंच सब से पहिले सबने भीष्म जी को प्रणाम किया और फिर शिर झुका कुरसियों पर बैठ गए। भीष्म जी ने राजा युधिष्ठिर और उसके भाइयों का स्वागत किया और आने का कारण पूछा। युधिष्ठिर बोले "हे पितामह! आपने कहा था कि तेरी जय होगी; परन्तु अब तक मेरी दो अक्षौहिणी सेना मर चुकी हैं। कहिए मुझे कैसे जय प्राप्त होगी"। भीष्म बोले "हे राजन्! जब तक मेरे शरीर में बल है तब तक तुझे जयलाभ नहीं हो सकता"। युधिष्ठिर ने कहा "आपने कहा था कि फिर आना, तुमको बतलाऊंगा कि किस प्रकार जीत होगी। कृपा करके बतलाइए कि आपको मेरी सेना कैसे पराजित कर सकती है। आपने कहा था कि मैं केवल सम्मति दे सकता हूं, युद्ध नहीं कर सकता, सो कृपा कर अपने बचनों को पूरा कीजिए"।

भीष्म बोले "हे राजन्! ध्यान से सुनो। जब मैं शस्त्ररहित होऊं तभी कोई मुझे मार सकता है और उस आदमी पर जिसने शस्त्र रख दिए हों, नीचे गिर गया हो, डरा हुआ हो, जो कहे 'मैं शरण आया हूं', स्त्री हो या जिसमें स्त्रियों के गुण हों, जिसके एक ही पुत्र हो और जो अज्ञानी हो, ऐसे पुरुषों से मैं नहीं लड़ता" इन बातों से प्रतीत होता है कि उस ज़माने में दूसरे की निर्बलता से किसी प्रकार की स्वार्थसिद्धि का ढंग इस देश में प्रचलित न था। युधिष्ठिर पितामह जी की आज्ञा ले अपने शिविर को लौट आए और सो रहे।

दसवें दिन युधिष्ठिर ने अर्जुन से कहा कि वीरता से युद्ध करो। पितामह जी को देख ढीले न बन जाया करो। क्या तुम अपना प्रण भूल गए? स्पष्ट

कहा, यदि तुम युद्ध से भागते हो तो मैं कोई और प्रबन्ध करूं। बड़े भाई के ये शब्द सुन अर्जुन के रोम खड़े हो गए और शरीर पसीने से भर गया। वे हाथ जोड़कर बोले महाराज! आज मैं भीष्मजी को रण में घायल करूंगा, पिछला अपराध क्षमा कीजिए। कृष्णजी ने भी समझाया कि तुम लुटेरे होकर नहीं लड़ते हो, अपने कर्तव्यपालन के निमित्त युद्ध करते हो, किसीका भाग नहीं छीनते, युद्ध में जो कोई आवे उससे लड़ो, चाहे वह पिताही क्यों न हो, अपना अधिकार लेना क्षत्रीका धर्म है। कृष्ण के उत्साह और युधिष्ठिर के शब्दों ने अर्जुन को युद्ध के लिये उद्यत किया और वह क्रोध से अपने प्यारे अस्त्र गांडीव को बार बार टंकोर देने लगा, जिसके शब्द से चारो दिशाएं गूंज उठीं। थोड़ी देर में दोनों सेनाएं युद्ध के लिये मिल पड़ीं। अर्जुन भीष्म जी के बध के लिये उद्यत था, इस लिये युद्ध का भयङ्कर रूप हो गया। दोनों ओर के वीर मार मार कर रहे थे और निर्जीव देहें गिर रहीं थीं। अर्जुन ने सेना सहित भीष्म जी को घेर लिया और बड़ाही यत्न किया कि मार डाले, परन्तु कुछ न कर सका। भीष्म जी ने राजा विराट के भाई को अपने खड्ग से चीर दिया और कुछ समय तक ऐसा प्रतीत होता था कि कौरव जीत जांयगे। उस समय किसीने भीष्म जी को दया करने के लिये कहा, जिसपर वे बोले 'नहीं, पाप नहीं करूंगा, कोई वीर है तो युद्ध करे'।

दूसरी बेर जब पांडवों की सेना के पांव उखड़ गए और वह भागने पर उद्यत हुई, तो युधिष्ठिर ने अपनी सेना को ललकारा और कहा कि वीरो बढ़ो, वृद्ध भीष्म अर्जुन का सामना नहीं कर सकता। निदान पांडवों की सेना ने फिर एक बार साहसकर धावा किया, कौरव भी भीष्म की रक्षा के लिये इधर उधर फैल गए और निराश हो युद्ध करने लगे। अर्जुन ने दो बार भीष्मजी का धनुष तोड़ डाला। भीष्म भाले से लड़ने लगे, अर्जुन ने वह भी तोड़ दिया। भाले के टूटने पर उन्होंने खड्ग और ढाल उठाई और सम्मुख हो युद्ध करने लगे। अर्जुन ने खड्ग भी तोड़ दिया। उन्होंने फिर धनुष से युद्ध करना आरम्भ किया। निदान ऐसा युद्ध हुआ कि अपने पराये की पहचान न रही। पांडवों ने मस्त हाथी भीष्म जी पर रेले, भीष्म जी ने उनको मार शरीर काट डाला। पांडवों ने प्रण कर लिया कि आज भीष्म जी को मारे बिना रण से मुख न मोड़ेंगे। बड़ी देर के युद्ध के पीछे भीष्म जी अर्जुन और शिखंडी के वाणों से घायल हो भूमि पर गिर पड़े। यद्यपि महाभारत के कर्ता ने शिखंडी को स्त्री कह कर भीष्म जी के युद्ध न करने पर अर्जुन का उनको घायल करना लिखा है, परन्तु चाहे कुछ ही हो, भीष्म जी इस दिन युद्ध में बहुत घायल होगए और कौरव उनको उठा शिविर में ले गए। दोनो ओर से युद्ध बन्द हो गया। भीष्म जी के शरीर में इतने वाण लगे थे कि भूमि से ऊंचा शरीर हो गया। परन्तु वाहरे वीर! मुंह से हाय तक नहीं निकाली। यह तेराही साहस था! वाहरे ब्रह्मचारी! सच है, ब्रह्मचर्य्य से क्या नहीं हो सकता। धन्य हैं वह पुरुष जो ब्रह्मचर्य्यव्रत को धारण करते हैं। परमात्मा हमारे देश में फिर उन्हीं सिद्धान्तों का प्रचार करे जिसमें ऐसे कर्तव्य पालनेवाले सहनशील क्षत्री उत्पन्न हों! भीष्म जी शरों की शय्या पर पड़े थे, परन्तु सिर लटक रहा था। उन्होंने कहा कि कोई है वीर जो तकिया देवे। मूर्ख रेशमी तकिए ले ले कर दौड़े। भीष्मजी हँसे और उन्होंने अर्जुन की ओर, जो अपने भाइयों सहित वहां उपस्थित था देखा, अर्जुन पितामह जी का अभिप्राय समझ गया। उसने तीर मार सिर भूमि से ऊंचा कर दिया।

भीष्मपितामह जी का उपदेश और उनकी मृत्यु

वीर क्षत्री शरों की शय्या पर पड़ा है। सब चारों ओर बैठे हैं। एक ओर युधिष्ठिर हाथ बांधे पितामह की सेवा के लिये उपस्थित हैं। दो घंटे पहिले जो यह चाहता था कि कब अर्जुन का तीर

लगे ग्रैार राजर्षि गिरे, वही युधिष्ठिर इस समय इस सोच में है कि पितामह का दुःख कैसे दूर हो। क्यों न हो ! ग्रवस्था में भेद पड़ गया। वह ग्रवस्था रणभूमि की थी ग्रैार यह ग्रवस्था पैतृक सम्बन्ध की है। वाहरे भारत ! यदि उन्नति भी की थी तो कहां तक ! एक वह समय कि तैने ऐसे पुत्र उत्पन्न किए जो प्रत्येक धर्म को समझनेवाले, ग्रवसर से कदापि न चूकनेवाले, तथा कर्तव्य की महानता को समझने वाले थे। ग्रैार एक यह ग्रवस्था होगई कि भारतवासी धर्म को जीवन से ही पृथक समझने लगे। कर्तव्य (Duty) जानते ही नहीं कि किस चिड़िया का नाम है। मुख्य सिद्धांत यह बनाया—

खाग्रो पीग्रो ग्रैार मस्त रहो

हा ! काल की विचित्र लीला है।

दूसरो ग्रोर दुर्य्योधन शोकग्रस्त ग्रांखों में ग्रांसु भरे नीचा सिर किए ग्राज्ञा के लिये खड़ा है। भीष्म जी ने दृष्टि उठा सबकी ग्रोर देखा, फिर दुर्य्योधन से बोले, शोक मत करो, यह संसार ग्रसार है, इस जीवन का ग्रन्त मृत्यु है ग्रैार शरीर का ग्रन्त भस्म होना है, क्योंकि वेद कहता है।

भस्मांतङ् शरीरम् ॥ यजु०

इस जीवन के परिणाम से कोई पुरुष नहीं बच सकता। धन्य है वह पुरुष जो धर्म पालन करता हुग्रा जीवन व्यतीत करता है। हे दुर्य्योधन मैंने तुम को बहुत समझाया है। ग्रब फिर समझाता हूं। तू पाप के मार्ग को छोड़ धर्मपथ पर चल। पांडवों को उनका भाग दे दे ग्रैार युद्ध को छोड़ दे। देख, तू धर्मपुत्र युधिष्ठिर पर विजय नहीं पा सकेगा, क्योंकि 'यतो धर्मस्ततो जयः' यह शास्त्र बार बार पुकार कर कहते हैं। ग्रर्जुन सा वीर कैारवों में एक नहीं है देखा मान जा, हठ न कर इसका परिणाम तेरे लिये बहुत बुरा होगा। तेरी सेना, तेरे भाई, सब भीम के हाथ से मारे जायंगे। क्यों संसार में कलङ्क का टीका लेता है ? स्मरण रख यह समय फिर हाथ नहीं ग्रावेगा। भीष्म जी ने दुर्य्योधन को बहुत समझाया, परन्तु गोसांई तुलसी दास जी ने सत्य कहा है—

फूलें फलें न बेत यद्यपि सुधा बर्षहिं जलद।
मूरख हृदय न चेत जैा गुरु मिलहि बिरंचिसम ॥

ऐसे नाजुक समय में एक राजर्षि के मुख से निकला हुग्रा उपदेश भी उसके चित्त पर कुछ ग्रसर न कर सका। वह वहां से चला गया। सब राजा लोग भीष्म जी से ग्राज्ञा ले ग्रपने ग्रपने स्थानों पर चले गए ग्रैार भीष्म जी ग्रांखें मूंद ध्यानस्थित होगए।

कर्ण ने, जो कि सदा भीष्म जी से विरोध किया करता था ग्रैार उन्हींके कारण युद्ध में शामिल नहीं हुग्रा था, जब यह सुना कि भीष्म जी घायल हो शरशय्या पर पड़े हैं तो वह भी उनके दर्शनों को ग्राया। भीष्म जी उस समय समाधि में थे। कर्ण ने ग्राकर उनके पैर पकड़ लिए ग्रैार ग्रांखों में ग्रांसू डबडबा कर कहा कि मैं कर्ण ग्रापके दर्शनार्थ ग्राया हूं ग्रैार ग्रापके चरणों में उपस्थित हूं। भीष्म जी ने धीरे धीरे ग्रांखें खोल दीं ग्रैार कर्ण को देख उसके शिर पर हाथ रख प्रेम से बोले "बेटा, तुमने ग्रच्छा किया जो इस समय मेरे पास चले ग्राए। मुझे तुमसे कोई विरोध नहीं। मैं सत्य कहता हूं कि मैंने सदा तुम्हारे हित के बचन कहे हैं, यदि मैंने कभी कोई कटु बचन भी कहा तो वह केवल तुम्हारे जोश की शान्ति के लिये, क्योंकि तुम सदा पांडवों को निंदा किया करते थे। जिन लोगों में तुम्हारा बैठना उठना है, उनके विचार बहुत भद्दे हैं। कुसंगत ने तुम्हें घमंडी बनादिया है ग्रैार तुम धर्म ग्रधर्म का विचार नहीं करते। मैं जानता हूं कि तुम शूर हो, बाण फेंकने में तुम ग्रर्जुन से कम नहीं हो, परन्तु तुम्हें चाहिए कि तुम पांडवों से शत्रुता छोड़ दो; इन्हें ग्रपना भाई समझ द्वेष त्याग दो। दुर्य्योधन तुम्हारा कहा मान लेगा। फूट का परिणाम ग्रच्छा नहीं है। कर्ण बोला "मैंने दुर्य्योधन से पण किया है ग्रैार उसका पक्ष लेकर युद्ध करने का विचार किया है। ग्रब मैं उस विचार से नहीं हट सकता। ग्राप मुझे ग्राज्ञा दें कि मैं क्षत्री की मृत्यु

(रण में) मरूं। मेरे अपराधों को क्षमा करना। भीष्म बोले "अच्छा, मेरा धर्म था मैंने समझा दिया, अब तुम स्वतन्त्र हो"। भीष्म जी की आज्ञा ले कर्ण दुर्योधन के पास चला गया।

भीष्म जी के घायल होने के बाद आठ दिन तक कौरव और पांडवों का घोर युद्ध होता रहा। अन्त को पांडवों की जीत हुई और दुर्योधन के भाई और ११ अक्षौहिणी सेना सब मारी गई। जब युधिष्ठिर के राज्यसिंहासन पर बैठने का समय आया तो उनके मन में न जाने क्या आया कि वह राज पाट छोड़ कर आश्रम बदलने के लिये उद्यत हो गए। कृष्ण जी और अर्जुन ने बहुत समझाया। परन्तु उनके चित्त पर कुछ असर न हुआ। अन्त में कृष्ण जी ने युधिष्ठिर को कहा कि तुम भीष्म जी से, जो इस समय के विद्वान और पूर्ण योगी हैं, जाकर इस विषय में सम्मति लो। और उनकी मृत्यु भी निकट है, इस लिये उनके जीवन से यथाशक्ति लाभ उठाओ। युधिष्ठिर जी ने इसे स्वीकार किया। अपने भाइयों और बाकी सम्बन्धियों को संग ले वे भीष्म जी के पास गए। उस समय भीष्म जी ने युधिष्ठिर को जो उपदेश किया है वह महाभारत के शांति और अनुशासन पर्व में है। मैं उसमें का कुछ भाग पाठकों के लाभ के लिये लिखता हूं।

कृष्ण जी भीष्म जी से पूछते हैं–

कच्चित्सुखेन रजनी व्युष्टा त्ते राजसत्तम। |
विस्पष्टलक्षणा बुद्धिः कच्चिचोपस्थिता तव ॥

हे कुरुश्रेष्ठ! आप विमलमति किस कारण से हैं? वह कौन सा प्रभाव है जिससे आपको इस बाणशय्या पर किञ्चित्मात्र भी कष्ट नहीं होता?

कच्चिज्ज्ञानानि सर्वाणि प्रतिभाति च तेऽनघ।
न ग्लायते च हृदयम् न च ते व्याकुलम् मनः ॥

और किस कारण से आपका ज्ञान प्रदीप की तरह दीप्तिमान हो रहा है? आपका हृदय किसी कारण से भी ग्लानि को प्राप्त नहीं होता, आपका मन प्रसन्न है, इसका क्या कारण है?

भीष्म जी उत्तर देते हैं–

यच्चभूतम् भविष्यच्च भवच्च परमच्युते।
तत्सर्वमनुपश्यामि पाणौ फलमिवार्पितम् ॥

हे कृष्ण! वैदिकधर्म की कृपा से मुझे कोई संशय नहीं। हस्तामलक की भांति धर्माधर्म सब प्रतीत होता है, इससे मुझको क्लेश नहीं होता।

वेदोक्ताश्च व ये धर्मा वेदान्ताधिगताश्च ये।
तान् सर्वान् संप्रपश्यामि वरदानात्तवाच्युत ॥

आप की कृपा से मैं वेद वेतान्तों के सब धर्मों को जानता हूं जिससे मुझे क्लेश नहीं होता।

चतुर्ष्वाश्रमधर्मेषु योऽर्थः स च हृदिस्थितः।
राजधर्मांश्च सकलानवगच्छामि केशव ॥

चारों आश्रमों के धर्म और राजधर्म को मैं जानता हूं। भाव यह है कि राजधर्म के धारण से भी मुझे काया क्लेश नहीं है।

अब यह विचार उत्पन्न होता है कि वेद वेदान्तों का कौनसा धर्म है, जिससे अभिज्ञ हो कर मनुष्य दुःख को धैर्य से सहन कर सकता है। वह कौनसी अग्नि है जो इतने कष्ट के होने पर भी मनुष्य के तेज को बनाए रखती है। राजधर्म क्या है जिसको जानता हुआ पुरुष शान्ति से शरों पर लेट सकता है? वह ऐसा क्या बल है जो मनुष्य की आत्मा को ऐसा बलवान बना देता है। सज्जनो! जिन्होंने ईश्वरीय ज्ञान वेद को नहीं जाना, जिन्होंने शास्त्र मर्य्यादा छोड़ दी, जो सांसारिक विषयों को ही जीवन का उद्देश्य मानते हैं। परन्तु जो शास्त्रों को पढ़ते और श्रवण करते हैं वे जानते हैं–

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय,
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्य-
न्यानि संयाति नवानि देही ॥

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ॥

एक एव सुहृद्धर्मो निधनेप्यनुयाति यः।
शरीरेण समं नाशं सर्वमन्यत्तु गच्छति ॥

युधिष्ठिर जी को राजर्षि भीष्म जी क्षात्रधर्म का उपदेश करते हैं—

अधर्मः क्षत्रियस्यैषः यच्छय्या मरणं भवेत ।
विसृजन् श्लेष्ममूत्राणि कृपणं परिदेवयन् ॥
अविक्षितेन देहेन प्रलयं योऽधिगच्छति ।
क्षत्रियो नास्य तत्कर्मप्रशंसन्ति पुराविदा ॥
न गृहे मरणं तात क्षत्रियाणां प्रशस्यते ।
शौंडीराणामशौंडीर्य्यमधर्म्यं कृपणं च तत् ॥
शा० राज० अ९७, २३, २४, २५

हे युधिष्ठिर! क्षत्रिय के लिये यही अधर्म है कि शय्या में बीमार हो कर कृपणता के साथ मरे। जो क्षत्रिय क्षतरहित अर्थात् बिना घाव के शरीर वाला मरता है, उसको प्राचीन क्षत्रियलोग क्षत्रिय नहीं गिनते थे। गृह में मरना क्षत्रियों का धर्म नहीं। उस उच्चभाव वाले क्षात्रधर्म को रखते हुए क्षत्रिय क्षतों से क्या भय करते थे? इसी भाव का भरोसा था। इसी धर्म की सत्ता थी, जिसके कारण भीष्मपितामह जी वाणशय्या को पुष्पशय्या समझते थे। इसी विद्युतवत् शक्ति के बल से वह शरशय्या पर लेटे हुए भी शान्तिसुधारूप वचनों का उपदेश करते रहे। आज चाहे भीरु और कायर पुरुष भी क्षत्री कहलाने का दम भरें, इस समय जब कि कोई पूछने वाला नहीं चाहे इन्द्रियों के सेवक, सदा भोग की इच्छावाले मनुष्य अपने आपको क्षत्री कहें, परन्तु क्या वे शास्त्र के आज्ञानुसार क्षत्री कहला सकते हैं? कदापि नहीं।

सर्वधर्म्मपरं क्षात्रं लोकश्रेष्ठं सनातनम्।
शश्वदक्षरपर्य्यन्तमक्षरम् सर्वतोमुखम् ॥

सब धर्मों से उच्च, श्रेष्ठ और सनातन यह क्षात्रधर्म है, निश्चयपूर्वक मुक्ति का देने वाला है, सच्चा है और धर्म्मार्थकामादि सब फलों का देनेवाला है। क्षात्रधर्म्म में प्रजा की रक्षा करनी होती है और देश में शान्ति और सुप्रबन्ध करना होता है, जिसका परिणाम धर्म अर्थ काम और मोक्ष की सिद्धि है, क्योंकि जब तक किसी देश में क्षत्रियों का बल नहीं बढ़ता, अर्थात् सच्चे क्षत्री उत्पन्न नहीं होते, तब तक वह देश कदापि भी ऐश्वर्य और समृद्धि को प्राप्त नहीं हो सकता। किसी देश के इतिहास को पढ़िये जब जब वहां क्षात्रधर्म के जानने वाले और न्यायपूर्वक शस्त्र के उठानेवाले योधा उत्पन्न हुए हैं, तब तब वह देश उन्नति करता रहा है। क्षत्री प्रबन्ध कर सकते हैं, दुष्टों को दण्ड देना उनका धर्म है, कोई किसीको सताये नहीं, सब अपने कार्यों को करते हुए आनन्द से रहें, ऐसा प्रबन्ध रखना उनका कर्तव्य है। जब ऐसा प्रबन्ध हो जाता है तो देश में धन बढ़ता है। लोग धर्म करते हैं और अन्त को मोक्ष को प्राप्त होते हैं। तभी वैशेषिक के कर्ता धर्म का लक्ष करते हुए कहते हैं—

यतोऽभ्युदय निश्रेयस सिद्धि स धर्म्मः

जिससे अभ्युदय और निश्रेयस की सिद्धि है वही धर्म है। ऋषियों ने जिस बात को लिखा है, उसे उन्होंने योगबल से भली प्रकार जान कर लिखा है।

आगे शान्तिपर्व में राजधर्म की व्याख्या करते हुए लिखते हैं।

त्यागं श्रेष्ठं मुनयो वै वदन्ति
सर्वश्रेष्ठं यच्छरीरं त्यजेत
नित्यं युक्ता राजधर्मेषु सर्वे
प्रत्यक्षंते भूमिपाला यथैव ॥

मुनि लोग सबसे श्रेष्ठ त्याग को कहते हैं। सब से बड़ा त्याग वह है जिसमें तन का त्याग किया जाता है। इस प्रकार त्याग क्षत्रियलोग राजधर्म पालनार्थ करते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि क्षात्र धर्म सबसे श्रेष्ठ है। पुरुषोत्तम! तुम इस धर्म को ग्रहण करो। फिर युधिष्ठिर को भीष्म जी कहते हैं—

उत्पातेन सदा पुत्र प्रयतेथा युधिष्ठिर
नह्युत्थान मृते दैवं राज्ञामर्थं प्रसाधयेत्

हे पुत्र! पुरुषार्थ पर निर्भर करके सदा यत्न करना चाहिए। पुरुषार्थ के बिना राजाओं का कोई

भी अर्थ सिद्ध नहीं होता। जो पुरुष उद्योग को छोड़ सदा भाग्य पर पड़े रहते हैं, वे कभी भी किसी कार्य्य में सफलता प्राप्त नहीं कर सकते, क्योंकि संसार में देखा जाता है कि छोटे छोटे कीड़े भी जो उद्यम करते हैं वेही भविष्यत् के लिये सुख की सामग्री इकट्ठा कर अपना समय आनन्द से व्यतीत करते हैं। परन्तु जो आलसी हैं वे सदा भूखे पड़े पड़े रेंगा करते हैं।

इसलिये भीष्म जी पुरुषार्थ का उपदेश करते हैं और फिर आगे कहते हैं—

साधारणं द्वयंह्येतद्दैवमुत्थानमेवच
पौरुषं हि परं मन्ये दैवं निश्चितमुच्यते॥

पुरुषार्थ और दैव ये दोनों कारण हैं, परन्तु इन दोनों में से पुरुषार्थ ही मुख्य है। क्योंकि दैव भी पुरुषार्थ से किए हुए कर्मों के फल का नाम है और वह कर्म पिछले जन्मों के हैं। इस जन्म में जो हम शुभ या अशुभ कर्म करेंगे, वेही दूसरे जन्म में दैव कहलाएंगे। इसलिये मनुष्य को चाहिए कि सदा शुभ कर्म करता रहे।

विपत्ते च समारंभे संतापमास्म वै कृथाः
घटस्वैव सदात्मानं राज्ञामेष परोनयः।

राजाओं की परम नीति यही है कि जब कोई विपत्ति का काम आ पड़े तो संताप न करें, किन्तु अपने आप को पुरुषार्थी बनावें।

इस प्रकार भीष्म पितामह जी ने युधिष्ठिर को बहुत कुछ राज्यधर्म के विषय में उपदेश दिया। जब राज्यधर्म का उपदेश सुन चुके, तो युधिष्ठिर जी ने फिर भीष्म जी से पूछा कि मोक्ष की प्राप्ति के साधन क्या हैं यह कृपा करके कहिए। भीष्म जी बोले—

यस्यवाङ् मनसि स्यातां सम्यक् प्रणिहिते सदा
तपस्त्यागश्च सत्यं च सर्वं सर्वमवाप्नुयात्॥ ३४

जो पुरुष चक्षु श्रोत्र आदि ज्ञान इन्द्रियों को सदा उत्तम विचारों में लगाते हैं, कभी कुचेष्टाओं में नहीं फसते, और उनको अपने अधीन रखता है, और जिस पुरुष के तप त्याग एवम् सत्य ये तीन साधन हैं, वह पुरुष मोक्ष रूपी आनन्द को प्राप्त होता है।

नास्ति विद्या समं चक्षुः नास्ति सत्य समं तपः
नास्ति राग समं दुःखं नास्ति त्याग समं सुखः॥ ३५

वे पुनः कहते हैं कि विद्या के समान दूसरा नेत्र नहीं, सत्य के समान दूसरा तप नहीं, राग के समान दूसरा दुःख नहीं और त्याग के समान दूसरा सुख नहीं है। सच है जो मूर्ख पुरुष हैं वे कभी भी इन्द्रियों को वश करने के साधनों अथवा अन्य योग के अंगों को नहीं समझ सकते, क्योंकि बिना विद्या के बुद्धि खुलती नहीं, बुद्धि में प्रकाश नहीं होता। जैसे अंधेरे घर में दिये के आते ही प्रकाश हो जाता है और सब पदार्थ देख पड़ने लगते हैं, उसी प्रकार विद्या बुद्धि का प्रकाश है। सत्य व्रत पालन करने के समान कोई तप नहीं, सत्य बोलना, सत्य कहना और सत्य करना यह महान तप है, केवल इसी तप के बदले हरिश्चन्द्र संसार में चन्द्र की भांति देदीप्यमान हैं, और मिथ्या राग के समान कोई दुखप्रद पदार्थ नहीं। इसलिये, हे युधिष्ठिर! यदि तू उस शांतिधाम को करना चाहता है तो उन साधनों से मार्ग को साफ करे। फिर युधिष्ठिर जी बोले—

अनेकान्तं बहुद्वारम् धर्म्ममाहुर्मनीषिणः
किं निश्चितं भवेदत्र तन्मे ब्रूहि पितामह॥

अनु० २२ अध्याय

महात्मा लोगों ने धर्म्म के बहुत से द्वार बतलाए हैं। हे पितामह, आप कहिए कि उनमें से कौन मुख्य है।

भीष्म जी बोले—

अहिंसा सत्यमक्रोध आनृशंस्यं दमस्तथा
आर्जवञ्चैव राजेन्द्र निश्चितं धर्मलक्षणम्॥

सब प्राणियों को अपने तुल्य समझ दुःख न देना, सदा मन, वाणी और कर्म से सत्य बोलना, क्रोध का त्याग, क्रूरता को दूर करना, इन्द्रियों का

दमन, और नम्रता, हे राजाओं में श्रेष्ठ, धर्म के मुख्य लक्षण येही हैं। युधिष्ठिर जी ने फिर प्रश्न किया–

कीदृशाः साधवो विप्राः केभ्यो दत्तं महाफलम्
कादृशानांच भोक्तव्यं तन्मे ब्रूहि पितामह।

अनु० २२

हे पितामह! कौन से विप्र श्रेष्ठ हैं जिनको देने का बड़ा फल है। किन को श्रद्धा से भोजन खिलाना चाहिए, सो कृपा कर कहो।

भीष्म—

अक्रोधनाः धर्मपराः सत्यनिष्ठा दमेरताः
तादृशाः साधवो विप्रास्तेभ्यो दत्तं महाफलम्

क्रोधरहित, धर्मपरायण, सत्यवादी, इन्द्रिय-संयमी इन गुणों से युक्त जो विप्र हैं वे श्रेष्ठ हैं और उनको देना बड़ा पुण्य है।

अमानिनः सर्वसहा दृढ़ार्था विजितेन्द्रियाः।
सर्वभूतहिता मैत्रास्तेभ्यो दत्तं महाफलम्॥

अनु० २२

मान को न चाहनेवाले, सहनशील, धर्म में दृढ़, जितेन्द्रिय सब प्राणियों के हित को चाहने वाले, सब के मित्र, ऐसे पुरुषों को दान देने से बड़ा फल है।

आगे अनुशासन पर्व के १०८वें अध्याय में राजा युधिष्ठिर जी फिर पूछते हैं–

यद्वरं सर्वतीर्थानां तन्मे ब्रूहि पितामह
यत्रचैव परं शौचं तन्मे व्याख्यातुमर्हसि

हे पितामह! सब तीर्थों में श्रेष्ठ तीर्थ कौन सा है और आप यह भी कहें कि पवित्रता किस तरह होती है?

अगाधे विमले शुद्धे सत्यतोये धृतिह्रदे
स्नातव्यं मानसे तीर्थे सत्यमालम्ब्य शाश्वतम्।

मनुष्य को उचित है कि मनरूपी तीर्थ में स्नान करे। उस तीर्थ में क्या होना चाहिए? धृति रूपी तालाब। उस तालाब में जल कैसा होना चाहिए, सत्यरूपी अगाध निर्मल और शुद्ध जल हो। उस तीर्थ में स्नान करता हुआ पुरुष निरन्तर सत्य का अवलम्बन करे।

मनसा च प्रदीप्तेन ब्रह्मज्ञान जलेन च
स्नाति यो मानसे तीर्थे तत् स्नान तत्वदर्शिताम्।

प्रकाशित मन से और ब्रह्मज्ञान रूपी जल से युक्त। मानस तीर्थ में जो पुरुष स्नान करता हैं, बुद्धिमान उसीको स्नान करना ठीक मानते हैं।

युधिष्ठिर फिर पूछते हैं–

ऋषयो ब्राह्मणा देवाः प्रशंसन्ति महामते।
अहिंसालक्षणं धर्मं वेदप्रामाण्य दर्शनात्॥
कर्मणा मनुजः कुर्वन् हिंसां पार्थिवसत्तम
वाचा च मनसाचैव कथं दुःखात् प्रमुच्यते॥

अनु० प० ११४

ऋषि, ब्राह्मण और ज्ञानवान लोग वेद शास्त्र के प्रमाणों से अहिंसा की बड़ी प्रशंसा करते हैं। किस प्रकार मन वाणी और कर्म से हिंसा करने-वाला दुख से छूट सकता है?

भीष्म—

पूर्वन्तु मनसा त्यक्ता तथावाचाथ कर्मणा
न भक्षयति यो-मांसं त्रिविधिं स विमुच्यते॥

पहिले मन से फिर वाणी और फिर कर्म से त्याग कर जो पुरुष मांस को नहीं खाता, वही तीन प्रकार के पापों से बचता है। [क्रमशः

एक विद्यार्थी।

ईश्वरचन्द्र विद्यासागर

[पूर्व प्रकाशित के आगे]

विद्यासागर की साहित्यसेवा

प्यारे पाठको! सरस्वती के अगस्त के अङ्क में आपलोग हमारे चरित्रनायक को सर्कारी नौकरी छोड़ कर देशसेवा की प्रतिज्ञा करते देख चुके हैं। अब उन्होंने अपना वचन किस तरह निबाहा वह भी देख लीजिए।

वर्तमान बंगला भाषा विद्यासागर की बहुत कुछ ऋणी है। इस भाषा को सरल सुबोध कर

सर्वाङ्गपूर्ण करने वाले ये ही हैं। अधिक क्या कहें इन्हें Father of Bengali Literature (बंगला भाषा के पिता) कहना अनुचित न होगा। इनके पहिले यह भाषा बिलकुल अपूर्ण थी। छोटे छोटे बच्चों के पढ़ने लायक कोई पुस्तक न थी, तथा बंगला साहित्य के अन्य सब ग्रन्थ भी ऐसे कठिन थे कि उन्हें बंगला का ग्रन्थ न कह कर संस्कृत का ग्रन्थ कहना उचित है। सबसे पहिले इन्होंने बंगला गद्य में वासुदेवचरित्र लिखा। इसके पीछे सन् १८४७ ईस्वी में संस्कृत की बैतालपचीसी का बंगला में अनुवाद किया। यह अनुवाद बहुत ही उत्तम हुआ और भाषा के विचार से यह विद्यासागर की सर्वोत्कृष्ट रचना है। बड़े बड़े पण्डितों ने इस पुस्तक की प्रशंसा की है। इसके पीछे सन् १८४८ ईस्वी में मार्शमैन साहब के इतिहास के आधार पर इन्होंने बंगाल में अङ्गरेजी अमलदारी से ले कर अपने समय तक का एक इतिहास लिखा। यह इतिहास बहुत दिनों तक बंगाल के वर्नाक्यूलर श्रेणियों में पढ़ाया जाता था। इसके सिवाय इन्होंने सन १८५० ईस्वी में Chamber's Biography नामक पुस्तक का तर्जुमा कर जीवनचरित्र नामक एक पुस्तक बनाई, तथा सन् १८५१ ईस्वी में Chamber's Rudiments of Knowledge के आश्रय पर बोधोदय नामक पुस्तक लिखी। इसकी भाषा बड़ी सरल है और आज तक यह पुस्तक बङ्गाल प्रान्त के स्कूलों में पढ़ाई जाती है। ईस्वी सन् १८५५ में महाकवि कालिदास कृत शकुन्तला नाटक के आधार पर इन्होंने शकुन्तला नाम का एक अति सुन्दर बंगला उपन्यास लिखा। इसकी भाषा ऐसी सरल और मनमुग्धकारिणी है कि एक बेर पुस्तक हाथ में उठाने पर बिना समाप्त किए उसे छोड़ने का जी नहीं चाहता। इसी वर्ष इन्होंने विधवाविवाह विषयक पहिली पुस्तक लिख कर प्रकाशित की। इस पुस्तक के प्रकाशित करने से क्या क्या उत्पात हुए इसका ब्योरा आगे लिखा जायगा। सन् १८६० में इन्होंने महाभारत का बंगला अनुवाद करने का विचार किया, परन्तु किसी कारण से केवल उपक्रमणिका मात्र छप सकी। यह उपक्रमणिका ऐसी अच्छी हुई है कि उसे देखकर सहज ही में अनुमान हो सकता है कि यदि सम्पूर्ण ग्रन्थ लिखा जाता तो बंगला गद्य का वह एक अपूर्व ग्रन्थ होता।

सन् १८६२ ईस्वी में "सीतार बनवास", १८६८ में आख्यानमञ्जरी, १८६९ में व्याकरणकौमुदी, १८७० में सटीक मेघदूत और रोग की अवस्था में वर्द्धमान रहते समय Comedy of Errors का अनुवाद कर भ्रान्तिविलास नामक ग्रन्थ बनाया। इनके व्याकरण की उपक्रमणिका बनाने का हाल पहिले लिखा जा चुका है। यों तो सब मिला कर इन्होंने ५२ ग्रन्थ लिखे और अनुवाद किए, परन्तु उनकी विद्या बुद्धि और अनुभव का परिचय विधवाविवाह विषयक ग्रन्थ से मिलता है। इसके सिवाय कुलीन ब्राह्मणों के बहुविवाह का दोष दिखा कर इन्होंने कई छोटी छोटी पुस्तकें लिखी हैं। इनकी पुस्तकों में दो बातें विशेष ध्यान देने योग्य हैं। एक तो इनकी भाषा बड़ी सरल और मधुर है और दूसरे बंगला भाषा में विराम चिन्ह इत्यादि की चाल इन्हीं ने सब से पहिले चलाई। उस समय के प्रसिद्ध पत्र बङ्गदर्शन, तत्वबोधिनी, सोमप्रकाश इत्यादि सामयिक पत्रों में इनके लेख प्रायः ही रहा करते थे, यहाँ तक कि पत्रों की भाषा का भी सुधार इन्हीं से हुआ। इनकी साहित्य चर्चा से बंगला गद्य की काया ही पलट गई।

विद्यासागर का स्त्रीशिक्षा से प्रेम

बङ्गललनाओं के परम मित्र बङ्गाल एजुकेशनेल काउन्सिल के भूतपूर्व सभापति ड्रिङ्कवाटर बेथ्यून साहब हमारे चरित्रनायक के परम मित्र थे। इन दोनों मित्रों को परस्पर स्त्रीशिक्षा के विषय में बहुत कुछ सहायता मिलती थी। विद्यासागर स्त्रीशिक्षा के कैसे प्रेमी थे यह पहिले ही दिखलाया जा चुका है, क्योंकि बङ्गाल प्रान्त में बहुत सी कन्या पाठशाला

स्थापित करने पर जब उन पाठशालाओं के ख़र्च का बिल डाइरेकृर यङ्ग साहब ने स्वीकार नहीं किया, तब इन्हें अपने पास से रुपए उधार ले कर उन पाठशालाओं को चलाना पड़ा। इस काम में उन्हें कई सदाशय अंग्रेज़ मित्रों से भी सहायता मिलती थी।

सन् १८६६ ईस्वी में जब अबलाहितैषिणी मिस कार्पेन्टर कलकत्ता में आईं, तो विद्यासागर से भेंट कर बड़ी प्रसन्न हुईं और शीघ्र ही दोनों में घनिष्ट मित्रता हो गई। एक दिन का ज़िकर है कि कुमारी कार्पेन्टर के कहने से ये दो अङ्गरेज़ों के साथ किसी ग्राम की कन्यापाठशाला को देखने जा रहे थे। आगे गाड़ी में दो अंग्रेज़ अफ़सरों के साथ ये और पीछे एक गाडी में मिस कार्पेन्टर आ रही थीं। संयोगवश कहीं मोड़ घूमते समय विद्यासागरवाली गाड़ी उलट गई और विद्यासागर गाड़ी से छटक कर पेट के बल भूमि पर जा गिरे और गिरते ही बेहोश हो गए। पीछे से जब मिस कार्पेन्टर की गाड़ो आई और उन्होंने हमारे चरित्रनायक की यह दुर्दशा देखी तो चट गाड़ी खड़ी करवा कर उतर आईं और वहीं मार्ग में बैठ कर विद्यासागर का सिर गोदी में ले रूमाल से हवा करने लगीं। होश आने पर उन्हें गाड़ी में बैठा कर घर पहुंचवा दिया। इस दैवी दुर्घटना से हमारे चरित्रनायक के गुर्दे में बड़ी सख़्त चोट आ गई, जिस कारण से वे सदा शय्याग्रस्त रहने लगे। यद्यपि बीच बीच में उनकी तबियत अच्छी हो जाती थी, परन्तु रोग जड़ से न छूटा। उसी दिन से उनके शरीर और चित्त की शान्ति जाती रही। यह विद्यासागर ही के उद्योग का प्रताप था कि उनकी मृत्यु के पीछे स्त्रीशिक्षा का इतना प्रचार हो गया कि सन् १८९४ ईस्वी में कलकत्ते की बङ्गाली शिक्षित स्त्रियों ने अपने मृत शुभाकांक्षी पण्डित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के स्मारक के लिये १६७०) रु० इकट्ठा करके कलकत्ता विश्वविद्यालय के हाथ में इसलिये अर्पण कर दिया कि तीसरी श्रेणी में पढ़ कर जो हिन्दू बालिका एन्ट्रेन्स पास करने के लिये आगे पढ़े उसे दो वर्ष के लिये एक छात्रवृत्ति (Scholarship) दीजाय।

विद्यासागर का विधवाविवाह के लिये उद्योग

यह बात कदाचित् आप लोगों से छिपी नहीं है कि विद्यासागर बङ्गललनाओं के परम मित्र थे। अपनी बालिका गुरुपत्नी के वैधव्य से उन्होंने दुःखित हो अतिविलाप कर अन्त में मनही मन जो प्रतिज्ञा की थी वह भी आप लोग पढ़ चुके हैं। हमने उस समय उनकी प्रतिज्ञा का खुलासा नहीं किया था और कहा था कि आगे चल कर मालूम होगा। वह प्रतिज्ञा और कुछ नहीं केवल यही थी कि "तन मन धन न्योछावर कर कुलीनों के बहुविवाह की चाल को उठाना और विधवा-विवाह चला कर बङ्गदेश की बालविधवाओं के दारुण कष्ट का निवारण करना।"

अतएव काम का समय आते ही उन्होंने इस उद्योग में हाथ लगा दिया, परन्तु इस काम में हाथ डालने के पहिले उन्हें शास्त्रों के प्रमाण संग्रह करने में बड़ा परिश्रम करना पड़ा। अन्त को खोजते खोजते पराशरसंहिता में "नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीबे च पतिते पतौ। पञ्चस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते॥" इसी प्रमाण के आधार पर उन्होंने विधवाविवाह का एक पुस्तक लिख कर बड़ी युक्तिओं से विधवा विवाह शास्त्रोक्त सिद्ध किया। फिर पिता माता की आज्ञा लेकर सन् १८५३ ईस्वी में वह पुस्तक प्रकाशित की। इस पुस्तक के प्रकाशित होते ही बङ्गाल प्रान्त भर में 'शान्त समुद्र में एका एक तूफान' आने की भांति बड़ा आन्दोलन मच गया। घर घर इसीकी चर्चा होने लगी। चारों ओर से जहां जाइए वहां विधवाविवाह और विद्यासागर ही की चर्चा सुनाई देती थी। बहुत से लोगों ने विद्यासागर की युक्ति का खण्डन कर छोटी छोटी पुस्तकें बनाई, जिसमें उन्होंने विद्या-

[सा]गर को बहुत कुछ खोटी खरी भी सुनाई। [सम]ाचारपत्रों को तो नया मसाला मिल गया। उन्होंने भी विद्यासागर की युक्ति का खण्डन कर [उ]न पर मनमानी गालियों की बौछार की। किसी [ने] ऊपर लिखे हुए पराशरसंहिता के स्पष्ट अर्थ [प]र पानी फेर कर उसका मनमाना अर्थ लगाना [प्रा]रम्भ किया। सारांश यह कि 'सात महारथियों [ने] अपना अपना अस्त्र शस्त्र ले चारों ओर से [म]हावीर अभिमन्यु को घेर लिया।' परन्तु जैसे [उ]स महावीर ने उन सब महारथियों के दांत खट्टे [क]र दिए थे, वैसेही इन लोगों के जवाब में सन् १८५५ ईस्वी में एक बड़ा ग्रन्थ जिसमें उन सब [छो]टी छोटी पुस्तकों और समाचार पत्रों के आक्षेप [क]ा उत्तर था, लिख कर उन्होंने प्रकाशित किया, [जि]ससे सब विपक्षियों के मुंह बन्द हो गए और [ह]ज़ारों आदमी हमारे चरित्रनायक के पक्ष में [हो] गए। यद्यपि इन पर आक्षेप कर लोगों ने [अ]पने लेखों में इन्हें असंख्य गालियां दी थीं, [प]रन्तु इनके जवाब में हमारे चरित्रनायक ने बड़ी [ही] मधुरता के शब्दों का व्यवहार कर अति प्रबल [यु]क्ति का सहारा ले उन लेखकों को लज्जित कर [दि]या। सब अपनी अपनी दुम दबा कर खिसक [ग]ए। सच है, ठण्ढा पानी सहज ही में प्रबल अग्नि [को] शान्त कर देता है। इस कार्य्य में आगे बढ़ने [मे]ं विद्यासागर के सामने और एक बड़ी भारी [बा]धा आ खड़ी हुई। वह यह थी, बङ्गला दाय-[भ]ाग (जिसके अनुसार बङ्गालियों के जायदाद [का] फ़ैसला होता है) के अनुसार पुनर्विवाहित [स्त्रि]यों की सन्तान अपने पिता की सम्पत्ति की [उ]त्तराधिकारिणी नहीं हो सकती थी। इस लिये [ह]मारे चरित्रनायक को गवर्मेण्ट के पास एक [ऐ]सा कानून बनाने के लिये कि जिससे विधवा के [दू]सरे पति की सन्तान अपने पिता की सम्पत्ति [क]ी उत्तराधिकारिणी हो सके, दरखास्त देनी पड़ी। [इ]स दरखास्त पर बङ्गप्रान्त के बड़े बड़े रईस और [प]ण्डितों के पचीस हज़ार से कम दस्तख़त न थे। उस समय के वर्द्धमान के राजा महताबचन्द ने एक जुदी दरखास्त भेजी जिसमें उन्होंने विद्यासागर के मत का बड़ी युक्ति से पोषण किया। अतएव लाट साहेब की कौंसिल में बहुत कुछ वादानुवाद के पीछे यह कानून पास हो गया कि "यदि विधवा का दूसरा विवाह हो तो उसका पुत्र अपने पिता की सम्पत्ति का पूरा मालिक हो सकेगा"।

इस कानून के पास होने से विद्यासागर का उत्साह और भी बढ़ गया और वे तन मन धन से इस उद्योग में लगे। अन्त को बङ्गला सन् १२६३ की २३ वीं अगहन को कलकत्ते में एक विधवा ब्राह्मण कन्या का विवाह बड़े समारोह से हुआ जिसके प्रधान कारण हमारे चरित्रनायक ही थे। इस विवाह की बरात में असंख्य आदमियों की भीड़ थी। अनहोनी को होते देख कर सब लोग चकित हो रहे थे। इस विवाह में कलकत्ते के बड़े बड़े रईस और विद्वान पण्डित सम्मिलित हुए थे। पत्नी की अवस्था केवल दस वर्ष की थी। यह चार वर्ष की अवस्था में विधवा हो गई थी। विवाह इत्यादि का सब कार्य्य कुशलपूर्वक हो गया। थोड़े ही दिन पीछे और भी ऐसा ही एक व्याह हुआ। फिर तो धीरे धीरे ऐसे कई व्याह हुए, जिन सभों में विद्यासागर ने बहुत कुछ सहायता दी। एक तो लोग विद्यासागर के पहिले ही शत्रु थे, अब विधवाविवाह होने पर इनके विपक्षी आग बबूला हो गए, यहां तक कि इनके पास तरह तरह की धमकियों की बेनाम चिट्ठियां आने लगीं। परन्तु इस धर्मवीर ने इन सब तुच्छ बातों को कुछ भी परवाह न की। परन्तु हां, साथ में एक शरीर-रक्षक सदा रखने लगे। एक दिन की बात है कि आधी रात को संस्कृत कालेज से घर जाते समय मार्ग में दस बारह आदमियों ने हाथों में छुरा लिए हुए इन्हें घेर लिया। साथ में श्रीमन्त नाम का रक्षक लाठी लिए मौजूद था जिसे देखते ही दुष्ट सब तीन तेरह हो गए। सच है गुप्तहन्ता

सदाही से कायर होते चले आए हैं। अतएव हमारे चरित्रनायक निर्विघ्न घर पहुंच गए। उनके मित्र उनसे सदा इस बात का अनुरोध किया करते थे कि आप रात के बाहर न जाया करें, जिसे वह हँस कर टाल देते थे। विद्यासागर के लाखों शत्रु थे जो उन्हें हर तरह से हानि पहुंचाने की चेष्टा किया करते थे। परन्तु इस ब्राह्मणकुमार ने जो अपने मुंह से कहा था कि "मेरा व्रत चिता-भस्म के साथ समाप्त होगा", वह अपने कामों से उसने कर दिखाया। वाक्यवीरो! तनिक इस महात्मा की ओर ध्यान दो और देखो कि सच्ची प्रतिज्ञा किसे कहते हैं। हममें से हजारों आदमी ऐसे निकलेंगे जो अपने कुटुम्ब और जन समाज के लोगों के थोड़े से विरोध से डर कर अपनी आत्मा का हनन कर डालते हैं, या यों कहिए कि अपने सिद्धान्तों से गिर जाते हैं। यदि वे अपनी आत्मा को ऐसा दृढ़ बनावें तो क्या उनका कोई बाल भी बांका कर सकता है। विद्यासागर के लाखों शत्रु थे। किसीने उनका घर फूंक देने, और किसीने उनके मार डालने तक की धमकी दी, परन्तु आत्मिक वल से उत्साहित विद्यासागर का क्या कोई बाल भी बांका कर सका? भाइयो! जनसाधारण का यह भय सर्वथा निर्मूल है। जिसकी आत्मा सचाई पर दृढ़ता से आरूढ़ है उसका कोई क्या कर सकता है। महान पुरुषों और साधारण आदमियों में यही तो विभेद है कि पहिले प्रकार के मनुष्य सचाई के सामने प्राणों का भी परवाह नहीं करते और दूसरे तनिक ही में अपने सिद्धान्तों से कोसों नीचे जा गिरते हैं। इस कार्य में पहिले पहल हाथ डालते समय कई मित्रों ने हमारे चरित्रनायक को सहायता देने की प्रतिज्ञा की थी, परन्तु जब कार्य का समय आया तब सबने अपनी अपनी राह नापी। ऐसे विवाह इत्यादि कराने में विद्यासागर के हजारों रुपए खर्च होते थे। धीरे धीरे उन्हें द्रव्य की तङ्गी ने आ घेरा। द्रव्याभाव से यह काम बन्द सा हो चला। लोगों ने यह कहना आरम्भ किया कि "संयोगवश दो एक विवाह हो गए। अब क्या होना है।" दुर्भाग्यवश कहीं इसी समय (सन् १८५७ ईस्वी) में सरकारी सिपाहियों ने गदर मचा दी, जिस कारण सर्कार को भी बहुत कुछ आफत झेलनी पड़ी। लोगों ने हौरा उड़ा दिया कि विधवाविवाह का कानून ही इस गदर का कारण हुआ है। अतएव कुछ दिनों तक यह काम रुका रहा, परन्तु विद्रोह शान्त होने के पीछे ही फिर से ईश्वरचन्द्र कमर कस कर अपने कर्तव्य पर तत्पर हो गए। अतएव जब विरोधियों ने देखा कि "यह कैसा बैरी है जो मर कर भी नहीं मरता," तब वे सब हार कर चुप हो बैठे। इसके पीछे एक आठ वर्ष की बिधवा कन्या का फिर विवाह हुआ। पाठको! आप लोग सुन के आश्चर्य करेंगे कि यह लड़की डेढ़ वर्ष की अवस्था में विधवा हो गई थी। इसका फिर से विवाह होना उचित था या नहीं, इसके विचार का भार हम पाठकों ही पर छोड़ते हैं।

एक दिन विद्यासागर के किसी मित्र ने उनसे पूछा कि "देश में इतने आदमियों के रहते आप अकेले इस काम के लिये क्यों जान दे रहे हैं," जिस पर उन्होंने उत्तर दिया कि "काम आरम्भ करते समय मैं अकेला थोड़े ही था। बहुतों ने सहायता देने की आशा दी थी। परन्तु जो मा के लड़के थे वे चुपचाप अपनी अपनी माता की गोदी में जा छिपे और मैं बाप का लड़का था इसलिये काम के समय मैदान में डटा रहा"। इस काम से लोग यह भी कहने लगे कि "हां! दूसरों के धर्म का नाश करके विद्यासागर कीर्ति बटोर रहे हैं। अपने यहां ऐसी चाल चलावें तो मालूम पड़े"। अतएव जब विद्यासागर के एकमात्र पुत्र नारायणचन्द्र का विवाह एक बिधवा से हुआ तब तो ऐसा कहनेवालों के मुख पर हवाइयां उड़ने लगीं। काम वही कि जिसे शत्रु भी मान जाय।

बहुत से लोग यह पूछ सकते हैं कि विद्यासागर के इतने उद्योग पर भी विधवाविवाह प्रचलित क्यों न हुआ। इसका उत्तर स्वयम् वे अपनी पुस्तक में एक जगह लिख गए हैं कि "मुझे आशा थी कि किसी सामाजिक रीति को शास्त्रोक्त साबित करने ही से इस देश के लोग उसे मान कर चलेंगे। परन्तु मेरा यह विश्वास जाता रहा। मैं यह नहीं जानता था कि इस देश के लोग लौकिक व्यवहार के सामने वेदशास्त्रों को कुछ भी नहीं गिनते।" साथ ही अपनी पुस्तक में वे एक जगह लिखते हैं कि "धन्य देशाचार! तेरी महिमा अलौकिक है। तू अपने भक्तों को गुलामी की जञ्जीर में जकड़ कर उन पर स्वतन्त्रता से राज्य कर रहा है।" इसके पीछे कुलीनों के बहुविवाह का प्रतिवाद कर उन्होंने गवर्मेण्ट के पास दरखास्त भेजी, परन्तु एक साथ ही समाज संस्कार के इतने भारी भारी कामों में गवर्मेण्ट को आगे कदम बढ़ाने का साहस न हुआ। कुलीनों के बहुविवाह की जो सूची विद्यासागर ने इकट्ठी की थी उसका भी यहां कुछ आभास दे देना अनुचित न होगा। इस सूची में एक ५५ वर्ष के वृद्ध के अस्सी, एक अट्ठारह वर्ष के युवक के ग्यारह और बीस वर्ष वाले के सोलह विवाह हैं। और एक सूची जो छपी नहीं उसमें एक महात्मा का नाम है जिन्होंने १०७ विवाह किए थे। बारह वर्ष के लड़के के छ और पांच वर्ष के बालक के दो विवाह हुए थे। यद्यपि अब यह प्रथा प्रायः कम हो गई है तो भी सन् १८९१ ईस्वी की सूची में, जो सञ्जीवनी पत्र में छपी थी १०, २०, ५०, ६०, ७० तक एक एक आदमी के विवाह लिखे हैं।

फिर दूसरी बार लगभग २५००० आदमियों के हस्ताक्षर करवा के विद्यासागर ने इस सत्यानाशी प्रथा के रहित करनेके लिये दूसरी दर्ख़ास्त दी, परन्तु फिर भी वह दर्ख़ास्त नामञ्जूर हुई।

विद्यासागर प्रायः दुखित हो कर कहा करते थे कि "हाय अबलागण! तुम लोगों ने किस पाप से भारत में आकर जन्म ग्रहण किया है?" उनकी आन्तरिक इच्छा थी कि अपनी बहुविवाह की पुस्तक का अङ्गरेज़ी अनुवाद कर बिलायत जा कर श्रीमती महाराणी विक्टोरिया को भेंट दूँ और उनसे पूछूं कि स्त्री के राज्य में भारत की अबलाओं की यह दुर्दशा क्यों होती है। परन्तु कराल काल ने उन्हें अवसर नहीं दिया कि अपनी यह इच्छा पूर्ण करते।

सन् १८६८ ईस्वी में जो बङ्गाल टेम्परेंस सोसायटी स्थापित हुई थी उसके ये एक माननीय सभासद और पूर्ण सहायक थे।

विद्यासागर का शिक्षाविस्तार

जिस समय ये इन्स्पेकृर आफ़ स्कूल्स् का काम करते थे तो एक बार दौरा करते करते अपनी जन्मभूमि वीरसिंह ग्राम में पहुंचे। उस ग्राम में बालकों के पढ़ने लायक कोई स्कूल न था अतएव आप ने एक टुकड़े जमीन पर जिसे इसीलिये मोल ले रक्खा था, स्कूल का मकान बनवाना प्रारम्भ कर दिया। विद्या और शिक्षा फैलाने में उनका कैसा आन्तरिक उत्साह था इसका प्रमाण इसीसे मिल जाता है कि उपरोक्त मकान की नीव खोदते समय पहिले दिन जब कोई मज़दूर न मिला तो इन्होंने अपने भाइयों के साथ कुदाली, फरसा ले एक दिन स्वयम् यह काम किया। किसी कारण से सङ्कल्पित कार्य एक घड़ी भी रुका रहना उन्हें शूली की नाईं खटकता था। एक ओर स्कूल का मकान बनने लगा दूसरी ओर एक स्थान भाड़ा लेकर स्कूल का काम आरम्भ हो गया। पांच ही सात दिन में इस स्कूल में सैंकड़ों लड़के भर्ती हो गए। इसके सिवाय वहीं एक कन्या पाठशाला भी खोली और किसानों के लड़कों के लिये Night School खोल कर उनकी शिक्षा का मार्ग सुगम कर दिया। इस स्कूल में गरीब किसानों के लड़के दिन भर खेती इत्यादि करने के पीछे रात को पढ़ते थे। इन सब स्कूलों में फीस कुछ भी नहीं ली जाती थी। सब मिला कर इन

स्कूलों में ५०० रु० मासिक खर्च होता था। पहिले तो कुछ दिन तक विद्यासागर अपने पास से यह खर्च करते रहे। परन्तु फिर सर्कार से भी सहायता मिलने लगी। यह विद्यालय अब तक विद्यासागर की माता के नाम पर "भगवती विद्यालय" के नाम से वीरसिंह ग्राम में मौजूद है। दरिद्र विद्यार्थियों को भोजन वस्त्र तो वह सदा अपने पास से दिया ही करते थे। इस वीरसिंह ग्राम में कोई सुयोग्य चिकित्सक न था। अतएव परोपकारी महात्मा विद्यासागर ने अपने खर्च से कई युवकों को डाकृरी पढ़ा कर वीरसिंह ग्राम में दातव्य औषधालय और विद्यालय खुलवा दिया।

सन् १८४८-४९ ईस्वी में जब यह संस्कृत कोलेज में नौकरी करते थे, उस समय अपने मित्र मदनमोहन तर्कालङ्कार के साझे में इन्होंने "संस्कृत प्रेस" नाम का एक छापाखाना खोला। इस छापेख़ाने में वह अपनी बनाई हुई पुस्तक आदि छापते थे। कुछ दिन पीछे तर्कालङ्कार के मर जाने पर विद्यासागर ने उनकी स्त्री को प्रेस के आधे हिस्से का मूल्य देकर आप छापाखाना चलाना आरम्भ किया, और साथ ही "संस्कृत प्रेस डिपोज़िटरी" नाम का एक पुस्तकालय भी स्थापित किया जो अब तक विद्यमान है।

उन दिनों सर्कारी स्कूलों में बड़ी फ़ीस लगती थी। यद्यपि दूसरी ओर कृष्टान पादड़ी लोगों ने कम फ़ीसवाले स्कूल खोल रक्खे थे, परन्तु लोग इस डर से कि लड़के कृष्टान हो जांयगे, अपने बालकों को उनमें नहीं भेजते थे। इसलिये सन् १८५९ ईस्वी में कई एक उद्योगी बङ्गाली युवकों ने "कलकत्ता ट्रेनिङ्ग स्कूल" नाम का एक स्कूल स्थापित किया, जिसमें कम फ़ीस पर शिक्षा देने की व्यवस्था की गई। इस स्कूल की कमेटी के विद्यासागर भी एक मेम्बर थे। कुछ दिन पीछे जब कमेटी से स्कूल न चल सका, तो सब मेम्बर लोग विद्यासागर ही पर इसका बोझा डाल कर अलग हो बैठे। जब से विद्यासागर इसके कर्ता धर्ता हुए तब से स्कूल की नित्य नवीन उन्नति होने लगी। उन्होंने इस विद्यालय की कार्य व्यवस्था के लिये एक कमेटी बनाई जिसके सेक्रेटरी वह आप हुए और कमेटी से नवीन नियम पास करवाकर इस स्कूल का नाम Metropolitan Institution रक्खा*। अब तक तो इस स्कूल में एण्ट्रेन्स तक ही पढ़ाई होती थी, परन्तु सन् १८७२ ईस्वी में विश्वविद्यालय ने इन्हें कोलेज क्लास खोलने की आज्ञा दे दी। सर्कारी प्रेसिडेन्सी कोलेज में १२) फ़ीस लगती थी, परन्तु उन्होंने ३) कर दिया। पहिले वर्ष जब कोलेज के लड़के परीक्षा में भेजे गए तो लड़कों के पास होने के विचार से यह कोलेज दूसरे नम्बर पर रहा। सन् १८८१ में Matropolitan से छात्र बी० ए० की परीक्षा में भेजे गए जिसका फल अच्छा रहा। इसके कुछ दिन पीछे एम० ए० और बी० एल० के छात्र भी भेजे गए। फिर तो कोलेज चल निकला। विद्यासागर ने अपने पास से बहुत सा रुपया खर्च कर कोलेज का एक पुस्तकालय बनवा दिया। इस विद्यालय की उन्नति के लिये इन्होंने हज़ारों रुपए अपने पास से खर्च किए, परन्तु कभी भी विद्यालय की रोकड़ से एक पैसा नहीं लिया। इस विद्यालय की उन्नति में उन्होंने तन मन धन सब अर्पण कर दिया था। कई हज़ार रुपया कर्ज करके इन्होंने विद्यालय की इमारत भी बनवा दी थी, जिस ऋण को उन्होंने धीरे धीरे अपनी जीवित दशा ही में चुका दिया था। इनके पीछे अब इस विद्यालय का कार्य एक कमेटी के द्वारा चलता है, जिसमें कलकत्ते के कई रईस और शिक्षित लोग मेम्बर हैं और साथ ही इस विद्यालय की दो शाखा स्कूल कलकत्ते के बहूबजार और बड़े बजार में भी मौजूद हैं।

* इस स्कूल में कलकत्ते रहते समय सन् १८९४ ईस्वी से १८९९ ईस्वी तक पांच वर्ष मैंने भी पढ़ा था।

विद्यासागर का पारिवारिक और सामाजिक जीवन

विद्यासागर अपने माता पिता के कैसे भक्त थे, इसका आभास तो पहिले ही दिया जा चुका है। विना माता पिता से पूछे वे किसी काम में भी हाथ नहीं डालते थे, यहां तक कि जब इन्होंने विधवाविवाह प्रचार की पुस्तक लिखी तो उसे भी अपने माता पिता से आज्ञा लिये विना नहीं छपाया। इनका स्वभाव बड़ा हंसोड़ था। अपने परिवारपालन की अपेक्षा वह दीन दुखियों का पालन करना अच्छा समझते थे। अपने घर के लिये ग्राम के बिने हुए मोटे कपड़े काम में लाते और दीन दुखियों के लिये गट्ठर के गट्ठर बढ़िया बढ़िया नवीन वस्त्र, दवाई और नए बने हुए चमकते हुए रुपए पैसे रेजगारी सब सदा साथ में रक्खा करते थे। जब ये अपने ग्राम में जाते तो उस ग्राम के करीब दुखी लोगों को इतनी प्रसन्नता होती कि जितनी इनके घर वालों को भी नहीं होती थी। विद्यासागर की माता भी बड़ी दानी थीं। दिन भर उनके घर कङ्गालों का जमघट्ट लगा ही रहता था। सबको भोजन कराकर सन्ध्या को आप खाती थीं। सच है "दानी माता की सन्तान दानी क्यों न हो।" विद्यासागर की अपने भाइयों से कभी नहीं बनती थी। आप लोग कदाचित् पूछ सकते हैं कि जिस विद्यासागर के स्नेहपाश में बँध कर गरीब दुखिए सब मुग्ध से हो रहे थे, उनको भाई से क्यों न बनी? इसका उत्तर यह है कि विद्यासागर स्वतन्त्रस्वभाव के मनुष्य थे। उन्होंने अपने भाइयों पर विश्वास करके जो काम उनके सपुर्द किया वहीं काम मिट्टी में मिल गया। परन्तु तिस पर भी सब भाइयों को यथायोग्य मासिक द्रव्य की सहायता तो वे दिया ही करते थे। सब मिलाकर अनाथ विधवाओं को मासिक सहायता और दीन दुखियों को अन्न वस्त्र देने में लगभग ८००) मासिक खर्च होता था।

सन् १२७७ (बँगला) में हमारे चरित्रनायक के पिता का काशी में स्वर्गवास हुआ, तथा सन् १२८३ में इनकी माता भी परलोक को सिधारीं। पिता माता के मरने से इन्हें बड़ा दुःख हुआ। घर से इनका चित्त विरक्त हो गया। इसलिये सब घर बार छोड़ कर कलकत्ते में एक निराले स्थान में रहने लगे। परन्तु इस जगह भी उनका स्वाभाविक परोपकार बन्द नहीं हुआ। वह सर्वदा दीन दुखियों की दातव्य चिकित्सा होम्योपेथिक रीति से किया करते थे। इस निराले में उन्हें पुस्तक इत्यादि पढ़ने का बहुत अवकाश मिलता था। इनमें यह एक बड़ा भारी गुण था कि जिससे एक बार मिलें उसे अपना स्नेही बना लिया। यदि वह गरीब हुआ तो बस उसी दिन से मानों इन्होंने उसे अन्न वस्त्र देने का ठीका ले लिया। इसके सिवाय अपने सम्भ्रान्त मित्रों की सेवा भी वे यथा साध्य किया करते थे।

कासिम बाजार की स्वर्गवासिनी महारानी स्वर्णमयी सी० आई० ई० इन्हें बहुत मानती थीं और समय समय पर विद्यासागर को इनसे ऋण इत्यादि की बहुत कुछ सहायता मिलती थी। विद्यासागर के कई मित्र अकाल में काल के गाल में चले गए। उनके परिवार के पालन पोषण और बाल बच्चों के लिखाने पढ़ाने का सब प्रबन्ध येही करते थे। यद्यपि विद्यासागर सैकड़ों रुपए महीने का दान करते थे, परन्तु एक कौड़ा भी व्यर्थ नहीं खर्च करते थे। उन्होंने अपने जन्म भर में एक बार गाड़ी किराए में मंगाई थी। जहां जाना होता पैदल ही जाते थे। यदि कोई पूछता तो कहा करते कि जब तक शरीर चलता है वृथा रुपए खर्च करने की क्या जरूरत है। जब एक मोटी धोती चादर और ॥) के चट्टी जूते से काम चल जाता है तब चोगा चपकन न पहिना तो क्या शान मारी गई। घर में यदि कोई चीज पुड़िए में आती तो उस पुड़िया के सुतली कागज इकट्ठे कर रखते। उनके पास को आई हुई चिट्ठियों में यदि कोई अंश सादा बचा रहता तो उसे बड़ी सावधानी से छूरी से

काट काट कर इकट्ठा कर रखते और फुटकर काम की बातें लिखने में इन्हें काम में लाते थे।

विद्यासागर की लोकसेवा

सन् १८८३ ईस्वी में जब बङ्गाल के प्रसिद्ध कवि माइकेल मधुसूदन युरोप गए तो उन्हें वहां रुपए की बड़ी तङ्गी हो गई। द्रव्याभाव से उनकी बड़ी दुर्दशा हुई, यहां तक कि उन्हें फ्रान्स के एक जेल में जाने की पारी आ गई और उनकी स्त्री और पुत्रों को सिवाय अनाथाश्रम के आश्रय लेने के और कोई उपाय न रहा। यद्यपि माइकल का भारतवर्ष में करीब ४०००) अपने मित्रों से पावना था, परन्तु तार पर तार भेजने पर भी किसीने कुछ जवाब न भेजा। अन्त को निराश हो इन्होंने विद्यासागर (दयासागर कहिए) के पास अपनी दुर्दशा जतला कर एक चिट्ठी भेजी। विद्यासागर ने उनके मित्रों के यहां बहुत दौड़धूप की कि जिसमें कोई महाशय तो कृपा कर माइकल का जो रुपया देना है उसे इस विपत्ति के समय दे दें, परन्तु सबों ने कुछ न कुछ बहाना कर दिया। विद्यासागर के पास उस समय फूटी कौड़ी भी न थी, अतएव १५००) ऋण लेकर उन्होंने माइकेल की सहायता के लिये फ्रान्स भेज दिया; और समय समय पर और भी बहुत से द्रव्य से सहायता देते रहे। अन्त को अपने खर्च से उन्हें विलायत में बारिष्टरी पास करवा कलकत्ते बुलवा भेजा। परन्तु माइकेल एक दिन भी विद्यासागर के कहने पर न चले। वे बड़े फ़जूल-खर्च थे, उनके हाथ में रुपया आया और दो दिन में स्वाहा! ऐसे आदमी के हाथ में पड़ कर विद्यासागर को भी बड़ी आपत्तियां झेलनी पड़ीं। जब तगादगीरों से तङ्ग हो कर विद्यासागर ने माइकेल से द्रव्य की सहायता मांगी तो उन्होंने कोरा जवाब दिया। इसलिये विद्यासागर को लाचार हो अपने संस्कृत प्रेस का तीन हिस्से में से दो हिस्सा बेचना पड़ा।

आप लोग सायत जानते होंगे कि सन् १८६७ ईस्वी में बङ्गाल प्रान्त में घोर अकाल पड़ा था। विद्यासागर ने चेष्टा कर गवर्मेण्ट से तो सहायता दिलवाई ही परन्तु स्वयम् भी ग्रामों में जा जा कर हज़ारों रुपया खर्च कर वे दरिद्र किसानों को भोजन, वस्त्र और औषधि इत्यादि से रक्षा करते रहे। चार पांच महीने तक उनका यह परिश्रम जारी रहा, यहां तक कि डोम, चमार, मेहतर—जिन्हें लोग छूने से भी घृणा करते हैं, उन्हीं के सिर में इस अकाल के समय ये अपने हाथों से तेल लगा दिया करते। इस अकाल के समय में उन्होंने अपना सब कुछ दीन दुखियों की सेवा में लगा कर हज़ारों भूख से व्याकुल मनुष्यों के प्राण बचा लिए। कहिए वाक्यवीर देशहितैषी महाशयो! आपमें से कितने आदमियों ने संवत् १९५६ के अकाल और महामारी में दीन किसानों की रक्षा की? क्या विद्यासागर के पास धन था? क्या बहुत से मित्रों की सहायता थी? नहीं, नहीं। केवल सच्ची लोकसेवा की प्रबल इच्छा उनके हृदय में रात दिन बनी रहती थी, जिस कारण उन्होंने वह काम दिखाया कि जिसका जोड़ा सायद बिरला ही देख पड़ेगा। सत्तर हज़ार आर्य-सन्तान संवत् १९५६ के अकाल में कुध्यान बन गए, लाखों किसान और चौपाए नाश हो गए। हाय! हम लोगों में से क्या एक भी विद्यासागर (दया-सागर) नहीं निकला?

विद्यासागर की तबियत सदा गड़ बड़ रहा करती थी। उन दिनों बङ्गाल प्रान्त के वर्द्धमान ज़िले की आबहवा बहुत उत्तम समझी जाती थी, अतएव हवा बदलने के लिये ये प्रायः वहां जाकर रहा करते थे। महाराज वर्द्धमान भी इनको बहुत मानते थे। दुर्भाग्यवश सन् १८६९ ईस्वी में बङ्गाल में मेलेरिआ (Malaria) नाम का महाभयङ्कर ज्वर फैला। तब से वर्द्धमान की आबहवा भी बिगड़ गई। जब कभी दीन दुखियों पर किसी प्रकार का दुःख आन पड़ता तभी ये हर तरह से उनके दुःख मोचन में कमर कस कर तय्यार हो जाते थे। इस रोग के फैलने पर इन्होंने सर्कार और वर्द्धमान के राजा से अनुरोध कर कई दातव्य

चिकित्सालय खुलवा दिए, तथा आप भी होमियो-पैथिक की पेटी बगल में दाबकर घर घर फिरने और रोगियों की चिकित्सा तथा शुश्रुषा करने लगे।

पूर्वकथित खर्म्मेटाड नामक ग्राम में ये प्रायः रहा करते थे। वहां के गरीब जङ्गली सैंताल इनके परम मित्र हो गए। सब सैंतालों को वे प्रतिमास अन्न वस्त्र और मिठाई दिया करते थे। दुर्गापूजा के समय तो हरेक सैंताल को जरूर ही नवीन वस्त्र मिलता था। उन लोगों में यदि कोई रोगी होता तो विद्यासागर उसका इलाज करते। उन लोगों की शिक्षा के लिये उन्होंने वहां एक प्राइमरी स्कूल भी खोल दिया। जङ्गली सैंताल भी इनसे ऐसा स्नेह रखते कि यदि आपस में उनके किसी बात की तकरार होती तो उसका फैसला करवाने के लिये वे इनके पास दौड़े आते। बिना इनकी सलाह के कोई काम नहीं करते।

विद्यासागर ने कलकत्ते के बड़े बड़े रईस महाराजा जतीन्द्रमोहन ठाकुर इत्यादि को उत्साह दिला कर एक वृत्तिभण्डार स्थापित करवा दिया, जिसके द्रव्य से आज तक बङ्गप्रान्त के बहुत से गरीब परिवारों का पालन पोषण होता है।

इनके एक मित्र ने एक दिन प्रसङ्गवश इनसे इनकी संस्कृत प्रेस डिपोज़िटरी मांगी। आपने चट तथास्तु कह दिया। दूसरे दिन कई लोगों ने हज़ारों रुपया देकर विद्यासागर से यह डिपोज़िटरी खरीदनी चाही, परन्तु इन्होंने साफ कह दिया कि "जो चीज एक बार किसी को देदी सो देदी। अब चाहे कोई कुबेर का भण्डार भी दे तो मैं डिपोज़िटरी बेचने का नहीं।"

इनके स्थापित Metropolitan Institution में बहुत से लड़के बिना फ़ीस दिए पढ़ते थे। बङ्गाल प्रान्त में एक प्रकार की चड़क पूजा (शिव का व्रत) होती है, जिस व्रत में नीच जाति के लोग लोहे के आंकड़ों से शरीर छेद कर उसीमें रस्सी के सहारे लटक कर घूमते थे। विद्यासागर ने सर्कार को दरख्वास्त देकर यह चाल उठवा दी।

बृटिश गवर्मेण्ट भी हमारे चरित्रनायक का बहुत कुछ सम्मान करती थी जिसका परिचय उसने सन् १८८० ईस्वी में विद्यासागर को सी० आई० ई० की पदवी से विभूषित करके दिया।

सन् १२९५ (बँगला) में विद्यासागर की गुणमयी स्त्री भी परलोक सिधारीं। इनका अपना शरीर भी बहुत गिरने लगा था। पेट के लिवर में जो चोट आई थी उसने बुढ़ौती में और भी जोर पकड़ा। इसकी पीड़ा से वह शय्याग्रस्त हुए। पीड़ा बढ़ने लगी। धीरे धीरे ज्वर ने भी अपना जोर दिखाया। कई सुयोग्य डाक्टर कविराजों का इलाज भी होता रहा, परन्तु यह रोग आराम होनेवाला न था। अतएव सन् १२९५ (बंगला) के १३वीं श्रावण को रात दो बजे के १५ मिनट पर हमारे चरित्रनायक स्वर्ग को सिधार गए। हम भी हितोपदेश के दो श्लोक सुनाकर अपने लेख को समाप्त करते हैं।

यदि नित्यमनित्येन निर्म्मलं मलवाहिना।
यशः कायेन लभ्येत तन्नलब्धं भवेन्नुकिम् ॥१॥
एक एव सुहृद्धर्मो निधनेऽप्यनुयाति यः।
शरीरेण समं नाशं सर्वमन्यत्तु गच्छति ॥२॥

वेणी प्रसाद।

पाली भाषा।

बड़े हर्ष का विषय है कि आज तीन चार वर्ष से "काशी नागरीप्रचारिणी सभा" और "सरस्वती पत्रिका" द्वारा समय समय पर प्राचीन शोध (?) सम्बन्धी ऐतिहासिक लेख दिखाई देने लगे हैं। इस विषय का बीज हिन्दी भाषा के साहित्य क्षेत्र में स्वर्गवासी राजा शिवप्रसाद और गोलोकवासी भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र जी ने सब से पहिले बोया था। उक्त भारतेन्दु जी ने १३ छोटी बड़ी ऐतिहासिक पुस्तकें लिखीं और प्रकाशित कीं। उनमें एक प्राचीन शिलालेखों का संग्रह "पुरातत्व संग्रह" नाम से है। इसके पश्चात्

उदयपुराधीश महाराणा फतहसिंह जी ने कविराजा श्यामलदास को राजस्थान का पुरातत्व संग्रह करने के हेतु एक "इतिहास कार्य्यालय" स्थापित करने की आज्ञा दी। उस कार्य्यालय के मन्त्री पण्डित गौरीशङ्कर जी ने सन् १८९४ ई० में "प्राचीन लिपिमाला" नामक एक उत्तम और अति उपयोगी पुस्तक प्रकाशित की। जोधपुर के मुंशी देवीप्रसाद जी भी अपने लगातार परिश्रम से बहुत कुछ राजस्थान के ऐतिहासिक तत्वों का उद्घाटन कर रहे हैं। परन्तु दुःख है कि अन्यान्य सुलेखकगण इस ओर किञ्चित् भी ध्यान नहीं देते। स्वार्थसाधन में सन्नद्ध लेखकों से कहना ही क्या है? वे तो प्रतिदिन निरर्थक पुस्तकों के ढेरों से साहित्य भण्डार को भर ही रहे हैं। उदाहरण लीजिए, इधर कुछ दिन हुए सरस्वती पत्रिका द्वारा एक "समालोचक समिति" स्थापित करने का प्रस्ताव किया गया था। यद्यपि वह प्रस्ताव किञ्चित् कार्य्य में परिणत भी नहीं हुआ, परन्तु उपरोक्त प्रकार के व्यवसायी लेखकगण अभी ही से भयभीत होने लगे। एक महाशय निज अनुवादित एक पुस्तक की भूमिका में बहुत कुछ रोषान्वित होने के उपरान्त लिखते हैं—"कोई कोई अपने स्वार्थसाधन के लिये समालोचकसमिति वा समालोचकसमाज स्थापित करना चाहते हैं और स्वयं विचारों ने काव्य प्रकाश, अथवा काव्य के किसी ग्रन्थ को स्वप्न में भी नहीं देखा होगा इत्यादि"। खेद!! परन्तु हर्ष है कि अब क्रमशः उच्चाशयसम्पन्न सुलेखकों की वृद्धि हो रही है, जिससे आशासूत्र दृढ़ होता जाता है कि शीघ्रही हिन्दी उन्नतगिरि के उच्चतम शिखर पर शोभायमान होगी।

भारतवर्ष, वरन् समग्र संसार, की प्राचीन भाषाओं में "पाली भाषा" एक प्रधान भाषा थी। संस्कृत के पीछे इसी भाषा ने गौरवपूरित अत्युन्नत सोपान पर अपना अटल आसन जमाया था; यद्यपि अब वह भारतवर्ष से सर्वथा तिरोहित हो गई है, तथापि आज कल के समस्त सभ्य-देशों के साहित्यसमाजों में अनेक कृतविद्य व्यक्तियों को उस प्राचीन "पाली भाषा" की आलोचना में प्रवृत्त देखते हैं। पुराकाल में बौद्धधर्म्म के अत्युन्नत अवस्था में भारतवर्ष, सिंहल इत्यादि स्थानों में इस भाषा के पठनपाठन का पूर्णरूप से प्रचार था; परन्तु काल के दुर्विजेय कुटिल चक्र के परिवर्तन से इस भाषा का समादर लुप्त होगया। किन्तु इस दुर्भाग्य देश के पण्डिताभिमानी जनों के सम्पूर्ण शिथिल-यत्न होनेपर भी परमेश्वर के परमानुग्रह भाजन पश्चिम देशीय पण्डितवरों का बहु-यत्न-प्राप्त धन एकत्रित हो रहा है। युरोपदेशीय पण्डितजन जिस कार्य्य में हाथ देते हैं, उसी कार्य्य में वे सफल मनोरथ होते हैं; क्या शिल्प, क्या वाणिज्य, क्या राजविस्तार और क्या निज भाषा का उत्कर्षसाधन, इत्यादि, सभी विषयों में मानो भगवान् ने एकमात्र उन्हें ही कृतकार्य्य कर रक्खा है। परिश्रम और चेष्टा से क्या नहीं हो सकता है!'

जिन खोजा तिन पाइयां गहिरे पानी पैठ।

"उद्यमेन हि सिध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः।
नहिं सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः॥"

परन्तु एतद्देशीय विद्वानों के आक्षेप के विषय को क्या आप सुनेंगे? अच्छा सुनिए!

कलकत्ता विश्वविद्यालय के संस्कृत की एम० ए० परीक्षा में कई एक निर्दिष्ट ग्रन्थ हैं, उनमें से दो तीन को न पढ़ करके, अर्थात् उनके परिवर्तन में "अशोक इन्स्क्रिप्शन्" (Inscription) अर्थात् राजा अशोक के समय की प्रचलित लिपि और पाली भाषा को ही पढ़ कर, परीक्षार्थी परीक्षा दे सकते हैं। किन्तु विश्वविद्यालय के बड़े बड़े प्रेमचन्द्र-रायचन्द्र वृत्ति प्राप्त पण्डितवर अपने देश की इस प्राचीन विद्या की परीक्षा के परीक्षक नहीं हो सके! कारण वह तो मृत भाषा है न! अपने अमूल्य समय को क्यों उसके पठन पाठन और मनन करने में व्यर्थ नष्ट करें। एक विदेशीय

पण्डितप्रवर उसके परीक्षक होकर अपने देश का मुख उज्वल कर रहे हैं।

खेद है कि आज कल हम लोग पाली भाषा के तत्वानुसंधान में यदि कुछ भी लिखने बैठें तो प्रथम ही डाकृर केनिंहाम, फ्लीट, वाडले, रिज़ डेविड इत्यादि दूरदर्शी विद्वानों के आश्रय लेने का अवश्यमेव प्रयोजन उपस्थित होगा। येही लोग हमारे नेता होंगे, प्रमाणस्थल होंगे और व्यवस्थापक होंगे; हम लोग इन्हीं महात्माओं के उच्छिष्ट को संग्रह करके अपने को महागौरवान्वित समझेंगे। यह क्या कम आक्षेप का विषय है?

इस समय हम पाली लिपि* के बखेड़े को छोड़ कर केवल "भाषा" की आलोचना में प्रवृत्त होते हैं। पाली भाषा अत्यन्त प्राचीन भाषा है। अधिकतर विद्वानों का मत है कि पाली भाषा अन्यान्य भारतीय भाषाओं की भांति संस्कृत ही से उत्पन्न है, और इसके अक्षर महात्मा बुद्ध के उत्पन्न होने के बहुत पूर्व आर्य्यों द्वारा निर्मित और प्रचलित हो चुके थे। परन्तु पाली भाषा के व्याकरणकर्ता "कच्छयन" (कात्यायन) का कथन है कि "पाली भाषा समस्त संसार की भाषाओं की मूल है, और इस कल्प के आरम्भ में ब्राह्मण और इतर वर्णों की मातृभाषा रही, और स्वयं भगवान बुद्धदेव ने भी इसी भाषा में कथोपकथन किया था।" इसका दूसरा नाम "मागधी" है।

"समागधी मूल भाषा, नरेय आदि कप्पिक।
ब्राह्मण ससुद्दलाय, सम बुद्धचाथि भाषरं॥"

"पति सम्बिध अत्त्रय" नामक पाली ग्रन्थ में लिखा हुआ है कि "यह भाषा देवलोक, प्रेतलोक और नरक में भी प्रचलित है। किरात, अन्धक, शोणक और द्रासिल प्रभृति भाषाओं का परिवर्तन हुआ, परन्तु मागधी भाषा चिरकाल से एक ही रूप में वर्तमान है, इसका किसी काल में भी परिवर्तन न होगा। स्वयं भगवान बुद्धदेव ने भी इस भाषा को सब से सुगम जान कर, सर्वसाधारण के बोध के लिये इसी भाषा में अपना समस्त पिट्टक (उपदेश) वर्णन किया था।

पाली भाषा का तीसरा नाम "श्रावस्ती" है। बौद्धयुग में श्रावस्ती नगरी धन धान्य विज्ञानादि विद्याओं से सर्वथा समृद्धिशालिनी थी। "ग्रीस" की समृद्धावस्था में "एथेन्स" नगरी जिस प्रकार महा गौरवान्वित थी, और रोम के अभ्युन्नतावस्था में इटाली जिस प्रकार विद्या बुद्धि कलाकौशलादि तथा धनरत्नादि से परिपूर्ण हो सभ्यता की परम सीमा को पहुंची थी, उसी प्रकार श्रावस्ती नगरी ने भी समग्र भारतवर्ष में प्रधानता प्राप्त की थी। भगवान शाक्यसिंह वहां जैतवन में बास कर ज्ञानामृतापिपासु व्यक्तियों को सदुपदेश-सुधा-वर्षण कर कृतार्थ करते थे, इसी समय में इस भाषा का किञ्चित् संस्कार साधन हुआ, वही संस्कारसम्पन्न बौद्ध भाषा "पाली" नाम से पुकारी जाने लगी। श्रावस्ती नगरी में संस्कार सम्पन्न उत्कर्षता प्राप्त करने से इस भाषा का एक नाम "श्रावस्ती" भी पड़ गया, और इसे श्रावस्ती भी कहने लगे। परन्तु संस्कृतभाषा की प्रधानता और उसकी दिग्दिगन्तव्यापिनी अक्षय कीर्ति, युगयुगान्तर से अपनी विजयघोषणा द्वारा जगत को प्रतिध्वनित करती हुई चली ही आती थी।

श्रावस्ती नगरी में पाली भाषा के संस्कार साधन करने और समुज्वलता प्राप्त करने पर भी इस भारतवर्ष में संस्कृतरूपी सुधाकर की

---

* पाली "लिपि" के विषय में—डाक्टर आर० एन० कस्ट, सर विलियम जोन्स, प्रोफेसर क्यांप, प्रोफेसर लिपूसिस, डाक्टर ब्रिसलर, ई० सेनाटे, स्टिवन्सन्, पाल गोल्डस्मिथ, वर्नेल और एम० लेनोर्मेंट इत्यादि यूरोपीय विद्वानों का कथन है कि पालीलिपि "नूह" की सन्तान "शेम" आविष्कृत "सेमेटिक" अक्षरों से ही उत्पन्न हुई है। परन्तु इन महाशयों ने अपने कथनों की पुष्टि में कोई यौक्तिक प्रमाण नहीं दिया है, और एडवर्ड टामस, जेनरल केनिंगहम प्रोफेसर कृश्चियन प्रोफेसर जानडाउसन और प्रोफेसर गोल्डस्टकर आदि का कथन है कि पाली लिपि को आर्य्यों ही ने निर्माण किया। पं० गौरीशङ्कर जी ने प्राचीन लिपि माला में प्रमाणित कर दिया है कि पाली लिपी के आविष्कारकर्ता आर्य्य ही हैं।

सुशीतल किरणों के सम्मुख पाली वा श्रावस्ती खद्योत हो के भांति प्रदीप्त हुई। हम्बीर की टीका में एक श्लोक द्वारा संस्कृत और पाली भाषा का गुरुत्व और लघुत्व का परिमाण दिखाया गया है—

संस्कृतांशिष्ठभाषा च श्रावस्ती वाक् विनायका अर्थात् शिष्ट लोगों में संस्कृत और विनायक अर्थात् बौद्ध लोगों में श्रावस्ती वा पाली भाषा प्रचलित थी। इस स्थान पर एक प्रश्न उठता है, "शिष्ट" शब्द यदि संस्कृतज्ञ ब्राह्मणों ही के सूचनार्थ है तो क्या विनायक अर्थात बौद्ध शिष्ट नहीं हैं? यह शिष्ट शब्द इस स्थान पर यदि ब्राह्मणों ही के लिये कहा गया है तो क्या इस शब्द ने इस संसार में ब्राह्मणों के सूचनार्थ ही अस्तित्व लाभ किया है? तो क्या यह शब्द पारिभाषिक है? किसी कोष में शिष्ट शब्द * का अर्थ अबौद्ध अविनायक वा केवल बौद्ध मत प्रतिवादी सन्त सुशील ब्राह्मणही समझा जाय, ऐसा नहीं देखा जाता है। शिष्ट का गुणग्राम यदि बौद्ध में हो तो बौद्धधर्मावलम्बी सज्जनों को शिष्ट कहने में क्या आपत्ति है? जो कुछ हो, इस स्थान पर, केवल यही जानना है कि शिष्ट अर्थात् ब्राह्मण, विनायक अर्थात् बौद्ध, इन लोगों में ब्राह्मणों की भाषा संस्कृत और बौद्धों की भाषा पाली वा श्रावस्ती थी, केवल इतनाही इस श्लोक का यथार्थ अर्थ है।

अब इस समय देखना चाहिए कि पाली और श्रावस्ती ठीक एकही भाषा है वा नहीं? अर्थात् "इंगलिश और अङ्गरेज़ी" जिस प्रकार एक ही वस्तु हैं, मनुष्य और मानव जिस प्रकार एकही पदार्थ हैं, उसी प्रकार पाली और श्रावस्ती एकही भाषा हैं वा नहीं? "लङ्केश्वर व्याकरण" नामक प्राकृत ग्रन्थ में अष्टादश भाषाओं का जहां उदाहरण दिया है, वहां देखने से साफ प्रमाणित होता है कि पाली और श्रावस्ती प्रायः एक ही भाषा हैं।

भारतवर्ष के बिखरे हुए इतिहास के अवलोकन करने से विदित होता है कि मगधराज्य के आधिपत्य ने अयोध्या प्रभृति राज्यों को सब प्रकार जर्जरित कर डाला था। इससे और पूर्व भी, महाकवि कालिदासरचित रघुवंश में इन्दुमती के स्वयम्वर के देखने से और भी साफ प्रगट हो जाता है, इन्दुमती के निकट सुनन्दा ने मगध राज्य के वैभव का जिस प्रकार ओजस्वितापूर्वक वर्णन किया है, उसके आगे अयोध्या का वह अटूट "गौरववर्णन" सर्वथा हार खाता है। मगध, बौद्ध धर्म्म का सर्वप्रधान महातीर्थस्थान था, हिन्दुओं का जिस प्रकार काशी, मुसलमानों का मक्का और ईसाइयों का जेरूसलम है, बौद्ध लोगों का उसी प्रकार मगध था और है। अब भी अगणित बौद्ध परिव्राजक केवल मगध के दर्शनार्थ चीन जापानादि देशों से अनेक कष्ट उठाकर आते हैं।

पाली शब्द के अर्थ "श्रेणी" के हैं। हम लोगों के संस्कृत शास्त्र के सूत्र और तन्त्र की भांति, बौद्ध लोगों के सब श्रेणीबद्ध धर्म्मग्रन्थ "पाली" नाम से प्रख्यात हुए। अब इस समय मागधी भाषा में रचे हुए सभी ग्रन्थों ने पाली नाम धारण कर लिया है। अध्यापक चाइलड्स् का अनुमान है कि खृष्टीय शताब्दी से १०० से २०० वर्ष पूर्व ही बौद्धों के सभी ग्रन्थों ने "पाली भाषा के ग्रन्थ" नाम धारण कर लिया था। एक और भी प्रबल कारण है। वह यह कि, इस समय जो कतिपय पालीग्रन्थ प्राप्त होते हैं, उनसे बौद्धधर्म्म-संक्रान्त "मूल ग्रन्थ" पाली भाषा ही में समझे जाते हैं। उसीके उल्लेख के देखने से पाया जाता है कि, भगवान् बुद्धदेव ने पाली ही भाषा में शिष्यवर्ग तथा सर्वसाधारण को उपदेश दिया था और ईसा के जन्म के ६०० वर्ष पहिले यह मगध देश की एकमात्र भाषा थी। यद्यपि उस समय इसे लोग मागधी कहते थे, परन्तु थोड़े ही दिनों के पीछे इसने 'पाली' नाम से प्रख्यात होना प्रारम्भ किया और सिंहलद्वीप (लङ्का) में जाकर पूर्णरूप से मागधी नाम को परिवर्तन कर पाली नाम धारण कर लिया।

* परन्तु तर्कसङ्ग्रह के टीकाकार ने "शिष्ट" शब्द का अर्थ "वैदिक मतावलम्बी" लिखा है।

भगवान् शाक्यसिंह ने मागधी भाषा में उपदेश दिया था, उनके शिष्यवर्गों ने उन उपदेशों का अनुवाद संस्कृत भाषा में करके प्रचार करने की अभिलाषा प्रगट की, परन्तु उन्होंने उनको संस्कृत भाषा में अनुवाद करने का पूर्ण निषेध कर प्राकृत भाषा ही में प्रचार करने की आज्ञा दी। कारण उस समय केवल उच्चवर्ण के ही लोग संस्कृतभाषा का पठन पाठन करते थे, दूसरे वैदिकधर्म्मग्रन्थ सब के सब संस्कृत ही भाषा में थे, इसलिये वैदिक सूर्य के सम्मुख बौद्धधर्म्मरूपी चन्द्रमा का प्रकाश होड़ में अवश्य ही हार खाता। जो हो पाली संस्कृत ही भाषा की सबसे बड़ी कन्या है और अब तक इसमें और संस्कृत भाषा में कहां तक सादृश्य है, वह नीचे लिखे हुए कतिपय शब्दमात्रों के देखने से प्रगट हो जायगा।

संस्कृत	पाली	संस्कृत	पाली
अभिधर्म्म	अभिधम्म	अमृत	अमत
अर्थकथा	अत्थकथा	श्रुति	सुति
मन्त्र	मन्तो	मार्ग	मग्गो
म्लेच्छ	मिलाक्खो	निर्वाण	निब्बाणम्
यवन	योन	पर्वत	पब्बत
अश्व	असो	वृक्ष	रुक्ष
शिष्य	शिष्यण	सर्प	सप्प
सिंह	सिहो	कार्य्य	कज्ज

२०१ खृष्टाब्दपूर्व महाराज महामहेन्द्र ने सिंहलद्वीप में बौद्धधर्म्म का प्रथम प्रचार किया, उसी समय से सिंहल में पाली भाषा ने विस्तार प्राप्त करना प्रारम्भ किया। खृष्टीय ५०० शताब्दी में मगध देश से गई हुई पाली भाषा ने लङ्का में विलक्षण उन्नति प्राप्त की। कच्चयन (कात्यायन) कृत पाली व्याकरण अत्यन्त प्रसिद्ध है, हम लोगों के पाणिनीय व्याकरण की भांति बौद्धगण इसका अतिशय सम्मान करते हैं, अब तक सिंहलद्वीपवासी बौद्धों में यह ग्रन्थ अत्यन्त समादरसहित संरक्षित है। पाली भाषा में अनेक व्याकरण के ग्रन्थ हैं, * परन्तु कच्चयनकृत पालीव्याकरण ही सर्वोत्कृष्ट है, इसी कारण उसका समादर भी सभों से अधिक है। डाक्टर एङ्गलिं का कथन है कि कच्चयनकृत व्याकरण "नियमानुकूल एक पूर्ण कलाप व्यक्तकरण है।" यह व्याकरण आठ भागों में विभक्त है, ये आठ भाग, और भी विविध अध्यायों में विभक्त हैं, इसमें किसी किसी स्थान में तो अविकल पाणिनीयसूत्र गृहीत हुआ है; यथा पाणिनि "अपादाने पञ्चमी", तथा कच्चयन "अपादाने पञ्चमी"।

इस ग्रन्थ में अनेक बौद्ध तीर्थ स्थानों का उदाहरण भी दिया हुआ है, जैसे श्रावस्ती, पाटली और वाराणसी इत्यादि। "रूपसिद्धि" इस ग्रन्थ के सुप्रसिद्ध टीकाकार हुए हैं। "बुत्तोदय" एक सुप्रसिद्ध पाली भाषा का गद्य-पद्य-मय काव्यग्रन्थ है। यह पिङ्गल और वृत्तरत्नाकर प्रभृति सुप्रामाणिक संस्कृत काव्यों के आश्रय पर बना है। "धातु मञ्जूषा" एक महावंशनामक बौद्ध स्थविर द्वारा रचित है। कच्चयनकृत व्याकरण से पूर्ण सम्मत होने के कारण इसे लोग "कच्चयन-धातु-मञ्जूषा" भी कहते हैं; यह धातुमञ्जूषा डन० एन० ड्रेश सिलविया बातुवान्तदेव नामक खृष्टीय मतावलम्बी बौद्ध पण्डितद्वारा अङ्गरेजी भाषा में अनुवादसहित प्रकाशित हो गया है। "अभिधान प्रदीप" अमरकोष की भांति पाली भाषा का सुप्रसिद्ध अभिधान है। इनके अतिरिक्त पालीभाषा में और भी कई एक सुप्रामाणिक उत्तमोत्तम ग्रन्थ हैं, उनमें से महावंश, द्वीपवंश, अंताङ्गलूवंश, दाठावंश, ब्रह्मजालसुत्त, जातक, क्षुद्दकपर्व, सुत्तनिपात, महापरिनिब्बान सुक्त और धम्मपद इत्यादि अतिप्रसिद्ध और सिंहलदेश में पूर्ण प्रचलित हैं। विद्वद्वर जार्ज टर्नर महोदय ने महावंश के ३१ अध्यायों को अनुवादसहित छपवा कर प्रकाशित

* पालीभाषा-व्याकरण-सम्बन्धी शब्दों का विशेष विवरण देखना हो तो, पं० सिधेश्वर शर्म्मा अनुवादित "पालीभाषा" नामक लेख काशी नागरीप्रचारिणी सभा से मंगा कर देखिए।

कर दिया है, उसका संक्षिप्त अनुवाद बङ्गभाषा में भी हो गया है।

यह लेख श्रीयुत पण्डित हरदेव जी शास्त्री के बँगला लेख के आश्रय पर लिखा गया है, इस हेतु मैं उनका अत्यन्त कृतज्ञ हूं, ग्रैार आशा करता हूं कि उनकी अनुसन्धानप्रिय लेखनी से ऐसे ही दूसरे लेखों के देखने का अवसर प्राप्त होगा।

लक्ष्मीशङ्कर द्विवेदी।

रैफेलकृत सिस्टिन म्याडोना

चित्रविद्या के बहुतेरे समालोचकों का मत है कि रैफेल पृथिवी में सबसे नामी चित्रकर होगए हैं। उन्हीं रैफेलकृत सिस्टिन म्याडोना के चित्र की नकल सरस्वती की इस संख्या में दी जाती है। रैफेल ने सन १४८३ ई० में इटाली देश के उर्बिनो नगर में जन्म लिया था। १५२० ई० में, अर्थात् केवल ३७ही वर्ष की अवस्था में, उनका परलोकवास होगया। उनकी आयु इतनी थोड़ी थी, तौभी इसी बीच में उन्होंने २८७ तेल से रंगे चित्र, ५७६ रेखाचित्र ग्रैार नकशे ग्रैार कई महलों की भीतों पर ग्रैार बहुत से चित्र, खींचे थे। उनके एक एक चित्रों का मूल्य सुनने से आश्चर्य मालूम होता है। विलायत के नैशनल गैलेरी नामकी चित्रशाला में रैफेलकृत एक म्याडोना (The Ansidei Madonna) का चित्र है। वह दस लाख अस्सी हज़ार रुपए में मोल लिया गया था। किसी दूसरे चित्र का इतना मूल्य आज तक नहीं ठहरा है। डि ऐनवर्स (D'Anvers) का कथन है कि सम्भव है कि सिस्टिन म्याडोना का चित्र पृथिवी के सब चित्रों से अधिकतर प्रसिद्ध है। इस समय जर्म्मनी के ड्रेसडेनामी नगर की चित्रशाला को यह चित्र सुशोभित कर रहा है। बालक, युवा, वृद्ध, स्त्री वा पुरुष जो इसे देखने जाते हैं, देखते ही मन्त्रमुग्ध की भांति इसके सामने खड़े रह जाते हैं, अथवा भक्तिपूर्ण अन्तःकरण से घुटने टेक टेक कर बैठ जाते हैं। कई बार इसे देख कई बुढ़िया स्त्रियों के नेत्रों से आंसू की धारा बहने लगी है। चित्र को देखकर उनके हृदयों में नई आशा उमड़ आई है, उनके मुखड़े नए आलोक से दमकने लगे हैं। म्याडोना को हिन्दी में 'मातृदेवी' कह सकते हैं। ईसा की माता ईसा को गोद में लेकर बादलों के ऊपर शान्तदृष्टि से खड़ी हैं। असंख्य स्वर्गदूतों के मुखमण्डल प्रभामण्डल की भांति उनको घेरे हुए हैं। सेण्ट सिक्सटस् अपने अनुचरों की ओर अंगुली से दिखाकर मातापुत्र से आशीर्वाद मांग रहे हैं, ग्रैार सेण्ट बार्बरा प्रीतिभरी दृष्टि से नीचे की विश्वासी शिष्यमण्डली की ओर देख रहे हैं। आज तक इस चित्र की सुन्दरता का अनुकरण करते किसीसे नहीं बन पड़ा है। धर्म्मविषयक चित्राङ्कण में निपुण फ्रान्सिया आध्यात्मिक सौन्दर्य के खींचने में केवल रैफेल ही से घट कर समझे जाते हैं। इन फ्रान्सिया ने भी इस स्वर्गीय चित्र को देख निराश होकर अपनी कलम (Brush) अलग रख दी थी। कहा जाता है कि इस चित्र में ईसा की माता का मुख रैफेल ने, अपनी प्रणयिनी मार्गारिटा के मुख के समान बनाया है।*

---

* प्रवासी से लिया गया।

ाग ३] नवम्बर १९०२ ई० [संख्या ११

गुरु-भक्ति ।

प्रसिद्ध वीरशिरोमणि जयपुर के पूर्वभूत महाराजा सवाई जयसिंह जी का नाम ाजपुताने को ही नहीं, किन्तु भारतवर्षमात्र को, ादर एवं गौरव के साथ स्मरण है। जिनकी बुद्धि वं शिल्परचना का चिरस्मारक-चिन्ह जयपुर गर आज भरतवर्ष का अनुपम सौन्दर्यस्थल है; नकी विद्वत्ता एवं विद्यारसिकता की अनेक ाणित, धर्म्म, शिल्पग्रन्थावली और जयपुर, मथुरा, ाशी, उज्जैन की प्रसिद्ध वेधशालायें साक्षी दे ही हैं; जिनकी रची हुई अश्वमेध-यज्ञ-वेदी आर्य ात्र को ग्रन्थावशेष-कर्मकार्य रूप में दिखारही , वे सर्वगुणालंकृत नृपतिवर ग्यारहवर्ष की वाल वस्था में जयपुर-राज की पूर्व राजधानी आंबेर में ़मीय संवत् १७५६ में राज्याभिषिक्त हुए। सके पहिलेही उनके परमसुयोग्य बुद्धिमान पिता ़हाराजा बिशनसिंह जी ने अपने होनहार पुत्र के कोमल मस्तिष्क में सर्व सद्गुणों की मुद्रा डालने के लिये एक सर्वगुणसम्पन्न कुशलसिंह नामक नाथावत क्षत्री को शिक्षक नियत किया। कुशल-सिंह ने अपनी पूर्ण कुशलता से कुशलपूर्वक राजकुमार को सुशिक्षित बनाया। किन्तु प्रकृति के नियम से परिणामदर्शित्व अनुभव के आधीन है, अनुभव वय के आधीन है; अतः सुशिक्षित होने पर भी राजकुमार बालभाव के सार्थी थे। इसी कारण उनको बालकपन की स्वाभाविक उद्दंड चेष्टाओं पर आवश्यकीय दंड भी असहर होता था; अमृत भी हलाहल ही के स्वरूप में दिखाई देता था; सच्चे हितैषी का क्षणिक वियोग भी परमाल्हादकारक था; सौम्यमूर्ति भी राक्षस की भीषणता में परिणत होती थी; कोमलता में भी कठोरता भासती थी; इसीसे कभी कभी क्रोध के आवेग में राजकुमार के मुंह से निकलता था कि "याद रक्खो, जब मैं महाराजा बनूंगा तब तुम

को बिना क़ैद किये नहीं छोड़ूंगा"। इस पर मुसकराते हुए कुशलसिंह की ओर से उत्तर मिलता कि "बहुत अच्छा"।

जब जयसिंह जी राज्यासन पर बैठे तो सब से पहिले यही आज्ञा दी कि कुशलसिंह को कारागार में ले जाओ। निदान उसी दिन से कुशलसिंह का बिछौना राजमहल से उठकर कारागार में लगा; भोजन* का निर्भर भिक्षा पर हुआ; भोजनपात्र के बदले एक ठीकरा हस्तगत हुआ; मूर्ख पापी पाखंडियों के कठोर कोलाहल और सहवास में दिन बीतने लगे। इतने पर भी धीर कुशलसिंह का प्रफुल्लित मुख म्लान नहीं हुआ; परोपकारी चित्त खिन्न नहीं हुआ; स्वामिभक्त-हृदय लवलेश भी भक्ति के अभाव से कलङ्कित नहीं हुआ।

कालान्तर में एक दिन कुशलसिंह साथी कैदियों के साथ हाथ में ठीकरा लिये नगर में भिक्षा मांग रहा था, सब रस को एक ही पात्र में झेल रहा था, धार्मिक भावना से रोटी के सूखे बासी टूकड़ों को भी सादर ग्रहण कर रहा था; इतने में देखा कि महाराजा साहब घोड़े पर सवार हुए कई अनुयायी सुभटमंडल के साथ सामने से आ रहे हैं। यह देख कर सब कैदियों के साथ उनके रक्षक भी मार्ग के एक किनारे पर सादर खड़े हो गए और सवारी नजदीक आने पर कुशलसिंह ने प्रीति के भरे हुए गम्भीर नेत्र सिर के साथ झुका कर प्रणाम किया। महाराजा ने अपना घोड़ा कुशलसिंह के पास होकर निकाला और ताने से हँसकर कहा कि "ठीकरा लिया तब रहा"। कुशलसिंह ने गम्भीर मुखमुद्रा से उत्तर दिया कि "राजन्! मुझे यह ठीकरा बहुत प्रिय है; यदि मैं इस ठीकरे से डरता और आपको यथेच्छ उन्मत्त बरतने देता तो, ओ प्रियप्रभु! आज दिन सारा ढूंढाहड़† देश ठीकरा ले लेता"। इस वाक्य ने बिजली का सा असर किया। महाराजा रोमाञ्चित होगए, स्तब्ध होगए, बाल्यावस्था का अन्तिम परदा उठ गया, हितैषी की प्रियमूर्ति अनिमेष निहार कर नेत्र भर आए, कंठ गद्गद होगया, अपने कृतघ्न कर्म पर धिक्कार छूटा, हृदय में शल्य सी वेदना होने लगी, तुरन्त घोड़े पर से कूदकर प्रिय कुशलसिंह के मैले कुचैले गले से लिपट गए। देखते ही देखते सर्वत्र एक सन्नाटा छा गया, प्रबल स्नेह ने दोनों को प्रतिमावत् बना दिया, दोनों विशाल ललाट पर चमकती हुई प्रस्वेद की बूंदे और धड़कते हुए दिल ही चैतन्य की साक्षी देते थे। इसी तरह निमेष, काष्ठ, कला, क्षण आदि भागों को क्रमशः व्यतीत करके समय मुहूर्त में पहुंचा; इतने में कुशलसिंह ने कसेले कंठ की गम्भीर ध्वनि से शान्ति के परदे को चीरा और सब को मोह, विचार और खेद की निद्रा से जगाया; महाराजा भी कुछ पीछे हठ कर खड़े हुए; प्रत्येक कान के परदे पर शब्द टकराने लगे कि "नरराजशिरोमणि! मुझसे भोक्ता का अदृष्ट ही आप से तेजस्वी राजा, ऋषि, मुनि, देव आदि के सत्यपवित्र मुख से शब्दरूप में स्वतः निकलकर उन्हें शाप शासन में निमित्त बनाता है, तथापि वे निस्सङ्ग हैं, निर्दोष है, अभ्रान्त हैं। आपकी सुराजकता की मुद्रा प्रजा के हृदय पर पड़ चुकी है, आपके बुद्धि वैभव पर औरङ्गजेब जैसा शाहनशाह भी चकित हो चुका है। आर्यमात्र ने आपके विजयी भुजों पर आशा बांधी है, यही सब सुनकर मैं अपने को कृतकार्य मानता हूं; भयङ्कर कारागार में भी हर्ष से रोमाञ्चित होता हूं, सुख से निद्रा लेता हूं। और कुशलसिंह के शब्द आगे बढ़ते ही थे कि बीच में महाराज की गद्गदवाणी निकसी और कुशलसिंह के ओष्ठपुट बन्द हुए। महाराजा ने कहा "हा! मेरे नेत्रों का तिमिर अब छूटा और देखता हूं तो संसार में ऐसा कोई प्रियपदार्थ नजर नहीं आता कि जिसके देने से शिष्य गुरु से उऋण हो सकता हो। इसपर भी हजार धिक्कार पड़े इस प्रमादी राज-

* उन दिनों में यह नियम था कि कैदी को भोजन के लिये नगर में घर घर भीख मांगनी पड़ती थी और पात्र के स्थान एक ठीकरा यानी फूटा हुआ मिट्टी का बरतन दिया जाता था।

† जयपुर के राज्यभर को ढूंढाहड़ कहते हैं।

सत्ता पर कि जिससे मदान्ध होकर मैने आपके साथ यह बरताव किया। प्रिय कुशलसिंह जी! विद्या दे देने पर गुरु का हक लेने का होता है, परन्तु मैं अभागा फिर भी आप से मांगता ही हूं कि मेरे इस कृतघ्न कर्म पर क्षमा-" इतना कहते कहते हृदय ने उबक कर कंठ रोकलिया; केवल प्रजापालक हाथों ने वह ठोंकरा उठाकर गिरादिया और बहुत बड़े सम्मान एवं जागीर के साथ अपने सच्चे शिक्षक कुशलसिंह नाथावत को सुखी कर दिया। इस तरह परम गुणग्राही महाराजा सवाई जयसिंह जी ने परिणाम में सच्ची गुरुभक्ति दिखा कर भारत को जयघोष से भर दिया, जिसकी प्रतिध्वनि आज दो सौ वर्ष पर भी लाखों कर्णमण्डलों में आघात प्रत्याघात कर रही है।

कुँवर केसरीसिंह बारहट।

महामहोपाध्याय कविवर विद्यापति ठाकुर

मिथिला एक समय विद्या की जननी कही जाती थी। देश देशान्तर से लोग यहां पढ़ने आते थे। कौन गाँव ऐसा था जहां दस पांच अच्छे अच्छे पण्डित नहीं बसते थे। परन्तु बड़े खेद का विषय है कि उनके वंशज लोग अब मूर्ख हुए जाते हैं। इससे बढ़ के और प्रमाण शास्त्रचर्चा का क्या होगा कि दरभङ्गा राज्य विद्याही से उपार्जित है। इसी मिथिला में हमारे इस लेख के नायक महामहोपाध्याय विद्यापति हो गए हैं, जिन्होंने संस्कृत में बहुत से ग्रन्थों की रचना की और मिथिला भाषा में ऐसे उत्तम उत्तम गीत बनाए जिन को आवाल-वृद्ध-बनिताएं बड़े अनुराग से गाया करती हैं। वङ्ग में भी इनका सुयश फैला हुआ है और इनके बनाए गीतों का (शब्दों को कुछ बिगाड़कर) वहां भी प्रचार है, और बहुत से वङ्गदेशीय विद्वान् इनको स्वदेशवासी कह के अपनाते हैं। परन्तु "वङ्गदर्शन" के द्वितीय वर्ष की द्वितीय संख्या में "विद्यापतिप्रसङ्ग"-शीर्षक लेख से जो बाबू यदुनाथ चक्रवर्ती ने लिखा है, स्पष्ट प्रमाणित होता है कि वे मैथिल थे। ग्रीयर्सन साहब ने भी (An Introduction to Mithila Language) ठीक किया है कि विद्यापति मैथिल थे। परन्तु सबसे बढ़के तो मुझे यह प्रमाण मिला है कि उनके वंश में अभी बहुत से लोग जीवित हैं, जिनका कुल-वृक्ष मैं इस लेख के साथ प्रकाशित करता हूं, और जिनकी कीर्ति अभी तक मिथिला में सर्वत्र विद्यमान है।

बड़ा दुर्भाग्य इस भारतवर्ष का है कि इस देश के महात्मा कवि पण्डितों का प्रमाणसहित जीवन-वृत्तान्त मिलना अत्यन्तदुस्साध्य हो गया है। जो किसीको उन लोगों की जीवनी लिखने की इच्छा भी हुई तो प्रथम परिश्रम करने पर भी सामग्री ही नहीं मिलती, दूसरे दन्तकथा के रूप में कुछ मिलती भी है तो ऐसी कि जिससे स्वयं सन्तोष नहीं होता, तो लेखक दूसरे को कैसे सन्तोष दिला सकता है। जन्मतिथि की क्या कथा? किस समय में कौन महात्मा कवि आदि विद्यमान थे, यह निर्णय करना भी अत्यन्त कठिन सा हो जाता है। यह अवस्था तो साधारण भारतवर्ष की है। परन्तु मिथिला की दशा तो और भी शोचनीय है, तथापि विद्यापति के विषय में मुझे जहां तक ठीक ठीक हाल मिला है, इस लेख में प्रकाशित करूंगा। मुझे पूरा विश्वास है कि विद्यापति के विषय में यथार्थ हाल जो मुझे प्राप्त हुआ है, उससे अधिक विशेष परिश्रम करने पर भी प्रायः किसीको न मिलेगा।

विद्यापति का जन्म किस तिथि और संवत में हुआ, यह तो ठीक नहीं मिलता; परन्तु उनके विद्यमान रहने का समय ई० १३०० शताब्दी के अन्त से लेकर ई० १४०० शताब्दी के ५० वर्ष के लगभग तक प्रमाणित होता है, क्योंकि सन् १३२६ ई० से राजा हरसिंहदेव के अनन्तर मिथिला का राज्य

विष्णु ठाकुर
हरादित्य ठा०
कर्म्मादित्य ठा०
भवादित्य ठा० (राजवल्लभ)
शिवादित्य ठा० (सान्धिविग्रहक)
वीरेश्वर ठा० (छन्दोगदशपद्धतिकर्ता)
धीरेश्वर (महावार्तिक नैबन्धिक)
गणेश्वर (महामत्तक)
जटेश्वर (भांडागारिक)
हरदत्त स्थानान्तरिक)
लक्ष्मीश्वर (मुद्राहस्तक)
शिवदत्त (रा० व०)
रामदत्त उपाध्याय
(वाजसनेयिदशकर्म पद्धतिकर्त्ता)
चंडेश्वर (सा० वि० महामहत्तक
सप्तरत्नाकर तथा कीर्तिचिन्तामणि ग्रन्थ
रचयिता)
कीर्ति ठा०
जयदत्त ठा०
गौरीपति
गणपति ठा०
विद्यापति ठा० कवि
(महामहोपाध्याय रा० पं० सान्धिविग्रहिक विस्पीग्रामोपार्जक)
वाचस्पति
हरपति
(प्र० हरदत्त-दैवज्ञबान्धव ग्रन्थकर्ता)
नरपति
नोनेठाकुर (प्रसिद्ध रतिधर)
रघु ठा०
विश्वनाथ ठा०
पीताम्बर ठा०
अच्युत ठा०
नारायण ठा०
मोहन ठा०
लक्ष्मण ठा०
देवानन्द ठा०
दिनमणि ठा०
भिखारी ठा०
चकोर ठा०
तुला ठाकुर
जीवनाथ ठा०
एकनाथ ठा०
भैया ठा०
बाबूलाल ठा०
प्यारे ठा०
दुलार ठा०
नन्हू ठाकुर (वैयाकरण)
फणीलाल ठा०
लक्ष्मीनाथ ठा०
निरसूठा ठा० (जीवित)
टेकनाथ
मोहन
वनमाली ठा०
विश्वेश्वर
महेश्वर (जीवित)
मनोहर
बदरीनाथ ठा० (जीवित)
श्रीधर (जी०)
विन्ध्यनाथ
अक्षधर

मैथिल ब्राह्मण के हाथ में आया और उन्हीं राजवंश में विद्यापति के पूर्व पुरुष भी परम्परा से राजपण्डित होते आए। कुलवृक्ष में दी हुई उपाधियों से पाठकों को स्पष्ट विदित होगा कि विद्यापति के पूर्वपुरुष राज दरबार में कैसे सम्मानित पण्डित थे—यथा सन्धिविग्रहिक शिवादित्य ठाकुर, अर्थात् ये मन्त्री के कार्य्य पर नियुक्त थे और उनके ज्येष्ठ पुत्र पाण्डागारिक वीरेश्वर ठाकुर, छान्दोग दशकर्मपद्धतिकर्ता हुए। वीरेश्वर ठाकुर के पुत्र चण्डेश्वर ठाकुर ने भी सन्धिविग्रहिक और महामहत्तक उपाधि पाकर, कृत्यचिन्तामणि, कृत्यरत्नाकर, दानरत्नाकर, व्यवहाररत्नाकर, पूजारत्नाकर, विवादरत्नाकर, श्राद्धरत्नाकर, और गृहस्थरत्नाकर, इन आठ ग्रन्थों की रचना की इत्यादि। राजा शिवसिंह ने, जो उनको बहुत मानते थे, सन् १४०३ ई० में उन को, उनके और उनके पूर्वपुरुषों के रहने का ग्राम विस्पी (जो अब विसफी के नाम से प्रसिद्ध है) था, दान करके दे दिया। यह ग्राम दरभङ्गे जिले में अभी तक विद्यमान है। वहां अभी तक विद्यापति की कुलदेवी विश्वेश्वरी देवी का मन्दिर और उनकी पाठशाला का चिन्ह विद्यमान है। राजा शिवसिंह का दिया हुआ दानसूचक पत्र अभी तक उनके वंशजों के पास है; उसमें यह लिखा है—

"स्वस्ति गजरथपुरात् समस्तप्रक्रियाविराजमान श्रीमद्रामेश्वरीवरलब्धप्रसाद भवानीभवभक्तिभावनपरायण रूपनारायण महाराजाधिराज श्रीमच्छिवसिंहदेवपादाः समरविजयिनः। जरइल तप्यायां विस्पीग्राम वास्तव्य सकललोकान् भूकर्षकांश्च समादिशन्ति मतमस्तु भवताम्। ग्रामोयमस्माभिः सप्रक्रियाभिनवजयदेव महाराज पण्डित ठक्कुर श्रीविद्यापतिभ्यः शासनीकृत्य प्रदत्तोऽतोऽयमेतेषां वचनकरी भूयकर्षणादिकं कर्म्म करिष्यथ इति ल० सं० २९३ श्रावण शुक्ल सप्तम्यां गुरौ॥

श्लोकास्तु।

अब्दे लक्ष्मणसेन भूपतिमते वह्निग्रहद्व्यङ्किते।
मासि श्रावण संज्ञके मुनितिथौ पक्षेवलक्षे गुरौ॥
वाग्वत्या स्सरितस्तहे गजरथेत्याख्य प्रसिद्धे पुरे।
दित्सोत्साह विवृद्ध बाहुपुलकः सभ्यायमध्ये सभम्॥१॥

प्रज्ञावान् प्रचुरोर्वरं पृथुतरा भोगं नदी मातृकं।
सारण्यं ससरोवरं च विसपी नामानमासीमतः॥
श्री विद्यापति शर्म्मणे सुकवये वाणीरसस्वादविद्।
वीर श्री शिवसिंह देव नृपतिर्ग्रामं ददे शासनम्॥२॥

येन साहसमयेन शस्त्रिना तुङ्गवाहवरपृष्ठवर्तिना।
अश्वपात्तिवलयोर्वलंजितं गज्जनाधिपाति गौड भूभुजाम्॥३॥

रौप्य कुम्भइव कज्जलरेखा श्वेतपद्म इव शैवल वल्ली।
यस्य कीर्ति नवकेतककान्त्याम्लानिनेतिविजितो हरिणाङ्कः॥४॥

द्विषन्नृपति वाहिनी रुधिर वाहिनी कोटिभिः।
प्रतापतरुवृद्धये समरमेदिनी प्लाविता॥
समस्तहरिदङ्गनाचिकुर पाशवासः क्षमं।
सित प्रसवपाण्डरं जगति येन लब्धं यशः॥५॥

मतङ्गजरथप्रदः कनकदानकल्पद्रुमः।
तुलापुरुषमद्भुतं निजधनैःपिता दापिताः॥
अखानि च महात्मना जगति येन भूमीभुजा।
परापर पयोनिधि प्रथममैत्रपात्रं सरः॥६॥

नरपतिकुलमान्यः कर्णशिक्षावदान्यः।
परिचितपरमार्थो दानतुष्टार्थसार्थः॥
निजचरित पवित्रो देवसिंहस्य पुत्रः।
स जयति शिवसिंहो वैरिनागेन्द्रसिंहः॥७॥

ग्रामेगृह्णन्त्यमुष्मिन् किमपि नृपतयो हिन्दवो ये तुरुष्काः।
गोकोलस्वात्ममांसै सहितमनुदिनं भुञ्जते ते स्वधर्मम्॥
ये चैनं ग्रामरत्नं नृपकररहितं पालयन्ति प्रतापैः।
तेषां सत्कीर्तिगाथा दिशिदिशि सुचिरं गीयतां वन्दिवृन्दैः॥८

संस्कृत गद्य का अनुवाद

गजरथ पुर से समस्त राजकीय पदार्थों से विराजमान श्रीरामेश्वरी भगवती के वर से लब्धप्रसाद; गौरीशङ्कर के परमभक्त रूपनारायण-पद-भूषित महाराजाधिराज श्रीमान् शिवसिंह देवजू समरविजयी, जरइलतप्पान्तर्गत विसपी ग्रामवासी सब लोगों और कास्तकारों को आज्ञा देते हैं। आप लोगों को ज्ञात हो कि यह ग्राम हमने सत्कर्म्मशील नूतनजयदेव राजपण्डित श्रीविद्यापति ठाकुर को शासनसहित प्रदान किया। इसलिये तुमलोग इनकी आज्ञा के वशवर्ती हो खेती इत्यादि सब काम करोगे।

श्लोकों का अनुवाद।

राजा लक्ष्मणसेन के प्रचारित सन २९३ में—अर्थात्—सन् १४०२ ई० में, सावन सुदि सप्तमी

बृहस्पतिवार को वाग्वतीनदी के किनारे गजरथपुर (शिवसिंहपुर) प्रसिद्ध गाँव में दानेच्छा के उत्साह से जिनका दीर्घबाहु पुलकायमान हो रहा है, जो अत्यन्त बुद्धिमान् और विद्यारसिक हैं, उन वीर-धीरशिरोमणि महाराज श्रीशिवसिंह देवजू ने सभा के बीच में कविवर श्रीविद्यापति ठाकुर को अत्यन्त उपजाऊ अधिकतर भोग्यपदार्थदेनेवाला नदीगर्भित जङ्गल और झीलों से सहित सीमा-बन्दी करके बिसपी नाम ग्राम और उसके शासन का भार दिया ॥ १, २ ॥ महाराज शिवसिंह, जो अत्यन्त साहसी और शस्त्रकुशल थे, जिन्होंने बड़े ऊंचे मदोन्मत्त मतङ्ग पर सवार हो अपने पराक्रम से गज़नी के पादशाह और गौड़देशीय राजाओं के घुड़सवार सेनापतियों के सहित समस्त सेनाओं को जीत लिया ॥ ३ ॥ चाँदी के घड़े में काजर की रेख और श्वेतकमल में सेवाँर की लता जैसे फीकी लगती है, तैसे ही महाराज शिवसिंह की उज्ज्वल कीर्ति रूपी नवीन केतक की छटा से पराजित हो मृगाङ्क (चन्द्रमा) मलिन भासता है ॥ ४ ॥ जिन्होंने वैरी नृपसेनाओं की कोटिशः रुधिरनदियों से अपने प्रतापरूपी वृक्ष की वृद्धि के लिये युद्धभूमि को सिञ्चित किया, और समस्त दिगङ्गना की चोटियों के आच्छादन योग्य, विजयविनिर्गत उज्ज्वल यश इस संसार में पाया ॥५॥ जिन्होंने, हाथी, रथ और स्वर्णादिक दान में कल्पद्रुम के समान अपने पिता को अपने धन से अद्भुत तुलादान कराया, और जिन महात्मा महाराज शिवसिंह ने इस भूमण्डल में पूर्वीय और पश्चिमदिग्वर्ती समुद्रों का प्रथम मैत्रपात्र स्वरूप सरोवर खुदवाया ॥६॥ जो राजाओं में महामान्य कर्ण के शिक्षा देने योग्य बड़े दानी, परमार्थवेत्ता, दान से याचकसमूहों को तुष्ट करनेवाले, अपने चरित्र को पवित्र रखनेवाले और शत्रुरूपी गजेन्द्रों में सिंह के समान बरतनेवाले हैं। सो देवसिंहात्मज शिवसिंह जय पावें ॥ ७ ॥ हिन्दू अथवा मुसलमान जो कोई राजा इस बिसपी गाँव से कुछ ग्रहण करेंगे तो वे गाय, शूकर, और अपने शरीर के मांस सहित सर्वदा अपने धर्म को खाँयगे और जो अपने प्रताप से इस राजकीय कररहित ग्राम को पालेंगे उनकी सत्कीर्ति का गान चारों ओर बहुत दिनों तक बन्दीगनों से गाया जायगा ॥ ८ ॥

इस दानपत्र के विषय में एक अपूर्व दन्तकथा मिथिला में प्रचलित है। वह यह है कि जब ईष्ट इंडिया कम्पनी मिथिला का प्रबन्ध कर रही थी, उस समय इनके वंशजों ने अपनी मुआफी के लिये यह ताम्रपत्र सुबूत में दिखलाया था। परन्तु अङ्गरेज ने इस बिसफी ग्राम पर मालगुजारी लगा ही दी। हाकिम सेट्लमेन्ट ने कहा कि समयानुसार अङ्गरेज गाय और शूकर दोनो खाते हैं, इसलिये वे इस शपथ से बाध्य नहीं हो सकते।

विद्यापति, राजा कीर्तिसिंह की सभा में पहिले नियुक्त थे। उनके अनन्तर उन्होंने राजाशिवसिंह, उनकी रानी लखिमा, उनके छोटे भाई राजा पद्मसिंह, और इनकी रानी विश्वासदेवी, तथा राजा भैरवसिंह के आश्रय में रह कर अपनी कीर्ति फैलाई। कोई कोई उनको राजा शिवसिंह के पितामह के समय में कवि के पद पर नियुक्त बतलाते हैं। परन्तु मेरी समझ में यह बात ठीक नहीं जचती, क्योंकि राजा शिवसिंह के पितामह भवसिंह ने अपने भाई से राज्य बंटवा लिया था और राजा शिवसिंह के छोटे चचा राजा हरसिंह और त्रिपुरसिंह ने अपने चचेरे भाई गणेश्वरसिंह को मार कर पूरा राज्याधिकार प्राप्त कर लिया था, तथा राजा गणेश्वरसिंह के पुत्र, राजा कीर्तिसिंह ने त्रिपुरसिंह को हरा कर राज्य ले लिया, और उनके अपुत्र होने के कारण उनके पितामह भ्राता राजा भवसिंह के पौत्र, राजा शिवसिंह अपने पिता देवसिंह की जीवित अवस्था ही में युवराज हुए। यदि वे (विद्यापति) भवसिंह के समय में होते तो प्रथम उनके पुत्र त्रिपुरसिंह को अपने चचेरे भाई की हत्या से अवश्य रोकते, अथवा उनके यहाँ से चले जाते। परन्तु ऐसा उनके दरबार छोड़ जाने आदि का हाल कहीं लिखा हुआ नहीं मिलता।

दूसरे, यदि वे त्रिपुरसिंह अथवा उनके सगे बड़े भाई राजा शिवसिंह के पिता राजा देवसिंह की सभा में रहते तो कीर्तिसिंह और त्रिपुरसिंह में शत्रुता रहने के कारण कीर्तिसिंह की सभा में वे कदापि नहीं जाते। परन्तु उन्होंने कीर्तिसिंह के कीर्तिवर्णन में कीर्तिलता नामक ग्रन्थ बनाया है जो अभीतक विद्यमान है और यही उनका बनाया पहिला ग्रन्थ है।

जिस समय राजा कीर्तिसिंह राज्य करते थे, उस समय राजा शिवसिंह वयःप्राप्त हो चुके थे और स्वयं विद्योत्साही और गुणग्राही होने के कारण यह संभव है कि युवराज होतेही उन्होंने अपने पिता राजा देवसिंह के समय में विद्यापति को सादर अपनी सभा में रख लिया हो और अपने पिता के देहान्त होते ही राज्य पाकर विसपी ग्राम उन्हें दान करके दे दिया हो*।

यद्यपि उनके बनाए बहुत से श्लोक राजा भवसिंह आदि के प्रशंसाविषयक पाए जाते हैं, परन्तु इससे यह नहीं कह सकते कि वे भवसिंह के समय में कविता करने लग गए थे; क्योंकि जिनके यहां वे सपरिवार पालित होते थे, उनके पूर्वजों का यशोगान करना उनका धर्म था और उन्होंने उन पूर्वजों की कीर्ति वर्णन कर अपनी कृतज्ञता प्रगट की। मिथिलाभाषा के अनेक गीतों से यह विदित होता है कि वे राघवसिंह (राजा शिवसिंह के भाई का पुत्र) के समय तक जीवित थे, क्योंकि उनके नाम का उल्लेख उनके गीतों में है। परन्तु यह विदित नहीं होता कि वे दरबार में रहकर उस काल में काज करते थे अथवा घर बैठ कर हरिभजन में अपना समय बिताते थे। इतना तो निश्चय है कि वे दीर्घजीवी हुए। यद्यपि उनके जन्ममरण की तिथि ज्ञात नहीं होती, तथापि उनके ८०, ९० वर्ष के लगभग जीने में कोई सन्देह नहीं है। कीर्तिसिंह के राजत्वकाल से लेकर राजा भैरवसिंह के राजत्वसमय तक लगभग ४० वर्ष तक उनके दरबार में रहने का प्रमाण मिलता है, और उसके अनन्तर वे अपने घर रह कर इस राज्य की शुभचिन्तना करने लग गए हों तो कुछ आश्चर्य नहीं है

उनके बनाए हुए निम्नलिखित ग्रन्थ अब तक भी कहीं कहीं पाए जाते हैं—

(१) कीर्तिलता—यह ग्रन्थ उनके सब ग्रन्थों से पहिले का बना हुआ है जिसको उन्होंने राजा कीर्तिसिंह की प्रशंसा में रचा था। मैं इस ग्रन्थ की खोज में हूं, परन्तु अभी तक नहीं मिला है।

मुझे कीर्तिलता के आदि के पांच श्लोक मिले हैं सो नीचे लिखता हुं।

पितरुपनयमहं देवनद्यामृणालं
नहितनय मृणालः किन्त्वसौ सर्पराजः।
इति वदति गणेशे स्मेरवक्त्रे च शम्भौ
गिरिपतितनया याः पातु कौतूहलं वः ॥१॥

शशिभानु वृहद्भानुस्फुरत्त्रितय चक्षुषः।
वन्दे शम्भोः पदाम्भोजमज्ञानतिमिर द्विषः ॥२॥

द्वाः सर्वार्थसमागमस्थ रसना रङ्गस्थलीनर्तकी।
तत्वालोकविलोकनध्वजशिखा वैदग्धविश्राम भूः
शृङ्गारादि रसप्रवाहलहरी स्वर्लोककल्लोलिनी॥
कल्पान्तस्थिरकीर्तिसम्भ्रमसखी सा भारतं पातु वः
॥ ३ ॥

श्रोतुर्वक्तुर्वदान्यस्य कीर्तिसिंहमहीपतेः।
करोति कवितुः काव्यं भवी विद्यापतिः कविः॥४॥

भासमस्तकनिवासपेशला भूतभावरमणीयभूषणा।
कीर्तिसिंह नवकीर्तिकामिनी यामिनीपतिकलां
जिगीषति ॥ ५ ॥

भावार्थ—

गणेश ने महादेव से कहा कि हे पिता! यह गङ्गा का कमलनाल मुझ को दीजिए; महादेव ने कहा हे पुत्र! यह मृणाल नहीं है, किन्तु शेष है; इस प्रकार गणेश और प्रसन्नमुख महादेव की बात चीत में गिरिजा को जो कौतूहल हुआ सो आपको पाले॥१॥

* राजा शिवसिंह का पूरा हाल मैं कालान्तर में उनके वंश के संक्षिप्त वृत्तान्त सहित लिखूंगा। राजा देवसिंह के मरने के बारमास अनन्तर विद्यापति को विसफी ग्राम मिला था।

चन्द्रमा, सूर्य्य और अग्नि ये ही तीन जिनके प्रकाशमान नेत्र हैं और जो शिव अज्ञानरूपी अन्धकार के नाशक हैं, उनके चरणकमल की मैं वन्दना करता हूं ॥ २ ॥

सब अर्थों का समागमरूप जो मुखद्वार उसमें स्थित जिह्वा रङ्गशाला में नृत्य करनेवाली; तत्व विचार प्रदर्शन पताका है जिनकी; जो चातुर्य का विश्राम धाम, शृङ्गारादि रसों के प्रवाह की लहरी में गङ्गा के सदृश कल्लोल करनेवाली है; जो स्थिर कीर्ति की प्रिय सखी हैं, सो सरस्वती आपका पालन करें ॥ ३ ॥

सुनने और समझनेवाले परम उदार स्वयं कवि जो महाराज कीर्तिसिंह हैं उनका काव्य भवीकवि विद्यापति बनाते हैं ॥ ४ ॥

भासमान पदार्थों के मस्तकों पर निवास करने में चतुर ऐश्वर्य और आदर है भूषण जिसको, ऐसी, राजा कीर्तिसिंह की नवीन कीर्ति रूपा कामिनी चन्द्रमा की कला को जीतना चाहती है। क्योंकि चन्द्रकला भी शिव के दीप्तमान मस्तक पर रहनेवाली है और विभूति की स्थिति से रम्य शोभास्पद है ॥ ५ ॥

(२) पुरुषपरीक्षा—इस ग्रन्थ में चार परिच्छेद हैं और ४४ कथाएं हैं। कथा के छल से धर्मनीति और राजनीति आदि विषयों का वर्णन बहुत ही उत्तम रीति से किया है और इसमें शृङ्गार रस की प्रधानता रहने के कारण युवापुरुषों के पढ़ने और उससे शिक्षालाभ प्राप्त होने का अच्छा ढङ्ग रक्खा गया है। यह ग्रन्थ महाराज बहादुर दरभङ्गा की आज्ञा से मैथिल कवि श्रीचन्दा झा कृत नवीन मिथिलाभाषानुवाद सहित छप चुका है।

(३) लिखनावली—इसमें किस रीति से किसको पत्र लिखना चाहिए यही वर्णित है। उसमें का एक पत्र शिष्य की ओर से गुरु के लिखने का मिला है। परन्तु मैं उसको भ्रमास्पद जान यहां पर उद्धृत न कर सका। यद्यपि इस समय पत्रलेखनप्रणाली पूर्वकालिक रीति से सर्वथा बदल गई है, तथापि इससे स्पष्ट प्रमाणित होता है कि पत्रलेखनरीति को उस समय के लोग भी एक शिक्षा का विषय समझते थे। बड़े खेद का विषय है कि इन दिनों मिथिला में लिखने की परिपाटी बहुत कम पाई जाती है, यहां तक कि बहुत से पण्डितों को अपना नाम लिखना कष्ट बोध होता है।

(४ शैवसर्वस्वसार—यह ग्रन्थ रानी विश्वास देवी के आज्ञानुसार बना है। इसमें राजा भवसिंह से आरम्भ करके रानी विश्वासदेवी तक जितने राजा हुए, सबों का यश वर्णित है; केवल रानी लखिमा का कुछ वर्णन नहीं है, कारण उसका यह है कि रानी लखिमा के समय में राजकार्य बिलकुल विद्यापति के हाथ में था। इससे उन्होंने कुछ नहीं लिखा, क्योंकि यदि कुछ अच्छा लिखते तो आत्मप्रशंसा होती और यदि कुछ अप्रशंसा लिखते तो स्वकर्म की निन्दा होती, इस से कुछ नहीं लिखना ही अच्छा जाना। परन्तु यह किम्वदन्तीमात्र है। जब तक मुझे कीर्तिलता और शैवसर्वस्वसार ये दोनों ग्रन्थ नहीं मिलेंगे, तब तक इस विषय के सत्यासत्य पर मुझे सन्देह ही बना रहेगा; क्योंकि कीर्तिलता के विषय में भी कोई कोई यह बात कहते हैं। शैवसर्वस्वसार के जो कई श्लोक मिले हैं उन्हें अनुवाद सहित लिखता हूं—

श्लोकाः।

गङ्गोत्तुङ्गतरङ्गितामललसत्कीर्त्तिच्छटा क्षालिता
क्षोणिक्ष्मातल सर्व पर्वतवरो वीरव्रतालंकृतः।
भूपालावलि मौलिमण्डलमणि प्रत्यर्चितांघ्रिद्वयाऽ
म्भोजश्रीभवसिंह भूप्रतिरभूत्सवार्थिकल्पद्रुमः ॥ १ ॥

दृप्यद्दुर्वार वैरिद्विपकुल दलनाकुण्ठकुण्ठीरवश्री
रासीमाशेष भूभृन्मणि मुकुटतटज्योतिरुद्योतितांघ्रिः।
तत्सूनुः पुण्यकीर्तिर्नयविनयदयाद्दानदाक्षिण्यदक्षो
वृक्षः सर्वाश्रितानां म्मिथिल भुवि नृपो देवसिंहो वभूव ॥२॥

दत्तं येन द्विजेभ्यो द्विरदरथ महादानमन्यैरशक्यं
कावार्तात्वन्य दानैकनकमयतुला पूरुषो येन दत्तः।

यस्यक्रीड़ातड़ागस्तु लयति सततं शासने वारिराशिं
देवोऽसौ देवसिंहः क्षितिपतितिलकः कस्य न स्यान्नमस्यः ॥३॥

क्षोणिभर्तुरमुष्यवैरिवनितावैदग्ध्यदीक्षागुरोः
सम्भूतः शिवसिंहदेवनृपतिर्वीरावतंसः सुतः ।
शौर्यावर्जितगौडगज्जनमहीपालोपनम्रीकृताऽ
नेकोत्तुङ्गमतङ्गजाश्वकनकच्छत्राभिरामोदयः ॥ ४ ॥

संग्रामाङ्गणसीमभीमसदृशस्तस्यानुजः संलसद्-
दानस्वल्पितकल्पवृक्षमहिमाऽसौ पद्मसिंहो नृपः ।
कैलासोदरसोदरीयति शरद्राका शशाङ्कीयति
प्रालेयाचल शेखरीयाति यशो यस्यारविन्दीयति ॥ ५ ॥

विद्यामंगिरसः सुतस्य विनयं रामस्य वृत्तं मुनेः
शौर्यं सूर्यसुतस्य धैर्यमवनेर्गाम्भीर्यमम्भोनिधेः
दानं दानवनन्दनस्य सकलं सारं समुच्चिन्वता
धात्रा यः शरदिन्दुसुन्दर यशाः क्षोणीपतिर्निर्मितः ॥६॥

दुग्धाम्भोधेरिव श्रीर्गुणगणसदृशे विश्वविख्यातवंशे
सम्भूता पद्मसिंहक्षितिपतिदयिता धर्मकर्म्मैकसीमा ।
पत्युः सिंहासनस्था पृथुमिथिलमहीमंडलंपालयन्ती
श्रीमद्विश्वासदेवी जगति विजयते चर्ययांऽरुन्धतीऽव ॥७॥

इन्द्रस्येव शची समुज्ज्वलगुणा गौरीऽव गौरीपतेः
कामस्येव रतिः स्वभावमधुरा सीतेव रामस्य या
विष्णोः श्रीरिव पद्मसिंहनृपतेरेषा पराप्रेयसी
विश्वख्यातनया द्विजेन्द्रतनया जागर्ति भूमंडले ॥ ८ ॥

नैकोऽपि प्रथितः प्रदान यशसो विश्वासदेव्यासमो
दातारः कति ना भवन् कति न वा सन्तीह भूमंडले
यस्याः स्वर्णतुलामुखाखिलमहादानप्रदानांगणे ।
स्वर्गग्राममृगीदृशामपि तुला कोटिध्वनिः श्रूयते ॥ ९ ॥

लीलालोलावनाली द्विजनिचयदलद् वीचिविन्यस्तभार-
प्रव्यक्तोन्मुक्तमुक्ता तरलतरतरद् द्वन्द्वसन्दोहवाहुः ।
पुष्पत्पुष्पौघमालाकुलकलित लसद् भृगसंगीतसंगी
श्रीमद्विश्वासदेव्या समरुचिरुचिरो विश्वभागस्तड़ागः ॥१०॥

नित्यं देवद्विजार्थं द्रविणवितरणारम्भसम्भावितश्रीः
धर्मज्ञा चन्द्रचूड़ प्रतिदिवस समाराधनैकाग्रचित्ता
विज्ञाऽनुज्ञाप्य विद्यापति कृतिनमसौ विश्वविख्यातकीर्तिः
श्रीमद्वि श्वासेदवी विरचयति शिवं शैवसर्वस्व सारम् ॥ ११ ॥

प्रमाणमूला नवपल्लवाढ्या सपुष्पिका रम्यफलोपपन्ना
अभिष्टसिद्ध्यै विबुधैरुपेया वाक्यावली कल्पलतेव शोभा १२

भावार्थ

जिनने गङ्गा की प्रबल तरङ्ग के समान निर्मल सत्कीर्ति की छटा से सम्पूर्ण भूमण्डल के स्थल और पर्वतों को स्वच्छ कर दिया, जिनके चरणकमल नृपसमूहों के मणिमय शिरोभूषण से पूजे जाते थे, ऐसे वीर विभूषण समस्त याचकों के कल्पवृक्ष श्रीभवसिंह राजा हुए ॥ १ ॥

उनके पुत्र, जो हाथियों के झुण्ड के समान, अभिमान से फूले हुए दुर्धर्ष वैरियों के दलन करने में सिंह के समान पराक्रमी थे, और जिनके चरण सीमावर्त्ती समस्त राजाओं के मणिमय मुकुट की ज्योति से विद्योतित होते थे; जो न्याय, नम्रता, दया, दान, और दाक्षिण्य में प्रवीण थे; जो आश्रितों को वृक्षवत् सुखद थे और पवित्र कीर्तिमान् थे, सो देवसिंह मिथिला के राजा हुए ॥ २ ॥

जिन्होंने ब्राह्मणों को औरों से न होने योग्य गजरथ, महादान, और स्वर्णमय तुला पुरुष का दान दिया, जिनका खुदवाया क्रीड़ातड़ाग समुद्र की तुलना करता है, ऐसे राजाओं के तिलक देवसिंह किसके प्रणम्य न हुए ॥ ३ ॥

शत्रुओं की स्त्रियों को उत्तप्त करने में बड़े ही कुशल इस (देवसिंह) राजा के पुत्र शिवसिंह देव हुए। ये बड़े वीर थे जिन्होंने अपनी वीरता से गौड़ और गज़नी के राजाओं को पराजित कर उनसे अनेक अनेक बड़े बड़े हाथी, घोड़े, और सोने का छत्र दण्ड ले अभ्युदय लाभ किया ॥ ४ ॥

इनके छोटे भाई राजा पद्मसिंह हुए, जो समर भूमि में भीम के समान पराक्रमी थे और जिन्होंने अपने दान से कल्पवृक्ष के महत्व को न्यून कर दिया, जिनका यश शरद् ऋतु के पूर्णचन्द्र सदृश प्रकाशमान, हिमालय के समान स्वच्छ और कमल सा मनोरञ्जक हो चारो ओर फैला हुआ है ॥ ५ ॥

ब्रह्मा ने वृहस्पति की विद्या, रामचन्द का विनय, मुनि की वृत्ति, कर्ण की सूरता, पृथ्वी की धीरता, समुद्र की गम्भीरता, वलि की दानशक्ति, इन सब गुणों का संग्रह करके इस राजा के, जिसका यश शरद चन्द्रमा के समान शोभित होता है, बनाया ॥ ६ ॥

क्षीर समुद्र में जनमी हुई लक्ष्मी की ऐसी अनेक गुणों से विभूषित प्रसिद्ध कुल में उत्पन्न, राजा पद्मसिंह की प्यारी स्त्री अरुन्धती सी पतिव्रता, श्रीमती विश्वासदेवी, अपने सिंहासन पर आरूढ़ हो सम्पूर्ण मिथिला देश के पालती हुई विजय पाती है ॥ ७ ॥

जैसे इन्द्र के शची, महादेव के पार्वती, कामदेव के रति, रामचन्द्र के सीता, विष्णु के लक्ष्मी बड़ी प्यारी हैं, तैसे ही यह विश्वविख्यात नीतिमती विश्वासदेवी उत्तम ब्राह्मण के कुल में जन्म ग्रहण कर राजा पद्मसिंह की प्रियतमा हो संसार में सावधानता से बरत रही हैं ॥ ८ ॥

संसार में बहुत से दानी हुए और हैं भी, परन्तु विश्वासदेवी के समान प्रसिद्ध दानशील कोई नहीं हुआ और न है;—जिनके सुवर्ण तुलादिक महादान करने के उद्यान में देवाङ्गनाओं के भी तुलादान की कोटि ध्वनि सुन पड़ती है, अर्थात् देवाङ्गनाएं भी विश्वासदेवी की देखा देखी तुलादान करना सीखती हैं ऐसा अनुमान होता है ॥ ९ ॥

श्रीमती विश्वासदेवी का खुदाया हुआ सुन्दर सरोवर इतना बड़ा है कि जिसका यह देश एक हिस्सा सा जान पड़ता है, जिस तड़ाग की जलराशि में नाना प्रकार के जलपक्षी क्रीड़ा-पूर्वक मोती के समान स्वच्छ और चञ्चल तरङ्ग का भङ्ग करते दोनों डैनों से तैरते हुए क्याही अच्छे देख पड़ते हैं; और जिसमें अनेक प्रकार के फूले हुए पुष्पसमूहों पर सङ्गीतज्ञ के ऐसे मधुपगण गूँज गूँज कर गान करते हुए शोभायमान होते हैं ॥ ॥ १० ॥

जो अनुदिन देवता और ब्राह्मणों के निमित द्रव्य देना अपनी सम्पत्ति का मुख्य कर्तव्य समझती हैं, जो अत्यन्त चतुर और धर्मज्ञा हैं, जिसकी कीर्ति संसार में फैली हुई है, शिव की आराधना करने में जिसका मन सदा एकाग्र रहता है, वही यह श्रीमती विश्वासदेवी पण्डित विद्यापति के आज्ञा देकर उनसे शुभ शैवसर्वस्वसार ग्रन्थ बनवाती है ॥ ११ ॥

पण्डितों के चाहिए कि अपनी अभीष्ट सिद्धि के लिये कल्पलता के सदृश प्रमाणमूल नवपल्लव सुन्दर फूल फलों से उपपन्न इस आख्यायिका का आश्रयण करें ॥ १२ ॥

दुर्गाभक्तितरङ्गिणी—इस ग्रन्थ के राजा भैरवसिंह की आज्ञा से बनाया था (इसी समय विविध विद्यानिष्णात पण्डित पक्षधरमिश्र मिथिला में हुए थे) ये पाँच ग्रन्थ उनके बनाए संस्कृत में पाए जाते हैं। इसके अतिरिक्त उक्त कवि ने मिथिला भाषा में अनेक कविताएं रचीं जिससे वे सर्वसाधारण में भी विख्यात हुए। बहुत से बङ्गाली तो उनको अपना देशवासी कह के परिचय देने लगे हैं और यथासाध्य मिथिला भाषा का अनुकरण करके उनके नाम से गीत रचना भी करने लगे हैं। जैसे अभी के अनेक हिन्दी के कुकवि अपना मन माना पद रच के सूरदास अथवा तुलसीदास का नाम ठोक देते हैं, वैसे ही विद्यापति के विषय में बङ्गालियों ने किया है। परन्तु जो कुछ हो, उनका नाम जितना मिथिला भाषा के गीतों से हुआ, उतना संस्कृत के ग्रन्थों से कभी नहीं होता। मिथिला में ऐसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, धनी, गरीब नहीं हैं जिनके यहाँ मुण्डन, उपनयन, और विवाहादि शुभकार्य के उत्सवों में विद्यापति के बनाए गीत नहीं गाए जाते हों। इन गीतों में ऐसा सुन्दर भाव और माधुर्य भरा हुआ है जिसके आगे और कविगणों की कविता फीकी सी जँचती है। मैं इनके बनाए दो तीन गीत उदाहरणस्वरूप इस लेख के अन्त में दे इस लेख के शेष करूंगा।

कितने लोग इन्हें वैष्णव कहते हैं, क्योंकि इन्हों ने राधाकृष्ण विषयक अनेक गीत बनाए हैं। परन्तु यथार्थ में विद्यापति शैव थे। उनके शिवविषयक गीत भी बहुत हैं और उनकी कुलदेवी भगवती हैं। इससे उनका वैष्णव होना कभी संभव नहीं है। शिवसर्वस्वसार, दुर्गाभक्तितरङ्गिणी के नाम से स्पष्ट अनुमान होता है जो उनकी भक्ति शिव और दुर्गाही में अधिक थी और उन्हींके वे उपासक थे। कवि के वंशज लोग जो अभी विद्यामान हैं शाक्त हैं।

विद्यापति के विषय में और भी अनेक बातें हैं जिनका उल्लेख मैंने यहां पर नहीं किया है, क्योंकि उन बातों का सम्बन्ध राजा शिवसिंह की वंशावली से है और मैं उनका वंशचरित्र लिखने के समय उन सब बातों का उल्लेख अवश्य करूंगा।

यों तो पण्डित लोग इनके चरित्र को पढ़ कर इनके विषय में क्या समालोचना करेंगे, यह मैं नहीं कह सकता; परन्तु मेरे विचार में तो वे एक अत्यन्त रसज्ञ, अपने समय के अद्वितीय पण्डित, धार्मिक और प्रेमिक थे। काव्यरचना में तो मानो काव्य के सृष्टिकर्ता ही हुए थे।

उनके समय में चन्द कवि के समय की ऐसी भाषा भी मिथिला में काव्य रचना के लिये प्रचलित थी जिसका उदाहरण उनका बनाया हुआ मैं एक छप्पय लिखता हूं—

पुरिस हुअउ वलिराअ जासु करे कम्ह पसारिअ।
पुरिस हुअउ रहु तणय जेण रण रावण मारिअ॥
पुरिस भंगीरथ हुअउ जेण णिय कुल उद्धरिअउ।
परसुराम पुण पुरिस जेण खत्तिअ खअ करिअउ॥
पुरिस पसंसओ राअ गुरु कीत्ति सिंह गणेश सुअ।
जैसत्तु समर सम्मद्दि करिवप्पवैर उद्धरिअ धुअ॥१॥

विद्यापति मिथिला में एक, परम भक्तों में से हो गए हैं। लोक में ऐसी कथा है कि जब वे अपने बनाए गीत का गान करते थे तब शिव कोई न कोई रूप धर के अवश्य प्रत्यक्ष होते थे। यह भी मिथिला में प्रसिद्ध है कि जब वे बहुत रुग्न हुए और सबोंने उनके जीवन की आशा छोड़ दी तब वे गङ्गा के किनारे प्राण छोड़ने के इच्छुक हुए और लोग उनको पालकी में रख गङ्गातट ले चले। रात भर चलते चलते जब सवेरा हुआ तब उनकी आँखें खुलीं और पूछा कि गङ्गाजी अब कितनी दूर हैं? लोगों ने कहा चार कोस। तब उन्होंने कहा कि पालकी रक्खो मैं अब आगे न बढ़ूँगा। जब उनका पुत्र इतना कष्ट करके इतनी दूर आया तब वह मा होकर प्रेमवश अपने पुत्र को इस दुःख से उद्धार करने के लिये चार कोस तक भी न आसकेंगी। अवश्य आवेंगी। उनको आना होगा, नहीं तो उन्हें पुत्र की प्रतिज्ञाभङ्ग का पाप होगा, क्योंकि मेरा पण यही है कि गङ्गा की गोद में प्राणत्याग करूं। और मैं आसन्न मृत्यु हूं, चार कोस तक जाने में संभव है कि मेरे प्राण बाट ही में निकल जांय। अतः अब मैं यहां से आगे नहीं जा सकता, गङ्गाजी को अवश्य ही मेरी सुधि लेनी पड़ेगी। इतना कह वे ध्यान मे लीन हो गए। इनके ध्यान लगाए घण्टा भर भी नहीं बीता कि गङ्गाजी बड़े बेग से लहर पर लहर लेती-हुई दिखाई पड़ने लगीं और उनकी पालकी के निकट होके बहने लगीं। सब लोग चकित हो गए। कवि ने उनकी स्तुति की और प्रणाम किया और उनके गर्भ में बैठ भगवद्भजन करते करते थोड़े समय में वे इस असार संसार को छोड़ परलोक सिधारे।

सुना है कि गङ्गा वहां से अब ४--५ कोस दूर हट गई हैं। परन्तु वहां उनकी सूखी खाई अभी तक वर्तमान है और उनकी समाधि पर तत्क्षण एक शिवलिङ्ग अंकुरित हुए थे, जिनका मन्दिर अभी तक दलसिंहसराय स्टेशन के समीप मलकलीपुर नामक गाँव में इस कथन का प्रमाण दे रहा है।

मिथिला भाषा का गीत

नायिका से नायक बचन

सरस बसन्त समय भल पाओलि
दछिन पवन बहु धीरे

सपनहु रूप वचन एक भाषिय
मुख संदुरि करु चीरे ॥
तोहर वदन सम चाँद होअथि नहिँ
जैयो जतन विह देला ।
कैवेरि कांटि बनावल नव कय
तैओ तुलित नहिँ भेला ॥
लोचन तूअ कमल नहिं भैसंक
से जग के नहिं जाने ।
से फेरि जाय नुकैलाह जलभय
पंकज निज अपमाने ॥
भनहि विद्यापति सुन वर जौमति
ईसभ लछमि समाने ।
राजाशिवसिंह रूपनरायण
लखिमा दइ प्रति भाने ॥ १ ॥

सखी से नायिका बचन ।

कर कुच मण्डल रखलहुं गोए ।
कमल कनक गिरि झांपि न होए ॥
हरख सहित हेरलहुं मुख काँति ।
पुलकित तन मोर धरकत भाँति ॥
तखन हरल हरि अञ्चल मोर ।
रस भर ससरु कसनि केर डोर ॥
सपना एक सखि देखल मैं आज ।
तखनुक कैातुक कहइत लाज ॥
आनँद नोर नयन भरि गेल ।
प्रेमक आँकुर पलुव देल ॥
विद्यापति कवि कौतुक गाव ।
राजाशिवसिंह बुझ रस भाव ॥३॥

सखी से सखी वचन ।

जाइति देखिल पथ नागरि सजनी गे
आगरि सुबुधि सयानि ।
कनकलता सम सुन्दरि सजनी गे
विह निरमाओल आनि ॥
हस्ति गमनि जँगाँ चलइत सजनी गे
देखइत राजकुमारि ।
जिनका एहन सोहागिनि सजनी गे
पाय पदारथ चारि ॥
नील वसन तन घेरलि सजनी गे
सिरलेल चिकुर सम्हारि ।
ता पर भमर पिवय रस सजनी गे
वैसल पंख पसारि ॥
केहरि सम कटि गुन अछि सजनी गे
लोचन अम्बुज धारि ।
विद्यापति एह गाओल सजनी गे
गुन पाओलि अवधारि ॥ ३ ॥

उद्धव से गोपी बचन ।

चानन भेल विषम सर रे
भूषन भेल भारी ।
सपनहुं हरि नहि आएल रे
गोकुल गिरिधारी ॥
एकसरि ठाढ़ि कदमतर रे ।
पथ हेरथि मुरारी ।
हरि विनु देह दगध भेलरे
झामरु भेल सारी ॥
जाहु जाहु तों हैँ ऊधव हे
तोँ हे मधुपुर जाहे ।
चन्द्रवदनि नहिं जीउति रे
बध लागत काहे ।
भनहि विद्यापति तन मन दे
सुनु गुनमति नारि ॥
आजु आओत हरि गोकुल रे ।
पथ चलु झटझारि ॥४॥

गङ्गा जी की स्तुति ।

कतसुख सार पाओल तुअ तीरे ।
छाड़इत निकट नयन बह नीरे ॥
कर जोड़ि विनओँ विमल तरंगे ।
पुन दरसन हो पुनमति गंगे ॥
एक अपराध छमव मोर जानी ।
पाँप परसल मातु तुअ पानी ॥
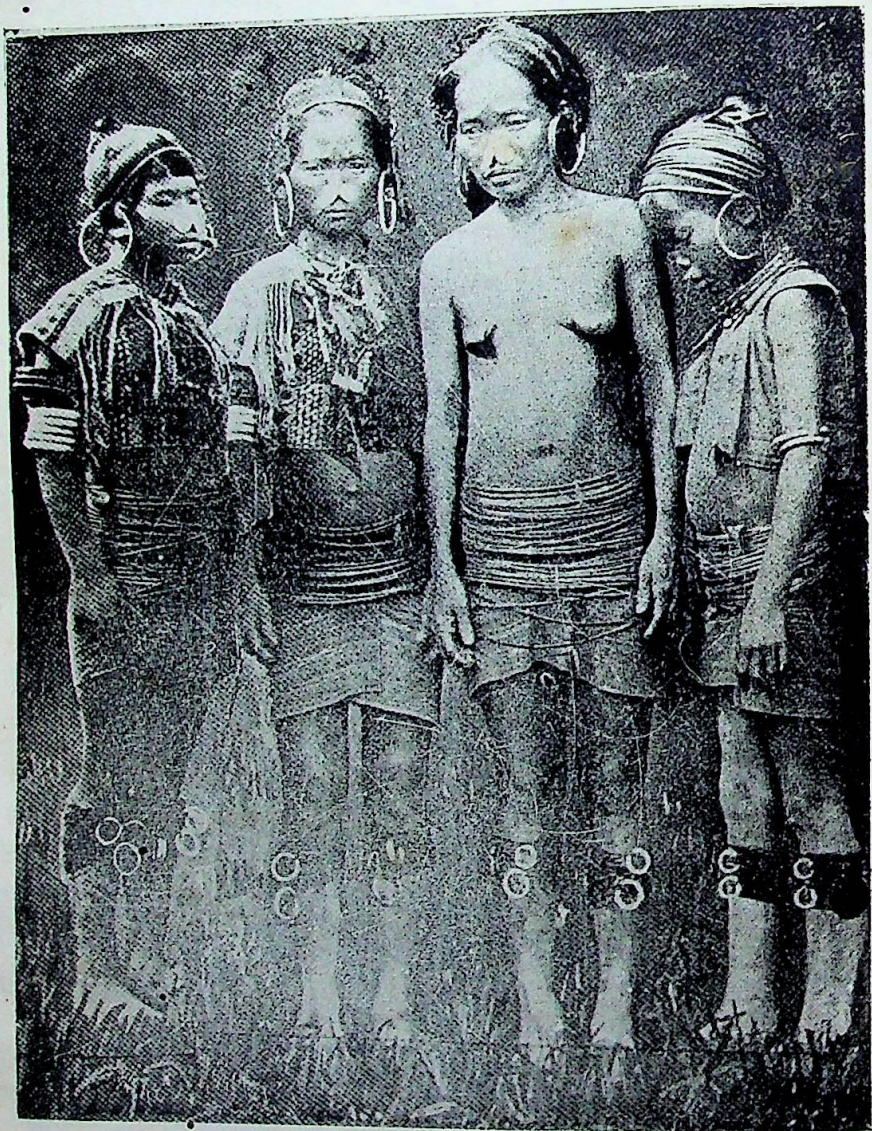
दीराप के नागा लोग ।

कि करव जप तप जोग धेग्राने।
जनम कृतारथ एकहिँ समाने॥
भनहि विद्यापति समदौं तोही।
ग्रन्त काल जुनु विसरहु मोही॥ ५॥

(राजा) श्री कमलानन्दसिंह (सरोज)

ब्रह्मपुत्र घाटी की जंगली जातियां

भारतवर्ष एक ऐसा विचित्र देश है कि इसकी समता भूमण्डल का कोई देश नहीं कर सकता। यदि इसे हम प्रकृति की प्रदर्शनी कहें तो कदाचित् अत्युक्ति न होगी। किसी काल में यह देश सभ्यता में सबका मुकुटमणि माना जाता था, ग्रैार ग्रब भी भारतवर्षीय दृष्टि में ग्रनेक बातों में यह सभ्यता में ग्रैार देशों से बढ़ा हुग्रा है। यहां की विद्या बुद्धि की तुलना करने में ग्रन्य देशीय बड़े बड़े विद्वान विफलमनोरथ हुए हैं। विचित्रता तो यह है कि इस देश में सभ्य ग्रार्य जातियों के साथ ही साथ ग्रनेक ग्रसभ्य जंगली जातियां भी बसती हैं, जिनकी रहन सहन, रीति व्यवहार, खान पान ग्रादि सबही कैातुहलप्रद हैं ग्रैार जिनका विशेष वृत्तान्त जानने के लिये चित्त उत्सुक हो उठता है। गोंड भील सन्थाल ग्रादि जंगली जातियां तो प्रसिद्ध ही हैं। ग्राज जिस जाति का वृत्तान्त हम पाठकों को सुनाया चाहते हैं वह इन सबों से विशेष विचित्र है। इसका वृत्तान्त ग्रब तक हिन्दी में कहीं प्रकाशित नहीं हुग्रा है। कलकत्ते मेडिकल कालेज के ग्रध्यापक डाक्टर वाडल ने इस जाति का बहुत कुछ ग्रनुसन्धान किया है। उन्हीं के लेखों के ग्राश्रय* पर हम ग्रपने हिन्दी पाठकों के चित्तविनोदार्थ नीचे ब्रह्मपुत्र नदी की घाटी में बसनेवाली जंगली जातियों का कुछ वर्णन करते हैं। यह जातियां चीन, भारतवर्ष, तिब्बत ग्रैार बर्म्मा के बीच में जो पहाड़ी देश है, उसी में रहती हैं। कुछ ही वर्ष पहिले ये जातियां ग्रत्यन्त जंगली दशा में थीं। नरहत्या की इनमें इतनी प्रथा थी कि जो मनुष्य सबसे ग्रधिक नरहत्या करता था वह बड़ा प्रतापी समझा जाता था। योधा लोग (जो नरहत्या कर चुके हों) कोई विशेष चिन्ह ग्रथवा ग्राभूषण पहिरते हैं ग्रैार वे युवा लोग, जिन्होंने किसी मनुष्य को न मारा हो, इसे नहीं पहिरने पाते। इन लोगों की ग्रनगिनित जातियां हैं। प्रत्येक गांव में एक जाति रहती है ग्रैार हर गांव का एक सरदार होता है। पर यह केवल नाममात्र को सरदार होता है। गांव के लोग इसकी ग्राज्ञा नहीं मानते ग्रैार ग्रपना ग्रपना झगड़ा ग्रपनी ग्रपनी इच्छा के ग्रनुसार ग्रापही निपटाते हैं। ये लोग ग्रपना घर लकड़ियों का एक ऊंचा चबूतरा बना कर उसके ऊपर बनाते हैं ग्रैार घर की छत ढालूग्रां होकर नीचे भूमि तक लगी रहती है। गांव के कुंग्रारे लड़कों ग्रैार लड़कियों के सोने का ग्रलग घर रहता है। कुंग्रारे लड़के प्रायः गांव के बाहरी भाग में, जिसे वे लोग 'मोरांग' कहते हैं ग्रैार जो ग्राम की रक्षा के लिये एक प्रकार का घर सा बना रहता है, सोते हैं। इन लोगों में पुरुष एक साथ कई स्त्रियों से विवाह कर सकता है ग्रैार स्त्रियां भी एक साथ कई पति कर सकती हैं। वास्तव में इन पतियों को ग्रपना ग्रपना घर छोड़ कर स्त्री के घर ग्राकर रहना पड़ता है। इनमें से मुख्य मुख्य जातियों का वर्णन नीचे किया गया है। पर ग्रब इनमें से बहुत सी जातियां ग्रपनी ग्रसभ्य तथा जंगली चालों को बड़ी शीघ्रता से छोड़ रही हैं, यहां तक कि इनमें से एक जाति का एक युवा कलकत्ता युनिवर्सिटी की मेट्रिक्युलेशन परीक्षा में उत्तीर्ण हो गया है ग्रैार ग्राशा की जाती है कि कुछ ही काल में इन लोगों के ग्रसभ्य ग्राचरणों के नाम का भी लेश न रह जायगा।

कुकी

इन लोगों में पहिले नरहत्या की बड़ी प्रथा थी। इन लोगों का विश्वास था कि जो मनुष्य जितने ग्रादमियों को मारेगा वे सब ग्रादमी दूसरे जन्म में उसके दास होंगे। ग्रतएव ये समझते थे कि जो मनुष्य सबसे ग्रधिक ग्रादमियों को मारेगा वह

* हम डाक्टर वाडल के ग्रत्यन्त ग्रनुगृहीत हैं कि उन्होंने ग्रपने लेख से सहायता लेने ग्रैार उनके लिये हुए चित्रों के छापने की हमें ग्राज्ञा दी।—सम्पादक।

दूसरे जन्म में सबसे अधिक सुख का भागी होगा। इसी कारण से जब कोई सरदार मर जाता था तो उसके सब दास तथा बन्दी लोग मार डाले जाते थे और उनके सिर मृतक शरीर के साथ चबूतरे पर रक्खे जाते थे।

कुकी लोग कंघी को एक अपूर्व वस्तु समझते हैं। कंघी काठ की लाल और काली रंगी हुई होती है, तथा कभी कभी हाथीदांत की भी होती है। यदि कंघी खोजाय तो इसे बड़ा अशुभ मानते हैं। विवाह के समय पुरोहित दुलहे और दुलहिन को एक एक कंघी देता है। किसी मनुष्य की कंघी कोई दूसरा मनुष्य काम में नहीं ला सकता, परन्तु पति की कंघी पत्नी और पत्नी की पति काम में ला सकते है। जब कोई मनुष्य मर जाता है तो उसकी कंघी उसके साथ गाड़ी जाती है। मृतक का शोक प्रकाश करने के लिये उसके सम्बन्धी लोग अपनी अपनी कंघियां तोड़ डालते हैं।

युवा होने के पहिले सब मनुष्यों के गोदना गोदा जाता है। यह गोदना प्रायः बाएं हाथ में वृत्ताकार होता है। परन्तु कभी कभी दहिने हाथ में भी होता है और कभी कभी बाएं और दहिने दोनों हाथों में। कभी ऐसा भी होता है कि एकही हाथ में गोदने के एक से अधिक वृत्त होते हैं।

इन लोगों में स्त्री को प्रधान मानते हैं (maternal state of society). अविवाहित मनुष्य का कोई आदर नहीं होता। विवाह होने के पहिले वर को कन्या के घर तीन वर्ष तक रह कर दास की भांति काम करना पड़ता है, तब कहीं उसका विवाह होता है। परन्तु तब भी वह स्वतन्त्रता नहीं पाता। विवाह होने के पीछे भी उसे पांच सात महीने तक उसी भांति दासत्व दशा में रहना पड़ता है। पांच वर्ष पूरा होने पर वह अपना घर अलग बना कर उसमें स्वतन्त्रतापूर्वक रहने पाता है। जाते समय उसे अपने श्वसुर को दो रुपए देने पड़ते हैं। जो लोग इस भांति दास की नाईं काम करना नहीं चाहते, उन्हें इससे छुटकारा पाने के लिये दो सौ वा इससे अधिक रुपए देने पड़ते हैं।

बालकों का नाम वही रक्खा जाता है जो ग्राम के वृद्धों का नाम हो। कदाचित इस कारण से कि वे समझते हैं कि ऐसा करने से बालकों की आयु दीर्घ होगी। पुत्र होने पर पिता फिर अपने नाम से नहीं पुकारा जाता। फिर वह 'अमुक का पिता' कहकर पुकारा जाता है। जो लोग निस्सन्तान हों वे 'पुत्रहीन पिता' वा 'पुत्रहीन माता' कह कर पुकारे जाते हैं।

किसी मनुष्य की मृत्यु के पीछे उसका उत्तराधिकारी उसका भाई होता है और यदि उसके भाई न हो तो उसकी पत्नी उत्तराधिकारिणी होती है। बड़े भाई के देहान्त पर यदि छोटे भाई का विवाह न हुआ हो तो उसे अपने बड़े भाई की विधवा से अवश्यमेव विवाह करना पड़ता है। ऐसा न करने से बड़े भाई की सारी सम्पत्ति उसे न मिलकर उस विधवा स्त्री को मिल जाती है। परन्तु बड़ा भाई छोटे भाई की विधवा से विवाह नहीं कर सकता।

अङ्गमी

ये सबसे अधिक हत्यारे तथा संख्या में सब से अधिक थे। इनके पड़ोसी लोग इनसे इतना डरते थे कि अकेला एक अङ्गमी किसी दूसरे गांव में जाकर जो चाहे सो कर लेता था, और वे गांववाले उससे इस डर के मारे कुछ नहीं बोलते थे कि यदि उससे बोलेंगे तो उसके जाति के सब लोग आकर उनसे इसका बदला लेंगे।

एक एक गांव में इनका २ से लेकर ६ दल तक रहता है। यह दल एक दूसरे से आपस में ज़रा ज़रा सी बातों मे इतना लड़ जाता है कि यह लड़ाई पीढ़ी दर पीढ़ी चलती है, और जभी एक दल अवसर पाता है तभी दूसरे से अपनी खार निकालता है। परन्तु जब किसी गांव के दो दल आपस में इस भांति लड़ते हों तो, उसी गांव का तीसरा

दल उस स्थान पर खड़ा रहकर भी कुछ नहीं बोलता और न कभी उन दोनों दलों में मेल कराने का यत्न करता है। इस लड़ाई में बहुधा वृद्धा स्त्रियां तथा बच्चे ही अधिक मारे जाते हैं। ये लोग नरहत्या से तनिक भी नहीं हिचकते और असहाय स्त्रियों तथा बच्चों को भी मार डालने में अपना बड़ा गौरव समझते हैं। युवक लोग जब तक इस प्रकार हत्या नहीं कर सकते तब तक गांव की अविवाहिता स्त्रियां उनका बड़ा अनादर करती हैं।

किसी दुर्घटना में, तथा मृत्यु और विशेष कर अचानक मृत्यु, तथा आग लगने में, और बालक जन्मने में भी, वह घर जिसमें कि यह घटना हुई हो, कुछ दिनों (बहुधा तीन दिन) के लिये छोड़ दिया जाता है। जब कोई सरदार मर जाता है तो कोई आदमी गांव के बाहर तीन दिन तक नहीं जाता।

किसी योधा के मरने पर उसका सबसे निकट का सम्बन्धी अपने हाथ में भाला लेकर शव के माथे में मारता है, जिसमें परलोक में यह समझा जाय कि वह युद्ध में मरा है और इस कारण से उसका वहां सत्कार किया जाय। मृतक के साथ उसके दहिने ओर उसके दोनों भाले गाड़ा जाता है और उसकी तलवार तथा अग्नि उत्पन्न करने के लिये चीरा हुआ बांस और डोरी भी गाड़ी जाती है। स्त्री के साथ केवल एक काला कपड़ा गाड़ा जाता है और उसके कफन पर एक डलिया चावल फेंक कर तब मट्टी पाटी जाती है। मरने की जेवनार के लिये जो पशु मारे जाते हैं उनकी खोपड़ी तथा मृतक की ढाल, बरछा और बेंत के गहने कबर के ऊपर रक्खे जाते हैं। स्त्री की कबर के ऊपर उसका टोकरा, चावल कूटने का बत्ता, तथा बुनने की लकड़ियां रक्खी जाती हैं। मृत्यु के चौथे दिन एक मुर्गा मारा जाता है और उसे मृतक के सब सम्बन्धी खाते हैं।

आओ

ये लोग अङ्गमी से काले तथा कम बलवान पर अधिक लम्बे होते हैं। इनमें पुरुष लोग गोदना नहीं गोदवाते, परन्तु स्त्रियां मुंह, गरदन, छाती. भुजा और पैरों में गोदवाती हैं। यह गोदना इज्जत का चिन्ह समझा जाता है, क्योंकि लौंड़ियों को गोदना नहीं गोदा जाता। मनुष्यों के कान में तीन छेद किए जाते हैं। सबसे नीचे का छेद सबसे बड़ा होता है और इसमें बांस अथवा पीतल की एक बड़ी पोंपली पहिनी जाती है। ऊपर के दोनों छेदों में रुई के गुच्छे पहिने जाते हैं। मोहनमाला के स्थान पर ये लोग श्वेत दाने की माला पहिनते हैं। योधालोग, जो नरहत्या कर चुके हों, गले में बनैले सूअर के दांत का गलाबन्द तथा कलाई पर श्वेत कौड़ियों का एक आभूषण पहिरते हैं; परन्तु अब यह आभूषण वे लोग भी पहिरने लग गए हैं जिन्होंने नरहत्या नहीं की है।

इनके ग्राम बहुधा बड़े होते हैं, तथा पर्वतों पर अच्छे स्थान पर होते हैं, और उनके चारों ओर गड्ढा होता है जिसमें कांटे जड़े हुए बांस रहते हैं। ग्राम के द्वार के निकट 'मोराङ्ग' होता है जिसमें रात्रि के समय ग्राम के सब अविवाहित लड़के सोते हैं, तथा इसमें पञ्चायत भी होती है। इसके भीतर मनुष्य, हाथी, चीते, छिपकली, आदि की खुदी हुई मूर्तियां रहती हैं, जो काली, श्वेत तथा गेहूं के रङ्ग की रङ्गी रहती हैं। दीवालों के चारो ओर पुराने तूम्बों की बनी हुई आदमियों और जन्तुओं की खोपड़ियां होती हैं, जो तनिक दूर से देखने से सच्ची खोपड़ी जान पड़ती हैं। 'मोराङ्ग' का छज्जा कुछ आगे निकला रहता है और उसमें फूंस की बनी हुई मनुष्यों की छोटी छोटी मूर्तियां तथा फूंस के गुच्छे एक दूसरे से समान दूरी पर होते हैं। 'मोराङ्ग' के बाहर लकड़ी का एक चबूतरा रहता है, जिसपर युवा लोग अपने मित्रों के साथ बैठ कर दिन भर गप्पें मारते हैं, तथा तमाखू पीते हैं।

इसीके निकट एक खुला हुआ दालान रहता है। इसमें युद्ध का डङ्का रक्खा रहता है। यह एक बड़े वृक्ष के तने को खोखला करके, तथा उसे भैंसे के आकार का गढ़ के बनाया जाता है।

गांव का एक सरदार होता है, परन्तु जैसा कि हम ऊपर कह आए हैं, वह केवल नाममात्र ही को होता है।

विवाह दोनों प्राणियों की सम्मति से होता है। चिनंगों जाति में इसके अतिरिक्त विवाह की कोई रीति नहीं होती कि कन्या के पिता को मूल्य की भांति कोई नाममात्र का उपहार दिया जाय। मौग सेन जाति में विवाह होने के २० दिन पहिले वर और कन्या अकेले यात्रा को चले जाते हैं।

इन लोगों के बहुत से तेवहारों में बैल बड़ी निर्दयता से मारा जाता है, अर्थात् जीतेही उसकी बोटी बोटी काट डाली जाती है। उनका एक तेवहार नीचे वर्णन किया जाता है। इससे जान पड़ता है कि इन लोगों में पहिले कन्या को कहीं से हर लाकर विवाह करने की प्रथा थी। यह तेवहार अगस्त मास में तीन दिन तक होता है। इसमें लताओं का एक रस्सा बनाया जाता है, जिसके एक सिरे को गांव के युवा लोग अपनी ओर खींचते हैं और दूसरे को युवतियां अपनी ओर। युवतियां रस्से को गांव के बाहर ले जाने का यत्न करती हैं और युवा लोग यह यत्न करते हैं कि ऐसा न होने पावे। अंधेरा होने पर भिन्न भिन्न दल की लड़कियां अपनी अपनी भूमि पर रासमण्डल बना कर नाचती और गाती हैं। युवा लोग हाथ में बत्ती लेकर दूसरे दल की लड़कियों के पास जाकर तथा उनमें से एक को चुन कर उसे बलात् उठा ले जाते हैं। जो लड़कियां इस भांति ले जाई जाती हैं उन्हें उस युवक को जो उसे ले आया हो, खड़े होकर शराब पिलाना पड़ता है।

इनमें गुलामी अब तक प्रचलित है। मुरदे गाड़े नहीं जाते। वे एक सन्दूक में रक्खे जाते हैं और उस सन्दूक में धूआं दिया जाता है। तब यह सन्दूक गांव के बाहर एक ऊंचे चबूतरे पर रख दिया जाता है और उसपर मृतक के कपड़े, थाली और कटोरा रक्खे जाते हैं, और ये धा के शव के सामने, जो जो सिर उसने अपने जीवन में काटे हों, वे सब एक पंक्ति में रक्खे जाते हैं।

अरलेङ्ग

ये लोग सदैव घूमा करते हैं। कभी एक ग्राम में सदा के लिये अपना निवास नहीं रखते। घने जङ्गल के बीच थोड़ी सी भूमि साफ़ करके वहीं एक ग्राम बना लेते हैं, और वहीं रुई और चावल की खेती करने लग जाते हैं। परन्तु दो तीन वर्ष पीछे वे उस स्थान को छोड देते हैं और इसी भांति किसी दूसरे स्थान में जाकर अपना ग्राम बना लेते हैं।

गांव भर के सब लोग चीते आदि घातक जन्तुओं के डर से, एकही घर में रहते हैं। उनके मुरगे, कुछ बकरे तथा अन्न इस घर में एक ओर रहते हैं। घर के चबूतरे के नीचे भूतों के बलिदान के लिये सूअर, बकरे और मुरगे रहते हैं। भैंसे और गाय घर के निकट एक बाड़े में रहते हैं।

स्त्रियां भी बराबर वह सब काम करती हैं जो पुरुष करते हैं। विवाह केवल बालिगों में होता है। इन लोगों में भी विवाह होने के पहिले वर को कन्या के पिता के यहां दो वर्ष तक दास की भांति सेवा करनी पड़ती है। एक मुर्गा गुप्त रीति से बलिदान दिया जाता है और वर और कन्या उसका मांस खाते हैं।

बालकों के नाम, ग्राम की सबसे वृद्धा स्त्री रखती है। प्रत्येक गांव में वर्ष में एक बार एक बड़ा भारी उत्सव होता है जिसमें उनके मुख्य देवता 'अरनाम' अर्थात् 'पृथ्वीराज' को श्वेत रङ्ग का कोई जानवर, यथा कोई श्वेत चिड़िया, अथवा श्वेत बकरा वा श्वेत गाय, बलि चढ़ाई जाती है; परन्तु सूअर में श्वेत रङ्ग का विचार नहीं किया
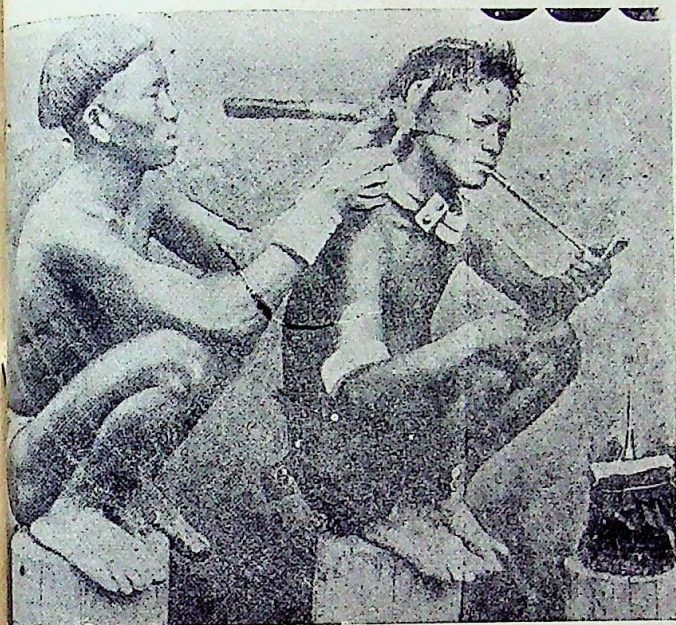
नागाओं की हजामत ।

दीराप उपत्यकावासी खाम-वा नागा
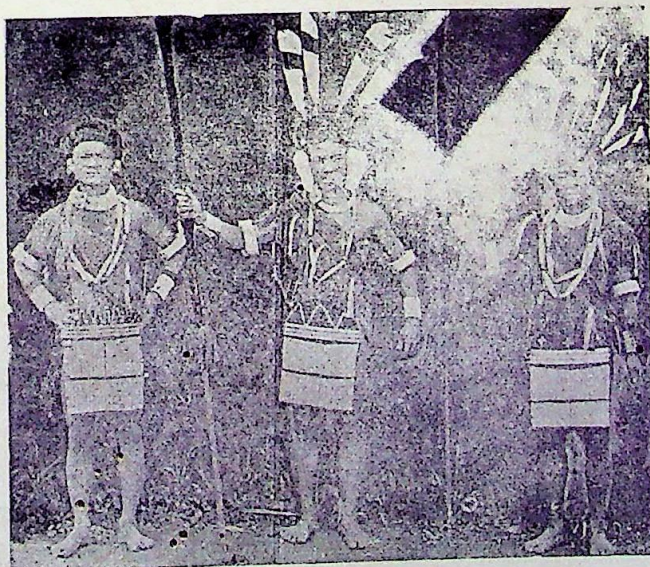
लोहटा (नागा) लोग ।
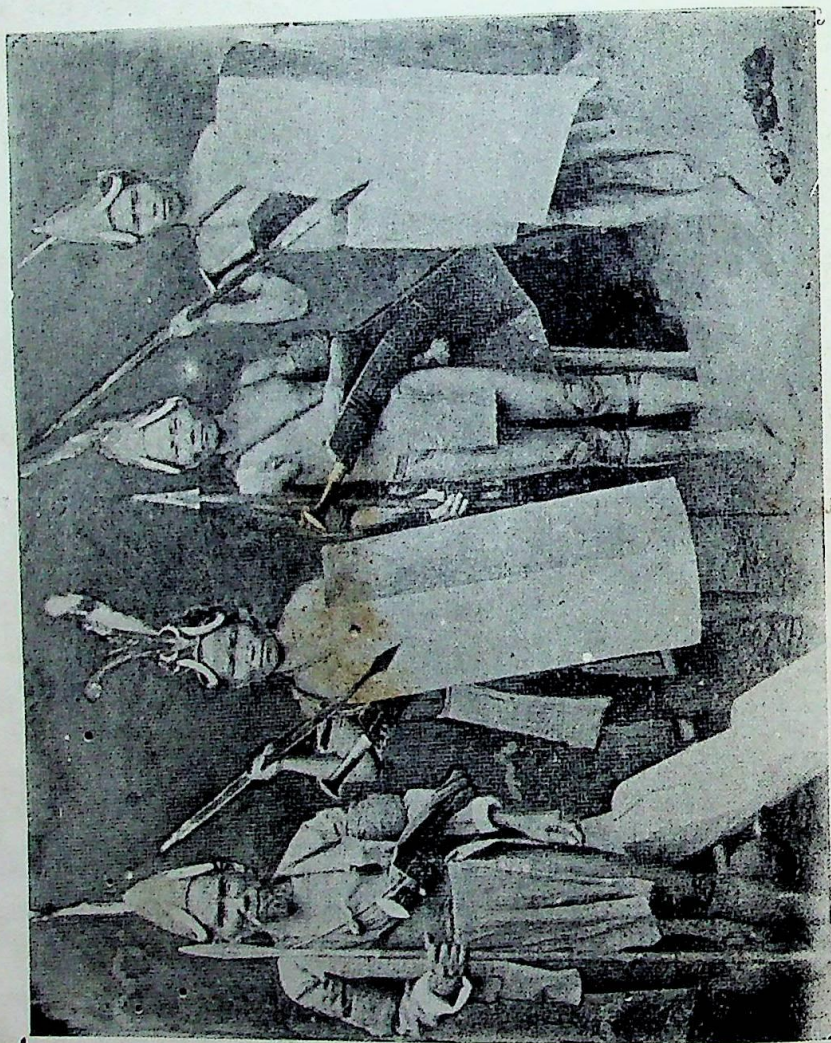
द्वीराप के नागा लोग।

जाता। भूमि को साफ़ करके उसपर केले और इलायची के पत्ते बिछाते हैं। फिर उसपर फूल तथा पीसा हुआ चावल रखते हैं, तब ग्राम का वैद्य अरनाम को सूअर तथा और जन्तु चढ़ाता है। देवता को जानवरों का लोहू और कुछ पका हुआ भोजन चढ़ा कर तब सब लोग मांसादि भक्षण करते हैं।

वे लोग समझते हैं कि पहाड़ों, नदियों और झीलों के भूत मनुष्य, पशु और अन्न का नाश करते हैं। वे जलवृष्टि रोक देते हैं, तथा चीतों को मनुष्यों और पशुओं को मारने के लिये भड़काते हैं। एक दूसरा भूत भी, जो घरों में रहता है, ऐसा ही दुष्ट होता है। परन्तु वे कहते हैं कि ये भूत यह सब उपद्रव केवल रात्रि में कर सकते हैं, दिन में उनका कोई बस नहीं चलता।

जब कोई मनुष्य बीमार पड़ता है तो वैद्य उसे अपने हाथ में पकड़ कर मुट्ठी भर कौड़ी लेता है और उन्हें भूमि पर फेंकता है। फिर कौड़ियों के भूमि पर गिरने की रीति से वह यह ज्ञात करता है कि 'हेमोटो' का वासस्थान कहां है। उस स्थान के निकट एक चिड़िया बलिदान दी जाती है और तब वैद्य मन्त्र द्वारा 'हेमोटो' को रोगी के शरीर से निकाल कर उस मृत चिड़िया में भगा देता है। कभी कभी 'हेमोटो' जाना अस्वीकार करता है, अर्थात् तब रोगी मर जाता है।

मृतक जलाए जाते हैं। गांववाले चिता के चारों ओर इकट्ठे होते हैं और वैद्य उस चिता में आग लगता है, और तब पशु और पक्षी मारे जाते हैं। इसके पश्चात् भोजन और सुरापान प्रारम्भ होता है और चिता के चारों ओर जङ्गली नृत्य और गान होने लगता है। यह बराबर रात भर होता है। जब सवेरा होता है तो सब लोग वहां से चले आते हैं, केवल ग्रामवैद्य और मृतक के सम्बन्धी वहां रह जाते हैं। ये लोग सवेरा होने पर एक गड़हा खोद कर पानी निकालते हैं। जब उसमें कुछ पानी आ जाता है तो वैद्य उसमें से कुछ पानी लेकर उस भूमि पर छिड़कता है और उस भूमि का नाम मृतक के नाम से रखता है। यदि कुछ काल तक गड़हा खोदने पर भी उसमें पानी न निकले तो यह समझा जाता है कि मृतक की आत्मा स्वर्ग से निकाल दी जायगी और नरक में डाली जायगी। इसी कारण से जिसमें पानी सुगमता से अवश्य प्राप्त हो सके, दाहक्रिया किसी नदी के तट के समीप, अथवा कोई ऐसे स्थान पर जहां थोड़े ही खोदने पर पानी मिले, की जाती है।

मेराडे अथवा गरो

कुकी लोगों के विषय में यह लिखा जा चुका है कि वे स्त्री के कितने दास होते हैं। परन्तु मेराडे लोग उनसे भी कई चासनी बढ़ कर होते हैं। इन लोगों में विवाह का प्रस्ताव कन्या करती है और वर अपना घर छोड़ कर कन्या के घर जाकर रहता है। यदि पति अपनी स्त्री को तिलाञ्जलि दिया चहे तो वह कदापि ऐसा नहीं कर सकता जब तक कि वह अपनी कुल सम्पत्ति और अपने लड़कों को अपनी स्त्री को न देदे। परन्तु यदि स्त्री चाहे तो अपने पति को अलग करके दूसरे मनुष्य से विवाह कर सकती है और इसके साथ ही अपने पहिले पति की सम्पत्ति और लड़के भी ले जा सकती है। जब कोई सरदार मर जाता है तो उसका उत्तराधिकारी उसके बहिन के लड़कों में से जिसे उसकी विधवा चुन ले, होता है। यदि इस युवा का विवाह होगया हो तो उसे अपनी स्त्री को छोड़ देना पड़ता, तथा उसे अपनी सब सम्पत्ति और लड़के दे देने पड़ते हैं और इस वृद्धा विधवा से विवाह करना पड़ता है। किसी सरदार की स्त्री भी अपने पति को तिलाञ्जलि दे सकती है, परन्तु उसे अपना दूसरा पति उसी उत्तम घराने में से चुनना पड़ता है, क्योंकि दूसरे घराने के लोग सरदार होने के योग्य नहीं समझे जाते।

ये लोग कुत्ते के मांस को एक बड़ी अच्छी स्वादिष्ट वस्तु समझते हैं। ये एक आकाश के देवता की पूजा करते हैं और समझते हैं कि सूर्य, चन्द्रमा, तारे तथा नदियों, वनों और पर्वतों के देवता उसके गुमाश्ते हैं। स्वर्गीय देवताओं को सफेद मुर्गे चढ़ाए जाते हैं और नदियों, वनों और पर्वतों के देवता को चावल, पुष्प, मदिरा आदि चढ़ाते हैं। इन लोगों के देवताओं के मन्दिर नहीं होते। एक सूखे बांस को, जिसमें शाखाएं भी लगी रहती हैं, पृथ्वी में गाड़ देते हैं और उसी की पूजा करते हैं।

क्योन-स्यू वा लोहटा

यह जाति पहिले बड़ी भयानक थी, परन्तु अब यह अपना जंगलीपन छोड़ती जाती है और बस कर खेती करने लग गई है। इनके गांव का सरदार भी नाममात्र ही को होता है। इन लोगों के घर लकड़ी के चबूतरों पर न बनाए जाकर भूमिही पर बनाए जाते हैं, परन्तु गांव के युवालोग गांव के अन्त में मोरांग में रहते हैं।

प्रत्येक गांव में एक पवित्र वृक्ष होता है। लोहटा लोग जब कभी मनुष्यों को मारते हैं तो उनकी खोपड़ी लाकर इस वृक्ष में कील से जड़ देते हैं।

लोग कहते हैं कि इनमें लड़कियों का विवाह बहुत छोटी अवस्था में हो जाता है और ये लगभग सौ रुपए पर खरीदी जाती हैं।

मृतक गाड़े जाते हैं और जो जानवर मृतक की जेवनार के लिये मारे जाते हैं, उनकी खोपड़ियां कबर के ऊपर रक्खी जाती हैं।

यदि कोई मनुष्य बाघ से मारा जाय, अथवा डूब कर, वा किसी वृक्ष के ऊपर से गिर कर, वा किसी गिरते हुए वृक्ष के नीचे दबकर मर जाय, तो यह समझा जाता है कि देवता का कोप हुआ, और उसके घर के सब लोग अपना घर द्वार चीज वस्तु, और यहां तक कि तन पर के कपड़े भी छोड़ कर नङ्गे हो घर से निकल जाते हैं। ग्राम के बाहर जाने पर इनके सम्बन्धी में से कोई वृद्ध मनुष्य इन्हें पहिरने के लिये कपड़ा देता है। उसे पहिन कर ये बिचारे एक महीने तक बन में घूमते हैं। एक मास इस प्रकार व्यतीत होने पर यह समझा जाता है कि देवता का कोप शान्त हो गया। तब ये लोग ग्राम में लौट आने पाते हैं। परन्तु त्यागे हुए घर और वस्तुओं को वे अथवा कोई अन्य मनुष्य फिर कभी नहीं छू सकता और न फिर कोई उस घर को खोद कर उस स्थान पर दूसरा घर बना सकता है।

मिश्मी

इन लोगों में अनेकभार्यता की बड़ी प्रथा है। जिसकी सबसे अधिक स्त्रियाँ होती हैं वह सबसे अधिक धनाढ्य समझा जाता है। स्त्रियां खरीदी जाती हैं। उनका मूल्य एक सूअर से लेकर बीस पशु तक होता है। अधिक स्त्रियां और लड़के होने के कारण इन लोगों के घर बहुत बड़े बड़े होते हैं, यद्यपि प्रत्येक गांव में उनकी संख्या बहुत कम होती है। सरदार का घर लम्बान में १३० फीट से कम नहीं होता होगा और उसमें उसकी स्त्रियों और लड़कों को लेकर १०० मनुष्य रहते होंगे। जब कोई सरदार मर जाता है तो उस के उत्तराधिकारी की माता को छोड़ कर और उसकी सब स्त्रियां उसके उत्तराधिकारी की हो जाती हैं। उत्तराधिकारी की माता दूसरे सबसे निकट के सम्बन्धी की जमा हो जाती है।

उनका धर्म विषयक यह विश्वास है कि एक देव है जो उनको दुःख और क्लेश देता है। अतएव जिसमें वह ऐसा न करे इस हेतु उसके लिये बलिदान देना चाहिए।

सिनटेङ्ग

कुकी और मेराड़े जाति की नाईं इन लोगों में भी स्त्री को प्रधान मानते हैं। इन लोगों में भी विवाह

का प्रस्ताव कन्या करती है और वर अपना घर बार छोड़ कर कन्या के घर जाकर रहता है। लड़के अपने पिता के वंश के नहीं समझे जाते, वरन अपनी माता के कुल के समझे जाते हैं। अतएव यदि पति और पत्नी लड़कर जुदा हो जाते हैं तो लड़के बाले माता के साथ रहते हैं।

सरदार के मरने पर उसका उत्तराधिकारी उसकी बहिन का लड़का होता है।

सूमा

ये लोग बड़े झूठे तथा विश्वासघातक होते हैं। किसी मेहमान को सत्कार पूर्वक अपने घर टिकाना तथा अवसर पाकर उसी मेहमान को यमलोक पहुंचा देना, इन लोगों में कुछ बुरा ही नहीं, वरन् बड़े गौरव का काम समझा जाता है। तथापि इनके नर-हत्या-प्रिय पड़ोसी लोग इनको बड़ा बीर समझ कर इनका बड़ा सम्मान करते हैं।

इन लोगों का प्रत्येक ग्राम स्वतन्त्र होता है, पर और सब नागा जातियों से इनमें विशेषता यह है कि ग्राम के सरदार का उत्तराधिकारी उसका पुत्र होता है। इन लोगों में यह रीति है कि सरदारों के पुत्र अपने अपने नए गाँव बसाते हैं। इसी कारण से सूमा लोगों के ग्राम बहुत छोटे छोटे तथा संख्या में बहुत अधिक होते हैं।

विवाह के लिये स्त्रियां खरीदी जाती हैं। उनका मूल्य लग भग अस्सी वा सौ रुपए के होता है। कुंआरी लड़कियां वा लड़के अपने माता पिता से अलग दूसरे घर में सोते हैं। मुरदे बांस की चटाइयों में लपेट कर गाड़े जाते हैं और योधा के हथियार उसकी कबर पर रक्खे जाते हैं। मृतक की जेवनार के लिये जो पशु मारे जाते हैं उनकी खोपड़ी उसकी कबर पर लकड़ियां गाड़ कर उन पर लटकाई जाती हैं।

जेमो।

इन लोगों का भी प्रत्येक गाँव स्वतंत्र होता है और गाँव के सरदार का उत्तराधिकारी उसका पुत्र होता है, परन्तु इनकी और सब चालों से विदित होता है कि पहिले इन लोगों में भी स्त्री को प्रधान मानते थे। विवाह होने के पहिले बर को कन्या के घर कई रात्रि व्यतीत करनी पड़ती हैं और विवाह में बर कन्या के पिता को बहुत सा द्रव्य देता है। लड़कों का नाम उनके माता पिता नहीं रखते, वरन् गाँव की वृद्ध स्त्री तथा पुरुष रखते हैं। लड़का होने पर पिता अपने नाम से नहीं पुकारा जाता, वरन् 'अमुक का पिता' कह कर पुकारा जाता है। और जब किसी मनुष्य अथवा स्त्री को लड़का नहीं होता तो उसे सब लोग 'बिना पुत्र का बाप' अथवा 'बिना पुत्र की माता' कह कर पुकारते हैं। कुंआरी लड़कियां अपने केश कटवाती हैं, तथा कौड़ी, पीतल, सीसे, और कभी कभी चांदी के भी गहने पहिरती हैं। पर विवाह होने पर फिर अपना केश कभी नहीं कटवातीं और गहने उतार देती हैं, तथा इन्हें अपनी अविवाहिता सम्बन्धियों को दे देती हैं।

किसी मनुष्य की मृत्यु पर उसकी सब सम्पत्ति उसके पुत्र को मिलती है। लड़की को केवल उसकी माता के गहने मिलते हैं। यदि किसी मनुष्य के लड़का न हो तो उसकी सम्पत्ति उसकी लड़की को न मिलकर उसके सबसे निकट के पुरुष सम्बन्धी को मिलती है।

ये लोग हार्नबिल नामी चिड़िया को बड़ा पवित्र समझते हैं और उसके पर को लड़ाई के समय शृङ्गार के काम में लाते हैं। परन्तु फिर भी उसका मांस स्वादिष्ट होने के कारण उसे गोली मारने से तनिक भी नहीं हिचकते। परन्तु यदि इस पक्षी के घोसले का मुख पश्चिम की ओर हो तो उसके घोसले में से बच्चों को नहीं पकड़ते।

ये लोग भी अपने मुरदों को गाड़ते हैं। किसी पेड़ के तने को खोखला करके उसे कफ़न के काम में लाते हैं। मृतक के जितने पशु हों, वे सब मार डाले जाते हैं, जिसमें वे भी मृतक के साथ परलोक

में जायं । उनका मांस मृतक की जेवनार में खाया जाता है और खोपड़ियां उसकी कबर के ऊपर लट्ठे गाड़ कर उन पर लटकाई जाती हैं ।

गोपालदास ।

राजर्षि भीष्मपितामह जी

[४]

भीष्मपितामह जी का शरीर बलिष्ठ था । उनका बल और ब्रह्मचर्य्य सारे संसार प्रसिद्ध था और यह उनके वीर्य्यरक्षा और आत्मिक बल का ही प्रभाव था कि इतने घावों के होने पर भी वे अब तक जीते रहे और धैर्य्य से कष्ट को सहन किया और उपदेश भी शान्ति से देते रहे । यदि उनका शारीरिक बल ऐसा न होता तो उनसे ऐसा महान कार्य्य कैसे हो सकता था ! एक निर्बल पुरुष न तो अपनी रक्षा कर सकता है और न परोपकार के काम के योग्य होता है । निर्बल पुरुष की आत्मा भी यदि बलवती हुई तो वह भी पूर्णतया अपने उद्देश्य में साफल्य प्राप्त नहीं कर सकता । निर्बल पुरुष कष्ट को सह नहीं सकता, इसीलिये वे पुरुष, जिनके जीवन परोपकारक हैं अवश्य इस बात पर ध्यान दें और अपनी शारीरिक अवस्था ठीक रखें ।

भीष्म जी का शरीर अधिक रुधिर के निकलने और पींड़ा के बढ़ने से बहुत ही निर्बल होगया। यद्यपि उन्होंने योग के द्वारा बहुत दिनों तक अपने जीवन को रखा, परन्तु ईश्वरीय नियम भी कोई वस्तु है। पांचभूतों का शरीर अन्त में विकार को प्राप्त होता ही है। उनकी मृत्यु के सारे लक्षण प्रगट होगए। लोगों को ज्ञात होगया कि अब यह महान अग्नि थोड़ी देर में शान्त हो जायगी । अन्त को मृत्यु का समय निकट आ गया, और राजर्षि भी अपने उपदेशरूपी अमृत से लोगों को लाभ पहुंचा चुके थे, अब उन्होंने मृत्यु के लिये अपने आपको उद्यत किया । मृत्यु की तय्यारी एक बड़ी कठिन तय्यारी है; परन्तु वह तय्यारी भीष्म जैसे पुरुष के लिये कठिन न थी, क्योंकि वे सदा मृत्यु को निकट जान धर्म सञ्चय करने में मग्न रहते थे और एक क्षण भी अपने धर्म को नहीं भूलते थे। मृत्यु भयानक है, मृत्यु कठिन है, मृत्यु का मुख विकराल है-पर किन के लिये ? जिन्होंने इस जीवन के रहस्य को नहीं समझा, जो अपने कर्तव्य को भूल सांसारिक विषयों में लिप्त होगए हैं । महान पुरुष संसार में प्रत्येक कार्य्य को करके, परमात्मा की आज्ञा पाल निश्चिन्त हो शान्ति से मरा करते हैं । भीष्म जी ने जब देखा कि अब मेरा समय बहुत निकट है तो, युधिष्ठिर आदि जितने वहां उपस्थित थे, सबको कहा कि मेरी मृत्यु का समय निकट है, तुम बाकी बान्धवों को यहां बुला लाओ। युधिष्ठिर जी तत्काल धृतराष्ट्र, कुन्ती, गान्धारी और बाकी वंश की स्त्रियों को वहां बुला लाये और कहा "महाराज, हम सब उपस्थित हैं, अब जो आप आज्ञा करें उसका पालन किया जावे"। भीष्म जी समाधि में मग्न थे। युधिष्ठिर के पुनः बुलाने पर आंखें खोल दीं और चारों ओर देख युधिष्ठिर का हाथ पकड़ उन्होंने कहा "मैं बड़ा प्रसन्न हूं, तुम सबको ले आए, मैं ५८ दिवस से यहां पड़ा हूं और माघ का मास आ गया है, और यह समय मेरा तुम सबसे अन्तिम मिलने का है"। फिर धृतराष्ट्र की ओर देख बोले "हे कुरुनन्दन ! आप मनुष्य के प्रत्येक धर्म को जानते हो, वेदों के पवित्र ज्ञान को भी आपने विदुर से सुना है, आप जानते हो कि मृत्यु सबके लिये है । तुम अब किसी बात का शोक मत करो, जो होना था वह हो गया। युधिष्ठिर सदा धर्म के पथ पर चलने वाला है, उसको अपने पुत्र तुल्य समझो, वह तुम्हारी पिता की भांति सेवा करेगा, वह वृद्धों और विद्वानों की सेवा किया करता है और उनपर अपना जीवन न्योछावर करने को उद्यत रहता है । तुम्हारे बेटे बड़े क्रोधी और लोभी थे, इसलिये उन्होंने अपने कर्मों का फल पाया । उनका शोक करना तुम्हें योग्य नहीं"। फिर कृष्ण की ओर देख बोले "आप सदा

पाण्डवों की रक्षा कीजिएगा। पहिले भी आप उनकी सहायता करते रहे हैं। मैं दुर्योधन को कहा करता था कि सत्य की जय होगी। महात्मा कृष्ण सत्य की ओर हैं। मैंने सदा उसको समझाया कि सन्धि कर ले, पर दुष्ट ने मेरा कहा न माना और उसका फल पाया।" फिर सब की ओर देख कर कहा "अब आप सब लोगों को शोक छोड़ मुझे परब्रह्म की गोद में जाने की आज्ञा देनी चाहिए। तुम लोगों को उचित है सदा धर्म का ही आश्रय पकड़ो, सत्य के पथ पर ही चलो, क्योंकि सत्य एक बड़ी शक्ति है।" इस प्रकार शिक्षा दे, उनके शरीर के प्रत्येक अङ्ग से जीवात्मा ने सम्बन्ध छोड़ना आरम्भ किया। वह दृश्य देखने के योग्य था। सब लोग जो उपस्थित थे, आश्चर्य्यान्वित होगए। अन्त को उनकी आत्मा शिर की ओर से निकल गई और शिर फट गया। इस प्रकार वह महान अग्नि सदा के लिये शान्त हो गई। उनकी ऐसी आश्चर्यजनक मृत्यु को देख सबके मुख से निकला—

"मृत्यु इसी का नाम है"

जब भीष्म जी का देहान्त हो गया तो लोगों ने चन्दन की लकड़ियां, घृत, आदि सामान मंगवा उस के अन्तिम संस्कार करने की तय्यारी की। चन्दन की लकड़ियों से पहिले चिता बनाई गई। फिर सुगन्धित द्रव्य इरद गिरद लगा कर उनका शरीर बीच में रख दिया गया और लकड़ियां लगा वेदमन्त्रों से आहुतियां डाली गईं और उस महान यज्ञ नरमेध का पूर्ण हुआ। फिर आवश्यकीय कार्य्य से निवट लोग गृहों को चले गए।

भारत का सूर्य्य, मनुष्यमात्र का आदर्श, धर्म की साक्षात मूर्ति, क्षत्रियों का शिरोमणि, सदा के लिये ईश्वर की गोद में खेलने के लिये चला गया। सब को मरना है, परन्तु प्रत्येक मनुष्य को चाहिए कि अपने जीवन की प्रत्येक अवस्था के कर्तव्य का पूर्णतया पालन करता हुआ भीष्म जी की भांति पवित्र मौत मरे।

आर्य्यावर्त ने इसके बाद बहुत से योग्य पुत्र उत्पन्न किए, परन्तु राजर्षि ऐसा कोई न हुआ।

भीष्म के गुणों पर एक दृष्टि और हमारा कर्तव्य

पाठकगण! भीष्मपितामह जी की संक्षिप्त जीवनी मैंने आपके सामने धर दी है। आओ, अब आपको उस ब्रह्मचारी के एक एक गुण को पृथक करके सुनाऊं और फिर बतलाऊं कि वे मनुष्य-मात्र के आदर्श के योग्य हैं वा नहीं? क्या मनुष्य जाति ऐसे पुरुष के उत्पन्न होने से गौरव को प्राप्त नहीं होती? क्या ऐसे पुरुष सचमुच उन्नति के द्वार खोलनेवाले नहीं होते? महान पुरुष वह है जो संसार के सब सुखों को लात मार कर चक्रवर्ती राजा से भी भय न करता हुआ अपने सिद्धांत को मुख्य रक्खे और यह गुण मैं भीष्म में पाता हूं और इसी लिये आपसे सविनय निवेदन करता हूं कि उस राजर्षि के सब गुणों को ध्यानपूर्वक पढ़िए।

विद्वत्ता—भीष्म जी की विद्वत्ता और उनका परा और अपरा विद्या को जानना महाभारत के शांति और अनुशासन पर्व के पढ़ने से भली भांति विदित होता है, और यह उनकी विद्या का ही कारण था जिसने उनके जीवन को ऐसा बनाया। यह वेदों की ही पवित्र शिक्षा थी जिसके कारण वे अपने जीवन में सारी आयु ब्रह्मचर्य्य रखने पर भी निष्कलंक रहे। यह उनकी विद्या का ही प्रभाव था कि श्रीकृष्ण जैसे विद्वान भी उनकी मन से प्रतिष्ठा करते थे। बहुत से मनुष्य इससे शायद यह समझ लें कि भीष्म आज कल के पण्डितों की भांति विद्वान होंगे। परंतु यह समझना उनकी भूल होगी। भारत के आधुनिक विद्वान अक्षरों की विद्या जानते हैं, तत्व नहीं जानते। कारण यह है कि उन्होंने ऋषियों की सैली को उड़ा दिया है। संस्कृत का पण्डित इस समय कौन समझा जाता है जो शास्त्रार्थों में दो दो घंटे न्याय की अवच्छेदिका पर, या सिद्धान्त की फक्किका पर, या वेदान्त के घटाकाश मठाकाश पर बोल सके।

परन्तु वैशेषिक दर्शन के कर्ता कणाद जी ने विद्या का लक्षण यह किया है—

अदुष्टं विद्या॥ वै० अ० ९ आ० २ सू० १२

जो अदुष्ट अर्थात् यथार्थ ज्ञान है उसको विद्या कहते हैं। भीष्म जी को सब धर्मों का यथार्थ ज्ञान था, इसलिये वे विद्वान थे।

पारोपकारिता—भीष्म जी की आत्मा बड़ी बलवती थी। वे दूसरे के सुख के लिये अपने सुख को तुच्छ समझ छोड़ देते थे, जैसा कि उन्होंने सारा राज्य पिता के सुख के लिये छोड़ दिया था और आप उस राज्य की किसी वस्तु को विना राजा की आज्ञा के स्पर्श करना भी पाप समझा।

धैर्य—भीष्म जी पूरे धैर्य्यवान थे। जो पण उन्होंने किया उसके लिये चाहे उनको कितने ही कष्ट सहन करने पड़े, परन्तु उन्होंने अपने पण को न छोड़ा, बल्कि बड़े धैर्य्य से उसपर दृढ़ रहे। माता सत्यवती ने जब नियोग की आज्ञा की तो कैसी दृढ़ता से उन्होंने उत्तर दिया है। धैर्य्य धर्म का प्रथम अङ्ग है, जिसको भीष्म जी ने भली भांति निभाया।

सत्यप्रियता—दुर्य्योधन के अधीन होने पर भी भीष्म जी सदा उसको फटकारते रहे और समझाते रहे कि पाण्डवों का पक्ष सत्य पर है, तुम हठ छोड़ दो। और विलक्षणता यह देखो कि कौरवों की ओर से युद्ध करते थे, क्योंकि शरीर कौरवों के अन्न से बलिष्ठ बना था; परन्तु आत्मा से पांडवों की विजय चाहते थे। वाह रे सत्यप्रिय! संसार में तेरे जैसा होना दुर्लभ है।

सहनशीलता—दुःख को सहन करते थे कायरों की भांति नहीं, वीरों की भांति। क्या मजाल जो हाय तक निकल जाय। रणभूमि में जब बिलकुल घायल होकर गिरे हैं तो कोई लक्षण दुःख का उनकी प्रकृति से प्रतीत नहीं होता था। किसीसे कहा नहीं कि मुझे कष्ट है। बल्कि परमात्मा का धन्यवाद किया कि मुझे क्षत्री की मृत्यु प्राप्त हुई है। और सुनिए, शरों सहित दाह होना चाहते हैं, मरहम पट्टी नहीं करवाई। धन्य है सहनशीलता!

बाल ब्रह्मचर्य्य—ब्रह्मचर्य्य व्रत कैसा कठिन है इसको वह पुरुष ही जान सकता है जिसने कभी वीर्य्यरक्षा की हो। जो दिन रात पशुओं की भांति भोग करनेवाले हैं वे भला ब्रह्मचर्य्य की महानता को क्या समझ सकते हैं और भीष्म जी को इस अंश में क्या महानता समझ सकते हैं। परन्तु हे भीष्म जी की जीवनी पढ़नेवालो! यदि आप इसकी महानता को समझना चाहते हो, तो शास्त्र की आज्ञा के अनुसार ऋतुदान देना सीखो, फिर तुम समझोगे कि भीष्म जी में यदि कोई अपूर्व गुण था तो वह ब्रह्मचर्य्य था। यह उनके ब्रह्मचर्य्य का ही प्रताप था कि वृद्धावस्था में भी उन्होंने इस प्रकार युद्ध किया और वे शरों की शय्या पर पड़े रहे। भीष्म जी के सब गुणों को छोड़ इस एक गुण को भी यदि कोई पुरुष धारण करता तो मेरा श्रम सफल हो जाता।

निष्कामता—भीष्म जी ने जो काम किया सब निष्काम था। हमलोग यदि एक पैसा भी किसीको दान देते हैं तो चाहते हैं कि यह हमारा सेवक हो जाय। थोड़ी सी बात के लिये उसे कृतघ्न कहने लगते हैं, या यदि थोड़ासा उपकार करते हैं तो अपनी प्रतिष्ठा चाहने लगते हैं। परन्तु भीष्म जी ने यदि किसी पर उपकार किया तो अपना धर्म समझ कर। कोई सेवा की तो अपना कर्तव्य समझ कर। उनका यह सिद्धान्त था—

> निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु
> लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
> अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा
> न्यायात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः॥
>
> भर्तृहरि०

और इसी सिद्धान्तवाले पुरुष ही निष्काम रह सकते हैं, क्योंकि फिर वह अपना कर्तव्य समझ कर काम करते हैं किसीकी परवा नहीं करते।

न उन्होंने परवाह की और न सांसारिक कामनाएं उत्पन्न हुईं।

न्यायपरता—कौरव और पांडव दोनों को एक जैसा चाहते थे, किसीका पक्ष नहीं था। कौरवों के अधीन होने पर भी उनको समझाते रहे और सदा धर्मपथ पर चलने के लिये उपदेश देते रहे।

महानता—नीतिकारों ने महात्मा पुरुष का लक्षण किया है—

मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम्।
मनस्येदं वचस्येदं कर्मण्येदं दुरात्मनाम्॥

भीष्म जी की आत्मा बड़ी थी, क्योंकि जो वे मन में रखते थे वही कहते और करते थे। यदि पांडवों की जय धर्म के कारण चाहते थे, तो दुर्योधन को स्पष्ट कह दिया था कि पांडवों की जीत होगी, तू पाप का मार्ग छोड़ दे। यह नहीं किया कि पांडवों से और, और कौरवों से दूसरी बात। स्पष्ट वक्ता थे इसीलिये उनकी आत्मा बड़ी थी।

धर्मदृढ़ता—जो जो कार्य्य उनके सामने आए उनको बड़ी बुद्धिमत्ता से उन्होंने कर दिखलाया। अपने धर्म से न गिरना ही उनके जीवन की मुख्य बात थी। जब पिता की प्रसन्नता के लिये कठिन व्रत सामने आया तो उसको भी धर्म जान सिर पर लिया, परन्तु यह नहीं कि कठिन व्रत लेकर शेष जीवन को आलसियों की भांति एक स्थान पर बैठ कर व्यतीत कर दें। नहीं, नहीं, अपने जीवन को वैसा ही बनाए रखा, क्योंकि वे जानते थे

कुर्वन्नेवेह कर्म्माणि जीजिविषेत् शतं समाः
यजु० अ० ४० मं० २

ईश्वर उपदेश करते हैं कि हे मनुष्यो, श्रेष्ठकर्म करते हुए शत वर्ष पर्यन्त इस संसार में जीने की इच्छा करो। इसलिये वेद की आज्ञा को सिर पर धर शेष कार्य्यों में उसी प्रकार रत रहे। उन्होंने क्षत्री के क्षात्र धर्म को मृत्यु पर्यन्त पूर्ण किया। वे जानते थे कि क्षत्री का धर्म रण में मरना है, इसलिये सदा युद्ध के लिये उद्यत रहते जहां एक ओर उसी समय में आपस में लड़नेवाले भाई पूरे द्वेषी एक दूसरे के शत्रु थे, वहां भीष्म प्रत्येक से प्रेम, सबसे मित्रता, प्रत्येक को अपने तुल्य समझने वाले थे। धन्य थी वह माता जिसने उनको जन्म दिया था।

जब उनको सन्धि कराने का कार्य्य मिला तो उसको भी पूर्ण किया। दोनों दलों को समझाया, न्याय का पथ बताया, और जब खड्ग उठाने का समय आया तो यह नहीं कि मैं बूढ़ा हूं, क्यों अपने आपको कष्ट में डालूं; मुझे इन झगड़ों से क्या! नहीं, उन्होंने धर्म के अनुसार अपने पक्ष को लेकर युद्ध किया। कई लोग यह कहेंगे कि भीष्म जानते थे कि कौरव पाप पर हैं, फिर उनका पक्ष क्यों लिया। इसका उत्तर यह है कि उन्होंने जो उनका धर्म था वह पालन किया। कौरवों को कह दिया कि तुम्हारी पराजय होगी, तुम पाप को त्याग दो। परन्तु उन्होंने न माना। क्योंकि उन्होंने उनकी सेवा में जीवन व्यतीत किया था, इसलिये यह उनके लिये उचित न था कि अवसर पर साथ छोड़ देते। कई महाशय यह कहेंगे कि फिर युधिष्ठिर को अपनी मृत्यु का कारण क्यों बतलाया। इसका उत्तर यह है कि, उनका धर्म था कि शरीर से कौरवों की सेवा करते, लेकिन वे जानते थे कि युधिष्ठिर का पक्ष ठीक है, इसलिये वे सदा धर्म की जय चाहते थे। उन्होंने कौरवों का कोई भेद युधिष्ठिर पर नहीं प्रकट किया। यदि वे चाहते तो एक दिन में कौरवों को धोखा दे सबको मरवा देते। परन्तु उन्होंने ऐसा करना पाप समझा। अपने विचार में वे सतेज थे, इसलिये उस पक्ष में भीष्म जी के जीवन पर कोई कलङ्क नहीं लग सकता। वे क्षत्रियों की भांति दस दिन तक युद्ध करते रहे और अन्त को घायल हो गिर गए।

घावों के होने पर भी जब उनसे उपदेश की प्रार्थना की गई तो उस समय भी वे अपने धर्म से न चूके और बराबर डेढ़ मास तक उपदेश करते रहे। सारांश यह कि वे धर्म की मूर्ति थे। प्राण

दिये पर धर्म न छोड़ा। धन्य है वह पुरुष जो धर्म के लिये सांसारिक सुखों को तुच्छ समझता है, धन्य है वह पुरुष जो मृत्यु के लिये सदा उद्यत रहता है। धन्य है वह भूमि जहां भीष्म जैसे पुत्र उत्पन्न होते हैं। धन्य है वह गोद जिसमें ऐसे बालक खेलते और पलते हैं और धन्य है वह समय जिसमें ऐसे वीर उत्पन्न होते हैं जो धर्म को किसी अवस्था में नहीं छोड़ते, कोई कष्ट या किसीका प्रेम उनके मार्ग में बाधक नहीं होता। बूढ़ा भीष्म रण में जाता है, दोनों ओर से अपने वंश के छोटे बड़ों को मरने मारने पर उद्यत देख भी उसके दिल में भय या प्रेम उत्पन्न नहीं होता, और न कोई कारण उसको धर्म से रोक सकता है। शत्रुओं को भी न्याय से पृथक नहीं करना चाहता और अपने धर्म को किस ढङ्ग से पूरा करता है। जब युधिष्ठिर सम्मति लेने जाते हैं तो उनको धर्म्म पक्ष पर खड़ा समझ आशीर्वाद देता है। जो युधिष्ठिर उसके सामने लड़ने मरने को उद्यत खड़ा था, मरते हुए भी भीष्म उसको उपदेश ही देते रहे। उन्होंने नरम तकिए तक की भी इच्छा नहीं की, क्योंकि वे जानते थे कि मेरा धर्म रण में मरना है और रण में क्षत्रिय ऐसी वस्तु नहीं वर्त सकता।

भीष्म जी सच्चे धर्मात्मा थे; बली, सच्चे त्यागी, सच्चे योगी, और सच्चे व्रतधारी थे; उनके जीवन को जिस अंश में देखो महान पाओगे, जिस बात में देखो पूर्ण पाओगे। शारीरिक बल तो पूरा, आत्मिक बल तो पूरा, विद्या तो पूरी, ब्रह्मचर्य्य तो पूरा। उनका जीवन आदर्श के योग्य है। हे भीष्म पितामह जी के जीवन से लाभ उठाने की इच्छा करनेवालो! हे भारतवर्ष के युवको! हे क्षत्रिय कहलाने का अभिमान करनेवालो! भीष्म जी के जीवन के गुणों को सुनहरे अक्षरों में लिख अपने जीवन का आदर्श बनाओ। अपने जीवन में वैसे गुण धारण करने का यत्न करो। वे महान पुरुष थे। उनके जीवन से अपने जीवन को महान बनाओ, क्योंकि

Lives of great men all remind us
We can make our lives sublime.

महान पुरुषों के जीवन इसलिये होते हैं कि उनके जीवन से लाभ उठाया जावे। पुस्तकों में लिखे रहने या समय व्यतीत करने के लिये एक बेर पाठ कर जाने से कभी कोई अच्छा परिणाम नहीं निकला करता। हमारा कर्तव्य क्या है इसको विचारो, एकान्त में बैठ कर अपने जीवन को इस महापुरुष के जीवन से मिलाओ। अन्त को भीष्म जी मनुष्य थे, आप लोगों की भांति दो हाथ, दो कान रखते थे। परन्तु अधिकता क्या थी? अधिकता यह थी कि उन्होंने अपने धर्म को समझ उसके अनुसार जीवन बनाया था। ऐसे नहीं थे कि स्वार्थ के लिये दूसरों को दुःख देनेवाले थे। निष्कपट हृदय के मनुष्य थे जो मानते थे वही कहते और करते थे। इसलिये यदि तुम यह चाहते हो कि हम भी अपने मनुष्यजीवन को सफल करें तो आज से प्रण करो कि हम अपने दुर्गुणों को एक एक करके छोड़ने का यत्न करेंगे और इस महा पुरुष के गुणों को अपने जीवन में धारण करने का उद्योग करेंगे। मनुष्यजीवन बार बार नहीं मिलेगा, न जाने तुम्हारे कौन से पुण्य उदय हुए जो यह जन्म मिला और फिर अच्छे अच्छे पुरुषों के जीवनों को पढ़ने की बुद्धि मिली, अब भी यदि समय व्यर्थ खोवो तो तुम्हारे जैसा अभाग्य कौन है!

एक विद्यार्थी।

गोपीगीत

हिन्दी भाषा-पद्यानुवाद-सहित

(१)

छन्द-इन्दिरा।

जयति तेऽधिकं जन्मना व्रजः
श्रयत इन्दिरा शश्वदत्र हि।
दयित दृश्यतां दिक्षु तावका-
स्त्वयि धृतासवस्त्वां विचिन्वते॥

जयति ब्रज जहां जन्म तू लिया
रह रमा[1] अतः सर्वदा यहीं।
दरश दे पिया! हैं त्वदीय[2] हम्
जिय अधार हो ढूँढती तुझे॥

२—शरदुदाशये साधुजातस
त्सरसिजोदर श्री मुषादृशा।
सुरतनाथ तेऽशुल्कदासिका
वरद निघ्नतो नेह किं वधः॥

*

शरद काल के ताल में खिले
कमल नैन से मारता हमें।
सुरतनाथ! हम्ऽशुल्कदासियां[3]
वरद! क्या नहीं? मारना य है॥

३—विषजलाप्यया व्याल राक्षसा
द्वर्षमारुताद्वैद्युतानलात्।
वृषमयात्मजाद्विश्वतो भयादृषभ
ते वयं रक्षिता मुहुः॥

*

सविषताल[4] से कालव्याल से
अनिल[5] मेघसे विद्युवेग से।
वृषभ[6] व्योम से विश्वभीति से
रिषभ[7]! तू हमें रक्षता सदा॥

४—न खलु गोपिका नन्दनो
भवानखिलदेहिनामन्तरात्मदृक्।
विखनसाऽर्थितो विश्वगुप्तये
सख उदेयिवान् सात्वतां कुले॥

*

न खलु गोपिकापुत्र तू सखे!
अखिल विश्व का साक्षि रूप है।
स्तुति विरंचि से विश्व[8] त्राण को
उदय तू हुआ वृष्णिवंश में॥

५—विरचिताभयं वृष्णिधुर्यते
चरणमीषुषां संसृतेर्भयात्।
कर सरोरुहं कांत कामदं
शिरसि धेहि नः श्रीकरग्रहम्॥

*

अभय करदिये शर्ण जो हुये
त्रसित[1] संसृति चर्ण जो गहे।
धृत रमांकरो कामदा खरो
कर सरोज सो शीश पै धरो॥

६—व्रजजनार्त्तिहन् वीर योषितां
निजजनस्मयध्वंसनस्मित।
भज सखे भवत्किंकरीःस्म नो
जलरुहाननं चारु दर्शय॥

*

हरत पीर तू वीर! दास की
गरब नाश हो मंद हास से।
भज सखे! हमैं किंकरीन को
मुखललाम[2] हो श्याम! दे दिखा॥

७—प्रणतदेहिनां पापकर्शनं
तृणचरानुगं श्रीनिकेतनम्।
फणिफणार्पितं ते पदाम्बुजं
कृणु कुचेषु नः कृंधि हृच्छयम्॥

*

शरण आतही पापघात जो
पशुन साथ है नाथ लक्ष्मिका।
नलिनपाद जो फन फनी धरो
रखि उरोज सो काम को हरो॥

८—मधुरया गिरा वल्गु वाक्यया
बुधमनोज्ञया पुष्करेक्षण।
विधिकरीरिमा वीरमुह्यती
रधरसीधुनाप्याययस्व नः॥

*

मधुर बैन से मोद दैन से
बुधमनोज्ञ से[3] कञ्जनैन हो!
सुधि रही नहीं दासियां इन्हें
अधर की सुधा प्याय दे हमें॥

९—तव कथा मृतं तप्तजीवनं
कविभिरीडितं कल्मषापहम्।

---

१ श्री लक्ष्मी रहती है। २ तेरी। ३ बिनामोल की दासी। ४ ज़हरीले जलसे। ५ अग्नि। ६ वृषभासुर। ७ हे सर्वोत्तम्। ८ विश्व को रक्षा करने के लिये।

१ जन्ममरण से भय भीत होके। २ सुन्दर। ३ ज्ञानी जनों को प्रिय लगनेवाले।

श्रवण मंगलं श्रीमदाततं
भुवि गृणन्ति ते भूरिदा जनाः ॥

*

तव कथा अमी तप्त जीवनी
कविन की कही पापहा सही ।
श्रवणमङ्गला श्रीकला भुवि
करत गान हैं पुण्यवान जे ॥

१०—प्रहसितं प्रियप्रेमवीक्षणं
विहरणं च ते ध्यानमङ्गलम् ।
रहसि संविदो वा हृदिस्पृशः
कुहक नो मनः क्षोभयन्ति हि ॥

*

मृदुल हास औ वन विहार भी
दृग रसाल से सैन मारना ।
वचविनाद के हर्ते चित्त जे
क्षुभित कर्त्त हैं रे छली ! हमें ॥

११—चलसि यद्व्रजाच्चारयन् पशून्
नलिनसुन्दरं नाथ ते पदम् ।
शिल तृणाङ्कुरैः सीदतीति नः
कलिलतां मनः कान्त गच्छति ॥

*

जब चलो कहीं गोचरात हीं
मृदुल कञ्ज से पाद मञ्जु से ।
श्रमित होत वे क्रूर पंथ से
विकलता हमें नाथ ! हो यही ॥

१२—दिनपरिक्षये नील कुन्तलै-
र्वनरुहाननं बिभ्रदावृतं ।
घनरजंस्वलं दर्शयन्मुहु-
र्मनसि नः स्मरं वीर यच्छसि ॥

*

अलक श्याम जो छा रहीं जहां
गउन धूरि से पूरि जो रहा ।
तव मुखम्ब सो नित[1] दिनान्त ही
लखि सकामि हो हिय नितान्त ही ॥

१३—प्रणतकामदं पद्मजार्चितं
धरणिमण्डनं ध्येयमापदि ।
चरणपङ्कजं शंतमं च ते
रमण नः स्तनेष्वर्पयाधिहन् ॥

*

प्रणत कामदे [1]पद्मजार्चिते
विपदि ध्येय औ श्रेयरूप जे ।
भुवि सुहाग ते पादपद्म वे
उरज पर धरो व्याधिहा सुने ॥

१४—सुरतवर्धनं शोकनाशनं
स्वरितवेणुना सुष्ठुचुम्बितम् ।
इतररागविस्मारणं नृणां
वितर वीर नस्तेऽधरामृतम् ॥

*

रति बढ़ात जो शोकघात है
मधुरवादिनी वेणु जो पिया ।
इतर राग सब जो भुलात है
अधर रस वही वीर ! दे हमें ॥

१५—अटति यद्भवानह्नि काननं
त्रुटिर्युगायते त्वामपश्यताम् ।
कुटिलकुन्तलं श्रीमुखं च ते
जड़ उदीक्षितां पक्ष्मकृद्दृशाम् ॥

*

[2]विपिनजात जब ना दिखात हो
पल वही हमैं युग समान हो ।
[3]कलित अलकमूं देखतैं तुम्हें
[4]जड़विधी अहो ! पल्क दृक् किये ॥

१६—पतिसुतान्वयभ्रातृबान्धवा
नतिविलंघ्य तेऽत्यच्युतागताः ।
गतिविदस्तवोद्गीतमोहिताः
कितव योषितः कस्त्यजेन्निशि ॥

*

पतिऽरु भ्रातसुत् छोड कुल् गली
तव समीप हम आगईं छली !
सुघर गीत से मोह जो गईं
तियन को तज़ै रैन में दईं !!

१७—रहसि संविदं हृच्छयोदयं
प्रहसिताननं प्रेमवीक्षणम् ।

१ सायंकाल के समय ।

१ ब्रह्मा जी से पूजित । २ वन । ३ अलकावली युक्त मुख ।
४ विधाता जड़ (मूर्ख) है जिसने आंखों के पलक बनादी ।

बृहदुरः श्रियो वीक्ष्य धाम ते
मुहुरतिस्पृहा मुह्यते मनः ॥
*
रहसि वैन जो मैन फाँस हैं
मुख सहास औ हक विलास को।
उर विशाल भी श्रीनिवास जो
लखि चहैं रती मोह हो अती ॥

१८—व्रजवनौकसां व्यक्तिरङ्ग ते
वृजिन हंत्र्यलं विश्वमङ्गलं।
त्यज मनाक्च नस्त्वत्पृहात्मनां
स्वजनहृद्रुजां यन्निषूदनम् ॥
*
विपिन व्रज बसैं क्लेशहा उन्हें
प्रकट तू हुआ विश्वक्षेम ही।
स्व-जनव्याधि को नाश जो करै
तनिक औषधि दे हमैं वही ॥

(छन्द वसन्ततिलका)

१९—यत्ते सुजातचरणाम्बुरुहं स्तनेषु
भीताशनैः प्रिय दधीमहि कर्कशेषु।
तेनाटवीमटसि तद्व्यथते न किंश्चित्
कूर्पादिभिर्भ्रमति धीर्भवदायुषां नः ॥
*
जो पादपद्म रखती हम हैं कुचों पर
डरती हुई अचक जानि कठोर प्यारे ?
उससे चलो विषम बन नहिँ हो व्यथा क्या ?
हा ! प्राणनाथ ! मति मोहित हो हमारी ॥

अनुष्टुप्

२०—इति गोप्यः प्रगायन्त्यः प्रलपंत्यश्च चित्रधा।
रुरुदुः सुस्वरं राजन् कृष्णदर्शनलालसाः ॥
तासामाविरभूच्छौरिः स्मयमानमुखाम्बुजः।
पीताम्बरधरः स्रग्वी साक्षान्मन्मथ मन्मथः ॥
*
दोहा

गानकलाप प्रलाप यों बहुविधि करि व्रजवाल।
करन लगीं ऊंचो रुदन दरशन हित गोपाल ॥
सितयुत सरसिज मुख लसित पीतबसन बनमाल।
मनमथ मनमथ करत तब प्रकटे तहँ नन्दलाल ॥

कन्हैयालाल पोद्दार।

हीरा

प्रायः सभी लोग जानते हैं कि हीरा एक रत्नविशेष है। यह सब रत्नों में अति श्रेष्ठ और बहुमूल्य गिना जाता है और जगत में इसका बड़ा आदर है। सरस्वती के पूर्व अङ्कों में जगद्विख्यात 'कोहनूर' और 'पिट' नामक हीरे का वर्णन सविस्तर लिखा जा चुका है, परन्तु अब इस रत्न के मूलतत्व, उत्पत्ति स्थान, प्राप्ति-विधि, गुण-दोष-परीक्षा, इत्यादि का वर्णन किया जाता है।

सबसे पहिले यह रत्न आर्यावर्त ही से निकला था। अति प्राचीन काल में भारतवासियों ही ने इसके प्रयोग और गुण को जाना था और इसको आदर दिया था। पुराण आदि प्राचीन पुस्तकों में इसके जन्मस्थान प्रत्येक युग में पृथक पृथक लिखे हैं, जिसका वर्णन किसी कवि ने हिन्दी में किया है जो पाठकों के अवलोकनार्थ नीचे उद्धृत किया जाता है।

छप्पै

भनि कोसल कालिङ्ग देस सत युगहि पूर्व दिसि।
पुनि हेमज मातंग देस त्रेता उत्तर दिसि ॥
बहुरि पिंड, सौराष्ट्र देस द्वापर प्रच्छिम दिसि।
अब वेनूज सुरारि देस कलियुग दच्छिन दिसि ॥

भारतवर्ष में सम्भलपुर और गोलकुण्डा की खानें प्रसिद्ध हैं। इन स्थानों से पहिले बहुत हीरे निकलते थे जो अति श्रेष्ठ और बहुमूल्य होते थे। कहा जाता है कि सत्रहवीं शताब्दी में इन प्रत्येक स्थानों में ६०००० से अधिक लोग काम करते थे। पर अब इन स्थानों में यह रत्न कम निकलने लगा है और आधुनिक समय में अन्य अन्य देशों में भी हीरों की खान निकली हैं जिनका विवरण आगे क्रमानुसार किया जायगा।

यहां पर इतना और लिख देना आवश्यक जान पड़ता है कि उक्त स्थान के हीरे अति उत्तम होते

हैं जो 'पुरानी खान' के कहलाते हैं, और अन्य देशों के हीरे जिनकी खान आधुनिक समय में निकली है, 'नई खान' के कहलाते हैं। यद्यपि नई खान के हीरों का इनके अधिक निकलने से प्रचार बहुत हो गया है, तथापि पुरानी खान के हीरों की अपेक्षा इनका मूल्य और आदर कमही होता है। पुरानी और नई खान की पहिचान केवल अभ्यास से होती है।

मुख्य धर्म्म

हीरे का मुख्य और स्वाभाविक धर्म्म कान्ति और कठोरता है।

(१) कान्ति—जब यह रत्न काट छांट कर बनाया जाता है तो इसमें इतनी चमक दमक इन्द्रधनुषवत् छटा और विचित्र झलक होती हैं कि अन्य किसी रत्न में उतनी नहीं होती। इसीसे इसका अधिक मान है। इसमें रङ्ग रङ्ग की झलक ऐसी शोभा देती है कि देखते ही बनता है।

(२) कठोरता—यह रत्न कठोर भी इतना होता है कि अन्य समस्त पदार्थों को काट वा खुरच सकता है; पर इसको न तो कोई रत्न और न कोई कठोर से कठोर धातु खुरच सकती है, इसीलिये इसका नाम संस्कृत में वज्र है; किसी ने कहा है—

सकल रतन और आठों धात।
इनते होइ न वज्र विघात॥

यह अपने ही चूरे से खुरचा और काटा जा सकता है। यह कठोर तो इतना है पर यह भञ्जनशील भी है, अर्थात् प्रहार द्वारा विशेष विशेष स्थानों से टूट जाता है, अर्थात् परत पर प्रहार लगने से इसके परत टूट जाते हैं। इसी भञ्जनशीलत्व धर्म के कारण से इसका चूरा हो जाता है. यह कहावत कि 'हीरा जो घनचोट न टूटे' जैसी ही प्रसिद्ध है वैसी ही भ्रमजनक भी है। इस भ्रम से अनेक बड़े और अमूल्य रत्नों को कभी कभी बड़ी ही हानि पहुंची है। कभी कभी देखा गया है कि तनिक सी ठेस लगने ही से हीरा टूट जाता है। सुतरां "घन चोट न टूटे" को सत्य समझ लेना बड़ी भूल है। यदि यह न टूटता होता तो इसका चूर भी न होता। हां अपनी कठोरता के कारण यह और पदार्थों की अपेक्षा अधिकतर चिरस्थायी है, क्योंकि न तो यह घिसता है और न कोई रासायनिक प्रभाव से इसमें कभी कोई परिवर्तन होता है। यह इसका एक विशेष और अद्भुत गुण है।

रासायनिक धर्म्म

आधुनिक रासायनिक पण्डितों ने परीक्षा करके सिद्धान्त किया है कि इसका मूलतत्व 'अङ्गार' (Carbon) है जैसे काजल। यह प्रचुर ताप देने से भस्म हो जाता है और जो थोड़ी सी राख बच रहती है उसमें किञ्चित मात्र 'दग्ध सितक' (Silica) और लोह का अंश भी पाया जाता है। यह बात पहिले पहिल लावशियर नामक एक फरासीसी रासायनिक पण्डित ने जाना और फिर इसकी पुष्टि एक दूसरे फरासीसी रासायनिक ने, जिनका नाम क्लेवट (Clevet) था, की। उन्होंने ताप द्वारा हीरे और लोहे के योग से स्पात (Steel) बनाया, जो उन्नीसवीं शताब्दी का एक बड़ा भारी आविष्कार गिना जाता है। हीरे की बनावट वा उत्पत्ति के विषय में रासायनिक महानुभावों का अनुमान है कि यह रत्न पृथ्वी के दबाव और इसके आन्तरिक ताप से पार्थिव अङ्गार जम कर बनता है। यह रत्न कई रङ्ग का होता है। पर उन रङ्गों का मूल्यतत्व क्या है यह अब तक निश्चय नहीं हुआ है।

हीरे को रगड़ने से वा उसमें उष्णता पहुंचाने से तड़ित् उत्पन्न होती है और तेज वा प्रकाश में कुछ देर रखने से यह रत्न अंधेरे में भी चमक देता हैं। इसके इस विशेष धर्म को रसायन शास्त्र में Phosphorescence कहते हैं, जिसे हिन्दी में हम 'स्फुरकान्ति' कह सकते हैं.।

रूप

इसकी पूर्व अवस्था एक कङ्कड़ के समान होती है। जब यह पृथ्वी से खोद कर निकाला जाता है

तब इसमें चमक इत्यादि प्रत्यक्ष नहीं रहती। इस की चमक इसके अन्दर गुप्त रहती है। क्योंकि इसके ऊपर की परत 'पारदर्शक' (Transparent) नहीं होती, और इस खोल के 'उपरि दर्शक' (Opaque) होने के कारण से इसकी स्वच्छता और दमक इत्यादि छिपी रहती है। इस कङ्कड़ रूपी हीरे को साधारण बोलचाल में हीरे का "खड" कहते हैं। इसका रङ्ग साधारणतः भूरा-श्वेत वा पीत-श्वेत, अथवा धुंधला-भूरा वा पीत-भूरा, किम्बा लैंगियां होता है। कभी कभी यह 'खड' हलका हरा वा पिस्ते के रङ्ग का सा वा धानी रङ्ग का भी होता है; परन्तु पिछले रङ्गों का बहुत कम मिलता है। जब यह काट कर बनाया जाता है तब इसमें चमक निकलती है, यही इसकी मुख्य पहिचान है। इसका आदि वा मूल स्वरूप स्फटिकाकार (Crystalized)-अठपहल, किम्बा षटपार्श्व होता है, पर छोटे हीरे बहुधा गोल मिलते हैं।

हीरे के व्यवहार

हीरा अपनी विचित्र चमक, दमक, सुन्दरता और कठोरता के कारण आभूषणों के काम में अधिक आता है, यह सभी लोग जानते हैं। उसके अतिरिक्त और भी बड़े बड़े काम इससे लिये जाते हैं; जैसे पहाड़ वा कठोर भूमि काटने के लिये 'भूविदारक' यन्त्र में लगाते हैं। इससे कांच कट जाता है, यह बात तो सभी जानते हैं। पर ज्ञात रहे कि हीरे की सभी नोक से कांच नहीं काट सकते, हां खुरच सकते हैं, काटनेवाली कनी हीरे की प्राकृतिक नोक ही से एक विशेष रूप में बनाई जाती है जो शीशे को काटती है। यह बात साधारणतः सब को विदित नहीं है। हीरे की कनी कांच पर लिखने, मूर्ति आदि बनाने में अर्थात् शिल्पशास्त्र में बड़े काम आती है।

उत्पत्तिस्थान

ऊपर लिख आए हैं कि सब से पहिले यह रत्न आर्यावर्त में निकला था। हिन्दुस्तान के बहुत स्थानों में हीरे मिलते हैं। हिन्दुस्तान के उत्तरी भाग में १४° अंश उत्तर अक्षांश में पेनार नदी से लगा २५° उत्तर अक्षांश में सोन नदी तक में जो बुन्देलखण्ड में होकर बही है, इसके मिलने के स्थान हैं। और हिन्दुस्तान की दक्खिन दिशा में इसके मिलने के मुख्य स्थान कड़ापा, करनूल और इलोर हैं जो कृष्णा नदी के किनारे मदराज देश में स्थित हैं। इन स्थानों के अतिरिक्त बङ्गाल, पेगू, स्याम और बोर्नियो टापू में भी यह रत्न पाया जाता है। हिन्दुस्तान से बाहरी देशों में जो नई खाने निकली हैं, वे अमेरिका महाद्वीप में ब्राजील देश, कालिफ़ोर्नियां इत्यादि और अफ़्रिका महाद्वीप में किम्बरली, जो ट्रांसवाल राज्य में स्थित है, इत्यादि हैं।

उक्तस्थानों में से केवल मुख्य और प्रसिद्ध खानें ये हैं—

(१) गोलकण्डा - यह दक्खिन में हैदराबाद के राज्य में प्रसिद्ध और पुरानी खान है।

(२) गन्नी और कोलोर—यह गोलकण्डा से सात मञ्जिल पूरब है।

(३) पन्ना—यह प्रसिद्ध देश बुन्देलखण्ड में है।

(४) बङ्गाल देश में सम्भलपुर के पास गोलनदी के किनारे।

(५) बोर्नियो टापू—यह टापू हिन्दुस्तान से दक्षिण-पूरब दिशा की ओर स्थित है।

(६) ब्राजील—यह देश दक्षिण अमेरिका में है।

(७) किम्बरली - अफ़्रिका महाद्वीप के दक्षिण भाग में ट्रांसवाल राज्य का बड़ा प्रसिद्ध स्थान है।

हीरा निकालने की विधि

ज्ञात रहे कि हीरा प्रायः रेतीली भूमि में मिलता है जो पहाड़ियों में पाई जाती हैं, किम्बा जहां की मट्टी नीली होती है। नदियों के प्रवाह के साथ हीरा अपने उत्पत्तिस्थान से लुढ़क लुढ़क कर बह आता है और स्थान स्थान पर मट्टी में दब कर रह जाता है, जो खोदने पर मिलता है।

(१), (२) और (३) स्थानों की भूमि प्रायः रेतीली और पहाड़ी है। इन स्थानों में पहाड़ियों की दरारों और छिद्रों में, जो एक वा डेढ़ इञ्च चौड़े होते हैं, हीरे पाए जाते हैं। सुतरां जो लोग इसके निकालने का ठीका लेते हैं वे भृत्यों द्वारा उन दरारों से मिट्टी और रेती निकलवाया करते हैं। यह मिट्टी एक अंकुशी (अर्थात् अंकुड़ेदार लोहे की शलाका) से निकाली जाती है। जब यह दरार समाप्त हो जाती है, तब उस पहाड़ी को खोदते हैं जब तक कि दूसरी दरार न मिले। और जब दरार निकल आती है तो फिर उक्त रीति से रेत और मिट्टी उसमें से निकालने लगते हैं। कुछ भृत्य उक्त काम करते रहते हैं और कुछ लोग उस खोदी हुई मिट्टी को उठाकर दूसरे स्थान पर लेजाकर संचय करते हैं जो इसी काम के लिये दीवार घेर कर बनाया जाता है। इस गृह में भृत्यों की तीसरी टोली उस संचित मिट्टी को चलनी में डाल कर जल से धोती है। मिट्टी तो बह जाती है, केवल कङ्कड़ रह जाते हैं। उन कङ्कड़ों में से हीरे के 'खड' चुन लेते हैं। उक्त गृह में कई बड़े कर्मचारी, जिन पर विश्वास होता है, नियत रहते हैं। यह लोग अपनी अपनी टोली की जांच करते रहते हैं, कि कहीं कोई व्यक्ति कोई खड न चुरा ले। भृत्य लोग प्रायः नङ्गे काम करते रहते हैं। कई मन मिट्टी धोने पर कहीं एक खड मिलता है।

सम्भलपुर में हीरे गोआल नामक नदी की रेत से मिलते हैं। बरसात में जब यह नदी बढ़ती है तो जल के प्रवाह के उद्वेग से हीरों के खड भी बह आते हैं और स्थान स्थान पर रेत में दब कर रह जाते हैं। वही खड इस नदी से निकलते हैं। बरसात के समाप्त होने पर जब नदी घट जाती है और जल स्वच्छ और सुथरा हो जाता है, तब लोग प्रायः हीरा निकालने जाते हैं। यह काम प्रायः दिसम्बर मास के अन्त में प्रारम्भ होता है। सहस्रों मनुष्य हीरे की खोज में जाते हैं। उनके साथ थोड़े से ऐसे पुरुष होते हैं जो इसमें निपुण और विज्ञ होते हैं। वे लोग उक्त नदी के किनारे किनारे स्थान स्थान की परीक्षा करते जाते हैं। जहां उन्हें खड प्राप्त होने की कुछ आशा होती है वहां नदी में बाँध बाँध कर छोटा सा घेरा बना लेते हैं और उसमें से जल निकलवा देते हैं। फिर वहां की भूमि को दो तीन फीट तक गहिरा खोद कर उसकी मिट्टी दूसरे स्थान पर ले जाकर उक्त प्रकार से धो धो कर खड छांट लेते हैं। वह लोग हीरे की खोज करते करते नदी के स्रोत तक चले जाते हैं।

पर अब यहां हीरे बहुत कम मिलते हैं, और व्यय अधिक पड़ जाता है। यहां के हीरे अति उत्तम और सर्वगुणसम्पन्न होते हैं। कहा जाता है कि 'कोहनूर' नामक हीरा यहीं से निकला था।

हीरे की रङ्गत पर जिस रङ्ग की भूमि वा मिट्टी से वह निकलता है उसका बड़ा प्रभाव पड़ता है। प्रायः जिस रङ्ग की मिट्टी से खड निकलेगा वहां के हीरे में उस रङ्ग की प्रधानता वा झलक अवश्य रहेगी। हीरा बहुत करके काली मिट्टी में से निकलता है।

ब्राजील में उक्त दोनों प्रकार से हीरा निकलता है। कहीं तो वहां की नदी में से मिट्टी निकाल कर उसे एक बड़ी चलनी में रखते हैं और पानी से उसे धोते हैं; मिट्टी बह जाने पर जो कङ्कड़ रह जाते हैं उनमें से फिर खड़ छांटते हैं।

कहीं कहीं सूखी भूमि की मिट्टी को छान छान कर कङ्कड़ों में से खड छांटते हैं।

पहिले पहिल जब यहां स्वर्ण निकाला जाता था, तब इन खडों को यहां के भृत्य अज्ञानतावश गिट्टक की तरह लड़कों को खेल में दिया करते थे। और अन्य कङ्कड़ों से इनको कुछ अधिक सुन्दर देख कर इनकी गोटी बना कर खेला करते थे, पर यह न जानते थे कि यह एक अमूल्य रत्न है। सन् १७२७ ईसवी में एक लोबो नामक व्यक्ति जो वहां स्वर्ण-क्षेत्र में काम करता था और जो हिन्दुस्तान

में भी रह चुका था जहां उसने हीरे के खड देखे थे, इन खडों को हिन्दुस्तानी हीरों के खड के सदृश देख कर उनमें से कुछ खड लिसवन में ले गया था। वहां जा कर प्रगट हुआ कि वे हीरे थे। पर विलायत के रत्नकारों (जौहरियों) ने उनका हीरा होना स्वीकार नहीं किया था, क्योंकि उनको भय था कि यदि उन्हें वे हीरा स्वीकार कर लेंगे तो हिन्दुस्तानी रत्नों, में जो उनके पासहैं, उन्हें घाटा हो जायगा। पर साहसी लोग कब छोड़ते हैं। कुछ खड लेकर लोग हिन्दुस्तान आए और यहां यह हीरे के समान अच्छे दामों पर बङ्गाल में बिके। फिर क्या था। उक्त हीरकक्षेत्र में लखूखा लोग हीरे की खोज में गए और एक सौ सालीस वर्ष तक बहुतायत से हीरा मिलता रहा। पहिले पचास साल में तो १८००००००० रुपए का हीरा प्राप्त हुआ था। पर वहां भी अब कम हो चला है।

बोर्नियो टापू के हीरे प्रायः श्याम रङ्ग के और अत्यन्त कठोर होते हैं। वहां के हीरों को दूसरे हीरे नहीं खुरच वा काट सकते। उन्हींके चूर इस काम में बरते जाते हैं।

अब हम पाठकों का ध्यान दक्षिणी अफ्रिका की ओर ले जाते हैं। सन् १८६७ में 'आरेञ्ज' (the Orange river) नामक नदी के किनारे कुछ लड़के थोड़े से सुन्दर सुन्दर कङ्कड़ बटोर कर खेल खेलते थे। इनमें हीरों के खड भी थे, पर वे लोग उनके गुणों से अनभिज्ञ थे। किसी पथिक ने इन कङ्कड़ों को सुन्दर देख कर उन लड़कों की मा से ले लिया और कई व्यक्तियों के हाथ होते हुए अन्त में हीरे होकर बिके। इसके थोड़े ही दिन उपरान्त लोग उक्त स्थान में हीरे की खोज में आने लगे और वाल नदी (the Vaal) के तट पर खोज कर हीरे निकालते रहे। यद्यपि वहां पहिले भूमि के ऊपर ही खोज की जाती थी तथापि बहुत कुछ लाभ होता था। एक हीरा वहां अखरोट के बराबर मिला था, जो अन्त में मेसर्स हण्ट रास्किल जौहरी के हाथ लगा। उसका मूल्य ३७५००० रु० जांचा गया। यहां के हीरों में प्रायः पीतता झलकती है। यहां के हीरे अति स्वच्छ न होने के कारण कम दामों के होते हैं तो भी ठेकेदारों को बहुत लाभ होता है।

अब यहां बड़े बड़े कारखाने हो गए हैं और गहरी पृथ्वी खोद कर सुरङ्गों में से हीरे निकाले जाते हैं। यहां पर ४०० फीट गहरी पृथ्वी खोदने पर भी हीरे निकलते हैं। इन सुरङ्गों के खोदने और उनमें काम करने की विधि 'पत्थर के कोयलों' की खानों के सदृश है। पहिले लोगों को विश्वास था कि हीरा भूमि के ऊपर ही भाग में मिलता है। इस कारण पहिले केवल तीन चार किंबा दस फ़ीट गहिरी पृथ्वी खोदते थे। पर अब यह बात व्यक्त हो गई है कि अच्छे हीरे गहिरी पृथ्वी में भी पाए जाते हैं। इस गहिराई का कोई नियम नहीं है कि कितना गहिरा खोदने पर हीरे मिलते हैं।

यहां सबसे बड़ा कारख़ाना 'डी बीयर्स कोन्सोलिडेटेड माइन्स' (De Beers consolidated mines) है जो सन् १८८९ में स्थापित हुआ था। इस कारख़ाने में दिन रात काम होता रहता है और ८००० मनुष्य काम करते हैं, जिनमें से ६५०० काले आदमी वा हबशी हैं। यह लोग ८ घण्टे रोज काम करते हैं। काम करनेवालों की तीन टोलियां हैं जो आठ आठ घण्टा प्रतिदिवस काम करती हैं। प्रतिघण्टा ४०० बोझ मिट्टी निकाली जाती है। इससे पाठक समझ लें कि क़ितना काम होता है। रात्रि को बिजली के प्रकाश में काम होता है। प्रकाश का इतना तेज रहता है कि तनिक भी चतुराई कोई करे तो चट प्रगट हो जाती है। इस स्थान पर कोई भी बिना आज्ञा के हीरे का व्यवहार नहीं कर सकता। यदि कोई करे तो दो वर्ष कठिन कारागार भोगे। हीरे की कानून के अनुसार कानून के विरुद्ध बिना लाइसेन्स के काम करनेवाले को १५ वर्ष की सख़्त कैद, वा १५००० रु० जुरमाना, वा दोनों सजा दी जाती है और लाइसेन्सवालों को भी

अपना बही खाता ठीक रखना पड़ता है और प्रति मास उनकी नकल वहां की पुलिस में भेजी जाती है। और यदि किसीको हीरा मिले और वह उसकी रिपोर्ट न करदे तो भी उसको कड़ी सजा मिलती है। चाहे वह उसे लेवे नहीं, पर फिर भी उसकी इत्तला कर देना आवश्यक है।

कई कम्पनियां यहां काम करती हैं, पर सबसे बड़ी कम्पनी 'डी बीयर कन्सोलिडेटेड माइन्स' है। इस कम्पनी के हाथ हीरे का बजार है. अर्थात् भाव की घटती बढ़ती इसीके हाथ है। इस कम्पनी को कभी कभी ३००००००० केरात (१ केरात=४ ग्रेन=२ रत्ती) प्राप्त होते हैं जो लगभग ५२५०००००) रु० को बिकते हैं। सन् १८९२ तक इन खानों से १० टन अर्थात् २७० मन हीरा इस कम्पनी ने निकाला, जिनका दाम ९०००००००० रु० आंका गया। सन् १८९५ में इस कम्पनी ने ४६५८९३७० रु० के हीरे बेचे। कुल लागत इस कम्पनी की २५५७२१९५ रु० लगी थी और शेष २१०१७१७५ रु० नगद मुनाफा हुआ। यह कम्पनी प्रतिवर्ष ४५०००००० रु० से अधिक का हीरा नहीं निकलवाती, कि कहीं बहुतायत के कारण उसके भाव में न्यूनता न हो जाय। अनुमान किया गया है कि समस्त भूमण्डल में प्रतिवर्ष साधारण रूप से लगभग ६००००००० रु० का हीरा बिकता है। यदि भाव घटा भी दिया जाय तो भी इससे अधिक बिक्री की सम्भावना नहीं हो सकती, इस कारण से यह कम्पनी अधिक हीरे नहीं निकलवाती। इस कम्पनी के हाथ दो बड़ी खानें हैं, अर्थात् 'किम्बरले' की और 'डी बीयरस' की। इन खानों में अन्य खानों की अपेक्षा व्यय कम पड़ता है और माल बहुत प्राप्त होता है।

हीरे के उक्त परिमाण में बोर्नियो, आंस्ट्रेलिया, हिन्दुस्तान इत्यादि के हीरे शामिल नहीं हैं। इसकी अपेक्षा तो और स्थानों के हीरे का परिमाण अत्यन्त न्यून है। अनुमान किया गया है कि प्राचीन समय से आज तक हिन्दुस्तान से १००००००० केरात हीरे निकाले गए; ब्राज़ील से (सन् १७२८ से) १२०००००० केरात और दक्षिणी अफ्रिका से केवल १९ वर्ष में ५७०००००० केरात हीरे निकाले जा चुके हैं। यह अनुमान (विशेष कर हिन्दुस्तान के विषय में) क्योंकर और किस आधार पर किया गया है नहीं मालूम होता।

यह हीरे के खड पहिले कुरूप और बेचमक होते हैं। इनको काट छांट कर बनाने से चमक निकलती है। जो लोग इसे काटते छांटते हैं, उन्हें साधारण बोलचाल में "हीरातराश" कहते हैं। इसके काटने की कई रीतें हैं, पर सबसे सुलभ यह है कि बाल बराबर महीन लोहे की तार में हीरे का चूरा महीन करके पानी और सिरके के साथ लगाकर हीरे को रेतते हैं। और इसके घाट और परब इत्यादि जो बनाते हैं, वह भी इसी चूरे से बनाते हैं जो एक चक्कर पर लगाते रहते हैं, और उस चक्कर से हीरे को खरादते हैं और जैसा उचित समझते हैं वैसे घाट बना लेते हैं। हिन्दुस्तान के प्रायः सभी बड़े बड़े नगरों में लोगों ने 'हक्काक' देखे होंगे जो छोटे छोटे नग बनाया करते हैं। इस कारण से इसका विशेष विवरण विस्तारपूर्वक देना व्यर्थ समझा, क्योंकि इससे पाठकों को कोई लाभ नहीं है।

अब आप लोगों को हीरे का पूरा वृत्तान्त प्रगट हो गया। पर हम हिन्दुस्तानियों के लिये अति आवश्यक ज्ञातव्य विषय यह रह गया कि जब हीरे का खड बना बना कर आभूषण के लिये हीरे के थान तैयार हो जाते हैं तो इसके कितने रूप होते हैं और उनमें क्या क्या गुण और दोष हैं। इस हेतु इसका विवरण करना अति लाभदायक समझा गया। मोती के वर्णन में यह लिखा जा चुका है कि केवल पढ़ लेने से रत्नों की परीक्षा नहीं आ सकती। इसके लिये अभ्यास और शिक्षा अवश्य प्राप्त करनी चाहिए। तो भी साधारण रूप से बहुत सी बात प्रगट हो जाने से इसका विवरण लाभदायक अवश्य है।

[शेष आगे।
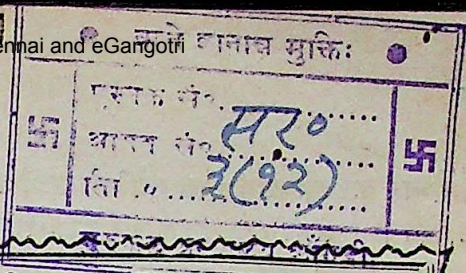
भाग ३] दिसम्बर १९०२ ई० [संख्या १२

विविध वार्ता

इस मास की संख्या के साथ सरस्वती का तीसरा वर्ष पूरा होता है। पहिले वर्ष से लेकर आज तक मेरा सम्बन्ध इस पत्रिका से घनिष्ट बना रहा। पहिले वर्ष में एक समिति इस पत्रिका का सम्पादन करती रही और मैं भी उस समिति का सभासद रहा। दूसरे और तीसरे वर्ष में इसके सम्पादन का भार पूरा पूरा मेरे ऊपर रहा। परन्तु अब चौथे वर्ष के प्रारम्भ से यह कार्य हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी के आधीन रहेगा। इस परिवर्तन का मुख्य कारण यह हुआ कि मैं समय के अभाव से सरस्वती के सम्पादन में इतना दत्तचित्त न रह सका जितना कि मुझे होना उचित था। इसलिये केवल नाम के लिये सम्पादक बना रहना मैंने उचित नहीं समझा। परन्तु मैं अपने पाठकों और पत्रिका के लेखकों को विश्वास दिलाता हूं कि यद्यपि आगामी संख्या से मैं इसका सम्पादक न रहूंगा, पर इस पत्रिका के साथ मेरी वैसी ही सहानुभूति बनी रहेगी जैसी अब तक रही, और मैं सदा इसकी उन्नति से प्रसन्न होऊंगा। अन्तमें मुझे अपने उन मित्रों से प्रार्थना करनी है जो लेखों द्वारा तीन वर्ष लों मेरी सहायता करते रहे। आशा है कि वे अगले वर्ष में भी इसी प्रकार सहायता करते रहेंगे। अब भविष्यत में सरस्वती में प्रकाशार्थ सब लेख, परिवर्त्तन के सम्वादपत्र, तथा समालोचनार्थ पुस्तकादि निम्नलिखित पते से भेजे जाने चाहिए—

पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी,
सम्पादक "सरस्वती",
झांसी।

पत्रिका का प्रवन्ध तथा मूल्य सम्बन्धी पत्रव्यवहार पूर्ववत् प्रयाग के इण्डियन प्रेस ही से रहेगा।

* * *

ईश्वर की सृष्टि में नित नई नई बातों का पता लग रहा है। अभी थोड़े दिन हुए एक ऐसी धातु का पता-लगा है जिसके गुण बड़े अद्भुत हैं और जिसका नाम रेडियम रक्खा गया है। यह देखने में खड़िया की सी मालूम पड़ती है और छूने पर ठंढी जान पड़ती है, पर उससे सदा प्रकाश निकलता है और किसी दूसरे पदार्थ के उसके पास रख देने से वह सहज ही में गरम हो जाता है। यदि इस पदार्थ का एक छोटा सा टुकड़ा, जो दो तीन माशे हो, एक शीशी में बंद कर दिया जाय तो उससे इतना प्रकाश निकलेगा कि अंधेरे में उससे सुगमता से पुस्तक पढ़ी जा सकेगी। यदि नीबू के बराबर का टुकड़ा रक्खा जाय तो उससे इतना प्रकाश निकलेगा जितना एक अच्छे टेबुल लम्प से निकलता है और यदि यह पदार्थ छत्त में छू दिया जाय तो उस गृह में सूर्य सा प्रकाश सदा वर्तमान रहेगा। सबसे अच्छा गुण इस धातु में यह है कि उसका क्षय बहुत ही कम होता है, अर्थात् १००० वर्ष में चैाथाई माशे का कहीं सैावां हिस्सा खर्च होता है। इसलिये यदि ४ माशे का टुकड़ा रक्खा जाय तो वह सोलह लाख वर्ष तक चलेगा। पर इस पदार्थ का मूल्य बहुत है, अर्थात् एक माशे का दाम ३७६८०) रु० है। इसका मुख्य कारण यही है कि इसके निकालने में बहुत व्यय पड़ता है। इस धातु के पता लगने से वैज्ञानिकों में बड़ी हल चल मची हुई है। सूर्य में अब तक अग्नि मानी जाती थी और यह आशंका थी कि उस अग्नि के बराबर जलते रहने से एक दिन ऐसा आवेगा जब सूर्य की आग ठंढी हो जायगी, और तब गरमी के न मिलने से सैारमंडल की सृष्टि नष्ट हो जायगी। पर रेडियम के निकलने से वैज्ञानिकों का यह विचार हो रहा है कि हो न हो सूर्य में यही धातु वर्तमान है जिससे प्रकाश और गरमी दोनों का काम चलता है और जिसका भंडार इतना बड़ा है कि जो शायद कभी ही चुके। ईश्वर की सृष्टि में अभी न जाने क्या क्या चीजें छिपी पड़ी हैं!

अन्यत्र हम इस प्रदेश के सेन्सस सुपरिनटेन-डेण्ट की रिपोर्ट के कुछ अंश का अनुवाद, जो हिन्दी भाषा और नागरी अक्षरों के विषय में है, देते हैं। हिन्दी के प्रेमियों से प्रार्थना है कि इसे वे ध्यान पूर्वक पढ़ें और मिस्टर वर्न के सिद्धान्तों पर विचार करें।

* *
*

इस संख्या के साथ हम बर्दवान के महाराजाधिराज विजयचन्द महताव बहादुर और उनके पिता राजा बनविहारी कपूर का चित्र देते हैं। भारतवर्ष के खत्रियों में अब प्रसिद्ध राज्यवंश केवल बर्दवान का रह गया है* और अनेक पुराने राज्यों का तो अब कहीं भी पता नहीं लगता। इस वंश के आदि पुरुष आबूराय हुए, जो जाति के कपूर खत्री तथा लाहोर के रहनेवाले थे, और सन् १६५७ में बङ्गाल में आकर रेकाबी बाजार (बर्दवान) के चैाधरी और कोतवाल नियत हुए। इनके लड़के बाबू राय परगना बर्दवान और दूसरे तीन स्थानों के मालिक हुए। इनके पीछे घनश्यामराय और घनश्यामराय के पीछे कृष्णरामराय हुए, जिनको औरंगजेब ने एक फरमान सन् १६९४ में भेजा और बर्दवान आदि स्थानों का चैाधरी और जमींदार माना। इनके पीछे जगतराम राय गद्दी पर बैठे और इन्हें भी औरंगजेब ने एक फरमान सन् १६९१ में भेजा। इस समय इनके आधीन पचास महाल थे। इनके पीछे कीर्तिचन्द्र राय और चित्रसेनराय गद्दी पर बैठे। चित्रसेनराय को सन् १७४० में राजा की पदवी मिली। सन् १७४४ में राजा तिलकचन्द बर्दवान की गद्दी पर बैठे। इन्हें दिल्ली से राजाबहादुर और चारहजारी की पदवी मिली और अन्त में ये महाराजाधिराज और पंचहजारी की पदवी से प्रतिष्ठित हुए। सन् १७७१ में महाराज तेजचन्द ६ वर्ष की अवस्था में गद्दी पर विराजे और १८३२ तक राज करते रहे। इनके पीछे महाराजा महताबचन्द गद्दी पर बैठे

* ऐसा सुनने में आता है कि दीनाजपुर के राजा भी खत्री हैं।

ग्रैार १८६४ में वाइसराय की कौंसिल के सभ्य नियत हुए। बङ्गाल के ये पहिले रईस थे जो इस कौंसिल के सभ्य हुए। सन् १८७७ में इन्हें १२ तोपों की सलामी दी गई। सन् १८७२ में महाराजा आफ़ताबचन्द महताब गद्दी पर बैठे, पर निस्सन्तान होने के कारण इनकी मृत्यु के पीछे राजा बनबिहारी के पुत्र, जो इनके बड़े निकटस्थ सम्बन्धी हैं, गोद लिए गए। नाबालिग रहने के कारण इतने दिनों तक इन महाराज विजयचन्द महताब बहादुर के राज्य का सब काम राजा बनबिहारी कपूर करते थे। गत २० अक्तूबर को महाराज बालिग हुए ग्रैार उसी दिन से वे अपने राज काज में लग गए हैं। महाराज ने अंग्रेज़ी में अच्छी शिक्षा पाई है ग्रैार बँगला पद्य में तो अपनी रची हुई दो पुस्तकें भी छपवाई हैं जिनकी प्रशंसा बङ्गाल के पत्रों ने बहुत कुछ की थी। महाराज अपने धर्म्म पर सन्नद्ध ग्रैार बड़ी अच्छी प्रकृति के हैं। हमको विश्वास है कि इनके समय में राज्य की अच्छी उन्नति होगी ग्रैार प्रजा सुखी होकर इनके सुशिक्षित ग्रैार विज्ञ होने का लाभ उठावेगी।

राजा बनबिहारी कपूर के विषय में इतना लिख देना ही काफी होगा कि जिस पुत्र ने उनकी शिक्षा ग्रैार उपदेशों से लाभ उठा कर अपनेको ऐसा योग्य बनाया है, उसके पिता की जहां तक प्रशंसा की जाय, थोड़ी है। इनके प्रजाहितकर कार्यों ग्रैार राज्य के प्रवन्ध से सन्तुष्ट होकर गवर्नमेण्ट ने इन्हें राजा की पदवी दी है ग्रैार अबतक वह इनका बहुत कुछ सम्मान करती है। राजा साहब का ध्यान अपनी जाति की उन्नति की ग्रोर बहुत कुछ रहा है। हमें विश्वास है कि राज्यकार्य के झंझटों से छुट्टी पा कर ये अपना शेष जीवन देश के हित में लगावेंगे।

मथुरा

अहो न जानन्ति नरा दुराशयाः पुरीं मदीयां परमां सनातनीम्।
सुरेन्द्र-नागेन्द्र-मुनीन्द्र-संस्तुतां मनोरमां तां मथुरां पुरातनीम्॥४३
(वृन्दावनमाहात्म्ये पञ्चमोध्यायः।)

(मिश्रित छंद)

हे मथुरे! तव यश को गाये गये बहुत दिन बीत।
इससे बुधजन तेरे गुण की करते नहीं प्रतीत॥
नहीं विश्वास वे भारत में अब हैं,
नया यह विश्व है नर नये सब हैं;
सभी संसार में लपटे पड़े हैं,
न जाने द्रव्य क्या इसमें गड़े हैं॥ १॥

यद्यपि मैंने शोभा तेरी अब तक देखी है न,
तदपि हृदय में यही लालासा लगी रहै दिन रैन।
कभी सुखमावलोकन मैं करूँगा
हृदय में मूर्ति वह सुन्दर धरूँगा
नहीं है प्राप्त जो नरपाल को भी,
यथा कलधौत को रखता है लोभी?॥२॥

कब मैं तेरा दर्शन करके वह पाऊँ आनन्द।
जिसके लिये गमन करते थे यदु-कुल-कैरव-चन्द॥
नहीं पर हाय! वह वृन्दाविपिन है।
नहीं वे धेनु दुधा, नहीं तृन हैं,
नहीं वह श्यामसुन्दर की छटा है,
नहीं वह इन्द्र की काली घटा है॥३॥

नहीं गाय के पीछे पीछे दौड़ें हैं घनश्याम।
हल ग्रै मूशल लिए हुए नहिं आते हैं बलराम॥
नहीं वृजभूमि में हैं नन्द राजा,
नहीं वह कंश का भय है विराजा,
नहीं रक्षा करें हैं अब कन्हाई,
नहीं वह गोपियों की है दुहाई॥ ४॥

गोवर्धन गिरि की महिमा को पुनः कौन दिखलावेगा,
इन्द्रमान भञ्जन करने को नख पर कौन उठावेगा?
धरा पर आज गिरिधारी नहीं हैं,
कहीं थे उस समय ग्रै अब कहीं हैं॥

यहां पर कोप करके मेघ आते।
अनेकों ग्राम छिति से हैं बहाते ॥ ५ ॥

पर वेही गिरिराज अचल हो अब भी पूजे जाते हैं।
यद्यपि अन्न नहीं खाते हैं तदपि प्रभाव दिखाते हैं ॥
अनेकों वार चोटें खा चुके हैं।
नहीं पर वृष्टि से अब तक झुके हैं ॥
अकेले भी नहीं वे हारते हैं।
अभी तक मेघ को ललकारते हैं ॥ ६॥

नहिं वह बंसी की मधुरी ध्वनि नहिं वे गोपी गीत
अब तो अपने कार्य लगे सब मोद रहित भयभीत
नहीं उनमें से अब कोई बचा है।
नहीं वह सृष्टि (?) ब्रह्मा ने रचा है ॥
अमित अब शोक के पुतले बने हैं।
बहुत से दीन हैं दुखिया घने हैं ॥७॥

सीधे सादे गोप वहां के अब किञ्चित निकलेंगे।
वह विनोद की मूर्ति कहां! अब क्यों वे दर्शन देंगे ?
कहां अब वे पुरानी झोपड़ी हैं ?
लतावेष्टित कहां वन में खड़ी हैं।
अतिथि का अब कहां सत्कार है वह।
यथा मन्वादि शास्त्रों में गये कह ? ॥ ८ ॥

पर पावन वृजभूमि वही है भक्ति न वही परन्तु।
वैसे ही द्रुम, लता वैसिही, वैसही खग जन्तु ॥
सुना है किन्तु वैस वन नहीं हैं,
मनुष्यों में वहां वे धन नहीं हैं,
सरलता छोड़ के तुझको भगी है।
दिवाली सभ्यता की जगमगी है ॥ ९ ॥

क्रमशः तेरे आस पास के वन सब कटते जाते हैं।
तब भी परम्परा, प्रकृति की वृन्दावन में पाते हैं॥
यहां पर फूल अब भी फूलते हैं।
जिन्हें सब देख सुधि, बुधि भूलते हैं।
फलों की बात क्या कहनी वहां है।
स्वयं साक्षात वनदेवी जहां है ॥ १० ॥

हरि हरि! सकल विहंग डार पर मीठी वाणी बोलें हैं
फुदक फुदक कर गिरते पड़ते बैठे करें कलोलें हैं ॥

कहीं पर लाल हैं मैना कहीं हैं।
फुलाये काक भी डैना कहीं हैं।
कबूतर तीतरें बैठी कहीं हैं।
अहंता से पिकें ऐंठी कहीं हैं ॥ ११ ॥

शुक भी बैठे पण्डित जी से गोपी कृष्ण उचारैं हैं।
अभी द्विजों को मुदित देखकर अपना अंग निहारैं हैं।
कहैं हैं "इन द्विजों की क्या दशा है।
हुआ क्या आज इनको कुछ नशा है ?
कि जिसके बीच ये प्रभु नाम भूले।
समाते हैं नहीं निज अंग फूले" ॥१२ ॥

यह सुनकर पक्षी कहते हैं 'होवें रुष्ट न आप।
सरण सदा हम हरि को करते वही मन्त्र औ जाप॥
नहीं पर आप सदृश कर सकै हैं।
इसासे और का औरै बकै हैं।
सुनैं हैं किन्तु जब वह आप से नाम।
अलौकिक मोद पाते आतमाराम ॥१३॥

इसी प्रकार प्रजा तेरी सब आनन्द करती दीखैं।
एक दूसरे से हरि का गुण अद्‌भुत विधि से सीखैं॥
मृगों के झुण्ड के हैं झुण्ड जाते।
सुनैं हैं जब कहीं गाते बजाते।
उठा कर कान स्थिर होते वहीं हैं।
"कहीं वंसी की वे ध्वनि तो नहीं हैं ॥१४॥

जिसकी दन्त-कथा कहते हैं अपने कुल के वृद्ध।
किसी समय में जिसको सुनकर हुए पितामह सिद्ध"
इसी अनुमान में कोई खड़ी है।
लगाता व्याध बाणों की झड़ी है।
तजै है प्राण पर पाती है वह मुक्ति।
अहाहा! धन्य है तव भूमि की भुक्ति ॥१५॥

तव पुनीत सीमा के भीतर श्री यमुना जी बहती हैं
सूरसुता जिनको बहुस्मृतियाँ पतितपावनी कहती हैं
विलोको! श्वेत वकं भी तैरते हैं।
सरोरुह स्वच्छ पाकर ठैरते हैं,
कहीं पर कञ्ज अब तक भी खिले हैं,
कहीं कलियों से जाकर वे मिले हैं ॥१६॥

मथुरा ।
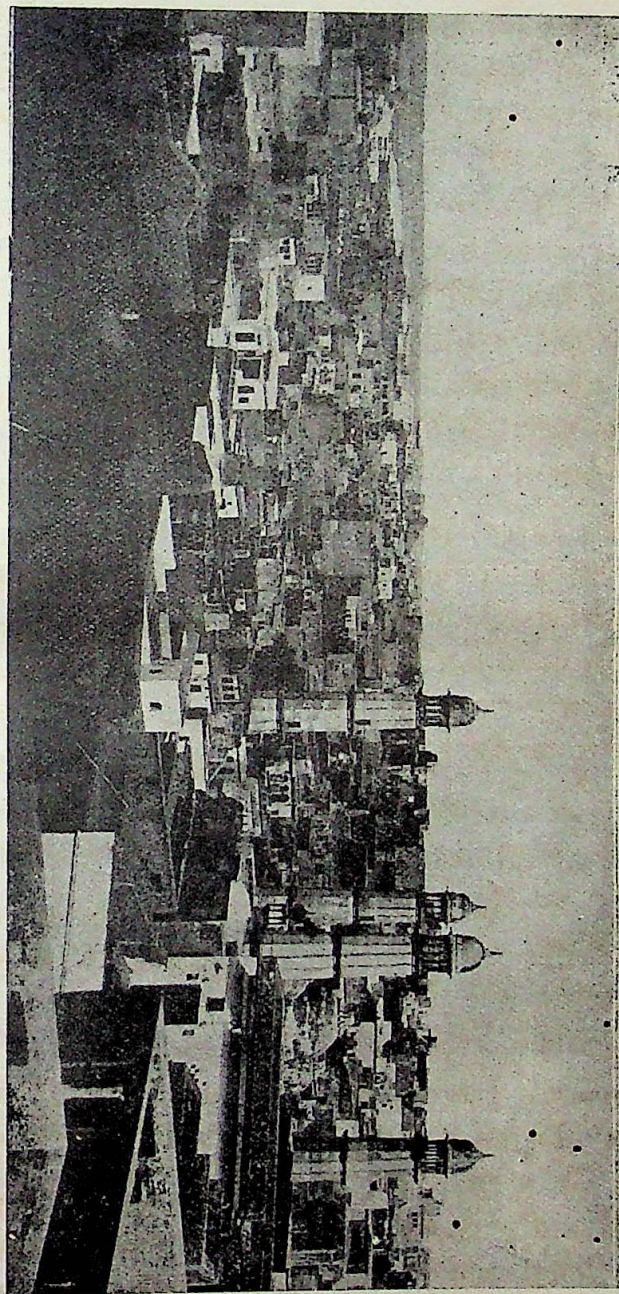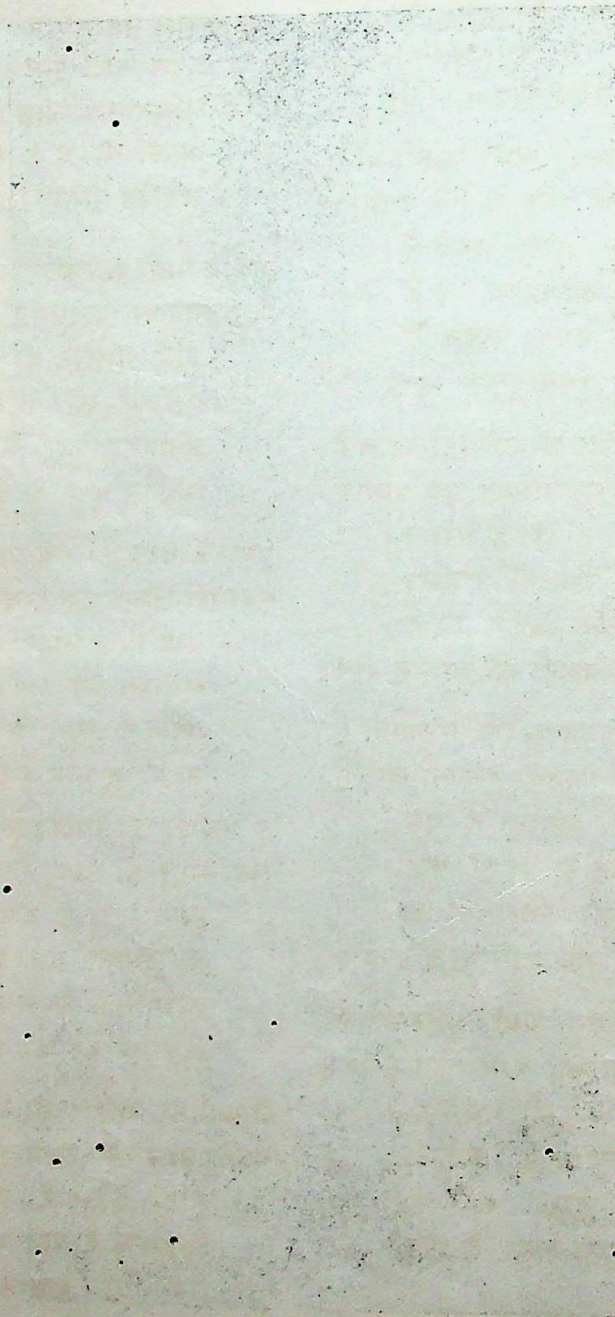
अंडे के सम जान कहीं वे लखो ! बैठ कर सेते हैं,
खिलते ही उनके अपना मग चकित चित हो लेते हैं।
अहाहा ! तीर पर तरु जो लगे हैं।
मनो वे रात्रि में सो कर जगे हैं,
लखैं हैं जल-मुकुर में रूप अपना,
नया संसार है वा दृश्य सपना ॥१७॥

गृह उलटे उलटे सब मानव उलटी सारी बात,
यमुना-मैया जनु दिखलावै कलि-के सब उत्पात॥
कहीं पर मात की धारा प्रबल है,
लिये कुछ श्यामता क्या स्वच्छ जल है,
नहाया श्याम ने इनमें बहुत है,
इसीसे अंग इनका चिन्हयुत है ॥१८॥

भिन्न भिन्न गति मति के मानव जाकर वहां नहाते हैं।
अपने अपने सुभगकर्म से मनवांछित फल पाते हैं।
वहां पर पाप बह जाता है सारा,
नहीं उसको कहीं मिलता सहारा,
कभी उसको यमालय का न भय है,
कहा जिसने कभी 'यमुना की जय' है ॥१९॥

तैसेही तुलसी की महिमा बहु पुराण मिल गाते हैं,
हरित पत्र वे धन्य जगत में जिनको बुधजन खाते हैं।
पतिव्रत धर्म की मर्याद हैं यह,
स्वयं भगवान ने मुख से दिया कह,
इसीसे आज सबकी स्वामिनी है,
प्रिया हैं कृष्ण हरि की कामिनी हैं ॥२०॥

तुलसी संग अन्य सुन्दर तरु थाले बीच लगे हैं,
अति रमणीय बाटिका शोभित अलिगण प्रेम पगे हैं
कहीं बेला कहीं फूली चमेली।
कहीं कोने में केली है अकेली,
कहीं बन्धूक है गुञ्जा कहीं है,
सजीवनमूरि भा. पुञ्जा कहीं है ॥२१॥

ललित लवङ्गलता माधविका राजवल्लिका राजै हैं,
कृष्णा कृष्णफला करुणायुत बागों बीच विराजै हैं,
कई नीचे धरा पर जा पड़ी हैं,
कई तरु के सहारे से खड़ी हैं,
'कहां हैं हाय ! अब वह कृष्ण प्यारे ?
कहां हैं नाम के दाता हमारे" ॥२२॥

उसी प्रकार अशोक शोकयुत अब पड़ता दिखलाई है
तप में मग्न महामुनिवर ने मनो समाधि लगाई है;
बहुत फल फूल से पूजा करैं हैं,
अमित तरु ध्यान ही केवल धरैं हैं।
किसी के प्रेम से आँसू बहै हैं,
मधुव्रत पोंछते जिनको रहै हैं ॥ २३ ॥

अवनि अनूप वहाँ की वैसीोह शुचि सुगन्धमय होगी,
जहां निवास किये पाते हैं शांति अलौकिक योगी,
जहां पीली हरी दूर्वा जमी है,
गलीचों की नहीं उनको कमी है,
मनोहर कुञ्ज के तम्बू तने हैं,
मनोरम वृक्ष के खम्भे बने हैं ॥२४॥

पुष्पों के परयङ्क जिन्हें प्राकृतिक नियम बनवाते हैं;
पक्षीगण जिनको कलरव से प्रातःकाल उठाते हैं,
लगा है कृष्णही में चित्त जिनका,
समझते रत्न को भी तुल्य तिनका,
नहीं है स्वर्ग में भी स्नेह मन से,
अहा ! तू धन्य है निज भक्त जन से ॥२५॥

तू अनादि है सुता प्रकृति की नहीं इसमें भ्रमकोई है,
सदा मातु की स्वच्छ गोद में तू सुखपूर्वक सोई है,
तुझी से प्रेम उसने यह किया है,
कि तुझको रूप अपना दे दिया है,
स्वभैातिक स्वच्छता आगे धरी है,
सुघरता कूट कर तुझ में भरी है ॥२६॥

जैसे माता निज इच्छा से प्यारी सुता संवारै है,
अपने आभूषण उतारकर अंग अंग पर वारै है,
मुदित होती है जैसी भव्यता देख,
असम्भव है यहां पर उसका उल्लेख,
उसी विधि देख कर तुझको चुई है,
प्रकृति भी फूल कर तुम्बी हुई है ॥ २७ ॥

अति प्रसन्न हो तुझको लेकर कृष्ण शरणमें प्राप्त किया।
प्रकृतिदेवि ने इस बिधान से निज़कर्तव्य समाप्त किया।

वहां तू ने भी महिमा को दिखाया,
कि अपने तन को नन्दन से बढ़ाया,
प्रफुल्लित हो गये सब गात तेरे,
हुये आनन्द के नँद नन्द चेरे ॥ २८ ॥

ऐसा भाग न कोई तेरा जो कुसुमित नहिं होवै है।
साधारण दर्शक से यद्यपि तू अपनी छवि गोवै है
दिखाया तू ने अपनी पूर्ण छवि को,
समझ कर योग्यता यदुवंश रवि को,
कभी अपने प्रणत को भी दिखाया,
जिसे उस भक्तिरस में पूर्ण पाया ॥२९॥

वह वैभव जो प्रथम वहां पर रहा नहीं कह सकते हैं
जिसके वर्णन में मुनीश, वागीश, ईश भी छकते हैं
वही तू आज लों सुन्दर पुरी है,
नहीं काश्यादि से अब भी बुरी है,
तदपि वह पूर्ण शोभा छिप गई है,
रहा कुछ और अब औरै भई है ॥३०॥

अब जिससे तव गुण गण प्यारे लगैं आधुनिक मन में
वही प्राकृतिक शोभा तेरी वर्णित है नव तन में।
यही आशा है बुधजन ध्यान देंगे,
वचन की सत्यता पहचान लेंगे,
कहा जो कुछ है वह सब है हृदय से,
प्रकट है कोष वह आनन्दमय से ॥३१॥

इस संसार दुःख सागर में मग्न रहूं दिन रैन।
इसी लिये लौकिक आँखों से तुझको देखा है न;
तुही है विश्व में आनन्ददातृ,
अकेली वंच रही है पुण्यमातृ,
अगर तुझ को भी अबही देख लूंगा,
तो फिर किस आश से जीता रहूंगा ?॥३२॥

वागीश्वर मिश्र।

आस्ट्रेलियां में पाताली नदियां

सृष्टिकर्ता ने अपनी सृष्टि में भी वस्तुओं और जीवों को एकही सा सुखी नहीं बनाया है। किसीको कोई वस्तु दी है, तो दूसरे को उसी वस्तु से वञ्चित भी रक्खा है; परन्तु उसने जो वस्तुएं हमको दी हैं उनका पूरा लाभ हमलोगों को उस समय तक नहीं जान पड़ता जब तक कि हमको उनके अभाव का अनुभव न करना पड़े। उदाहरण के लिये एक छोटी सी बात लीजिए। क्या हम नदियों के निकट रहने वाले लोग कभी स्वप्न में भी जल के यथार्थ मूल्य को विचार कर उस कारुणिक परमेश्वर को कृतज्ञता से धन्यवाद देते हैं जिसने हमें ऐसे स्थान में उत्पन्न किया है जहां जल बहुतायत से प्राप्त हो सकता है? हां, उस समय हमें कुछ अंश में इसका मूल्य अवश्य ज्ञात होता है जब हमें यात्रा में अथवा और किसी कारण से एकआध दिन तक जल न प्राप्त हो सके। परन्तु तनिक सोचने की बात है कि जब एकआध ही दिन जल न मिलने से हमारी यह दशा हो जाती है, तो उन बिचारों की क्या दशा होती होगी जिन्हें सृष्टिकर्ता ने पृथ्वी के ऐसे भाग में उत्पन्न किया है जहां महीनों जल के अभाव से कष्ट सहन करना पड़ता है! आज हम आपलोगों को भूमण्डल के ऐसे ही एक भाग का वृत्तान्त सुनाते हैं। हमारे पाठकों में कोई बिरला ही ऐसा होगा जिसने आस्ट्रेलिया द्वीप का नाम न सुना हो। यह द्वीप भारतवर्ष के उत्तर-पूर्व में है। यह २४०० मील लम्बा और १४०० मील चौड़ा है। परन्तु इतने बड़े द्वीप में केवल एक ही बड़ी नदी 'मरे' है। कुछ दिन पहिले यहां जल का प्रायः सब काम केवल जलाशयों ही द्वारा चलता था। परन्तु सूखी ऋतु में ये जलाशय बहुत सूख जाते थे और बहुत से पशु तथा मनुष्य भी इसके अभाव से मृत्यु को प्राप्त होते थे। यहां भेड़ी बहुत होती हैं। एक एक भेड़ी रखनेवाले, जो बड़े धनाढ्य होते हैं, कई हजार भेड़ी रखते हैं। सूखे में, जब कि जलाशयों में बहुत थोड़ा पानी रह जाता था, और वह भी शीघ्रता से घटने लगता था, तो ये भेंड़ें जलाशय के चारो ओर बटुर जाती थीं और थोड़े ही काल में उसके आस पास की भूमि को

मरुस्थल बना देती थीं, और अन्त में भूख और प्यास के मारे इतनी दुर्बल हो जाती थीं कि चल नहीं सकती थीं, और इस प्रकार से भयानक मृत्यु को प्राप्त होती थीं। इसके अतिरिक्त ऐसा भी होता था कि किसी किसी सूखे हुए जलाशय के चारों ओर की भूमि दलदल होती थी, और कितनी ही प्यासी भेड़ें जो अपनी प्यास बुझाने के लिये उसकी ओर दौड़ती थीं, इन्हीं दलदलों में भयंकर रीति से फंस जाती थीं, और उसीमें उनके सिसक सिसक कर प्राण निकल जाते थे! यह दशा तो पशुओं की थी। पर मनुष्यलोग भी इससे पूर्णतया मुक्त नहीं थे और बहुतों को जल के लिये बड़े कष्ट सहने पड़ते थे।

सन् १८८५ ईसवी में आस्ट्रेलिया में जो सूखा पड़ा था, उससे केवल लाखों पशु और भेड़ें ही नहीं मरीं, वरन् भय था कि जल के अभाव से बहुतेरे नगर के नगर का विनाश हो जायगा। परन्तु इसी समय एक ऐसा आविष्कार हुआ जिससे असंख्य जीवों के प्राण बच गए और बड़े बड़े मरुस्थल, यदि स्वर्गतुल्य नहीं, तो भी बसने योग्य अच्छे स्थान हो गए। यह आविष्कार 'पाताली कुआं' है। पहिले पृथ्वी में यन्त्रों द्वारा एक बहुत गहिरा गोल छेद, जो प्रायः लग भग छ इञ्च चौड़ा होता है, करते हैं। ज्यों ज्यों यह छेद करते जाते हैं त्यों त्यों उसमें फौलाद की नलियें, जो एक दूसरे में पेंच पर कसी जाती हैं, लगाते चले जाते हैं। प्रायः लगभग आध मील से कम वा अधिक छेदे जाने पर इसमें से एक अच्छी जलधारा निकलती है, जो बहुधा बड़े ऊंचे तक बड़े भारी फुआरे की भांति जाती है। बोइसे नगर के एक पाताली कुएं की जलधारा ८५ फ़ीट ऊंची जाती है।

इस समय सबसे गहिरा पाताली कुआं प्रूस देश के श्लाडेबाच स्थान में है, जो लगभग एक मील गहिरा है। परन्तु आस्ट्रेलिया में पश्चिम क्वीन्सलेण्ड के विमेरा स्थान में एक पाताली कुआं ४००० फ़ीट गहिरा खोदा गया है, पर अब तक भी इसमें पानी नहीं निकला। परन्तु यह बात निश्चय हुई है कि इसे १००० फ़ीट और गहिरा खोद कर पानी निकाला जाय। यदि ऐसा किया गया तो वास्तव में यह एक बहुत ही गहिरा पाताली कुआं होगा।

पाताली कुएं में से पानी निकलने पर, इस पानी को पूर्णतया काम में लाने के लिये यह आवश्यक होता है कि इसे एक विशेष मार्ग द्वारा बहाया जाय; अथवा यों कहिए कि उसकी एक कृत्रिम नदी बनाई जाय। अतएव एक विशेष प्रकार के बड़े भारी हल द्वारा, जिसके खींचने के लिये बीसों बैल लगते हैं, कई मील तक एक बड़ी नाली बनाई जाती है, और फिर पानी स्वभावतः इसी नाली से बहता है। इन कृत्रिम नदियों को 'पाताली नदियां' कहते हैं। आस्ट्रेलिया देश-निवासी सृष्टि के अभाव को इन्हीं नदियों से पूरा करते हैं। आस्ट्रेलिया में स्थान स्थान पर ये पाताली नदियां बनी हैं। इनकी संख्या का अनुमान केवल इसी बात से कर लीजिये कि केवल एक पश्चिमी क्वीन्सलैण्ड में उनकी संख्या साढ़े चार सै से भी अधिक है।

परन्तु पाठकगण यह न समझें कि ये पाताली कुएं और नदियां सहज ही में बन जाती हैं। इनके बनाने में बड़ा व्यय लगता है। पाताली कुओं के बनाने में १००० फ़ीट की गहराई तक लग भग १८) रु० फुट के हिसाब से व्यय पड़ता है। इसके उपरान्त फिर, १५०० फ़ीट तक २४) रु० फुट के हिसाब से, और फिर इसके आगे २००० फ़ीट तक ३०) रु० फुट, और योंहीं आगे और भी समझ लीजिए। फिर इतना व्यय करने पर भी यह कोई आवश्यक बात नहीं है कि सब कुओं में पानी निकले ही। बहुतेरे कुओं में बहुत दूर तक खोदे जाने पर भी जल नहीं निकला। इसके सिवाय ऐसा भी होता है कि किसी कुएं में जल निकलता तो है, परन्तु वह पृथ्वीतल के ऊपर तक नहीं चला आता और ऐसी अवस्था में उसे पम्प द्वारा ऊपर

लाना पड़ता है। फिर, किसी किसी पाताली कुएं का पानी जहरीला भी निकल जाता है; परन्तु ऐसा कभी बिरले ही होता है। हां, यह तो है कि बहुतेरे कुओं के पानी में औषधीय गुण होते हैं, और इसी कारण से, जब तक कि लोगों को ऐसा पानी सह न जाय, तब तक, उन्हें इसे औषधी ही की नाई तनिक तनिक पीना पड़ता है।

अन्त में मुझे इतना ही और कहना है कि पाताली कुओं से व्यापार की भी बड़ी उन्नति हुई है। पाठक! आश्चर्य मत कीजिए कि कुओं से व्यापार की कैसे उन्नति हो सकती है। नहीं, जैसा मैं कहता हूं वैसा ही हुआ है। इन कुओं के खोदने में कई ऐसे स्थानों पर कोयलों तथा अन्य धातुओं की भी खानों का पता लगा है, जहां स्वप्न में भी उनके होने की सम्भावना नहीं थी। इसके अतिरिक्त ऊपर भेड़ों के विषय में जो कुछ लिखा जा चुका है, उससे आप लोगों को यह तो विदित होही गया होगा कि आस्ट्रेलिया में ऊन का बड़ा व्यापार है। ऊन के गट्ठड़ों को बैलों अथवा खच्चरों पर लाद कर सैंकड़ों मील तक निर्जन मरुस्थल में से भेजना पड़ता है। अतएव इसका किराया बहुत लगता है। जब वहां पाताली कुएं न थे, और जल बड़ा मूल्यवान समझा जाता था, तो गर्दीले और चिकट ऊन के गट्ठड़ बिना धोए ही भेजे जाते थे। पर अब उन्हें भली प्रकार धोकर स्वच्छ और हलका कर लेते हैं और इसी कारण उनका किराया भी कम लगता है। इस प्रकार से पाताली कुओं ने असंख्य जीवों की प्राणरक्षा करने के साथ ही साथ व्यापार को भी बड़ी उन्नति दी है।

भारतवर्ष में आज कल सूखा प्रायः प्रतिवर्ष पड़ने लगा है और साथही अन्न की मंहगी हो जाती है, जिससे लाखों जीवों के प्राण नष्ट हो जाते हैं। यदि गवर्मेण्ट अपने व्यय से इन कृत्रिम कुओं का यहां प्रचार करें तो आशा है कि बहुत कुछ आपत्ति दूर हो जाय और प्रजा को पानी के कष्ट से हानि न उठानी पड़े। गोपालदास।

हीरा

[२]

नग की बनावट

साधारणतः इसकी बनावट तीन प्रकार की होती है—

(१) कंवल (२) तिल कड़ी (३) पर्व

दलदार हीरों को उसके पहल काट कर कई सुन्दर रूप का बनाते हैं जिसे 'घाट' कहते हैं। यह घाट ११ प्रकार के होते हैं—

(१) कुतबी (५) चौरस (९) त्रिकोण
(२) अठमासा (६) अठमासा तूलानो (१०) बादामी
(३) छमासा (७) गिर्दा (११) सरो
(४) पियाला (८) सिंघाड़ा

ज्ञात रहे कि हीरे कई रङ्ग के होते हैं। बहुत करके श्वेत स्वच्छ ही होते हैं, परन्तु कोई कोई लाल, हरा, पीला, काला या श्याम भी होता है।

हिन्दुस्तानी रत्नपरीक्षक (जौहरी) लोग शास्त्रानुसार इसके चार वर्ण मानते हैं:—

(१) विप्र वर्ण = जो स्वच्छ श्वेत और तेजवान हो।
(२) क्षत्रियवर्ण = जो लाल हो वा उसमें लाली झलके
(३) वैश्य वर्ण = जो पीत हो वा श्वेत-पीत मिश्रितहो
(४) शूद्र वर्ण = कृष्ण वा हरित-श्याम मिश्रित।

और इनके अतिरिक्त जिनमें कई मेल की छाया पाई जाय वह 'सङ्कर' कहाता है।

गुण

हिन्दुस्तान में जैसे और वस्तुओं के गुण अवगुण देखे जाते हैं और उनके फलाफल मानते हैं, वैसे ही हीरे के भी गुणदोष माने जाते हैं। निर्दोष हीरा पहिरने से तेज, बल और आरोग्यता की वृद्धि होती हैं, अकालमृत्यु, व्याधि इत्यादि की शान्ति होती है। उत्तम हीरा वही होता है जिसमें चमक, दमक, तेज तथा निर्मलता हो और जो बिजलीवत् चमक दिखावे जो, अन्धेरे

में भी चमके और सूर्य की किरण में रखने से इन्द्र-धनुषवत् रङ्गत दे और नीचे लिखे दोषों से शुद्ध हो।

दोष

हीरे में पांच दोष सहज वा प्राकृतिक होते हैं। इसके अतिरिक्त उसकी बनावट में भी अनिष्ट दोष मानते हैं, जिनका वर्णन और फलाफल नीचे लिखा जाता है। हीरे के ५ प्राकृतिक दोष ये हैं—(१) छींटा वा बिन्दु दोष। (२) चीर जो बिना टूटे भी टूटा वा फूटा सा देख पड़े, अर्थात् उसमें चीर वा लकीर सी दिखाई दे। (३) डूग। (४) कर्क रङ्ग—जिसका रङ्ग सरोतर बराबर न हो। (५) काकपद—जिसमें जाला सा पड़ा हो वा कई लकीरें कटी हों, जिसमें कागपद सा प्रतीत हो। इनके भी कई भेद हैं जो नीचे लिखे जाते हैं—

(१) छींटा वा बिन्दुदोष चार प्रकार का होता है। (क) बिन्दुदोष—जिस नग में अति सूक्ष्म लाल बिन्दु हो वह धन और धान्यहर है। यदि कई छिटक रुधिरवत् हों तो उसे रैफल कहते हैं। कोई कोई बिन्दुदोष को रैफल से अलग मानते हैं, कोई नहीं मानते। यह शीघ्र विनाश को करता है। (ख) परिवर्त-गोलबिन्दु पर कुछ बड़ा। रोगजनक है। (ग) यवाकृति—जिसमें यव का सा आकार हो। यह रोग और हानिकारक होता है। यह तीन प्रकार के हैं, राते, पीते, सेत। (घ) आवर्त—वृत्ताकार बूटी जिसमें हो, शून्य के रूप सा, अर्थात् मध्य में पोला हो और गोल घेरा हो।

(२) चीर के भी चार प्रकार हैं। (क) अर्द्ध रेखा—जो रेखा अर्द्धचन्द्रवत् वक्र हो। यह मृत्युकारक होता है। (ख) मूसलाकृति—सुखनाशक होता है। (ग) त्रास—जो 'बिनटूटा टूटा दरसावे', अर्थात् जिसमें दरार सी देख पड़े। (घ) लाल वा पीली रेखा आयुहर होती हैं और काली रेखा कलङ्कदायक है, पर श्वेत अच्छी होती हैं यदि वह दाहिने पार्श्व में हो। बाएं पार्श्व का चीर मध्यम गिना जाता है।

और शेष दोषों में प्रभेद नहीं हैं। इनके सिवाय हीरे की बनावट में भी दोष मानते हैं। जैसे अष्टास्य, षटास्य तीक्ष्ण धार का नग पुरुष को पहिनना शुभदायक होता है। ये पुरुषत्व को बढ़ाते हैं। गोल, चिपटा, त्रिकोण नग स्त्रियों के लिये उत्तम है। इसके विरुद्ध होने से अशुभ मानते हैं। कहा जाता है त्रिकोण हीरा पुरुषत्व को बढ़ाता है।

हीरे का दाम उसके रंग, ढंग, अंग, संग और तौल पर निर्भर है जो अभ्यास और शिक्षा बिना नहीं आ सकता। 'सवारी' पर चढ़ा, अर्थात् किसी आभूषण में कांटे पर जड़ा हुआ, नग अधिक भड़कीला हो जाता है। उक्त दोषों को छिपाने के लिये भी नीचे कटोरी रख कर जड़ देते हैं।

खोटे वा कृत्रिम हीरे

पांच प्रकार के पदार्थ ऐसे हैं कि जिनमें चमक होने के कारण वे हीरेसदृश प्रतीत हो सकते हैं और उनसे धोखा हो सकता है। यों तो सब हीरे की तुलना नहीं कर सकते, पर नीचे कटोरी देकर जड़ देने पर उनमें कुछ चमक दमक बढ़ जाती है और हीरेवत् प्रतीत होने लगते हैं। कभी कभी हीरे के दोषों को छिपाने के लिये भी ऐसी ही जड़त कर देते हैं जिससे सूक्ष्म दोष दिखाई नहीं देते। उक्त ५ प्रकार के पदार्थ ये हैं—

(१) पुखराज—इसकी रत्नों में गिनती है। इसका विशेष वर्णन किसी समय पाठकों के अवलोकनार्थ लिखा जायगा। यह हीरे से नरम होता है पर अन्य रत्नों से कठोर। (२) तुर्मुली—यह भी एक प्रकार का नग है। यह कुछ पीत (जर्दी मायल) होता है। इसमें मैलापन रहता है। इसको दासा और रूक्ष भी कहते हैं। (३) कांसला—इसमें तेज और चमक कम होती है, तौल में बहुत हलका होता है और नरम पत्थर है। (४) बिल्लौर—इसमें भी चमक नहीं होती, तौल में कम होता है, लाली वा जर्दी मारता है। (५) कांच—अब तो कांच

विलायत में बड़े स्वच्छ बनने लगे हैं। कांच के झूठे नग बन कर अंगूठी इत्यादि में जड़े हुए बहुत बिकते हैं, देखने में भी सुन्दर होते हैं, तौभी कटोरी पर कलई करके जमाए बिना उनमें भी चमक कम रहती है। यह सब नगों से नरम होता है।

खोटे और खरे की पहिचान बड़ी कठिन है। हां, सान पर रखने से यह ज्ञात हो जाता है। हीरे को शूद्रवर्ण का हीरा ही खुरुच दे सकता है, पर हाथ के बल से यह रगड़ नहीं आ सकती और दूसरे नगों पर हीरे की रगड़ आ जाती है। इस रीति से खोटे खरे नगों की पहिचान हो सकती है।

बड़े हीरे

इस जगत में सबसे बड़ा हीरा पोरचुगल के महाराज के पास है। यह नई खान का हीरा है, पर अभी तक काटा छांटा नहीं गया है। जब यह मिला था तब कुछ और भी बड़ा था। पर जिस भृत्य ने इसे पाया था उसने परीक्षा करने को एक उस पर चोट मारी जिससे वह कुछ टूट गया। तो भी उसकी तौल अब १६८० केरात अर्थात् लगभग ३३६० रत्ती है। इस अवस्था में भी इसका दाम ३० करोड़ रुपए से अधिक है।

एक दूसरा बड़ा प्रसिद्ध हीरा रूस के सम्राट के राजचिन्ह (Sceptre) में लगा हुआ है। इसकी तौल ७७९ केरात अर्थात् १५५८ रत्ती है। यह हीरा पहिले हिन्दुस्तान के एक द्वीप में, जिसका नाम मालाबार है, एक देवमूर्ति की एक आंख में लगा था। एक फरासीसी मनुष्य, जो पहिले वहां की सरकारी सेना में नौकर था, नौकरी छोड़ कर उस मन्दिर का पुजारी हो गया था और वहां से वह हीरा चुरा कर अंगरेज़ी राज्य में चला आया। मन्दराज में उसने इस रत्न को किसी कप्तान के हाथ २०००० रु० को बेच डाला। फिर एक यहूदी ने ६७०००० रु० देकर उसे मोल लिया और अन्त में सन् १७६६ में एक यूनानी सौदागर ने इसे नीलाम कर दिया, जिसे रूस के महाराज ने मोल ले लिया।

यह कबूतर के अण्डे के बराबर है और इसका आकार भी चिपटे अण्डे के सदृश है।

कोहनूर का वृत्तान्त तो पाठक पढ़ही चुके हैं। उसको फिर लिखना अनावश्यक है।

हैदराबाद के निज़ाम के पास भी एक बड़ा हीरा है जिसकी तौल ३४० केरात अर्थात् ६८० रत्ती है।

और भी कई बड़े रत्न हैं। उनका विवरण यहां अरोचक समझ कर नहीं दिया गया।

रङ्गीन हीरों में दो बड़े नामी और प्रसिद्ध हीरे हैं। एक हरे रङ्ग का हीरा है जिसकी तौल ३१ केरात अर्थात् ६२ रत्ती है। यह ड्रेसडन के संग्रह (Dresden collection) में रक्खा हुआ है। दूसरा नीले रङ्ग का ठीक नीलम के सदृश है। यह तौल में ४४ केरात अर्थात् ८८ रत्ती है, जो होप के संचय (Hope collection) में वर्तमान है। इसका रङ्ग ऐसा गहिरा है कि कोई कोई इसे नीलम ही समझते हैं, पर यह वास्तव में हीरा ही है।

हम लोग सुना करते हैं कि हिन्दुस्तान में कई कारीगरों ने मिश्री के हीरे ऐसे बनाए थे कि अच्छे अच्छे जौहरी तक धोखा खा गए थे। यदि मक्खी उन पर न बैठती, अथवा पानी में वे न गल सकते, तो अवश्य वे सच्चे हीरे माने जाते। पर आधुनिक विज्ञानशास्त्रज्ञ महानुभावों ने मिश्री के योग से सचमुच के सर्वगुणसम्पन्न हीरे बना लिए हैं। पाठकों को बड़ा आश्चर्य होगा, पर यह सत्य है। हां, अभी ये हीरे छोटे कणवत् बने हैं, बड़े हीरे अभी नहीं बनाए जा सकते हैं। क्या आश्चर्य है कि कुछ समय में बड़े 'थान' भी हीरों के बनाए जा सकें। जब उनकी बनावट का तत्व विदित हो गया तो अब कठिनाई थोड़ी रह गई है। इस विषय पर किसी समय पृथक लेख पाठकगण के सम्मुख उपस्थित करूंगा।

ठाकुरप्रसाद।

प्राचीन भारतवासियों का पहिरावा

पाठक! आपने किसी कोटपतलूनधारी बाबू को यह कहते सुना होगा "हमारे बाप दादे तो असभ्य थे, एक धोती लपेटे नंगे फिरा करते थे, तो क्या हम भी उनकी चाल चलें", अर्थात् उनके मत में कोई पहिरावा इस देश का नहीं है, सब विदेशी हैं।

सबसे प्रथम बकनन हॅमिल्टन (Buchnan Hamilton) ने अपने "ईस्टर्न इण्डिया" नामक पुस्तक में यह सम्मति प्रगट की कि प्राचीन हिन्दू जाति सिले हुए वस्त्र के व्यवहार से पूर्णतया अनभिज्ञ थी, उनका प्रचार मुसलमानों के आक्रमण के पश्चात् हुआ। तब से म्योर (Miur) और वाट्सन (Watson) प्रभृति यूरोपीय विद्वानों द्वारा इस का पोषण होता आया; किन्तु जिस आधार पर यह सम्मति स्थिर की गई वह दृढ़ नहीं प्रतीत होती। इसकी सम्यक् विवेचना के लिये दो द्वार उपलब्ध हैं, (१) प्राचीन ग्रन्थ और (२) प्राचीन मूर्त्तियां।

वेदों से वस्त्रों के उस समय किसी रूपविशेष में व्यवहृत होने का पता नहीं चलता. कदाचित् सर्वसाधारण में धोती इत्यादि के धारण करने का ही अधिक प्रचार था। कर्नल टेलर मुक्तकण्ठ से कहते हैं, "चलने, बैठने और लेटने में इससे बढ़ कर सुगमताप्रद पहिरावे का आविष्कार करना असम्भव है"। सिकन्दर के साथियों को २२०० वर्ष पूर्व, उसी पहिरावे का सर्वसाधारण में प्रचार देख पड़ा था जो आज दिन प्रचलित है। किन्तु अब यह प्रश्न उपस्थित होता है कि सर्वसाधारण की भांति क्या राजा और उनके मन्त्रिवर्ग तथा दूसरे उच्चश्रेणी के मनुष्य भी धोती और चादर ही पर संतोष करते थे? ऐसी एकरूपता तो कदाचित् असभ्य से असभ्य जातिओं में भी होनी असम्भव है, तो फिर 'हिन्दू' ऐसे उन्नतिशील लोगों के विषय में, जिन्होंने 'जाति-भेद' की प्रथा स्थापित की, यह अनुमान कहां तक यथार्थ होगा? इस विषय में प्रमाणों का सर्वथा अभाव भी, जैसा कि कुछ लोगों को भ्रम है, नहीं है।

ऋग्वेद में, जिसका समय साधारण अटकल से ईसा से २००० वर्ष पूर्व निर्धारित किया गया है, सूई और सीने का उल्लेख है (सिव्यतु अपह शूच्य छेद्यमानय ॥ २।२८८ ॥)। मूल शब्द "शूची" है जिसके लिये यह अनुमान बांधना कि उससे कांटे या और किसी नोकीली वस्तु से अभिप्राय है, उपहासजनक होगा। यह भी विचार करने का स्थल है कि प्राचीन आर्य्य लोहे के शस्त्र इत्यादि बनाने में कुशल होकर भी सूई से पूरे अनभिज्ञ बने रहते। कर्नल टेलर के इस कथन के प्रत्युत्तर में, कि प्राचीन 'हिन्दू-जाति में दरज़ी का होना प्रामणित नहीं है और न उनकी भाषा में इसके लिये कोई शब्द हैं', यह वक्तव्य है कि अमरसिंह के कोष में, जो ईसा से पूर्व का माना जाता है, दो शब्द दरज़ी के लिये पाए जाते हैं,—एक "तुन्नवाय" और दूसरा "सौचिक" (तन्तुवायः कुविन्दः स्य. त्तुन्नवायस्तु सौचिकः—अमरकोष)। इस दूसरे शब्द की व्याख्या पाणिनि के सूत्रों में भी विद्यमान है। उशनस के प्राचीन धर्म्मशास्त्र में वैश्य और शूद्रा के संयोग से उत्पन्न को, एक भिन्न जाति में विभाजित करके 'सीना' और दूसरे हाथ के काम उनके निर्वाह-हेतु स्थिर किए हैं। वे उस समय "शौचो" कहलाते थे।

रामायण, महाभारत और अन्यान्य प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों में ऐसे ऐसे पहिरावों का वर्णन है जो कदापि बिना सूई की सहायता के नहीं बन सकते। उदाहरण-स्वरूप मैं यहां पर कुछ संस्कृत शब्दों को उद्धृत करता हूं, जो भिन्न भिन्न पहिरावों को सूचित करते हैं—जैसे, (१) कंचुक, (२) कञ्चुलिक, (३) अंगिका, (४) चोल्लक, (५) चोल, (६) कुर्पासक, (७) अधिकाङ्ग और (८) नीवी, इत्यादि। इनमें से प्रथम के विषय कुछ कहना आवश्यक है।

इस शब्द (कञ्चुक) का अर्थ इस प्रकार किया गया है—"सैनिकों का कुर्त्ते की भांति एक पहिराव"। 'सन्नाह' को, जिसका प्रयोग लोहे के कवच और सूत के बने दोनों प्रकार के पहिरावे के किया जाता है, इस शब्द का पर्य्यायवाची लिखा देख बहुत से आधुनिक कोषों में इस कञ्चुक का अर्थ इस प्रकार कर डाला गया है—"वाणों से रक्षा-निमित्त लोहे का एक पहिराव"। किन्तु इस से प्राचीन काल में सूत के बने पहिरावों से भी अभिप्राय था, यह बात इसका व्यवहार सैनिकों के अतिरिक्त अन्य श्रेणी के मनुष्यों में भी दिखा देने से प्रामाणिक हो जायगी। युधिष्ठिर के राज्याभिषेक के समय ऋषियों का "कञ्चुक और पगड़ी धारण करना महाभारत में वर्णित है। विचक्रुस्ते सभां दिव्यां सोष्णीषां धृतकञ्चुकाः)। क्या ऋषिगण गम्भीर गम्भीर कवच धारण करके आए थे? और देखिए, राजाओं के अन्तःपुर-रक्षार्थ जो दंड नियत रहते थे, उन्हें "कञ्चुकी कहते थे, अर्थात् 'कञ्चुक' धारण करनेवाले। तो क्या वे सदैव लोहे के बखतर पहिने फिरा करते थे?

'कञ्चुक' से तात्पर्य्य आधुनिक जामे से है; राजाओं के मन्त्री और अनुचरगण प्रायः इसी वेश में रहते थे। अङ्गिका—इसका प्रचार अद्यापि दो एक प्रान्तों को छोड़ इस देश में है। यह एक प्रकार को कुर्त्ती होती है जिसको हिन्दी में "अङ्गिआ" कहते हैं। जिन्हें प्राकृत का ज्ञान है उन्हें यह समझते कुछ भी विलम्ब न लगैगा कि यह संस्कृत 'अङ्गिका' का अपभ्रंश है। क एक प्रसिद्ध सूत्र (कादीनां लोपः - वररुचि ॥२.२॥) के अनुसार अ में परिवर्तित होगया। आधुनिक शब्द 'अंगरखा' भी, यदि वह अंग + रक्षा का अपभ्रंश न हो तो इसी शब्द का एक परिवर्तित रूप है। चाल आधुनिक 'फतुई' के सदृश होता था। नीवी शब्द भी बड़े काम का है। यह इज़ारबन्द का नाम है जो घाघरे में डाली जाती है। यदि उस समय घाघरे नहीं थे तो इस नीवी की क्या आवश्यकता थी? यहां तक तो प्राचीन ग्रन्थों के आधार पर प्रमाणों की स्थिति हुई, अब देखिए प्राचीन प्रतिमाकार इस विषय में क्या कहते हैं।

यद्यपि सांची और अमरावती प्रभृति स्थानों की अधिकांश मूर्त्तियां नग्नावस्था या अर्द्ध नग्नावस्था में प्रदर्शित की गई हैं, किन्तु इनमें से कुछ ऐसी भी हैं जो इसके विपरीतता की साक्षी देती हैं। अमरावती की असंख्य नग्नमूर्तिसमूह में ऐसी मूर्त्तियां भी पाई जाती हैं जिनका पहिराव दरजी के अस्तित्व से सम्बन्ध रखता है। सांची के दोनों धनुर्धारियों के चित्र में, जिनमें से एक काशी के बौद्धराजा पिलियुक का है, चपकन प्रत्यक्ष है।* बुद्धगया के, जिसका समय 'सांची' से प्राचीनतर है, एक शिलाखण्ड पर दो मूर्तियां गले से पैर के अर्द्ध भाग पर्य्यन्त एक प्रकार के पहिरावे से सुसज्जित हैं जो ठीक आधुनिक 'जामे' के सदृश है।

'उड़ीसा' के प्राचीन अवशेषों में इससे दृढ़तर प्रमाण पाए जाते हैं। 'उदयगिरि' की गुफाओं में 'रानीनौर' नामक स्थान में ४ फ़ीट ६ इंच ऊंची एक मूर्त्ति चट्टान में कटी है, जिसपर एक चुस्त चपकन दिखाया गया है, जिसका दामन घुटनों से चार इञ्च नीचे लटकता है। एक पतला दुपट्टा बाएं कन्धे से आकर कटि को आवृत किए है, जिसका प्रचार आज दिन भी उसी प्रकार चला जाता है। कटि-प्रदेश में एक कटिबन्ध भी है जिस के बाएं ओर एक तलवार लटक रही है। इस मूर्त्ति का सिर खण्डित हो गया है, किन्तु जो शेष है उसमें पगड़ी का चिन्ह विद्यमान है। पैरों में लम्बे बूट भी दिखाए गए हैं। डा० राजेन्द्रलाल मित्र के मतानुसार इस मूर्त्ति की अवस्था २२०० वर्ष की अनुमान की गई है।†

पहिरावे की चाल विशुद्ध 'हिन्दू' है। कोई मनुष्य उसमें Chitón (चिटन), Chlamys (क्लमिस) या सिकन्दर के अन्य किसी सैनिकों द्वारा लाए

* Fergusson, plate xliii.

† Antiquities of Orissa.

हुए पहिराव से समानता दिखलाने का साहस नहीं कर सकता; यदि यह किसी प्रकार मान भी लिया जाय कि हिन्दू ऐसे स्वप्रथाभक्त लोग एक ऐसे पहिराव के, कि जिसका आविर्भाव किसी अन्य दूर देश में हुआ हो, देखते ही इस सीमा तक अनुकरण करने लगें कि उसे अपने शिल्पकार्य्य में स्थान दें। यद्यपि यह चपकन असीरियन (Assyrian) लोगों के पहिराव से किसी किसी अंश में समनाता रखता है, किन्तु मुख्य विभिन्नता बांह (आस्तीन) देखने से विदित हो जायगी। असीरियनों की आस्तीन टेहुनी पर्य्यन्त होती थीं, किन्तु इस चपकन की कलाई तक लम्बी है। हां, बूट वास्तव में आश्चर्य्यजनक है। कहीं किसी स्थल पर इस प्रकार का अन्य उदाहरण इस देश में प्राप्त नहीं है। 'अमरावती' के तीनो सैनिकों के चित्र भी प्रायः इसी वेश में हैं, किन्तु बूट का अभाव है।

अजण्टा गुफा की चित्रावली में संतो के एक साथ दो चित्र हैं, जिनमें से एक दहिने हाथ से एक हाथी का मस्तक स्पर्श कर रहा है और बांए में एक पात्र है। इसके शरीर पर एक पैर तक लम्बा वस्त्र पड़ा है, जिसकी बाहें पूरी और बहुत ढीली हैं। इन चित्रों के निर्माण का समय ईसवी ५ शताब्दी के लगभग है।

यह बात तो सत्य है कि ऐसे उदाहरण अधिकता से नहीं पाए जाते, किन्तु जो हैं वे इस विषय पर ध्रुव और संशयशून्य प्रमाण हैं। इस देश का जल वायु इस प्रकार का है कि वर्ष में नौ महीने किसी प्रकार का वस्त्र शरीर पर रखना सुखदायक नहीं है। इस बात का आगन्तुक योरोपियन भी अनुभव करते हैं। तो क्या आश्चर्य्य है कि इस देश के निवासी सामयिक प्रथा के अनुसार, जहां तक संभव होता, कम ही वस्त्रों का व्यवहार करते थे। यहां तक तो पुरुषों के पहिरावे का वर्णन हुआ। अब स्त्रियों के विषय में भी कुछ कहना आवश्यक है।

प्राचीन ग्रन्थों में, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, स्त्रियों के कई भिन्न भिन्न पहिरावों का उल्लेख है। किन्तु प्राचीन ग्रन्थों और मूर्त्तियों में इस विषय में परस्पर विरोध है। मि० फ़र्गुसन ने इस विषय में कहा है, कि स्त्रियों के पहिरावे का वर्णन करना कठिन है। इसका कारण उसका अभाव ही है। सांची और अमरावती की मूर्त्तियों में स्त्रियां टेहुनी और कलाई में आभूषण अधिकता से पहिने हैं, गले में माला या हार भी प्रायः है, किन्तु शरीर को आवृत करने को केवल एक मात्र गजरा कटि प्रदेश के नीचे लपेटा हुआ पाया जाता है।* और कहीं कहीं वस्त्रनामधारी पुरुषों की धोती के सदृश एक फेंटा भी देखने में आता है—इत्यादि।

अब यहां पर यह विचार करना है कि इस वेश का इस देश में स्त्रियों में प्रचार ही था या यह केवल एक साम्प्रदायिक प्रथा उनको इस रूप में प्रदर्शित करने की थी। मि० फ़र्गुसन का विश्वास प्रथम ही पर है। किन्तु इस पर हम लोगों को विश्वास क्यों कर हो सकता है। ऐसे समय में, हिन्दू लोग जब वे सामाजिक उन्नति में किसीसे पीछे न थे, तिमहले मकानों में रहते थे जैसा कि सांची के अवशेषों से प्रगट है, गाड़ी और सोने चांदी से विभूषित रथों पर निकलते थे, बने हुए वस्त्र अन्यान्य देशों को भेजते थे, जिनकी वहां प्रतिष्ठा होती थी,—तो कब संभव है कि उनकी रानी महारानी केवल एक गजरा या फेंठा धारण किए उन पर आधिपत्य रखती थीं। 'बौद्ध' और 'हिन्दू' दोनों के धर्म्मशास्त्र स्त्रियों को पटावृत रहने का अनुरोध करते हैं†। यदि नग्नता इस देश की प्रचलित प्रथा होती तो, वह स्त्री और पुरुष दोनों में समभाव से पाई जाती, किन्तु पूर्वोल्लिखित

* Tree and serpant worship, 92.

† नानुक्ता गृहान्निर्गच्छेत, नानुत्तरीया न त्वरितं व्रजेत, न [illegible] पुरुषं भाषेतान्यत्र वणिक्प्रव्रजितं वृद्धवैद्येभ्यः न नाभिन्दर्शयेत आगुल्फाद्वासः परिदध्यात् न स्तानौ विवृतौ कुर्य्यात ॥ इति शङ्खः ॥

नाग्निं मुखेनोपधमेन्नग्नां नेक्षेत च स्त्रियं ॥ मनु. ४-५३ ॥

प्रमाणों के अनुसार यह सिद्ध नहीं होता। संसार की असभ्य जातियों में पुरुष और बालक बहुधा नंगे फिरा करते हैं, किन्तु स्त्रियां उनकी और कुछ नहीं तो पत्तों ही से अपना शरीर ढाकती हैं, सो यह निष्कर्ष इन मूर्त्तियों से निकालना कि स्त्रियों में उस समय नग्नता प्रचलित थी, सर्वथा भ्रममूलक है। मेरी जान में तो प्रतिमाकारों ने उनके शरीर की बनावट ही दिखाने के हेतु उन्हें इस अवस्था में निर्माण किया है। इसका एक उदाहरण लीजिए। अमरावती के उस वृहत शिलाखंड में, जो इस समय कलकत्ते के म्यूज़ियम में है, मायादेवी का चित्र है, जो एक गद्दे पर सोई हुई हैं, सिरहाने बड़ा तकिया भी है, सेवा में कई शस्त्रधारी पुरुष, और दासियां चँवर लिए खड़ी हैं। किन्तु उनके शरीर पर गजरे के कटिबन्ध के अतिरिक्त और कुछ नहीं है*। इस प्रकार के उदाहरण मिश्र और यूनान आदि देशों मे भी पाए जाते हैं। अतः यह सिद्ध हुआ कि पुराकाल में उसी प्रकार के पहिरावे प्रचलित थे जो प्राचीन ग्रन्थों में वर्णित हैं।

राजाओं के मन्त्री और अनुचरगण प्रायः जामा पहिनते थे। राजा और सैनिकलोग, जिस समय उन्हें कवच की कोई आवश्यकता न रहती थी, एक प्रकार का वस्त्र धारण करते थे जो आधुनिक चपकन के सदृश होता था। साधारण जन धोती और चादर ही पर सन्तोष करते थे। सिर पर एक पगड़ी प्रायः उनके इस वेश को पूर्ण करती थी। स्त्रियों में 'साड़ी' का ही अधिक प्रचार था। प्रतिष्ठित घर की स्त्रियों में 'घाघरा' और कुर्ती, और कभी कभी ऊपर से एक अंगिया भी धारण करने की रीति थी। जब वे कहीं बाहर जातीं तो इन सबके ऊपर एक चादर भी डाल लेती थीं।

यह हम मानते हैं कि बङ्गाल इत्यादि प्रान्तों में अधिकांश दरज़ीसमूह मुसलमान हैं (कदाचित् इसी बात ने मिस्टर हमिल्टन को भ्रांति में डाला हो) किन्तु यह सर्वत्र घटित नहीं होता। मिस्टर शेरिङ्ग (Mr. Sherring)* का कथन है कि इस देश में मुसलमान दरजिओं के अतिरिक्त बहुत से नीच हिन्दू भी इस व्यवसाय के अनुगत हैं, जोकि सात जातिओं में विभक्त हैं—(१) खीवास्तक, (२) नामदेव, (३) तांचार, (४) धनेश, (५) पञ्जाबी, (६) गौड़, (७) कण्टक, और एक आठवीं जाति ताक्लेरी भी बनारस में पाई जाती है।†

रामचन्द्र शुक्ल।

* Tree and serpant worship, 92.

बीजापुर का इतिहास

युसफ आदिल शाह

१४८९-१५१०

तुर्की सुलतान मुराद के छोटे लड़के यूसफ़ आदिल ने बीजापुर का राज स्थापित किया। सन् १४४३ ईस्वी में इनका जन्म हुआ था। सुलतान के वंश में अत्यन्त निर्दयीपन की यह प्रथा थी कि राजकुल में एक को छोड़ और जितने राजकुमार होते सब मार डाले जाते थे। इसी प्रथा के अनुसार सुलतान मुहम्मद के सिंहासन पर बैठते ही उनके जितने सहोदर भाई थे सबको मार डालने की उन्होंने आज्ञा जारी की। जिन लोगों के मारने की आज्ञा जारी हुई थी, उन्हीं में से एक का नाम यूसफ़ था। यूसफ़ की माता ने अपने बच्चे की जान बचाने के लिये अनेक प्रयत्न किए, पर भाग्यवश उसकी एक भी कला काम न आई। निदान उन्होंने लाचार हो यह युक्ति की कि फारस के रहनेवाले एक व्यापारी को जिसका नाम इमामुद्दीन था और जो कुस्तुनतुनिया में रहता था, सहायता से अपने लड़के यूसफ़ के बदले किसी और लड़के को राज के जल्लादों को सौंप अपने लड़के को उसी व्यापारी को सौंप दिया।

* Hindu Castes and Tribes of Benares.

† डाक्टर राजेन्द्रलाल मित्र के लेख के आधार पर।

व्यापारी ने उसकी जान बचाने की उसकी माता से प्रतिज्ञा कर ली थी, इसलिये इमामुद्दीन ने युसफ़ को फ़ारस के राज्य में ले जाके उसके पढ़ने लिखने का अच्छा प्रवन्ध कर दिया। वहां भी युसफ़ की पहिली बातें प्रकाश हो गई। इससे वह बिचारा फिर बड़ी विपत्ति में पड़ा। अन्त ज्यों त्यों अपनी जान बचा के यूसफ ने एक रात यह स्वप्न देखा कि जो तू भारतवर्ष में चला जाय तो तेरी जान बच जायगी। इस स्वप्न को देख सन् १४६१ ई० में वह फारस से भारत के रत्नगिरि नामक स्थान में आया। उस समय वह १७ वर्ष का था। जैसा वह रूपवान था वैसा ही विद्वान भी था। फारस के रहनेवाले किसी सौदागर ने उसे रत्नगिरि से बहमन की राजधानी बिदूर में बुला लिया। वहां युसफ़ वज़ीर मुहम्मद गवान की मेहरवानी से फ़ौज में भर्ती हो गया और उसकी तरक्की भी जल्दी हो गई। बिदूर से बहाउ में जाके वह १५०० सवारों पर अफ़सर हो गया और उसका नाम आदिल खां हुआ। इसके उपरान्त मुहम्मद गवान ने उसे दौलताबाद का गवर्नर बना दिया। पीछे मुहम्मद के मर जाने पर बीजापुर के बहमनी राजा के यहाँ उसे कोई सर्दारी मिली। ईश्वर की दया से उसने सन् १४८९ ई० में पराधीनी की बेड़ी उतार स्वाधीन हो स्वयम् राजा बन बीजापुर में अपना राज्य स्थापन कर लिया। १४९८ ई० में सुलतानों ने दक्षिण के देशों को आपस में बांट लिया। उस समय गोआ और उसकी आस पास की जगह यूसफ़ के बांटे में आई। उसी समय वास्को-डी-गामा भारतवर्ष का नया रास्ता निकाल कर्नाटक के तट पर आ गया था। उस समय यूसफ़ बीजापुर का अधीश्वर था। गोआ के लिये उसकी पुर्तगीज़ों से खूब लड़ाई हुई। १५०९ ईसवी में पुर्तगीज़ों के राज्य प्रतिनिधि अलबुकर्क ने बीजापुर के विपक्ष में बिजयनगर के राजा के साथ सन्धि करली। दूसरे वर्ष अलबुकर्क ने बीजापुर विजय कर, गोआ में पुर्तगीज़ों की पूरी अमलदारी जमा ली।

दो सौ वर्ष के बीच में बीजापुर की रियासत में नौ मनुष्यों ने राज्य किया, पर उनमें से किसी एक ने भी सुख से राज्य न भोगा। उसकाल में ऐसा समय ही न था कि निर्द्वन्द कोई कहीं का राज्य करता। नित्य नए लड़ाई झगड़े टण्टे बखेड़े लगे ही रहते थे। ऐसे समय में उसे अपना राज्य संभालना कठिन हो रहा था। शीया और सुन्नियों में आपस की लड़ाई, पड़ोसी सुलतान से लड़ाई, बिजयनगर के हिन्दू राजाओं से लड़ाई, मुग़लों के साथ लड़ाई;-ऐसे मौके पर बीजापुर के स्वामी को अपने राज्य के सुधार का कभी मौका न मिला।

शीया और सुन्नी।

युसफ़ आदिलशाह की, फारस में रह कर और उसी ठौर पढ़ लिखकर शीया सम्प्रदाय पर भक्ति हो गई थी। इसीसे उन्होंने अपने राज्य में शीया सम्प्रदाय चलाना चाहा था। पर इसमें बड़े झगड़े उठे। उनकी सेना में जो तुर्क थे, वे लोग सुन्नी थे और राज्य के आस पास के सुलतानों को भी शीया का पक्ष न था। इसीसे दक्षिण में उस समय जो लड़ाइयां हुई थीं उन्हें धर्म्मयुद्ध कहना चाहिए। अहमदनगर, गोलकुण्डा और बिदूर के सुलतानों ने उन से द्वेष मान लड़ाइयों की जिनसे बड़े बखेड़े हुए और बड़े परिश्रम से यूसफ़ ने अपना पल्ला छुड़ाया। यूसफ़ बहुत कट्टर शीया भी न था। उसने अपने राज्य में तो शीया सम्प्रदाय स्थापित किया। पर सुन्नियों के धर्मकर्म में विशेष हस्तक्षेप भी नहीं किया। धर्मकर्म में उसकी उदारबुद्धि थी। वह कहा करता कि "जैसे स्वर्ग में अनेक भवन हैं, वैसे ही इस्लाम के अनेक सम्प्रदाय हैं। हिन्दुओं पर भी उसकी विशेष दया थी। उसने एक महाराष्ट्रिन से विवाह कर हिन्दुओं में भी अपनायत बना ली थी।

मरहठिन के गर्भ से जो पुत्र जन्मा उसका नाम इस्माइल था। यूसफ़ की मृत्यु के उपरान्त इस्माइल आदिलशाह गद्दी पर बैठे। वह तो शीया थे

पर उनके मन्त्री कमाल ख़ां सुन्नी थे। राजा और वज़ीर में आपस में अनबन हो गई और नित्य की खटपट चलने लगी। वज़ीर के जी में था कि शाह को मार कर आपही गद्दी दबालें और राज्य में फिर से सुन्नी सम्प्रदाय फैला दें।

कुछ दिन में अवसर पाकर कमाल ख़ां ने सुलतान और उसकी माता को राजमहल में नजर कैद रख छोड़ा। रानी ने अपने को और अपने पुत्र को कैद होते देख कमाल ख़ां को मरवाने के लिये किसी एक बड़े विश्वासी तुर्क को लगाया। वह तुर्क मक्का जाने का बहाना कर कमाल ख़ां से भेंट करने गया। ज्योंही मन्त्री ने तुर्क के हाथ में पान देने के लिये अपना हाथ बढ़ाया त्यों ही जैसे बाज लवा पर झपट के उसे अपने चंगुल में फंसा लेता है, वैसे ही उसने चट उसकी कलाई पकड़ अपनी ओर खींच कर ऐसी तलवार चलाई कि एक ही हाथ में कमाल ख़ां का ढेर कर दिया। फिर तो उस तुर्क पर दरबारी टूटी पड़े और उसके उसी जगह टुकड़े टुकड़े उड़ा दिए गए। मन्त्री और उसके मारनेवाले दोनों ही की लोथ एक ही स्थान में ढेर हो गई।

सुलताना के समान मन्त्री की माता भी साहसवती और अपनी बात की पक्की थी। उसने अपने बेटे की स्थान पर पोते के बैठाने की दृढ़ प्रतिज्ञा की। पोते का नाम सफ़दर ख़ां था। उन्हों ने सब लोगों में जाहिर कर दिया कि उसका लड़का कमाल ख़ां मरा नहीं है, फकत उसे चोट आई है। मरे हुए को गहिना कपड़ा पहिना कर पलङ्ग के ऊपर बरामदे में ऐसे ढङ्ग से बैठा दिया मानों वे लोगों की सलाम लेने के लिये कायदे से बैठे हुए हैं। इधर सफ़दर ख़ां थोड़ी सी फ़ौज लेकर महल पर हमला करने चले। बेगम और दिलशाद नाम की एक औरत, जो बेगम साहेबा की सखी थी, दोनों लड़ने के लिये सिपाहियाने पोशाक से दुरुस्त हो, पाले हुए कुत्तों को उत्तेजित करने लगीं। उसके पास उस समय बहुत आदमियों की मदद तो न थी, पर भाग्यवश बाहर से शीया दल के पक्षपाती लोगों का एक दल उसी समय उसकी सहायता को मौके से आ पहुंचा। इस मदद को पाके बेगम के जी में भी ढाढ़स हो गया। ज्योंही सफ़दर ख़ां अपनी सुन्नियों की फ़ौज लेकर महल पर हमला किया ही चाहते थे, उसी समय ऊपर से गोला गोली और पत्थर बरसने लगे। शीया और सुन्नियों में घमासान लड़ाई हुई। इस युद्ध में बहुत लोग मरे कटे, अन्त सफ़दर ख़ां द्वार तोड़ कर भीतर आंगन में जा घुसे। भीतर जाते ही औचक उनकी एक आंख में तीर लगा, जिससे वह काने हो गए। यह देख चट एक दीवार की ओट में हो उन्होंने अपनी जान बचाई। उसी दीवार के ऊपर बालक सुलतान बैठे हुए थे। इस्माइल ख़ां ने अपने शत्रु को ताक के ऊपर से एक भारी पत्थर फेंका कि उसी पत्थर से सफ़दर ख़ां की जान गई। इस झगड़े के मिट जाने के पीछे बेखटके इस्माइल राज्य करने लगे।

इस्माइल के राज्य के समय, या मुसलमान सुलतानों के साथ, इनकी जो लड़ाइयां हुई थीं उनमें लिखने लायक कोई बात नहीं है। उनका धर्म शीया था, इससे उनकी इज्जत के लिये फारस के शाह ने अपना एलची बीजापुर भेजा था।

महाक्रोधी मल्लू

इस्माइल के पीछे उसका लड़का मल्लू वारिस हुआ। मल्लू जैसा क्रोधी वैसे ही कड़े मिज़ाज का भी था। राज्य को बरबाद होते देख मल्लू की सगी दादी का अपने पोते पर से जी फिर गया, और बुढ़िया अपने पोते को राजगद्दी पर से उतारने की सलाह करने लगी। छ महीने राज्य करने पीछे उसके छोटे भाई इब्राहिम ने मल्लू को अन्धा बना के राजगद्दी से उतारा और उसपर आप ही बैठा।

इब्राहिम सुन्नी सम्प्रदायी था, इस से वह सुन्नियों का मान बढ़ाता था और शीया सम्प्रदाय को नीचा दिखाता और निकाला करता था; यहां तक उसने

तंग किया कि बहुतेरे शीया उसका राज छोड़ के विजयनगर में जा बसे। सन् १५५७ में इसकी मृत्यु हुई। मृत्यु का कारण इनकी कुचाल ही थी। जिस समय यह बीमार हुआ और इसकी चिकित्सा के लिये जो हकीम बुलाए गए थे सभोंने इसके रोग को देख कर असाध्य बताया तो कितनों के हाथ पांव काटे गए और कितनों का सिर काटा गया। एवं अनेकों को हाथियों से कुचलवा कर उसने अपने स्वभाव की पराकाष्टा जग को दिखाई गई।

इब्राहिम
१५३४-१५५७

इब्राहिम ने जब तक राज्य किया तब तक बराबर राज्य में झगड़ा ही फैला रहा। चौदहवीं सदी के ३० वर्ष के उपरान्त हक्का और बुक्का नामके दो भाइयों ने शृङ्गेरी मठ के मालिक की सहायता से विजयनगर की नेव डाली। सन् १३३५ ईसवी में पहिले पहिले हक्का हरिहरराय विजयनगर की राजगद्दी पर बैठा। थोड़े ही दिन में फिर हसन-गंगू नाम के एक पठान ने अपना नाम अलाउद्दीन रख के दक्षिण में एक बड़ा मुसलमानी राज्य स्थापित किया। हसन गंगू का एक ज्योतिषी पर इतना बड़ा एहसान था कि अपनी कृतज्ञता दिखाने के लिये उसने अपनी 'बिरहमन' पदवी रक्खी और उसके पीछे उसका वंश बिरहमनी के नाम से पुकारा गया। विजयनगर और बिरहमनी सुलतानों में लगातार लड़ाई झगड़ा होता रहा, पर तो भी आपस का झगड़ा न मिटा। जिस वक्त इब्राहिम बादशाह था, उसी समय विजयनगर की गद्दी पर देवराय नाम का एक राजा था और तिम्मा उसके मन्त्री का नाम था। देवराय की मृत्यु के समय उसका कोई जवान लड़का न था जिसे वह अपना उत्तराधिकारी बना जाता। इस लिये तिम्मा अपने मन के एक लड़के को गद्दी पर बैठा आपही राज करने लगा। जब राजा जवान हुआ, तब तिम्मा ने उसे मरवा के अपने मन के दूसरे किसी लड़के को गद्दी पर बैठा दिया। योंहीं लगातार तीन लड़कों को गद्दी पर बैठाया, पर जब वे बड़े होते थे तब ही मरवाके चट वह दूसरे को राजा बना लिया करता था। अन्त तिम्मा ने देवराय की पोती से अपने लड़के रामराय का व्याह कर चट उसीको राजा बना दिया। तिम्मा की भीतरी इच्छा थी कि राजा के कुल का नाश कर डालूं। चाहे यह लालसा उस की पूरी न हुई, पर तो भी उसने बहुत कुछ अपने मन का सा कर लिया। अन्त उस राजवंश में पशु समान तिम्मल नामी एक मनुष्य और लड़की के वंश में एक राजकुमार रह गए।

मिलने को तो रामराय को राज मिल गया, पर निष्कण्टक होके वह राजसुख न भोगने पाया। गद्दी पर बैठते ही उसका दम्भ और गर्व बढ़ गया। प्रजा इस स्वभाव से चिढ़ कर बागी हो गई और राजा के विरुद्ध आपस में चुप चाप सलाह करने लगी, कि न जाने यह कहां के बनौआ राजा हम लोगों की राजगद्दी पर आ बैठे हैं। इससे हम लोग इन्हें उठाके अपने मन का राजा बनाना चाहते हैं। जब प्रजा के जी की सुनगुनी रामराय को लगी, तो वह चट, बचे हुए राजकुमार को राजगद्दी पर बैठा आप उसका दीवान हो गया, और धीरे धीरे अपने बैरियों का ध्वंस कर, राजा को हटा फिर आपही राजा बन बैठा।

इससे भी राज्य में शान्ति न हुई। इधर रुक-चिल्ली तिम्मल ने उपद्रव मचाया। भीतरी उसका मन भी था कि मैं ही राजा हो जाऊं। इससे तिम्मल और रामराय में खूब युद्ध होने लगा। बहुत से लोग रामराय के पक्ष पर हो तिम्मल से लड़ने लगे। इस हालत को देख तिम्मल ने बीजापुर के सुलतान इब्राहीम को बहुत सा धन रत्न भेज उससे मदद मांगी।

इब्राहीम बड़ी खुशी से इस भेट को मंजूर कर तिम्मल की मदद के लिये अपनी सेना के साथ विजयनगर में आ पहुंचा। बड़ी भावभक्ति से तिम्मल

ने इब्राहिम का स्वागत किया। यह बात देखते ही हिन्दुओं में हलचली पड़ गई। हिन्दू राज्य पर मुसलमानों की दस्तन्दाजी किसीसे सही न गई। रामराय और उनके पक्ष के लोगों ने तिम्मेल से कहा कि यदि तुम हमलोगों का कहना माना ता हमेशा हमलोग तुम्हारे तावेदार बने रहेंगे। इन बातों में लुभा के तिम्मेल ने बड़ी मिन्नत खुशामद से और लाखों रुपया भरना भरके बड़ी कठिनाई से इब्राहिम को लैाटाया। ज्यों ही मुसलमान कृष्णा नदी के पार उतरे, त्योंहीं इधर प्रजा फिर आंख दिखाने लगी। हल्ला उठा कि सब प्रजा बलवा कर के तिम्मेल को गिरफ़ार किया चाहती है। यह सुनते ही तिम्मेल के पाओं तले से धर्ती फिसलने लगी, आकाश पाताल सूझने लगा, मारे घबराहट के वह बावला सा हो गया, घोड़े हाथियों की आंखें उखड़वाने लगा, राज-भण्डार के जेवरों को चक्की में डाल पिसवाने और तोड़ फोड़ करने लगा। योंहीं घोर उन्मत्तों की सी काररवाई करने लगा। इसी अवसर में वैरियों ने चाहा कि राजमहल पर हमला कर पागल तिम्मेल को पकड़ लें। यह सुनते ही इस घोर विपद से बचने के लिये, बिना कुछ सोचे बिचारे चट पट उसने आत्महत्या कर डाली।

बैरी के मरते ही निर्भय निष्कण्टक हो रामराय निर्द्वन्द राज्य करने लगे। भाग्य ने ऐसा पलटा खाया कि गई हुई पिछली सम्पदा फिर लैाट आई। यह देख मुसलमानों को बड़ी ही डाह हुई और जी में भय भी उत्पन्न हुआ।

अली आदिल शाह

१५५७-१५८०

इधर इब्राहिम के पीछे बीजापुर के सिंहासन पर अली आदिल शाह बैठे। पहिले ता उन्होंने रामराय से ऐसी मित्रता बढ़ाई कि इसके पहिले कदाचित् ही किसी हिन्दू मुसलमान में यों दूध-बूरे सा परस्पर मेल हुआ होगा। जब रामराय का लड़का मरा और विजयनगर में आदिलशाह मातमपुर्सी के लिये आए, उस समय विजयनगर के राजा और रानी ने आदिलशाह को अपना लड़का करके माना, और वैसा ही बर्ताव किया जैसा पिता पुत्र में होना चाहिए। अहमदनगर से अली की जब लड़ाई हुई, तब रामराय बीजापुर सुलतान की सहायता के लिये पहुंचे थे।

दिनों दिन हिन्दुओं की शेखी बढ़ने लगी। युद्ध विजय करने के उपरान्त रामराय मुसलमानों को तृणवत् मानने लगे। मन ही मन सोचते कि अब मेरे मुकाबले भारतवर्ष में ऐसा कोई नहीं जो मेरी वार संभाले। इसी घमण्ड में फूल मसजिदों में घोड़साल बना दीं, सुलतानों को अपना गुलाम समझने लगे, उनके दूतों का अपने दरबार में मनमाना अपमान करने लगे। इनके ऐसे कर्म्मों को देख सुन जितने सुलतान थे, सबके सब हिन्दुओं पर ऐसे चिढ़े कि आपस का बैरभाव छोड़, लड़ाई झगड़े से मुंह मोड़, अहमदनगर, बीजापुर और गोलकुण्डा, इन स्थानों के अधीश्वर बीजापुर में आ जमे। वहां से सब सुलतान एक साथ मिल विजयनगर पर हमला करने के लिये कृष्णा-नदी पार हुए। नदी तट पर आके देखा कि उस पार रामराय की फ़ौज नदी के घाट को रोके पड़ी हुई है, बैरी का मोर्चा तोड़ नदी पार होना सहज बात नहीं है। तब सुलतानों ने एक नई युक्ति निकाली। वे उतारे के घाट को छोड़ के नदी के किनारे किनारे कुछ दूर तक आगे बढ़े, माना नदी पार उतरने के लिये कोई दूसरा गम खोज रहे हैं। यह देख रामराय के सेनापति भी अपना ठौर छोड़, जिधर बैरी की सेना जा रही थी, उसी ओर अपनी सेना को लिवा ले चले। लगातार तीन दिन नदी के इस पार मुसलमानों और उधर हिन्दुओं की सेना चली गई। तीसरी रात को एकाएकी मुसलमान फ़ौज पीछे लैाट पड़ी और बेखटके नदी पार उतर गई। दूसरे दिन रामराय की सेना से पांच कोस की दूरी पर मुसलमानी सेना ने अपना पड़ाव डाला।

तालीकोट की लड़ाई—सन् १५८५

सवेरा होते ही दोनों दल का मुकाबला हुआ। दोनों दलवाले तोप, बन्दूक, गोली आदि अस्त्र शस्त्र से लैस थे। मारे क्रोध के हिन्दुओं की वाहिनी ने मुसलमानी फ़ौज के दोनों पक्ष ध्वंस कर डाले, पर बीच वाले अटलभाव से युद्ध करते रहे। बीच की सेना के नायक अहमदनगर के 'दिवाने' सुलतान, हुसेन निज़ाम शाह, बड़ी वीरता के साथ रामराय के कटक पर आ टूटे। इनके साथ जो तोप थी, उसमें पैसे भरकर उसे हिन्दुओं की ओर छोड़ा। इस तोप की मार का ऐसा प्रभाव पड़ा कि हिन्दुओं का कटक ठण्ढा पड़ गया, योधाओं की हिम्मत टूट गई, युद्ध करने का हौसला जाता रहा। रामराय अपनी पालकी में बैठ वाहकों से बोले कि पालकी को उठा कुछ आगे ले चलो। जैसी आज्ञा मिली, विचारे कहारों ने भी वैसाही किया। कुछ दूर जाके कहार पालकी रख आप सब भाग गए। उसी समय घोड़े पर सवार हो ज्योंही रामराय भागा चाहते थे, त्योंही चट मुसलमानों ने घेर लिया और गिरफ़ार करके हुसेन शाह से पास हाजिर कर दिया। हुसेन शाह ने भी अपने 'दिवाना' उपाधि के अनुसार जल्लादों को रामराय का सिर काटने की आज्ञा दी। आज्ञा पाते ही सुलतान के सेवक रामराय का मुण्ड काट भाले से गोद फ़ौज में ले घूमे। राजा की ऐसी गति देख सेनामात्र की हिम्मत टूट गई, और जिसे जिधर मौका लगा वह भाग निकला। इसी तालीकोट की लड़ाई में दोनों पक्ष के लेगों की दो लाख मनुष्यों की भीड़भाड़ थी। इस लड़ाई में हिन्दुओं के पक्ष के बहुत लोग मारे गए और जीतनेवालों के हाथ लूट का बड़ा माल मिला। अन्त जिनकी जीत हुई थी, उन लोगों ने नगर में घुस कर मुसलमानी विजयपताका उड़ाई और मनमानी लूट मचाई। उस स्थान में जितने मकान थे सब तोड़ फोड़के गिरा दिए और हिन्दुओं की जो कुछ कीर्ति थी, सब मिट्टी में मिला दी। रामराय का कटा मुण्ड जयस्तम्भरूप से अहमदनगर में भेजा गया और उस स्थान में पत्थर की एक प्रतिमा बीजापुर में स्थापित की गई। इस पत्थर के सिर को कुछ दिन पहिले तक लोगों ने आर्क किले पर देखा था। तालीकोट की लड़ाई में विजयनगर का ध्वंस हुआ। विजयनगर इसके पीछे फिर न पनपा। विजयनगर का क्या ध्वंस हुआ, मानो दक्षिण में हिन्दुओं का भाग्यभानु सदा के लिये अस्त हो गया।

सन् १५०० ईसवी में अली की मृत्यु हुई। इमारतों के बनवाने में इन्हें सदा उत्साह रहता था। इन्होंने जुमा मसजिद, ताज बावली, नगरकोट, नहर आदि अनेक चीजें बनवाई थीं। उनके राज्य के अन्तसमय बादशाह अकबर के भेजे हुए कई एक गुप्तचर बीजापुर गए थे, पर क्यों गए थे इसे किसीने भी न समझा। इन दूतों की ऐसी शनि की दृष्टि बीजापुर पर पड़ी कि अन्त उन्होंने उसे मटियामेट ही करके छोड़ा। संसार में कभी किसीका एक सा दिन न रहा है और न रहेगा।

कार्तिकप्रसाद।

महाराज माधवराव सेंधिया, ग्वालियरनरेश

पाठकगण! हमारा विचार था कि हम आपको मध्यभारत के देशी राज्यों के शिरोमणि महाराज सेंधियानरेश का कुछ जीवनवृत्तान्त सुनाकर उनके उत्तम गुणों तथा प्रजावत्सलता का नमूना दिखलाते। परन्तु उनकी जीवनी का सच्चा वृत्तान्त संग्रह करने में बहुत ही विलम्ब जान, और एक विदेशी विद्वान द्वारा उनके उत्तम गुणों का गान सुनकर इच्छा हुई कि आपको उसी विद्वान द्वारा लिखित महाराज की जीवनी का संक्षेप वृत्तान्त सुनावें, क्योंकि इस समय यदि

हम स्वतः उनके गुणों का गान करें तो लोग समझेंगे कि उन्हींके अन्न से लालित पालित होने के कारण अधिक प्रशंसा की गई है। दूसरे, महाराज ने अपने राज्य के सरकारी कार्यालयों में देवनागरी अक्षरों के प्रचार करने की आज्ञा प्रकाशित करके जो अक्षय पुण्य लाभ किया है, उसके विपरीत बहुत से विपक्षीजन यह कहने को प्रस्तुत हो जावेंगे कि नागरी के प्रेमी होने के कारण महाराज की जीवनी लिखते समय उनके गुणों का ही केवल गान किया है, क्योंकि मनुष्य में गुण और दोष दोनों ही मिश्रित रहते हैं। इस कारण इस समय यही उचित जान पड़ा कि हम महाराज की पूर्ण जीवनी किसी दूसरे समय आपकी भेंट करें। इस समय केवल महाराज का चित्र तथा विदेशी विद्वान श्रीमान मिस्टर आई० एन० मालकम साहब बहादुर, एम० पी०, लिखित उनका चरित्र, जो एक विलायती पत्र में प्रकाशित हुआ है, भेंट करते हैं।

"श्रीयुत मान्यवर कर्नल सर माधवराव साहब सेंधिया आलीजाह बहादुर राज्य ग्वालियर, मेम्बर खान्दान मरहटा सेंधिया, उन पांच देशी महाराजों में से हैं जिनको राज्याभिषेक के समय आने का निमन्त्रण दिया गया था। आप और निमन्त्रित राजाओं की नांई, इसके पहिले इतनी लम्बी यात्रा करके न तो कभी इङ्गलैण्ड पधारे थे, और न आपने कभी राजराजेश्वर के दर्शन (जिनके राज्य के साथ आपको पूर्ण भक्ति है) किए थे। ये प्रतिभाशाली महाराज, जो एक परिश्रमी, सहानुभूति-प्रकृति रखनेवाले, उच्चश्रेणी के मरहटा सरदार हैं, नाना प्रकार के उत्तम गुणों से भूषित हैं। हर एक मनुष्य और जाति के लोगों को, जिनको शीघ्र ही आप से काम पड़नेवाला है, और जिनकी अतिथि सेवा शीघ्र ही श्रीमान् को प्राप्त होगी, श्रीमान् अपने प्रेम और भक्ति द्वारा मोहित कर लेंगे।

"महाराजा सेंधियानरेश २६ वर्ष के युवा सरदार हैं। अनुमान ८ वर्ष के हुए, जब युवावस्था होने पर आपको राज्य का पूरा भार सौंपा गया था। आपके पिता बृटिश सिंहासन के सदैव शुभचिंतक रहे। सन् १८५७ ई० के बलवे के समय जब उनकी सेना ने उनका साथ छोड़ दिया, और राजधानी पर अधिकार जमा लिया, उस समय आपने सरकार को, अपना जीवन तुच्छ समझ, ऐसी सहायता दी जिसको गवर्मेण्ट अब तक कृतज्ञतापूर्वक स्मरण करती है, और जिस समय देशी सेना की नसों में युद्ध के लिये रक्त संचरित हो रहा था, उस समय ऐसी सरकार के पक्ष में रहना, जिस का विजयी होना तुरन्त दृष्टिगोचर नहीं होता था, कोई सहज काम नहीं था।

"इन शुभचिन्तकता की आख्यायिकाओं में वर्तमान् महाराज साहब ने इस सावधानी के साथ शिक्षा पाई है कि जिसका आज यह मनोरंजक योग्य फल पैदा हुआ है कि आपको इससे बढ़कर और कोई अभिलाषा नहीं कि अपने पूज्य पिता के अनुकारी बनें और भारत सरकार और अपने सम्राट की प्रसन्नता प्राप्त कर सकें।

"भारतवर्ष के देशी अधिकारियों के विषय में उनके अभिमानी रत्नजटित आभूषण धारण करना और अनगिनत स्त्रियों के साथ भोग करना, पूर्वी स्तुति और अधिक विषय के आसक्त होना, लगभग अपढ़ होना, और इसी प्रकार के अन्य अवगुणों में पड़े रहना, इत्यादि ऐसे विचार विलायतवालों के हैं। इस कारण इन शंकाओं के निर्णयार्थ सेंधिया साहब की बाबत थोड़ी सी निज की जानकारी के अतिरिक्त इतना और कहना उचित होगा कि महाराज ऊपरवर्णित कुरीतियों से बिलकुल पवित्र हैं।

"जबसे आप राजगद्दी पर विराजे, तबसे आप को सदैव सर्वोच्च प्रबन्धकर्ता और सर्वोत्तम योधा होने में सफलता प्राप्त करने की आकांक्षा रहती है। वर्तमान अवस्था में राज्य के हर एक विभाग और मुहकमे के प्रबन्ध में आपको इतना अधिकार प्राप्त हो गया है कि छोटे से छोटे कार्य को जब तक

आप स्वयम् पूर्ण रूप से निरीक्षण न करलें, तब तक उसको राज्य में प्रचलित करने की आज्ञा कभी किसीको नहीं देते। इस अवस्था में वाइसराय के पीछे आपकी बुद्धिमत्ता बहुत ही आश्चर्यजनक है। आप श्रीमान् वाइसराय के बहुत ही बड़े प्रशंसक हैं। महाराज के राजकर्मचारी इस बात के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं कि जब से महाराज को पूर्ण अधिकार प्राप्त हुआ, तब से राज्य के प्रबन्ध में उत्तमरूप से प्रशंसायोग्य उन्नति हुई है।

"आप जिस समय दिन में राजनैतिक कर्तव्यों से अवकाश पाते हैं उस समय हाथ में छड़ी लेकर फ़ौज में जा पहुंचते हैं और स्वयम् कमाण्ड करने लगते हैं, तथा इस कार्य में कभी नागा नहीं होने देते। इस विद्या में भी आपने पूर्ण जानकारी प्राप्त की है और इसकी उत्तम रीति से प्रशंसा भी हुई है। ग्वालियर राज्य से बढ़कर इम्पीरियल सर्विस ट्रूप्स का रिसाला कदाचित् किसी ही स्थान में मिल सके। यह रिसाला आज्ञा पाने पर एक क्षण मात्र में जहां कहो वहां जाने को, और जिससे कहो उससे युद्ध करने को कटिबद्ध है। थोड़ा ही समय हुआ जब कि श्रीमान् वाइसराय को इन योग्य महाराज ने निमन्त्रित किया था। उस समय जो निम्नलिखित वाक्य श्रीमान् ने कहे थे, उनसे कितनी उच्च योग्यता और राजभक्ति टपकती है—

'दो समयों पर मैंने इस विषय में अपनी उत्तमता और अपना कर्तव्य समझा कि कुछ अपनी सेना देशान्तर, श्रीमती महाराणी की सेना के साथ, युद्ध-क्षेत्र में भेजूं; परन्तु यह उत्तमता इस दुःख में सम्मिलित है कि मैं स्वयम् रणभूमि में उपस्थित न हो सका। इस बात के कहने की मुझे आवश्यकता नहीं जान पड़ती कि मैं और मेरा कुल राज्य और राज सम्पत्ति श्रीमती की सेवा में, जहां कहीं और जिस समय आवश्यकता हो, उपस्थित हैं, और मेरा साहस उस समय प्रगट होगा जब मैं श्रीमती महाराणी विक्टोरिया के शत्रुओं से स्वतः (यदि सम्भव हुआ तो) सबसे आगे बढ़कर कार्य करूं और सदैव प्रत्येक कार्य में श्रीमती की सेना के साथ प्रसन्नता पूर्वक कार्य करने को उद्यत रहूं।'

"इसके पश्चात् मुझे यह कहते हुए और भी अधिक हर्ष होता है कि इन वाक्यों के कहने के पश्चात् महाराज ने चीनदेश के युद्धस्थल, पेकिन में संयुक्त सेनाओं के साथ कार्य करने की प्रतिष्ठा प्राप्त की, और अपनी स्वतः सहायता के अतिरिक्त एक राजकीय सहायता, अर्थात् होस्पिटेल शिप, अपने निज व्यय से उत्तम प्रकार सजा कर हमारी पेकिनस्थ फ़ौज के सुखार्थ उपस्थित किया था।

"राजधानी ग्वालियर अपने स्वामी की शिल्प-विद्याप्रियता के बहुत से चिन्ह और प्रमाण दर्शित करती है, अर्थात् सिवाय विक्टोरिया कालिज के उत्तम और विशाल भवन के, जो श्रीमती महाराणी विक्टोरिया के जुबिली महोत्सव के स्मरणार्थ तैयार हुआ था, वहां एक मिमोरियल अस्पताल भी है। इस अस्पताल के कमरे और उनके यन्त्र लन्दन के अस्पताल की नांई परिपूर्ण और सुसज्जित हैं, जहां साफ़ और सुथरी रोशनी और सब यथोचित सामान उपस्थित हैं*।

"देशी राज्यों में जेल का प्रबन्ध बहुधा घृणा-योग्य होता है। परन्तु महाराजा साहिब ने इसका भी एक उत्तम दृष्टान्त देकर यह दिखला दिया है कि जेल का प्रबन्ध यों होता है। कारागृह के चौक और शयनागार, तथा स्वच्छता को प्रबन्ध, और विशेषतः जेल के नियमों के बहुत ही उच्च और उत्तम होने का कारण यह है कि महाराजा साहिब का मस्तिष्क और हृदय राज्य की सेवा के लिये सदैव कार्य करते रहते हैं। कारागृह में जो क़ैदी हैं, वे पहिले या तो डाकू, लुटेरे या हत्यारे थे। जिस समय ये पकड़े गए, उस समय शिक्षा की गन्ध तक उनके कानों तक नहीं पहुंची थी। परन्तु उनकी

* मैं किसी दूसरे समय विक्टोरिया कालेज, मिमोरियल अस्पताल, जयेन्द्रभवन (महाराज के रहने का निवासस्थान) और क़िले के चित्र पाठकों को सरस्वती द्वारा भेंट करूंगा—लेखक।

यहां की शिक्षा दीक्षा ऐसी उपकारी हुई कि कारागृह के भयकारी स्थानों में वे उत्तम कारीगर और शिल्पज्ञ हो गए।

"इनलोगों के हाथ के बने हुए उत्तम उत्तम नकाशी तथा अन्य शिल्प के काम बाहर की वस्तुओं से दृढ़ता और उत्तमता में किसी प्रकार कम नहीं हैं।

"अब मैं ग्वालियर की सुन्दरता का कुछ वर्णन किया चाहता हूं। इस प्राचीन नगर का पुराना क़िला ३०० फीट ऊंची चट्टान पर पृथ्वी को आंखें दिखा रहा है। इस गढ़ के कोट के भीतर देशी, विलायती, तथा अन्य अन्य अन्वेषीगणों के लिये, ऐतिहासिक रोचकता की सामग्री एकत्रित है और इस सामग्री के होने का कारण यही है कि अपने अपने समय में बहुत सी जाति की सेनाओं का इसपर अधिकार रहा है। अन्तिम अधिकारी बृटिश सेना थी, जिसने सन् १८८६ ईसवी में क़िले को खाली किया। जिन जिनका इस पर अधिकार रहा, वे सब संगमरमर और अन्य पत्थरों के ऊपर अपने अपने चिन्ह छोड़ गए हैं।

"यों थोड़े से वाक्य ग्वालियर राज्याधिकारी की राजसेवा और राजधानी की उत्तमता दिखाने को बहुत होंगे। परन्तु उनके निज जीवन में भी उनकी सहानुभूति और रसिकता के सब अंग्रेज प्रशंसक हैं, और इनकी गणना मानों अपने ही समाज में करते हैं।

"हे मृगयाहेरी पुरुषो! यदि तुम महाराजा साहिब की घुड़साल में जाकर देखोगे तो तुमको वहां उनके घोड़ों की प्रियता दिखाई पड़ेगी। यदि तुम सूअर के शिकार में उनके साथ जाओ तो तुम देखोगे कि वह, तुम से बढ़ कर के अच्छे शिकारी और उत्तम आरोही हैं।

"हे फ़ोटोग्राफ़रो! तनिक तुम राजभवन के शिखर पर से जाकर देखो, तो तुमको वहां से दिखाई देगा कि स्टुडियो और चित्र के कैसे कैसे कारखाने हैं, और वे कैसे कैसे केमेरों, अंधेरे कमरों, फ़ोटो और चित्र उतारने की भांति भांति की सामग्रियों से सुसज्जित हैं। हे इञ्जिनियरो वा अन्य वैज्ञानिको! तनिक उनके आश्चर्यजनक भवनों को, जिन्हें उन्होंने अपने निज विचारानुसार बनवाए हैं, और वहीं छोटी पटरी की रेलवे के चित्रों और स्कीमों की व्यवस्था की है, जाकर देखो तो तुम्हें मालूम होगा कि उन्होंने इस कार्य में भी कुशलता प्राप्त की है। वे स्वतः एञ्जिन चलाना जानते हैं। कौतुकसंग्रहालय में उन्होंने संसार के दुर्लभ पदार्थों के अतिरिक्त कैसे सुन्दर पशु पक्षियों के ढांचे, औषधियों से युक्त सन्दूकों में भर रक्खे हैं, जिन के देखने से जीवित जीवों का भ्रम होता है। यदि आप यह जानना चाहते हैं कि ये प्रतिभाशाली श्रीमान् अपने राज्य की भलाई और उत्तम स्थिति के कर्तव्यों पर कहां बैठ कर विचार करते हैं, तो कृपा कर थोड़ा कष्ट सहन करके उस पुस्तकालय में जाकर देखिए जो महाराजा साहिब के शकुन्तीमहल के एक कोने में है। उस पुस्तकालय को बाहर और भीतर से सम्पूर्ण राजभवनों से, जो निरा पूर्वी (रजवाड़ी) तरह का बना हुआ है, बिलकुल निराले ही ढङ्ग का पाएगा। वह अंग्रेज़ी पुस्तकालयों से बहुत मिलता जुलता है। वहां सिन्दूरवृक्ष की काली काली लकड़ी के चौखटों में शीशे जड़े हैं और विश्राम करने के लिये, अरुणचर्मजटित कुर्सियां सजी हैं, और घर में चारों ओर पुस्तकें चुनी हुई हैं। एक कोने में बन्दूकें रक्खी हुई हैं। कमरे के बीच में, जहां आप एक बड़ी मेज़ के पास बैठा करते हैं, आपके मित्रों और सलाहकारों के चित्र लगे हुए हैं। टेलीफोन और अन्य बिजली के सामान उनके हाथ के ही पास प्रस्तुत हैं। यह कमरा, जहां यह देशभक्त प्रभावशाली युवामहाराज रहते और कार्य करते हैं, बड़े राजसी ठाठ से सजा हुआ है। आप बड़े विद्वान, देश और राजभक्त और बृटिश सिंहासन के बहुत ही बड़े शुभचिन्तक हैं, जिस कारण से आप इङ्गलेण्ड में एक उत्तम अतिथि हैं और आपकी अपने निज देश में भी अनमोल गणना की जाती है।"

ठाकुर सूर्यकुमार वर्मा।

हिसाब समझनेवाले की भूल

[१]

[मोहनलाल और रमाकान्त]

मोहनलाल—(ठंढी सांस लेकर) हाय ! हम लोगों ने जितनी आशा और उद्यम किया था, अब सभी वृथा हो गया।

रमाकान्त—क्या हुआ ?

मोहनलाल—'न जाने इस देश की क्या दशा होगी' यही सोचते सोचते रातभर नींद नहीं आती थी, और सुधार की चिन्ता ने व्यग्र कर रक्खा था। सोचते सोचते अन्त में यही एक उपाय सोचा था कि यदि स्वदेश के लिये शरीर का नाश भी हो जाय तो कोई हानि नहीं, और यह विचार कर मन को समझाता था कि क्या पहिले महात्मा लोग स्वदेश के लिये जीवन उत्सर्ग नहीं करते थे ? इत्यादि कल्पनाओं में गोते खाते खाते कभी सिर में दर्द होने लगता, कभी बुखार आ जाता, तौभी इस अलौकिक देश के उपकार करनेवाले विचारों को न छोड़ता। क्या ये सब उद्योग और परिश्रम अपने लिये करता था ? कदापि नहीं। जो कुछ करता था स्वदेश और युवाओं की मंगलकामना के लिये करता था। कहां गईं वे सब आशाएं ! हाय ! अब मैं किसके लिये अपने को सोचसागर में मग्न करूंगा ?

रमाकान्त—तुम्हारी तो बातही समझ में नहीं आती, और न यह जान पड़ता है कि तुम्हारे घबड़ाने का इसमें कारण ही क्या है ?

मोहनलाल—मैं आज किस लिये घबड़ा रहा हूं क्या यह तुम नहीं जानते ? यदि तुम इन सब बातों को विचारते और जानते तो आज इस दशा ही को क्यों प्राप्त होते ? पृथिवी पर क्या हो रहा है और भविष्यत में क्या होनेवाला है, भला इस पर भी कभी कुछ ध्यान दिया ? हाय ! हमारे देश की अवस्था कैसी मन्द हो गई है कि ईश्वर की कृपा से जिसे दोनों समय खाने को मिल जाता है, वह अपने को परम सुखिया और संसार की सब झंझटों से छुटकारा पाया हुआ समझ कर ईश्वर को धन्यवाद देने लगता है, चाहे देश के दूसरे भाई बन्धु रहें वा न रहें इसकी उसे चिन्ता नहीं रहती। बस "आप भला तो जग भला"। अभी देखिए वैज्ञानिकों के एकमात्र आधार मिष्टर टामस साहब ने गणित से एक ऐसी बात निश्चित की है कि उसे हमलोग कभी ध्यान में भी नहीं ला सकते थे। उन्होंने एक ऐसी बात को निश्चय कर दिया है कि जिसके कारण संसार का वा भूमण्डल का बड़ा भारी उपकार हुआ है।

रमाकान्त—'वह क्या ?'

मोहनलाल—यह जो पृथिवी चल रही है और हमलोग बचे हुए हैं, यह किसके बल से ? जितने मनुष्य, जीव, जन्तु, कीट और पतंगादि सब सूर्य की रश्मियों (किरणों) ही से प्रतिपालित होते हैं। जो रश्मी सूर्य से इस पृथिवी तक आती हैं, वह पुनः सूर्य के अन्दर प्रविष्ट नहीं हो सकती; जिस से सूर्य की गरमी दिन दिन कम होती जाती है, और न इसके संचय करने का ही कोई उपाय है। मैं एक मोटी बात आपसे कहता हूं कि जहां खरच ही खरच है, जमा के स्थान में केवल शून्य है, वह खरच कब तक निभ सकेगा ? यही बात सूर्य के लिये भी है। सूर्य चाहे कितना ही बड़ा क्यों न हो, एक न एक दिन अवश्यमेव उसकी पूंजी (उत्ताप) चुक जायगी, सम्पूर्ण भूमण्डल कर्त्तव्यशून्य, जीवशून्य, प्राणिशून्य, यहां तक की सर्वशून्य हो जायगा। इसपर मिष्टर टामस साहब ने निश्चय किया है कि "पांच करोड़ वर्ष में सूर्य की दाहक शक्ति ठंढी हो जायगी"।

रमाकान्त - जब पृथिवी ही कुछ दिन पीछे जीवरहित हो जायगी, तब तुम लोग किस लिये नागरीप्रचार का आन्दोलन कर रहे हो, और किसके

लिये साल के साल नैशनल कांग्रेस इत्यादि, और क्यों व्यर्थ की टांय टांय करने के लिये बड़े बड़े समाचारपत्र तथा मासिकपत्र निकाल कर साल के साल घाटा सहते हो ? और हाय देश, हाय देश, चिल्लाते चिल्लाते सूर्य की दाहक शक्ति समाप्त होने के पहिले ही मरे जाते हो ?

मोहनलाल—मैंने यही तो सोच के अब सब बातों में उदासीनता ग्रहण कर ली है। सब काम वृथा है, कारण कि पांच करोड़ वर्ष के दिन का ?

रमाकान्त—(मुसकुराकर) तुम क्या कह रहे हो ? पांच करोड़ वर्ष बहुत होता है।

मोहनलाल—हाय ! तुम्हारी बुद्धि पर पत्थर पड़ गया है, जो तुम बेसमझी बातों में इतना झगड़ते हो। अरे ! पृथिवी का जीवनकाल पांच करोड़ वर्ष गिनने से कुछ नहीं है। जब स्वदेशहित की चेष्टा की जाती है, वह क्या दो चार वर्ष के लिये की जाती है ? या क्या अपने सुख के लिये, कि जिसमें उसका दस, पांच वर्ष में सुख भोग लिया जाय और नाम कर उसको मिट्टी में मिला दिया। इस लिये देश का उपकार करना नहीं विचारा जाता, वरन जिस कार्य के लिये उद्योग करें, उसका फल युगयुगान्तर बना रहे। जब यह बात होनी ही नहीं है, और पृथिवी बहुत जल्दी नाश हो जायगी, तब व्यर्थ का उद्योग क्यों करें ?

रमाकान्त – फिर अब क्या करोगे ?

मोहनलाल—अब करेंगे क्या ? चुप चाप बैठे बैठे आयु पूरी होने में दिन गिनते रहेंगे और आयु पूरी होने पर स्वर्ग का सुख लूटेंगे।

रमाकान्त—मुझे तो पांच करोड़ वर्ष जीना नहीं है कि जिसके लिये फिकर करूं।

मोहनलाल—तुम्हें इतनी भी समझ नहीं है कि मेरे कहने का मतलब यही है अथवा कुछ और है। जब यह मालूम है कि हम लोग अब कुछ नहीं कर सकेंगे, तब दिन गिनने ही से क्या लाभ ? और तब संसारिक झगड़ों में पड़ना व्यर्थ है। उद्देश्य होने ही से काम किए जाते हैं, बिना उद्देश्य के कोई भी काम नहीं होता। मान लिया जाय कि अभी पांच सौ वर्ष और जीएंगे, इससे क्या मिलना है ? बुते हुए दीपक के समान जब एक न एक दिन पृथ्वी का आलोक और जीवन बुत जायगा, तब हम लोग कहां रहेंगे, और तुम्हारा देश ही कहां रहेगा ?

रमाकान्त—ठीक, ठीक, मैं समझ गया। अधिक आपको समझाने की जरूरत नहीं है।

[२]

मोहनलाल का घर

मोहनलाल की स्त्री—तुम जो दिन रात बैठे रहते हो, भला इस ढंग से मैं तुम्हे कै दिन खिला सकूंगी ? लड़की सयानी हुई जा रही है उसका भी तुम्हें कुछ ध्यान नहीं। चार दिन में उसको व्याहना होगा, जिसका करना जरूरी है, जिसके न करने से लोक और परलोक दोनों बिगड़ता है।

मोहनलाल—अभी भी तुम्हें लोक की फिकर पड़ी हुई है। ठीक है "अंधे आगे रोए और अपना दीदा खोए"। मैंने कितनी ही बार तुम्हें समझाया कि मेरे सामने संसारिक झगड़ों का रोना न रोया करो। किन्तु तुम ऐसी मूर्ख हो कि जरा भी तुम मेरी बात पर ध्यान नहीं देती। अरे दो दिन पीछे पृथ्वी का भी कहीं पता न लगेगा, तुम्हें क्या यह मालूम नहीं है। तुम्हें सब बात के समझने की ईश्वर ने बुद्धि दी है, केवल मेरी ही बातों के समझने की बुद्धि छीन ली है। क्या तुम यह नहीं जानती कि मैं पहिले स्वदेशहित के कामों के करने के लिये कैसे कैसे विचार करता था, कैसी कैसी बाँधन बाँधता था, किन्तु आज कल कभी कुछ भी विचार नहीं करती।

मोहन की स्त्री—जो कुछ करते हो अच्छा ही करते हो। जितने संसार में मनुष्य हैं, किसीके भी

यह ध्यान में नहीं आता कि पृथ्वी आज ही ठंढी होकर जीवशून्य हो जायगी। मेरी समझ में सिवाय तुम्हारे और किसीको समय नहीं है, क्योंकि सभी लोग अपनी चार दिन की जीवन-यात्रा पूरी करने के लिये कमाने की चिन्ता करते हैं, और लड़की लड़कों का व्याह दान करते हैं; किन्तु तुम्हारा विचार सबसे अच्छा है कि मैं तुम्हारे खाने पीने का बन्दोवस्त करती रहूं और तुम मूर्तिमान आलस्य का रूप निहारते रहो।

मोहनलाल- किसने तुमसे कहा है कि तुम मेरे लिये खाने पीने की फिकर करो! बस चुप चाप बैठी रहो। दो चार दिन पीछे आपही सबके दिन पूरे हो जायंगे, तब न खाना पीना ही पड़ेगा और न लड़की लड़कों के व्याहदान करने की फिकर करनी पड़ेगी। जो कुछ भी आशा होती तो क्या मैं जड़ की तरह बैठा रहता? क्या मेरा उत्साह कम हो गया है वा मेरी क्षमता कम हो गई है? कुछ भी कम नहीं हुआ है। इच्छा करूं तो क्या नहीं कर सकता? जो मनुष्य स्वदेश के लिये शरीर तक दे देने को तय्यार था, वह सांसारिक छोटी छोटी बातों को क्या समझता है। तुम्हीं विचार कर देखो कि जब कुछ दिनों में सब प्राणियों का कहीं खोजे भी पता नहीं लगेगा, सम्पूर्ण भूमण्डल जीवरहित हो जायगा, ऐसी अवस्था में चार दिन के सुख के लिये शरीर को कष्ट देना निरी मूर्खता है। इससे ज्यादः मैं तुम्हारे संग सिरखप्पन नहीं कर सकता।

मोहन-स्त्री—भला मैं अनपढ़ी तुम्हारी बातों को क्या समझूंगी कि जब पढ़े लिखे लोगों को भी तुम्हारी बातों के आगे सिर झुकाना पड़ता है। अच्छा, अब तुम्हें मेरे संग "सिर खप्पन" करने की जरूरत नहीं पड़ेगी। जीवशून्या पृथ्वी कब होगी इसका तुम आसरा देखो, और मैं अपने पिता के घर जाने के लिये गाड़ी मंगाती हूं, और अब वहीं जाकर बचे हुए जीने के दिन को बिताऊंगी।

मोहनलाल—चाहे तुम बाप के यहां रहो चाहे मेरे यहां रहो, जब वखत आजायगा, कहीं रहो, बचै नहीं सकती।

मोहन की स्त्री—अच्छा, जो होगा देखा जायगा। मेरा अपराध क्षमा हो, अब मैं जाती हूं।

[३]

(कई एक नव युवक लोग बैठे है)
(मोहनलाल का प्रवेश)

मोहनलाल—कहो भाईयो, क्या कर रहे हो?

पहिला युवक - हम लोगों का विचार कुछ रुजगार करने का है, उसीके सम्बन्ध की बातें हो रहीं हैं।

मोहनलाल—ऐसी बातों के करने का परिणाम ही क्या है?

दूसरा युवक—इन बातों को करके यही स्थिर करेंगे कि कौन सा काम करना चाहिये।

मोहनलाल—क्या आप लोगों ने मिष्टर टामस साहब की गणित का परिणाम नहीं पढ़ा है?

प्रथम युवक—पढ़ा है।

मोहनलाल—तब क्यों जान कर यह व्यर्थ चेष्टा करते हो?

तीसरा युवक—यह व्यर्थ किस लिये है?

मोहनलाल—मैने देशोन्नति करने के लिये, देशहित साधन के लिये, बहुत कुछ विचारा था, इन विचारों में कभी स्वार्थता को फटकने नहीं दिया था, इसीसे मेरे विचार कभी वृथा होनेवाले नहीं थे। किन्तु अब उन सब सोच विचारों के करने का समय नहीं रहा, क्योंकि दो दिन पीछे सम्पूर्ण पृथ्वी जीवरहित हो जायगी। इस लिये व्यर्थ की झंझटों में अपनेको फसाना निरी मूर्खता ही है। यदि आप लोगों को कुछ भी समझ होती तो आप लोग भी मेरी ही तरह "सब तज हर भज" के अनुगामी हो जाते।

पहिला युवक—मेरी ईश्वर से बार बार यही प्रर्थना है कि वह आपको ऐसी तीक्ष्णबुद्धि कदापि भूले से भी न दे। यदि कल महाप्रलय होने की खबर हो, और आज रात में भी किसी तरह की उन्नति कर सकते होगें, तो उसके प्राप्त करने का उद्योग नहीं छोड़ेंगे। आपकी महान बुद्धि आपके ही पास रहे।

मोहनलाल—आपलोगों को समझाने का उद्योग करना वृथा है, क्योंकि आंख के रहते भी हृदय के अंधे हैं।

[४]

(रमाकान्त के घर पर मोहनलाल का प्रवेश)

मोहनलाल—अरे भाई रमाकान्त! मैं इस समय बड़ी विपद में हूं, मुझे इस समय कुछ भी नहीं सूझता, किस तरह इस विपद से छुटकारा पाऊंगा।

रमाकान्त—कहो इस समय कौनसी विपद की चिन्ता ने इतना व्यग्र बना दिया। क्या साहब बहादुर की गिनती में भूल निकली है कि अब पांच करोड़ वर्ष भी पृथ्वी की आयु नहीं है।

मोहनलाल—यह सब कुछ नहीं, यह विपद मेरी ही है। आज सबेरे से भूखा हूं। अन्न का एक दाना भी अभी तक मुंह में नहीं गया, भूख के मारे दम निकला जाता है।

रमाकान्त—(आश्चर्य से) क्या घर में कुछ खाने को नहीं है?

मोहनलाल—न तो घर में कुछ खाने को है और न घरवाली ही है। वह भी मुझ से रुष्ट होकर अपने बाप के यहां चली गई है।

रमाकान्त—वह बाप के यहां क्यों गई?

मोहनलाल—मैं साहब बहादुर की गणित समझाता था; किन्तु स्त्रियों का स्वभाव बड़ा विचित्र होता है, वह इसको जरा भी नहीं समझी, उलटा मुझ से रुष्ट होकर बाप के यहां चली गई; अब मेरी विपता का कुछ पूछना क्या है?

रमाकान्त—तुम्हारा यह बड़ा भारी अन्याय हुआ है। क्या इस महीने में महीना नहीं मिला?

मोहनलाल—इस महीने से नौकरी छोड़ दी है।

रमाकान्त—यह क्यों?

मोहनलाल—जब साहब बहादुर की गणित एक दिन सत्य ही होगी और जीव का रहना असम्भव ही है, तब नौकरी करने का फल ही क्या है?

रमाकान्त—तुम्हारी विवेचना, तुम्हारे सिद्धान्त, सभी ठीक हैं, केवल एक बात में तुमने भूल की; अर्थात्, जैसे नौकरी छोड़ कर सब चेष्टाओं को त्याग दिया है, वैसे ही खाने पीने की भी चिन्ता को त्याग देना चाहिए।

मोहनलाल—बिना भोजन किए तो एक दिन भी नहीं रह सकता।

रमाकान्त—क्यों? जहां सब काम छोड़ दिए, वहां खाना भी छोड़ दो, क्योंकि चार दिन में पृथ्वी का अन्त है ही है, दो दिन पहिले ही चल बसोगे तो कोई हानि है?

मोहनलाल—हे मित्र! तुम्हे ऐसा कहना उचित नहीं है।

रमाकान्त—ठीक है, तुम निकम्मे बन कर, घर वालों को भूखे रख कर बैठे रहो और मैं तुम्हें भोजन कराता रहूं! ऐसा ही करने से मेरी मित्रता का वर्ताव पूरा समझा जायगा। मुझको न पांच करोड़ वर्ष जीना है, और न मुझ में इतनी सामर्थ्य है कि मैं तुम्हारे लिये पांच करोड़ वर्ष तक खाने का प्रबन्ध कर दूं। कृपा करके अपने घर का रस्ता पकड़ो, मुझको आपकी ऐसी मित्रता स्वीकार नहीं है।

सिद्धेश्वर शर्मा।

नागरी अक्षर और हिन्दी भाषा*

आठवें इम्पीरियल टेबुल में पढ़े लिखे आदमी पांच भागों में बांटे गए हैं। यह भाग (१) केवल उर्दू जाननेवालों, (२) केवल हिन्दी जाननेवालों, (३) और (४) हिन्दी और उर्दू दोनों जाननेवालों (जो लोग हिन्दी ज्यादः जानते हैं उनका उर्दू ज्यादः जाननेवालों से भेद किया गया है) और दूसरी भाषा जाननेवालों के हिसाब से किया गया है। यहां पर यह कह देना चाहिये कि यद्यपि यह भेद भाषा का किया गया है, पर असिल में यह केवल अक्षरों ही का भेद है; अर्थात् आठवें टेबुल में जो 'हिन्दी' और 'उर्दू' शब्द आए हैं, उन से केवल 'फ़ारसी अक्षर' और 'नागरी वा उससे मिलते हुए अक्षर' ही समझना चाहिए। आगे के अध्याय में दिखलाया जायगा कि उर्दू और गद्य की हिन्दी एक ही भाषा है, और इन दोनों के व्याकरण भी एक ही हैं, पर उनमें शब्दों का प्रयोग करना लेखक की रुचि पर निर्भर है। पढ़े लिखे लोगों का उनके अक्षर जानने के हिसाब से जो भाग किया गया है, वह ध्यान देने लायक है। जिस समय इस प्रान्त में सरकारी राज्य फैला, उस समय यहां की कचहरियों में फ़ारसी भाषा और अक्षर जारी थे। यह बात सन् १८३७ ईस्वी तक रही और उस सन् में फ़ारसी भाषा की जगह यहां की भाषा कर दी गई, पर अक्षर ज्यों के त्यों रक्खे गए। उस समय अगर कचहरी में कभी नागरी वा उससे मिलते हुए अक्षरों में लिखे हुए किसी काग़ज़ के पेश करने की बारी आती, तो उसके साथ ही फ़ारसी अक्षरों में भी उसकी नकल देनी पड़ती थी। १९०० ईस्वी में गवर्मेण्ट ने एक आज्ञा जारी की जिसमें कचहरियों और सरकारी कर्मचारियों के पास नागरी अक्षरों में भी अर्जी आदि देने की आज्ञा दी गई, और यह भी आज्ञा हुई कि जो सूचनाएं प्रजा को दी जांय वे फ़ारसी और नागरी दोनों ही अक्षरों में हों। उस आज्ञा में यह दिखलाया गया था कि यद्यपि केवल नागरी वा उससे मिलते हुए अक्षर जाननेवालों और केवल फ़ारसी अक्षर जाननेवालों की संख्याओं का ठीक ठीक पता नहीं था, पर सन् १८९१ ईस्वी की मनुष्यगणना से विदित हुआ था कि जहां केवल ५४००० लेखकों ने फ़ारसी अक्षरों में काम किया, वहां १२०००० लेखकों ने नागरी वा कैथी में (जो कि नागरी का एक बहुत मिलता हुआ रूप है) किया। जब सर्वसाधारण आज्ञाओं पर विचार कर रही थी तो इसके विरोधियों ने कहा कि इन अक्षरों का मनुष्यगणना के लेखकों में जो नम्बर पाया गया है, वह सर्वसाधारण के नम्बर का ठीक अनुमान नहीं है। पर इस बेर की मनुष्यगणना से विदित होता है कि यद्यपि मनुष्यगणना के लेखकों के नम्बर में और सर्वसाधारण में हिन्दी उर्दू जाननेवालों के ठीक नम्बर में फरक है, पर वह फरक विरोधियों के और भी विपक्ष में है। क्योंकि लेखकों में तो नागरी वा कैथी अक्षर लिखनेवाले, फ़ारसी अक्षर लिखनेवालों के केवल ढाई गुने ही थे। पर असिल में जहां १०१६६९ आदमी नागरी वा कैथी जाननेवाले हैं, वहां केवल २५९९४३ ही मनुष्य फ़ारसी अक्षर जाननेवाले हैं, अर्थात् नागरी वा कैथी जाननेवाले चौगुने हैं। जो लोग इन दोनों अक्षरों को जानते हैं, उनमें से ६६३२४ तो नागरी वा कैथी से फ़ारसी अक्षर अच्छी तरह जानते हैं, और ६५६७९ फ़ारसी की अपेक्षा नागरी वा कैथी ही अधिक जानते हैं। इस सम्बन्ध में अलीगढ़ ज़िले का हाल लिखा जा सकता है। सन् १८९१ ईस्वी को मनुष्यगणना में जिस जिले में जिन अक्षरों में जितने फार्म भरे गए थे, उसी अन्दाज से इस बेर भी हर जिले में नागरी और फ़ारसी अक्षरों के फार्म भेजे गए थे। इस हिसाब से अलीगढ़ जिले के लिये जो अन्दाज किया गया था वह बिलकुल ही झूठ निकला। इसका कारण यह है

* संयुक्त प्रदेश के सेंसस सुपरिनटेण्डेण्ट ने अपनी रिपोर्ट में नागरी अक्षर और हिन्दी भाषा के विषय में जो कुछ लिखा है यह उसका अनुवाद है।

कि सन् १८९१ की मनुष्यगणना में ज्यादः करके पटवारी लोग काम करते थे और ये लोग उस ज़िले में अक्सर फ़ारसी अक्षर ही लिखते हैं। पर इस बेर ये बन्दोबस्त के काम में लगे रहने के कारण, मनुष्य-गणना का काम नहीं कर सके। आठवें टेबुल से जान पड़ेगा कि इस ज़िले में जहां ६०२२ आदमी फ़ारसी अक्षर लिख पढ़ सकते हैं, वहां ६२८७३ आदमी नागरी अक्षर लिख पढ़ सकते हैं और इस लिये वहां बहुत से नागरी फार्म और भेजने प । इस रिपोर्ट में नागरी और उसके बिगड़े हुए रूपों में भेद करने का उद्योग नहीं किया गया है, क्योंकि किसी एक ज़िले में जो कैथी लिखी जाती है, उससे दूसरे ज़िले की कैथी में बहुत फ़रक पाया जाता है। डांकखाने में भिन्न भिन्न तरह के अक्षरों की प्रतिलिपि की एक पुस्तक है, जिसमें इस प्रान्त की कैथी के ग्यारह नमूने हैं। यह पुस्तक एक पढ़े लिखे हिन्दू को दिखलाई गई। वह नागरी और कैथी के भी उस नमूने को तो सहज ही में पढ़ सका जो उसके ज़िले में लिखा जाता था और कैथी के एक दूसरे नमूने को भी, जो कि एक पास के ज़िले में लिखा जाता था, कठिनाई से पढ़ सका, लेकिन बाकी नमूनों को नहीं पढ़ सका। लखनऊ के दफ़्तर में आस पास से आए हुए इन्हीं तरह तरह के कैथी अक्षरों में लिखे हुए फ़ार्मों के पढ़ने में बड़ी ही दिक्कत हुई, और कानपुर के दफ़्तर में अजमेर-मेरवाड़ा के फ़ार्म को भाषा और जन्मस्थान के लिये फिर से लिखना पड़ा, क्योंकि 'मेरवाड़ा' 'मेवाड़' और 'मारवाड़' शब्दों में बड़ा ही गड़बड़ था। महाजनी अक्षरों में और भी ज्यादः कठिनाई है, क्योंकि उनमें मात्रा प्रायः बिलकुल ही छोड़ दी जाती है। इस अक्षर में लिखी हुई एक चिट्ठी की बात प्रसिद्ध है, जिससे बड़ी ही गड़बड़ मची थी। एक महाजन अपने घर से दूसरे शहर की अपनी कोठी में गया। उसके गुमाश्तों ने उसके घर समाचार लिखा कि "लालाजी अजमेर गए हैं, बड़ी बही भेज दो"। परन्तु वह पत्र यों पढ़ा गया कि "लालाजी आज मर गए हैं बड़ी बहू भेज दो"। अस्तु, इतने तरह के जुदे जुदे अक्षर होने के कारण यह बात आवश्यक हुई कि इनमें से कोई एक प्रधान चुन लिया जाय, और गवर्मेण्ट ने बहुत दिनों से इसके लिये देवनागरी अक्षर चुने हैं और गांव के कागज पत्रों में (जो कि इस तरह के मुख्य सरकारी कागज हैं जिनमें फ़ारसी अक्षर नहीं व्यवहार किए जाते) सब तरह के कैथी अक्षर लिखने की मनाही करदी है। सन् १८८२ ईस्वी के एजुकेशन कमिशन ने यह दिखलाया था कि इस आज्ञा का एक फल यह हुआ कि अवध की पाठशालों को (जिनमें नागरी के बिगड़े हुए रूप पढ़ाए जाते थे) सरकारी प्राइमरी स्कूलों की अपेक्षा बड़ी हानि पहुंची। पर इस समय तो नागरी पढ़ लेने का ज्ञान प्रायः उन लोगों में भी प्रचलित हो गया है जो लोग कि लिखने में नागरी के बिगड़े हुए रूप काम में लाते हैं।

मनुष्यगणना का तो केवल लिखने पढ़ने की योग्यता ही से सम्बन्ध है। शिक्षा का मुक़ाबला करने के लिये शिक्षाविभाग के उस हिसाब पर विचार करना चाहिए जो स्कूलों के लोअर प्राइमरी स्टेज से सम्बन्ध रखता है। इस दर्जे के विद्यार्थियों की संख्या सन् १८९०-९१ में १४६०८८ थी, पर सन् १९००-०१ में २५७१४४ हो गई है। इनमें से अधिकांश विद्यार्थी उन स्कूलों में हैं जो Local Funds से चलते हैं। सन् १८९०-९१ में ऐसे स्कूलों में ११८६४० विद्यार्थी थे और सन् १९००-१९०१ में १७४४८३। प्राइमरी स्कूलों में Local Funds का जो व्यय होता है वह दस वर्षों में ५४७१७२ रु० से बढ़ कर ६१९५४८ रु० हो गया है। परन्तु सन् १८९५ के अन्त में एक नई बात हुई, जिसका प्राइमरी शिक्षा पर बड़ा ही असर हुआ और जो बढ़ता ही जायगा। उस समय के पहिले गांवों के बहुत से छोटे छोटे स्कूलों को सर्कार नहीं मानती थी और न उन्हें कुछ सहायता देती थी। पर अब उन्हें

डिस्ट्रिक्ट् बोर्ड के ज़रिए से धन की कुछ सहायता मिलने लगी। इसका फल यह हुआ कि प्राइमरी एडेड स्कूलों की हाजरी बहुत ही बढ़ गई। अर्थात् सन् १८९०-९१ में ११९९१ थी और १९००-०१ में ६२८१० हो गई। मैं इस बात का कोई कारण बतलाने में असमर्थ हूं कि हर एक जिले के लिखे पढ़े लोगों की संख्या में इतना फ़रक क्यों है। यदि इसका कारण यह बतलाया जाय कि जिस जिले में लोग शिक्षा का ज्यादः मान करते हैं, वहां ज्यादः शिक्षा है, तो यह भी नहीं हो सकता; क्योंकि इससे शिक्षा की इच्छा में क्यों भेद होना चाहिए। यहां पर यह भी कह देना चाहिए कि जहां लिखे पढ़े आदमियों की संख्या सब से ज्यादः है, वहां नागरी वा उसका कोई बिगड़ा हुआ रूप ही ज्यादः काम में आता है। केवल रुहेलखण्ड ही एक ऐसी कमिश्नरी है जहां केवल फ़ारसी अक्षर जाननेवाले नागरी जाननेवालों से अधिक हैं, पर वहां लिखे पढ़े मनुष्यों को संख्या दूसरी कमिश्नरियों से कम है। इसका केवल यही सारांश निकाला जा सकता है कि फारसी अक्षरों से नागरी सहज में सीखी जा सकती है। आठवें टेबुल से साफ़ जान पड़ता है कि हिन्दू लोग नागरी पढ़ना अच्छा समझते हैं और मुसलमान लोग फ़ारसी पढ़ना। पर कठिनाई तो यह बतलाने में पड़ती है कि रुहेलखण्ड कमिश्नरी में, जहां पर फारसी अक्षर और नागरी अक्षर जाननेवाले हिन्दुओं की संख्या दूसरे ज़िलों की अपेक्षा बराबरी पर अधिक पहुंचती हैं, वहां नागरी का इतना कम प्रचार क्यों है। नागरी सीखने के लिये जो सुगमताएं हैं, वे तो सम्भवतः प्रान्तों के सबही हिस्सों में बराबर हैं, और कमाऊं डिवीज़न को छोड़ कर और सब ज़िलों की कचहरियों में अक्षरों के प्रचलित होने में भी कोई भेद नहीं है जिसे हम इसका कारण बतला सकें। यहां पर यह भी कह देना चाहिए कि खाली नागरी ही जाननेवालों में फ़ारसी जाननेवालों से प्रायः कम योग्यता पाई जाती है। मनुष्य गणना के दफ़्तरों में यह देखा गया है कि, साधारण प्रजा में से वे गणना करनेवाले जिनके फ़ार्म फ़ारसी अक्षरों में भरे गए थे, वे नागरीवालों से अच्छी तरह भरे गए थे। दूसरी बात ध्यान देने लायक यह है कि मनुष्यगणना के हिसाब के अनुसार पढ़े लिखे मनुष्यों का जो विभाग किया गया है, वह शिक्षाविभाग के हिसाब से बिलकुल उलटा है। कमाऊं में मनुष्यगणना और शिक्षा-विभाग दोनोंही की संख्या से शिक्षा की अधिकता प्रगट होती है। पर मेरठ और रुहेलखण्ड कमिश्नरियों में लिखे पढ़े लोगों की संख्या सबसे कम है, पर फिर भी उनमें स्कूल जानेवाले बालकों की संख्या सबसे अधिक है। इससे यह विदित होता है कि बुंदेलखण्ड तथा इन प्रान्तों के पूरब में पश्चिम की अपेक्षा प्रारम्भिक शिक्षा का अधिक प्रचार है। पहाड़ी ज़िलों में थोड़े प्राइवेट स्कूल हैं, पर सरकारी स्कूलों में शिक्षा की बड़ी जरूरत है। पढ़े लिखे हिन्दुस्तानियों के विषय में एक बात ऐसी है जिससे अङ्गरेज़ों को सबसे ज्यादः आश्चर्य होता है। वह यह कि वे लोग बहुत कम पढ़े हुए जान पड़ते हैं। पुस्तकों के स्वत्व के लिये जो रजिस्टरी की गई है, उससे जान पड़ता है कि इस देश में स्कूल की पुस्तकों और कुञ्जियों को छोड़ कर दो तरह की पुस्तकों, अर्थात् धर्म्मसम्बन्धी (पद्य की) पुस्तकों और उपन्यासों का ही सबसे ज्यादः प्रचार है। केवल नागरी ही जाननेवालों में इनके अधिक प्रचार का कारण भी है। वह यह कि आजकल नागरी की पुस्तकें बहुधा ऐसी बनावटी भाषा में लिखी जाती हैं कि वे साधारण आदमी की समझ में नहीं आतीं, और जो ज्यादः लोकप्रिय अच्छे काव्य हैं, वे प्रायः या तो प्राचीन भाषा में हैं, या भिन्न भिन्न बोलियों में लिखे हुए हैं, जो कि लोकप्रिय होने पर भी जल्दी समझ में नहीं आते। इसलिये बहुत करके हिन्दुस्तानी लोग चिट्ठीपत्री और हिसाब किताब लिख पढ़ लेने ही के लिये पढ़ना सीखते हैं, और उनका उद्देश्य

किताब पढ़ने का नहीं होता। शिक्षाविभाग के कर्मचारी लोग भी अङ्गरेज़ी पढ़नेवाले विद्यार्थियों को यही शिकायत करते हैं। इन विद्यार्थियों में से बहुत से तो कोई गलत वा सही तार लिख लेने के लायक होते ही स्कूल से उठ जाते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि इन प्रान्तों में इतनी कम शिक्षा होने का एक खास कारण यह है कि यहां के लोगों में पढ़ने की आदत का अभाव है, और जो लोग केवल नागरी जानते हैं, उनमें इस आदत के पड़ने में लिखने का एक बनावटी ढंग बड़ी बाधा डालता है। यह अभाव ज्यादः पढ़े लिखे हुए लोगों में भी, जो कि बहुतायत से नीचे दरजों की सरकारी नौकरी में हैं, पाया जाता है। भाषा में ख़ास करके इतिहास, जीवनचरित्र, यात्रा और विज्ञान की पुस्तकों का बड़ा अभाव है और इसी प्रकार के दूसरे विषयों की भी पुस्तकें जो कि उन्नीसवीं शताब्दी के बहुत से योरोपियन साहित्य में वर्तमान हैं, इन प्रान्तों में नहीं पाई जातीं। डाकृर ग्रियर्सन ने अपने 'वर्नाक्यूलर लिटरेचर आफ़ हिन्दुस्तान' नाम की पुस्तक में खेद के साथ दिखलाया है कि इस देश में केवल एक ही समालोचक, अर्थात् बाबू हरिश्चन्द्र, हुए। और यहां पर यह कह देना भी उचित होगा कि उनकी बहुतसी पुस्तकों में संस्कृत के कोष की भरमार पाई जाती है। मेरी समझ में विद्या के प्रचार और उसकी अधिकता दोनों ही में उन्नति करने के लिये तो अच्छे और लोकप्रिय ग्रन्थों का बनाना ही मुख्य है। एक दूसरी बात भी विद्या की उन्नति में बाधा डालती है। आठवें अध्याय में, जिसमें भिन्न भिन्न जातियों का वर्णन है, जातियों के विभाग दिए हैं। नवें और दसवें विभाग में ५५ फ़ी सैकड़ा ऐसे लोग हैं जिनके छूने में भी पाप समझा जाता है और इसीलिये इन जातियों के लड़के बहुत से स्कूलों में भरती नहीं किए जाते। दसवें विभाग में, जिनकी संख्या फ़ी सैकड़ा ५ है, ऐसी जातियां हैं जिनके विषय में भी विरोध हो सकता है। आठवें और नवें विभाग में, जिनकी संख्या ४१ फ़ी सैकड़ा है, काश्तकार, कारीगर, आदि जातियां हैं, जिनमें पढ़ना लिखना बेकाम समझा जाता है। अब केवल ३० फ़ी सैकड़ा ऐसे लोग बच गए जिनमें शिक्षा की कोई बाधा नहीं है और जिनमें बिना कठिनाई के इसका प्रचार हो सकता है। सन् १९००—१९०१ की शिक्षाविभाग की रिपोर्ट से जान पड़ता है कि स्कूल जाने की उमरवाले लड़कों में से ११ फ़ी सैकड़ा स्कूलों में पढ़ते थे। इस लिये यदि शिक्षा के विचार से इन प्रान्तों की उन्नति होनी जरूरी है तो साधारण लोगों की उपेक्षा को दूर करने और नीच जातियों की शिक्षा में सुबीता होने की आवश्यकता है। स्त्रीशिक्षा में दो बाधाएं हैं। पहिली तो यह कि अच्छी पढ़ानेवाली नहीं मिलतीं, क्योंकि यह समझा जाता है कि पढ़ाने का काम लज्जावती स्त्रियां नहीं कर सकतीं, और दूसरे यह कि छोटी छोटी लड़कियां यद्यपि लड़कियों के स्कूलों में भेजी जाती हैं, पर बहुत ही थोड़ी उमर में उनका पढ़ना बन्द कर दिया जाता है। इससे परदे और बालविवाह के कारण उन्हीं लोगों में स्त्रीशिक्षा का प्रचार नहीं होने पाता जिनमें यह हो सकता है। इन प्रान्तों में स्त्रीशिक्षा का काम विशेष कर मिशनरियों के हाथ में है, और मेथोडिस्ट एपिस्कोपेल मिशन ने इसके लिये बड़ा उद्योग किया है, और लखनऊ में औरतों के लिये एक कालेज भी स्थापित कर रक्खा है।

जिस देश के रहनेवाले कुछ सभ्य हो जाते हैं, उसमें प्रायः देखा गया है कि वहां की पुस्तकों की भाषा में उस देश के बोलचाल की भाषा से फरक पड़ जाता है। यह भेद या तो भाषा के व्याकरण में हो, या शब्दों में, या लेखप्रणाली में। प्रायः इन तीनों ही में कम या ज्यादः भेद पाया जाता है। लेखप्रणाली का अधिक सम्बन्ध इस विषय से नहीं है, वरन् ऊंचे विचारों से है; पर यह भी कह देना चाहिए कि इनसे पूरबी देश की बहुत सी

भाषाओं में योरप की भाषाओं की अपेक्षा अधिक रङ्गीलेपन और अत्युक्ति की जरूरत होती है। वाक्यरचना और मोहावरे के रूपों में व्याकरण के जो भेद पाए जाते हैं, वे प्रायः एक ही होते हैं। ज्यों ज्यों सभ्यता बढ़ती जाती है, त्यों त्यों कुछ भिन्न भिन्न समूहों को बड़े बड़े समूहों में करके उन्हें एक ही नियम के आधीन करने की इच्छा होती जाती है। किसी जाति की भिन्न भिन्न भाषाएं, चाहे वे एक ही भाषा से निकली हों और चाहे वे जुदी जुदी भाषाएं हों, काल पाकर उन सबके रूप एक ही हो जाते हैं। पर यह बात उन देशों की वास्तविक या कल्पित भिन्नता पर भी निर्भर है जिनमें उस जाति के भिन्न भिन्न लोग रहते हैं, और इस एक रूप का हो जाना उतने ही देश में होता है जितने में कि आपस में मेल-मिलाप और व्यवहार रहता है। निस्सन्देह भाषा में बराबर फरक हुआ करता है, पर यह फ़रक उन दिनों में कम होता है जबकि विद्या के विषय की कुछ धूमधाम बनी रहती है। और छापे के प्रचार ने तो इन फ़रकों को और भी कम कर दिया है। भाषा में ये सब साधारण फ़रक तो आपही होते रहते हैं, पर इसके सिवाय उसमें दूसरी भाषाओं के मेल से और भी असाधारण फ़रक पड़ जाते हैं। अस्तु, जो कुछ ऊपर कहा जा चुका है उसका तात्पर्य यह है कि, किसी जाति की बोलचाल की भाषा में कई तरह के व्याकरण के रूप पाए जाते हैं, और इन रूपों की भिन्नता का कम वा ज्यादः होना उस जाति के भिन्न भिन्न लोगों के मेलमिलाप पर, और देश के जिन भिन्न भिन्न भागों में वे रहते हैं उनमें बेरोक टोक के संसर्ग पर निर्भर है। किसी साहित्य के बनने में यह प्रायः देखा गया है कि कोई एक आदर्श चुन लिया जाता है, पर इस चुनाव के सिद्धान्त में जुदी जुदी भाषाओं में भेद होता है। इन प्रान्तों के इतिहास से मालूम होता है कि आजकल की भाषाओं में ऊपर कहे हुए परिवर्तन किस तरह से हो चुके हैं। भारतवर्ष में जिन मुसलमानों ने हमला किया, वे जुदी जुदी जातियों के थे, पर जान पड़ता है कि उन सभों ने अपनी भाषा फ़ारसी रक्खी; अथवा, इतना तो अवश्य है कि अट्ठारहवीं शताब्दी के अन्त में उत्तरी भारतवर्ष के अधिक हिस्सों में फ़ारसी ही राज्य-भाषा पाई गई थी। यह तो निश्चय जानना चाहिए कि इन हमला करनेवालों ने शुरू ही से अपनी प्रजा की भाषा बोलने का उद्योग किया था, और यह कोई आश्चर्य की बात नहीं कि दिल्ली के आसपास जो भाषा बोली जाती है, उससे वे परिचित भी हो गए हों। इस प्रकार से पश्चिमी-हिन्दी एक नई भाषा निकली। इस भाषा में बहुत ही ज्यादः फ़ारसी के शब्द मिलाए गए और फिर फ़ारसी में भी तुरकी और अरबी के शब्द लिए गए थे। यह मिश्रित भाषा उर्दू अर्थात् सेना की भाषा कहलाई। उर्दू की उत्पत्ति के विषय में जुदे जुदे लेखकों की विपरीत रायें हैं। कोई तो कहते हैं कि उर्दू की उत्पत्ति मुसलमान लोगों के हिन्दुस्तानी भाषा सीखने के कारण हुई; और कोई कहते हैं कि टोडरमल की आज्ञा से हिन्दुओं ने फ़ारसी सीखने का जो उद्योग किया, उससे इसकी उत्पत्ति हुई। अस्तु, यह कोई आवश्यक बात नहीं है, और हम कह सकते हैं कि उर्दू की उत्पत्ति सम्भवतः इन दोनों ही कारणों से हुई होगी। जान पड़ता है कि उन्नीसवीं शताब्दी के शुरु में, जब बृटिश सरकार के हाथ में पश्चिमोत्तर प्रदेश का बहुत सा भाग आ गया था, उस समय यद्यपि अदालती दस्तावेजों में फ़ारसी लिखी जाती थी, पर राज्य करने वालों और प्रजा में परस्पर व्यवहार का ज़रिया असिल में उर्दू ही था। फ़ारसी, जो कि यहां बोली नहीं जाती थी, उसको राज्यभाषा रखने में जो कठिनाइयां होती थीं, उनके दूर करने के लिये, सन् १८३७ ईस्वी में, भारतवर्ष की गवर्न्मेंण्ट ने बङ्गाल और पश्चिमोत्तर प्रदेश में उसके स्थान पर इस देश की भाषा करदी। अब यहां पर एक दूसरी बात का कह देना भी

आवश्यक है, जिसने कि इस प्रान्त की भाषा की उन्नति की है और अब भी कर रही है। ऊपर लिखी हुई बातों के सिवाय यहां के गद्य की भाषा और पद्य की भाषा में भेद होना कुछ असाधारण नहीं है। उर्दू को छोड़ कर यहां की और तीनों भाषाओं में से किसीमें भी अट्ठारहवीं शताब्दी तक गद्य, सच पूछिए तो, था ही नहीं। और उर्दू के गद्य और पद्य में भी थोड़ी ही पुस्तकें हैं। इस का कारण यह है कि हिन्दू लोग जब गद्य लिखना चाहते थे, तो संस्कृत में लिखते थे और मुसल्मान लोग ज्याद: करके फ़ारसी और अरबी में लिखते थे। पर मलिक मोहम्मद (सन् १५४०) तथा कुछ और ग्रन्थकार लोग अपने काव्य के ग्रन्थ उर्दू में भी लिखना बुरा नहीं समझते थे। उर्दू को राज्य-भाषा बनाने का जो निश्चय किया गया, उसके करीब दस वर्ष पीछे प्राइमरी शिक्षा की ओर लोगों का ध्यान गया और तब उर्दू पढ़ाने के लिये पाठ्य-पुस्तकों के बनाने की आवश्यकता हुई, क्योंकि उस समय कोई पुस्तक पढ़ाए जाने लायक नहीं थी। इसके पहिले सन् १८०३ में लल्लू जी लाल ने फोर्ट-विलियम कालेज के डाकृर गिलक्रिस्ट (Gilchrist) के कहने से उच्च हिन्दी की उत्पत्ति की। उन्होंने व्रजभाषा में लिखे हुए भागवतपुराण के दसवें स्कन्ध को लेकर उसका उर्दू भाषा में अनुवाद किया, जिसमें वे विदेशी भाषा के शब्दों को काम में नहीं लाए। इस तरह से उच्च हिन्दी और उर्दू का व्याकरण एक ही है, सिवाय इसके कि वाक्य-विन्यास में कहीं कहीं पर बहुत थोड़ा भेद है, और अधिक भेद शब्दों के प्रयोग में है। आफ़िस की भाषा और ख़ासकर कचहरी की भाषा में, और साधारण बोलचाल की भाषा में, जितना फ़रक है वह तो अच्छी तरह से ज़ाहिर ही है। हमारे कचहरियों के लेखकों का फ़ारसी में लिखने की पुरानी आदतों का छोड़ना कठिन था; ख़ास कर इसलिये कि, पूरबदेश के निवासी बिना काम के भी कठिन कठिन शब्दों का प्रयोग करना पसन्द करते हैं। उर्दू के स्वीकार किए जाने के कोई चालीस वर्ष पीछे तक वह केवल व्याकरण ही के हिसाब से यहां की भाषा थी, पर इस भाषा के शब्द साधारण बोलचाल के शब्दों से कहीं भिन्न थे। यहां इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि साधारण बोलचाल और काम के लिये भी शब्दों का अभाव था, क्योंकि इस अवस्था में अरबी और फ़ारसी के अधिक शब्दों को काम में लाने की ओर लोगों की अधिक रुचि थी। पर गवर्मेण्ट का सिद्धान्त यही रहा है कि कचहरी की भाषा, जहां तक सम्भव हो सके वहां तक, जन साधारण की भाषा ही हो जाय; और पिछले तीस वर्षों में इसका फल यह हुआ है कि कचहरी की भाषा बहुत कुछ साधारण हो गई है। क्योंकि जिस देश में शिक्षा बहुत से कामों के लिये आवश्यक समझी जाती है, वहां की अपेक्षा उस देश में गवर्मेण्ट की इच्छा अधिक पूरी हो सकती है जहां लोग थोड़ा लिख पढ़ लेने के सिवाय अधिक शिक्षा खाली सरकारी नौकरी के लिये पाते हैं। इसमें यहां तक सफलता हुई है कि एक दल उर्दू के ऐसे कवियों का भी बन गया है जो कि अपने पूर्वजों की नाईं बड़ी उच्च भाषा में कविता न करके सीधी सादी भाषा में करता है। पर उच्च हिन्दी की दशा इससे उलटी हो रही है। यह दिखलाया जा चुका है कि उर्दू स्वभाविक तरह से कई सौ वर्ष में एक स्वच्छ और सीधी सादी भाषा हो गई, पर उच्च हिन्दी बिलकुल बनावटी भाषा है। पिछले कुछ वर्षों के भीतर "नागरीप्रचारिणी सभा" नाम की एक सभा उच्चहिन्दी को त्रुटियों को दूर करने और हिन्दी की उन्नति करने के लिये स्थापित हुई है। इस सभा ने जो पुस्तकें छपवाई हैं उनसे जान पड़ता है कि, उसकी समझ में, जहां संस्कृत शब्द नहीं हैं उनकी जगह पर संस्कृत के शब्द काम में लाना ही भाषा को शुद्ध करना है। वह यह भी नहीं विचारती कि जिन शब्दों की जगह पर संस्कृत के शब्द काम में लाए जाते हैं, वे

साधारण आदमियों को अच्छी तरह मालूम है वा नहीं। यहां तक भी देखने में आता है कि जो संस्कृत ही के साधारण शब्द हैं, उनकी जगह पर शुद्ध संस्कृत के शब्द इसलिये काम में लाए जाते हैं कि पहिले वाले शब्दों को गांववाले काम में लाते हैं। अर्थात् यों समझिए कि तद्भव शब्दों को जगह पर तत्सम शब्द ठीक उसी तरह से काम में लाए जाते हैं जैसे कि कोई फ़ांसदेश का विद्वान Royal के स्थान पर Regal शब्द को ज़्यादः अच्छा समझे। आजकल की प्रायः सभी नागरी पुस्तकों में इस तरह के उदाहरण बहुतायत से मिलते हैं। "हुक्म", "क़ाएदा" "कागज़" आदि साधारण शब्दों की जगह पर "आज्ञा", "नियम", "पत्र" इत्यादि काम में लाए जाते हैं, जिनमें से कि पहिले दोनों शब्दों को तो कोई भी बिना लिखा पढ़ा गांव का रहनेवाला न समझेगा और तीसरा शब्द भी जिस शब्द की जगह पर लाया गया है, उससे ज्यादः प्रसिद्ध नहीं है। "पहिला" और "मानस वा मनई" शब्द भी ऐसे प्रसिद्ध हैं जैसा कि कोई शब्द हो सकता है, पर वे गंवारू समझे जाकर घृणा किए जाते हैं और उनकी जगह पर "प्रथम" और "मनुष्य" काम में लाए जाते हैं। हम दिखला चुके हैं कि यह बात वैसी ही है जैसा कि कोई अङ्गरेज़ 'Impenetrability of matter' की जगह पर 'Uuthorougsomeness of stuff' लिखे। नीचे एक उच्च हिन्दी की पुस्तक से कुछ अंश लेकर उसका अङ्गरेज़ी में अनुवाद किया जाता है और उसमें जहां जहां बिना काम के संस्कृत शब्द रक्खे गए हैं वहां वहां अङ्गरेज़ी में लेटिन के शब्द रक्खे जाते हैं जिससे यह बात अच्छी तरह से समझ में आजायगी—

"परन्तु उसमें एक कठिनाई पड़ती थी। मनुष्यमात्र की गणना की अपेक्षा थोड़ी ही गउओं को यह रोग था; इस कारण इस चेप का बहुधा अभाव बना रहता था" अनुवादः—

"*Autem* there was a *difficultas* in this *Visus* (lit. "Regarded" or having regard to) the *numerus* of the *humanum genus*, few cows had this discase, for his *ratio* there continued to be *magna paucitas* of this serum."

यह आज कल की उच्च हिन्दी का एक ठीक नमूना है जो कि पुस्तकों, अख़बारों और स्कूलों की शिक्षा में प्रचलित है और हिन्दुस्तानी में इसका नाम 'भाषा' या 'ठेठ हिन्दी' है। अब तक बोलचाल की भाषा में तो इसने बहुत कम उन्नति की है, पर इसे पण्डित लोग बोलते हैं, और जो हिन्दू कुछ संस्कृत जानते हैं वे भी इसी तरह से बोलते हैं। पर जब वे किसी पण्डित से बात करते हैं, उस समय तो उच्च हिन्दी में बोलना जरूरी समझते हैं। ऐसे लोग प्रायः समझते हैं कि उच्च हिन्दी ही शुद्ध हिन्दी है और इस प्रान्त की सब भाषाएं उसीके बिगड़े हुए रूप हैं, जैसा कि "भाषा" वा "ठेठ" शब्द से जान पड़ता है। मुसलमानलोग ठीक इसी तरह से सब भाषाओं को उर्दू का अपभ्रंश समझते हैं। उच्च हिन्दी का बनावटी होना तो ठीक इसीसे समझ लीजिए कि ऊपर लिखे हुए हिन्दी के वाक्यों में से जिन ९ शब्दों का लेटिन में अनुवाद किया गया है उनमें से केवल तीन शब्द मेरे आफ़िस के दो हिन्दू क्लार्कों की समझ में आसके। इनमें से एक तो एन्ट्रेन्स पास था, और नागरी तो दोनोंही जानते थे, पर उच्च हिन्दी में किसीने शिक्षा नहीं पाई थी। ऊपर के तीनों वाक्यों में से एक क्लार्क तो एक वाक्य का अनुवाद कर सका और दूसरे ने तीनों में से एक भी नहीं समझा। इस प्रान्त की भाषा में एक और भी विचित्रता है, जिसको एक हिन्दू डिप्टी कलेक्टर, जो पूरबी हिन्दुस्तान के रहनेवाले हैं और जिन्होंने बिहार और पश्चिमी हिन्दुस्तान में काम किया है, यों वर्णन करते हैं—

"जब कभी कोई हिन्दुस्तानी सज्जन किसी विदेशी वा किसी दूसरे हिन्दुस्तानी सज्जन से भी बात करेगा तो वह उर्दू में बोलेगा। जब वह किसी गंवार वा बिना पढ़े आदमी से बात करेगा तो भी उर्दू ही में करेगा। और जब वह अपने नौकरों

वा घर के लेगों से बात करेगा तो भी उर्दू ही में करेगा। यदि वहां कोई अनपढ़ वाहरी आदमी वा कोई दूसरी जाति का आदमी हो, वा ऐसा आदमी हो, जो उसके गांव वा कुटुम्ब का न हो, जैसे मैं अपने मित्रों, मातहतों, अर्दलियों, और दूसरों के सामने अपने नौकरों से भी उर्दू में बातचीत करता हूं, अपनी स्त्री और भाई बन्धु से, अपने गांव के काश्तकारों से और अपने घर के नौकरों से शुद्ध और सीधी पूरबी हिन्दी बोलता हूं, यही दशा संयुक्तप्रदेश के हर एक हिन्दू की है, और इसके पूरबी भाग के लोग तो एक सीढ़ी और चढ़के अपने हिन्दू मित्रों में बिहारी तक भी बोलते हैं। यह दशा केवल हिन्दुओं ही की नहीं है, वरन् गांव के रहनेवाले सब मुसलमानों में और कुछ नगर के रहनेवाले मुसलमानों को भी है। अभी हाल में मैं एक दिन रेल में यात्रा कर रहा था, जिसमें अवध के एक बड़े इज्जतदार तअल्लुक़दार भी थे। उनके साथ एक दूसरा मुसलमान भी था जो कदाचित् उनका सम्बन्धी हो और निस्सन्देह उनके इलाके का नौकर था। ये महाशय मुझे नहीं जानते थे, और न दूसरे एक बङ्गाली महाशय को ही जानते थे जो कि हम लोगों के साथ बैठे थे। कुछ देर तक वे अपने मुसलमान साथी से अपने इलाके के काम काज की बातें शुद्ध पूरबी हिन्दी में करते रहे, जब तक कि हम लोगों ने एक दूसरे से (निस्सन्देह उर्दू में) बातचीत करना नहीं शुरू किया। मैं जिस समय यह पत्र लिख रहा था, उसी समय एक प्रतिष्ठित मुसलमान सज्जन, जो कि अंग्रेजी पढ़े लिखे एक डिप्टी कलेक्टर थे और अब छुट्टी पर थे, मुझसे मिलने आए। हमलोग इसके पहिले एक दूसरे को नहीं जानते थे। हम लोग कुछ अंग्रेज़ी मिली हुई उर्दू में बात चीत करते रहे; पर वह एक गांव के रहनेवाले हैं और पिछले दो तीन महीनें उसी गांव में रहकर आए हैं, इसलिये २० मिनट के भीतर भीतर उनके मुंह से कई बार भूल से पूरबी हिन्दी निकल गई।"

अतएव इससे ये बातें जान पड़ती हैं। सर्व साधारण लोग, और अपने घर में पढ़े लिखे लोग भी, ख़ास कर यदि वे हिन्दू हों तो, स्थानिक भाषा बोलते हैं। उन जगहों के लिखे पढ़े लोग भी घर पर छोड़ कर और सब जगह उर्दू बोलते हैं, जहां की भाषा उर्दू नहीं है। पद्य या तो उर्दू में और या पश्चिमी हिन्दी की ब्रजभाषा में लिखा जाता है। इसके लिये पूरबी हिन्दी अब बहुत काम में लाई जाती है, पर इसीके एक प्राचीन रूप को तुलसीदास काम में लाए हैं, जिनकी बनाई रामायण इस प्रान्त के हिन्दुओं की बाइबिल समझना चाहिए। बिहार की भोजपुरी भाषा साहित्य के कामों में कभी नहीं लाई गई। यहां की तीनों भाषाओं में बहुत सी कविता है जो कि कंठस्थ सुनी जाती हैं और जिसे सिवाय अन्वेषी विदेशियों के और किसीने कभी नहीं लिखा है। आजकल के पद्य के लिये ब्रज की भाषा इसलिये चुनी गई है, क्योंकि लोग समझते हैं कि उस भाषा में बड़ा लालित्य और अत्यन्त सुन्दरता दिखलाई जा सकती है। शायद यह विचार इसलिये है कि पन्द्रहवीं और सोलहवीं शताब्दियों के वैष्णव आचार्यों में से बहुतों ने, और ख़ास कर आगरे के अन्धे कवि सूरदास ने, उसी भाषा में कविता की है।

इन बहुत तरह की भाषाओं होने के कारण जो दिक़्क़तें पड़ती हैं, वे इस कारण कम हो जाती हैं कि यदि परिचित शब्द काम में लाए जांय तो प्रायः इस प्रान्त के सब हिस्सों के लोग उर्दू और उच्च हिन्दी के व्याकरण के रूपों को अच्छी तरह समझ सकते हैं। हां, पहाड़ियों में, पश्चिमी हिन्दी के बुन्देली भागों में, और बिहार में बहुत से ऐसे लोग भी पाए जाते हैं जो इन्हें कठिनता से समझ सकते हैं। यह भी याद रखना चाहिए कि इस प्रान्त के सब हिस्सों के अधिकांश लोग किसी विदेशी से बातचीत करने में स्थानिक रूपों का प्रयोग करते हैं, पर जो शब्द वे काम में लाते हैं वे कई भाषा के मिले हुए होते हैं। दोनों मुख्य भाषाओं

में से उर्दू का प्रचार बहुत ज्यादः होता जाता है और उसके लिखने की भाषा उसके बोलचाल की भाषा के बहुत निकट आती जाती है; पर उच्च हिन्दी का व्याकरण यद्यपि एकही है, पर उसमें जैसे शब्द काम में लाए जाते हैं उसके कारण वह उन पढ़े लिखे लोगों की भी समझ में नहीं आती जो संस्कृत न जानते हों; वा जिन्होंने उसकी शिक्षा स्कूल में न पाई हो। और उसकी सम्भावना किसी बोल-चाल की भाषा से भी अधिक भिन्न होते जाने की है। विदेशी भाषाओं में से फ़ारसी का उर्दू के कोष पर बहुत कुछ असर पड़ा है, और उसका कुछ प्रभाव शब्दों के विन्यास पर भी पड़ा है। आजकल उर्दू पर अंग्रेज़ी का भी कुछ असर पड़ रहा है, जिसका कारण यह है कि अंग्रेज़ी ही उच्च-शिक्षाओं का मुख्य द्वार है। यह असर ख़ास कर उसके कोष पर पड़ा है, और वह ऐसी दशाओं में निस्सन्देह स्वाभाविक भी है, जहां कि अंग्रेज़ी राज्य के शुरू होने ही से उन भावों के प्रगट करने पर जो पहिले पहल उनके सामने आए, पड़ा। जैसे, म्युनिसिपेलिटी, टाउन हाल, मेम्बर, रेल, बोतल आदि साधारण शब्द हो गए हैं। वह पांडित्य दिखलाने की इच्छा, जिसके कारण चालीस वर्ष पहिले उर्दू की और आजकल हिन्दी की घृणा की गई है, वही नीचे लिखे हुए तरह के वाक्यों का भी कारण है—

"इस एविडेन्स में बहुत डिस्क्रपेन्सी हैं और निहायत इम्पोर्टेण्ट बला यह कि ... ..."

यह ध्यान रहे कि ऐसी भाषा किसी अंग्रेज़ से बोलने में उसके सुबीते के लिये काम में नहीं लाई जाती, वरन् हिन्दुस्तानी हिन्दुस्तानी आपस में भी ऐसी भाषा बोलते हैं। आजकल शिक्षा अंग्रेज़ी में दी जाने के कारण भाषा में अंग्रेज़ी के मोहावरे और बनावट की भी नकल की जाती है और किसी किसी हिन्दुस्तानी ग्रन्थकार के उर्दू ग्रन्थों में कहीं कहीं पर यह कहा जा सकता है कि यह वाक्य अंग्रेज़ी वाक्य का अनुवाद है। भाषा के दोनों मुख्य रूपों के भविष्यत का विचार करने में १८९१ की मनुष्यगणना की रिपोर्ट में, जो मिस्टर जे० आर० लेवेल के वाक्य से उद्धृत किए गए हैं, वे यहां पर फिर लिखे जाने लायक हैं—

"केवल उन्हीं शब्दों से नये बल से भाषा की पुष्टि की जा सकती है जो आजकल के लोगों में प्रचलित हों। जिस भाषा को लिखने पढ़ने की भाषा कहते हैं, वह ज्यादः ही पण्डिताई से भरी और विदेशी होती जाती है, यहां तक कि अन्त में वह भाषा विचारों को जाहिर करने के लिये वैसी ही बेकाम हो जाती है जैसी कि माङ्क लोगों की लेटिन भाषा। ... ... जिस भाषा के शब्दों का प्रयोग कम हो गया है और जो जनसाधारण के बोलचाल के शब्दों को नहीं ग्रहण करती उस भाषा में कोई अच्छी और गम्भीर पुस्तक नहीं हो सकती ... ... शब्द सदाही बोलचाल से उठते जाते हैं, इसलिये जहां की भाषा नियमों से बहुत ही जकड़ दी जाती है, वहां के विचार बढ़ने के द्वार भी कम हो जाते हैं, और इसलिये वहां का साहित्य भी हृष्टपुष्ट पेड़ों की नांई न होकर चीनदेश के बौने पेड़ों की नांई हो जाता है।"

यह बड़े दुर्भाग्य की बात है कि मोहावरे और शब्दों का प्रयोग जातिसम्बन्धी बात समझी जाती है। (इस बात को कई बार लिखने की आवश्यता नहीं है कि उर्दू और उच्च हिन्दी का व्याकरण साधारण रीति से एक ही है)। आज दिन भी कुछ मुसलमान लोग अपनी बोलचाल और पुस्तकों में जितने फ़ारसी और अरबी के शब्द भर सकते हैं उतने भर देते हैं, और कुछ लोग तो एक ऐसी भाषा में लिखना ही पसन्द करते हैं जिसे वे फ़ारसी कहते हैं, और जो आज कल की फ़ारसी से कोष में उतनी ही भिन्न है जितनी कि स्पेन्सर की "फ़ेयरी क्वीन" टेनिसन से। इसी प्रकार से कुछ हिन्दू लोग भी संस्कृत के कोष की लूटपाट के साहित्य बनाना चाहते हैं। ऊपर लिखी हुई सभी ने यह भी प्रगट किया है कि

वह एक वैज्ञानिक कोश बना रही है; पर यह स्पष्ट है कि उसने इस पर ध्यान नहीं दिया कि नई नई वैज्ञानिक आवश्यकताओं के लिये योरप की आज कल की सब भाषाओं में यह निश्चय हो चुका है कि ग्रीक और लेटिन के शब्द काम में लाए जायं। इन बातों की असारता को बहुत से हिन्दुस्तानी लेखकों ने समझा है, और यहां पर भूतपूर्व राजा शिवप्रसाद का नाम लिया जा सकता है, जिसने लेखप्रणाली को सीधी बना कर उसे जनसाधारण की बोलचाल के निकट लाने का उद्योग बड़ी सफलता से किया। इस देश और दूसरे देशों के साहित्य के इतिहासों से यह स्पष्ट जाना जाता है कि जब लेखकों ने नित्य के बोलचाल की भाषा काम में लाई तभी उस भाषा की पूरी उन्नति हुई है, और यह कहा जा सकता है कि इसी नियम पर चलने से अब भी लाभ हो सकता है।

पिछले दस वर्षों में इन प्रान्तों में जितनी पुस्तकें छपीं, उनसे जान पड़ता है कि उनमें सै सैा में पैंतालिस तो उर्दू की और फ़ी सैकड़ा चौतीस उच्च हिन्दी की थीं। इससे ऊपर लिखी बात की और भी पुष्टि होती है कि लेखनी द्वारा विचार प्रगट करने में उर्दू अधिक जनप्रिय होती जाती है।